पूर्ण संख्या—१९२ Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. **Reg. No. A. 708.**

भाग ३३ मेष, संवत् १९८७ संख्या १
VOL. 33. No. 1
अप्रैल १९३१

प्रयागकी विज्ञान परिषत्का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३३ | मेष, संवत् १९८८ | संख्या १

लसीका ग्रन्थियों का यक्ष्मा

(गण्डमाला)

[ले० डा० कमला प्रसाद जी एम० बी०]

SCROFULA

यह निर्विवाद है कि गण्डमाला में यक्ष्माकी ही गांठें मिलती हैं जिनमें यक्ष्मा कीटाणु वर्त्तमान रहते हैं, किन्तु तो भी यह प्रश्न विवाद ग्रस्त है कि जो कीटाणु गण्डमालाके कारणभूत हैं वे ही अन्य स्थानोंमें भी यक्ष्माके कारण हो सकते हैं वा उनके कीटाणु भिन्न प्रकारके हैं। वास्तवमें इस रोगमें मानुषिक एवं पाशविक दोनों ही प्रकार के कीटाणु वर्त्तमान रहते हैं।

गण्डमाला विशेषतः लड़कों एवं वृद्धों को पकड़ती है किन्तु किसी भी आयुका व्यक्ति इससे बचा नहीं रह सकता।

कीटाणु अन्य स्थानोंके यक्ष्माक्रमण की भांति इस स्थानमें भी अवसर की ताकमें रहते हैं। किसी व्यक्तिकी अवरोधिनी शक्तिके ह्रास पर ही इनका प्रभाव-विस्तार निर्भर करता है। एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्लैष्मिक कलाओं का किसी प्रकार का न्यूनाधिक प्रदाह इस रोग का सहायक होता है। साथ साथ यह भी निश्चित है कि इन कलाओंके प्रदाहमें निकटस्थ लसीका ग्रन्थियों का कुछ न कुछ ज्वलन अवश्य हो जाता है। मान लीजिये, किसी बच्चेके कण्ठ की श्लैष्मिक कला कुछ प्रदाहके कारण क्षत हो तो उक्त स्थान पर एक द्वार सा खुल गया जिसमें अनेक प्रकारके कीटाणु प्रवेश कर सकते हैं। यक्ष्मा कीटाणु ऐसे अवसर को हाथसे जाने नहीं देते, किन्तु यदि लसीका ग्रन्थियों की अवरोधिनी शक्ति भरपूर हुई तो उन्हें कुछ क्षति नहीं पहुँच

सकी, अन्यथा यक्ष्मा कीटाणु इन ग्रन्थियोंमें डट गये और साधारण प्रदाह को यक्ष्मा कृत प्रदाहमें परिणत कर डाला। ये ग्रन्थियां यक्ष्मा कीटाणुओं के केन्द्र बन जाती हैं जहांसे ये दूसरी ओर का मार्ग भो सुगम बना लेते हैं। इस रोगके सम्बन्ध की निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं।

(क) परिमित क्षेत्र—एकबार आक्रमणके उपरान्त रोग बहुधा सदाके लिए परिमित ही रह जाता है। जैसे गले की ग्रन्थियां यदि आक्रान्त हुई तो यक्ष्मा का विस्तार गले ही तक रह जायगा।

(ख) स्वयं मोक्ष-शरीर और रोगाणुओंमें जो युद्ध चलता रहता है उसमें प्रायः शरीर ही विजय प्राप्त करता है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण बहुत सी लसीका ग्रन्थियोंमें देखा जाता है, जिनमें खटिक बैठ जाता है। किन्तु बहुत बार यह विजय केवल अस्थायी सन्धिके रूपमें देखी जाती है और अवसर मिलते ही नूतन यक्ष्माके रूपमें पुनः युद्ध छिड़ जाता है।

(ग) यक्ष्मा कृत ग्रन्थि प्रदाहसे बहुधा पीव निकलने लगता है, किन्तु इस प्रकारके पीवमें पीव उत्पन्न करने वाले कीटाणु नहीं पाये जाते। अस्तु, यह प्रश्न भी विवाद ग्रस्त है कि यह पीव यक्ष्मा कीटाणुओं द्वारा, उनके विषों द्वारा वा अन्य पीव उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है।

(घ) अमुक्त यक्ष्माकृत ग्रन्थि प्रदाह (unhealed Tuberculous admitis) वास्तवमें रोगीके निरन्तर भय का कारण है। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि प्रायः ३ चौथाई यक्ष्मा इन्हीं आक्रान्त ग्रन्थियोंके फलसे प्रादुर्भूत होता है। दूसरे पक्षमें यह भी कहा जाता है कि बाल्यावस्था में गण्डमाला हो जाने पर प्रौढ़ावस्थामें मनुष्यके शरीरमें एक प्रकार की रोगक्षमता आ जाती है। इसमें संदेह नहीं कि इसके भी प्रचुर प्रमाण मिलते हैं क्योंकि ऐसे व्यक्तियोंमें जिन्हें फुफ्फुस-यक्ष्मा होता है बहुत कम ही में (प्रतिशत ३·२ में) ग्रंथि प्रदाहके कोई चिह्न मिलते हैं।

भेद

(१) यक्ष्मा कृत सर्वांग लसीका ग्रन्थि प्रदाह (Generalised Tuberculous lymph adenitis):—रोगका यह रूप बहुत कम देखा जाता है। सच तो यह है कि ऐसे रोगी शायद ही मिलते हैं जिनके और किसी अवयवमें यक्ष्मा का कोई चिह्न न हो, केवल शरीर की सारी लसीका ग्रन्थियां आक्रान्त हो गई हों।

(२) स्थानीय यक्ष्माकृत ग्रन्थि प्रदाह (Local tuberculous adenitis)—

(क) ग्रैवी (Cervical):—सबसे अधिक इसी रोगके रोगी मिलते हैं तथा बच्चोंमें ही यह रोग अधिकतर पाया जाता है, विशेष कर उन गरीब बालकोंमें जिन्हें रात दिन मैले कुचैले घरों की गन्दी हवामें रहना पड़ता है। प्रथमतः नासिका वा कंठमें प्रदाहसे अथवा घंटी की जीर्ण वृद्धि (chronic enlargement) से, एक प्रकारके चर्मरोगसे (Eczema) वा मध्यकर्णके प्रदाह (otitis media) से रोग आरम्भ होता है।

हन्वधोवर्ती ग्रन्थियां (Submaxillary gland) पहले आक्रान्त होती हैं और साधारणतः एक ओर की ग्रन्थियाँ दूसरी ओर की ग्रन्थियों की अपेक्षा अधिक बड़ी हो जाती है। ज्यों ज्यों ये बढ़ती जाती हैं त्यों त्यों एक एक कर लक्षित होती जाती है। इनके ऊपर की त्वचा चिकनी रहती है और ये कुछ कठोर होती हैं। ये अलग अलग भी रह सकती हैं पर बहुधा एक दूसरीमें मिल कर गांठ-दार बन जाती हैं, किन्तु चर्मसे सटी नहीं रहती। कभी कभी ये त्वचामें सट जाती हैं और साथ साथ इनके भीतरका पीव त्वचाको छोड़ कर बाहर निकल आता है। एक घाव तैयार हो जाता है जो अगर काटा न जाय तो स्वयं फट जाता है और नलाकार बन जाता है (sinus) तथा बहुत समयके बाद भरता है। इस रोगके साथ साथ नासिका प्रदाह (Coryza) शिर, कान एवं

होठों का चर्म रोग (Eczema) तथा नेत्र श्लैष्मिका-प्रदाह (conjunctivitis) वा कनीनिका-प्रदाह (Keratitis) पाये जा सकते हैं। जब ग्रन्थियां बड़ी हो जाती हैं एवं तेजीसे बढ़ने लगती हैं तब ज्वर भी होने लगता है। शरीरमें रक्त का अभावसा हो जाता है—विशेष कर उस समय जब इन ग्रन्थियोंमें पीव भर जाता है। इस प्रकारके यक्ष्मा की गति बहुत मन्द और कष्टप्रद होती है, किन्तु इससे मृत्यु बहुत कम होती है और वे रोगी भी जो बहुत दिनों तक पीड़ित रहते हैं बहुधा चंगे हो जाते हैं। केवल हन्वधोवर्ती ग्रन्थियां ही आक्रान्त नहीं होती बल्कि अक्षक (clavicle) के ऊपर की एवं पाश्चात्य ग्रैवी त्रिकोण (posterior cervicle triangle) की ग्रन्थियां भी साथ साथ आक्रान्त होती हैं और कभी कभी कक्ष की ग्रन्थियां (Axillary gland) भी रोगग्रस्त होती हैं। यह आक्रमण वायु नलिकाओं की मध्यस्थ ग्रन्थियोंमें भी पहुँच सकता है। अन्त में फुफ्फुसावरण वा फुफ्फुस भी आक्रान्त हो सकते हैं।

(ख) टेंटुए एवं श्वास प्रणाली की तथा वक्षमध्यस्थ ग्रन्थियां एक प्रकारसे छनने (फिलटर) का कार्य्य करती हैं, जिनमें ऐसे बाहरी पदार्थोंमें छिपे हुए यक्ष्मा कीटाणु अवसर नहीं चूकते जिसका फल यह होता है कि इन ग्रन्थियों पर सदैव ही यक्ष्मा के आक्रमण की संभावना रहती है। इस ग्रन्थि समूह की विशेषता यह है कि ग्रन्थियाँ शीघ्र ही बहुत बड़ा आकार धारण कर लेती हैं। बच्चे रोगियोंमें इन ग्रन्थियोंमें पीव भी बन जाता है। अनियमित ज्वर, शारीरिक क्षीणता, भूख नहीं लगना तथा अन्यमनस्कता इत्यादि लक्षणोंका कारण है शरीरमें निरन्तर विष-संचार होते रहना। दर्द बहुत कम होता है, रह रह कर खांसी होती है। कभी बन्द हो जाती है। और वह भी सूखी हुई। एक भी निश्चयात्मक चिह्न नहीं पाये जाते रोंजन किरण द्वारा रोगके निदानमें बहुत सहायता मिलती है। इसके कुछ ऐसे भी लक्षण हैं जो बहुधा कम पाये जाते हैं। निकटस्थ धमनी और शिरा—फुफ्फुसी वा धमनी (pulmonary artery) और ऊर्ध्वमहाशिरा (superior vena cava)—पर दबाव पड़ता है। टेंटुए एवं श्वास प्रणालियों पर भी दबाव पड़ता है जिससे ये चिपटी हो जाती हैं किन्तु उनके मार्गमें कोई रुकावट नहीं पड़ती। वक्षोदरमध्यस्था नाड़ी (Vagus nerve) पर भी दबाव पड़ सकता है। किन्तु अधिक महत्व की बात यह है कि कोई ऐसी ग्रन्थि जिसमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है किसी वायुनलमें फूट जा सकती है। अन्य रक्तनलिकाओं में तो बहुत कम किन्तु फुफ्फुसीया और महाशिरामें भी कभी कभी इस प्रकार छेद हो जाता है। सबसे भयङ्कर काम यह होता है कि फुफ्फुसावरण किम्बा फुफ्फुस तक यह रोग बढ़ सकता है। जब कोई ग्रंथि किसी रक्तनलिकामें फूट पड़ती है तो इसका परिणाम बहुत भयङ्कर होता है।

(ग) अन्त्रधारक झिल्ली की लसीका ग्रन्थियों का प्रदाह (Tabes mesenterica)—ये ग्रन्थियां तथा परिविस्तृत कला (Peritoneum) के पश्चाद्भागस्थ ग्रन्थियां आक्रान्त होती हैं। ये बढ़ती हैं, इनमें अधःक्षेपण क्रिया होती है, पीव उत्पन्न हो सकता तथा खटिक जम सकता है। यह रोग प्राथमिक वा माध्यमिक रूपसे हो सकता है। ग्रन्थियोंके आक्रान्त होनेसे शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है, रोगी क्षुद्रकाय, क्षीण और रक्त रहित हो जाते हैं, पेट फूल जाता है तथा अतिसार प्रादुर्भूत होता है दस्त पतले और बहुत दुर्गन्धमय होते हैं। कुछ ज्वर भी होता है किन्तु क्षीणता की ओर विशेषरूपसे ध्यान आकर्षित होता है। ग्रन्थियां यद्यपि बड़ी हो जाती हैं किन्तु तो भी अनुभूत नहीं हो सकती क्योंकि साथ साथ पेट भी फूल जाता है। बहुधा परिविस्तृत कला भी रोगग्रस्त रहती है और तब उदर में गांठों की सी वस्तु में जान पड़ती हैं। रोगी तौलमें कम हो जाता है, उसे

कुछ ज्वर भी बना रहता है तथा क्षतस्थान पर कुछ दर्द होता रहता है।

३ रसमयी झिल्लियों का यक्ष्मा

(Tuberculosis of serous membraines)

शरीर की ये कलायें एक साथ ही वा एकके उपरान्त दूसरी यक्ष्मा द्वारा आक्रान्त हो सकती हैं। इस यक्ष्माके तीन भेद माने जाते हैं।

(क) फुपफुसावरण और परिविस्तृत कला प्रदाह। इनमें वक्षमध्यस्था वा श्वास-प्रनाली-निकटवर्त्तिनी लसीका ग्रन्थियोंसे अथवा स्त्रियों में डिम्ब-प्रनाली (Fallopian tube) से रोग अग्रसर होता है। अस्तु, इन कलाओं (झिल्लियों) में नूतन प्रदाह उत्पन्न होता है।

(ख) दूसरे प्रकार का यक्ष्मा अधिक जीर्ण होता है। फुफ्फुसावरण एवं परिविस्तृत कलासे प्रदाहजनित द्रव निर्गत होते रहते हैं, उनमें अधःक्षेप के से पदार्थ बनते हैं और छोटे छोटे व्रण भी तैयार हो जाते हैं जिनमें पीव भर आता है।

(ग) तीसरे प्रकारका यक्ष्मा और भी जीर्ण होता है। इन कलाओं में कड़ी सूत्रमय गांठें पैदा हो जाती हैं तथा ये बहुत मोटी हो जाती हैं और इनसे प्रदाह जनित द्रव पदार्थ नहीं निकलते।

(संभव है कि इन तीन प्रकारमें से किसीमें भी अन्य अवयवों—कलाओं के अतिरिक्त-में यक्ष्मा का कुछ भी आक्रमण न हो)

(१) फुफ्फुसावरण का यक्ष्मा (Tuberculosis-of the pleuera)

अंग विकृतिके आधार पर इसके निम्नलिखित भेद माने जाते हैं।

(क) नूतन यक्ष्माकृत फुपफुसावरण प्रदाह (Acute Tuberculous pleurisy)

यह बहुत कम ही सांघातिक होता है। इसके भी तीन भेद हैं :—

१ नूतन फुपफुसावरण प्रदाह जो अन्तमें जीर्ण हो जाता है।

२ माध्यमिक प्रदाह (Secondary pleurisy) जो अन्तावस्था का सूचक होता है।

३ नूतन प्रदाह जिसमें पीव बनता है। इस प्रकारका प्रदाह एकाएक आरम्भ हो जाता है। छातीमें दर्द, ज्वर, खांसी और जाड़ा हो आता है, किन्तु यक्ष्मा का कोई संकेत नहीं पाया जाता और रोगी का पारिवारिक इतिहास अथवा अपना स्वास्थ्य दोष-रहित होता है।

(ख) अर्धनूतन और जीर्ण यक्ष्माकृत फुफ्फुसावरण प्रदाह (Sub-acute and chronic tuberculous pleurisies) इस प्रकारका रोग अपेक्षाकृत अधिक देखा जाता है। इसमें प्रदाह जनित रक्त-रस एवं फाइब्रिन युक्त द्रव पदार्थ निकलता है। आक्रमण बहुत धीरे धीरे होता है और इसकी वास्तविक प्रकृति की ओर साधारणतः ध्यान आकर्षित नहीं होता। प्रत्येक रोगीके फुफ्फुस और श्वास नलके निकटवर्त्ती लसीका ग्रन्थियों में भी यक्ष्मा केन्द्र वर्त्तमान रहते हैं। अन्तिम अवस्थामें रोग फुफ्फुस-यक्ष्मा वा सर्वांग यक्ष्माके रूपमें प्रकट होता है।

(ग) जीर्ण संलग्न फुफ्फुसावरण प्रदाह (Chronic adhessive pleury)-रोग का यह रूप नितान्त प्राथमिक होता है। फुफ्फुसावरण मोटा हो जाता है तथा फुफ्फुस के भी आक्रान्त होने की सम्भावना रहती है।

माध्यमिक आक्रमण भी बहुधा देखा जाता है और इसके अन्तमें फुफ्फुस भी आक्रान्त हो जाता है। आवरण के दोनों अंश खूब मोटे हो जाते हैं और आपसमें सट भी जाते हैं। इस प्रकार जीर्ण-प्रदाह आरम्भ हो जाता है। इसमें निर्गत द्रवमें रक्त-रस मिश्रित (तथा फाईब्रिन युक्त) तरल पदार्थ वा केवल रक्त-मिश्रित तरल पदार्थ पाया जाता है।

लक्षण और निदान आदिके आधार पर फुफ्फुसावरण-प्रदाह के दो भेद माने जाते हैं।

यथा :—

(क) जिससे रक्त-रस और फाइब्रिन मिश्रित तरल पदार्थ निर्गत हो।

(ख) जिससे पीव निर्गत हो।

(क) फुफ्फुसावरण-प्रदाह जिसमें रक्तरस और फाइब्रिन मिश्रित तरल पदार्थ प्रस्तुत होते हैं (Serofibrinous pleurisy)

कारण इत्यादि।

रोग अधिकतर पुरुषों को ही होता है।

कुछ ठंढ लगना इसका बहुत बड़ा आदि कारण (Predisposing factor) है।

अन्य कीटाणु भी पाये जाते हैं किन्तु अधिकांश यक्ष्मा कीटाणु ही रहते हैं। इसके प्रमाण हैं—

१ मृत्युके उपरान्त (शव-व्यवच्छेद करने पर) यक्ष्मा कीटाणुओंके चिह्न पाया जाना :—

२ फुफ्फुस वा अन्य स्थानोंमें गुप्त यक्ष्मा केन्द्रों का ज्ञात होना।

३ निर्गत द्रव पदार्थों की प्रकृति—इनमें यक्ष्मा कीटाणु और लसीका कोषों की अधिकता होती है।

४ टुबर्कुलिन प्रतिक्रिया बहुतसे रोगियोंमें पाई जाती है।

५ भावी अवस्था—प्रायः बहुतसे रोगी एक वा दूसरे समय यक्ष्मा द्वारा आक्रान्त होते हैं।

कीटाणु इत्यादि।

बहुधा तीन प्रकारके कीटाणु पाये जाते हैं।

१ यक्ष्मा कीटाणु—ये ही सर्व प्रधान हैं।

२ फुफ्फुस-प्रदाह कीटाणु

३ स्ट्रिप्टो कौकस (पीव उत्पन्न करने वाला कीटाणु)

इनके अतिरिक्त स्टेफाइलो कौकस, त्रिदोष-ज्वर कीटाणु और डिप्थिरिया कीटाणु भी पाये जाते हैं।

अंग विकृति—(Morbid anatomy)

रक्तरसमय तरल पदार्थ प्रचुर परिमाणमें पाये जाते हैं। फाइब्रिन फुफ्फुसावरणके तल पर बिछा हुआ तथा उक्त तरलमें फेनका सा तैरता हुआ देखा जाता है। इसका परिमाण न्यूनाधिक होता रहता है, कभी कम रहता है और कभी निम्न भाग में मलाईका सा बन कर जम जाता है। द्रवनीबूके रसके रंगका स्वच्छ या कुछ मलिनतायुक्त रहता है (स्वच्छता या मलिनता उसमें मिश्रित कोषों—Formed Elements—पर निर्भर करती है)।

अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा श्वेताणु, कुछ सूजे हुए कोष, फाइब्रिनके धागे और कुछ रक्ताणु (Red Blood corpuscles) देखे जाते हैं। तरल पदार्थ में अल्ब्युमिन (अण्डसित) अधिक रहता है जो कभी कभी स्वयं जम जाता है। द्रवका परिमाण कभी कभी बहुत ही बेशी रहता है।

अधिक द्रव इकट्ठा होनेके कारण अन्य अवयव—विशेष कर हृदय और यकृत अपने स्थानसे हट जाते हैं।

लक्षण

कुछ पहलेसे "तबीयत खराब होती चली आती है।" किन्तु कभी कभी एकाएक जाड़ा बुखार और छातीके दर्दके साथ २ रोग आरम्भ हो जाता है। बहुतसे रोगियों (विशेष कर बच्चोंमें) यह रोग धीरे धीरे आरम्भ होता है। कुछ काम करने पर हँफनी होती है और शरीर दिन दिन पीला पड़ता जाता है—आरम्भमें केवल ये दो ही लक्षण मिलते हैं। छातीका दर्द कष्ट प्रद होता है, यह स्तन-प्रदेश या कक्षकी ओर होता है अथवा कभी कभी उदरकी ओर भी जान पड़ता है। दर्द ऐसा होता है, मानों किसीने नश्तर चुभा दी हो और खांसने पर यह और भी बढ़ जाता है। इस अवस्थामें शब्द-

परिचायक द्वारा सुनने पर क्षत-स्थानमें एक शुष्क घर्षण शब्द (Dry Friction Rub) पाया जा सकता है। ज्वर उतना नहीं बढ़ता जितना कि फुफ्फुस प्रदाह (Pneumonia) में किन्तु १०२° वा १०३° तक पहुँच सकता है। ज्वर एक सप्ताहके बाद उतर जाता है। किन्तु इस समय भी अन्य रोग-चिह्नमें कोई परिवर्त्तन नहीं होने पाता (जैसा कि फुफ्फुस प्रदाहमें देखा जाता है) अथवा कई सप्ताह तक बना रह सकता है। रोग-ग्रस्त कक्षका तापक्रम रोग रहित कक्षके तापक्रम की अपेक्षा अधिक रहता है। इस रोगमें बहुत पहिलेसे खांसी होती है (किन्तु फुफ्फुस प्रदाह में ऐसा नहीं होता।) श्वासकष्ट आरम्भमें क्षत-स्थानमें दर्द और अधिक ज्वरके कारण होता है किन्तु बाद को फुफ्फुस पर दबाव पड़नेके—विशेष कर जब प्रदाह जनित द्रव शीघ्रतापूर्वक उत्पन्न होता जाता हो—कारण होता है। जब द्रव बहुत निर्गत होता है तो रोगी रोगग्रस्त वक्षकी करवट सोना चाहता है।

चिह्न

देखने पर क्षतस्थानमें वक्षस्थल कुछ स्थिर जान पड़ता है और यदि प्रदाह जनित द्रवका परिमाण अधिक हो गया हो तो यह स्थान कुछ बाहरकी ओर निकला हुआ जान पड़ता है। पर्शुकान्तर स्थान जो साधारणतः कुछ धंसे जान पड़ते हैं रुग्नावस्थामें पर्शुकाओंके साथ समतल हो जाते हैं। यदि क्षतस्थान दाहिनी ओर हुआ तो हृत्पिण्ड इतनी दूर खिसका दिया जाता है कि इसके शिखर का शब्द (Apex beat) कभी कभी बायें कक्षतल (Axilla) में सुना जाता है (साधारणतः यह ५ वें बायें पर्शुकान्तर स्थानमें सुना जाता है)। किन्तु यदि क्षतस्थान बांयी ओर हुआ तो हृदयका आवेग (Impulse) नहीं देखा जा सकता। इस ओर यदि अधिक द्रव एकत्रित हुआ तो वक्षस्थलके नीचे कुछ निकला सा जान पड़ता है।

स्पर्श—रोग-क्षत-स्थानकी गतिका अवरुद्ध होना जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस रीतिसे पर्शुकांतर स्थानोंके साधारण गर्त्तका मिट जाना, एवं हृदयावेगके निश्चित स्थान, जाने जा सकते हैं। माप लेने पर दोनों ओरके वक्षकी अर्धपरिधियोंमें (यदि एक ओरका कुछ स्थान बाहर निकल आया हो) ½ वा १ इञ्चका अन्तर हो सकता है।

विघातन—रोगके आरम्भमें सम्भवतः कोई परिवर्त्तन नहीं पाया जा सकता किन्तु ज्यों ज्यों प्रदाह द्रव एकत्रित होता जाता है त्यों त्यों साधारण झंकार या अनुनाद (Normal resonance) का लोप होता जाता है। इस रीतिसे द्रव वक्षस्थल में कितने ऊँचे तक आ गया है जाना जा सकता है। एक बात और भी ध्यान देने योग्य यह है कि जितनी दूर तक द्रव रहता है, उतनी दूर तक तो अनुनाद लुप्त रहता है किन्तु इसके ऊपर यह अनुनाद अपेक्षाकृत अधिक रहता है। इसे स्कोडाका अनुनाद (Skodaic Resonance) कहते हैं।

शब्द परिचायक-यन्त्र द्वारा सुने गये शब्द—आरम्भमें घर्षण शब्द सुने जाते हैं किन्तु जब द्रव इकट्ठा हो जाता है तो ये लुप्त हो जाते हैं। ये शब्द पुनः उस समय सुने जाते हैं जब फुफ्फुसावरणके दोनों तल द्रवके कम हो जानेके कारण आपस में रगड़ खाते हैं। यदि थोड़ा सा भी द्रव इकट्ठा हो जाता है तो श्वास शब्द ऐसे सुन पड़ते हैं मानों ये बहुत दूरसे निर्गत होते हों, तथा नलाकार (Tubular) होते हैं। कभी कभी तो इतने झंकारके साथ वृहद्राल्स (Loud Rale's) सुन पड़ते हैं कि एक बड़े गर्त्तका भ्रम हो जाता है। पर वास्तवमें गर्त्त नहीं रहता।

उच्चारण स्वर-झंकार (Vocal Resonance) बहुत क्षीण हो जाता है वा लुप्त हो जाता है और कभी कभी ऐसा जान पड़ता है मानो रोगी केवल नाकसे ही उच्चारण कर रहा हो।

हृदय—यह अपने स्थानसे बहुधा हट जाता है। इसका आवेग (Impulse) लुप्त हो जाता है और हृदयावरण (Pericardium) और फुफ्फुसावरणका घर्षण शब्द (Pleuro-pericardial friction) सुनाई पड़ता है।

रौञ्जन किरण-छायाचित्र—इसके द्वारा द्रवकी छाया दिखाई पड़ती है। यह द्रव यदि रोगी खड़ा भी रहे तो सदैव नीचेकी ओर ही (जैसे जल इत्यादि अन्य तरल बैठ जाते हों) नहीं रहता, बल्कि किसी किसी स्थानमें स्तंभाकार रूप धारण कर फुफ्फुसको दबानेकी चेष्टा करता है तथा स्थान स्थान पर सौत्रिक तंतुओं द्वारा आबद्ध रहता है।

गति—इस रोगकी गति बहुत ही परिवर्त्तनशील है। एकाध सप्ताहके उपरान्त ज्वर शान्त हो जाता है, खांसी और दर्द नहीं रहते और जो थोड़ा सा द्रव पैदा होता है वह भी सूख जाता है। जिन रोगियोंमें यह (द्रव) चौथी पर्शुका या इसके ऊपर तक पहुँच जाता है इसका सूखना कठिन हो जाता है। रोगी चिकित्साके लिये उस समय उपस्थित होता है जब (बहुधा दो या तीन सप्ताहों के बाद) द्रव बढ़ कर अक्षक (Clavicle) तक पहुँच जाता है। कभी कभी ज्वर १० से २० दिनों तक बना रहता है किन्तु साधारणतः ८-१० दिनों में उतर जाता है। यदि द्रवको इसी प्रकार (बिना निकाले हुए) छोड़ दिया जाय तो इसकी प्राकृतिक प्रवृत्ति सूख जानेकी होती है। द्रवके सूख जाने पर एक क्षीण घर्षण (Redux Crepitus)—शब्द-परीक्षक यन्त्र द्वारा सुननेसे—शब्द सुन पड़ता है। विकृत अनुनाद और राल्स तो ज्वर इत्यादि सभी लक्षणोंके शान्त होने पर भी सुने जाते हैं। फुफ्फुस में छेद होना और फुफ्फुस द्वारा द्रव पदार्थोंका निर्गत होना बहुत कम रोगियोंमें देखा जाता है।

भविष्य—(Prognosis) आसन्न भविष्य (Immediate Prognosis) तो बहुत अच्छा रहता है, किन्तु अन्तमें बारम्बार द्रवको निकाल देने पर भी किसी प्रकारका भैषज्य कुछ काम नहीं करता। यदि कोई फुफ्फुसावरण खूब भर गया हो एवं हृत्पिंड अपने स्थानसे हट गया हो तो अवस्था अच्छी नहीं समझनी चाहिये।

(ख) फुफ्फुसावरण-प्रदाह—जिसमें पीव तैय्यार होता है। (Purvlent Pleurisy or Empyema) कारण।—

फुफ्फुसावरणमें पीवकी उत्पत्ति दो प्रकारसे होती है।

१ भीतरसे—जैसे फुफ्फुस-प्रदाह कीटाणु वा अन्य कीटाणुओं द्वारा फुफ्फुस पर आक्रमण होता तदनन्तर फुफ्फुसके आक्रान्त केन्द्रसे अग्रसर हो कर फुफ्फुसावरणमें इन कीटाणुओंके प्रवेश कर जाने पर इस (फुफ्फुसावरण) में पीव तैय्यार होता है।

२ बाहरसे—जैसे किसी पर्शुकाके टूट जाने पर अथवा किसी प्रकार वक्षस्थलके बाहरी घावके भीतर तल तक पहुँच जाने पर पीवकी उत्पत्ति हो सकती है। यह रोग बहुधा बच्चोंमें ही अधिक देखा जाता है और लड़कियोंकी अपेक्षा लड़कों को ही अधिक होता है।

कीटाणु :—

फुफ्फुस प्रदाह कीटाणुओंकी संख्या अधिक रहती है। यक्ष्मा कीटाणु तथा पीव उत्पन्न करने वाले कुछ कीटाणु भी पाये जाते हैं।

अंगविकृति :—

जो तरल पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनके दो भाग हो सकते हैं। ऊपरका अंश साफ कुछ हरे, पीले रंगका एवं रक्त-रसके समान रहता है और नीचेका अंश गाढ़े पीवका होता है जिससे कभी कभी बहुत दुर्गन्ध आती है। फुफ्फुसावरण क्षत-स्थान पर मोटा और भूरे रंगका हो जाता है। अधिक दबाव पड़नेके कारण फुफ्फुस दब जाता है तथा फुफ्फुसावरणमें छेद हो जाता है।

लक्षण :—

ये प्रायः वही होते हैं जो पूर्वोक्त प्रकारके फुफ्फुसावरण-प्रदाहमें पाये जाते हैं। ये किसी दूसरे रोगके बीचमें ही उपस्थित हो जाते हैं अथवा इस प्रकारका प्रदाह पूर्वोक्त रोगका अनुगामी होता है। जब तक वक्षस्थलका एक अंश द्रवसे खूब भर नहीं जाता तब तक दर्द नहीं होता तथा खांसी और श्वासकष्ट भी बहुत कम होता है। आक्रमण के अन्य लक्षण उपस्थित रहते हैं। बच्चेकी कमज़ोरी धीरे धीरे बढ़ती जाती है। उसे पसीना आता है और अनियमित ज्वर बना रहता है। रक्त के श्वेताणु संख्यामें बहुत बढ़ जाते हैं।

चिह्न :—

ये भी बहुधा वही हैं जो पूर्वोक्त रोगमें देखे जाते हैं किन्तु कुछ अधिक चिह्न भी मिलते हैं। वक्षस्थलकी दोनों ओरकी अर्धपरिधियोंके मापमें अन्तर पड़ जाता है। पर्शुकांतर स्थान धंसे रहने के बदले कुछ बाहरकी ओर निकल पड़ते हैं। वक्षस्थल सूज जाता है। हृत्पिंड और यकृत अपने अपने स्थानसे हट जाते हैं।

यह रोग प्रायः असाध्य सा है और इसका अन्तिम परिणाम है रोगीकी मृत्यु। किन्तु कभी कभी इससे प्रकृत मोक्ष भी हो जाता है। इसके छोड़नेकी निम्न लिखित तीन रीतियां हैं—

१ द्रव पदार्थोंका सूख जाना। यह उस अवस्थामें सम्भव है जब पीवका परिमाण कम रहता है। वक्षस्थल कुछ धंस जाता है और दो तलोंके बीच कुछ पीव बन्द हो जाता है जिसमें बादको खटिक जम जाता है।

२ फुफ्फुसको फोड़ कर पीव बाहर निकल आता है। ऐसी अवस्थामें कभी तो रोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाती और वह रोग मुक्त हो जाता है।

३ वक्षस्थल को फोड़ कर पीव बाहर निकलता है। बहुत दिनोंके उपरान्त रोगी रोग मुक्त हो जाता है किन्तु कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है।

(२) हृदयावरणका यक्ष्मा

(Tuberculosis of the Pericardium)

इसके बहुत कम रोगी देखे जाते हैं। सर्वाङ्ग यक्ष्माके अंश-स्वरूप हृदयावरणके यक्ष्माका पाया जाना आश्चर्यकी बात नहीं है किन्तु प्राथमिक वा माध्यमिक रीतिसे अन्य अवयवोंको छोड़ केवल इसी झिल्लीका आक्रमण बहुधा कम देखा जाता है। चार प्रकारके रोगी मिलते हैं :—

(क) ऐसे रोगी जिनमें यह रोग गुप्त रूपसे वर्त्तमान रहता है एवं उनकी मृत्युके उपरान्त ही इसका पता चलता है। मृत्यु अन्य रोगोंसे अथवा जीर्ण फुफ्फुस यक्ष्मासे होती है।

(ख) दूसरे प्रकारके रोगियोंमें हृदय-रोगके लक्षण पाये जाते हैं।

(ग) तीसरे प्रकारके रोगियोंमें नूतन यक्ष्मा (सर्वाङ्ग वा मस्तिष्क-सम्बन्धी) के लक्षण पाये जाते हैं।

(घ) चौथे प्रकारके रोगियोंमें नूतन हृदयावरण प्रदाह (Acute Pericarditis) के लक्षण पाये जाते हैं एवं इनके यक्ष्मा द्वारा आक्रान्त होनेका संदेह तक नहीं होता।

तात्पर्य यह है यक्ष्माकृत हृदयावरण प्रदाहके रोगियोंके जीवनकालमें इस बातका एकदम पता नहीं चलता कि रोगीका हृदयावरण यक्ष्माग्रस्त है।

(३) परिविस्तृत कलाका यक्ष्मा

(Tuberculosis of the Peritoneum)

बहुसंख्यक, एवं जीर्ण-यक्ष्मामें इस झिल्लीमें भी भूरी भूरी यक्ष्मा गाँठोंका पाया जाना एक साधारण बात है। किन्तु इनके अतिरिक्त स्वतंत्र रूपसे भी निम्न लिखित रूपोंमें यह रोग पाया जाता है।

(क) जलोदर रूप—झिल्ली मोटी हो जाती है उसमें रक्त-संचार अधिक होता है और वह छोटी छोटी भूरे रङ्गकी, अर्धपारदर्शी (वा कभी बड़ी बड़ी जिनमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है) गांठों द्वारा ढंक जाती है । तरल-निष्कर्ष (Effusion) अत्यधिक होता है और इसमें पुआलके रङ्गका रक्त-रस मिलता है जो बहुधा गंदला रहता है और जिसमें कभी कभी रक्त भी मिश्रित रहता है। फाइब्रिनके छाले झिल्ली पर इधर उधर बिछे हुए पाये जाते हैं किन्तु अन्त्र किसी स्थान पर आपसमें जुड़ता नहीं। कभी कभी तरल पदार्थ झिल्लीकी एक थैलीमें बंध जाता है और उदरमें एक गोला सा बन कर स्थिर रहता है ।

(ख) फाइब्रिन युक्त रूप—अन्त्र स्थान स्थान पर आपसमें सट जाता है और इन संयुक्त स्थानों पर यक्ष्माके केन्द्र पाये जाते हैं। अन्त्र धारक झिल्ली सिकुड़ जाती है अस्तु; अन्त्र उदरके पश्चाद्भागमें और भी सट जाता है ।

(ग) ऐसा रूप जिसमें पीव बनता है। अन्त्रके ऐंठनोंके निकट यक्ष्माके केन्द्र (छोटे वा बड़े) मिलते हैं, उनके निम्न भागमें अधःक्षेपण होता है और पीव भी बनता है। यह पीव अन्त्रको छेद कर बाहर निकल आता है अथवा उदरको छेद कर (नाभीके निकट) बाहर निकलता है।

इन तीनों ही रूपोंमें अन्त्रसे निकल कर बृहदन्त्र कीटाणु (Colon Bacillus)—जो सदैव अन्त्रमें वर्त्तमान रहता है—यक्ष्मा केन्द्रोंमें प्रवेश कर अधिक उपद्रव मचा सकता है ।

रोग प्राथमिक एवं परिमित (Localised) हो सकता है । बच्चोंमें अन्त्रसे ही आक्रमण आरम्भ होता है। वयस्कोंमें भी परिविस्तृत-कला के जीर्ण यक्ष्माका सूत्रपात यहांसे ही होता है। स्त्रियोंमें यह रोग डिम्ब प्रनाली (Fallopian Tube) से आरम्भ होता है और पुरुषोंमें कभी कभी प्रोस्टेट वा वीर्य्याशय (Prostate or seminal vesicle) से आरम्भ होता है। इस झिल्लीके साथ साथ अन्य रसमयी कलायें भी रोग-ग्रस्त हो सकती हैं।

एक विशेष बात यह है कि बहुतसे उदर-सम्बन्धी रोग—जैसे यकृतका जीर्ण दाह इत्यादि—इस रोगके कारण-स्वरूप होते हैं। उदरमें किसी प्रकारका आघात, डिम्बग्रन्थिके गुल्म (Ovarian tumors) और स्खलितांत्रकी थैलियां (Hernial sacs) इसके कारण और केन्द्र बनती हैं।

पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां ही इस रोगसे अधिक ग्रस्त होती हैं।

किसी आयुके पुरुष वा स्त्रीको यह रोग पकड़ सकता है किन्तु बच्चों एवं २० से ४० की आयु वाले व्यक्तियोंमें अधिकतर देखा जाता है।

लक्षण :—

साधारण परिविस्तृत कला प्रदाहके लक्षणोंसे इसके लक्षण एकदम भिन्न होते हैं।

रोग बहुधा अप्रकट (Latent) रहता है तथा अन्त्रस्खलन (Hernia) किम्बा डिम्ब-ग्रन्थि-गुल्म की चिकित्साके लिये उदर खोलने पर इसका पता चलता है। किसी किसी रोगीमें अपेण्डिसाइटिस (Appendicitis), किसीमें पित्त-प्रनाली-प्रदाह और किसीमें अन्त्रावरोध (Intestinal obstruction) के नवीन लक्षण पाये जाते हैं। कभी कभी निरन्तर ज्वर, उदरमें पीड़ा और पेट फूलना इत्यादि लक्षणों के साथ रोगके धीरे धीरे आरम्भ होने पर त्रिदोष-ज्वरका भ्रम हो जाता है। किन्तु उदर स्पर्शमें कठोर जान पड़ता है (वात-पूरित नहीं) और उसे दबानेसे रोगीको कष्ट होता है। उसमें स्वतन्त्र रूपसे तरल पदार्थ वर्त्तमान रहते हैं, कोष्ठवद्धता होती है और वमन भी होता है। रोगीका शरीर बहुत शीघ्र क्षीण होता जाता है।

रोगके जीर्ण रूपमें कुछ शक्तिहीनता, उदरमें धीमी पीड़ा, कभी अतिसार और कभी कोष्ठवद्धता इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं। ये बीच बीचमें लुप्त

हो जाते हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानों रोग एकदम हट गया हो किन्तु पुनः अधिक पीड़ा और शक्ति-हीनता लक्षित होने लगती है तथा रोगीका शरीर क्षीण होता जाता है और उदर आगेकी ओर निकल आता है।

इस रोगमें जलोदर (Ascitis) बहुधा देखा जाता है किन्तु इसमें द्रवका परिमाण अधिक नहीं होता और कभी कभी वह रक्तमय होता है। रोग को (इस रूपमें) बहुसंख्यक कैन्सर (Acute milliary cancer—एक सांघातिक गुल्म), यकृत के जीर्ण प्रदाह (Cirrhosis of the liver) तथा साधारण जीर्ण परिविस्तृत कला प्रदाह (Chronic simple peritonitis) से पृथक् करना एक कठिन व्यापार है। ऐसी अवस्थामें टुवर्कुलिनकी सहायता ली जाती है।

पेट फूला रहता है, ठोकने पर उससे अनुनाद निकलता है। आरम्भमें ज्वरका आधिक्य होता है—तापक्रम १०३ वा १०४° तक पहुँच जाता है। किन्तु बहुतसे रोगियोंको ज्वर नहीं भी रहता तथा जीर्ण अवस्थाओंमें तापक्रम बहुत ही कम हो जाता है—संध्या समय ९७° और भोर को ९५.५° पर्य्यन्त। कभी त्वचा पर काले धब्बे (Pigmentation of the skin) पड़ जाते हैं जिससे अन्य रोगों का भ्रम हो जाता है। इस रोग की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि यह ठीक किसी गुल्मका अनुकरण करता है अथवा उसके साथ साथ वर्त्तमान रहता है—इस प्रकारके गुल्म ये हैं :—

(क) बृहदाच्छादक (omentum) कला-यह परिविस्तृत कलाका एक अंश मात्र है—के घुँघचाने एवं मुड़ने (Puckering and rolling) के कारण एक लम्बा गुल्म तैयार हो जाता है जो उदरके ऊर्ध्व अंशमें सटा रहता है। इस प्रकारके गुल्मकी उत्पत्ति कैन्सरमें तो होती है किन्तु बहुधा यक्ष्मा जनित परिविस्तृत कला प्रदाहमें भी देखी जाती है।

(ख) थैली (झिल्लियों के सटनेके कारण उत्पन्न हुई थैली) में बन्द प्रदाह जनित द्रव कभी २ गुल्मका आकार धारण कर लेते हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानो डिम्ब ग्रन्थिका गुल्म प्रादुर्भूत हुआ हो।

(ग) बहुत सी अवस्थाओंमें अन्त्रके सिकुड़ने एवं मोटे हो जानेके कारण एक गुल्म सा तैयार हो जाता है।

(घ) अन्त्रधारक कलामें स्थित लसीका ग्रंथियों के प्रदाहसे एक गुल्म उत्पन्न होता है।

इन अवस्थाओंका निदान बहुत ही कठिन है विशेष कर इस रोग को (क) और (ख) से पृथक् करनेमें बहुत ही कठिनता होती है तथा बहुधा भूल की सम्भावना होती है। कभी २ तो उदर खोलने पर यक्ष्माकृत परिविस्तृत-कला प्रदाह पाया जाता है। निदानमें दो बातें विशेष सहायता करती हैं—रोगीका पूर्व इतिहास और पुराने अन्यत्र यक्ष्मा-क्षतका प्रमाण पाया जाना। शारीरिक अवस्थासे कुछ पता नहीं चलता क्योंकि बहुत समय रोगी हृष्ट पुष्ट बने रहते हैं। अव्यवस्थित ज्वर, अन्त्रके कार्य्योंमें गोल माल (रेचन, वमन इत्यादि) एवं उदरकी तीक्ष्ण पीड़ा इत्यादि लक्षण यक्ष्माके द्योतक होते हैं।

स्थानीय चिह्नोंसे कुछ पता नहीं लगता प्रत्युत ये कभी कभी धोखा देते हैं।

रोटी के लिये खमीर बनाना

LEAVENING

[ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०]

आटे की रोटियाँ प्रायः सभी देशोंमें बनती हैं। हमारे देश की रोटियों में और अन्य लोगों की रोटियोंमें एक विशेष भेद है। हमारे यहाँ रोटी बनानेसे कुछ मिनट पूर्व ही आटा साना जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि हमारी रोटियां भारी होती हैं। यदि रोटियां बेल कर न बनायी जांय, प्रत्युत हाथसे ही बना ली जायँ और उनमें गेहूँ या जौके आटेके अतिरिक्त बेसन, ज्वार, बाजरा या मकई का आटा भी मिला हो, तो रोटी कितनी भारी बनती है, यह सभी जानते हैं। ग्रामीण व्यक्तियों की रोटियां और भी अधिक मोटी और भारी होती हैं। जिन व्यक्तियों को शारीरिक श्रम अधिक करना पड़ता है, वे इन मोटी रोटियों से बहुत ही अधिक लाभ उठाते हैं, पर ऐसे व्यक्तियों को जिनका सम्पूर्ण समय मस्तिष्कके काम करनेमें व्यतीत होता है और शारीरिक श्रम का अवसर नहीं प्राप्त होता, ऐसी रोटियां खाने पर कुपच हो जाता है। उनको तो पतली पतली रोटियां भी पचानी कठिन हो जाती हैं। बड़े घरोंमें जो स्त्री या लड़की जितनी ही पतली रोटी बना सकती है उतनी ही वह चतुर और कुशल समझी जाती है।

मुसलमानों की रोटियां हिन्दुओं की रोटियोंके समान भारी नहीं होतीं। देखनेमें चाहें ये बड़ी ही क्यों न हों, चाहें वे मोटी भी क्यों न दिखाई पड़ें पर हाथ में लेते ही पता चल जायगा कि वे कितनी हलकी हैं। पारस, अरब, मिश्र आदि देशोंमें बड़े बड़े रोट तैयार किये जाते हैं पर वे भी अधिक हलके होते हैं। विलायती ढंग की पाव रोटियों और डबल रोटियों को देखिये। वे कितनी हलकी होती हैं। उनके अन्दर स्पञ्जके समान छिद्रों का जाल बना रहता है। ये रोटियां हलकी होनेके कारण पाचक समझी जाती हैं। मोटी भारी रोटियां यदि भली प्रकार शारीरिक श्रम करके पचाली जावें तो उनके बराबर लाभप्रद और कोई रोटी हो ही नहीं सकती। पर यदि वे पच न सकें, तो उनके सेवनसे अन्न वृथा ही नष्ट हो जाता है और हमारा पक्वाशाय भी विकृत हो जाता है। ऐसी अवस्थामें हमें हलकी रोटियों की शरण लेनी पड़ती है। इस लेखमें हम यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि रासायनिक पदार्थोंके प्रयोगसे हलकी रोटियां किस प्रकार तैयार की जा सकती हैं।

आटाको हलका बनानेके लिए इसे गूंथ कर पानीके संसर्गमें कुछ घण्टोंके लिये रख छोड़ा जाता है। ऐसा करनेसे आटा का खमीर बन जाता है। यह प्रक्रिया आटामें स्थित कीटाणुओंके कारण होती है जो कर्बनद्विओषिद वायव्य उत्पन्न करते हैं। यह वायव्य ही आटेमें घुल जाता है और जब रोटी बना करके आटा गरम किया जाता है, यह कर्बन द्विओषिद बाहर निकलती है और इसके निकलनेके कारण ही रोटी भली प्रकार फूल कर हलकी और छिद्रमय हो जाती है।

यीस्ट नामक खमीराणुओं के प्रयोगसे आटे का खमीर बड़ी सरलतासे बन जाता है। विलायती देशोंमें इस विधि का बड़ा उपयोग किया जाता है। यीस्टके प्रयोगमें निम्न लाभ हैं:—(१) आटाके शर्करामय पदार्थों पर यीस्टके प्रयोगसे कर्बन द्विओषिद उत्पन्न होती है, इस प्रक्रियामें कोई बाहरी अनावश्यक पदार्थ मिलाने की आवश्यकता नहीं है। (२) यीस्ट द्वारा कर्बन द्विओषिद धीरे धीरे निकलती है, अतः आटा का खमीर बहुत ही अच्छा तैयार होता है। (३) यीस्ट और आटेके संयोगसे कुछ अन्य ऐसे पदार्थ भी बन जाते हैं जिनके कारण आटामें एक विशेष स्वाद आ जाता है। (४) यीस्ट द्वारा बनाये गये खमीर से जो रोटी बनाई जाती है वह बड़ी सरलतासे पच जाती है।

यीस्टके प्रयोगमें कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। (१) यीस्टका आटे पर धीरे धीरे प्रभाव होनेके कारण समय अधिक लग जाता है। (२) यह प्रक्रिया यदि अधिक देर तक होती रही तो आटे के खट्टे हो जाने या सड़ जाने की भी आशंका है। (३) इसके प्रयोगसे कुछ उड़ायी (उड़नशील) पदार्थ बन जाते हैं जो रोटीके सेकनेके समय उड़ जाते हैं, इस प्रकार बहुतसे आटे का नुक़सान हो जाता है।

यीस्ट की विधि तो बहुत प्राचीन है, पर अब रासायनिक पदार्थोंके प्रयोगसे भी खमीर बनाये जा सकते हैं। ऐसे रासायनिक पदार्थोंकी आवश्यकता होती है जो आटेके संसर्गसे कर्बन द्विओषिद दे सकें, क्योंकि खमीर बनना न बनना इसी गैस पर निर्भर है।

यह सभी जानते हैं कि यदि सैन्धक-अर्ध कर्बनेत पर किसी अम्ल या आम्लिक लवण का प्रभाव डाला जाय तो कर्बन द्विओषिद उत्पन्न होती है। प्रक्रियामें उस अम्लका सैन्धक लवण बन जायगा। यह लवण आटामें ही रह जायगा, अतः इस बात को ध्यानमें रखना चाहिये। इस विधिके प्रयोगमें ये लाभ कहे जा सकते हैं—

(१) समय कम लगता है। थोड़ी ही देरमें इतना काफी कर्बन द्विओषिद निकलता है कि गुंथा हुआ आटा स्पञ्जके समान छेददार होता है। यीस्ट द्वारा जो काम घंटोंमें होता वह रासायनिक विधिसे मिनटोंमें हो जाता है। (२) इस प्रक्रिया में आटाका कुछ भी नुक़सान नहीं होता क्योंकि कर्बनद्विओषिद सैन्धक अर्ध कर्बनेतमें से निकलती है। (३) रासायनिक पदार्थोंके उपयोगसे एक बड़ा लाभ यह भी है कि इन पदार्थों की मात्रा घटा बढ़ा कर नपा तुला जितना कर्बन द्विओषिद हम प्राप्त करना चाहें, पा सकते हैं, क्योंकि यीस्टके समान यह अनिश्चित प्रक्रिया नहीं है।

रासायनिक पदार्थोंके प्रयोगमें जहाँ ये लाभ हैं वहां कुछ हानियां भी हैं। (१) रासायनिक पदार्थोंके उपयोग से जो खमीर बनता है वह यीस्ट द्वारा बनाये गये खमीरके समान स्वादिष्ट नहीं होता है। (२) यह उतना पाचक भी नहीं है। (३) प्रक्रिया द्वारा उपलब्ध अन्य पदार्थ आटेमें में ही रह जाते हैं। इन पदार्थों का भोजन की दृष्टिसे कुछ भी मूल्य नहीं है, कभी कभी ये रोटीके पचानेमें बाधा भी डालते हैं।

खमीर बनानेमें साधारणतः निम्न विधि का बहुत व्यवहार किया जाता था। आटामें थोड़ा सा मट्ठा डाल कर इसमें सलेरेटस अर्थात् सैन्धक अर्ध कर्बनेत लवण मिलाया जाता है। विशेष प्रकारके कीटाणुओं की सहायतासे दूध की शर्करा को दुग्धिकाम्लमें परिणत कर लिया जाता है जिससे दूधका खट्टा मट्ठा बन जाता है। दुग्धिकाम्ल की यह मात्रा बहुत ही कम होती है, क्योंकि दुग्धिकाम्ल स्वयं दूध का संरक्षक है, अर्थात् यदि दूधमें दुग्धिकाम्ल की उपयुक्त मात्रा मिला दी जाय तो इसका कीटाणुओं द्वारा विभाजन होना (खट्टा होना) बन्द हो जावेगा। ०·९ प्रतिशत दुग्धिकाम्ल बन जाने पर आगे की प्रक्रिया बन्द हो जाती है। इस प्रकार इस विधि द्वारा ०·४-०·५ प्रतिशतसे अधिक अम्लिकता नहीं उत्पन्न होने पाती। यह अम्ल सलेरेटस लवणके साथ कर्बन द्विओषिद देता है जिससे आटा का खमीर बन जाता है। इस विधिमें सबसे बड़ी हानि यह है कि सलेरेटस की अधिकमात्रा काममें लायी जाती है, और बचा हुआ सलेरेटस गरम होने पर सैन्धक कर्बनेतमें परिणत हो जाता है जिससे स्वादमें अन्तर पड़ जाता है।

पहले सलेरेटसमें पांशुज अर्ध कर्बनेत का व्यवहार किया जाता था पर अब सैन्धक अर्ध कर्बनेत का उपयोग किया जाता है क्योंकि यह अधिक सस्ता होता है।

कोई ६० वर्ष हुए प्रोफेसर लीबिग ने इस विषय पर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करना आरम्भ किया। उन्होंने उदहरिकाम्ल और सैन्धक अर्ध-कर्बनेत का उपयोग बतलाया। इन दोनोंमें प्रक्रिया निम्न प्रकार होगी—

$$\text{उह} + \text{सै उ क ओ}_{३} = \text{सै ह} + \text{उ}_{२}\text{ ओ} + \text{क ओ}_{२}$$

इस प्रकार कर्बन द्विओषिदके साथ साथ सैन्धक हरिद अर्थात् साधारण नमक भी बनेगा जिससे किसी प्रकार की हानि की आशंका नहीं है। इस विधिमें कोई आपत्ति थी, तो यह कि उदहरिकाम्ल द्रव पदार्थ है और इसमें कभी कभी अनुपयोगी अशुद्धियां भी रहती हैं। व्यापारिक सफलताके लिये तो ठोस चूर्णों की आवश्यकता है जिसका सभी आसानीसे व्यवहार कर सकें।

प्रोफेसर होसफोर्ड ने एक चूर्ण बनाया जिसमें अम्लके स्थान पर खटिक उदजन स्फुरेतका उपयोग किया गया। इसके बाद टार्टार-का क्रीम अर्थात् पांशुज उदजन इमलेत और इमलिकाम्लके अन्य लवणोंका उपयोग किया जाने लगा।

आजकल बाजारमें जो चूर्ण बिकने आते हैं उनमें इमलेत, खटिक स्फुरेत, सैन्धक स्फुरेत या फिटकरी-स्फुरेत का व्यवहार किया जाता है।

इमलेत चूर्णोंमें दो भाग टार्टार क्रीम और १ भाग सैन्धक अर्ध कर्बनेत होता है। इसमें पांचवा भाग नशास्ता का भी मिला दिया जाता है। कभी कभी टार्टार क्रीमके स्थानमें इमलिकाम्ल का भी प्रयोग किया जाता है।

खटिक स्फुरेत चूर्णोंमें घुलनशील अम्लिक खटिक स्फुरेतोंका व्यवहार किया जाता है जिसमें सैन्धक अर्ध कर्बनेत और नशास्ता मिला दिया जाता है।

सैन्धक स्फुरेत चूर्णोंमें सैन्धक द्विउदजन स्फुरेत, नशास्ता और सैन्धक अर्ध कर्बनेत का व्यवहार किया जाता है।

फिटकरी स्फुरेत चूर्णोंमें सैन्धक स्फट गन्धेत (S. A. S.), खटिक उदजन स्फुरेत, सैन्धक अर्ध कर्बनेत और नशास्ता मिलाया जाता है। सैन्धक स्फट गन्धेत अनिश्चित पदार्थ है अतः इसकी ठीक मात्रा नहीं निकाली जा सकती है। इसके स्थानमें अमोनियम स्फट गन्धेत का व्यवहार भी किया जासकता है।

इन चूर्णोंमें से कौनसे चूर्ण अधिक महत्व के हैं, यह कहना कठिन है। इनकी वास्तविक उपयोगिता पर इस दृष्टिसे विचार करना आवश्यक है कि चूर्णमें मिले हुए पदार्थ प्रक्रिया समाप्त होने पर क्या पदार्थ शेष छोड़ते हैं। ये अवशिष्ट पदार्थ कितनी मात्रा में हैं? वे हानिकर हैं, या लाभप्रद। यह भी देखना आवश्यक है कि इन चूर्णों से कितनी कर्बन द्विओषिद उत्पन्न होती है और यह गैस धीरे धीरे निकलती है, या रोटी सेंकनेके तापक्रम पर ही पूर्णतया निकलती है? एक बात और भी महत्व की है, वह यह कि ये चूर्ण दुकानदारके यहां या चौकेमें रखे रखे विभाजित या खराब तो नहीं हो जाते हैं। यह कहने की तो आवश्यकता नहीं है कि व्यापारमें इन चूर्णोंके दाम पर भी बहुत ध्यान रखना पड़ता है। सभी लोग अच्छे पर सस्ते चूर्ण चाहते हैं।

अब हम इन चूर्णों की रासायनिक प्रक्रियायों को दिखलाने की चेष्टा करेंगे।

इमलेत चूर्ण—इसमें पांशुज उदजन इमलेत और सैन्धक अर्ध कर्बनेत का व्यवहार किया जाता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार होती है।

$$\text{पां उ क}_{४}\text{ उ}_{४}\text{ ओ}_{६} + \text{सै उ क ओ}_{३} + ३\text{ उ}_{२}\text{ ओ}$$
$$= \text{सै पां क}_{४}\text{ उ}_{४}\text{ ओ}_{६},\ ४\text{ उ}_{२}\text{ ओ} + \text{क ओ}_{२}$$

इसके चूर्णकी साधारणतः ३ ग्रामकी टिकियां मिलती हैं जिनमें २० प्रतिशत नशास्ता होता है। इनसे ०.४ ग्राम कर्बन द्विओषिद निकलता है जिसका ०°श पर २०० घ. श म. और १००° श २७३ घ. श म. आयतन होता है। रोटी लगभग

१००°श तापक्रम पर सेंकी जाती है। प्रक्रियामें २.५ ग्रामके लगभग रोशील लवण अर्थात् सैन्धक पांशुज इमलेत बनता है।

खटिक स्फुरेत चूर्ण—इसमें खटिक उदजन स्फुरेत और सैन्धक अर्धक कर्बनेत का व्यवहार किया जाता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

$$\text{ख उ}_{४}(\text{स्फु ओ}_{४})_{२} + \text{२ सै उ क ओ}_{३} + \text{१० उ}_{२}\text{ओ}$$
$$= \text{ख उ स्फु ओ}_{४} + \text{सै}_{२}\text{ उ स्फु ओ}_{४}.\text{१२ उ}_{२}\text{ओ} + \text{२ क ओ}_{२}$$

इस प्रक्रियामें ख उ स्फु ओ$_{४}$ उत्पन्न होता है जो जलमें अनघुल है पर अम्लकी विद्यमानतामें यह घुल जाता है।

इसके चूर्ण की एक टिक्की का भार ४·४ ग्राम होता है। जिसमें २५°/॰ नशास्ता मिला होता है। इससे ०·७२ ग्राम कर्बन द्विओषिद निकलता है जिसका ०° श पर ३५५ घ. शम. और चूल्हेमें सेंकनेके उच्चतम तापक्रम १००° पर ४०५ घ. श म. आयतन होता है। इस प्रक्रियामें ४·०५ ग्राम स्फुरेत अवशिष्ट रहता है।

सैन्धक स्फुरेत चूर्ण—इस चूर्ण में सैन्धक स्फुरेत और सैन्धक अर्ध कर्बनेतका व्यवहार किया जाता है। प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

$$\text{सै उ क ओ}_{३} + \text{सै उ}_{२}\text{ स्फु ओ}_{४} + \text{११ उ}_{२}\text{ ओ}$$
$$= \text{सै}_{२}\text{ उ स्फु ओ}_{४}\cdot\text{१२ उ}_{२}\text{ ओ} + \text{क ओ}_{२}$$

इसमें ३२ प्रतिशत नशास्ता मिलाया जाता है। इस चूर्ण की एक टिकिया ३·७५ ग्राम की बनायी जाती है जिसमें ३२ प्रतिशत (१·२५ ग्राम) नशास्ता होता है। इससे ०·५४५ ग्राम कर्बन द्विओषिद निकलती है जिसका ०°श पर २७४ घ. श म. और १००° श पर ३५४ घ. श म. आयतन है। इसकी प्रक्रियामें घुलनशील सैन्धक स्फुरेत अवशिष्ट रहता है जिसकी मात्रा एक टिकियाके उपयोग करने पर ४·४१ ग्राम होती है।

स्फट स्फुरेत चूर्ण—इसमें सैन्धक स्फट गन्धेत, खटिक उदजन स्फुरेत और सैन्धक अर्ध कर्बनेत का व्यवहार किया जाता है। प्रक्रिया की आसानी के लिए हम सैन्धक स्फट गन्धेतके स्थानमें अमोनियम स्फट गन्धेत का व्यवहार करेंगे। प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

$$(\text{नो उ}_{४})_{२}\text{ स्फ}_{२}(\text{ग ओ}_{४})_{४} + \text{ख उ}_{४}(\text{स्फु ओ}_{४})_{२} + \text{४ सै उ क ओ}_{३} + \text{८ उ}_{२}\text{ ओ}$$
$$= \text{स्फ}_{२}(\text{स्फु ओ}_{४})_{२} + \text{ख ग ओ}_{४}.\text{२ उ}_{२}\text{ओ} + (\text{नो उ}_{४})_{२}\text{ ग ओ}_{४} + \text{२ सै}_{२}\text{ ग ओ}_{४}.\text{१० उ}_{२}\text{ ओ} + \text{४ क ओ}_{२}$$

इस चूर्ण की एक टिकिया का भार १·८५ ग्राम होता है जिसमें तिहाई (३३⅓ प्रतिशत) नशास्ता होता है। इससे ०·३३ ग्राम कर्बन द्विओषिद निकलती है जिसका ०°श पर १६० घ. शम. और १००° श पर २१८ घ. शम. आयतन होता है। इसका अवशिष्टांश २.१ ग्राम है जिसका ३६·६ प्रतिशत अंश अनघुल है।

इन चूर्णोंके पदार्थोंको संक्षेपसे इस प्रकार लिखा जा सकता है—

इमलेत चूर्ण—

टार्टार क्रीम	१·६५	ग्राम
सैन्धक अर्ध कर्बनेत	०·७५	ग्राम
नशास्ता	०·६०	ग्राम
१ टिकिया =	३·००	ग्राम

खटिक स्फुरेत चूर्ण—

खटिक उदजन स्फुरेत	१·९२	ग्राम
सैन्धक अर्ध कर्बनेत	१·३८	ग्राम
नशास्ता	१·१०	ग्राम
१ टिकिया =	४·४०	ग्राम

सैन्धक स्फुरेत चूर्ण—

सैन्धक उदजन स्फुरेत	१·४७	ग्राम
सैन्धक अर्ध कर्बनेत	१·०३	ग्राम
नशास्ता	१·२५	ग्राम
१ टिकिया =	३·७५	ग्राम

फिटकरी स्फुरेत चूर्ण—

अमोनियम स्फट गन्धेत	०.८६	ग्राम
खटिक उद्‌जन स्फुरेत	०.४२	ग्राम
सैन्धक-अर्ध कर्बनेत	०.६२	ग्राम
नशास्ता	०.९५	ग्राम
१ टिकिया =	२.८५	ग्राम

ऊपर जो अंक दिये गये हैं वे अनार्द्र पदार्थोंके हैं जिनमें स्फटिकीकरणका जल विद्यमान नहीं है।

इमलेत चूर्ण यद्यपि तेज़ पड़ते हैं पर वे खराब नहीं होने पाते अतः पुराने पड़ जाने पर भी उपयोग किया जा सकता है। ये घर पर ही आसानीसे बनाये जा सकते हैं। इनमें यदि नशास्ता के स्थानमें दुग्धशर्करा मिला दी जाय तो ये और भी अधिक स्थायी हो जाते हैं, यद्यपि कुछ मूल्य बढ़ जाता है।

खटिक स्फुरेत और फिटकरी स्फुरेत चूर्ण सस्ते होते हैं। पर ये बहुत दिनों नहीं रखे जा सकते। इनकी प्रक्रियासे जो अवशेष रहता है वह अधिकांशतः पानीमें अनुघुल है। इन्हें घर पर बनाना भी आसान नहीं है। सैन्धक स्फुरेत चूर्ण अवश्य सस्ते, अच्छे और हानिरहित होते हैं।

फिटकरी स्फुरेतोंके चूर्णमें स्फटम् धातुके लवण होते हैं जो बहुतों की सम्मतिमें स्वास्थ्य के लिये हानिकर समझे जाते थे। पर अब लोगों का विचार है कि जिस मात्रामें इनका उपयोग किया जाता है, वह इतनी हानिकार नहीं है। पर एक बात है, वह यह कि इस फिटकारी चूर्ण की प्रतिक्रियामें सैन्धक गन्धेत उत्पन्न होता है जो अधिक मात्रामें संचित हो जाने पर रेचक गुण धारण कर लेता है अतः इसका उपयोग हानिकर हो जाता है।

इन चूर्णों के अतिरिक्त अमोनियम कर्बनेत का भी व्यवहार किया जाता है। यह बहुधा यीस्टके साथ साथ डाला जाता है। इसे रोटी बहुत बड़ी और हलकी बन सकती है। इसमें एक गुण यह है कि योस्ट द्वारा उत्पन्न अम्ल को शिथिल कर देता है, इस प्रकार रोटी का खट्टापन दूर हो जाता है। दूसरा लाभ इससे यह भी है कि इसकी कर्बनद्विओषिद तब तक नहीं निकलती जब तक इसकी रोटी आगमें सेंकी न जाय। उच्चतापक्रम पर ही अमोनियम कर्बनेत निम्न प्रकार विभाजित हो जाता है—

$$(\text{नो उ}_4)_2 \text{ क ओ}_3 = 2 \text{ नो उ}_3 + \text{क ओ}_2 + \text{उ}_2 \text{ ओ}$$

पर इसका व्यवहार बहुत ही थोड़ी मात्रामें करना चाहिये नहीं तो रोटीमें अमोनिया का स्वाद आने लगेगा।

त्रपिन एवम् कर्पूर

द्वि-चाक्रिक त्रपिन

[ले० श्री ब्रजबिहारी लाल दीक्षित एम. एस-सी.]

त्रपिन वनस्पति विभागकी भिन्न २ जड़ी बूटियोंके ऐसे गन्धांश हैं जिनका सूत्र केवल $क_{१०} उ_{१६}$ है। उनमेंसे द्विचाक्रिक त्रपिन यथा नाम तथा गुणके अनुसार ऐसे सदस्य हैं जिनमें यह कर्बन परमाणु इस प्रकार प्रबन्धित होते हैं कि उनमेंसे दो चक्र उत्पन्न होजावें। एक चक्र तो वही साधारण बहु-परिचित बानजावीन चक्र होता है और दूसरा चक्र इस चक्रमेंके किन्हीं दो परमाणुओंको एक दूसरेसे जोड़ देनेसे उत्पन्न होजाता है। इस प्रकार से सभी कर्बन एवम् उदजन परमाणुओंके प्रबन्ध होजाने पर केवल एक ही कर्बन द्वि बन्ध लगाना पड़ता है। इस समुदायके अधिक सदस्यगण चीड़ इत्यादिकोंसे ही प्राप्त होते हैं और चीरीण ही इनका मुख्य प्रतिनिधि है। किन्तु इनके अनेक समरूप होते हैं। इनमें चीरीण तो प्रकृत में बहुत विस्तृत रूप से पाई जाती है। बहुधा सभी सुगन्धित उड्डायी तैलों में इसका कुछ न कुछ अंश अवश्य होता है और चीड़ से प्राप्त अनेक गोन्दोय पदार्थोंमें तो इसका अंश बहुत कुछ होता है और इन पदार्थों के स्रवणसे यह तारपीन के तेलके रूपमें प्राप्त होता है। दोनों प्रकाश-समरूपक भी प्रकृति में ही पाये जाते हैं। दक्षिण-भ्रामक रूपक तो अमरीका, रूस, जर्मनी, स्वेडन इत्यादि देशों से प्राप्त तारपीन तेल में होता है और वाम भ्रामक रूपक इंगलैण्ड एवम् फ्रांस देश के तारपीन तैल में अधिकांश होता है। बहुधा उड्डायी सुगन्धित तैलों में प्रथम रूप ही अधिक मात्रा में होता है। तारपीन के आंशिक स्रवण से अशुद्ध चीरीण प्राप्त हो जाती है। पश्चात् यह नोषोसील हरिद द्वारा नोषेसो हरिद में परिवर्तित कर के रवेदार शुद्ध स्वरूप में प्राप्त कर लिया जाता है। फिर यौगिक को नीलिन् के साथ उबालने से विशुद्ध चीरीण प्राप्त कर ली जाती है। इसी से यह भी स्पष्ट है कि चीरीण में एक द्विबन्ध है जिससे एक अणु नोषोसील हरिद का योग होने से चीरीण नोषोसो हरिद उत्पन्न होता है!
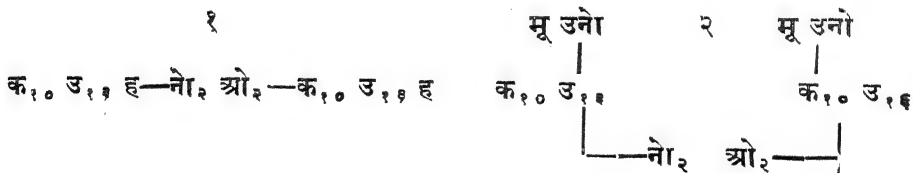
बायर साहेबके सिद्धान्तानुसार इसका द्वि अणुक सूत्र होता है। इस प्रकार इस यौगि[illegible]से अनेक नोषोलामिद प्राप्त किए जा सकते हैं जिनमें हरिन परमाणु किसी भी प्राथमिक भस्मिकमूल व[illegible] स्थापित कर दिया गया हो जैसा कि सूत्र २ में प्रदर्शित कर दिया है। नोषोसो हरिद से सैन्धकम् एवम् मद्य द्वारा उदहरि काम्ल बहिष्कृत करके नोषोसो चीरीण प्राप्त की जा सकती है और यह $क_{१०} उ_{१५}$-नो ओ बड़ी सरलता से अवकृत की जाने पर चीरिल अमिन $क_{१०} उ_{१५} नो उ_{२}$ देती है। यह अपने उदहरिकाम्ल के लवण रूप में स्रवित किए जाने पर बड़ा ही शीघ्रता से पर-श्यामिन देती है। इस द्विबन्ध पर उदहरिकाम्ल एवम् उदअरुणिकाम्ल भी योग किया जा सकता है पर इन यौगिकों में से उदहरिकाम्ल एवम् उदअरुणिकाम्ल का अणु निकाल देने से वही प्रारम्भिक पदार्थ नहीं प्राप्त किया जा सकता है वरन् एक नवीन त्रपिन ही—कर्पूरीन—प्राप्त होती है। इस कर्पूरीन का कर्पूर से

अत्यन्त ही घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि कीतोन कर्पूर अवकृत किए जाने पर एक मद्य बोर्न्योल में परिवर्त्तित हो जाता है और इसके ऊपर स्फुर पंचहरिद के प्रभाव से जो बोर्निल हरिद प्राप्त होता है, वह वही होता है जो कि चीरीण पर शुष्क उदजन हरिद के प्रभाव से प्राप्त होता है। अन्तिम क्रिया में एक समरूपक परिवर्तन अवश्य हो जाता है किन्तु इसका विवरण आगे आवेगा। इस प्रकार—

क$_{१०}$ उ$_{१६}$ चीरीण
↓
क$_{१०}$ उ$_{१६}$ ओ ⟶ क$_{१०}$ उ$_{१७}$ ओ उ ⟶ क$_{१०}$ उ$_{१७}$ ह
कर्पूर　　　　बोर्न्योल　　　　बोर्न्योल हरिद
↓
क$_{१०}$ उ$_{१६}$ कर्पुरीन
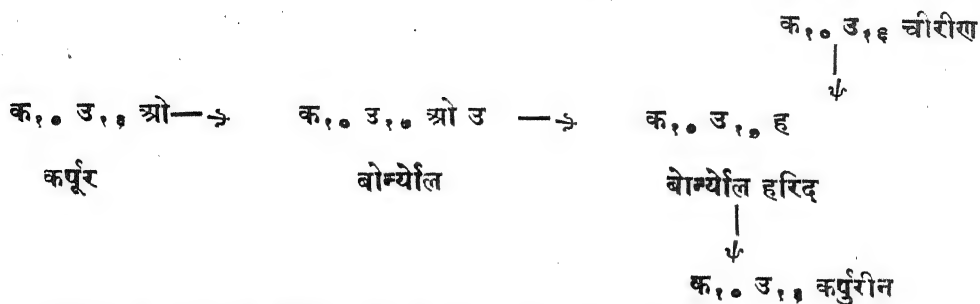
चीरीण का संगठन निर्णय करने के लिए भी उसी कार्य्य कुशल ओषदीकरणकी विधि की शरण जाना पड़ता है। मुक्त ओषजन एवम् जल के प्रभाव से चीरीण उदेत प्राप्त होता है जो उदहरिकाम्ल के साथ किञ्चिदुमात्र भी तपाए जाने से चीरोल में परिवर्त्तित होजाता है जिसका सूत्र क$_{१०}$ उ$_{१६}$ ओ होता है। यह दोनों ही यौगिक शिथिल पदार्थ हैं और उनका स्वरूप भी अभी उल्लिखित किया जावेगा। परमांगनेत द्वारा इससे भी पूर्ण ओषदीकरण हो सकता है। बायर साहेब ने इस प्रकार प्रथम तो क—चीरोनिक अम्ल और चीरीनिल पिपीलिकाम्ल नामके दो अम्ल प्राप्त किए। पहला तो एक कीतोनिकअम्ल है जिसमें केवल एक ही कार्बोषिल मूल होता है पर दूसरेमें दो कार्बोषिल मूलके ही साथ कीतोनिक मूल भी होता है। पहिलेका सूत्र क$_{१०}$ उ$_{१०}$ ओ$_{३}$ और दूसरी का क$_{१०}$ उ$_{१४}$ उ$_{५}$ है। आगे ओषदीकरण से दोनों ही से द्विकर्बोषिल मूल वाला चीरिक अम्ल ही प्राप्त होता है जिसका सूत्र क$_{८}$ उ$_{१२}$ (क ओ-ओ उ)$_{२}$ है, इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि एक में तो द्वारील कीतोनिक मूल—कओ—क उ$_{३}$ और दूसरेमें क—कीतोनिक अम्लिक मूल—क ओ—क ओ ओ उ, होता है। यह एक अत्यन्त ही स्थायी पदार्थ है। प्रथम अरुणीकृत करनेसे और तत्पश्चात् उदविश्लेषण द्वारा एक उदौषिल अम्ल प्राप्त करके इसको निम्नश्रेणी वाले निश्चीरिक अम्ल, क$_{७}$ उ$_{१०}$ (क ओ ओ उ)$_{२}$ में ओषदीकृत किया जा सकता है। अब यह स्पष्ट ही है कि यही अम्ल सारी समस्या की कुंजी है और इसका स्वरूप बायर साहेब चाक्रिक नवनीतेन सम्बन्धी समझते हैं जैसा कि निम्नांकित सूत्रमें दिया गया है
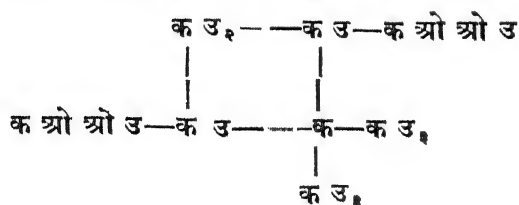
अब जिस प्रकार कैरोनसे कैरोनिक अम्ल प्राप्त कर लेनेसे यह प्रमाणित किया जा चुका है कि उसमें चाक्रिक अग्रेन चक्र होता है उसी प्रकार निश्चीरिक अम्ल के प्राप्त होनेसे चीरीलमें भी एक

चाक्रिक नवनीतेन चक्र का आभास होता है। क—चीरोनिक एवम् चीरोलपिपीलिकाम्ल दोनों ही बड़े अस्थायी यौगिक हैं और तप्त हलके गन्धकाम्ल द्वारा ही समरूपकोंमें परिवर्त्तित होजाते हैं। इस क्रियाके लिए बायर साहबकी यही धारणा है कि इस चक्रका विच्छेद होजाता है। चीरोनिक अम्ल आगे ओषदीकरणसे सहत्रपीनिलिक अम्लका दारील कीतोन देता है और यही पदार्थ त्रिन्योलके ओषदीकरणसे भी प्राप्त किया जा चुका है। चीरीलपिपीलिक अम्ल से सहत्रपिनिलिकपिपीलिकाम्ल प्राप्त होता है जिससे ओषदीकरण द्वारा ज्ञात संगठनके सहत्रपिनिलिक अम्ल प्राप्त किए जा सकते हैं। इन सब परिवर्तनोंको भलीभांति समझनेके लिए चीरीणका यदि यह स्वरूप अनुमान कर लिया जावे तो कुछ अधिक अनुचित न होगा—

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि क—चीरोनिक अम्ल चक्रांतर्गत द्विबन्धके विच्छेदसे ही प्राप्त होती है। इस अम्ल पर गन्धकाम्ल द्वारा जो कीतोन प्राप्त होता है वह भी ऊपर ही दिया गया है। चीरिल पिपीलिकाम्लसे गन्धकाम्ल द्वारा प्राप्त यौगिक और उनका ओषदीकरण इस प्रकार होगा—

इस प्रकार यद्यपि चीरीणके इस अनुमानित रूपसे प्रायः सभी परिवर्त्तन भली भाँति दर्शाए जा सकते थे तथापि प्रतिक्रियाओं की एक अन्य ही श्रेणी द्वारा इसका रूप पूर्णतः भिन्न ही प्रतीत होता है। परमांगनेतसे ओषदीकरणसे प्राप्त सम्पृक्त कीतोनिक अम्ल, चीरोनिक अम्ल, रागिकअम्लके मिश्रण द्वारा ओषदीकृत किया जाता है। इस प्रकार एक द्विभस्मिक कीतोनिकअम्ल, समकीतो-कर्पूरिकअम्ल $क_{१०} उ_{१६} उ_{४}$, सम कर्पूरोनिक अम्ल $क_{८} उ_{१२} उ_{४}$ एवम् टेरेबिकअम्ल $क_{७} उ_{१०} ओ_{४}$ प्राप्त होता है। किन्तु क्षारिक परमांगनेतसे ही और आगे ओषदीकरणसे द्विदारील त्रिकारवैलिलिक अम्ल प्राप्त होता है। समकीतो कर्पूरिकअम्लका संगठन कुछ तो उसके रसायनिक गुणोंसे और विशेषतः उसके कर्पूरोनिकअम्लसे घनिष्ठ सम्बन्धसे ज्ञात ही है। यह सम कर्पूरोनिकअम्ल उसके ओषदीकरणसे प्राप्त होता है और इसका संगठन परकिन साहेब ने पूर्णतः प्रमाणित भी कर दिया है। दोनोंका रूप इस प्रकार होगा—

समकीतो कर्पूरिक अम्ल

सम कर्पूरोनिक अम्ल

पूर्व अनुमानित रूपमें तो किसी प्रकार भी कर्बनबन्धोंके विच्छेदसे इस संगठनके यौगिक प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है और इसी कारणसे यह अनुमान करना पड़ता है कि ओषदीकरण की क्रियामें क—चीरोनिकअम्लके अणुमें एक आंतरिक प्रबन्ध-परिवर्त्तन इस प्रकार हो जाता है।
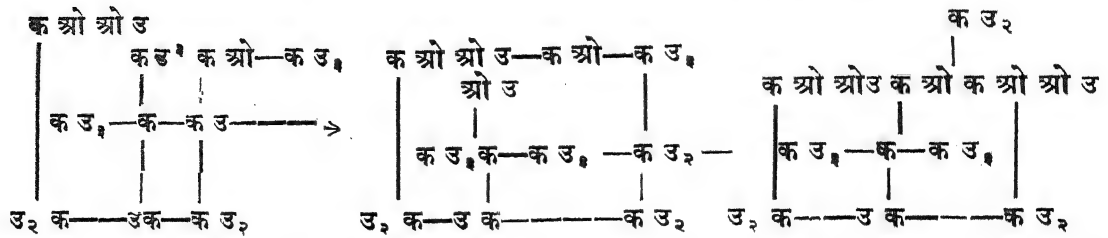
एक और कठिनता जो इस संगठनके अनुमानसे सामने आती है वह यह है कि चीरोनिकअम्ल क—कर्पूरोलीनिकअम्लसे भी प्राप्त किया जाता है। अब इस अन्तिम यौगिकका संगठन निर्विवाद रूपसे ज्ञात है (आगे उल्लिखित) और उससे इस संगठनकी कीरोनिकअम्ल प्राप्त करनेके लिए एक अत्यन्त ही असाधारण क्रियाकी शरण लेनी पड़ती है जो मधुकीतोन—मधुकीतोलीन (Pinacone-Pinacoline) परिवर्त्तनके नामसे प्रख्यात है। इसमें द्वि-तृतीय मधुरोल जिन्हें मधुकीतोन कहते हैं बड़ी ही सरलता से कीतोनोंमें, मधुकीतोलीनमें बदल जाते हैं। इसमें बस दोनों ओषदिल मूलोंमें से एक जलाणु निकल जाता है और फिर एक दारिल मूल एक कर्बनसे दूसरे कर्बन पर चला जाता है और ओषजन चाक्रिक रूपसे कीतोनिक रूपमें आ जाता है। सरलतम द्वि-तृतीय मधुरोल चतुर् दारील मधुरोल है। इसे मधुकीतोन भी कहते हैं और उसमें यह परिवर्त्तन इस प्रकार होता है:—
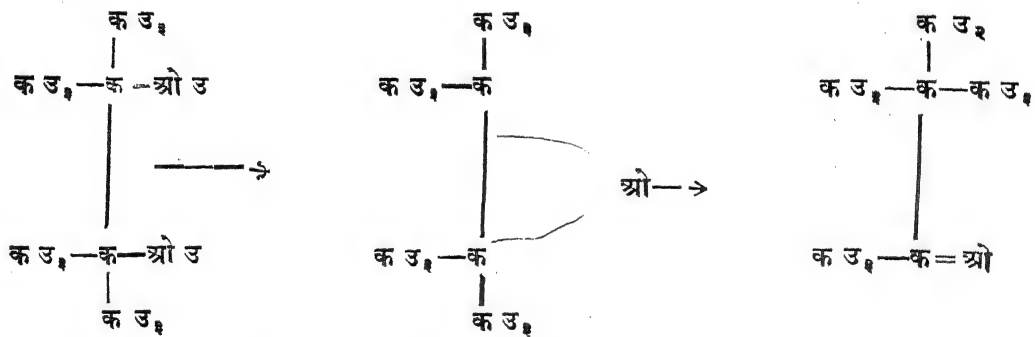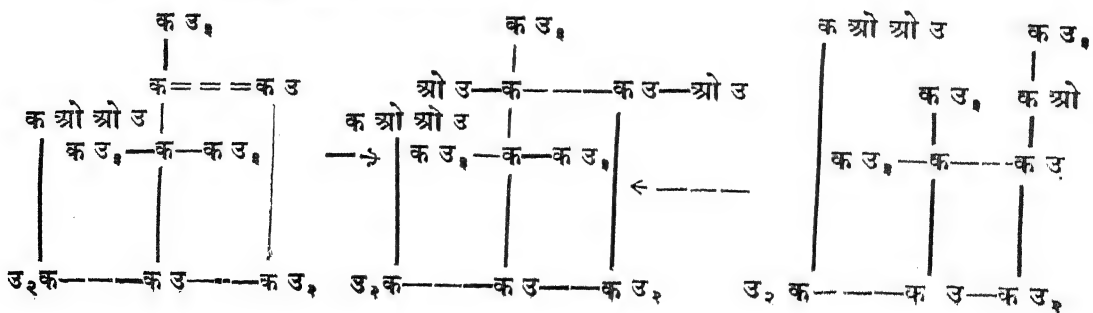
अब इस अनुमानित चीरीणके संगठनके चीरोल उदेत एवम् चीरोलसे सम्बन्ध पर भी कुछ दृष्टिपात किया जा सकता है। उदेतमें, (जिसे, साब्रीरोल भी कहते हैं क्योंकि यह यौगिक साब्रोरो साहेब ने ही सर्व प्रथम प्राप्त किया था) तो केवल चाक्रिक नवनीतेन चक्र ही भङ्ग हो जाता है और दोनों सिरों पर एक एक उदौषिल मूल की स्थापना हो जाती है। फिर इन्हीं दोनों मूलोंमें से एक जल अणु भी निकाला जा सकता है जिससे एक आभ्यन्तरिक ज्वलक प्राप्त होता है। इसे चीरोल कहते हैं। इस प्रकार—
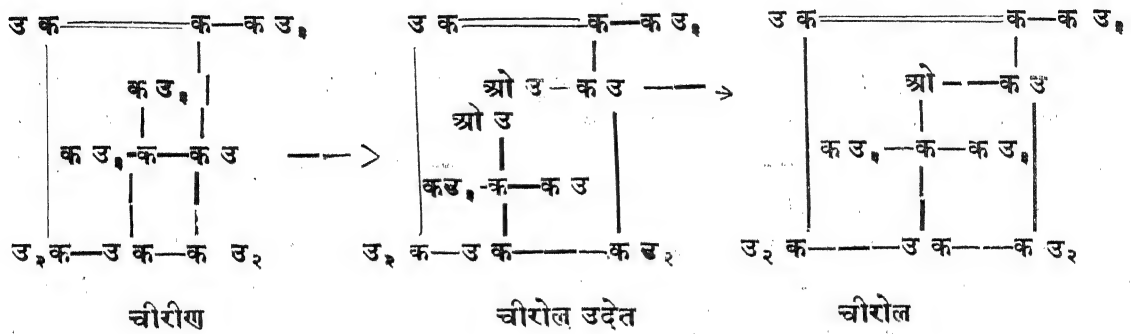
इस उदेत का यह संगठन निर्विबाद रूपसे श्रृङ्खला बद्ध प्रमाणित करने के लिए एक महत्वपूर्ण प्रमाण इस बात से भी है कि वह त्रपिन्योल से इस प्रकार प्राप्त भी किया जा सकता है कि उसका द्वि-अरुणिद बना कर, एक उद् अरुणिकाम्ल का अणु बहिष्कृत करने के बाद शेष अरुणिन् को उदौषिल मूलसे स्थापित कर दिया जावे। इस प्रकार
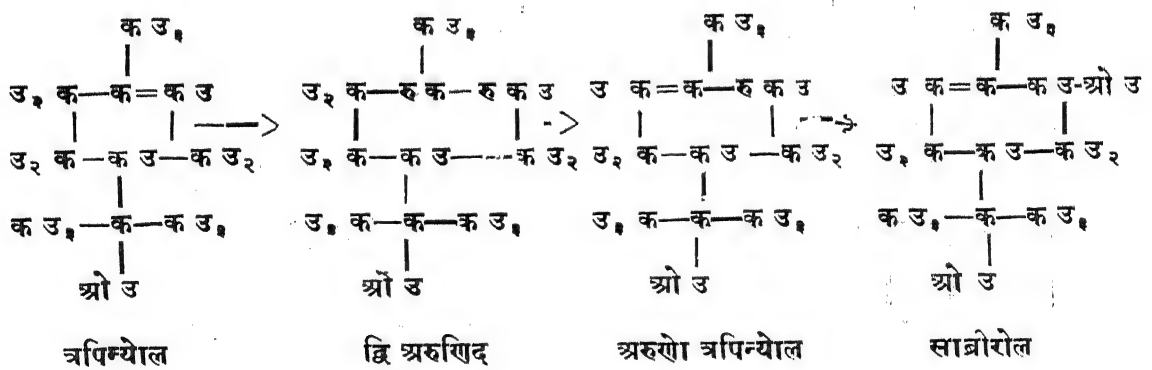
तत्पश्चात् केवल एक जल अणु के बहिष्करण से चीरोल प्राप्त हो जाता है जो द्वि बन्ध पर ओषदी करण से प्रथम तो चीरोल मधुरोल में और फिर त्रपिनोलिक अम्ल में ओषदीकृत किया जा सकता है। चीरीण से द्विप्रीन भी प्राप्त की जा सकती है और उसमें भी नवनीतेन चक्र भंजित होकर समस्त परिवर्त्तन त्रपिन्योल एवम् त्रपिन के द्वारा ही होता दृष्टिगत होता है। इस प्रकार—
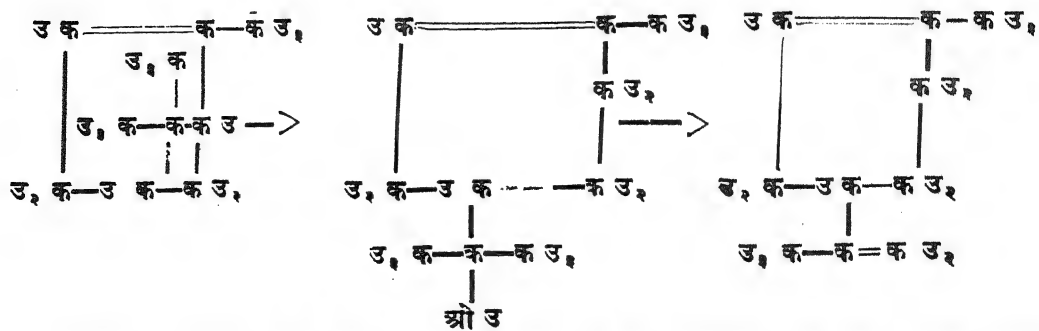
चीरीण का संश्लेषण भी हो तो चुका है परन्तु वह कुछ संश्लेषण है नहीं। एक तो इसमें चीरोनिक अम्ल से ही प्रारम्भ करते हैं और फिर उसमें उत्पादित पदार्थ भी बहुत न्यून मात्र में प्राप्त होता है। तारपीन के तैल में क—चीरीण के साथ ही साथ ख—चीरीण की भी कुछ मात्रा सदा ही प्राप्त होती है। यह सदा वाम भ्रामक रूप ही में पाई जाती है और ओषदीकरणसे इससे एक चात्रिक कीतोन निश्चीरोण क $_{9}$ उ $_{14}$ ओ, प्राप्त होता है जिसमें एक कर्बन परमाणु की कमी होती है और दो उदजन परमाणुके स्थान में ओषजन आ गया है। ख—अपिनीन एवम् ख—फलन्द्रिन भी तो इसी प्रकार चाक्रिक कीतोन देते हैं। इसी निश्चीरोन से वा तक साहेब ने पुनः ख—चीरीण प्राप्त की है जिसे यह स्पष्ट ही है इसमें एक असम्पृक्त=क उ$_2$ पार्श्व शृङ्खला होती है। इसके अतिरिक्त अन्य भी चीरीण के रूप हैं जो केवल एक द्वि बन्ध के स्थान ही में विभिन्नित हैं।

ग—चीरीण, ङ—चीरीण

क—चीरीण ख—चीरीण
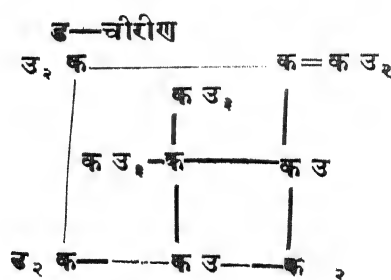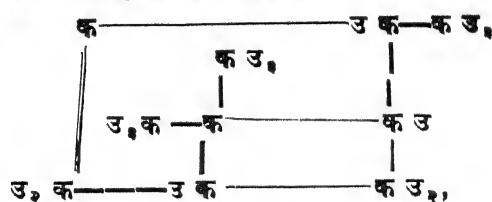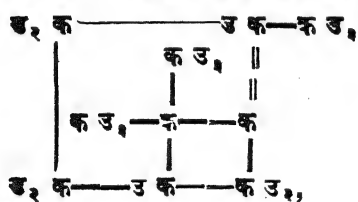
चीरीण का इतना ही ज्ञान संतोषजनक जानकर अब अन्य सदस्यों पर भी कुछ विचार किया जा सकता है। इसमें कर्पुरीण एवम् बर्निलीन हमारा ध्यान सर्व प्रथम आकर्षित करती हैं। कर्पुरीण तो एक ठोस अपिन है और दोनों ही प्रकाश-सम-रूपकों में प्राप्त होता है। बरथेलो साहेब ने तो इसे उत्तर या दक्षिण भ्रामक चीरीण से तत्सम्बन्धी प्रकाश समरूपक की भांति प्राप्त किया था। चीरीण शुष्क

उदजन हरिद् द्वारा तत्सम्बन्धी बर्निल हरिद् में परिवर्त्तित हो जाता है और इससे कपुरीण प्राप्त की जा सकती है। बन्योल एवम् सम बन्योल से भी अनार्द्रक रसों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक उत्पादन विधि से यह स्पष्ट ही है कि इसमें एक कर्बन-द्विबन्ध है। किन्तु उनके प्रमाण भी हैं। आणुविक आवर्जन स्थिरांक भी एक द्वि बन्ध की धारणा के ही अनुसार हिसाब लगानेसे ठीक आता है। उदजन हरिद के साथ एक उदहरिद कर्पुरीण एवम् अरुणिन् के संसर्ग से द्वि अरुणिद कर्पुरीण भी इसी निश्चय की ओर संकेत करते हैं। हलके परमांगनेत से मधुरोल यौगिक भी प्राप्त किया गया है। नोषिल काम्ल द्वारा ओषदीकरण से कपोंइक अम्ल प्राप्त होता है जो तपाने पर कर्बन द्वि ओषिद को बहिष्कृत करदेता है और उप कर्पूरिक अम्ल में परिवर्त्तित हो जाता है जिसका संश्लेषण भी भली भांति हो चुका है। इस प्रकार
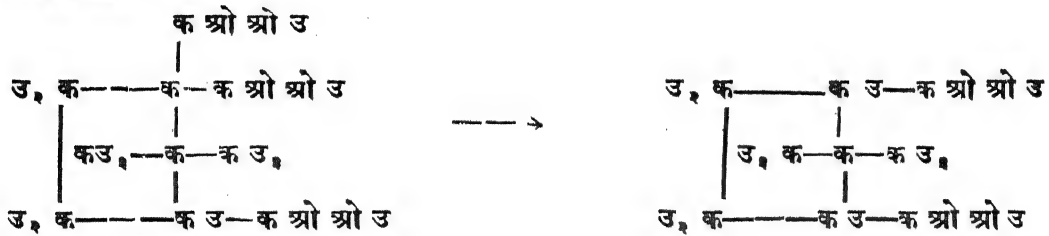
कपोंइक अम्ल उपकर्पूरिक अम्ल

इन सरल क्रियाओं से स्पष्ट ही है कि कर्पुरीण के संगठन के विषय में कोई आपत्ति न होगी और वास्तव में अनेक वर्षों तक निम्नांकित सूत्र ही बिना किसी आपत्ति के इस यौगिक को दर्शाता रहा। इससे बन्योल एवम् कर्पूर का सम्बन्ध तो भली भांति प्रदर्शित होता है और इसका चीरीण से प्राप्त होना भी निम्न रूप से भली भांति समझ में आ जाता है—
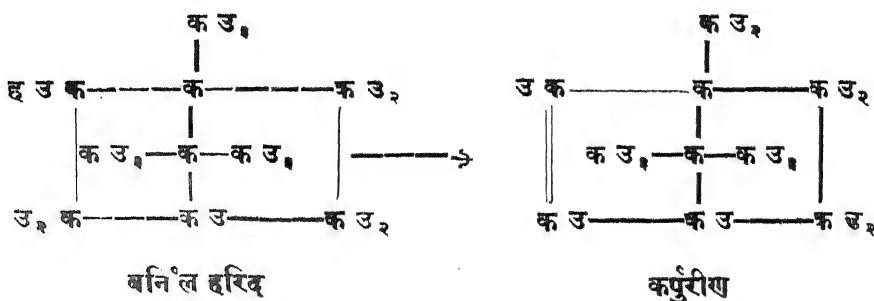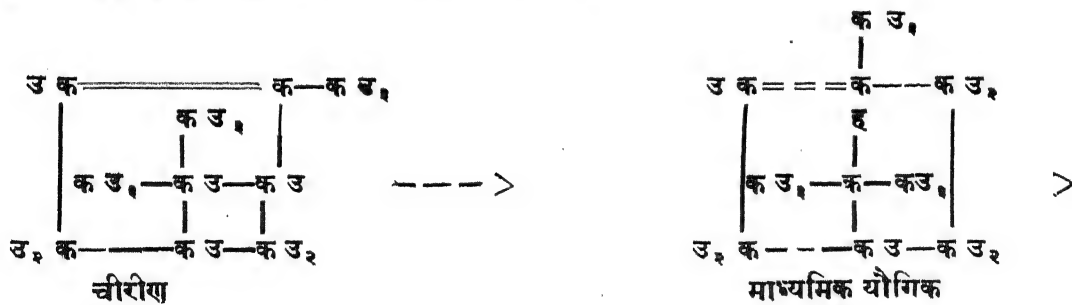
परन्तु फिर भी बात इतनी सीधी नहीं है। जिन लवणजन यौगिकों द्वारा यह पदार्थ तैयार किया जाता है उनसे तो किसी प्रकार भी इस संगठन का प्रमाण नहीं मिला। इसके विपरीत वह स्पष्टतः यह नए ही भिन्न संगठन की ओर संकेत करते हैं। प्रथम तो एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि चीरीण तथा कर्पुरीण के यौगिकों के गुण सर्वथा समान ही नहीं होते क्योंकि चीरीण यौगिक अत्यन्त ही स्थायी होते हैं। इसका उदहरिद तो खौलते हुए जल द्वारा भी इतनी सरलता से विश्लेषित नहीं होता है परन्तु कर्पुरीण का यौगिक बड़ी ही सरलता से जल द्वारा विश्लेषित हो जाता है। लेकिन फिर भी आश्चर्य की बात तो यह है कि इन दोनों में से कोई भी चीरीण का वास्तविक उदहरिद है ही नहीं। वास्तविक पदार्थ तो बालक साहेब ने निश्चीरोण से निम्नभांति प्राप्त किया था—
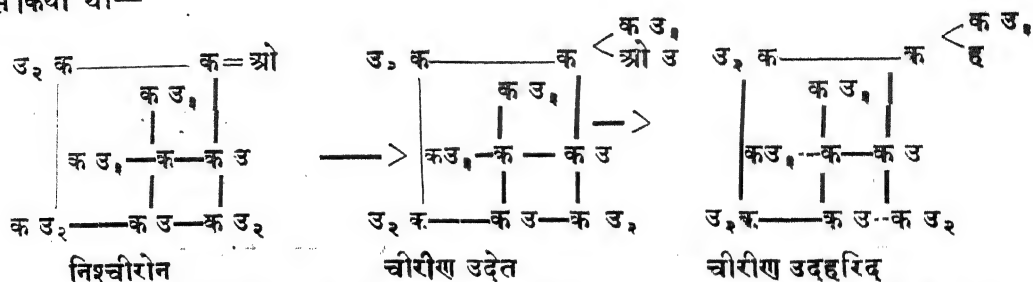
आश्वां साहेब ने कोई दस वर्ष पूर्व चीरीण में हिमांक से १०° श से भी अधिक नीचे की शीतलता में उदहरिकाम्ल वायव्य रूप में प्रवाहित करके यही यौगिक प्राप्त किया है। इससे अधिक ताप क्रम बढ़ते ही वह पदार्थ बर्निल उदहरिद में परिवर्त्तित हो जाता है। परन्तु इसके गुण उस बालक साहेब वाले यौगिक से भी भिन्न हैं और दोनों अवकाश समरूपक समझे जा सकते हैं। पूर्व वाले दोनों ही उदहरिदों के तत्सम्बन्धी दो मद्य भी हैं जो कर्पूर को अवकृत करने से दोनों साथ साथ ही प्राप्त होते है और बन्योंल एवम् सम बन्योंल के नाम से प्रख्यात हैं। सम बन्योंल पर स्फुर पंच हरिद के प्रभाव से अथवा उसके अधिक घोलमें उदजन हरिद प्रवाहित करनेसे कर्पूरीण उदहरिद प्राप्त होता है। गन्धकाम्लकी विद्यमानतामें कर्पूरीण अनेक अम्लों से योग करके समबन्योंल के सम्मेल देती है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो हैं कि कर्पूरीण एवम् सम बन्योंलका संगठन अधिकांश एक सा ही है। यदि पंच हरिदके स्थान में शुष्क उदजन नैलिद का प्रभाव डाला जावे तो बर्निल नैलिद प्राप्त होता है और इससे मद्यिल पांशुजक्षार द्वारा एक नवीन ही त्रपिन प्राप्त होती हैं जो बर्निलीन नाम से कही जा सकती है। बर्निल नैलिद चीरीण से प्राप्त उद नैलिदसे सभी गुणोंमें समान होता है, इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि चीरीण का उदहरिद बन्योंलका वास्तविक लवणजन सम्मेल है; चूंकि बन्योंल एवम् सम बन्योंल दोनों ही ओषदीकरण से कर्पूर देते हैं, कुछ लोगों का विचार है कि यह दोनों ही पदार्थ अवकाश समरूपक ही हैं। अब तक दोनों के अनार्द्र करने पर भी यही समझा जाता था कि प्राप्त त्रपीन कर्पूरीण ही है और यह बात इस संगठन को और भी पुष्ट करती सी प्रतीत होती थी परन्तु बर्निलीन की बन्योंल एवम् समबन्योंल की गुण-विभिन्नता से इस तर्क की अवहेलना करनी पड़ी और मानना पड़ा कि यह दोनों ही बिलकुल भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। जो रूप पहिले कर्पुरीण को दिया गया था वह वास्तवमें बर्निलीनका मालूम होता है। इसी से उसका बन्योंल एवम् कर्पूरिक अम्ल से सम्बन्ध भी भली भांति स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार—
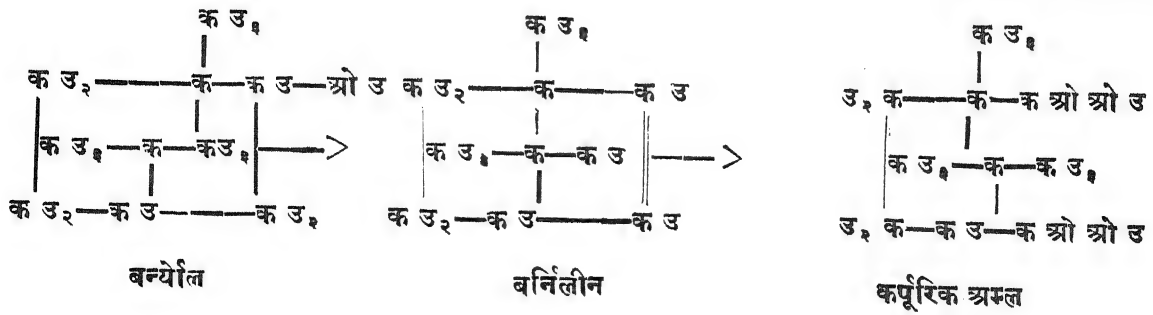
रही कर्पूरीणकी बात सो उसका संगठन अब भी निर्विवाद रूप से ज्ञात नहीं है । ओषदीकरण से प्रथम तो मधुरोल यौगिक प्राप्त होता है जो कर्पूर-मधुरोलसे स्पष्टतः भिन्न है। कर्पूरीण मधुरोलके ओषदीकरणसे आगे अनेक पदार्थ प्राप्त हो चुके हैं जिनमें एक तो द्वि कर्बोषिल अम्ल कर्पूरीण कर्पूरिक अम्ल है, एक ओषदिल अम्ल कर्पुरीनिक अम्ल $क_{१०}$ $उ_{१४}$ $ओ_{३}$, अथवा एक कीतोन कर्पुरीनिलोन $क_{९}$-$उ_{१४}$ ओ हैं। इसके विपरीत दिशामें रागिल हरिद द्वारा एक मद्यानार्द्र कर्पुरीनिक मद्यानार्द्र $क_{९}$ $उ_{१५}$ क उ ओ प्राप्त होता है जिससे कर्पुरीनैलिक अम्ल प्राप्त किया जा सकता है। इसका अरुणिद यौगिक द्वारा उदौषिल यौगिक प्राप्त किया गया है और यह कर्पुरीनिलोन ही से सर्वगुण समान होता है। इसी प्रकार अनेकानेक यौगिक प्राप्त किए गए हैं और भिन्न भिन्न रसोंसे यौगिकों की नामावली सदा रक्तबीज की तरह वृद्धि ही पर है पर यहां उसका उल्लेख करना असंगत ही होगा। उनसे कुछ संगठन सम्बन्धी अधिक आशा नहीं की जा सकती । यह समस्या अत्यन्त ही जटिल है और जब तक पूर्ण रूपसे सुलझ न जावे उसके विषयमें कुछ भी कहना भ्रांतिपूर्ण होगा तथापि कर्पूरीनिक अम्लके सीस लवण के स्रवणसे कर्पुरीनिलोन को प्राप्त करनेके आधार पर (जब कि कर्पूरीनिक अम्ल का भी संश्लेषण हो चुका है) कपूरीण का निम्नका अनुमान लग सकता है। कर्पूरीणका एक-ओषोनिदमें परिवर्त्तन होना तथा उसका द्विजीव सिरकाम्लके साथ चाक्रिक अग्रेन चक्र उत्पादित करना इसी परिणामके स्पष्टीकरण रूप है। इस प्रकार
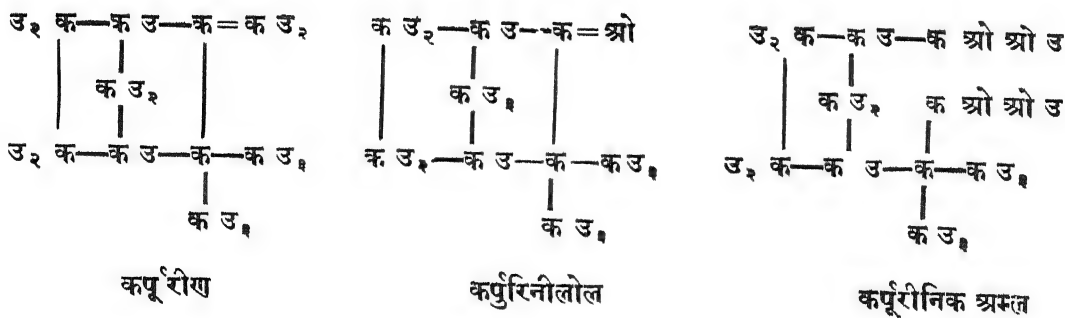
इसका बर्निल हरिद् से सम्बन्ध इस भाँति दर्शाया जा सकता है—

बर्निल हरिद कर्पूरीण उदहरिद कर्पूरीण

समबन्योल
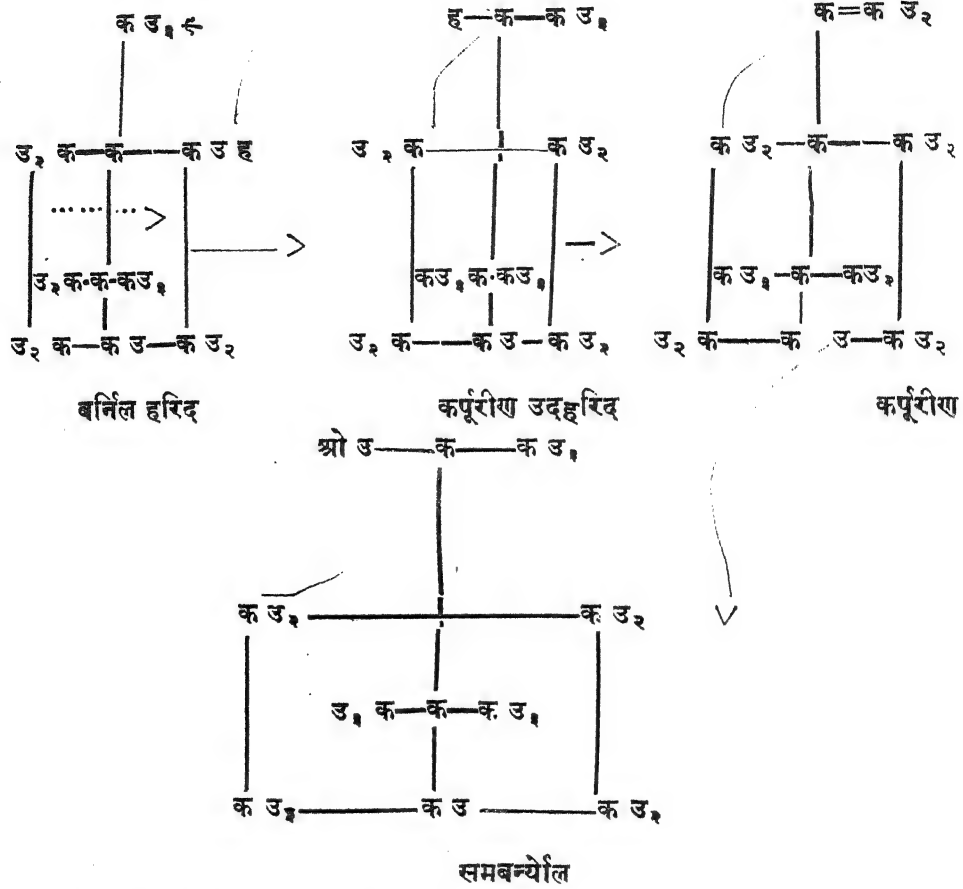
यह क्रिया जिससे बन्योल अनार्द्रक रसों की विद्यमानतामें कर्पुरीणमें परिवर्त्तित हो जाता है—अथवा वागनर परिवर्त्तन भली भांति ज्ञात नहीं है क्योंकि कोई माध्यमिक यौगिक अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। मिरवीन साहेब की धारणाके अनुसार एक द्विशक्तिक कर्बन यौगिक बनता है और फिर वह मधुकीतान—मधुकीतोलीन—परिवर्त्तनके अनुसार कर्पुरीणमें परिवर्त्तित होजाता है। रज़िकाकी धारणा इससे भिन्न ही है। उसके अनुसार एक त्रिचक्रीन बनती है जो कि फिर समरूपक परिवर्त्तन द्वारा परिवर्तित हो जाती है और लिप साहेब की धारणा है कि एक ऐसा माध्यमिक यौगिक बनता है जिसमें चक्रिक बन्ध क्षणिक रूपसे मुक्त होते हैं। कोई भी धारणा शृंखला बद्ध एवम् प्रमाण पुष्ट नहीं है। मीरवीन साहेब की तो सर्वथा भ्रांतिपूर्ण ही सी है क्योंकि यदि बन्योलके द्वितीय-मध्यित मूलमें यदि एक दारील मूल स्थापित कर दिया जावे और इस प्रकार उनका अनुमानित जल निकर्षणके परिवर्त्तन होने की सारी सम्भावनाएं नष्ट कर दी जावें तब भी वास्तवमें दारील कर्पूरीण प्राप्त हो जाती है। मीरवीन् एवम् लिप साहेब दोनों ने स्वतन्त्र रूपसे त्रिचक्रीन प्राप्त की और यह भी सिद्ध कर दिया कि यह सैन्धक उद्‌गन्धेत द्वारा १६०°श पर कर्पूरीणमें परिवर्त्तित हो जाती है। ठीक इन्हीं दशाओंमें बन्योलमें भी ही परिवर्त्तन हो सकता है। परन्तु दस्तहरिद की विद्यमानतामें त्रिचक्रीन स्थायी नहीं

है और इस कारणसे यदि बन्योल एवम् सम बन्योल को कर्पूरीणमें परिवर्त्तित करनेमें यदि इस रसकी सहायता ली जावे तो त्रिचक्रीन का बनना सर्वथा असम्भव है। इस प्रकार त्रिचक्रीन का भी माध्यमिक रूपसे बनना सिद्ध नहीं होता। त्रिचक्रीन धारणाके प्रतिकूल प्रमाण एक यह भी है कि त्रिचक्रीनमें कोई भी असंगतिक कर्बनपरमाणु न होते हुए भी कर्पुरीणमें प्रकाश भ्रामक शक्ति होती है।

समस्त परिवर्त्तन चक्र इस प्रकार है—

कर्पुरीण
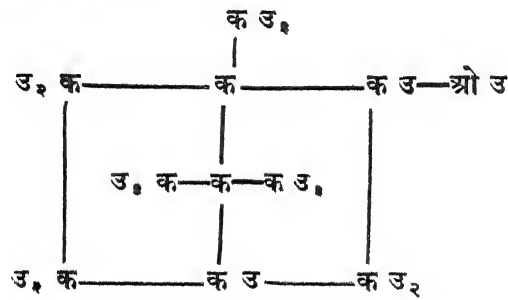
डा० आइन्स्टाइन का अपेक्षावाद

[ले० श्री राम स्वरूप शर्मा]

वैज्ञानिक संसारमें शायद ही कोई ऐसा आदमी हो जिसने जर्मनीके लोक-प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० एलबर्ट आइन्स्टाइनका नाम न सुना हो। उनके अपेक्षा-वादके प्रकाशित होने पर एक प्रकार की सनसनी फैल गई थी क्योंकि इस नए सिद्धान्त के परिणाम विलक्षण तथा क्रान्तिकारी थे। लेकिन यह ऐसे कठिन गणितकी परिभाषा में लिखी गई थी कि उस समय इने गिने ही लोग इसे समझ पाये थे। कहा जाता है कि जब आइन्स्टाइन ने इसे अपने अध्यापकको दिखलाया तब वे आइन्स्टाइनसे बोले "तुम पागल तो नहीं हो कि ऐसे बेवक़ूफ़ीके विचारोंको तुमने ज़ाहिर किया है?" लेकिन सचमुच में बात यह थी कि वे ख़ुद अपेक्षावाद को नहीं समझ सके।

इस सिद्धान्त का जन्म हुए आज २६ साल हो गए इस बीच में कई ऐसे मार्केके प्रयोग किये गए हैं जिनसे कि अपेक्षावाद बहुत हद तक साबित हो चुकाहै। इस क्रान्तिकारी सिद्धान्त के कारण देश, काल, मात्रा और सामर्थ्यके बारेमें हमारे ख्यालात बिलकुल बदल गए हैं। पहिले हम इन सब को निरपेक्ष तथा भिन्न २ वस्तु समझते थे। परन्तु अपेक्षावाद ने साबित कर दिया है कि यह आपेक्षिक वस्तु हैं। देश और काल तथा मात्रा एवं सामर्थ्यमें भी कोई वास्तविक भिन्नता नहीं है। यही नहीं कि सिर्फ़ भौतिक विज्ञान पर इसका असर नज़र आता है, आधुनिक तत्वज्ञान पर तो इसका बहुत प्रभाव पड़ा है।

सबसे पहिले तो हमें यह देखना चाहिये कि न्यूटन किन वस्तुओं को निरपेक्ष तथा किनको आपेक्षिक मानते थे। देश और काल को वह निरपेक्ष वस्तु मानते थे। इसी प्रकार मात्रा और सामर्थ्यको। कालको वह समझते थे कि यह एक ऐसी वस्तु है जो संसारमें अपरिवर्तनीय गतिसे बह रही है। हाँ, निरपेक्ष चाल पर वे विश्वास नहीं करते थे। उनका कहना था कि निरपेक्ष चाल यदि कोई चीज़ है तो उसे हम यान्त्रिक प्रयोगके ज़रिये कभी नहीं जान सकते।

देश व कालकी निरपेक्षिता पर शक पहिले पहिल पाइन्केरे ने किया था। यह एक विचक्षण फरासीसी वैज्ञानिक और तत्ववेत्ता थे। इनकी कुछ दलीलें हम नीचे देते हैं—

(१) अगर हम कहें कि कल दस बजे जहाँ कालेज का फाटक है वहाँ हम मोजूद रहेंगे तो यह बात सच भी है और झूठ भी है। जहाँ तक हम अपना विचार दुनियाके अंदर ही परिमित रक्खें तो यह बात सच है। दूसरी हालतमें यह झूठ है। क्योंकि २४ घंटेमें कालेजका फाटक शून्य(Space) के न मालूम किस हिस्सेमें रहेगा। आप जानते हैं कि दुनिया सूरजके चारों तरफ १७ मील फ़ी सेकण्ड के हिसाब से चलती है। साथ ही सूरज पूरे सौर जगत (Solar system) के साथ शून्यमें बड़े ज़ोरसे चल रहा है। इनके अलावा दुनिया की और बहुत सी बारीक चालें हैं। इस लिये यह मुमकिन ही नहीं कि कालेज का फाटक आज जिस जगह है कल भी वहीं रहे।

(२) मान लीजिये कि एक ऐसा दानव है जो कि संसारको अपनी ख़ुशी के मुताबिक बदल सकता है। अगर किसी रात्रिमें, जब कि सब कोई सो रहे हों, यह दानव संसारमें सब चीज़ोंकी लम्बाई, चौड़ाई, तथा मोटाई बराबर परिमाणमें बदल दे तो सबेरे किसी को यह पता न चलेगा कि दुनियामें कोई नई बात हुई है।

(३) फिर मान लीजिये कि वही दानव संसार की सब क्रियाओंकी चाल हज़ार गुना बढ़ा दे। यहाँ तक कि कछुएकी चालको हवाई ज़हाज़के बराबर करदे। लेकिन हममेंसे किसीको यह ज्ञान नहीं हो सकता कि संसारमें ऐसा व्यापक परिवर्तन होगया है।

ऊपर लिखी दलीलोंसे पाइन्केरे ने देश और कालका निरपेक्षिता पर गहरा शक़ पैदा कर दिया था।

अपेक्षावादका विकाश वास्तवमें दूसरी ही रीति से हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दीके शुरूमें यङ्ग और फ्रेनेल इत्यादि गणितज्ञोंके प्रयत्नसे लोग यह विश्वास करने लगे थे कि रोशनी लहरोंके रूपमें एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाती है। जिस प्रकार शब्दकी लहरोंका वाहक या माध्यम हवा है, इसी प्रकार रोशनीके लिये वाहककी आवश्यकता हुई। यह माध्यम एक कल्पित चीज़ मानी गई जिसको ईथरका नाम दिया गया। यह भी मानना पड़ा कि यह ईथर सब जगह भरा है विशेष कर आकाशमें तारागणोंके बीचमें। चूंकि रोशनी के कम्पन इतने तेज़ हैं कि यह भी मानना जरूरी होगया कियह ईथर अत्यन्त लचीली और कठोर वस्तु है? अब यह सवाल उठा कि तारागण इस ईथर (आकाश) के समुद्रमें अपरिचित समयसे घूम रहे हैं इसलिये ईथर की रगड़ से इनकी चाल धीमी पड़ जानी चाहिये। विशेष कर ग्रहों और चन्द्रमा के काल में काफ़ी फ़र्क़ पड़ जाना चाहिये। यह फ़र्क़ हमें सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के समयसे मालूम होना चाहिये। लेकिन ग्रहणों की पुरानी तिथियों, जो कि बबीलोन और मिश्र देशमें पाई गई, को देखने से मालूम हुआ कि ऐसा कोई फ़र्क़ चार पाँच हज़ार वर्षों के अन्दर नहीं पड़ा है।

अब लोगों ने यह ख्याल किया कि इन ग्रहोंके पास का ईथर शायद इनके साथ चलता हो। इसकी सच्चाईको जाँचनेके लिये कई प्रयोग किये गए। इन प्रयोगोंके आधार पर फ्रेनेल ने यह मत ज़ाहिर किया कि ग्रहोंके साथका ईथर कुछ अंशमें तो उनके साथ घूमता है और बाक़ी अंशमें वह फिसल जाता है।

इसी बीचमें अमेरिका के दो वैज्ञानिकों ने जिनका नाम माइकेलसन और मार्ले था, कुछ बड़े महत्व पूर्ण प्रयोग किये। इन प्रयोगोंका अभिप्राय यह जानना था कि दुनिया किस चालसे शून्यमें बढ़ रही है। इन प्रयोगोंका सिद्धान्त इस प्रकार है।

मान लीजिये कि किसी नदीमें दो तैराक बराबर चालसे एक ही स्थानसे एक साथ चलते हैं। लेकिन एक तो नदीके बहावके साथ १०० गज जाता है और फिर लौट आता है दूसरा नदीके आर पार १०० गज जाता है और फिर लौट आता है। साधारण हिसाबसे मालूम होता है कि पहिला तैराक (क) कुछ देरमें लौटेगा और दूसरा (ख) जल्दी लौटेगा।
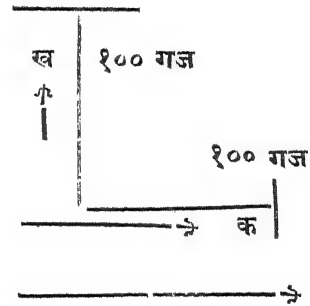
नदी का बहाव

नदीके स्थानमें ईथर का वह प्रवाह है जो कि पूरबसे पश्चिम को जाता होगा (चूँकि दुनिया अपनी धुरीके चारों ओर पश्चिम से पूरबको घूमती है) तैराकोंके जगह दो रोशनी के किरण मान लीजिये। एक पूरब पश्चिम जाती है, दूसरी उत्तर दक्षिण। बराबर दूरी पर दो शीशे रक्खे मान लीजिये जो कि किरणों को लौटा देंगे। ऊपर दिये तर्कके अनुसार क—किरण कुछ देरमें लौटेंगी और ख किरण जल्दी। व्यतिकरणके जरिये यह बात मालूम हो जायगी। यही उनका प्रयोग है। लेकिन प्रयोग करने पर यह नतीजा निकला कि दोनों किरणें बिलकुल एक ही वक्तमें लौटती हैं। पहाड़ोंकी चोटियों पर प्रयोग दुहराया गया क्योंकि वहाँ दुनिया की

चाल ज्यादा है। लेकिन फिर भी वही नतीजा निकला। वैज्ञानिक जगत को बड़ा अचम्भा और परेशानी हुई।

इस नतीजेके समाधान करने की कोशिश सब से पहिले एक डच वैज्ञानिक फ़िज़जेरल्ड ने की। उन्होंने यह राय ज़ाहिर की कि जब कोई चीज़ चलती है तो चालकी दिशामें उसकी लम्बाई कम हो जाती है। अर्थात् वह चीज़ कुछ सिकुड़ जाती है। इस तरह माइकेलसन-मार्लेके प्रयोगोंमें जो शीशा पूरब पश्चिम रक्खा है उसकी दूरी कम हो जाती है क्योंकि दुनिया इसी दिशामें घूमती है। साथ ही फ़िज़जेरल्ड ने यह भी मान लिया कि यह सिकुड़न उतने ही अंश में हो जाती है जितने अंश में पूरब पश्चिम वाली किरणको समय ज्यादा लगता है—परिणाम यह होता है कि दोनों किरणों को बराबर समय लगता है जैसा कि व्यतिकरण (Interfernce) के ज़रिये मालूम हुआ था।

यहाँ तक यह अनुमान तो ठीक था लेकिन इसके मान लेनेमें कई एक कठिनाइयाँ थीं—

(१) पहिले तो यह बहुत कृत्रिम अनुमान है।

(२) अगर यह सिकुड़न सचमुच होती है तो यह हर एक पदार्थके लिये एक ही नहीं हो सकती। सिकुड़नको वस्तुके घनत्व तथा कड़ाई पर निर्भर होना चाहिये। यह मान लेना कि एक लकड़ी का छड़ उतना ही सिकुड़ेगा जितना लोहेका कुछ अनुचित मालूम होता है।

(३) तीसरी कठिनाई, जो सबसे बड़ी है वह यह है कि हिसाब लगानेसे मालूम होता है कि रोशनी की चाल दर्पणों की अपेक्षा भिन्न होगी और दुनिया की अपेक्षा भिन्न होगी। लेकिन अब तक जितने प्रयोगोंके जरिये रोशनी की चाल निकाली गई है एक ही आती है अर्थात् १८६००० मील प्रति सेकण्ड। बहुतसे ऐसे धूम्र-मण्डल हैं (Nebula) जो हमारी दुनिया की अपेक्षा हज़ारों मील प्रति सेकेंड की चालसे या तो पास आ रहे हैं या दूर हट रहे हैं। इनसे आने वाली रोशनी की गति जब नापी गई तो वही १८६०००० मील प्रति सेंकड आई।

इस सिकुड़न वाले अनुमान (Contractile hypothesis) का समाधान आइन्स्टाइन ने सन् १६०५ में अपेक्षावाद द्वारा किया। उन्होंने बतलाया कि सब कठिनाइयों की जड़ यह है कि हम दो घटनाओंको हर हालत में समकालीन (Simultaneous) मानते हैं, चाहे हम स्थिर हों या चलते हों। उनकी रायमें दो घटनाएँ हमारे स्थिर रहने पर समकालीन न मालूम होंगी। इसका कारण है कि रोशनीकी चाल परिमित (Limited) है और अपरिवर्तनीय भी है। आपने देखा होगा कि अगर कोई लकड़हारा दूरमें लकड़ी काट रहा हो तो आपको कुल्हाड़ी का गिरना पहिले दिखलाई देता है और आवाज बादमें सुनाई देती है यद्यपि कुल्हाड़ी का गिरना और आवाज़ का पैदा होना एक साथ हुआ! इसका कारण यह है कि आवाज की गति रोशनी की गतिसे बहुत कम है।
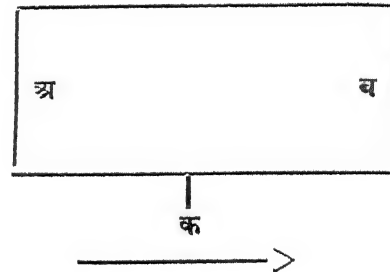
मान लीजिये कि 'अब' एक रेलगाड़ी है, 'ब' इञ्जन है और 'अ' गार्डका डब्बा। 'क' एक मुसाफिर है जो बीचो बीच बैठा है। यह भी मान लीजिये कि 'अ' और 'ब' दोनों जगह एक एक बिजली की बत्ती है। यह दोनों बत्तियाँ एक ही बैटरीसे जलती हैं और उनकी चाभी 'क' के पास है—जब चाहे 'क' बत्तियोंको जला सकता

है। मान लीजिये कि गाड़ी खड़ी है और 'क' बत्तियों को जलाता है। यह साधारण बात है कि 'क' को दोनों बत्तियाँ एक साथ ही जलती दिखलाई देंगी। अब मान लीजिये कि गाड़ी चल रही है। इस हालतमें अगर 'क' बत्तियोंको जलाए तो उसे दोनोंका जलना साथ नहीं मालूम होता है, 'ब' की ओरसे जो रोशनी आ रही है उसको मिलनेके लिये 'क' आगेको बढ़ रहा है, लेकिन 'अ' से आने वाली रोशनीसे 'क' दूर हट रहा है। इसका नतीजा यह होता है कि ब-वाली बत्ती पहिले जलती दिखलाई देगी और अ—वाली बत्तीका जलना बादमें दिखलाई देगा। इस तरह यह मालूम होगा कि दो घटनाएँ जो कि देखने वालेको समकालीन मालूम होती हैं जब कि वह स्थिर है वह समकालीन नहीं मालूम होंगी जब कि देखने वाला चल रहा है।

अब देखिये कि हम चीजोंकी लम्बाई किस तरह नापते हैं। मान लीजिये कि हमें एक छड़की लम्बाई नापना है। उस छड़के एक सिरेको हम पटरीके ० वाले निशान पर रक्खेंगे और छड़को पटरी के बराबर रख कर देखेंगे कि उसका दूसरा सिरा उसी समय पटरीके किस निशान पर है। यही उस छड़की लम्बाई शतांशमीटरमें होगी। लेकिन हम ऊपर देख चुके हैं कि उसी समय अथवा समकालीन का मतलब देखने वाले की चाल पर निर्भर है। इसलिये अगर छड़ चल रहा हो और नापने वाला स्थिर हो तो छड़का पहिला सिरा जब ० पर है उसी समय दूसरा सिरा पटरीके पहिले देखे हुए निशान पर न दिखलाई देगा लेकिन पटरी के किसी दूसरे निशान पर दिखलाई देगा अर्थात् छड़ की लम्बाई इस बार बदली मालूम होगी। आइन्स्टाइन ने हिसाब लगा कर देखा कि इस तर्कके अनुसार चलती चीजकी लम्बाई कम मालूम होगी याने वह चीज सिकुड़ी दिखेगी। यह सिकुड़न उतनी ही होगी जितनी फिजजेरल्ड ने अनुमान की थी। इस प्रकार आइन्स्टाइन ने साबित कर दिया कि लम्बाई चौड़ाई इत्यादि वस्तुओंके निरपेक्ष गुण नहीं हैं लेकिन पूरी तरहसे देखने वाले की चाल पर निर्भर हैं। 'देश' की निरपेक्षिताको उन्होंने नष्ट कर दिया।

लेकिन यहीं तक पहुँच कर आइन्स्टाइन रुके नहीं। उन्होंने उपर्युक्त तर्कसे यह साबित किया कि चलती गाड़ी की घड़ी देखने वालेको—जो कि स्थिर है—सुस्त मालूम होगी। याने गाड़ी की घड़ीका एक सेकंड लम्बा दिखलाई पड़ेगा। इस प्रकार देशके साथ काल की निरपेक्षिता नष्ट हो गई। अब गाड़ी पर आदमीको दुनिया उलटी तरफ जाती मालूम होगी। और यान्त्रिक प्रयोग द्वारा न्यूटन की रायमें यह नहीं मालूम किया जा सकता कि वास्तवमें कौन चल रहा है। गाड़ीके आदमी इसलिए दुनिया की सब चीजोंको सिकुड़ी देखेंगे और दुनिया की घड़ियोंको सुस्त समझेंगे। और यह किसी प्रकार नहीं जाना जा सकता कि किसकी राय ठीक है, गाड़ी वालों की या दुनियाके लोगों की। इस प्रकार देश और कालकी आपेक्षिकता सिद्ध हो गई।

अब देश और कालकी आपेक्षिकताके क्या परिणाम होते हैं। न्यूटन ने गति-विज्ञानको जन्म दिया था। उन्होंने उसके तीन व्यापक नियम ढूँढ़ निकाले थे। इस विज्ञानके आधार पर उन्होंने यह निकाला कि अगर किसी वस्तु पर दो गति ग और गा, जो एक ही दिशामें हों, का आरोपण किया जाय तो उस वस्तुकी चाल ग+गा हो जायगी। लेकिन अपेक्षावादके अनुसार यह $\frac{\text{ग}+\text{गा}}{१+\text{ग गा}/\text{स}^२}$ होगी जब कि 'स' रोशनीकी चाल है (१८६००० मील/से०)

इस गुरसे प्रगट है कि $\text{ग}+\text{गा} > \frac{\text{ग}+\text{गा}}{१+\text{ग गा}/\text{स}^२}$

दूसरी बात यह है कि किसी चीजकी चाल रोशनी की चालसे ज्यादा नहीं हो सकती। अगर ग=स

$= $ गा तब भी दोनोंका जोड़ $\frac{\text{ग} + \text{गा}}{१ + \text{ग गा}/\text{स}^२} = $ स होगा। न्यूटन और आइन्स्टाइनके गुरोंमें फर्क मामूली तरहसे बहुत कम है जब तक कि ग और गा मामूली चालें हैं।

थोड़ी देरके लिए मान लीजिये कि किसी चीज़ की चाल रोशनी की चालसे ज्यादा हो सकती है। मान लीजिये कि आप ऐसी चालसे दुनियाके बाहर जा रहे हैं और आपका चेहरा दुनिया की ओर है और आप उसे देख रहे हैं। आपके साथ जिस किरण ने दुनियाको छोड़ा होगा वह आपके पीछे रह जायगी क्योंकि आपकी चाल ज्यादा है। आप ऐसी हालतमें ऐसी किरणोंको देखने लगेंगे जो कि आपके पहिले पृथ्वीसे चली थीं। यही नहीं आप संसारकी सब घटनाओंको उलटे तरतीब में देखियेगा। लड़ाईके मैदानमें पहिले आप मुर्दों और घायलोंको देखियेगा, फिर वे उठ कर लड़ने लगेंगे—उसके बाद दोनों सेनाएँ घरको लौटती दिखलाई देंगी। संक्षेपमें समयका प्रवाह ही आपके लिये बदल जायगा। वह इस प्रकार होगा-भविष्यके बाद वर्त्तमान, उसके बाद भूतकाल। खैर, यह कल्पना की बातें हैं और इन्हें हम यहीं छोड़ देंगे।

दो चालोंको जोड़नेके लिए जो गुरु आइन्स्टइान ने बतलाया $\frac{\text{ग} + \text{गा}}{१ + \frac{\text{ग गा}}{\text{स}^२}}$ इससे एक महत्व पूर्ण परिणाम निकलता है। न्यूटन के गुर (ग+गा) के अनुसार किसी वस्तु की चाल बराबर बढ़ सकती है लेकिन आइन्स्टाइन के गुर से यह जाहिर है कि जैसे जैसे किसी चीज की गति तीव्र होती जाती है उसकी वृद्धि कम होने लगती है। यह एक साधारण बात है कि अगर दो गेंदों को जिनमेंसे एक की मात्रा (Maas) दूसरेसे ज्यादा है, बराबर सामर्थ्यसे मारें तो छोटी गेंद अधिक चालसे भगेगी और बड़ी गेंदकी गति कम होगी। यह फर्क क्यों होता है—कारण साफ है क्योंकि छोटी गेंद की मात्रा कम है इस लिये उसकी गति ज्यादा होती है और बड़ी गेंद की मात्रा अधिक होनेके कारण उसकी गति कम होती है। अब अगर विचार कीजिये कि अपेक्षावाद के अनुसार गति बहुत ज्यादा हो जाने पर उसकी वृद्धि कम होने लगती है तो आपको मालूम होगा कि इसका सिर्फ एक कारण यही हो सकता है कि चलती चीज की मात्रा बढ़ जाती है। हिसाब लगा कर देखा गया कि मात्रा और गतिमें सम्बन्ध इस प्रकार है।

$$\text{म} = \frac{\text{म}_०}{\left(\sqrt{१ - \frac{\text{ग}^२}{\text{स}^२}}\right)}$$

इसमें 'म' चलती चीज की मात्रा है—'म०' स्थिर होने पर उसी चीज की मात्रा, ग उसकी गति, स रोशनीकी गति। यदि ग=स के हो सके तो 'म'=∞ या इससे भी यही नतीजा निकलता है कि रोशनीसे अधिक किसी वस्तु की चाल नहीं हो सकती है।

अब सवाल यह होता है कि क्या कोई ऐसे प्रयोग किये जा सकते है जिससे कि यह साबित हो सके कि मात्रा चाल पर निर्भर है और उसके साथ बढ़ती है। मामूली गतियाँ तो इतनी छोटी होती हैं कि $\frac{\text{ग}^२}{\text{स}^२}$ लगभग शून्यके बराबर होता है। इस लिये म=म०।लेकिन बहुतसे रश्मि-शाक्तिक (Radioactive) तत्व ऐसे हैं जिनसे कि बहुत तेज़ ऋणाणु (electrons) निकलते हैं जिन्हें बीटा—किरण कहते हैं। इन ऋणाणुओंकी चाल कभी २ तो ०.९९ स भी होती है। अस्तु यह बीटा—किरण बड़े सुभीतेके पदार्थ हैं जिनके ज़रिये इसकी जाँचकी जा सकती है कि उनकी मात्रा बढ़ती है कि नहीं। सन् १९०६ में काफ़मैन ने अपने प्रयोगोंके परिणामको प्रकाशित

किया। उन्होंने रश्मिअरुणिद (Radiam Bromide) से निकलने वाले ऋणाणुओं पर प्रयोग किया और यह बात साबित हो गयी कि मात्रा चाल पर निर्भर है। परन्तु ठीक तरहसे यह नहीं जाना जा सका कि दोनोंमें सम्बन्ध क्या है। सन् १९०९ में बुशरर ने इन प्रयोगोंको फिर दुहराया और भली भाँति साबित कर दिया कि मात्रा और गतिमें ठीक वही सम्बन्ध है जो कि अपेक्षावाद ने बतलाया—अर्थात्

$$म = \frac{म_०}{\left(\sqrt{१ - \frac{ग^२}{स^२}}\right)}$$

इस प्रकार यह पहिला प्रयोग था जिससे अपेक्षावाद को पुष्टि मिली।

इस गुरका एक दूसरा नतीजा यह निकलता है कि सामर्थ्य में भी मात्रा होती है। आप जानते है कि चलती चीज़में एक प्रकार की सामर्थ्य होती जिसे गत्यर्थक सामर्थ्य (Kinetic Energy) कहते हैं। न्यूटनके अनुसार यह सामर्थ्य बराबर है $\frac{१}{२}$ म ग^२ के। आपने अभी देखा कि अपेक्षाबाद के अनुसार चालके साथ मात्रा बढ़ जाती है—लेकिन चलती चीज़में सामर्थ्य भी आजाती है। अस्तु, यह साफ है कि सामर्थ्यमें मात्रा होती है। अपेक्षावादके अनुसार सामर्थ्य और मात्रा में इस प्रकारका सम्बन्ध है

$$स = म\ सी^२$$

अपेक्षावादके अनुसार इस प्रकार मात्रा और सामर्थ्यमें कोई वास्तविक भिन्नता नहीं। यह दोनों एक ही वस्तुके दो रूप मात्र हैं।

विषैले सर्प

[ले० श्रीहरकुमार प्रसाद वर्मा एम० एस-सी०]

प्राणिशास्त्रज्ञोंके मतानुसार साँप जिसको वह ओफीडिया कहते हैं रिपटाईलिया जाति की स्क्वेमाटा उपजातिके कहे जाते हैं। छिपकली जिनको वे लेसरटीलिया कहते हैं इसी उपजातिमें गिनी जाती हैं मगर उनमें और साँपोंमें यह भेद है कि साँपोंके जबड़ेकी हड्डियां एक ख़ास तौरसे बहुत ही लचकीले तन्तुओं द्वारा बदनके बाक़ी हिस्सेसे जुड़ी रहती हैं, उनके सिरकी हड्डियाँ विशेष प्रकार की होती हैं, वे पलक नहीं मार सकते और शरीरके अगले और पिछले हिस्सेको जोड़नेके लिए कमर नहीं होती। साँपोंके बाहरी कान नहीं होते, दांत नुकीले दोहरे मुड़े हुये आधार-अस्थियोंसे जुड़े होते हैं। उनके एक पतली नोकीली जीभ होती है जिसको जब उनकी मर्जी हो तो वह उसके थैलेके अन्दर खींच लेते हैं जो जड़में होता है।

साँपों की लगभग २००० जातियां मालूम हैं। पृथ्वीमें सूराख़ करने वाले कीड़ों की तरह कुछ छोटे सर्प होते हैं और कुछ तीस तीस फ़ीट लम्बे ताक़तवर सांप। कुछ सांप पेड़ों पर रहते हैं। पानीमें रहने वाले सांप दो प्रकारके होते हैं, एक वह जो मीठे पानीमें रहते हैं और दूसरे वह जो समुद्री जल में ज़िन्दगी गुजारते हैं। सांप गरम प्रदेशों ही में सबसे ज्यादा पाए जाते हैं।

बहुधा सांप अपनी पूरी केंचुली ही उतारते हैं। केंचुली होंठोंसे उतरना शुरू होती है और खूब जोर की रगड़ लगने से वह दोहरी हो जाती है जिससे अन्दरका हिस्सा बाहर हो जाता है और सांप बाहर निकलता है। सांपोंकी सूँघनेकी शक्ति बहुत तीव्र होती है मगर उनकी सबसे उपयोगी इन्द्रिय ज़ुबान है।

करीब करीब सब प्रकारके सांप मांसाहारी होते हैं। जिस जानवर या कीड़ेको उन्हें खाना होता है उसे वे जीवित पकड़ कर समूचा निगल

जाते हैं। उनके नोकीले दोहरे मुड़े दाँत और कटे हुए नीचेके जबड़े इस प्रकार खानेमें सहायक होते हैं। वे शिकारको निगलनेसें पहले जहर से या दबोच कर मार डालते हैं या उसे जीवित ही निगल जाते हैं। शिकारको घुमा फिरा कर उसका सिर अपने मुँहमें दबा लेते हैं। इसके बाद निगलने की कठिन प्रक्रिया आरम्भ होती है। उनके नीचेके जबड़े को थामने वाली हड्डियाँ खोपड़ी पर हिलडुल सकती हैं जिसकी वजहसे वे अपने मुँहको बहुत ज्यादा फैला सकते हैं। इसके अतिरिक्त नीचेके जबड़ेके दोनों हिस्सोंके बीचके लचकीले तन्तुओंके फैल जानेके कारण सांप अपनेसे कई गुना ज्यादा घेरे वाली चीजों को बहुत आसानीसे निगल जाता है। मुँहके एक तरफके दांतोंको शिकारमें मजबूतीसे गड़ाकर दूसरी तरफसे उसे अन्दर खींच लिया जाता है और फिर इधर दाँतोंसे पकड़ कर उस तरफ का हिस्सा अन्दर खींचा जाता है। इस तरहसे गोया सांप तकियेके गिलाफकी तरह अपने बदनको शिकार पर चढ़ा देता है।

दांतोंके ज़रियेसे ही विषैले सांपों का विष दूसरे जीवोंमें चुभकर पहुँचता है और ये दांत हमेशा ऊपरके जबड़ेमें या तो आगे की तरफ या पिछले हिस्सेमें होते हैं। यह विष सांप की लार-ग्रन्थियोंमें होता है और यह गेहुँए रङ्गका द्रव होता है जिसमें भिन्न भिन्न अनुपातोंमें कुछ प्रोटीन होते हैं। उसके मुख्य पदार्थ ये हैं:—(१) हीमोलिटिक पदार्थ (जो रुधिर-धमनियोंको तोड़ देता है और इनके अस्तर पर आक्रमण करता है) और (२) न्यूरोटाक्सिक पदार्थ (जो नाड़ि-केन्द्रों पर आक्रमण करके निश्चेष्टता पैदा कर देता है और श्वास धमानियों की नाड़ियोंके प्रति इसका विशेष स्नेह होता है। इन दोनोंमें जो भी पदार्थ अधिक मात्रामें होगा उसीके अनुसार सांपके काटने के चिह्न प्रकट होंगे। अगर विषमें न्यूरोटाक्सिक पदार्थ का अंश अधिक है तो निश्चेष्टता, सामान्य शैथिल्य और सांस लेते समय तकलीफ़ होना ही सबसे ज्यादा खतर-नाक संकेत होते हैं। अगर रोगी इनको झेल लेता है तो वह शीघ्रतासे निरोग हो जाता है और जिस स्थान पर सांप ने काटा है वहां पर बहुत ज्यादा तकलीफ नहीं होती। अगर विषमें हीमोलिटिक पदार्थों की मात्रा अधिक है तो निश्चेष्टता नहीं होती मगर कष्टप्रद शारीरिक रोग और शैथिल्य इतने वेगके होते हैं कि यह बहुधा घातक हो जाते हैं और अगर रोगी बच भी गया तो घाव दूषित होकर बहुत दुःखदाई हो जाता है।

दो बिषैली ग्रन्थियां प्रणालियोंसे जहरके दांतोंसे जो ऊर्ध्व हन्वस्थि में होते हैं जुड़ी रहती हैं। यह ग्रन्थियाँ शङ्खदेश (Temporal region) में होती हैं। शङ्खच्छदा पेशीके सिकुड़नेसे ग्रंथि दब जाती है और विष छिद्रद्वार दांतसे घावमें पहुँच जाता है। विष थूकने वाले कोब्रा (Spitting cobras) में जो सिर्फ अफ्रीकामें ही पाए जाते हैं, विष बड़े जोरसे धार बंध कर निकलता है। यह विष अगर कहीं आंखों पर पड़ जाय तो उनके फूट जाने का डर रहता है।

सांपोंके स्वर यंत्र (Lyrnx) या स्वर रज्जु (Vocal chord) नहीं होती इसलिए वह बोल नहीं सकते। वे केवल फुसकार सकते हैं और कुछ बड़े सांप तो इतने जोरसे फुसकार मारते हैं कि यह काफी दूर तक सुनाई देती है।

ज्यादातर सांप अंडे देते हैं। यह कुछ लम्बे से होते हैं और इनका छोकला पार्चमेण्टकी तरह होता है। मादा अंडे ऐसी जगह रखती है जो गर्म और तर हो। कुछ प्रकारके सांपों में मादा अंडोंको तब तक धारण किये रहती है जब तक कि संपोले अच्छी तरहसे विकसित नहीं हो जाते। किसी वैज्ञानिक ने सांपोंको अपने बच्चे निगलते हुए नहीं देखा है। बहुतसे सांपोंमें जीवित बच्चे पाए गए। उसका कारण जैसा

कि ऊपर बताया गया है यह है कि मादाएँ अंडों को तब तक धारण किए रहती हैं जब तक वे अंडोंसे नहीं निकलते। ऐसी हालतमें पैदा होनेके ज़रा देर पहले ही बच्चे अंडोंसे निकलते हैं।

अंग्रेजी भाषा की एक मसल जिसका आशय यह है "इतना बहरा जितना कि सांप" (As deaf as an adder) वास्तवमें सत्य ही प्रतीत होती है क्योंकि साँपोंके बाह्यकर्ण (external ear) नहीं होता। सांपों पर गीत का कोई असर नहीं होता है। जब सँपेरा बीन बजा कर सांप का खेल दिखाता है तो सांप गाने को सुन कर ही नहीं भूलने लगता बलिक वह सँपेरेके सिखाने पर ऐसा करता है। वैज्ञानिकोंका ख्याल है कि जिस स्थल पर सांप स्थिर होता है उसके द्वारा उसे कुछ आहट मिल जाती है।

दक्षिणी एप्पेलेचियनके पहाड़ी निवासी इस बातमें यकीन करते हैं कि कोड़ामार सर्प (coach-whip) अपना एक सिरा एक मनुष्यके बदन में लपेट कर उसे दूसरे सिरे से कोड़े लगाकर मार डालता है। बीच बीचमें अपनी पूँछको मनुष्यके नथनोंमें डाल कर यह बात जान लेता है कि शिकारमें जीव है अथवा नहीं।

ठीक नहीं मालूम कि सांपके काटनेसे कितने मनुष्य जान गँवाते हैं। मगर यह निश्चय है कि साधारण भारतीय कोब्रा (Naja naja tripudians) प्रति वर्ष कई हजार जानें लेता है। एक गणनाके अनुसार लगभग २९००० मनुष्य प्रतिवर्ष सांप काटनेकी वजहसे सिर्फ हिन्दुस्तानमें मरते हैं। एक तो इसका विष स्नायु संस्थान पर बहुत शीघ्रतासे आक्रमण करता है और दूसरे इसके काटने पर जो औषधि लाभदायक है वह बदनमें सुई (hypodermic needle) द्वारा ही पहुंचाई जा सकती है। यह दो शर्तें इतनी कठिन हैं कि आम तौर पर रोगीका कोई इलाज नहीं हो पाता। यह सांप ५½ फीट तक लम्बे देखे गये हैं। इनका रंग पीलेसे हरे भूरे तक होता है और इसके फन पर ऐनक की तरह का चिह्न होता है। हिन्दुस्तान में सांपोंको पूजा होती है। यहाँ तक कि एक त्योहार 'नागपञ्चमी' खास इन्हीं की पूजाके लिए नियत है। अगर कहीं इधर उधरसे घरमें कोई साँप आकर रहने लगता है तो उसका मारना या सताना तो पाप समझा जाता ही है बलिक उसके बिलके पास एक कोरे सकोरेमें उसके पीनेके लिए दूध रख दिया जाता है। हिन्दुस्तानमें साँपोंके काटनेसे जो इतनी भयानक मृत्यु होती है उसका एक यह भी कारण है कि गाँवके लोग बहुधा नंगे पैर ही चलते हैं और अधिक गर्मी पड़नेके कारण रात हीको सफर करनेमें सुविधा समझते हैं। ऐसा कोई तरीका नहीं है जिससे किसी साँपके विषैले अथवा विषरहित होने का पता लग सके। साँपों के भी बहुतेरे शत्रु होते हैं और उनके कारण विषैले साँप बहुत ज्यादा नहीं बढ़ने पाते। न्योले और मोरको कौन नहीं जानता। न्योले और साँपकी लड़ाई बाजारों और गलियोंमें बाजीगर दिखाया करते हैं। न्योला तो मौके की ताकमें रहता है और झपट कर इस ढँगसे साँपको मुड़िया कर दबोचता है कि उसके नोकीले दाँत साँपके भेजेमें गड़ जाते हैं। वह साँपके विषको सहन नहीं कर सकता और अगर साँप उसे काट खाय तो यह ख्याल गलत है कि वह कोई घास या जड़ी बूटी खा लेता है। न्योला इतना चतुर और फुर्तीला होता है कि वह साँप को काटनेका अवसर ही नहीं देता है, उसे साँपसे लड़नेमें बड़ा आता है। यह आवश्यक नहीं है कि यह साँपको मार कर खा ही ले। यूरोपियन हेज-होग नामक जन्तुका खून ही विषैला होता है। उस पर साँपके काटेका कोई खास असर नहीं होता। जब कभी सांप उसे मिल जाते हैं तो वह उन्हें बड़े शौकसे खाता है। बहुत से परन्द भी साँपों को खाते हैं और वह भी एक दूसरेको भोजन बनानेमें हर्ज नहीं समझते।

विषमें आम्लिक गुण होते हैं। यह गाढ़ा स्निग्ध स्वच्छ पीले रंगका द्रव होता है जो हवामें खुले रख छोड़ने पर २५-५०°/ₒ चमकते हुए पीले रवे देता है। यदि रवोंको बन्द नलीमें रखा जाय तो उनके विषैले गुण कई वर्षों तक जैसेके तैसे बने रह सकते हैं। ये रवे नमकके १°/ₒ घोल में घुलनशील हैं। यदि इन्हें ६५°-१२०°श तक गरम किया जाय तो इनके गुण नष्ट हो जाते हैं।

अगर किसी मनुष्यको सांप काट ले तो निम्न चिह्न विद्यमान होते हैं:—

(क) कोब्रा (Naja tripudians) के काटने पर उस हिस्सेमें बहुत अधिक दर्द होता है और सूजन आ जाती है। घंटे भरके बाद रोगी सुस्त हो जाता है और खड़ा नहीं हो सकता। उसकी तबीयत बहुत मचलाती है और उबकाई आती है। जीभ और स्वर-यन्त्र निश्चेष्ठ हो जाते हैं। थोड़ी ही देरमें सांस लेनेमें कठिनाई होने लगती है और फिर रोगी सांस नहीं ले सकता। अगर रोगी निश्चेष्टता को भूल जाय तो शीघ्र ही चँगा हो जाता है। काटनेके बाद आखिर तक आंखोंकी पुतलियाँ सिकुड़ी रहती हैं।

उत्तरी हिन्दोस्तानमें क्रेट (Krait Bungaris fasciatus) का काटना बहुत ही खतरनाक है। इसके चिह्न भी कोब्राके जैसे ही होते हैं। (ख) वाईपर्सके काटने पर स्नायु संस्थान पर कोई असर जैसे निश्चेष्टता आदि नहीं होता। काटी हुई जगह पर बहुत ज्यादा दर्द होता है और शीघ्रता से सूजन दौड़ जाती है। कटे हुए स्थलसे रक्त मिला हुआ द्रव निकलता है और वहाँ की खालका रङ्ग बदल जाता है। इसके बाद बेहोशी आने लगती है, नाड़ी बहुत धीमी चलने लगती है, जी घबराता है और उबकाई आती है। पुतलियाँ फैल जाती हैं और रोशनीको देख नहीं सकतीं। फिर रोगी बिलकुल बेहोश हो जाता है। अक्सर थोड़ी देरके लिए बेहोशी छूट जाती है। अगर विषके गुण घातक न हों तो भी घावकी सूजन वगैरः बहुत तकलीफ़ देती है और वह बहुत देरमें अच्छी हो पाती है। रसल वाइपर (Russell's viper, vipera russelli) बहुत भयानक सांप होता है। फुरसा (Echis carinatus) का काटना इतना ख़तरनाक नहीं है मगर उसके भी ऐसे ही चिह्न होते हैं।

विषैले सांपके काटने पर भी इतने मनुष्य नहीं मरते जैसा कि लोग समझते हैं। ऐसा अंदाज़ा लगाया गया है कि अगर १०० आदमियों को साँप काटे तो उसमें ७० मनुष्य तक बच जाते हैं और एक तिहाईके लगभग मरते हैं। इसका कारण यह मालूम होता है कि साँपको विषकी पूरी मात्रा देनेका अवकाश बहुत ही कम मिलता है।

सांप काटेका इलाज

रोगीको उसी अवस्थामें फायदा हो सकता है कि जो कुछ करना हो फुरतीसे और शीघ्र ही किया जाय। दो बातें ध्यानमें रखनी चाहियें:— (१) विष बदनके और हिस्सेमें न फैल जाय, (२) जहाँ तक हो सके विषके विषैले गुण को शिथिल किया जाय। काटने पर फौरन ही अगर उस हिस्सेको काट डाला जाय तो बहुधा जान बच जाती है। काटी हुई जगहके ऊपर एक मज़बूत डोरीसे दो या तीन बन्द कस कर बाँध देना चाहिये। कटे हुए स्थलमेंसे गहरा नशतर देकर खून निकाल देना चाहिये और घावको पांशुज-पर-मांगनेत (कुएकी लालदवाई) से खूब धोकर रजत-नोषेत या और किसी ओषदकारक रससे जलादेना चाहिये। बंदको हर आध घंटेके पश्चात कुछ सैकण्डके लिए खोल देना चाहिये ताकि खूनका प्रवाह बिलकुल ही बंद न हो जाय और फिर कस कर बाँध देना चाहिये। अगर रोगी मरने लगे तो किसी मादक द्रव्यकी थोड़ी २ मात्रा कई बार देनी चाहिये। लोगोंका यह ग़लत ख्याल है कि घावके चूसनेसे कोई फायदा होगा। घावकी काफ़ी सावधानी रखनी चाहिये। उसे किसी कीटाणु-

नाशक घोलसे बराबर भीगा हुआ रखना चाहिये। ऐसा करना इस लिए आवश्यक है कि रोगीके खूनमें बीमारीके कीड़ोंसे लड़ने वाले कीटाणुओं (fighting corpuscles) की बहुत कमी हो जाती हो। इससे घाव सहज ही भयंकर रूप धारण कर लेता है।

साँपके काटनेका अभो कुल एक ही विश्वसनीय इलाज मालूम है। वह है पास्ट्यूर इन्स्टीट्यूट के डाक्टर एलबर्ट कालमेट (Alber Calmette) का एण्टी-वेनाइन (anti-venine)। मगर इससे इलाज करनेमें यह मालूम होना चाहिये कि रोगी को कोब्रा ने काटा है अथवा वाइपर ने। फिर उसी जातिके एण्टी वेनाइनको सुईसे प्रविष्ट किया जाता है। सभी एण्टीवेनाइन प्रभावमें मन्द होते हैं। इस वास्ते कमसे कम १०० घ. शम. तक सुई द्वारा शरीरमें प्रविष्ट करना चाहिये। हिन्दोस्तानमें कोब्रा और डाबोइया साँप ही बहुत पाये जाते हैं इसलिए अगर यह बात न निश्चय हो कि किस जाति का साँप था तो इन्हींकी एण्टी वेनाइनसे इलाज शुरू कर देना उचित होगा।

साँप के विषैले होनेका पता लगानेका एक तरीक़ा यह है कि प्रयोगकर्ता उससे अपने आपको कटवाये और तब देखे कि इसका क्या फल होता है। यह ज़ाहिर है कि इसमें बहुत सी कठिनाइयाँ हैं। अच्छाईकी बात इतनी है कि न ता यह सब से अच्छा तरीक़ा है और न यही अकेला तरीक़ा है। कितनी ताज्जुबकी बात है कि प्रति मास लगभग २००० मनुष्य साँपके काटनेसे जीवनसे हाथ धो बैठेते हैं। चीता, भेड़िया, बाघ, घड़ियाल, हाथी, रीछ, और जंगली सुअरके हमलोंसे इस संख्या के कुल दसवाँ अंश ही शिकार होते हैं।

अगर साँप काटने पर भी मनुष्य बच जाय तो इससे यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि साँप विषैला नहीं था। मुमकिन है कपड़ों ने ज़हर को सोख लिया हो या कई और जीवोंको पहले काट चुकनेके बाद उसके पास काफी ज़हर न रह गया हो। इसी तरहसे अगर कोई मनुष्य मर ही जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि साँप विषैला ही था क्योंकि विषकी अनुपयुक्त खुराक भी हो पर यदि मनुष्य घबड़ा जाय या बहुत डर जाय तो यह घातक हो सकती है।

बाल, वालिच, कार्टर, जेर्डीन, रोजर्स और रौस के उद्योगसे हिन्दोस्तानके साँपोंकी ३२० जातियाँ (species) मालूम हुई हैं। इनमेंसे ६७ ज़हरीले साँप होते हैं। विषैले सांपोंकी पहचान साधारणतया नीचेको पक्तियोंसे भली भांति समझमें आ जायगी।

सब सांपों को तीन जातियों में विभाजित किया जा सकता है। सांपकी जाति पहचाननेके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें पीठके बल फ़ैला लो और ऊपरसे नीचेकी ओर निम्न बातों को देखो :—

(क) वे सांप जिनके उदरके चिह्न (ventral) इतने चौड़े होते हैं कि उनकी विद्यमानतामें और कुछ दिखाई नहीं देता, वे ही वे दिखाई पड़ते हैं। पार्श्व-चिह्न (costal) मानो बिलकुल नहीं दिखाई पड़ते या बहुत थोड़े। इस समूहमें विषैले और विषरहित दोनों ही तरहके सांप शामिल हैं। बाल ने ६७ विषैली जातियोंके निम्नलिखित उपभेद किए हैं:—

(१) समुद्री सांप, जिनकी २९ जातियां है। इनके मुँह पर चौड़ी ढालें होती हैं।

(२) क्रेट, जिनकी ११ जातियां होती हैं। इनकी पीठके अधोभागमें विशेष प्रकारकी धारीदार केंचुली होती है।

(३) कोब्रा और कोरल सांप की ९ जातियां जिनमें केंचुली मुँह और आंखोंको भी छूती रहती है।

यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि मरनेके बाद कोब्राका शिरीत्वचा अकसर बिलकुल नष्ट हो जाता है।

(४) पिट-वाइपर, १३ जातियां, जिसके मुख और आंखके बीचमें एक गड्ढा सा होता है।

(५) पिट रहित वाइपर, ५ जातियां, जिनके मुँह और सिर-छत्रके ऊपर उसी प्रकार की छोटी २ धारीदार केंचुली होती है जिस प्रकार पीठ पर। इस समूहकी बाकी जातियाँ और (ख) और (ग) समूहके साँप कुछ भी खतरनाक नहीं हैं।

समूह १, २, और (३) को कोलुब्राइन (colubrine) और समूह ४ और ५ को वाइपराइन कहते हैं।

(ख) वे सब सर्प जिनके उदर इतने पतले होते हैं कि जिनके पार्श्वमें कमसे कम एक पंक्ति तो अवश्य दीख जाय।

(ग) वे सब, सांप जिनके पार्श्व चिह्न पीठ तक फैले होते हैं और जिनमें उदर-चिह्न नहीं होते।

वही साँप विषैला हो सकता है जिसके उदर चिह्नोंके कारण ऊपरसे देखने पर पार्श्व चिह्नोंकी कोई भी पंक्ति पूरी तरहसे न दिखाई पड़े।

इन ६७ जातियोंमें से हिन्दुस्तानमें आम तौर पर चार ही पाई जाती हैं:—

(१) सामान्यक्रेट

(२) सामान्य लोब्रा

(३) आरीदार लहरिया वाइपर या फूरसा (The Saw Scaled Viper or Phoorsa)

(३) श्रृंखलाबद्ध वाइपर या डेबोइया (The Chain Viper or Daboia)

तीसरे और चौथे समूहके साँप ऊपर लिखे हुए पिट रहित वाइपर के समूहके होते हैं।

इनमें भेद यह है कि चौथे प्रकारके वाइपर की ढालें पूँछके नीचे फटी रहती है पर तीसरे प्रकारके वाइपर की फटी नहीं होतीं।

क्रेटका विष कोब्रा या वाइपर की अपेक्षा दुगुना जहरीला होता है। फूरसा कम विषैला होता है। क्रेट सांप बहुत पाया जाता है। उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश और सिन्ध से लेकर गङ्गाके मैदानोंमें, दक्षिणी प्रायद्वीपमें यहां तक कि लङ्का तक बहुत पाया जाता है। मैदानोंमें तो यह सांप पाया ही जाता है, पर ५००० फुट ऊँचे स्थलों पर भी यह बहुत मिलता है। इस जाति का युवा-सर्प ४ फुटके लगभग लम्बा होता है। इसका चमकीला काला रङ्ग होता है और इसकी पीठके अधोभागमें सफेद धारियां भी होती हैं। एक बारके काटनेमें यह सांप इतना विष दे सकता है जिससे तीन बार आदमी मर सके। क्रेटका विष कोब्राके समान ही होता है। यद्यपि इसका प्रभाव धीरे धीरे होता है। इसके काटने पर रोग चिह्न भी वैसे ही होते हैं, पेटमें दर्द अधिक होता है जिसका कारण कदाचित् पेट और अंतड़ियों का रक्त स्राव है। क्रेटके काट लेने पर रोगीके बचने की कोई भी आशा प्रतीत नहीं होती है क्योंकि इसके विषको मारने वाला कोई भी रस ज्ञात नहीं है। श्वास मूलक केन्द्र थोड़े ही समयमें निश्चेष्ट हो जाते हैं। निश्चेष्टताको रोकनेके लिए अब तक कोई उपाय विदित नहीं है। पर एक बात अवश्य है। कौन जानता है कि सांप ने केवल अधूरा ही काटा हो या बहुत कम विष ही शरीरमें पहुँचा हो। ऐसी अवस्थामें चीरा देने और पांशुज पर मांगनेतसे प्रभावित करनेसे बचने की बहुत कुछ आशा की जा सकती है।

दूध

[ले० 'एक अनुभवी']

दूधके विषयमें थोड़ा बहुत सभी जानते हैं, कमसे कम यह तो सबको मालूम है कि दूधके बराबर उपयोगी और कोई खाद्य पदार्थ नहीं है। जितने भी पशु हैं उनकी मादा-जातिके स्तनोंसे दूध निकलता है जिसका मुख्य उद्देश्य बच्चोंको आहार पहुँचाना है। बच्चोंकी पाचनशक्ति इतनी क्षीण होती है कि वे अन्नके समान कठोर वस्तुओं को पचानेमें असमर्थ रहते हैं। इसीलिये बच्चेका सबसे पहला भोजन माताका दूध बताया गया है। जैसा पशु होता है उसके लिये वैसा ही दूध माताका स्तनोंमें उत्पन्न हो जाता है।

सभी पशु दूध देते हैं, पर मनुष्यसे जिस दूध का सम्बन्ध है वह या तो अपनी माताका अथवा गाय, भैंस, बकरी, भेड़ और कहीं कहीं उंटनियों का। वैद्यकके ग्रंथोंमें अन्य पशुओंके दूधका भी विशिष्ट स्थलोंमें उपयोग बतलाया गया है।

दूधका व्यवहार कई प्रकारसे किया जाता है। कच्चा दूध पीना, अथवा गरम दूध पीना, इसकी रबड़ी, खोया, या फटा (छेना) बनाना, इसका दही बनाना, या मट्ठा बनाना और घी अलग निकाल लेना, इससे पनीर बनाना इत्यादि। इस लेखमें हम इन सब विषयों पर सूक्ष्म प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे।

दूधके पदार्थ

दूध कोई एक पदार्थ नहीं है। यह कई पदार्थों का मिश्रण है। वस्तुतः जीवनके लिये जितने खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है वे सभी दूधमें पाये जाते हैं। इसी दृष्टिसे दूधको आदर्श भोजन कहा जाता है। माताका दूध बच्चेके लिये सर्वोपयुक्त और पूर्ण भोजन है। यह बात प्रत्येक पशुके लिये भी उतनी ही ठीक है जितनी मनुष्यके लिये। गायका दूध गायके लिये और भैंस का दूध भैंसके बच्चेके लिए, उँटनीका दूध उँटनीके बच्चेके लिये सबसे अधिक लाभकर है।

प्रत्येक पशुके दूधमें कुछ न कुछ अन्तर अवश्य होता है। सब गायोंका दूधभी एक प्रकारका का नहीं होता। गायको जैसा भोजन खिलाया जाता है, उसके अनुसार भी दूधके गुण परिवर्तित होते जाते हैं। गायकी आयु पर भी दूधकी प्रकृति निर्भर है। इस दृष्टिसे दूधमें उसके पदार्थोंकी निश्चित मात्रा बताना कठिन ही है। निम्न अंकों से गायके दूधका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

जल	८७·२
ठोस पदार्थ	१२·८
घी आदि मज्जिक पदार्थ ...	३·६
शर्करा	४·६
प्रोटीन	३·३
लवण	०·७

इससे स्पष्ट है कि दूधका अधिकांश जल होता है। और शेष ठोस पदार्थ इसमें ही बिखरे या घुले रहते हैं। दूधके मज्जिक पदार्थोंका विशेष महत्व है क्योंकि इससे मक्खन, घी, पनीर, आदि बनाये जाते हैं। हर एक दूधमें घीकी मात्रा बहुत बदलती रहती है। मज्जिक पदार्थ किसी भी गाय के दूधमें ३ प्रतिशतसे कम और ५ प्रतिशतसे अधिक नहीं पाये जाते हैं। घी दूधके अन्दर उसी प्रकार घुला रहता है जैसे चूनेके पानीमें तैल मिला कर हिलानेसे पायस घोल मिलता है। घीका आपेक्षिक घनत्व कम होनेके कारण गरम करके रख छोड़ने पर मलाईके रूपमें यह दूधके ऊपर एक तह बना लेता है।

दूधके मज्जिक पदार्थों (घी आदि) को रासायनिक दृष्टिसे दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। एक तो अनुड्डायी अर्थात् न उड़नेवाले पदार्थ और दूसरे उड्डायी या उड़नशील पदार्थ। अनुड्डायी या अनघुल पदार्थ समस्त

मज्जिक पदार्थोंके ६० प्रतिशत होते हैं। रसायनिक शास्त्रमें ये पदार्थ पामिटिन, ओलीन और माइरिस्टिन कहे जाते हैं। दूध या मक्खन की विशिष्ट सुगन्ध उड़ायी या उड़नशील पदार्थोंके कारण है। ये पदार्थ १० प्रतिशत होते हैं। इनके रासायनिक नाम नवनीतीन (ब्यूटरिन) अजिन (कैप्रिन), अजोइन (कैप्रोइन) और अजिलिन (कैप्रिलिन) हैं। इनमें नवनीतीन सबसे अधिक महत्व का है। यह सबसे अधिक मात्रामें होता है और यही विभाजित होकर नवनीतिकाम्ल-(ब्यूटरिकाम्ल) बन जाता है जो दहीमें पाया जाता है।

दूधमें जो शर्करा पायी जाती है उसे दुग्धशर्करा, दुग्धोज या लैक्टोज कहते हैं। यह शर्करा रासायनिक दृष्टि से उसी प्रकार की द्विशर्करिद है जिस प्रकार गन्ने की शक्कर, या यव शर्करा। पर यह गन्ने या यवकी शक्करके समान जलमें घुलनशील नहीं है। इसीलिए दुग्धशर्करा अन्य शर्कराओंके समान अधिक मीठी नहीं प्रतीत होती। योस्ट कीटाणुओं का दुग्धशर्करा पर कोई प्रभाव नहीं होता है पर प्रत्येक दूधमें कुछ ऐसे विशेष कीटाणु होते हैं जो इस शर्कराको विभाजित करके दुग्धिकाम्लमें परिणत कर देते हैं। प्रक्रिया इस प्रकार है।

$\text{क}_{१२}\,\text{उ}_{२२}\,\text{ओ}_{११} + \text{उ}_{२}\,\text{ओ} = ४\,\text{क}\,\text{उ}_{३}\,\text{क}\,\text{उ}\,(\text{ओ}\,\text{उ})\,\text{क}\,\text{ओ}\,\text{ओ}\,\text{उ}$ जैसे ही दूध दुह कर अलग किया जाता है वैसे ही यह प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है पर जब थोड़ा सा (०.६ प्रतिशत दुग्धिकाम्ल बन जाता है तब यह प्रक्रिया बन्द हो जाती है। दुग्धिकाम्ल की इतनी मात्रा दूधका संरक्षक बन जाती है फिर दूध अधिक विकृत होना बन्द हो जाता है।

दूध का मुख्य प्रोटीन कैसीनोजन कहलाता है है जो सूक्ष्म कलोद कणोंके रूपमें खटिक स्फुरेत के साथ साथ विद्यमान रहता है। कैसीनोजन गरम करने पर स्वतः अधःक्षेपित नहीं हो जाता पर कुछ लोगोंका यह विचार है कि जब कोई ऐसा अम्ल इसमें मिलाया जाता है जो दूधके खटिकम्से संयुक्त हो सकता हो तो कैसीनोजन अधःक्षेपित होना आरम्भ होजाता है और अन्तोगत्वा दही बन जाता है। विदेशोंमें कैसीनोजन व्यापारिक दृष्टिसे विशेष महत्वका माना जाता है क्योंकि वहाँ इससे पनीर तैयार करते हैं। हमारे यहाँ बंगाली मिठाइयोंमें जिस छना (या फटा) का व्यवहार किया जाता है उसमें भी कैसीनोजन बहुत होता है। जिस प्रकार अंडोंमें अण्डसित (एलबूमिन) और ग्लोबुलिन होते हैं उसी प्रकार दूधमें भी ये पदार्थ होते हैं, पर इनकी मात्रा बहुत कम होती है, जितना कुल प्रोटीन होता है उसका पांचवाँ या छटा भाग ही।

गायके दूधमें लगभग ७ प्रति शत खनिज लवण होते हैं। ये लवण खटिक या पांशुज स्फुरेत, सैन्धक और पांशुजहरिद और कुछ लोह और मगनीस लवण होते हैं स्त्रियोंके दूधमें केवल ०.२ प्रतिशत ही खनिज होते हैं।

इन पदार्थोंके अतिरिक्त दूधमें कुछ अन्य भी पदार्थ होते हैं। थोड़ा सा खटिक नीबूपत भी होता है। कई प्रकारके प्रेरक जीवाणु भी इसमें विद्यमान रहते हैं।

दूधमें विटेमिन-ए की मात्रा बहुत होती है, और विटेमिन-बी भी काफी होता है। विटेमिन-सी और विटेमिन-डी, थोड़े थोड़े पाये जाते हैं।

निम्न सारिणीमें हम दूधके कुछ अंक देते हैं।

दूध	प्रोटीन °/。	मज्जिक पदार्थ °/。	शर्करा °/。	विटेमिन		
				ए	बी	सी
गाय का	३·३	३·६	४·९	+ + +	+ +	+
स्त्री का	१·४४	५·२४	२·६४	+ से + +	+	+
भेड़ का	५·२८	७·०४	४·९	+ + +	+	+
बकरी का	४·२६	४·००	४·२६	+ + +	+	+
भैंस का	४·८	७·६७	४·३६	+ + +	+	+

दूध से रोग

दूध द्वारा बहुतसे रोग फैल जानेकी आशंका रहती है, अतः दूधके व्यवहारमें बहुत सी सावधानियाँ रखनी उचित हैं। हमारे देशके ग्वाले अशिक्षित हैं, वे दूध दुहनेमें पवित्रता पर बहुत कम ध्यान देते हैं। गायोंके रखनेके स्थान भी मैले कुचैले रहते हैं। ज़मीन अधिकतर कच्चा रहती है, पर गोमूत्र, गोबर, पानी, कूड़ा करकट सभी जमा रहता है जिसका परिणाम यह होता है कि अनेक प्रकारके मच्छर, कीटाणु, कीड़े मकोड़े, सभी एकत्रित हो जाते हैं। ऐसे दूषित स्थलोंमें ही हमारे ग्वाले दूध दुहनेके लिये बैठजाते हैं। दूध दुहते समय गायके स्तनोंको भी भली प्रकारसे साफ नहीं करते, उनके स्वयं हाथ भी साफ नहीं होते। ऐसी परिस्थितिमें आशा करना कि शुद्ध दूध मिल जायगा कठिन ही है।

रोगोंके अनेक कीटाणु दूधमें प्रवेश कर जाते हैं। वैसे तो दूधमें स्वयं ही बहुतसे कीटाणु होते हैं, पर ये हानिकर नहीं हैं। हमें यदि कोई आशंका है तो रोगके कीटाणुओंसे ही। यक्ष्मा, टाइफाइड ज्वर, लाल ज्वर, डिप्थीरिया, आदिके कीटाणु दूध में बहुधा देखनेको मिलते हैं। इनमें सबसे अधिक हानिकर यक्ष्मा-कीटाणु हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि गायोंको एक विशेष प्रकारका यक्ष्मा —गो-यक्ष्मा (Bovine Tuberculosis)—हो जाता है, और इस प्रकार कुछ यक्ष्मा कीटाणु गायके दूधमें भी सरलतासे प्रवेश कर जाते हैं। गौशालोंमें यह साधारणसा नियम है कि सबगायोंका दूध एक बर्तनमें मिलाकर ही बेचा जाता है, अतः यदि कोई एक गाय ही गो-यक्ष्मा से पीड़ित हुई तो भी उसके रोगाणु समस्त दूधमें फैल जावेंगे। इस प्रकार सब गायोंका दूध दूषित हो जावेगा। अधिकतर यह देखा गया है कि गायोंको ऐसे दूषित स्थलोंमें रखने से जो स्वास्थ्यके लिये हानिकर हैं, गो यक्ष्मा बहुत शीघ्र फैल जाता है।

बहुतसे अनुभवी व्यक्तियोंका यह विचार है कि छोटे बच्चोंको यक्ष्मा होनेका कारण अधिकांशतः गो-यक्ष्मा ही है, विशेष कर जब कि बच्चे अधिकतर दूध पर ही निर्भर रहते हैं।

दूध दुहने वाले ग्वालों द्वारा भी यक्ष्मा-कीटाणु दूधमें प्रवेश कर सकते हैं। ग्वालोंके अशुद्ध वस्त्रों और अशुद्ध हाथोंसे ऐसा होना बहुत संभव है।

ग्वालेदूध दुहते समय यदि बहुत खांसते हों तो यक्ष्मा कीटाणुओंके दूधमें प्रवेश करनेकी बहुत आशंका है। डिप्थीरिया, लाल ज्वर आदि तो इसी प्रकार फैलते हैं। अतः इसका बहुत ध्यान रखना चाहिये कि ग्वाले और उनका समस्त परिवार बहुत शुद्धतासे रहे, क्योंकि उनके शुद्धतासे रहने पर ही बहुतसे मनुष्योंका स्वास्थ्य निर्भर है।

पानी द्वारा भी रोगाणु दूधमें प्रवेश कर जाते हैं। यदि पानी स्वच्छ नहीं है तो उससे गायके स्तनोंको धोनेमें लाभके स्थानमें हानि ही होगी। यह भी संभव है कि निरोग गाय दूषित पानीके व्यवहारसे रोग-ग्रसित होजाय। हमारे देशमें दूधमें पानी मिलाना ग्वाले अपना अनिवार्य्य कर्म समझते हैं। खालिस दूध न देनेकी मानों उन्होंने शपथ खाई हुई है। ऐसी अवस्थामें पानीकी स्वच्छता पर और भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है। कौन भला कह सकता है कि ग्वाले दूधमें जो पानी मिलाते हैं वह स्वच्छ ही होता है। बहुधा ऐसा देखनेमें आता है कि जिस पानीसे गायके स्तन धोये जाते हैं, उसी पानीमें दूध दुह लिया जाता है। इस प्रकार पानी और अस्वच्छ हो जाता है।

इन सब बातोंका ध्यान रखते हुए शुद्धता पर जितना बल दिया जाय उतना कमही है। रोगसे बचनेके लिये निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिये।

१. गाय शुद्ध साफ पक्की ज़मीन पर बांधनी चाहिये। ज़मीनको रोज़ साफ़ करना चाहिये और पानी से धो देना चाहिये। यदि फिनाइल या तूतियेके पानीसे ज़मीन कभी कभी धो दी जाय तो बहुत अच्छा है।

२. गाय को अंधेरेमें न बांधना चाहिये। प्रकाशमें बांधनेसे अनेक रोगाणु मर जानेकी संभावना है।

३. वैद्योंसे यह परीक्षा करवाते रहना चाहिये कि गाय गो-यक्ष्मा रोगसे ग्रसित तो नहीं है।

४. गायकी पूँछ, स्तन, और मलद्वारके निकट बहुतसे कीट (किलीली) चिपक जाते हैं, इनको अलग कर देना चाहिये। गायके स्तनोंको और मलद्वारको कभी कभी साबुनके पानी से धो कर साफ रखना चाहिये। गायको स्नानादिसे सुरक्षित रखना चाहिये।

५. दूध दुहने वाले ग्वाले और उनके परिवार को स्वच्छ रहना चाहिये। रोगी-व्यक्तिको दूध न दुहने देना चाहिये।

६. दूध दुहनेके बर्तन बिलकुल साफ होने चाहिये।

७. स्तनोंको साफ़ पानीसे धोना चाहिये।

८. यदि दूधमें पानी मिलाया ही जाय तो यह पानी बहुत शुद्ध होना चाहिये।

९. दुहनेके उपरान्त दूधको गायसे अलग स्वच्छ स्थान पर ढांक कर रखना चाहिये।

हमारे देशमें दूधके व्यापारकी बड़ी बड़ी डेयरीं नहीं हैं, पर नगरोंमें अब डेयरीका प्रचार बढ़ रहा है। डेयरीसे दूध बोतलोंमें बन्द आता है। बोतलमेंसे दूध निकालनेके पहले इसका मुँह पानीसे धो लेना चाहिये। डेयरी वालोंको स्वच्छताका और भी अधिक ध्यान रखना चाहिये। विदेशोंमें दूध की परीक्षाके लिये सरकारकी ओरसे निरीक्षक नियुक्त कर दिये गये हैं जो दूधकी जांच करते फिरते हैं। इन देशोंमें दूधके लिये ख़ास नियम बनादिये गये हैं। वहां नियम बना दिया गया है कि दूधमें ८७ से ८८ प्रतिशतसे अधिक पानी न होना चाहिये इसमें १२-१३ प्रतिशतठोस पदार्थ होने चाहिये जिसमें ३ प्रतिशत मज्जिक पदार्थ-मक्खनादि—अवश्य हों। दूधको बर्फसे काफ़ी ठंडाकरके बेचना चाहिये क्योंकि ठंडे रहने पर इसमें रोगाणुओंकी वृद्धि कम होजाती है।

बहुतसे लोग दूधको सुरक्षित रखनेके लिये सुहागा (टंकिकाम्ल) विटपिकाम्ल (सैलसीलिकाम्ल), पिपीलमद्यानार्द्र (फार्मैल्डीहाइड) आदि

डाल देते हैं। ग्वालोंको इन पदार्थोंका प्रयोग करना नियम-विरुद्ध ठहराया गया है, क्योंकि इनके प्रयोगसे वे बासी दूध को ताजे दूधमें मिलाकर जनता को धोखा दे सकते हैं।

दूधको कीटाणुओंसे सुरक्षित रखनेकी दो विधियाँ हैं।

(१) निश्चेष्टीकरण
(२) पास्च्यूरी करण

इनका अब हम सूक्ष्म उल्लेख करेंगे।

निश्चेष्टीकरण (Sterilization)

सामान्य सावधानी रखने पर भी दूधमें बहुतसे ऐसे कीटाणु पाये जाते हैं जिनकी संख्या दूधके रख छोड़ने पर बढ़ती ही जाती है। इनमेंसे बहुतसे कीटाणुओंसे किसी भी हानिकी संभावना नहीं है। पर कुछ कीटाणु रोग फैलाने वाले भी हो सकते हैं। इन कीटाणुओंको नष्ट करनेकी सबसे प्राचीन विधि दूधको गरम रखना है। इस विधिमें यह आवश्यक है कि दूधको १५ मिनटतक २४८° फ (१२०° श) तापक्रम पर रखा जाय, अथवा लगातार तीन दिन दूधको उबाल लिया जाय। ऐसा करनेसे दूधके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, और दूध बहुत दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। जिस बर्तनमें दूध रखा है, उसमेंसे यदि हवा बिलकुल निकाल ली जाय तो दूध वर्षों तक सुरक्षित रह सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि दूधको कीटाणुओंसे पूर्णतः सुरक्षित रखनेकी इससे अधिक उपयुक्त और कोई विधि नहीं है। पर इसमें एक ख़राबी है। वह यह कि ऐसा करनेसे दूध कुछ कुपाच्य होजाता है, अर्थात् इसका पचाना कठिन होजाता है। इस अवगुणके कारण यह विधि अब बहुत कम प्रचलित है। जिस विधिका आजकल प्रचार अधिक है उसे पास्च्यूरीकरण कहते हैं।

पास्टूयूरीकरण

पास्च्यूरी करणका अर्थ यह है कि दूधको गरम करके शीघ्रतासे ठंडा कर लिया जाय। यह विधि रसायनज्ञ पास्च्यूरके नाम पर प्रसिद्ध है, इसका उसने शराबके सुरक्षित रखनेमें १८६४ में उपयोग किया था। सन् १८६६ से दूधके सम्बन्धमें भी इसका व्यवहार किया जाने लगा। पास्च्यूरीकरण और निश्चेष्टीकरणमें केवल ताप देनेकी मात्राका ही अन्तर है। पास्च्यूरीकरणमें सब कीटाणु नष्ट नहीं होने पाते। इसलिये इस विधि द्वारा तैयार किया गया दूध थोड़े समयमें ही ख़राब होने लगता है। यह देखा गया है कि इस दूधमें ६५-६८ प्रतिशत कीटाणु और प्रायः सभी रोगाणु निश्चेष्ट हो जाते है। इस प्रकार यह दूध १२ से २० घंटे तक बिना खट्टे हुए रखा जा सकता है। पास्च्यूरीकरण ताज़े दूधका ही करना चाहिये क्योंकि रख छोड़ने पर दूधमें कुछ ऐसे विष उत्पन्न हो जानेकी संभावना है जो फिर गरम करने पर नष्ट नहीं हो सकते। पास्च्यूरीकरणके साथ साथ यह परमावश्यक है कि शुद्धता पर बहुत कड़ा ध्यान रखा जाय।

यह कहा जा चुका है कि दूधमें विटेमिन होते हैं। ये विटेमिन स्वास्थ्यके लिये बहुत ही आवश्यक माने जाते हैं। यदि दूध उच्च तापक्रम तक गरम किया जाय तो विटेमिनोंके बहुत कुछ नष्ट हो जाने की आशङ्का रहती है। ऐसी अवस्था में पास्च्यूरीकरण की विधि बहुत ही उपयुक्त है क्योंकि इसमें दूध ४०—६०° श तक ही गरम किया जाता है, और विटेमिन नष्ट नहीं होने पाते। पहली विधिमें तापक्रम १२०° शके लगभग रहता है, उस प्रकार शोधित दूधमें विटेमिन बहुत कम रह जाते हैं।

परिवर्तित दूध

माँ के दूध और गायके दूधमें अन्तर है। दोनोंके दूधोंमें लवणों की मात्रा भी भिन्न भिन्न होती है। बच्चोंके लिये मां का दूध ही हितकर होता है, पर यदि मां का दूध न मिल सके तो गायके दूध का सहारा लेना पड़ता है। ऐसी

दशामें यह आवश्यक है कि गायके दूधमें कोई ऐसी चीज़ मिला दी जाय कि दूध बच्चेके स्वास्थ्यके लिये हितकर हो। इस कामके लिये दूधमें पानी, या जौ का पानी (बार्लेवाटर) या चूने का पानी मिला देना चाहिये। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि गायका दूध बहुत ही स्वच्छ हो।

एकरस दूध

Homogenised milk—कभी कभी दूधके ५००० पौंड प्रतिवर्ग इंच दबावमें ७५° श तापक्रम पर रखते हैं। इसका फल यह होता है कि दबाव के कारण दूधमें स्थित घी के बिन्दुकण और भी अधिक टूट कर छोटे छोटे हो जाते हैं और समस्त दूधमें बिखर जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त दूधको एकरस दूध कहते हैं।

जमा हुआ दूध या गाढ़ा दूध

साधारणतया जब दूधका दही बन जाता है, तब हम उसे दूधका जमना कहते हैं, पर जिस जमे हुए दूधका हम यहाँ वर्णन देंगे उससे तात्पर्य उस गाढ़े दूधसे है जो बिलकुल भी खट्टा न हुआ हो। दूधसे जब दही बनता है तो कई प्रकारके अन्य परिवर्त्तन हो जाते हैं, जिससे दूध दूध नहीं रहता, प्रत्युत और ही कुछ बन जाता है।

जमे हुए दूधसे हमारा तात्पर्य उस दूधसे है जिसका पानी किसी विधिसे उड़ा दिया जाता है और दूध गाढ़ा पड़ जाता है। दूध गाढ़े पड़ जाने का एक प्रभाव यह भी होता है कि यह विकृत होनेसे बचा रहता है। दूधमेंसे पानी उड़ानेकी एक साधारण विधि तो यही है कि गरम करके पानी सुखा दिया जाय। पर ऐसा करनेसे दूधके बहुत कुछ गुण परिवर्तित हो जाते हैं। दुग्धशर्करा गरम करनेसे काले रङ्गकी केरेमलमें परिणत हो जाती है जिसके कारण दूधका रङ्ग भी कुछ भूरा पड़ जाता है। गरम करनेमें, अतः यह भी एक दोष है। दूधमें साधारणतः खटिक लवण होते हैं, जो दूधके पाचक बनानेमें सहायक होते हैं। पर गरम करने पर ये खटिक लवण अवक्षेपित हो जाते हैं—प्रोटीन पदार्थ भी विकृत हो जाता है। अतः गरम करके गाढ़ा करने की विधि असफल ही रही।

सन् १८६७ में इसकी एक और विधि निकाली गई। इस वर्ष गेल-बोर्डनको दूधमें शक्कर, आदि बिना कुछ मिलाये शून्यमें उबाल कर दूध गाढ़ा करनेके पेटेण्टकी अनुमति मिली। बोर्डन विधिमें १६०° फ (७१°श) तापक्रमका उपयोग किया जाता है। इस विधिसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई। आरम्भमें तो दूध अच्छा होने पर भी व्यापारिक दृष्टिसे अधिक लाभ न हुआ पर अब इधर २०-२५ वर्षोंसे इस जमे हुए गाढ़े दूधकी बिक्री बहुत बढ़ने लगी है। इस दूध का उन प्रान्तोंमें तो उपयोग होता ही है जहां दूध कम मिलता है, प्रत्युत जहाज़ोंमें, यात्राओंमें और युद्धमें यह दूध काममें बहुत लाया जाता है।

दूधके गाढ़े बनानेमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। दूध बहुत ही शुद्ध और स्वच्छ होना चाहिये। इसके कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। गाढ़े दूध दो प्रकारके बेचे जाते हैं, मीठा दूध और बिना मीठेका दूध। अब हम इसके बनाने की विधिका उल्लेख करेंगे।

दूध की पहले भली प्रकार परीक्षा कर ली जाती है, इसे छाना जाता है और क्वथनांक तक उबाल देकर यह जल्दीसे कीटाणुरहित कर लिया जाता है। १०० सेर दूधमें १६ सेरके लगभग शक्कर मिला दी जाती है। तत्पश्चात् यह मीठा दूध शून्यक कड़ाहोंमें उलट दिया जाता है और तापक्रम १३०°फ (५५°श) कर दिया जाता है। दूध गाढ़ा करके १ तिहाईके लगभग कर लिया जाता है। इसके पश्चात् दूधको बड़े बड़े बर्तनोंमें बर्फसे ठंडा करनेके लिये रख दिया जाता है। यह प्रक्रिया लगभग १ घंटा लेती है, दूधको बराबर टारते रहते हैं। इसके बाद इसे टीनके डब्बोंमें भर दिया जाता है, और जल्दीसे बन्द कर दिया

जाता और लेबिल आदि लगाकर बेचनेके लिये तैयार कर दिया जाता है। देर तक गरम होते रहनेके कारण रोगाणु नष्ट हो जाते हैं और शक्कर भी दूधको सुरक्षित रखनेमें सहायक होती है।

बहुत सी कम्पनियाँ बे मीठा डला हुआ दूध बेचती हैं। पर यह दूध बहुत दिनों तक सेवन करने योग्य नहीं होता। फौरन ही व्यवहार में लानेके लिये यह दूध तैयार किया जाता है। इसकी विधि भी पूर्ववत् विधिके समान है। भेद केवल इतना ही है कि इसमें शक्कर नहीं छोड़ी जाती। दूध गाढ़ा करके एक तिहाईसे भी कम कर लिया जाता है। इसे बहुधा कांचके घटों (jar) में बेचा जाता है जिनके मुँह पर पट्ठे की टोपियां लगी होती हैं।

सुखाया हुआ दूध

यह भी एक प्रकार का बिना मीठे का गाढ़ा किया हुआ दूध होता है। उसे इस प्रकार बर्तनों में बन्द रखा जाता है कि जरा भी हवा इसमें न जा सके। इसमें शक्कर बिलकुल नहीं डाली जाती है अतः इसका सुरक्षित रहना इसी बात पर निर्भर है कि यह किस अवस्था तक कीटाणु रहित कर लिया गया है। कच्चे दूधको तप्त कुंडों में १०-१५ मिनट गरम किया जाता है और तब इसे शून्यक-कड़ाहोंमें उलट दिया जाता है। वहां यह आधाके लगभग कर लिया जाता है। फिर इसे भली प्रकार ठंडा करके बर्तनोंमें भर कर मूँद दिया जाता है। फिर इस दूधको २३५° फ. या ११२°श तापक्रम पर १¼ घंटे तक कीटाणु-विहीन किया जाता है। फिर ठंडा करते समय यह खूब टारा जाता है जिससे दूधके थोके टूट कर एक से हो जाते हैं। इसके पश्चात् इसे विशेष संरक्षक-कमरे (Curing room) में १ महीने तक रख छोड़ा जाता है, तदुपरान्त परीक्षा करके बाजारमें बेचनेके लिये भेजा जाता है।

दूध के चूर्ण

उपर्युक्त दूधोंसे भी अधिक महत्व दूधके चूर्ण का है। इसके बनाने की विधि कोई आज की नहीं है। १९ वीं शताब्दीमें एक रूसी रसायनज्ञ का उल्लेख आता है जिसने दूधको धीरे धीरे मन्दी आंचसे उबाला और बादको जो शेष चूरा रह गया उसे पीस कर बोतलमें बन्द कर दिया और मोमसे मुँह चिपका दिया। पर व्यापारिक दृष्टिसे रसायनज्ञके इस प्रयोग ने कोई विशेष ध्यान आकर्षित नहीं किया। लोगोंको बहुत दिनों तक दूधके चूर्णकी उपयोगिता पर विश्वास न हुआ। गत महायुद्ध में औषधालयों और अनाथालयोंमें शुद्ध दूध की बड़ी मांग हुई। द्रव दूधोंका एक स्थानसे दूसरे स्थान पर बिना विकृत हुए पहुंचना कठिन हो गया। गाढ़े और सुखाये हुये दूध भी इस आवश्यकता को बहुत पूरी न कर सके। गाढ़े दूधोंमें शक्कर की मात्रा बहुत होती है अतः यह दूध बच्चोंके सेवनके लिए बहुत उपयुक्त नहीं होता है। एक बार बोतल खोलने पर दूधके शीघ्र ही खराब हो जाने की संभावना भी रहती है, अतः उन दूधोंमें यह भी एक कठिनाई थी। इस बीसवीं शताब्दीके आरम्भ कालमें इस विषय पर विशेष गवेषणायें की गईं और ऐसी मशीनें बनाई गईं जिनकी सहायतासे बहुत ही उपयुक्त शुद्ध शुष्क दूध तैयार किया जाने लगा। युद्ध के दिनोंमें इन दूधोंका तो बहुत ही अधिक प्रचार हो गया था।

शुष्क दूध (दूध के चूर्ण) के बनाने की बहुत सी विधियाँ हैं और यह कहना कठिन है कि कौन सी विधि अधिक उपयुक्त है। एक विधिमें दूधको उच्च तापक्रम तक थोड़ी देर तक रखा जाता है और दूसरी विधिमें निम्न तापक्रम पर बहुत देर तक। इस दूसरी विधिमें दूधका कुछ पानी शून्यक कड़ाहोंमें उड़ाया जाता है और तदुपरान्त दूधको भाप द्वारा गरम किये हुए

बेलनों पर जिनका तापक्रम १६५°फ (७५°श) होता है, बहाया जाता है। ऐसा करनेसे दो मिनट में ही दूधके पत्र छूटने लगते हैं और अन्ततोगत्वा रवेदार ठोस दूध बन जाता है। एक और भी मनोरञ्जक विधि इस कामके लिये सफलीभूत बताई जाती है। इस विधिमें ताज़े दूधको १३८°श (२८०°फ) तापक्रमके गरम तवे पर छोड़ा जाता है और यहाँ यह एक डेढ़ सैकंड ही में गरम होकर शुष्क पड़ जाता है।

मैरिल-विधि भी काममें बहुधा लायी जाती है। इस विधिमें दूधको पहले शून्यक कड़ाहोंमें कुछ गाढ़ा कर लेते हैं, फिर इसे फौवारे या बौछारके रूपमें गरम हवामें छोड़ते हैं, जिससे दूधका बादल सा बन जाता है और इसके धूलके समान कण झरने लगते हैं। इस विधिमें दूध शुद्ध रूपमें बिना विकृत हुये ही चूर्ण रूपमें प्राप्त हो जाता है। इसमें २ प्रतिशतसे अधिक जल नहीं होता है।

दूधके चूर्णोंमें दर्शनीय बात केवल यही है कि असली दूध के रासायनिक गुणोंमें जहाँ तक संभव हो, कोई परिवर्तन न हो और साधारण अवस्थामें दूध बिना विकृत हुए सुरक्षित रह सके। इनमेंसे पहली बात तो उपर्युक्त विधियों में पायी जाती है पर दूधको सुरक्षित रखनेके लिये कुछ अन्य साधनों का व्यवहार किया जाता है।

दही और मट्ठा

दही और मट्ठा भारतवर्षके लिये कोई नई चीज नहीं है। अति प्राचीन कालसे इसका सेवन होता आ रहा है और प्रत्येक घरमें इसका कुछ न कुछ व्यवहार किया ही जाता है। प्रत्येक भारतीय दूध से दही बनाने की विधि से परिचित है।

दही बनाने का साधारण उपाय यही है कि दूधको भली प्रकार गरम कर लिया जाता है। दूधके ऊपर मलाई पड़ जाय तो कोई हानि नहीं प्रत्युत अच्छा ही है क्योंकि इससे दही बहुत स्वादिष्ट बनता है। अब दूधको ठंडा कर लेते हैं और इसमें पहले रखे हुए दही या मट्ठा का जामन डाल देते हैं। सेर दो सेर दूधके लिये चौथाई छटांक जामन काफी होगा।

दही या मट्ठामें दुग्धिकाम्ल-कीटाणु होते हैं जिनके कारण दुध की शर्करा दुग्धिकाम्लमें परिणत हो जाती है। इस अम्लकी विद्यमानतामें विशेष प्रेरकाणुओं द्वारा दूध का कैसीनोजन कैसीन (दधिन) में परिणत हो जाता है और यह कैसीन दहीके थक्केके रूपमें जम जाता है। दहीसे थोड़े समयके उपरान्त पानी का पसेव निकलने लगता है। यदि दही अच्छी तरह जमाया जाय तो इसमें से पानी कम छूटेगा। कभी कभी दही का पूरा थक्का नहीं भी बनता और छोटी छोटी फुटकें ही जम कर रह जाती हैं। अच्छा दही जमानेके लिये तापक्रम और जामन का विशेष ध्यान रखना चाहिये। यह सब अनुभव से मालूम हो सकता है।

दहीका सेवन तो किया ही जाता है, पर मट्ठा इससे भी अधिक लाभकर है। दहीमें इच्छानुसार पानी मिलाया जाता है और फिर इसे रईसे मथते हैं। रईसे बार बार मथनेका पहला प्रभाव तो यह होता है कि दही की फुटकें टूट कर पानीमें मिल जाती हैं और मट्ठा बनाती हैं। और अधिक मथे जाने पर दहीका मक्खन ऊपर आने लगता है। मक्खन दूध या दहीमें बहुत छोटी छोटी बूँदों के रूपमें छितरा रहता है। इसका घनत्व पानीके घनत्वसे कम होता है। मथे जाने पर मक्खनकी ये छोटी छोटी बूँदे मट्ठेके ऊपर आ जाती हैं। और एक तह बना लेती हैं। इस मक्खनको अलग कर लिया जाता है।

मक्खनसे बहुधा घी बनाया जाता है, और जो मट्ठा रह गया वह खानेके काम आता है। मक्खन पौष्टिक चीज है पर इसका पचाना कठिन काम है। मट्ठेमें से जब मक्खन निकल गया तो अधिक पाचक हो जाता है। मट्ठामें घीके

अतिरिक्त प्रोटीन, शर्करा आदि सभी अन्य आवश्यक पदार्थ रहते हैं, इसीलिये घी अलग किया हुआ मट्ठा भी बहुत लाभ कर है।

दूध का फटा

जब गाय ब्याती है तो उसका सबसे पहला दूध गरम करने पर ठोस पदार्थ देता है जिसे पेवस कहते हैं। इस दूधमें रैनेट नामक कीटाणु होते हैं, जिनकी विद्यमानता में गरम करनेसे दूधका कैसीन अवक्षेपित हो जाता है और पेवस प्राप्त होता है। पेवस बहुत स्वादिष्ट होता है। इसके पूये आदि बनाये जाते हैं।

प्रक्रियाके अधूरे और धीरे होनेसे फटा बन जाता है। तीन चार दिन बाद नयी ब्याही गाय के दूधमें रैनेट बिलकुल नहीं रहता और दूध फिर नहीं फटता है।

दो समय तकका नई ब्याई गायका दूध पेवस देता है, फिर आगे दो तीन दिन गायके दूधको गरम करनेसे फटा मिलता है। फटा और पेवसमें अन्तर इतना ही है कि बादमें गायके दूधमें रैनेट कीटाणु कम रह जाते हैं अतः दूधका कैसीन एक साथ बड़े बड़े थक्कोंमें अवक्षेपित नहीं होनेपाता।

दूधको अन्य उपायोंसे भी फाड़ा जा सकता है। यदि उबलते हुए दूधमें फिटकिरी या पहले रखे हुए फटेका पानी छोड़ दिया जाय या कोई अम्ल या खटाई छोड़ दी जाय तो भी दूध फट जावेगा। दूधके फटेको बंगाली लोग 'छना' कहते हैं और वे इस छनेसे तरह तरहकी मिठाइयाँ बनाते हैं जैसे रसगुल्ला, चमचम, सन्देश आदि। हमारे प्रान्तमें हलवाई खोयेकी मिठाई बनाते हैं, पर बङ्गाली मिठाई दूधके छना या फटा की बनाई जाती है।

बङ्गाली मिठाई बनाने वाले दूधको फाड़नेके लिये छनेके पानीका व्यवहार करते हैं। दूध जब एक बार फट गया तो उसके ठोस छने को अलग छान लेते हैं और बचे हुए पानीको वे रख छोड़ते हैं जब उन्हें और दूध फाड़ना होता है तो वे गरम किये हुए दूधमें इस छनाका पानी डाल देते हैं, और थोड़ा सा गरम करते हैं। ऐसा करनेसे दूध फिर फट जाता है।

दूधका खोया

बङ्गालियोंकी मिठाई दूधके फटेसे बनाई जाती है। यह हमारे यहाँके खोयेकी मिठाईसे अधिक पाचक समझी जाती है। पर बंगाली मिठाई कई दिनों सुरक्षित नहीं रखी जा सकती। साधारणतया चार पांच दिनमें हो यह खट्टी होने लगती है और इसमेंसे सड़नेकी सी दुर्गन्ध आने लगती है। इसका कारण यह है कि दूधका छना बनानेके लिये दूध को साधारणतया गरम कर लेना ही काफी होता है। किसी उच्च तापक्रम पर देर तक गरम करनेकी आवश्यकता नहीं होती है। ऐसी अवस्थामें दूध के कीटाणु पूर्णतया नष्ट नहीं होने पाते। इनकी प्रक्रियासे ही दो तीन दिनमें बङ्गाली मिठाई विकृत होने लगती है।

खोयेकी मिठाई-बर्फ़ी, पेड़ा आदि-महीनों सुरक्षित रह सकती हैं। इसका कारण यह है कि खोया उच्च तापक्रम पर देर तक भूना जाता है, और इस प्रकार दूध में स्थित सभी कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। खोया बनानेकी साधारण विधि यही है कि कड़ाहीमें दूधको उबालते हैं, धीरे धीरे इसका पानी कम होता जाता है। दूध से रबड़ी बनती है और फिर और आगे गरम करनेसे रबड़ी सूख जाती है और खोया शेष रह जाता है। गाय या भैंसके सेर भर दूधसे चार या पांच छटांक खोया प्राप्त होता है।

पनीर

पनीरका कुछ उल्लेख कर देना आवश्यक है यद्यपि इसका व्यवहार हमारे देशमें नहीं होता है। विदेशोंमें (यूरोप और अमरीकामें) पनीर खानेकी बहुत प्रथा है और लोग इसे बड़े स्वादसे खाते हैं। इङ्गलैण्डकी चेड्डर विधि (Cheddar process) का इसके बनानेमें बहुधा व्यवहार किया जाता है।

रैनेटका हम पहले उल्लेख कर आये हैं। रैनेट या रैनिन बछड़ोंकी श्लेष्मिक कलासे बहुधा प्राप्त किया जाता है। इनकी पेटकी अंतड़ियोंमें भी यह होता है। पनीर बनानेके कारखानेमें इसका बहुत व्यवहार किया जाता है। यह एक विशेष प्रकार का कीटाणु है। पनीर बनानेमें दूधका तापक्रम ८२°—८६° फ रखते हैं और फिर इसमें थोड़ासा रैनेट डाल देते हैं। ऐसा करनेसे दूध फ़ौरन फटने लगता है। इसका छना या फटा पृथक् कर लेते हैं और पसेव फेंक देते हैं। छनाका पानी सब निचोड़ देते हैं। इसकी टिकिया सी बना ली जाती है। इसे फिर ६८° या १००° फ (३७°श) तापक्रम पर रखा जाता है जिससे कुछ पानी और निचुड़ जाता है। अब इसमें इच्छानुसार नमक मिला देते हैं। इसके मिला देनेसे कुछ तो स्वाद आ जाता है और छना और सख्त पड़ जाता है। इसके पश्चात् ५—६ सप्ताहों तक इसे रख छोड़ा जाता है। इस समयमें कीटाणुओं द्वारा छना विकृत होने लगता है। विदेशियोंका विचार है कि इस प्रकारके विकृत होने या सड़नेसे छनेमें विशेष स्वाद या सुगन्ध आने लगती है। हमारे ऐसे भारतीय तो इसे दुर्गन्ध ही कहेंगे। अस्तु, इस प्रकारके विकृत पदार्थका नाम ही पनीर है। लोग इसे बड़े चावसे खाते हैं। पनीर साधारण दूध दही या छने की अपेक्षा अधिक पाचक समझा जाता है।

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

मध्यमाधिकार ... ... ॥=)

स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)

त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

चन्द्रग्रहणाधिकारसेउदयास्ताधिकारतक १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

११—आलु—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१२—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१३—ज्वर निदान और शुश्रुषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ।)

१४—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१५—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १।

१६—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१७—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)।

१८—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी. तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)

१९—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)

२०—साधारण रसायन—ले० श्री० सत्यप्रकाश एम० एस-सी० ... ... २॥)

२१—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, प्रथम भाग—ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी० ... ॥)

२२—बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखा गणित—ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी० ... १।)

२३—सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन—ले० श्री० युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी० ... =)

२४—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग ... १॥)

२५—समीकरण मीमांसा दूसरा भाग—ले० स्वर्गीय श्री पं० सुधाकर द्विवेदी ... ॥=)

पता—मंत्री विज्ञान परिषत्, प्रयाग।

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

पूर्ण संख्या—
१६३

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. **Reg. No. A. 708.**

भाग ३३
VOL. 33.

वृष, संवत् १९८७

संख्या २
No. 2

मई १९३१

प्रयागकी विज्ञान परिषत्का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३३ } वृष, संवत् १९८८ { संख्या २

फुफ्फुस-यक्ष्मा

[ले० डा० कमला प्रसाद जी, एम० बी०]

(Pulmonary Tuberculosis)

(राज-यक्ष्मा, क्षय, कफ क्षय, सिल, तपेदिक इत्यादि)

(Pthisis, Consumption Etc.)

इसके तीन भेद माने जाते हैं:—

(१) नूतन फुफ्फुस यक्ष्मा (Acute Pneumonic Tuberculosis) वा सद्यः क्षय (Acute Pthisis)

(२) जीर्ण व्रणमय-यक्ष्मा (Chronic ulcerative tuberculosis)

(३) सौत्रिक यक्ष्मा (Fibroid tuberculosis)

इनमें (२) और (३) जीर्ण रोग होते हैं और (१) नितान्त नूतन रोग है। इसके अतिरिक्त फुफ्फुस यक्ष्मा के दो नूतन रूप और भी देखे जाते हैं जैसे—

(क) नूतन श्वासनल फुफ्फुस प्रदाहीय यक्ष्मा (Acute Broncho-pneumonic Tuberculosis)

(ख) नूतन बहुसंख्यक फुफ्फुस यक्ष्मा (Acute miiliary tuberculosis of the lungs)

(सब से अन्तिम प्रकार के रोग का वर्णन हो चुका है।)

(१) नूतन फुफ्फुस-प्रदाहीय यक्ष्मा (Acute Pneumonic Tuberculosis)

अंग विकृति

फुफ्फुस का बहुधा एक अंश (पिण्ड—Lobe) क्षत-ग्रस्त होता है। सारे फुफ्फुस पर आक्रमण बहुत कम देखा जाता है। छोटे २ गर्त्त पाये जाते हैं अथवा कुछ ऐसे क्षेत्र मिलते हैं जिनमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है। आक्रान्त स्थान ठोस, भारी वायु रहित भूरे वा यकृत के रंगका हो जाता है। बहुसंख्य-यक्ष्माका कोई चिह्न नहीं पाया जाता। गांठें उसी अंशमें वा अन्य फुफ्फुसमें भी वर्तमान रहती हैं।

रोग स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंमें ही अधिक देखा जाता है।

लक्षण

रोगीका स्वास्थ्य पहले बहुत अच्छा रहता है। रोग सहसा कुछ शीतके साथ आरम्भ होता है। ऐसे भी रोगी मिलते हैं जिनमें कुछ पहलेसे शारीरिक ह्रास के कारण वर्तमान हों। जाड़ेके उपरान्त जोरका ज्वर हो आता है। वक्षस्थलमें पीड़ा होती है, खांसी होती है, पहले तो उजले रंगका खखार निकलता है किन्तु पीछे उसमें कुछ सुर्खी आ जाती है (अर्थात् रक्त निकलता है) और परीक्षा करने पर उसमें यक्ष्मा-कीटाणु पाये जाते हैं।

चिह्न

परीक्षा करने पर पता चलता है कि फुफ्फुसका क्षत अङ्ग कठोर हो गया है। ठोकने पर झंकारकी अनुपस्थिति (Dullness) ज्ञात होती है। स्वर झंकारकी अधिकता होती है। श्वासके आरम्भमें एक सूक्ष्म झर्झर शब्द और अन्तमें नलाकार श्वसन् सुन पड़ता है।

इस समय तक चिकित्सकको तनिक भी इस बात का सन्देह नहीं होता कि रोग साधारण फुफ्फुस प्रदाह न होकर यक्ष्मा कृत फुफ्फुस प्रदाह है, किन्तु आठवें वा दसवें दिनके उपरान्त ज्वरके एकाएक उतर जानेके बदले (जैसा कि साधारण फुफ्फुस प्रदाहमें देखा जाता है) रोगीकी दशा और भी खराब होजाती है। ज्वरकी गति अनियमित हो जाती है तथा नाड़ी तेज़ हो जाती है। पसीना आता है और खखारमें कुछ पीबका सा अंश जान पड़ता है तथा इसका रंग हरा हो जाता है। "दूसरे वा तीसरे सप्ताह तक भी इन लक्षणोंके वर्तमान रहते हुए चिकित्सक अपनेको इस विचारसे सान्त्वना देनेकी चेष्टा करते हैं कि रोग वास्तवमें फुफ्फुस-प्रदाह ही है किन्तु अभी तक द्रवित (Resolved) नहीं हो सका है और इसका अन्त अच्छा ही होगा। किन्तु धीरे २ लक्षणों और चिह्नों की प्रबलता द्वारा इस बात का पता चलना कि फुफ्फुस तन्तु घुल रहा है तथा लचकीले * तन्तुओं एवं यक्ष्मा-कीटाणुओंका खखारमें पाया जाना इस बातके शोकजनक प्रमाण मिलते हैं कि रोग वास्तवमें यक्ष्माकृत नूतन फुफ्फुस प्रदाह है।" मृत्युका पर्दा पड़ते अधिक देरी नहीं लगती—छठें दिनसे लेकर दो मासके भीतर यह कार्य्य समाप्तहो जाता है।

निदान।

कुछ ऐसे प्रमाण मिल सकते हैं जो इसे फुफ्फुस प्रदाह (Pneumonia) से पृथक् कर सकते हैं किन्तु वे इतने पुष्ट नहीं होते कि ८। १० दिनों के भीतर किसी पक्षको समर्थन करनेमें सहायता करें। वे ये हैं—

(क) पारिवारिक वा निजका पूर्व इतिहास—किसी प्रकार यक्ष्मा आक्रान्त होनेकी सम्भावना थी वा नहीं।

(ख) बहुत आरम्भसे ही ताप परिमाण (तापक्रम) की अनियमितता।

(ग) ठोस स्थानोंमें श्वास-शब्दकी क्षीणता वा अनुपस्थिति—न कि नलाकार श्वसन् जैसा कि फुफ्फुस प्रदाह में सुना जाता है।

---

* ये फुफ्फुसके असली तन्तु हैं जो कटकट कर खखार के साथ निकल आते हैं।

(घ) खखारमें यक्ष्मा कीटाणुओंका पाया जाना—किन्तु ये १० दिनोंके पहले नहीं मिलते।

(ङ) गर्त्त-निर्माणके चिह्न।

नूतन श्वासनल फुफ्फुस प्रदाहीय यक्ष्मा (Acute Bronchopneumonic Tuberculosis)

अङ्ग विकृति।

नग्न-चाक्षुष दृश्य—

(क) फुफ्फुस भूरे रंगकी गांठोंसे भर जाता है वा रोग कुछ जीर्ण हुआ तो उसमें (फुफ्फुस में) छोटे २ गर्त्त भी पाये जाते हैं जिनमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है।

(ख) बिखरे हुए छोटे २ रुखड़े गर्त्त देखे जाते हैं।

(ग) इनके मध्यस्थ फुफ्फुस-तन्तु लाल और ठोस हो जाते हैं, इनमें वायु भरी रहती है या ये सूज जाते हैं।

(घ) पुराने गर्त्त वा क्षत का होना सम्भव है।

(ङ) पुरानी श्वास प्रनालियों में पीबको सी श्लेष्मा भर जाती है।

(च) फाइब्रिन-युक्त फुफ्फुसावरण प्रदाह वर्त्तमान रहता है।

(छ) श्वासनल मध्यस्थ लसीका ग्रंथियां बड़ी हो जाती हैं, एवं उनमें अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है।

अणुवीक्षण-दृश्य।

क्षत स्थानमें अधःक्षेपण क्रिया-युक्त नूतन श्वास नल फुफ्फुस-प्रदाह होता रहता है जो क्षुद्र श्वास-प्रनालियोंसे (Bronchioles) से आरम्भ होता है। निकटतम वायुस्थानों (alveoli) में भी प्रदाह आरम्भ हो जाता है तथा ये क्रियायें चारों ओर अग्रसर होती पाई जाती हैं। क्षुद्रकेन्द्रमें निम्न-लिखित परिवर्त्तन पाये जाते हैं—

(क) केन्द्रस्थ श्वासप्रनाली—इसकी दीवारें मोटी हो जाती हैं और इससे अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है। इसके भीतर अधःक्षेप इकट्ठे रहते हैं।

(ख) निकटतम वायुस्थान (alveoli)—ये अधःक्षेपण क्रिया द्वारा नष्ट हो जाते हैं और उनमें न्यूनाधिक सौत्रिक तन्तुओं का समावेश हो जाता है।

(ग) उपर्युक्त स्थानोंके चारों ओरके वायु-स्थान—इनकी दीवारें मोटी हो जाती हैं और इनमें प्रदाहोद्भूत पदार्थ (Inflammatory products) भर जाते हैं तथा स्थान स्थान पर अधःक्षेपण क्रिया भी प्रारम्भिक रूपमें देखी जाती है।

(घ) बाहरी प्रान्तके वायु स्थान—एकदम अपरिवर्तित रहते हैं, या इनमें कुछ प्रदाहके प्रमाण मिलते हैं।

लक्षण।

रोग युवावस्थामें ऐसे व्यक्तियों पर आक्रमण करता है जो देखनेमें तो पूर्ण स्वस्थ हों किन्तु अधिक परिश्रम वा अन्य किसी कारणवश जिनकी शक्ति बहुत क्षीण हो गई हो। किसी किसी रोगी में यह रक्तक्षरणके साथ आरम्भ होता है। बारम्बार कँपकँपी होती है—जाड़ा आता है। ज्वर अधिक रहता है, नाड़ीकी गति तेज हो जाती और सांस तेजीसे चलती है। मांश पेशियां एवं शारीरिक शक्तिका ह्रास हो जाता है।

चिह्न।

आरम्भ में कुछ स्पष्ट रूपसे ज्ञात नहीं होता। कुछ समयमें बाद क्षतस्थानकी साधारण झंकार (Normal resonance) कम हो जाती है—विशेषकर फुफ्फुसके शिखर पर। श्वास-शब्द कर्कश एवं नलाकार हो जाते हैं और उनके साथ २ बहुत से राल्स सुने जाते हैं। आरम्भसे ही खखारमें कुछ लचकीले तन्तु और यक्ष्मा-कीटाणु पाये जाते हैं। तीन सप्ताहके भीतर (किसी २ रोगी में) त्रिदोष दशा—(Typhoid state) उपस्थित होती है—

रोगी अर्थ-हीन बातें बकता है, उसको जीभ सूख जाती है और ज्वरका वेग अधिक हो जाता है। मृत्यु तीन सप्ताहके बहुधा भीतर ही हो जाती है।

दूसरे प्रकारके रोगी भी मिलते हैं जिनमें आरम्भ तो बड़े धूमधामसे होता है—ज्वर बहुत रहता है, मांस पेशियां एवं शारीरिक शक्ति का शीघ्रता पूर्वता क्षय होता जाता है, एक वा दोनों फुफ्फुसोंके रोगाक्रांत होनेके चिह्न मिलते हैं, फुफ्फुस तन्तु घुलते जाते हैं, पसीना बहुत आता है और रह रह कर कँपकँपी होती है—किन्तु ६ से ८ सप्ताहके भीतर ये लक्षण कुछ दब जाते हैं और ऐसा ज्ञात होता है मानो रोगी रोगयुक्त हो किन्तु वास्तवमें रोग जीर्ण हो जाता है।

बच्चोंमें यह रोग किसी संक्रामक रोग—जैसे पनसाही माता (Measles) वा कुक्कुर-खांसी इत्यादि के आक्रमणके उपरान्त आरम्भ होता है। इन रोगियोंमें रोगको तीन गति हो सकती हैं—आरम्भसे इतना भीषण हो सकता है कि मृत्यु एक सप्ताहके भीतर ही भीतर हो जाती है, वा एक वा दूसरे मासमें हो जाती है, वा रोग जीर्ण हो जाता है।

(२) जीर्ण व्रण-मय फुफ्फुस-यक्ष्मा—(Chronic ulcerative Tuberculosis of the lungs) *

क्षय की तीन अवस्थायें—(टर्बनके अनुसार)

प्रथमावस्थामें—रोग चिह्न एक फुफ्फुसके एक अंशमें मिलते हैं।

द्वितीयावस्थामें—रोग चिह्न एक फुफ्फुसके एक वा दो अंशोंमें मिलते हैं।

तृतीयावस्थामें—रोग चिह्न दोनों फुफ्फुसके कई अंशोंमें वर्त्तमान रहते हैं एवं गर्त्त निर्माणके चिह्न भी पाये जाते हैं।

इसे निम्नलिखित तीन अवस्थाओंमें भी विभक्त कर सकते हैं।

अंग विकृति	चिह्न	लक्षण
प्रथमावस्था फुफ्फुस तंतुओंमें अधिक रक्त संचार होता रहता है।	फुफ्फुसके शिखर पर— (क) श्वास शब्द (Respiratory murmur) दबा रहता है और अन्तः श्वसन् के अन्तमें तीक्ष्ण कुर्कुराहट (Sharp crepitation) मिलती है। (ख) श्वास शब्द कर्कश (harsh) हो जाता है और बहिश्र्वसन् का शब्द बहुत देर तक सुन पड़ता है।	(क) काम करने पर अधिक थकावट होती है। (ख) भोर के समय कुछ खाँसी होती है। (ग) तापक्रम कुछ बढ़ जाता है। (घ) रक्तक्षरण (ङ) रक्तक्षीणता } किसी २ रोगीमें देखी जाती है।
द्वितीयावस्था रक्ताधिक्य, अधिक द्रव-संचार और यक्ष्मा केन्द्रोंके आपस में मिल जानेके कारण फुफ्फुस-तन्तु ठोस हो जाते हैं।	क्षत स्थानमें (विशेष कर शिखर पर)— (क) वक्षस्थल की गति (सांस लेने वा फेंकने के समय) अवरुद्ध हो जाती है (ख) उस स्थानमें वक्षस्थल समतल हो जाता है। (ग) स्वर-स्पन्द कुछ अधिक हो जाता है	(क) मांस पेशियों की क्षीणता तथा शक्ति का ह्रास स्पष्ट हो जाता है। (ख) संध्या समय निश्चित रूप से ज्वर हो आता है। (ग) रात को पसीना आता है (घ) रक्तक्षीणता अच्छी तरह झलकती है।

* साधारणतः फुफ्फुस-यक्ष्माके नामसे जो रोग जगत्-प्रसिद्ध है, वह यही है।

अंग विकृति	चिह्न	लक्षण
	(घ) वक्षस्थलको ठोकने पर उसने भद्भद् शब्द निकलता है (अर्थात् साधारण झंकार लुप्त हो जाता है । (ङ) नलाकार श्वसन् पाया है । (च) उच्चारण-स्वर-झंकार की अधिकता होती है *	
तृतीयावस्था फुफ्फुस तंतु का घुलना तथा गर्त्त निर्माण	उपर्युक्त चिह्न तो वर्त्तमान रहते ही है, इनके अतिरिक्त (क) रुकते हुए रालस (Clicking rales) पाये जाते हैं (ग) गर्त्त-चिह्न मिलते हैं, जैसे – गर्त्त श्वसन् (Cavernous Breathing) = श्वासान्ताकर्षण शब्द (Post tussic suction sound) ≡ पेक्टोरीलोकी (Pectorilogy)— अर्थात् उच्चारण-स्वर झंकार की अत्यन्त अधिकता । ऐसे रालस जिससे धातुके से शब्द निकलते हैं पाये जाते हैं।	पूर्व कथित लक्षण और भी भयङ्कर रूप धारण करते हैं तथा— (क) खांसी कष्ट-प्रद हो जाती है खखार रुपये का आकार धारण कर निकलना है । रक्तक्षरण की अधिकता देखी जाती । (ख) ज्वरका वेग बढ़ जाता है (ग) कभी अतिसार इत्यादि अन्त्र सम्बन्धी लक्षण उपस्थित होते हैं ।

रोगारम्भ की भिन्न २ रीतियां †—

(क) अप्रकट रूप—इस प्रकारके बहुतसे रोगी मिलते हैं। ये कुछ न कुछ पहले से भी अस्वस्थ रहते हैं, अवश्य पर इन्हें इस बात का पता नहीं लगता। किसी रोगी का पूर्व इतिहास संकलित करने पर बहुधा ऐसा देखा जाता है कि उसे कई बार इस प्रकारके क्षुद्र आक्रमण हो चुके थे। वास्तवमें रोग तब तक अपना रूप नहीं दिखाता जब तक यह एक दम भयंकर नहीं हो जाता—कभी २ तो जब तक फुफ्फुसमें कोई गर्त्त नहीं हो जाता तब तक रोगी किसी चिकित्सकका परामर्श तक लेने नहीं जाता। किसी २ रोगीमें यह भी देखा जाता है कि उसका कोई अंग अन्य कारणोंसे इतना क्षतग्रस्त हो गया है कि यद्यपि वह फुफ्फुस यक्ष्मा द्वारा भी आक्रान्त रहता है किन्तु उसका ध्यान इस ओर नहीं आकर्षित होता।

(ख) अपच और रक्तक्षीणताका रूप—इस रूपमें रोगके आरम्भमें वमन, खट्टे डकार आना इत्यादि लक्षण मिलते हैं। अल्प-वयस्का स्त्रियोंमें रक्त-क्षीणता देखी जाती है और रोगिणी कलेजेके धड़कने, बढ़ती हुई कमजोरी, तीसरे पहरको कुछ बुखार आने तथा ऋतुस्रावके बन्द हो जाने की शिकायत करती है।

(ग) म्लेरिया रूप—इस रूपमें रोगके निदानके लिए भारतीय चिकित्सकोंको बड़े संकटका सामना करना पड़ता है। निर्धारित रूपसे जाड़ा आता है। तदुपरान्त ज्वरका प्रकोप होता है और पुनः

* उच्चारण-स्वर झंकारकी कमी वेशी शब्द परिचायक यन्त्र द्वारा जानी जाती और स्वर-स्पन्दन की न्यूनाधिकता का पता केवल "स्पर्श" से चलता है। इस अध्याय का आरम्भ देखिये।

† निदान प्रकरण भी देखिये।

पसीनेके साथ २ ज्वर उतर भी जाता है। यह क्रिया बारम्बार दुहराई जाती है। बड़ी भूल यह होती है कि किसीका ध्यान फुफ्फुसकी ओर नहीं जाता और चिकित्सक मान बैठते हैं कि रोग वास्तवमें एक विकट मलेरियाका ही प्रकोप है।

(घ) फुफ्फुसावरण-प्रदाह-रूप—सर्व प्रथम फुफ्फुस शिखर पर शुष्क आवरण-प्रदाह पाया जाता है तथा उस स्थानमें सदैव घर्षण शब्द भी मिलता है। कभी २ यह प्रदाह द्रवमय भी होता है। द्रव धीरे २ लुप्त हो जाता है किन्तु खांसी बना रहती है, ज्वर आता रहता है और किसी न किसी दिन यक्ष्मा के सारे चिह्न फुफ्फुस-शिखर पर प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकारके एक तिहाई द्रव-युक्त प्रदाह अन्तमें यक्ष्माका रूप धारण करते हैं।

(ङ) स्वरनल-प्रदाह रूप— इस रूपमें भी बहुत से रोगियों में रोग प्रकट होता है। पहले कंठ दुखना, बोलते समय साँय २ करना इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं।

(च) रक्तक्षरणके साथ आरम्भ—बहुधा देखा जाता है कि आरम्भमें कुछ रक्त क्षरण हुआ और तदुपरान्त फुफ्फुस-सम्बन्धी और लक्षण बहुत शीघ्रता पूर्वक उपस्थित हुए। किसी २ रोगीमें बारम्बार रक्तक्षरण होता है और तब अन्य लक्षण प्रकट होते हैं। परन्तु यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि जिस दिन फुफ्फुससे रक्तक्षरण होता है, वास्तवके रोगी उसी दिनसे यक्ष्मा ग्रस्त रहता है। रक्त मिश्रित खखार आनेका भी यही तात्पर्य है।

(छ) गलस्थ एवं कक्षस्त ग्रन्थियोंके यक्ष्माके साथ आरम्भ—कभी कभी महीनों या बरसों बीत जाते हैं किन्तु केवल ये ग्रन्थियां ही बड़ी हुई दिखाई पड़ती हैं तथा फुफ्फुस सम्बन्धी कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ते किन्तु ऐसी अवस्थामें प्रायः देखा जाता है कि जिस ओर को ग्रन्थियां बड़ी हो जाती हैं उस ओरके फुफ्फुस-शिखरका एक बड़ा अंश यक्ष्माक्रान्त रहता है।

(ज) वात लक्षणोंके साथ रोगारम्भ—किसी काममें चित्त नहीं लगता, "तबीयत खराब रहती है।" थकावट एवं अन्य अनिर्धारित वात लक्षण उपस्थित होते हैं। साथ २ शरीर क्षीण होता जाता है। अन्त में यक्ष्मा के चिह्न मिलते हैं।

(झ) श्वास प्रनाली सम्बन्धी लक्षणोंके साथ—सर्वाधिक इसी प्रकारके रोगी पाये जाते हैं। ऐसे रोगी साधारणतः शिकायत करते हैं कि "कुछ सर्दी लग गई है" वा " सर्दी खांसी हो गई है। किन्तु धीरे २ यही खांसी बढ़ती जाती है तथा परीक्षा करने पर फुफ्फुसमें यक्ष्माके चिह्न मिलते हैं। किसी २ रोगीमें आरम्भमें ऐसे लक्षण उपस्थित होते हैं मानों उन्हें दम्मा हो गया हो।

(ञ) विविध रूप—जैसे

किसी नूतन संक्रामक रोग (उदाहरणार्थ इन्फ्लूयेंज़ा) के उपरान्त यक्ष्माका आरम्भ हो सकता है।

गर्भवती होने पर अथवा प्रसवके उपरान्त इसका आरम्भ हो सकता है।

अर्श इत्यादि रोगोंके साथ २ इसका आरम्भ हो सकता है।*

लक्षण।

लक्षण अंगविकृतिका अनुसरण नहीं करते, क्योंकि बहुधा देखा जाता है कि अंगविकृतिकी तृतीयावस्थामें (जिस समय एक बड़ा गर्त्त तैय्यार हो जाता है) रोगी प्रथमावस्थाकी अपेक्षा भी अच्छी दशामें रहता है और यह आशा की जाती है कि वह चंगा हो सकेगा।

स्थानीय लक्षण।

पीड़ा—आरम्भसे ही अधिक एवं कष्ट प्रद होती है अथवा किसी २ रोगीको होती ही नहीं। जब आवरण प्रदाह होता है तब नश्तर चुभाने की सी पीड़ा मालूम होती है जो सदैव बनी रहती है अथवा खांसनेके समय होती है।

*साधारणतः प्रसूत रोगके नामसे जिन रोगोंकी गुप्त रखनेकी चेष्टाकी जाती है, उनमें एक यक्ष्मा भी है।

खांसी—बहुत आरम्भसे लेकर मरण पर्यन्त प्रायः सभी रोगियोंको होती है। पहले यह एक दम सूखी हुई होती है तथा रोगीका इसकी ओर ध्यान भी आकृष्ट नहीं होता, किन्तु बादको कुछ ढीली हो जाती है, निरन्तर बनी रहती है तथा पीले रंगका खखार भी निकलने लगता है।

आरम्भमें खाँसीकी उत्पत्ति श्वास प्रनालीके प्रदाहसे होती है। जब गर्त्त निर्माण हो जाता है तब यह नियमित समय पर होती है और भोरके समय अथवा दिनके किसी भागमें सो कर उठने पर जोर पकड़ती है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि किसी २ रोगीको खांसी नहीं भी होती तथा ऐसे रोगी भी मिलते हैं जिनके फुफ्फुसमें गर्त्त-निर्माण तक हो जाता है किन्तु उन्हें एक बार भी खांसी नहीं हुई है। यक्ष्माके वास्तविक रोगियों को जब नियमित समय पर खांसी होने लगती है तब बहुधा रात ही को उन्हें सताती है जिससे रातके समय उनका सोना मुश्किल हो जाता है। कभी कभी खांसीके कारण वमन भी हो जाता है और तब आहार के अभावसे रोगीका शारीर-दौर्बल्य और भी बढ़ जाता है। यदि फुफ्फुसाक्रमणके साथ स्वर-नल भी आक्रान्त हुआ तो खांसी साँय साँय स्वरके साथ होती है।

खखार (बलगम)—यह रूप रंग एवं परिमाण में रोग की भिन्न २ अवस्थाओंके साथ २ बदलता है। कभी २ फुफ्फुस-शिखर पर विस्तीर्ण यक्ष्मा-क्षतके वर्त्तमान रहते हुए खखारका पता नहीं रहता, यद्यपि खांसी कुछ न कुछ अवश्य होती है। यक्ष्मा के खखार की विशेषतायें हैं—खूब चिकनापन, साबूदाने का सा रूप और उसमें कभी २ छोटे २ भूरे वा कुछ हरे रङ्गके दानों का पाया जाना। सम्भवतः इन्हीं दानोंमें यक्ष्मा कीटाणु पाये जा सकते हैं। ज्यों २ फुफ्फुस तन्तु घुलते जाते है त्यों २ खखार पीवका रंग रूप धारण करता हैं थोक का थोक खखार निकलता है जो चिकना, चिपटा, वायुरहित (जलमें डालने पर डूब जाता है) और हरे तथा भूरे रंग का होता है।

अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा इस बातका पता चल सकता है कि इसमें यक्ष्माकीटाणु हैं वा नहीं तथा फुफ्फुस तन्तु घुल रहे हैं वा नहीं। कीटाणु के आकार प्रकार एवं परीक्षा विधिका विस्तार पूर्वक वर्णन पहले ही हो चुका है। खखारमें इन्हें पानेके लिए यह आवश्यक है कि रोगीके खखारकी कई बार लगातार परीक्षा की जाय। इसमें यक्ष्मा कीटाणुका बारम्बार पाया जाना इस बातका पुष्ट प्रमाण है कि रोगीका फुफ्फुस यक्ष्माक्रान्त हो चुका है।

खखार के साथ कभी २ लचकीले तन्तु (Elastic Tissue) निकलते हैं और ये जिन स्थानों (वायुस्थानों) से आते हैं उनका आकार धारण कर लेते हैं, अस्तु इनकी परीक्षासे इस बात का कुछ कुछ ज्ञान हो सकता है कि आक्रमण कहाँ पर हुआ है।

खखारके साथ साथ कभी खटिकके टुकड़े (Fragment of calcium) भी छुट कर चले आते हैं जो आकारमें मटरके दाने वा इससे कुछ बड़े होते हैं। इनकी संख्या बहुधा (एक समय में) एक ही होती है किन्तु कभी २ अधिक संख्यामें भी निकल सकते हैं। ये वास्तवमें उस स्थान से छूटते हैं जहां अधःक्षेपण क्रियाके उपरान्त खटिक जमता रहता है तथा उस स्थानके समीपवर्ती किसी श्वासप्रणालीके नष्ट हो जानेके कारण इन्हें बाहर निकलनेका अवसर मिलता है।

खखारका परिमाण निर्धारित नहीं रहता, कभी कभी प्रतिदिन ५०० घन शतांशमीटर तक पहुँच सकता है। गर्त्त-निर्माण होने पर खखार का सबसे बड़ा अंश भोरके समय ही निकल जाता है। खखार भारी और मीठी महकका होता है किन्तु जब फुफ्फुस तन्तु सड़ने लगते हैं तब इससे दुर्गंध आती है। (क्रमशः)

आविष्कारका इतिहास

१—प्रारम्भिक आविष्कार

[ले० श्री जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी भूषण, विशारद]

आज हम जिस युगमें रहते हैं वह आविष्कारका युग कहलाता है। पिछली तीन चार सदियोंमें मनुष्य ने इतनी अधिक आश्चर्यजनक वस्तुओंको जन्म दिया है कि हम उन्हें देख कर चकित हो जाते हैं। सचमुच इन वस्तुओंके आविष्कार ने संसारका रूप बिल्कुल ही परिवर्तित कर दिया है परन्तु क्या आविष्कार की कहानियाँ प्रारम्भ करनेके लिए हमें पिछली तीन चार शताब्दियोंका ही मुँह देखना होगा? यद्यपि इन शताब्दियोंमें विलक्षण आविष्कार हुए हैं तथापि आविष्कार की कहानियाँ उस युगसे प्रारम्भ होती है जब मनुष्य ने भूतल पर पहले पहल सभ्यता का जन्म दिया। एक समय वह था जब मनुष्य सृष्टिके आरम्भमें बिल्कुल वनचरावस्थामें था। उसे अपनी आवश्यकताकी सभी वस्तुओंको जन्म देना था। उस आदि युगसे आज तक मानव जाति ने जितनी वस्तुओंको आविष्कृत किया है उनको उपयोगमें लाकर हम अपना सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं।

प्रारम्भिक कालसे आधुनिक काल तक मनुष्यों ने जितने आविष्कार किए हैं उनसे ही मानव सभ्यताको आजका रूप मिला है। ये दोनों काल एक ऐसी शृंखलासे आवद्ध हैं जिसकी प्रत्येक कड़ीको मनुष्यों ने सतत उद्योग कर नाना प्रकारके संकटों का सामना करते हुए बड़े धैर्यसे जोड़ा है। मानव जीवनके अभ्युदयके लिए इस शृङ्खलाको इस युग तक पहुंचानेमें जिन असंख्य आविष्कारकों ने योग दिया है उनके हम सदाके लिए आभारी रहेंगे। मनुष्य जीवनको अधिक सुन्दर रूप देनेके लिए इन पुरुषों ने जो भाव अपने हृदयमें रख किसी भी प्रकारका आविष्कार कर अपनी कीर्ति अक्षुण्ण रक्खा है उनका स्मरण कर प्रत्येक समय मनुष्य एक अलभ्य आनन्द प्राप्त किए बिना नहीं रह सकते। इन आविष्कारकों के उपकार का मानव समुदायके ऊपर इतना अधिक ऋण है कि उसका यथार्थ अनुभव कर सकना बड़ा ही कठिन है। आज हमारे चारों ओर जितनी भी सुखकी सामग्रियाँ वा दैनिक व्यवहार की अत्युपयोगी वस्तुएँ जिनके बिना हमारा जीवन कार्य चलना कठिन हो जाय, उपस्थित हैं उनमेंसे प्रत्येक प्राचीन वा अर्वाचीन कालके किसी न किसी आविष्कारक की सदाशयताका प्रसाद ही है। यदि इन्होंने कठिन परिश्रम कर मानव जातिके लिए एक नूतन वस्तु ढूँढ़ निकालनेको उदारता न की होती तो कदाचित हम वनचरावस्थामें ही पड़े होते। यथार्थमें आविष्कारका इतिहास मानव सभ्यता का इतिहास है।

जिन व्यक्तियों ने हमारे लिए इतना उपकार किया है उनके प्रति हम इतने अकृतज्ञ हैं कि हम आज उन सबका नाम तक बता सकनेमें असमर्थ हैं। जिन पुरुषों ने संसार के साथ इतना उपकार कर उसके बदलेमें अपना नाम तक लोगोंके स्मृति पट पर स्थायी रखने की चिन्ता न कर अपने को अतीत कालमें विलीन कर दिया उनको श्रद्धापूर्वक स्मरण किये बिना हम नहीं रह सकते। किसी आविष्कार को पूर्ण करने के लिए मनुष्य को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वे थोड़ी नहीं हैं। जिस प्रकार किसी भी महान कार्यके लिए मनुष्यको निरन्तर कठिनाइयों का समाना कर बड़े धैर्य और संतोषके साथ उसे पूर्ण करनेका उद्योग करना पड़ता है, कभी इसके लिए जीवन तक भी उत्सर्ग कर देना पड़ता है कभी उसी कार्यके लिए एक मनुष्यकी प्राणाहुतिके पश्चात् दूसरे तीसरे अन्य पुरुषोंको उसे पूर्ण करनेके उद्योगमें लगना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार अधिकांश आविष्कारकों को अपने आविष्कारके लिए कठिन साधना करने पर उसे सफलता

मिलती है, कभी आविष्कारके पीछे उसका सारा जीवन ही नीरस हो जाता है और मृत्युके निकट पहुँचते सफलता मिल जाती है। कभी जीवन समाप्त हो जाने पर दूसरे तीसरे व्यक्तिके उद्योग करने पर वह आविष्कार पूर्ण होता है। इन आविष्कारकोंके ऐसे ही कठिन उद्योगसे अब तक नाना प्रकारके आविष्कारोंका जन्म हो सका है जिनसे मानव सभ्यता का विकास हुआ है।

इन आविष्कारोंमेंसे मनुष्य ने किनको सबसे प्रथम किया इसका बता सकना बड़ा कठिन है परन्तु बिलकुल प्रारम्भिक कालमें मनुष्यकी जैसी अवस्था थी उससे ऊपर उठनेके लिए प्राथमिक सभ्यता का जन्म देनेके लिए जिन सार्व प्राथमिक आवश्यकताओं की वस्तुओं को प्राप्त करनेके लिए प्रारम्भिक आविष्कारों का आश्रय लेना पड़ा होगा उनका हम कुछ अनुमान कर सकते हैं। जब मनुष्य ने इस भूतल पर पहले पहल जन्म धारण किया तो उसकी अवस्था बड़ी ही दयनीय थी। अन्य जीवधारियों को तो प्रकृति ने संसार-यात्रा और प्राण-रक्षाके लिए उपयुक्त शरीर दिया था परन्तु मनुष्य बेचारा अशक्त प्राणी था। उसके न तो तेज दांत थे, न तीव्र नख ही थे। उसके हाथ पैर की अँगुलियाँ बहुत ही निर्बल थीं। पशुओंकी भाँति सींग का भी उसमें सर्वथा अभाव था जिससे संकटके समय शत्रुके प्रहारका उत्तर दिया जा सकता। इस प्रकार जब मनुष्य ने देखा कि प्रकृति ने इस सृष्टि में उसके शरीर को सर्वथा निर्बल बनाया है तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। यदि वह चुप लगाए रहता तो सम्भवतः अन्य पशु उसके वंशको प्रारम्भमें ही समूल नष्ट कर देते परन्तु मनुष्य ने ऐसे संकटके समय अपनी आविष्कार करने की शक्तिसे काम लेनेका निश्चय किया। अपनी रक्षाके लिए आविष्कारों का आश्रय लेनेका यह परिणाम निकला कि मनुष्य ने अपनेको सार्वभौम शासक बना कर पूर्ण पशु जगत को अपना दास बना लिया।

इस प्रकार मानव-जाति द्वारा प्रारम्भमें जो आविष्कार हुए उनमें अधिकांश ऐसे होंगे जो उसके चारों ओर फैले अन्य पशुओंसे रक्षा पाने और उनका दमन करनेके लिए ही गए किये होंगे। इन आविष्कारों ने उस कामके एक साधारण लकड़ीके टुकड़ेसे बढ़ कर आज नाना प्रकार के तलवार बरछे, और तोप गोली बन्दूक, तथा पिस्तौल और तोप जैसे विकराल आयुधों का रूप धारण कर लिया है। परन्तु इनका श्रीगणेश निश्चय ही एक साधारण लकड़ीके टुकड़ेसे हुआ होगा जब मनुष्य ने बिलकुल आदि कालमें किसी पशु को भयभीत करनेके लिए उस पर उससे प्रहार किया होगा। लकड़ीके साथ ही पत्थर वा कड़ी मिट्टी के ढेले को फेंक कर पशुओं को मारनेके पश्चात् लकड़ी को किसी चीज़से रगड़ कर बर्छी वा कोई पत्थर का टुकड़ा किसी लकड़ीमें बाँध कर मनुष्य ने कुल्हाड़ीके ढंगका बहुत साधारण हथियार बनानेमें सफलता प्राप्त की होगी। इसी प्रकारके प्रारम्भिक आविष्कार होंगे जिन पर आदि कालके मनुष्यों को संतोष करना पड़ा होगा। इन छोटी छोटी वस्तुओंको हम आविष्कार माननेमें कुछ हिचकिचा सकते हैं परन्तु इतनी छोटी वस्तुओं ने ही मनुष्यकी बुद्धिकी प्रारम्भिक विकसित अवस्था में उत्पन्न होकर मनुष्य की आवश्यकताओंके बढ़ने पर अन्य आविष्कारोंके लिए क्षेत्र तैयार किया होगा। इन छोटे आविष्कारोंके महत्व का आज हम भली भांति अनुभव नहीं कर सकते परन्तु जिस समय आजसे लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजोंमें इस भूतल पर पहले पहल पैर रखना सीखा था और उनके मस्तिष्क का विकास नहीं हो पाया था उस समय अन्य वन्य जीवों की भांति रहते हुए पहले पहल बुद्धिसे काम ले इन वस्तुओं को सोच निकालना मानव सभ्यता की पहली नींव खड़ी करना था। उनका महत्व वनचरावस्थासे प्रारम्भ होकर आज अत्यन्त उच्च स्थल पर पहुँची हुई मानव सभ्यताकी पशु वर्गसे तुलना करने पर भली भाँति प्रकट हो सकता है।

प्रारम्भिक आविष्कारोंमें आग बहुत ही महत्व-पूर्ण है। जिस समय मनुष्य ने आगको उपयोग में लाना और उसको जलाना सीख लिया होगा उस समय निश्चय ही उसकी अवस्थामें बड़ा अंतर हो गया होगा। आगके समीप रहनेसे पशु भयभीत होकर पास न फटकने लगे होंगे, शीत ऋतुमें जाड़ेका कष्ट जाता रहा होगा, भोजन पका कर खाने की सुविधा हो गई होगी और कालान्तरमें इसकी सहायतासे धातुओंको पिघला कर नित्य उपयोगमें आने वाले बर्तन और हथियार बनने लगे होंगे। परन्तु आगका आविष्कार करना इतना सुगम न होगा जितना आज हम अनुमान करते होंगे। हो सकता है कि भूमंडल पर मनुष्य के रहते सहस्रों वर्ष व्यतीत हो जाने तक भी आग का ज्ञान न हो सका हो परन्तु जब कभी जिस किसी पुरुष ने इसका आविष्कार किया उसने मानव-जातिके प्रति बड़ा ही उपकार किया है।

हम यह नहीं कह सकते कि आगका आविष्कार किसी एक विशेष स्थल पर किसी एक व्यक्ति विशेष ने ही किया क्योंकि संसारमें सभ्यता का जन्म किसी एक स्थलसे ही नहीं हुआ। आदि युगमें भूमण्डल पर छोटी बड़ी बहुत सी जातियाँ फैली हुई थीं जिनमेंसे सब एक दूसरेसे पृथक् विभिन्न स्थानोंमें रह कर धीरे धीरे अपनी उन्नति का प्रयत्न कर रही थीं। उनमेंसे कितनी जातियाँ तो बिना कुछ उन्नति प्राप्त किए ही सर्वथा विनष्ट हो गईं परन्तु कुछ ने उर्वर मस्तिष्कके कारण विशेष उन्नति प्राप्त की जिनको कालान्तरमें प्रकृति की व्याधियों ने इस संसारसे मिटा दिया। इन जातियोंमें से सब ने स्वतंत्र रूपसे पृथक रह कर ही अपनी उन्नति की जिनमें से कुछ तो साधारण अवस्था तक ही पहुँच पाईं परन्तु कुछ सभ्यताके इतने उच्च शिखर तक पहुँच सकीं कि उनका वर्णन सुन कर महान् आश्चर्य होता है। इस प्रकार की स्थितिमें यह सहज ही विश्वास होता है कि इन सब जातियों ने एक दूसरेसे पृथक् स्वतंत्र रूपसे आग का अवश्य ही आविष्कार किया होगा। संसारमें आग का अस्तित्व सृष्टि के आरम्भसे ही है। वर्षा ऋतुके आगमन पर आकाशमें बिजली सर्वत्र कौंधती दिखलाई पड़ती होगी। ज्वालामुखी के उद्गार से भूतल पर अग्निकांड दिखाई पड़ते होंगे। कभी कभी जङ्गलमें वायुके वेगसे दो लकड़ियोंके रगड़ खानेसे भी भीषण आगका दृश्य उपस्थित हो जाता रहा होगा परन्तु कठिनाई आग को आवश्यकताके समय उत्पन्न कर सकने और उसको जलती रखने की थी। जब तक मनुष्य ने आगको स्वयं उत्पन्न कर लेनेको युक्ति न निकाल ली होगी तब तक कदाचित् कहीं जङ्गलमें अपने आप आग लग जानेके कारण मनुष्य आग पाकर अपना कुछ काम चलाने लगा होगा जिसके बुझ जानेकी उसे रात दिन चिन्ता बनी रहती होगी। चकमक पत्थर वा दो लकड़ियों को रगड़ कर आग उत्पन्न कर लेने की विधि आविष्कृत हो जाने पर उसके जीवन की एक बहुत बड़ी असुविधा दूर हो गई होगी।

यदि आज हमें प्राचीन कालमें मानव-सभ्यता की प्रगतिका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता तो हम भली भाँति देख सकते कि अग्निका आविष्कार हो जाने पर मनुष्य-जाति की आविष्कार की प्रगति कितनी तीव्र हो चली परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा कोई उल्लेख प्राप्य नहीं, सभ्यता की उस सीढ़ी तक पहुँचने तक मनुष्यको लिखने पढ़नेका ज्ञान भी न हो सका होगा जिससे उस समयका कोई लिखित वर्णन मिल सके। परन्तु उस समय से निश्चय ही मनुष्य ने नाना प्रकारके आविष्कारों को बड़ी तीव्र गतिसे करना प्रारम्भ किया होगा जिससे मानव-सभ्यता बड़े वेगसे उन्नति शिखरकी ओर बढ़ने लगी होगी।

आज हम अपने चारों ओर जितने विस्मयजनक नाना प्रकारके आविष्कारों को देखते हैं यदि उनके आविष्कृत होनेके बहुत पहले आगका आविष्कार

न हो सका होता तो इनमें प्रायः सबका आज सर्वथा अभाव होता। इसी प्रकारके प्राचीन कालके आविष्कार विशेष महत्व के हैं जिनके आविष्कृत होने पर ही आविष्कार-कार्य आगे बढ़ सकता था और नई आश्चर्यजनक वस्तुओं को जन्म दिया जा सकता था। आधुनिक किसी भी कौतूहल पूर्ण आविष्कार को ले लीजिए, उस पर ध्यान पूर्वक विचार करनेसे विदित हो जायगा कि आविष्कार की उस सीमा तक पहुँचनेके लिए पूर्वकालके बहुतसे आविष्कारों का होना बहुत आवश्यक था। एक साधारण दियासलाई के बक्स को ही ले लीजिए। उसके बनानेके लिए नाना प्रकारके यन्त्रोंकी आवश्यकता होगी अतएव पहले उन यन्त्रों का आविष्कार हो चुकना आवश्यक होगा। उन यंत्रोंके लिए भी लोहा गलानेके और यन्त्र ढालनेके ढङ्गका पहले ही ज्ञात हो चुकना आवश्यक होगा। इस प्रकार छोटे बड़े सभी आधुनिक आविष्कारोंको आज कौतूहल उत्पन्न करते देख हमें पूर्वकालके उन आविष्कारों का महत्ता को भूल न जाना होगा जो यद्यपि हमारी दृष्टिमें आज बहुत ही साधारण और तुच्छ जान पड़ते हैं तथापि किसी समय वे भी आजके नूतन आविष्कारों की भांति कौतूहल उत्पन्न करने वाले थे और उनका महत्व उस समय तक रहेगा जब तक मनुष्य जाति पूर्वकालके आविष्कारोंसे आगे बढ़ कर सभ्यताको आगे पहुँचाती रहेगी।

२—प्राचीन कालके आविष्कार

भूमण्डल पर पहले पहल जन्म धारण करनेके समयसे लेकर आधुनिक काल तक मनुष्य-जाति ने इतने अधिक आविष्कार किए हैं कि उनकी गणना भी कर सकना बड़ा कठिन है। मनुष्य की आवश्यकताओं में भोजन, वस्त्र, वासस्थान रक्षा आदि जिन बातों की ओर दृष्टि डालिए उन्हींको उन्नत रूपमें देनेमें मनुष्यकी चातुरी देख विस्मय हुए बिना न रहा जायगा। क्रमशः अतीत कालसे कितनी सीढ़ियोंको पार कर उनको मनुष्य उन्नतोन्नत रूप देता आया है इसको सोच कर बड़ा ही कौतूहल होता है। प्राचीन कालकी कन्दराओं, भग्नावशेषों और भूमिके अन्दर मिली हुई मनुष्य जातिके पूर्वजों की भांति भांति की वस्तुओं की छान बीन कर पुरातत्ववेत्ताओं ने पता लगाया है कि एक समय था जब मनुष्य पशु अवस्थासे कुछ ऊपर उठ सभ्यता की अवस्थामें पहुँच कर केवल प्रस्तर खंडोंका उपयोग सीख सका था। उस समय उसके पास शरीर ढकने तथा रहने तकके साधनोंका अभाव था। पेड़के ऊपर वा खोदोंके अतिरिक्त कहीं आश्रय पा सकनेका उसे ज्ञान न था। अधिक उन्नत अवस्था होने पर उसने पशुओंके चमड़े वा पत्तोंसे शरीर ढकने का ढंग ढूँढ़ निकाला। रहने के लिए पेड़ की डालों वा खोदोंके स्थान पर घास फूस की झोपड़ियां बनाने की युक्ति ज्ञात हो सकी। धीरे धीरे अपने बुद्धि-बलसे आविष्कार करते हुए मनुष्य ने कालान्तर में इतनी उन्नति कर ली कि झोपड़ियों ने विशाल अट्टालिकाओं और चमड़े तथा पत्तोंके आच्छादनों ने सुन्दर ऊनी सूती और रेशमी वस्त्रोंका रूप धारण कर लिया जिनका आज मानव-समाज उपभोग कर उस प्राचीन युगकी मनुष्य का अवस्थाको सर्वथा ही भूल गया है जिससे ऊपर उठते उठते इस अवस्था तक पहुँचनेमें सहस्रों लाखों वर्ष लगे होंगे।

प्रस्तर युग को पुरातत्ववेत्ता दो भागोंमें विभक्त करते हैं। एक तो प्राचीन वा पुरा प्रस्तर युग दूसरे नव प्रस्तर युग। प्राचीन प्रस्तर युगमें मनुष्य केवल पत्थरके साधारण हथियारोंको बनाना और लकड़ी तथा हड्डीके नोकीले टुकड़ोंसे हथियार की भाँति काम लेना सीख सका था। भोजनके लिए जङ्गली फल फूल और वन्य पशुओंके आखेट पर ही उसे आश्रित रहना पड़ता था। उसे आगका भी ज्ञान नहीं

हो सका। नवीन प्रस्तर युगमें अवस्था विशेष परिवर्तित हो गई। इस युगमें मनुष्यों ने कई बहुत महत्वपूर्ण आविष्कार किए। इसी युगमें मनुष्य ने भूमि को जोत कर अन्न उत्पन्न करनेका ढंग ढूँढ़ निकला। यह मानव-सभ्यता की प्रगति को आगे बढ़ाने वाला एक बहुत बड़ा आविष्कार था जो कदाचित् उन सभी आविष्कारोंमें सर्वोपरि था जिन्हें मानव मस्तिष्क ने संसारके सम्मुख उपस्थित किए हैं।

आज हम लोगों की दृष्टिमें मिट्टीके बर्तन अत्यंत साधारण वस्तु जान पड़ते हैं और सबसे गई बीतो निकम्मी चीज की बात करते समय उसकी उपमा ठीकरों वा मिट्टीके बर्तनके टूटे फूटे टुकड़ोंसे देते हैं। जो वस्तु आज इतनी तुच्छ और हेय प्रतीत होती है वही किसी समय मनुष्यकी बुद्धिके बाहर की बात रह चुकी है और उसके आविष्कृत करने में मनुष्यको विशेष बुद्धि लड़ानी पड़ी होगी। इस मिट्टोके बर्तनसे आविष्कारका महत्व समझनेके लिए इतना जान लेना पर्याप्त होगा कि इस युगमें भी भूमण्डल पर कुछ जातियाँ विद्यमान हैं जिन्हें इसका अब तक ज्ञान नहीं हो सका है। आस्ट्रेलिया के मूल निवासी उसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं जो आज भी मिट्टीका बर्तन पका कर काममें लाना नहीं जानते। वे अब भी गड्ढेमें वा भूमि पर जलती आगमें ही खाद्य वस्तुओं को पकाते हैं।

प्रस्तर युगके पश्चात् मानव-सभ्यताके इतिहास में धातु युग का आगमन होता है। यह निश्चय रूपसे तो नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य ने धातु का पहले पहल कैसे ज्ञान प्राप्त किया परन्तु जब कभी मनुष्य ने धातुका उपयोग सीखा उसने सभ्यताको तीव्र गतिसे आगे बढ़नेका सीधा मार्ग खोल दिया। यह हो सकता है कि मनुष्य ने पहले पहल धातु का ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अपने मस्तिष्क को कष्ट न दिया हो और किसी ज्वालामुखी पर्वतके उद्गारके समय धातुको पानीके रूपमें पिघल कर ठंडा हो जाने पर कड़ा हो जाते देखा हो वा लकड़ीके आगमें संयोग वश इसके पड़ जाने से इसका गुण जान सका हो। इस प्रकार ज्ञात हुई धातुओंमें ताँबा वा सोना ही ऐसे होंगे जिनको मनुष्य जान सका होगा क्योंकि ये ही धातु कम गर्मीमें भी पिघल सकते हैं। सोना देखनेमें सुन्दर तो अवश्य था परन्तु एक तो नर्म होनेके कारण इससे कोई हथियार बनाना ही कठिन था, दूसरे यह मिलता भी बहुत कम मात्रामें था। इस कारण पहले पहल तांबेके बर्तन और हथियारों का निर्माण हो सका होगा। तांबा एक नर्म धातु है इस कारण इसके बने हथियार अधिक उपयोगी नहीं हो सकते थे। तांबे की ही भांति टिन एक दूसरा धातु होता है जो बहुत शीघ्र पिघल जाता है परन्तु यदि ये दोनों नर्म धातु मिला दिए जायँ तो उनसे एक ऐसी मिश्रित धातु बन जाती है जो बहुत कड़ी हो जाती है और उससे अच्छे हथियार बन सकते हैं। इस कारण कुछ देशोंमें लोगों ने इस मिश्रित धातु को ढूँढ़ निकाला जो कांसेके नामसे पुकारा जाता है।

लोहा एक ऐसी धातु है जो साधारण गर्मीमें नहीं पिघल सकता। उसके लिए बहुत ही अधिक तेज आग की आवश्यकता है। आगको प्रदीप्त करनेके लिए जब तक भट्टी का आविष्कार न हो सका, तब तक लोहेका गला सकना कठिन था। यही कारण है कि लोहेके पूर्व ही हम टिन और तांबेको सुगमता गला उनके मिश्रणसे एक नई कड़ी धातु कांसेका जन्म होते पाते हैं। हम यह तो नहीं कह सकते कि मनुष्यों ने इस मिश्रित धातुको किस प्रकार ढूँढ़ निकाला परन्तु इतना निश्चय है कि इस धातुका प्रयोग आजसे कमसे कम पाँच सहस्र वर्ष पूर्व अवश्य होने लगा था।

प्राचीन कालके आविष्कारों पर विचार करते हुए हम देखते हैं कि पूर्व पुरुषोंने अपना मस्तिष्क लगा कर ऐसे असंख्य आविष्कार किए जो यद्यपि आज कौतूहल उत्पन्न करने वाले नहीं हैं तथापि

मानव-सभ्यताकी भित्ति आज भी उन्हीं पर अवलम्बित है। इन अत्यन्त उपादेय आविष्कारों से आगे बढ़ कर आधुनिक कालके मनुष्य अपने मस्तिष्कसे नाना प्रकारके कौतूहल पूर्ण आविष्कार कर संसार को चकित कर रहे हैं। परन्तु जब हम बहुत ध्यान देकर यह देखते हैं कि प्राचीन कालके मनुष्यों ने कुछ ऐसे भी आश्चर्यजनक आविष्कार किए थे जिनका कालान्तरमें लोप हो जाने पर आज की बीसवीं शताब्दी की विद्वन् मंडली उनका रहस्य खोल सकने में बिलकुल असमर्थ है हम अवाक् रह जाते हैं। इस तरहके विलुप्त आविष्कार एक नहीं बहुतेरे हैं जिनकी स्मृति अब तक शेष है। ऐसे अन्य बहुतसे आविष्कार जिनकी कोई स्मृति नहीं रह सकी प्राचीन लोगों ने कितने किए इसको बता सकनेमें हम सर्वथा असमर्थ है।

यदि आजका सभ्य संसार काँसेसे कोई पैनी वस्तु बनानेका उद्योग करे तो उसे बिलकुल निराश होना पड़ेगा। उसे ऐसी कोई भी विधि ज्ञात नहीं जिससे काँसेका कोई तेज हथियार बनाया जा सके परन्तु प्राचीन कालके लोगोंको इसका पूर्णतया ज्ञान था। उन्हें ऐसी युक्ति ज्ञात थी जिससे काँसे कोअपनी इच्छानुसार नर्म या कड़ा कर सकते थे। इस कारण इस धातुसे चाकू, तलवार, भाले, और उस्तरे तक बनते थे। मिस्र निवासियोंके प्राचीन समाधिस्थलों में ये कांसे के बने इस प्रकार के हथियार अब तक पाए जाते हैं। इन हथियारों को देख कर इतना पता लगा है कि इनमें नौ भाग तांबा और एक भाग टिनका मिश्रण होता है परन्तु ये किस प्रकार बनाये जाते थे उस गुप्त रहस्य को लोग न जान सके हैं। यह गुप्त भेद सर्वथा लुप्त हो चुका है।

प्राचीन कालमें मिश्र देश वालोंने कितने ही ऐसे आविष्कार किए थे जिनको आजका सभ्य संसार समझ सकनेमें असमर्थ है। उन सबकी तो यहाँ पर चर्चा नहींकी जासकती परन्तु कुछका उल्लेख कर देना उचित होगा। मिश्र देशके पुराने खंडरोंमें बहुतसे समाधिस्थल पाए जाते हैं जिनमें मृतकोंका शरीर किसी विशेष युक्तिसे रक्षित किया हुआ होता है, उन सबोंको गड़े आज कितने ही सहस्र वर्ष हो चुके परन्तु वे आज भी उसी अवस्था में मिलते हैं। एक मृतकको इस प्रकार कैसे रक्षित रखा जा सकता है इस विद्याका मिश्र वालोंको ही ज्ञान था। इसका कुछ भी रहस्य पा सकनेमें आज का संसार सर्वथा असमर्थ है।

शवकी ही भाँति मूर्त्तियों और पत्थरकी वस्तुओं को हवा पानीसे सदा सुरक्षित रखनेके लिए उन लोगोंको एक ऐसी वस्तुका ज्ञान था जिसके लगा देनेसे उन वस्तुओं पर गर्मी सर्दी और हवा पानी का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता था। इसका रहस्य भी किसीको कुछ भी नहीं ज्ञात है।

इसी प्रसंगमें शीशेकी कथा सुनाना असंगत न होगा। प्राचीन कालमें भारतवर्ष, मिश्र आदि देशोंमें लोगोंको शीशेके बनानेका ज्ञान था। इसे लोगोंने कैसे सीखा था इसका बता सकना बड़ा कठिन है। हो सकता है कहीं बालुकामय भूमिमें किसीने सज्जीके ढोकोंको चूल्हेकी भाँति प्रयुक्त किया हो और आगकी गर्मीसे बालू और सज्जीका मिश्रण होनेसे शीशेका आविष्कार हुआ हो। मिश्र देशके इस प्रकार आजसे ४ सहस्र वर्ष पूर्वके बने शीशेके बर्तन इस समय उपलब्ध हैं। भारत वर्षमें साधारण शीशेके अतिरिक्त रंगीन शीशा बनानेका ज्ञान भी लोगोंको बहुत पहले हो चुका था। वे लोग शीशेसे नकली हीरे बनानेकी भी कुशलता प्राप्त कर चुके थे। इन सबकी अपेक्षा जो बात हम लोगोंको स्तब्ध कर देने वाली है वह यह है कि प्राचीन कालमें लोगोंको ऐसा शीशा बनानेकी विद्या ज्ञात हो सकी थी जो लचक तो जाय परन्तु टूटे नहीं। फ़ारस देशमें ऐसा शीशा बनाया जाता था जिसका आज बना सकना सर्वथा असंभव ही है। शीशा सजावटके लिए बड़ी सुन्दर वस्तु है

परन्तु तनिक धक्का लगने वा भूमि पर गिर जाने से वह सर्वथा चकनाचूर हो जाता है। यह उसका सबसे बड़ा दोष है। यदि सचमुच आज हम लोगों को ऐसा शीशा उपलब्ध होता जो फ़ारसमें आविष्कृत शीशेकी भाँति लचकने वाला होता परन्तु उसके टूटनेका भय न रहता तो हम कितने आनन्दका अनुभव करते इसे हम नहीं कह सकते। कहते हैं सत्रहवीं शताब्दीमें फ्रांस देशके एक आविष्कारकने इस विद्याका पुनरुद्धार किया था। उसने इसी प्रकारके शीशेकी एक मूर्ति निर्मितकी थी परन्तु इसके बदलेमें वह जीवन भरके लिए कारागारमें बन्द कर दिया गया था जिससे इस प्रकारके विलक्षण शीशेका प्रचार हो जानेके कारण फ्रांस देशके शीशा बनाने वाले व्यवसायियोंकी जीविका न मारी जाय।

शीशे की भाँति अल्यूमिनियम (स्फटम्) नामक धातुके आविष्कारकी भी कथा सुनने योग्य है जो आविष्कारकोंके प्रति किए गये अन्यायका एक प्रमाण उपस्थित करती है। अल्यूमिनियम ऐसी धातु है कि इसके हलकेपन और उपयोगी होनेके कारण आज संसारमें इसका सर्वत्र बहुत अधिक प्रचार हो चला है परन्तु जिस पदार्थको मानव-समाज ने अत्यन्त उपयोगी देख कर इतना अधिक अपनाया है उस धातुके प्रथम आविष्कारकके साथ जो व्यवहार किया गया कि वह मनुष्य जातिके ऊपर एक बहुत बड़ा धब्बा है। रोमके एक प्रसिद्ध इतिहास लेखकने जो ईसाकी प्रथम शताब्दीमें हुआ था घटना का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि कोई एक सुनार एक प्याला ले कर राज महल में उपस्थित हुआ। वह प्याला एक ऐसे श्वेत धातु का बना था जो चाँदी की भाँति चमकता था। जिस समय वह सम्राटके सम्मुख यह प्याला भेंट कर रहा था उस समय उसने जान बूझ कर प्याले को फर्श पर इस प्रकार गिरा दिया जिससे टूट फूट कर मरम्मत करने योग्य न रह जाय। उसने उसे स्वयं भी तोड़ मरोड़ दिया परन्तु राज सभा के सम्मुख उसने एक हथौड़ा ले कर उस प्यालेको फिर पहले जैसा ठीक कर दिया। सम्राटने प्याले को ध्यान से देख कर ज्ञात किया कि यह चाँदी से भी हलका है। इस पर सम्राट ने प्रश्न किया कि उसने इस धातुको कैसे बनाया है। सुनारने बताया कि एक प्रकारकी मिट्टीसे उसने उस धातु को उत्पन्न किया और सचमुच अल्यूमिनियम एक प्रकारकी मिट्टीसे ही उत्पन्न किया जाता है जिसे अल्यूमिना कहते हैं। सम्राटने फिर पूछा कि इस विद्याको उसके अतिरिक्त और भी कोई जानता है। इसका उत्तर सुनार ने कुछ आत्म-अभिमानसे दिया कि इस विद्याका ज्ञान उसके अतिरिक्त और किसी को भी नहीं है। इस पर सम्राटने अपने सैनिकोंको बुला कर आज्ञा दी कि इसको बाहर ले जा कर इसका सिर अभी उतार लिया जाय। और उसका कार्यालय भी सर्वथा विनष्ट कर दिया जाय। सम्राटने इस आज्ञाका यह कारण बतलाया कि जब मिट्टीसे ऐसी आश्चर्य जनक धातुका बनाना सम्भव होगा तो उसके खज़ानेका सोना चाँदीका भंडार तो सर्वथा निरर्थक ही हो जायगा।

प्राचीन भारत की कलायें

[ले० पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]

१—गृहनिर्माण विद्या और चित्रकारी

प्राचीन भारतवर्ष की अपूर्व सभ्यता का एक अखण्डनीय प्रमाण उसके मकानात हैं। बड़े बड़े मन्दिर सुन्दर महल, जङ्गी किले और अद्भुत गुफायें यह सब विचित्र बुद्धि और अपूर्व परिश्रमके सच्चे स्मारक हैं। सब यूरोपियन विद्वान इनकी प्रशंसा करते और देखकर चकित हो जाते हैं। मिसिस मैनिङ्ग लिखता है कि "भारतवर्ष के मकानात ऐसे आश्चर्यजनक हैं कि पहिले पहल यूरोपवालोंको प्रशंसा या आश्चर्य प्रकट करनेके लिए शब्द नहीं मिलते थे और यद्यपि अधिक देखनेसे किसी वस्तु की विलक्षणता जाती रहती है तथापि बहुतसे गंभीर विद्वान इनको अद्भुत और सुन्दर बतलाते हैं[१]।"

हिन्दुओंके मकानोंकी विलक्षण बात यह है कि यह मज़बूत और सुन्दर होते हैं। महमूद गज़नवी ने मथुरासे खलीफाको लिखा था कि भारतके मकान मुसलमानोंके मतसे कम मज़बूत नहीं होते। ऐसे कट्टरकी लेखनीसे ऐसे शब्दोंका निकलना साफ़ बताता है कि हिन्दुस्तानमें गृहनिर्माण विद्या ने बहुत उन्नति की थी।

मिस्टर थोर्न्टन ने लिखा है कि प्राचीन भारत-वासी ऐसे मकान बनाते थे कि सहस्रों वर्षों में भी वह वैसे ही बने हैं[२]।

हिन्दुओंकी चित्रकारीके विषयमें वीवर लिखते हैं कि "गृहनिर्माण विद्यामें उन्होंने बहुत उन्नति की थी जिसके कुछ कुछ प्रशंसनीय भाग अब तक विद्यमान हैं"[३]।

१. Ancient and Medieval India Vol I. P. 391)

२. Thornton's Chapters from the British History of India.

३. Weber's Indian Literature p. 274

एक मकानकी बनावटका वर्णन करते हुए मिस्टर एलिफन्स्टन ने लिखा है कि खम्भों और दरवाजोंकी चौखटों, किवाड़ों तथा अन्य स्थानों पर चित्रकारी हो रही है और वृक्ष, फूल, फल, मनुष्य, पशु तथा अनेक कल्पित जीवों की तसवीरें बनी हुई हैं। सारांश यह है कि जितना मनुष्यका मस्तिष्क सोच सकता है यह उतना ही सजा है। चित्रकारी और बेलबूटे इतने सुंदर हैं कि दुनियांके किसी हिस्सेमें ऐसे दृष्टिगोचर नहीं होते।[४]

मिस्टर फर्गूसन ने रामेश्वरके एक प्रसिद्ध मन्दिर का वर्णन किया है कि इसके बाहिरी आंगन की लम्बाई वेस्टरमिनिस्टरमें पार्लीमेंटके नदीकी ओर के मकानके बराबर है और गहराई दूनी है।

रामेश्वरके देव भवनके विषयमें लार्ड वैलेंशिया लिखता है सम्पूर्ण इमारत ऐसी सुन्दर है कि हमारे पास इसकी प्रशंसा करनेके लिये शब्द नहीं हैं।[५]

पाण्डीचरीके २७ मील दक्षिणको छलम्बरमके मन्दिरका वर्णन करते हुये हीरन लिखते हैं "कि बड़े तालकी दूसरी ओर एक विलक्षण मकान है। एक बड़े दालानमें जो ३६० फुट लम्बा और २६० फुट चौड़ा है एक देवस्थान है और तीस तीस फुट ऊंचे एक हज़ारसे अधिक खम्भे क्रमशः लगे हुये हैं[६]।

४. Elphinston's History of India p. 160

ग्रन्थकार ने यह भी लिखा है कि हिन्दुओं के तालाब और कुएँ बहुत सुन्दर हैं।

५. उज्जैनका महाकालका मन्दिर और बृन्दाबनका गोबिन्द जी का मन्दिर देखनेसे हिन्दू मन्दिरोंका सौंदर्य जाना जा सकता है।

६. Heerens Historical Researches Vol. II. p. 95

हिन्दुओंके मकानों की सुन्दरता के विषयमें डाक्टर राबर्टसन लिखता है कि कहीं २ चित्रकारियां इतनी उत्तम हैं कि बड़ेसे बड़े चित्रकार भी बिना प्रशंसा किये नहीं रह सकते ७।

गुफ़ाओंके मन्दिरोंमें केवल यही बात नहीं है कि वह केवल यहीं पाये जाते हों और अन्य देशोंमें न हों किन्तु उनसे अपूर्व चित्रकारी भी प्रकट होती है। हीरन ने एलोराके मन्दिरोंके विषयमें लिखा है कि "यहां पृथ्वीके ऊपर और नीचे बड़े अच्छे सुन्दर और चित्रकारीके मकानात बने हुये हैं, साढ़ियाँ, पुल, देवालय, ड्योढ़ियाँ, बड़ी बड़ी मूर्त्ति और दीवारों पर हिन्दू देवतोंके चित्र खुदे हुए हैं। एक इङ्गलेण्ड का विद्वान लिखता है कि इस विचित्र मकान और इसको तरह तरहकी और सुन्दर चित्रकारीका वर्णन नहीं हो सकता।"८

हीरन फिर लिखते हैं इन बड़ी बड़ी गुफाओं के दरवाज़ेमें घुसते ही हम काँप जाते हैं। इन भारी भारी छतोंके बोझको पतले पतले खम्भों से मुक़ाबिला करो। देखनेसे प्रतीत होता है कि यह खम्भ छतके बोझको कभी संभार न सकेंगे। इनके जाँचनेके लिये बड़ी योग्यता और चातुर्य्यको आवश्यकता हुई होगी" ९

पृष्ठ ७८ पर लिखा है कि कारोमण्डलके किनारे पर मवालीपुरमें यह सात प्राचीन मन्दिर हैं जिनके लिये यह कहना अनुचित न होगा कि इनसे मनुष्य जाति की योग्यता और चातुर्य्य का बोध होता है।

द्वारिकाके बड़े मन्दिरको देखकर बेटन डालबर्ग को बड़ा आश्चर्य हुआ था। वह कहते हैं कि यह एक विचित्र नगर है। "इस देशके निवासी गुफाओं के मन्दिर बनाने और उनसे चित्रकारी करनेमें अन्य सब जातियोंसे बढ़ गये हैं"।१०

हिन्दूकी कारीगरीको यूनान और मिस्रकी कारीगरीसे मुकाबिला करके हीरन लिखते हैं कि खम्भों और खम्भोंकी सदृश मूर्तियोंकी चित्रकारीमें हिन्दू लोग यूनान और मिस्र दोनोंकी चित्रकारीसे बढ़ गये हैं।

मिसिज मैनिंग कहती हैं कि "गुफाओंकी दीवारों पर ही नहीं किन्तु छत और खम्भों पर भी चित्र खिंचे हुये हैं। और उनके बेल बूटे सुन्दरतामें पोम्पाई और टाटसके बाथोंसे बहुत अच्छे हैं।११

कैलास और पश्चिमी भारतकी अन्य गुफायें बड़ी आश्चर्यजनक हैं। खम्भोंके मकानोंके लिये भारतवर्ष बहुत प्रसिद्ध है। दक्षिणी हिन्दुस्तानके खंभे बड़े अपूर्व हैं। (Ancient and medieval India Vol. II. p. 420. and vol I. p. 418) बौद्धमतके साथ प्राचीन हिन्दुस्थानकी शिल्पविद्या ने बहुत उन्नति पाई और जब बौद्धमत अन्य देशोंमें प्रचलित हुआ तो वहां लोग शिल्प विद्याको भी भारतवर्ष से ले गये। वीबर ने यही तो लिखा है कि "शायद हमारे पश्चिमी गिरजे भी बौद्ध मन्दिरोंके अनुकरण में ही बनाये गये हैं"। (Indian Literature V. 274)

---

७. Dr. Robertson's works, vol XII. Disquisitions concerning India p. 16

८. Asiatic Researches vol. III. p. 405

९. Historical Researches Vol II. p. 74

विलसन लिखता है कि इन गुफाओंके मन्दिरोंमें केवल यही सौन्दर्य नहीं है कि वे इतने बढ़े हैं किन्तु खम्भों पर बड़ी मनोहर चित्रकारी हो रही है। भारतवर्ष के बहुतसे टूटे मन्दिरोंसे गृह निर्माण सम्बन्धी बड़ा सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है।

(Mills History of India Vol II p. 15)

एलोराकी गुफाओंको साम्यपदामृत ने बनाया था।

१०. Geaographical Ephemerides Vol. XXXII. p. 12)

११. Ancient and Medieval India vol I p. 404 देखो Ferguson's History of Architecture val. II. p. 499-501

काली गुफा सब गुफाओंमें अच्छी है।

कर्नल टाड लिखता है कि "मुसलमानोंकी महराबें[१] हिन्दुओंसे ली गई हैं" इतने पर भी बहुत से कहते हैं कि प्राचीन भारत वर्षकी शिल्प विद्यामें महराबें न थीं।[२]

सर विलियम हएटर लिखते हैं कि यद्यपि मुसलमान भी अपने साथ नई शिल्प विद्या लाये परन्तु मुग़लबादशाहोंके मकानोंमें हिन्दू विद्याके चिह्न अधिक हैं। यह ऐसे उत्तम हैं कि इस समय बड़े प्रशंसनीय और अद्भुत समझे जाते हैं। ग्वालियरका महल आगरा और दिल्लीकी मसजिद और रोज़े और दक्षिणके प्राचीन मन्दिर चित्रकारी और सुन्दरतामें अद्वितीय ही हैं।

मिस्टर कोलमान लिखते हैं कि "इनकी बची कुची शिल्पविद्यासे भी यूरोपके शिल्पज्ञ सौन्दर्य और उत्तमताकी नई २ बातें ग्रहण कर सकते हैं।"[१]

सर डब्ल्यू हएटर कहते हैं कि आजकलकी अंग्रेज़ी चित्रकारीमें बहुत कुछ भारतवर्षसे लिया गया है। इंग्लेएडकी चित्ताकर्षक वस्तुओं पर कार्ला और अजन्ताकी गुफाओंके पर्दों, पश्चिमी भारतवर्षको संगमरमर और लकड़ीकी चित्रकारी और कश्मीरके मकानोंके रंग और आकारका बड़ा प्रभाव पड़ा है।"[३]

कोलमान कहता है "कि प्राचीन हिन्दू शिल्पी अपने अपूर्व और सुन्दर बेल बूटों पर अभिमान करें तो उचित है क्योंकि यह सब बड़े प्रशंसनीय हैं[४]।"

हीरनके हिस्टोरीकल रिसर्चेज़का अंग्रेज़ी अनुवादक लिखता है कि "बरोलो (राजपूताना) के बड़े मन्दिरमें शिल्प सम्बन्धी बड़ी उत्तम चीज़े हैं। एक मनुष्य अपनी आखें देखी कहता है कि इसके सिर तो विशेष कर कनोवा (Canova)को भी अच्छे मालूम होते होंगे।"

बरोलीके मन्दिरका पूर्ण रीत्या निरीक्षण करके टाड साहेब कहते हैं "इसके महान और चित्र विचित्र गृहका वर्णन नहीं हो सकता। यह केवल लेखनीका काम है जो कभीसमाप्त नहीं हो सकता। यहाँ मालूम होता है कि बस शिल्प विद्या समाप्त होगई।

---

१. राज स्थान जि० १ पृ० ७८१। अजमेरमें अधेदिनके झोपड़ेके विषयमें कर्नल टाड लिखता है "इस मन्दिर और इन परदोंके देखनेसे बोध होता है कि शायद यूरोपकी शिल्प विद्याको यहींसे सहायता पहुँची हो। यह तो प्रसिद्ध ही है कि बारहवीं और १३ वीं शताब्दीके गौथिक मकानोंमें मुसलमानी महराबें पाई जाती हैं। यह उस समय की बात है जब रोमन और सैक्सनोंके शुष्क मकानोंके पीछे सुन्दर मकान बनने लगे। पर प्रश्न यह है कि मुसलमानों ने यह महराबें कहांसे सीखीं। यह तो निश्चय है कि मिस्र और ईरानसे नहीं सीखीं"। फिर वह कहता है कि बगदादके पहिले खलीफोंका (जो बुद्धिमान और बलवान थे) प्रभाव यूरोपकी जातियों पर बहुत था। और खलीफाके सेनापतियोंकी विजयने शिल्पविद्या पर बहुत प्रभाव डाला, और मुसलमानोंकी पहिली सेना अजमेरमें आई थी और अजमेरके मन्दिरकी महराबें।के नमूने पर ही मुसलमानोंकी अन्य महराबें बनी हुई हैं।

२. हिन्दू शिल्प विद्याका एक अपूर्व दृष्टान्त गुजरातके उत्तरवार—नगरकी विजयी महराबें हैं। Elphinston's History of India, p. 163

३. Imperial Indian gazett. Art India p. 225

"हिन्दुस्तानी चित्रकारीको जब वह बिलकुल भारतीय वासियों की ही बनाई हुई हो यूरोपकी कई प्रदर्शिनियोंमें पुरुस्कार मिला है"। इन अवनति के दिनोंमें भी हिन्दुस्तानकी शिल्पविद्याका यह हाल है।

४. Hindu mythology. Preface p. VII

और शायद यह पहिला समय है कि हमने हिन्दू शिल्प विद्याकी मनोहरताका अवलोकन किया हो। खम्भे, भीतरी और बाहिरी छत जिसमें हर एक पत्थर एक छोटा सा मन्दिर है, यहां तक कि कलश तक, सब हमारे चित्तको आकर्षित कर लेते हैं। हर खम्भेकी चित्रकारीके वर्णन करने को सफ़ेके सफ़े चाहिये और इतना प्राचीन होते हुये भी यह सबका सब ज्योंका त्यों बना है।

वह द्वार जो अब नष्ट होगया है बड़ा विचित्र होगा और टूटे खण्डर जो बीचमें पड़े हैं बड़े मनोहर हैं। इनमेंसे एक नमूना सौन्दर्यमें अद्वितीय है[१]।"

भारतीय वस्त्र निर्माण कला

इस समय देशमें आन्दोलन मच रहा है कि बिदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करो। खद्दर पहनो या कमसे कम देशमें मिलोंके बने हुये वस्त्र पहनों। हमारे देशकी उत्तम वस्त्र निर्माण कलाके विषयमें जो सम्मतियां यहां दी जाती हैं, उनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस देशमें कला कितनी उत्तम थी। यदि उसी कलाको पुनर्जीवित किया जाय तो इस देशमें जैसे वस्त्र निर्माण हो सकते हैं वैसे संसार भरमें कहीं नहीं बन सके हैं। जेम्स मिल लिखता है कि "हिन्दुओंके कोमल शरीरमें वाह्य इन्द्रियोंकी और विशेष कर स्पर्शकी तीक्ष्ण शक्ति विद्यमान है जो बड़ी अपूर्व है इनकी उंगलियां खूब मुड़ सकती हैं।"[२]

मिस्टर ओर्मी (Orme) लिखते है कि हिन्दुस्तानकी रसोइयनका हाथ भी यूरोपकी सुन्दरीसे अधिक कोमल होता है। एक द्वारपालका चमड़ा और उसकी सूरत विख्यात चिर्कानियेसे अधिक मृदु निकलेगी। स्त्रियां कच्चे रेशमको कीड़ेमेंसे निकालती हैं। और कच्चे रेशम के एक गुच्छेके बीस भेद करती हैं और इन स्त्रियों की स्पर्श शक्ति ऐसी प्रबल है कि जब तन्तु उनकी उंगलियोंमें होकर इतनी जल्दी २ चलता है कि आंख देख नहीं सकती तो केवल स्पर्श द्वारा ही झट वह पहिचान लेती हैं कि उपर्युक्त बीस भेदोंमें से किस प्रकारका तन्तु आरहा है, यहां तक कि पहिलेसे बीसवें और उन्नीसवेंसे दूसरे को पहिचान सकती हैं।"[३]

मिल कहता है कि हिन्दुओं को आबहवा और भूमि ने भी "इनको बुननेकी बड़ी अपूर्व सामग्री दी। हिन्दुस्तानकी कपास दुनियां भरसे अच्छी होती है"।[४]

भारतवर्षके रूईके कपड़ोंके विषयमें मिस्टर एल्फिन्स्टन लिखता है कि इसकी सुन्दरता और कोमलता बड़ी प्रशंसनीय है और ऐसा बारीक कपड़ा किसी देशमें नहीं होता।[५]

मिस्टर मरे लिखता है कि "यहांके कपड़ोंके लिये जो हर देशसे उत्तम होते थे व्यापारी लोग बड़े परिश्रम और भयोंको सहन करके जाते थे"।[६]

---

१. राजस्थान जि० २ पृ० ७०४। टाड साहेब कहते हैं कि सारांश यह है कि यदि कई चित्रकार छः महीने तक अवलोकन करें तो बरोलीकी चित्रकारी को अच्छी तरह वर्णन कर सकते हैं।

२. Mill's India Vol. II. p. 17

३. People and Government of Hindustan p. 409 and 413

४. इससे प्रकट है कि हिन्दुस्तानमें बहुत अच्छी कपास उत्पन्न हो सकती है और प्राचीन समयमें हुई भी है। उस समय भारतवर्षको अपने पुत्र पुत्रियोंको मलमल बुननेके लिये अच्छी कपास मिस्र वा अमेरिकासे लानी नहीं पड़ती थी। यह सुन कर लोग आश्चर्य करेंगे कि "कपास यूरोप में अरबके द्वारा क्रूसेड (ईसाई युद्धों) के समय में गई है। अरबका 'कुटा' शब्द ही अंगरेज़ीका कौटन होगया है" मिसिस मैनिंगका प्राचीन और मध्यकालीन भारतवर्ष Mill's History of India vol II. p. 17

५. History of India p. 163, 164

६. Murray's History of India. p. 27

मिस्टर थोर्न्टन कहता है कि भारतवर्ष की मलमल सौन्दर्य और कोमलतामें अद्वितीय है।[१]

मिस्टर बौथ (Both) ने अपने ग्रन्थ ढाका के रूईके कपड़े' (Cotton manufactures of Dacca) में लिखा है कि औरङ्गज़ेबने अपनी लड़कीको इस लिये ताड़नाकी कि वस्त्रोंमें होकर उसका शरीर दिखलाई पड़ता था। लड़की कहने लगी कि मैं सात जामे तो पहने हूँ। हिन्दुस्तान और इंग्लैंडके अच्छे कपड़ोंका मुकाबला करके डाक्टर व्हाटसन हिन्दुस्तानके कपड़ोंको अच्छा बताता है। वह कहता है कि इतना बारीक ताना कहीं नहीं होता और हिन्दुओंकी लगाई हुई गांठ कलकी गांठसे भी मज़बूत होती है।

१. Thornton's chapters of British History of India.

बुद्ध महान्तियोंको बारीक मलमल पहिननेका निषेध किया गया है क्योंकि उसे एक समय गंगडगाहको नामक स्त्री (जो ऐसा बारीक वस्त्र पहिने थी कि इसे कालिंघानाके राजा ने गसलरगजलके पास भेजा था। नंगी दिखलाई पड़ी यद्यपि वह मलमल का पूर्ण वस्त्र धारे हुये थी। ऐसी बारीक मलमलको समझनेके लिये डाक्टर व्हाट लिखता है कि १७७६ खी० में बारीक मलमलका मूल्य ५६ पौंड प्रति थान था।

Textile manufacture p. 79

एलिफन्स्टन कहता है कि "भारतवर्षी लोग सोने चान्दीके कामको बहुत पसन्द करते हैं और शायद यह पहिले पहिल यहीं बने थे"।

Colebrooks, Asiatic Researches. vol. II p. 61

रुद्रयमल तंत्रमें हिन्दूजातियोंके वर्णनके पश्चात् पुण्ड्रक, पट्ट सूत्रकार वा रेशमके कोड़े पालने वालों का वर्णन है। इसलिये यदि इस ग्रन्थको प्राचीन माना जाय (जैसा मिस्टर कोलब्रुकका मत है) तो यह ग्रन्थ और अन्य संस्कृत ग्रन्थ जिनमें रेशमका

मिसिस मैनेङ्ग कहती हैं कि "कश्मीर की शालें अब भी अद्वितीय हैं।" मिस्टर जेम्स मिलने भी लिखा है कि हिन्दुओं ने कपड़ा बुननेमें जितनी उन्नतिकी है उसका वर्णन नहीं हो सकता। यूरोपियन लोग इन चीज़ोंको हिन्दुस्तानियोंसे बढ़ कर नहीं जानते प्राचीन समयमें अन्य जातियों ने इस विद्यामें चाहे कितनी ही उन्नति की हो (मिस्रियोंके बारीक कपड़ोंको बहुमूल्य समझा जाता था) वर्तमान जातियोंमें कोई हिन्दुस्तानके समान उत्तम और कोमल वस्त्र नहीं बना सकती।[२]

मिसिस मैनिंग कहती है "ईसासे कई सौ वर्ष पहिले यह लोग ऐसी अच्छी मलमल बनाते थे कि १६ वीं शताब्दीकी कलें भी वैसी नहीं बना सकतीं।"[३]

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनीकामें लिखा है कि रुईके बारीक कपड़े इतने अच्छे बनते थे कि वर्तमान यूरोपकी अद्भुत कलोंसे भी हिन्दुस्तानी करघेके समान उत्तम वस्त्र नहीं बन सकते।[४]

एक विद्वान लिखता है कि "मसलीपट्टममें हिन्दुओंके बड़ी उत्तम दरियां बनती हैं" इस पर मिसिस मैनिंग कहती हैं कि बहुत दिन हुये ब्रिटिश लोगोंके अधिष्ठतृत्वमें सरकारी जेल में दरियां बुनी गई थी जिनके देखनेसे ज्ञात होता

नाम आता है इस प्रश्नको सिद्ध करदेते हैं। पूर्वी द्वीपोंमें रेशमको सूत्र कहते हैं। यह एक संस्कृत शब्द है जिससे सिद्ध है कि यह भारतवर्षसे लिया गया है।

२. Mill's History of India vol. II. p. 16

३. Ancient and medieval India vol. I. p. 359

४. P. 446 Weaving

लिखा है कि कश्मीरकी शालें सीताजीको भेंट की गई थीं इससे भी रेशमके वस्त्रोंकी प्राचीनता सिद्ध है।

है कि हमारा हिन्दुस्तानियों को कला कौशल सिखलाना व्यर्थ है।[१]

भारतवर्षके बुननेके काम पर एक ग्रन्थ लिखते हुये डाक्टर फोर्बिस नाट्सन लिखता है कि बहुत दिनों तक इस बातकी परीक्षा की गई कि यूरोप की मलमल अच्छी है वा हिन्दुस्तान की "और अन्तमें हिन्दुस्तानी कपड़े ही अच्छे सिद्ध हुये।" वह आगे लिखता है कि चाहे किसी दृष्टिसे देखो हमारी कला कौशल को अभी बहुत कुछ सीखना है। अनेक प्रकार की अद्भुत कलों द्वारा भी हमसे अभी ऐसा कपड़ा नहीं बन सका जो मजबूती या बारीकीमें ढाका की मलमलके तुल्य हो सके। यह मलमल जिन करघोंसे बनती है वह चाहे कैसे ही भद्दे और प्रारम्भिक क्यों न प्रतीत हों उन कामोंके लिये बहुत अच्छे थे।

अन्य कलायें

वीबर साहेब लिखते हैं कि "हिन्दुस्तानी लोग, बारीक कपड़े बुनने, रंगोंको मिलाने, सोने चांदी और जवाहरके काम, भिन्न २ प्रकारके इतर निकालने और अन्य कलाओंमें बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहे हैं"।[२]

विलसन लिखते हैं कि "यह लोग दुनियाँके कई अलङ्कार सम्बन्धो तथा उपयोगी कामोंमें निपुण होगये।[३]

रंगरेजीके विषयमें मिस्टर एलिफन्स्टन कहते हैं कि यूरोपमें अब तक कई रंग इतने चमकीले और पक्के नहीं बन सके। जितने यह लोग (भारतवासी) विदेशियों के कामों की नकल उतारनेमें चतुर हैं उतने ही उनके रंग भी बड़े चमकीले होते हैं।"[४]

हन्टर टेनिट (Tennet) और मिस्टर जेम्स मिल मान गये हैं कि दुनियां भरमें हिन्दुस्तानी रंग बहुत चमकदार होते हैं। सबसे पहिले हिन्दुओं ने ही वृक्षोंसे रंग निकालना सीखा। इस बात की पुष्टि उन नामोंसे भी होती है जिनसे यह पौधे अन्य देशोंमें प्रसिद्ध हैं। नीलको इण्डीगो इसलिये कहते हैं कि यह हिन्दुस्तानसे आया है। प्लिनी इसको इन्डोको करके लिखता था"।

बैंक्रोफ्ट ने हिन्दुस्तानियोंकी बड़ी प्रशंसा की है कि इन लोगों ने सहस्रों वर्ष पहिले पौधोंसे रंग निकालना और उसको शुद्ध करना सीख लिया। मिलको भी कहना पड़ा कि "हिन्दुओंमें कपड़ा रंगने और छापने का काम बहुत प्रसिद्ध था इनके रंगका सौन्दर्य और पक्कापन विशेषतः प्रशंसनीय है।"[५]

मिस्टर एलिफन्स्टन कहते हैं कि "बारीक आभूषणों को अच्छा समझने के कारण यह लोग स्वर्णकारीके काममें बहुत बढ़ गये थे।"[६]

---

१. प्राचीन और मध्यकालीन भारतवर्ष जि० २ पृ० ३६३ हीरन कहता है कि "व्यापारी वस्तुओंमें रूईके वस्त्रोंके जो भेद पेरीप्लसके लिखने वाले ने गिनाये हैं वे इतने हैं कि उनसे अधिक कभी नहीं हुये।"

२. Indian Literature p. 275

३. Mill's History of India vol. II. p. 233

४. History of India p. 166, and 43

५. Mill's India Vol. II. p. 21

मिल साहेब कहते हैं कि कपड़ा बुनने, सूत काटने और रंगने तथा अन्य बारीक कामोंके बनाने में हिन्दू सब जातियोंसे बढ़ गये हैं। उपाध्याय हीरन कहते हैं कि "हिन्दुओंके वस्त्र यूनानियोंको बहुत श्वेत प्रतीत होते थे"।

Historical Researches vol II p 272

वह कहते हैं, नीलको जलते कोयले पर डालो तो बहुत उत्तम पीली ज्वाला निकलेगी"।

Manning's Ancient and med. India vol. p. 355

६. हिन्दुस्तानका इतिहास पृ० १६४ हिन्दू लोग रत्नोंको काट कर साफ करते और फिर सोने चांदीमें जड़ देते हैं।"

Mill's History of India vol. II. p. 30

हीरन साहेब लिखते हैं कि "हाथी दान्तके काममें भी यह लोग बहुत निपुण होंगे"।

परन्तु सबसे अद्भुत बात यह है कि इनके बनानेकी विधि बहुत सरल होती थी और बहुतसे औजारों (यन्त्र) की आवश्यकता नहीं होती थी। स्टैबेरीन्स लिखता है कि "इनके कारीगर इतने कम औज़ार रखते हैं कि यूरोप वालोंको इनकी सफ़ाई और जल्दी देखकर आश्चर्य होता है।"[1]

चित्रकारी के विषयमें मिस्टर मिल लिखते हैं कि हिन्दू लोग प्राकृतिक वस्तुओं तक की ठीक २ नकल कर लेते हैं। वह व्यक्ति मात्र तथा समूहका ज्यों का त्यों चित्र उतार देते हैं।"

लोहेके काममें विषयमें विलसन साहेब लिखते हैं कि इस मुलक (इङ्गलैंड) में लोहा ढालनेका काम बहुत थोड़े दिनोंसे होता है। हिन्दू लोग बहुत प्राचीन कालसे लोहेको पिघलाने ढालने टीन बनाने आदिका काम करते थे।[2]

डाक्टर रे लिखते हैं "थोड़े दिनों पीछे हम देखते हैं कि हिन्दुस्तानी लोग टीन बनानेमें बड़े चतुर थे। दमशककी तलवारें बहुत अच्छी समझी जाती थीं परन्तु ईरानियों और उनके द्वारा अरब वालोंने इनके बनाने की विधि हिन्दुस्तानसे ही सीखी थी। दिल्लीमें कुतुबके समीपस्थ लोहे का खम्भा जो १० टन भारी और १५०० वर्ष पुराना है, पुरी की बड़ी बड़ी लोहे की शलाखें, सोमनाथके चित्रकारीके फाटक, और नूरवर की की २४ फुट लम्बी लोहे की तोप यह सब चुपचाप और बड़े बलपूर्वक हिन्दुओं की धातुविद्या की साक्षी दे रहे हैं।" कुतुब मीनार के विषयमें फर्ग्यूसन ने लिखता है कि "अभी ठीक निश्चय नहीं हुआ कि यह कितना प्राचीन है इसके ऊपर कुछ खुदा तो है पर तिथि नहीं है। इसके अक्षरोंसे प्रिन्सेप (Princep) नतीजा निकालता है कि यह तीसरी वा ४ थी शताब्दी का है कि "४०० खी० को साधारणतया इसके बननेका वर्ष समझ कर (और यह कुछ झूठ भी नहीं है) हमको बड़ा आश्चर्य होता है कि इतने काल पहिले भी हिन्दू लोग लोहेकी इतनी बड़ी लाट ढाल सकते थे जैसी यूरोपमें अभी थोड़े दिन हुये ढाली गई थी और अब भी बहुत कम ढाली जाती है। लेकिन हम देखते हैं कि थोड़े दिनों पीछे इन लोगोंमें ऐसी लाटोंको कनैारक (Kanaruc) के मन्दिरकी छत के पाटनेमें लगा या इससे मालूम होता है कि पहिले यह लोग लोहेके काममें जितने निपुण थे फिर नहीं रहे। यह बात और भी आश्चर्यजनक है कि १४ सौ वर्ष तक आंधी मेंहमें पड़ी रह कर भी इसमें काई नहीं लगी और इसके खुदे हुये अक्षर आज भी वैसे ही स्पष्ट हैं जैसे १४ सौ वर्ष पहले थे। इसमें सन्देह नहीं कि लाट शुद्ध लोहेकी बनी हुई है। जनरल केनिङ्घम ने इसके एक टुकड़े की भारतवर्षमें डाक्टर मरेसे परीक्षा कराई और दूसरे टुकड़ेकी स्कूल मायन्स में डाक्टर पर्सी ने परीक्षा की और दोनों ने यही सिद्ध किया कि यह बिल्कुल शुद्ध लोहा है और इसमें कुछ भी मिलावट नहीं है।"[3]

मिसिस मैनिंग लिखती हैं कि "हिन्दुस्तान की टीन बहुत दिनोंसे मशहूर है और यह एक लिखने योग्य बात है कि दमशक की विख्यात तलवारें भी पश्चिमी हिन्दुस्तान के कार्य्यालयोंसे गई प्रतीत होती हैं"। "आज कल भी कच्छकी टीन ग्लासगो और शैफील्डकी टीनसे कुछ कम नहीं होती।"[4]

---

१. मेरीनस की यात्रा पृ० ४१२—फौस्टरको इनकी कारीगरी और सरल विधिको देख कर आश्चर्य हुआ।"

Researches vol II p. 272

२. Mill's History of India vol II, p. 47

३. History of India and eastern Architecture p. 504 and 1899

४. Ancient and Medieval India vol II, p. 365

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें भारत वर्षमें लोहा वहांकी आवश्यकतासे अधिक होता था इसलिए फोनीशियन लोग इसको अन्य वस्तुओंके साथ ले जाते थे।"[१]

डाक्टर रोयल (Royle) का मत है कि खेतों में समयान्तर में भिन्न अन्न बोने की प्रणाली भारतवर्ष से प्रचलित हुई। हिन्दू किसान भली प्रकार समझता है कि भूमिके उर्वरत्वको कैसे कायम रक्खा जाय।[२]

विल्सन लिखता है कि "खिड़कियों में शीशे लगानेका प्रचार सभ्यताका एक चिह्न है जो यूनान और रोममें पाया नहीं जाता"।[३]

डाक्टर फोर्बस वाटसन (Dr. Forbes Watson) लिखते हैं कि "भारतवर्ष के कला कौशलके ध्यानपूर्वक अवलोकनसे हमारी (अंग्रेजों की) बहुत सी चीजों उत्तम बन सकती हैं।"[४]

चेम्बर्स इन्साइक्लोपीडियामें लिखा है कि "बहुत पुराने समयमें हिन्दू लोग कला कौशलमें बहुत बढ़े चढ़े थे और दिल्ली की सुनहरा और रुपहली कलावत्तू की चीज़ें रोम के राजकीय दरबारोंमें जगमग जगमग हुआ करतीं थी। मुद्दत हुई कि ढाकाकी मलमलें दुनियां भरमें प्रसिद्ध थीं। १८५२ के भिन्न २ जातियों की प्रदर्शिनी (International Exhibition) में परिश्रमी हिन्दुओं की बहुत उत्तम २ कला कौशल की वस्तुएँ रक्खी गई थीं। अद्वितीय बारीक कपड़े, रत्न जड़ाऊ परदे कलावत्तू, विचित्र रंगोंकी दरियाँ, बड़े चमक दमकके जवाहर, जड़ाऊ बर्तन जिनके समझनेके लिये भी योग्यता चाहिये, बड़ी उत्तमतासे खुदे हुये असबाब, विचित्र और उत्तम तलवारें इन सब से हिन्दुस्तानी कलाओं की पूर्णता सिद्ध होती है"।[५]

(अनूदित)

---

१. Ancient and Medieval India vol, II. p. 364 देखो व्यापार।

डाक्टर रोक्सबर्ग ने हिन्दुओंकी कृषि विधि की प्रशंसा की है। सरथोमस मुनरो इसको एक अच्छी विधि बताते हैं।

३. Mill's India vol I

४. लार्ड डफरन ने जब वह यहाँ वायसराय ने कहा था कि "कपड़ोंके बिषयमें पश्चिमको पूर्वसे बहुत कुछ सीखना है। धोतीके विषयमें जिसका लोग बहुत अपमान करते हैं मिसिस मैनिंग लिखती हैं कि सुगमतासे चलने, बैठने और लेटनेके लिये इससे अच्छा वस्त्र कोई नहीं है"।

५. Page 543

दिल्ली का लोहस्तम्भ

दिल्लीका लोहस्तम्भ संसार प्रसिद्ध है। इतना ही नहीं, इसको देख कर के बड़े बड़े वैज्ञानिक भी चकित हो जाते हैं। यूरोपियनों की समझमें ही नहीं आता है कि भारतवासी इतना उत्तम दृढ़ स्तम्भ किस प्रकार बना पाये। सन् १९२५ में पेरिसमें औद्योगिक रसायन की पांचवीं कांग्रेस हुई थी। उसमें सर राबर्ट हेडफील्ड (स्टाकहालम निवासी) ने अपने भाषणमें इसके सम्बन्ध में निम्न विचार प्रकट किये थेः—

देहली का लोहस्तम्भ आदि-धातु-विज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है जो सन् ३०० के लगभग बनाया गया था। मैंने इसके लोहेकी परीक्षा की तो इसमें निम्न वस्तुओंको पाया :—

कर्बन	०·०८०
शैलम्	०·०४६
गन्धक	०·००६
स्फुर	०·११४
मांगनीज़	शून्य
नोषजन	०·०३०
	०·२७६
	९९·७००
कुल	९९·९७६

आपेक्षिक घनत्व ७.८१
बौलकी दृढ़ता संख्या १८८

सर हेडफील्ड का कहना है कि इस दृष्टिसे कि उस समय लोहेके बड़े बड़े स्तम्भ ढालनेके यन्त्र नहीं थे, हमको चकित रह जाना पड़ता है कि यह लोहस्तम्भ किस प्रकार बना लिया गया। इसकी लम्बाई ७.२२ मीटर, ऊँचाई (ज़मीनके ऊपर) ६·७१ मीटर, ऊपर के घेरे का व्यास ३१.८ शतांशमीटर, नीचे के घेरे व्यास ४१.६ श० म० और इसका भार ६००० किलोग्राम के लगभग है। इस दृष्टिसे कि इसके सबसे बड़े घेरे का व्यास ४१·६ श० म० है, यह बताना और भी कठिन है कि इतना मोटा लोहा कैसे ढाला गया। यदि यह माना जाय कि इस स्तम्भके टुकड़े टुकड़े बनाये गये जो बाद को पीट कर जोड़ दिये गये तो ऐसा करना तो और भी अधिक कठिनाई का काम है, क्योंकि इतने मोटे घेरे के स्तम्भको जोड़ देना तो और भी अधिक चतुरताका परिचायक है। इसके अतिरिक्त, एक और विशेषता यह है कि इसके ऊपरका १·२५ मीटर लम्बाई के भागमें जो नक्कासी और कारीगरी दिखाई गई है वह तो और भी आश्चर्य्यमें डाल देने वाली है।

देहली स्तम्भकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इतने दिनोंके उपरान्त भी अब तक इसमें जङ्ग नहीं लगने पाया है। सर हेडफील्ड साहब ने इसके लोहेकी सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से परीक्षा की है। इस परीक्षासे यह पता चलता है कि इसके दानों के अन्दर बहुत सी छोटी छोटी रेखायें हैं जिनका स्वरूप लोह नोषिद की रेखाओंके समान है। पर इस लोहेमें नोषजन केवल ०·०३ प्रतिशत है अतः ये रेखा में नोषिदके कारण नहीं हो सकती। यदि इस लोहेको ९००° श तक गरम करके फिर ठंडा किया जाय तो फिर न इस लोहे में दाने ही दिखाई पड़ेंगे और न ये रेखायें ही। ये दाने फेराइट और सोमएटाइट खनिजके माने जाते हैं।

इस लोहेके सम्बन्धमें यह भी उल्लेखनीय बात है कि इसमें शैलेत भी बहुत कम ही हैं। कुछ लोगोंका विचार यह था कि इसके लोहेमें शैलेत आदि पदार्थ गलित (Slag) के रूपमें विद्यमान है और इसके कारण ही यह लोहा मुश्किलसे खरीदा जा सकता है। लोगोंका यह विश्वास था कि इस गलित का पता सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा करने पर ज्ञात हो जायगा। सर हेडफील्ड साहेब ने सूक्ष्मदर्शक द्वारा जो परीक्षाकी उससे स्पष्ट है कि यह लोहा बहुत ही शुद्ध है और इसमें गलित आदि कुछ भी नहीं है। इस लोहामें यद्यपि

स्फुर की मात्रा ०·११४ प्रतिशत तक है पर वैसे यह बहुत ही शुद्ध है।

ऐसा कहा जाता है कि यदि इस स्तम्भके ऊपरके पृष्ठका लोहा खरोच डाला जाय तो अन्दर के लोहेमें दिल्लीकी शुद्ध वायुमें भी जंग लग जायगा। हेडफील्ड साहेबका कहना है कि इस स्तम्भके लोहेका जो अंश उनके पास भेजा गया था वह कई दिनों तक प्रयोगशालाके वायुमंडलमें खुला रख छोड़ देने पर भी पूर्ववत् ही चमकता बना रहा। पर जब इस लोहेका एक टुकड़ा पानी के संसर्गमें वायुमें रखा गया तो इसमें बड़ी बुरी तरहसे जंग लग गया।

कुछ लोगों ने इस लोहेमें जंग न लगने का एक मनोरञ्जक कारण सर हैडफील्ड को बताया। उन्होंने उनसे कहा कि दिल्लीमें इस स्तम्भके सम्बन्धमें एक धार्मिक त्यौहार या पर्व प्रतिवर्ष मनाया जाता है जब कि इस लोहेको घीसे अच्छी तरह लेप दिया जाता है, और यह घी ही लोहेको जंग न लगनेसे बचाये रखता है। सर हेडफील्ड इस युक्तिको विश्वसनीय नहीं मानते हैं, और यह युक्ति किसी महत्वकी भी नहीं है।

पारशाब्दिक लहरें

Ultra-sonic waves

१० मई सन् १९३१ के Pioneer से उद्धृत।

प्रायः मनुष्य २० से २०००० प्रति सेकेंड झूलन संख्या वाला शब्द सुननेमें समर्थ हैं। हारमोनियम का मध्यम 'सा' २५६ झूलन संख्या वाला सुर है। इस प्रकारकी नीची संख्या वाला सुर बहुत आसानीके साथ पैदा किया जा सकता है। हारमोनियमके भीतरी भाग को अच्छी तरहसे देखने पर मालूम होगा कि छोटी छोटी पीतल की पत्तियों को जब हवाके झोंकेसे हिलाया जाता है तब तरह तरहके सुर निकलने लगते हैं। पत्तीकी लम्बाई व मोटाई पर सुरकी झूलन संख्या निर्भर है। यह प्रायः माना गया है कि २०००० से ऊँची संख्या वाला सुर कानसे नहीं सुना जा सकता और इसलिये इसे पारशाब्दिक सुर या लहरें कहते हैं। आज आपको इस प्रकारकी लहरोंके उत्पन्न करने की विधि तथा उनका आश्चर्यजनक प्रयोग बतलाया जायगा।

इस प्रकारके सुर उत्पन्न करनेकी सबसे सरल विधि यह है कि आप एक इस्पात की छड़ लेकर उसे बीचसे मजबूतीसे थाम लीजिये और फिर उसके भी एक सिरे पर चोट मारिये। जो सुर इस प्रकार निकलेगा उसकी झूलन संख्या छड़ की लम्बाई पर निर्भर होगी, जैसे कि

छड़ की लम्बाई शतांश मीटर में	झूलन संख्या प्रति सेकेंड
१००	२५५५
२०	१२,८००
१०	२५,६००
५	५०,१५०

अब आप कहेंगे कि १० शतांश मीटर और ५ शतांश मीटर वाले छड़से जो शब्द निकलेगा वह सुनाई नहीं पड़ सकता है पर जब छड़ पर चोट लगेगी तो खूब जोरका शब्द सुनाई पड़ेगा। पर इससे आप यह न समझें कि ऊपर दिये हुये परिमाण गलत हैं। परन्तु बात यह है कि जो शब्द सुनाई पड़ता है वह छड़के खड़े कंपन (Transverse vibration) की वजह से है और इसकी झूलन संख्या बहुत नीची होती है। ऊपर दी झूलन संख्यायें छड़के अनुदैर्घ्य कम्पन (Longitudinal vibration) की वजहसे हैं। जो इस प्रकार शब्द निकलता है वह बहुत कमजोर और कम सामर्थ्यका होता है। बहुत सामर्थ्य वाले पारशाब्दिक सुरके उत्पन्न करने की आधुनिक विधियाँ सन् १९१६ में मालूम हुई थीं। सन्

१६१२ में टिटेनिक (S. S, Titanic) नामका जहाज अटलांटिक महासागरमें जब एक बर्फके पहाड़से (Iceberg) से टकरा कर डूब गया तब बड़े बड़े वैज्ञानिक बर्फके पहाड़ तथा और चट्टानोंके पता लगानेके उपायोंको ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करने लगे। लुई रिचार्डसन ने कहा कि पारशाब्दिक सुरकी चट्टानोंसे निकलनेवाली गूँजकी सहायतासे पता सहज हीमें लग सकेगा।

सन् १६१६ में फो-लांजविन पहिले पहिल सामर्थ्य शाली पारशाब्दिक लहरें सेन (Senie) नदीके पानीमें उत्पन्न करनेमें सफल हुये। वे दो मीलकी दूरी तक पानीके भीतर समाचार भेज सके और ११० गज़ की दूरी पर रक्खे हुए एक लोहेके चादरसे निकलती हुई गूँजका भी पता पा सके। पूलसन चाप (Poulsenarc) द्वारा एक लाख झूलन संख्या वाली विद्युत अवस्था भेद (Voltage) उत्पन्न करके विद्युत् संग्राहक की सहायतासे पानीमें १००००० झूलन संख्या वाली पारशाब्दिक लहरें भेजीं। परन्तु पूर्ण सफलता तभी मिली जब कि त्रयोद कपाटसे (Theronic valve) उलटी सीधी धारा (Alternating currnt) उत्पन्न करने का कार्य्य लिया गया और कलमके बिल्लोर (Piezo electric) द्वारा पानीमें लहरें उत्पन्न करीं।

श्रीमती कुरी तथा श्रीमान कुरी ने हम लोगोंको यह बतलाया कि यदि कलमके बिल्लोरकी तसली (Plate) को दबाया जावे अथवा खींचा जावे तो आमने सामने वाले सतहों पर भिन्न भिन्न विद्युत् संचार इकट्ठा हो जाता है। खिंचाव की जगह दबाव करनेसे भिन्न प्रकार को विद्युत् पैदा हो जाती है। इससे विपरीत रीति, यानी, भिन्न २ प्रकार का विद्युत संचारके लगानेसे बिल्लोरमें सुकड़न या मोटापन (Contraction aud elongation) उत्पन्न होना ही पानी या किसी द्रव पदार्थमें पारशाब्दिक आनुदैर्घ्य लहरें पैदा करनेमें सफल होता है।

कलम के बिल्लोर को उत्तेजित करनेके लिये त्र्योद कपाट (Thermionic valve) द्वारा ५ लाख की ऊँची झूलन संख्या वाला अवस्था भेद उत्पन्न किया जाता है। अधिक सामर्थ्यवान लहरोंके लिये ऊँचा बल २०००, से ३००० वाट वाले त्र्योदको कम्पित कराया जाता है, और परिवर्तक (Transforme) द्वारा अवस्थाभेद १०००० से करीब ५०००० कर लिया जाता; तब यह अवस्था भेद पानी या तेलमें रक्खी हुई कलम के बिल्लोरकी तसलीके आमने सामने वाली सतहों को लगाया जाता है और जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कलमके बिल्लोर की तसली कम्पन करने लगती है। यदि कलमके बिल्लोरकी तसली की स्व-कंपन-झूलन संख्या तथा लगाये हुए अवस्था भेद की झूलन संख्या दोनों एक कर ली जावे तो पानी में बहुत सामर्थ्यवान् लहरें उठती हैं। बिल्लोर को तसलीको ठीक तरह रखनेसे पड़ी और खड़ी किसी भी तरफ लहरें भेजी जा सकती हैं। यह लहरें यदि चांदी करनेके घोलमें उत्पन्न की जावें तो एक शीशे की तसली पर चांदी बारीक बारीक लकीरोंके रूपमें जम जाती है, जो यह बतलाती है कि स्थायी लहरें पानीमें बन गई हैं।

इन लहरोंके अद्भुत चमत्कार प्रोफेसर वुड और प्रोफेसर हापवुडके प्रयोगों द्वारा हम जानने लगे हैं, जिनका हम नीचे कुछ वर्णन करेंगे।

क्लार्क मेकनबेल ने हमें यह बतलाया कि सामर्थ्य जब रोशनी या शब्दके रूपमें किसी ओर जाती है। तो राह में विकिरण दबाव (Pressure of Radiation) होता है। मामूली रोशनी और शब्दकी लहरों दबाव एक ग्रामके एक हजारवें हिस्से से कहीं कम होता है। परन्तु प्रोफेसर वुडकी पार शाब्दिक लहरोंका दबाव ६ शतांश मीटर व्यास की कांचकी तसली पर १५० ग्रामके भारके बराबर पाया गया। यदि लहरें कांचको

तसलीके बजाय द्रव की सतहसे टकरायें तो बिल्लोर के ऊपरी हिस्सेसे द्रवकी सतहकी ऊँचाईको ठीक करने पर प्रो० वुड ने देखा कि बिल्लारके ऊपर वाली द्रव की सतह एक छोटेसे टीलेके सदृश उठ जाती है। इस टीले की चोटीकी ऊँचाई करीब ३ इंच थी और द्रवके छोटे छोटे बिन्दु तो १२ से १६ इंच तक ऊपर फेंके गये थे।

घोड़ेके बालके समान मोटाईके कांचका एक धागा, जिसके सिरेमें एक नाशपाती का सा मनिया हो और यदि यह हिस्सा कम्पन-द्रवमें डुबोया जावे और कांचके धागे का ऊपरी हिस्सा यदि अंगुलियोंमें दबाया जावे तो अंगुलियोंमें एक प्रकार का घाव हो जाता है जो बहुत कठिनाईसे भरता है। यह लहरें कांचके मोटे धागेमें भी चलाई जा सकती हैं और यदि इसका एक सिरा किसी सूखी लकड़ीके टुकड़ेसे सटाया जावे तो लकड़ी का टुकड़ा धुआं देने लगता है और कभी कभी चिनगारी देकर जल उठता है। यही नहीं यदि एक कांच की तसली इसके एक सिरेसे सटाया जावे तो इस तसलीमें भी थोड़ी देरमें छेद हो जाता है।

पानीसे भरा गिलास अगर कम्पन-द्रव में लटकाया जावे तो पानीमें से हवाके बुलबुले निकलने लगते हैं और ऊपर आनेके बजाय अचल सतहों (nodelhane) में ठहर जाते हैं और ऊपर जब आते हैं तो अजीब झिझक के साथ आते हैं। थोड़ी देर बाद पानी गरम होने लगता है और ताप १°श प्रति ३ सेकेंडके हिसाबसे बढ़ने लगता है। इन पारशाब्दिक लहरोंका बरफके ऊपर एक आश्चर्यजनक असर होता है। थोड़ेसे समयके बाद अगर इस बरफके टुकड़ेको अंगुलियोंके बीच में दबाया जावे तो यह चूर चूर होकर गिर जाता है। इसका कारण यह है कि बरफके टुकड़ेके भीतर खास खास स्थानों पर गरमी पैदा होनेकी वजहसे वहाँ बरफ गल जाती है।

यदि इन लहरों का अति संपृक्त हाइपो (Sodium thiosulphate) के घोल पर प्रयोग किया जावे तो कुछ भी फल नहीं होता है। परन्तु यदि यह कंपन एक कांचके (rod) छड़ द्वारा घोलमें पहुँचाया जावे तो छड़के घोलमें डुबे हुए सिरेसे तुरन्त ही रवे बनना आरम्भ हो जाता है। यही नहीं यह भी देखा गया है कि इस क्रियासे कलोद घोल भी बहुत सुगमतासे तथा बहुत अच्छी प्रकार बन जाते हैं। दो (non-miserable) अमिलनशील द्रव एक गिलासमें रख कर यदि इसे कम्पन द्रव में लटकाया जावे तो थोड़े समयमें दोनों द्रवों का कलोद घोल बन जाता है इसी प्रकार पारा और पानीका घोल भी सुगमतासे बन जाता है।

सबसे आश्चर्यजनक तथा मनोरञ्जक तो इन लहरों का असर जीवित पदार्थों पर है, जैसे कि मेंढक, मछली, रुधिरके श्वेत रक्त कण। सन् १९१७ में लैङ्गेविन ने समुद्रमें बर्फके पहाड़ों तथा चट्टानों का पता लगाते समय देखा कि मछलियाँ तथा मेंढक जो कि पारशाब्दिक लहरोंमें आ पड़े मर गये। लेकिन उस समय इस आश्चर्यजनक बात को समझाना कठिन था। प्रोफेसर वुड और हाएबुड ने इन प्रयोगोंको अपनी प्रयोग शालाओं में दोहराया और निम्नलिखित कई एक मनोरञ्जक दृश्य देखे :—

इन लहरोंके प्रयोगसे जीवित स्पिरोगाइरा (spirogyra) के तन्तुओं के टुकड़े २ हो गये और कोष्ठ फट गए। छोटे एक कोष्ठक जीव जन्तु जैसे पैरामेसियम लहरोंके थोड़ेसे प्रयोगके बाद स्थिर (immobile) हो गये और अधिक प्रयोगके बाद मर गये और उनमेंसे बहुतसे तो फट गये। इन लहरोंके प्रयोग द्वारा नमकके फिज़ियो लोजिकल घोलमें खूनके लाल कण बहुत जल्द नष्ट हो गए और द्रव लाल नीलिन रंगके घोलकी तरह बिलकुल साफ और स्वच्छ हो गया।

इन लहरोंके १-२ मिनिट प्रयोग करने पर छोटे मेंढक और मछलियाँ मर गईं परन्तु चूहों पर इनका २० मिनट तक प्रयोग करने पर भी कोई खास असर नहीं देखा गया। वह पानी जिसमें कि मेंढक और मछलियाँ रक्खी गईं बर्फसे निरन्तर ठंडा रक्खा गया परन्तु फिर भी (विशेषतः भीतरी गर्मी और खूनके कणोंमें के फटनेसे) वह मर गये सिर्फ यह ही नहीं बल्कि मेंढकके अलहदा किये गए दिल और मुर्गीके बच्चेका अंकुरित दिलकी धड़कनकी गति भी मन्द होती देखी गई। जीवित जीव जन्तुके मृत्युका सही और ठीक सबब समझाना अति कठिन है परन्तु जब इतने दृश्य एक ही समय पर होते रहते हैं तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मछली मेंढक आदि जन्तु मर जायँ।

—अनुवादक श्री भगवानदास तोशनीवाल

परलोक-पाखण्ड

[ले० श्री अवध उपाध्याय]

सन् १८४८ का साल संसारके इतिहासमें एक प्रसिद्ध साल है। इस साल योरपमें क्रान्तिकी लहर उठी थी। लगभग इसी समय फ्रांस ने सदाके लिये राजाकी सत्ताको मानना अस्वीकार कर दिया। इसी समय मेज़िनी ने इटलीमें प्रजातन्त्रराज्य स्थापित किया था। जर्मनी और आस्ट्रियामें इस समय खूब प्रतिस्पर्द्धा बढ़ रही थी और चार्टिस्ट-दल का इँग्लैंडमें तथा सम्बन्ध-भङ्ग-आन्दोलनका अमरीकामें ज़ोर बढ़ रहा था। भारतमें इस साल लार्ड डलहौज़ी गवर्नर-जनरल होकर आये थे, जिनके समयमें उस बलवेका बीजारोपण हुआ था जो सन् १८५७ में यहाँ हुआ। इन्हीं सब कारणोंसे कुछ इतिहासज्ञों ने सन् १८४८ को उन्नीसवीं शताब्दीका अत्यन्त ही अधिक प्रसिद्ध साल माना है। इसी समय अमरीकामें परलोक-वाद (Spiritualism) का भी जन्म हुआ था।

जड़ और चेतन, आत्मा और परमात्मा, प्रकृति और पुरुष तथा स्पिरिट (आत्मा) और मैटर (द्रव्य) का प्रश्न बहुत पुराना है। प्रत्येक देशके दर्शन तथा धर्ममें इन सब बातोंका अति प्राचीन कालसे विचार होता चला आया है और अब तक हो रहा है। ये सब प्रश्न उतने ही पुराने हैं जितना हिमालय-पहाड़ अथवा यह सृष्टि। पाश्चात्य देश का परलोक-वाद भी सङ्कुचित रीतिसे इन प्रश्नों पर विचार करता है, परन्तु उसका दृष्टिकोण अत्यन्त ही अधिक सङ्कुचित और उसके नियम बहुत ही अधिक परिमित हैं तथा उस क्षेत्र के अधिकांश कार्यकर्त्ता धूर्त ठग तथा लोभी हैं।

अमरीका और योरपमें परलोक-वादके फैलने के कई कारण उस समय मौजूद थे। डार्विन, स्पेंसर, हक्सले और टिंडल आदि वैज्ञानिकोंके आविष्कारोंकी धूम मची हुई थी और योरपकी जनता ईसाई-धर्ममें अविश्वास करने लगी थी। वास्तवमें उस समय योरपमें जड़-वाद (Materialism) की तूती बोल रही थी। इसलिए वह समय ईश्वरीय ज्ञानके उत्पन्न होनेके सर्वथा उपयुक्त था, क्योंकि एक धार्मिक विचारके नष्ट होनेके अनन्तर दूसरे धार्मिक विचारका आविर्भाव होना स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त उन्नीसवीं शताब्दीमें बहुत लोग अमनुष्योचित कार्योंमें विश्वास करने लगे थे। परलोक-वादके फ़ैलनेका एक प्रधान कारण यह भी था कि उन्नीसवीं शताब्दीमें योरप में विज्ञान की उन्नति नहीं थी। अतएव वहाँके लोग सब प्रश्नों तथा सिद्धान्तोंको वैज्ञानिक ढङ्ग से नहीं देखते थे। उसी समय योरपमें विद्युत-सम्बन्धी खोज होने लगी थी और वहाँके लोग इसकी असाधारण शक्तियोंमें विश्वास करने लगे थे। इसके सिवा डाक्टर मेस्मरके आविष्कार

भी प्रसिद्ध हो चुके थे और सब लोग मेस्मेरिज्म में विश्वास करने लगे थे। इस प्रकार मेस्मेरिज्म ने परलोक-वादके लिए पहिले ही से क्षेत्र तैयार कर दिया था। इसी समय मेज़ चलानेकी प्रक्रिया का सारे योरपमें प्रचार हो गया था। जिसे देखो वही मेज़ चलानेका प्रयत्न करने लगा था और अधिक लोग इसमें विश्वास करने लगे थे। इसी समय फ़्रांस की एंजलिक काटिन नामक एक लड़की सारे योरपमें प्रसिद्ध हो गई। वह तेरह वर्षकी कुमारी थी। जब वह किसी कुर्सीसे उठती तब कुर्सी उलट कर पीछेकी ओर पृथ्वी पर गिर पड़ती थी। जब वह मेज़के पास खड़ी होती थी तब मेज़ उलट जाती थी। फ़्रांस की सबसे अधिक प्रसिद्ध वैज्ञानिक सभा ने उसे अपने यहाँ निमन्त्रित किया, दिनमें अच्छी तरहसे जाँचकी और उसे सच्चा पाया। इस प्रकार उसकी प्रशंसा सारे योरपमें फैल गई और वह बालिका असाधारण शक्तिवाली समझी जाने लगी। वास्तवमें उसके पैरके पुट्ठे बहुत प्रबल थे और उन्हींकी सहायतासे वह इन सब असाधारण कामोंको किया करती थी। परन्तु अन्तमें वह पकड़ी गई और तब सारी क़लई खुल गई। इस प्रकारके काम करनेवालों की संख्या कम नहीं थी। इस कारण परलोक-वाद के फैलने में बड़ी सहायता मिली। इसके अतिरिक्त भूतोंकी कथायें सारे योरपमें फ़ैल रही थीं और सब लोग ऐसे घरोंके अस्तित्वमें विश्वास करने लगे थे जिनमें भूत रहा करते थे।

अमरीका में परलोक-वाद के फैलने का एक प्रधान कारण यह भी था कि अमरीकाके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ धनी, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक व्यक्ति—जैसे पेन, बेंजमिन, फ्रैंकलिन, वाशिंगटन, एडेम्स और जेफ़रसन आदि विद्वत् मेस्मेरिज्म तथा मेज़ चलानेकी बातोंमें विश्वास करने लगे थे।

मेरी जेन-सम्बन्धी घटनासे भी परलोक-वाद को बड़ा प्रोत्साहन मिला। मेरी जेन एक नौकर की कन्या थी। डाक्टर लारकिन मेस्मेरिज्मके ज्ञाता थे। वह मेरी जेनसे मेस्मेरिज्मकी सहायता से बेहोशीकी दशामें भाँति भाँतिके मरे हुए मनुष्यों की बोली बोलवाता था, जिन्हें सुनकर सब लोग विश्वास करने लगते थे कि मृत-पुरुषोंकी आत्मायें उस पर आ जाती हैं। वास्तवमें उस समय जिस भाषाका वह प्रयोग करती थी वह उसकी भाषासे बिलकुल भिन्न होती थी। इसलिए सब लोग उसकी बातों पर विश्वास कर लेते थे। उस कन्याकी सब बातों की सचाई की भी जाँच की गई और इस कामके लिए एक सभा तक बनाई गई। सभाने रिपोर्ट दी कि मेरी जेनकी सब कार्रवाइयाँ सही हैं। परन्तु बहुत दिनोंके बाद उसका भंडा-फोड़ हुआ।

डेविस की घटना से भी अमरीकामें परलोक-वादके फैलनेका अच्छा अवसर मिला। डेविस पहले मोचीका काम किया करता था और जूता बनाकर बेचा करता था। इसने मेस्मेरिज्म करना प्रारम्भ किया। वास्तवमें मेस्मेरिज्म की सहायता से कुछ लोगोंके रोगोंके शान्त करनेमें उसे सफलता मिली। इस प्रकार उसका यश धीरे धीरे फैलने लगा और कुछ समयके बाद वह बहुत ही अधिक प्रसिद्ध हो गया। अब उसके ऊपर मरे हुए आदमियोंकी आत्मायें भी आने लगीं। इसके अनन्तर डेविसका नाम ख़ूब फैला और बहुत लोग उसकी उसकी बातोंमें विश्वास करने लगे। इसके बाद डेविस ने इस विश्वास करने लगे। इसके बाद डेविस ने इस विश्वका एक नया दर्शन ही उत्पन्न कर दिया। इससे भी उसकी ख्याति ख़ूब फैली, परन्तु अन्तमें उसकी क़लई खुल गई और उसके दर्शनके सब सिद्धान्त भ्रमात्मक सिद्ध हो गये।

अमरीका तथा योरपमें परलोक-वाद के फैलने का एक प्रधान कारण यह भी था। सब लोग एक आनन्दमय संसारका स्वप्न देखने लगे थे। सब लोग समझने लगे थे कि परलोक-वादके सिद्धान्त के माननेके बाद हम लोग ऐसे संसारमें पहुंच

जायँगे जहाँ क्लेशका नाम भी नहीं रहेगा, जहाँ कोई बीमारी नहीं रहेगी और यह पृथ्वी स्वर्गके समान सुखदाई हो जायगी। दुखी मातायें अपने मरे हुए पुत्रोंको देख सकेंगी और विरही प्रेमी अपनी प्रेमिकाओंसे सुगमतासे बातें कर सकेंगे। इसके सिवा इस सिद्धान्तके माननेवाले समझने लगे थे कि शीघ्र ही यह संसार ऐसा सुन्दर रूप धारण कर लेगा जैसा इसने पहले कभी नहीं धारण किया था और संसारका सब रहस्य शीघ्र ही खुल जायगा।

इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि अमरीका तथा योरपमें वैज्ञानिक, सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति हो रही थी। इन सब कारणोंसे वहाँकी जनता किसी नये सिद्धान्त तथा नई बातके माननेके लिए अच्छी तरहसे तैयार थी। इसी समय परलोकवाद की चर्चा होने लगी और इसका प्रचार बहुत ही शीघ्र चारों ओर हो गया, क्योंकि इसके लिए क्षेत्र पहलेसे ही तैयार था।

न्यूयार्क स्टेटके ठीक उत्तर और नियाग्राके पास ओनटैरियो नामक झीलके किनारे पर हाइड्स विले नामक एक गांव है। उसी गांवमें जान डी० फ़ाक्स की दो कन्यायें रहती थीं। बड़ीका नाम मारगरेट (मैगी) था। इसकी अवस्था पन्द्रह वर्ष थी। इसकी छोटी बहनका नाम कैथराइन (कैटी) था। इसकी अवस्था बारह वर्ष थी। इनकी एक और बड़ी बहन थी, जिसका विवाह हो गया। इसका नाम लीफ़िश था। यह सङ्गीतकी शिक्षा देकर अपनी जीविका चलाती थी। सन् १८४८ की फ़रवरीमें मिस्टर फाक्सके घर अद्भुत घटनायें घटने लगीं। उनये घरमें रहस्यपूर्ण शब्द होने लगे। जिस घरमें दोनों अविवाहित कन्यायें रहती थीं उसी घरमें शब्द सुनाई पड़ने लगे, कुर्सी और मेजें हिलने लगीं तथा उनके द्वारा शब्द होने लगा। जब वे सोती थीं, तब भयानक खटखटाहट भयङ्कर शब्द और गंभीर थपथपाहट सुनाई पड़ती थी। इन सब बातोंसे लोगों ने समझा कि यह सब भूतकी कार्रवाई है। इन सब बातोंके सुननेसे कुछ लोगों को आश्चर्य हुआ, कुछ लोगोंको भय भी हुआ। कन्याओंकी माता तो इतना डर गई कि उसके सब बाल एक ही सप्ताहमें सफेद हो गये। यह सब तो हुआ, परन्तु स्वयं वे दोनों कन्यायें प्रसन्न रहीं। वे इस प्रकारसे रहती थीं, मानो कोई असाधारण घटना होती ही न हो। इस प्रकार अमरीकामें सबसे पहले चैतन-जगत्से इस संसारमें इन्हीं दोनों कन्याओंके द्वारा समाचार आया।

इसके बाद तीन टाँगवाले मेज़का प्रयोग होने लगा और हरएक तरहके प्रश्नोंका उत्तर मेज़की खटखटाहटकी सहायतासे दिया जाने लगा। भूत प्रेत, चोरी, डाका और हत्या आदि सभी प्रश्नोंको मेज़की खटखटाहट हल करने लगी। इस प्रकार थोड़े ही समयमें इन दोनों कुमारियोंका नाम कई गाँवोंमें हो गया। इसी समय उस गाँवमें एक आदमी जानसे मार डाला गया। अब सब लोग इस प्रश्नको इन दोनों बहनोंकी सहायतासे हल करनेका विचार करने लगे, क्योंकि पुलिस-द्वारा हत्या का कुछ भी पता नहीं चला था। इन लोगों ने बड़ी चालाकी की और पहले हत्याकारीका नाम नहीं बतलाया। परन्तु अन्तमें इन लोगो ने एक बिसातीका नाम बतला दिया। बिसाती पकड़ा गया और उसके ऊपर मुक़द्दमा चलने लगा। इसी इसी बीचमें असली हत्याकरी भी पकड़ा गया और उसने अपने अपराधको स्वीकार भी कर लिया। इसमें सन्देह नहीं कि इस घटनासे कुछ लोगोंके मनमें सन्देह हुआ, तथापि उस समय अमरीकामें परलोकवादके सम्बन्धमें इतना अधिक जोश फैला हुआ था कि लोगों ने इन सब बातोंकी कुछ भी खोज नहीं की। एक दिन गाँव भरकी जनता एकत्र हुई, सब लोगों ने विचित्र शब्दोंको सुना, सब लोगों की अवस्था तथा उनकी सन्तानोंकी संख्या मेज़की खटखटाहट द्वारा बतलाई गई। अन्तमें सब लोगों ने निश्चय किया कि इस घरमें अवश्य ही भूतोंका का निवास है। इसके अनन्तर मिस्टर फ़ाक्स ने उस घरको छोड़ दिया। मारगरेट अपनी विवाहित

बहनके साथ रोचेस्टर नामक नगरमें जा बसी और कैथराइन अपने सम्बन्धियोंके साथ औबर्न नगरमें रहने लगी।

इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों कुमारियाँ अपने गांवसे चली गईं और दूसरे गाँवोंमें जाकर बस गईं, परन्तु भूतों ने उनका साथ नहीं छोड़ा। ये जहाँ जहाँ गईं, वहीं पर उपद्रव होता रहा। एक दिन मारगरेटके ऊपर एक प्रेतात्मा आई और उसने सबके सामने कहा—अब 'प्राइवेट सियाँस' करने का अवसर जाता रहा। अब पब्लिकमें सियाँस का प्रचार करो। कुछ फ़ीस भी लो। इस प्रकार इस धर्मका जनतामें प्रचार हो जायगा। इस धर्मको छिपाना अच्छा नहीं है। इस बातका उपस्थित जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा और सब लोग पब्लिकमें सियाँस करनेके लिए मारगरेटसे प्रार्थना करने लगे। परन्तु उसने दो सप्ताह तक इस सम्बन्धमें किसीसे कुछ नहीं कहा। इस कारण सब लोगोंकी उत्सुकता और भी अधिक हो गई और सब लोग मारगरेटसे जल्दी पब्लिकमें सियाँस करनेकी प्रार्थना करने लगे। थोड़े दिनोंके बाद रोचेस्टरमें एक बड़े भारी पब्लिक हालमें सीयाँस होने लगा और मारगरेट माध्यम (Medium) के रूपमें काम करने लगी। धीरे धीरे इसका नाम चारों ओर फैल गया। बफेलो-विश्वविद्यालयके एक प्रोफ़ेसर ने कहा कि इन माध्यमोंका सब काम धूर्ततासे भरा है, उनमें कुछ भी सचाई नहीं है। प्रोफ़ेसरकी इस ललकार ने इन दोनों बहनोंको सामने आनेके लिए विवश किया। एक दिन बड़ी भारी सभा हुई, सभामें बहुत जनता एकट्ठा हुई और सियाँस प्रारम्भ हुई। परन्तु इस बार कोई भी आवाज़ नहीं हुई, सब लोग अवाक् रह गये। वास्तवमें बात यह थी ये दोनों बहनें अपने पैरके अँगूठोंके जोड़ोंकी सहायतासे शब्द उत्पन्न किया करती थीं। परन्तु उस प्रोफ़ेसर ने उनके पैरके अँगूठोंको इस प्रकार बाँध दिया था कि वे उनका प्रयोग ही न कर सकीं।

कुछ लोग सोचते होंगे कि इस कारण परलोक-वादकी अवनति हुई होगी। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि अमेरिकामें जनता सचाई और झुठाई नहीं खोज रही थी, इस समय वहाँके लोग आकाशमें उड़ रहे थे। धीरे धीरे माध्यमों की संख्या बढ़ने लगी। अभी तक तो कैथराइन माध्यम का काम कर रही थी, परन्तु अब वह मेस्मेरिज्म का भी उपदेश देने लगी। इस क्षेत्रमें भी उसका बड़ा नाम हुआ। धीरे धीरे सीयाँसोंमें अद्भुत कामों की संख्या बढ़ने लगी। अब सीयाँसोंमें मेज़ ऊपर उठने लगी, कुर्सियाँ इधर-उधर गिरने लगीं और बैठनेवालोंको धक्के लगने लगे, दूर दूरके परदे हटाये और गिराये जाने लगे। कभी कभी ऐसा भी होता था कि मृत-पुरुषोंकी आत्मायें शरीर धारण करके सब लोगोंके सामने आ जातीं और जीवित पुरुषोंको धक्के तक देतीं। कभी कभी प्रेतात्माओंके केवल हाथ दिखलाई पड़ते, कभी वे बाजा बजाने लगते और कभी गाने भी लगते थे। ये सब विचित्र बातें सन् १८५० में अमेरिकामें होने लगी थीं। इस प्रकार स्पष्ट है कि परलोकवाद के अस्तित्वमें आनेके केवल दो वर्षके बाद ऐसी विचित्र घटनायें होने लगीं और सब प्रश्न एक तरहसे हल कर दिये गये जो कई हज़ार वर्षोंसे हल नहीं हो सके थे। साधारण जनता इन सब घटनाओं को सच मानने लगी, परन्तु कुछ लोग इनकी सत्यतामें अब भी सन्देह करते थे। धीरे धीरे इनका नाम न्यूयार्क तक फैल गया। सन् १८५० में न्यूयार्कके कई प्रसिद्ध विद्वानों ने इन दोनों बहनोंको अपने यहाँ निमन्त्रित किया और कई प्रकारसे उनकी जाँच करना प्रारम्भ किया। वास्तवमें दर्जनों आदमियोंको इन लोगों ने चेला मूड़ लिया इन चेलों ने अब इनकी प्रशंसा करना प्रारम्भ कर दिया। इसका जनता पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि सन् १८५१ में न्यूयार्कका एक बहुत ही अधिक प्रसिद्ध जज परलोकवादी हो गया। इसके बाद परलोकवाद का रोग पढ़े-लिखे तथा

विद्वानोंमें फैलने लगा। इस जजका नाम एडमांड्स था। यह एक धार्मिक मनुष्य था और ईसाई-धर्ममें खूब विश्वास करता था। जब इसे पता चला कि मरनेके बाद भी मनुष्यकी आत्मा नहीं मरती और बुलाई जाने पर भी आ जाती है तब इसके आश्चर्य और दुःखकी सीमा ही नहीं रही। यह सिद्धान्त वास्तवमें ईसाई-धर्मके बिलकुल विरुद्ध था। साधारण मनुष्यका धर्म सबसे अधिक प्यारा होता है। इस धर्म को छोड़ने में जज एडमांड्सको वास्तवमें हार्दिक खेद हुआ, तथापि उसके धार्मिक भावों ने उसकी बुद्धिके सामने सिर झुका दिया और वह परलोकवादी हो गया। एडमांड्स सज्जन था। उसने समझा कि उसे कोई अपूर्व सिद्धान्त मिल गया है। वह उस सिद्धान्तके प्रचार करनेका प्रबल प्रयत्न करने लगा। सन् १८५३ में परलोक-वाद पर उसने डाक्टर डेक्स्टर को सहायतासे एक पुस्तक लिखी। इसी पुस्तकसे परलोक-वादका प्रचार सारे अमरीकामें हो गया। जजका प्रभाव उसके मित्रों पर भी पड़ने लगा। एक गवर्नर भी उसके प्रभावसे परलोकवादी हो गया। धीरे धीरे कई प्रोफेसर और कई प्रसिद्ध वकील भी परलोकवादी हो गये। एक दिन बीस माध्यम (Mediums) एकत्र किये गये और बहुतसे दर्शक भी इकट्ठे हुए। उन बीस माध्यमोंमें से केवल एक दर्जन प्रयोगके लिए चुने गये। इनमें उन दोनों बहनोंके अतिरिक्त गार्डन, फाउलर और कूली नामके माध्यम प्रसिद्ध हैं।

उस दिन सब माध्यमों को बड़ी सफलता मिली। सब रोशनी बुझा दी गई। इसके बाद विचित्र घटनायें होने लगीं, मेज़ और कुर्सी उलटने लगीं, घंटे बजने लगे, दरवाज़ों पर खटखटाहट होने लगी और कुछ आदमियों पर प्रेतात्मायें आ गईं। जज एडमांड्स भी वहाँ मौजूद था। वह चिल्ला उठा—मुझे किसी मृतककी आत्मा ने स्पर्श किया है। दूसरा आदमी बोला—प्रेतात्मा ने मेरे कन्धे पर थपकी दी है। तीसरा आदमी चिल्ला उठा—कई आत्मायें मेरे पैरों पर लोट रही हैं। उस दिनके सियाँसका भी सब लोगों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा और इसलिए भी बहुत आदमी परलोकवादी हो गये। कुछ दिनोंके बाद स्वयं जज भी माध्यमका काम करने लगा। परन्तु उसे इस काममें विशेष सफलता नहीं मिली। इसके बाद उसकी लौरा नामक कन्या माध्यमका काम करने लगी और वह समाधिस्थ (बेहोश) भी होने लगी। समाधिकी अवस्था में लौरा फ्रांसीसी, जर्मन, अँगरेज़, स्पेनकी तथा भारतकी कई भाषायें बोलने लगती थी। यद्यपि वह स्वयं सङ्गीत-कला नहीं जानती थी, तथापि मृतात्माओंके आवेशमें वह ऐसा सुन्दर गाने लगती कि सब लोग मन्त्रमुग्ध हो जाते। लौरा की देखा-देखी अमरीकाके अच्छे अच्छे घरानोंकी कई लड़कियाँ माध्यमका काम करने लगीं। जब सब लोगों ने देखा कि ये सब भले घरों की कन्यायें भी ऐसा करने लगी हैं तब इनमें सचाई अवश्य है, क्योंकि ये सब धनके लालचसे तो ऐसा करती ही नहीं हैं। इसी समय परलोक-वादियों ने अपना एक प्रेस खरीद लिया और उसकी सहायतासे अपनी प्रशंसा का चारों ओर प्रचार करने लगे।

इसी समय कई और विचित्र घटनायें हुईं, जिससे परलोक-वाद और भी अधिक तीव्र गतिसे फैलने लगा। ये सबकी सब घटनायें डाक्टर फेल्प्सके घर पर हुई और बहुत ही शीघ्र इनकी चर्चा सारे अमरीका में फैल गई। मृतकोंकी आत्माओं ने डाक्टर साहबके घर ऊधम मचाना प्रारम्भ कर दिया, कई खिड़कियाँ तोड़ डाली गईं, सब सामान टूट-फूट गया, घरमें चारों ओरसे बर्छियाँ चलने लगीं। कई प्रकारकी चीज़ों तथा फूलोंकी वर्षा होने लगी, छत परसे चिट्ठियां गिरने लगीं, घरके भीतरका छाता बीस बीस फुटकी दूरी पर जाकर गिरने लगा, खाली घरमें दस दस बारह बारह सुन्दर कन्यायें दिखलाई पड़ने लगीं और मृत-आत्मायें शरीर और प्रत्यक्षरूपसे सबके

सामने आने लगीं। परन्तु कुछ दिनोंके बाद इन सब विचित्र घटनाओंका रहस्य खुल गया। तब पता चला कि सब बातें धोखेसे भरी हुई थीं।

सन् १८४८ में परलोकवादका जन्म हुआ और अपनी तीसरी बहनकी सहायतासे उपर्युक्त दोनों बहनें लगातार ४० वर्ष तक माध्यमका काम करती रहीं और परलोकसे मृतकोंकी आत्माओंको बुलाती रहीं और अनेक प्रकारकी घटनाओंको जन्म देती रहीं। सन् १८८८ में इन तीनों बहनोंमें कई कारणों से झगड़ा हो गया और इसी समय मारगरेट का विवाह कैप्टन केन नामक एक अंग्रेजसे हो गया। अब उसे माध्यमका काम छोड़ना पड़ा, क्योंकि कैप्टन केनके ही रुपयोंसे उसका सब काम चल सकता था। उसने स्पष्टरूपसे स्वीकार कर लिया कि परलोकवादकी सब बातें प्रारम्भसे अन्त तक धोखाके सिवा और कुछ नहीं थीं। उसने सब दोष अपनी सबसे बड़ी बहनके मत्थे ठोक दिया और कहा कि इसीके कहनेसे हम लोगों ने पब्लिकको धोखा देना प्रारम्भ किया था। इसके बाद कैथराइन ने भी इसी बातको स्वीकार कर लिया। तदन्तर दोनों बहनों ने मिल कर इस सम्बन्धमें एक पत्र लिखा कि कैसे ये लोग धोखा दिया करते थे। उसमें उन लोगों ने इस बातको भी मुक्तकंठ से स्वीकार कर लिया कि परलोकवाद बिलकुल धोखा है। यह पत्र सन् १८८८ के २४ सितम्बर को 'हेरेल्ड' नामक पत्रमें प्रकाशित हुआ था। उस पत्रमें इन लोगों ने लिखा था कि जब हम लोगोंकी अवस्था बहुत कम थी तब हम लोगों ने देखा था कि हमारे पैरोंके अँगूठोंके जोड़ बड़े ज़ोरसे चटखते हैं। उसके बाद हम लोगों ने अपने अपने बिस्तर पर एक छोटा काला तख्ता रख कर कर उसीसे अँगूठोंको रगड़ना तथा चटखाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार हम लोगोंमें अँगूठों की सहायता से जोर जोर शब्द करनेकी शक्ति आ गई। हम लोगोंकी बड़ी बहन ने पब्लिक को धोखा देनेका निश्चय किया और हम लोगों ने भी उसीके कथनानुसार काम करना प्रारम्भ कर दिया। बेवक़ूफ पब्लिक हम लोगोंके जालमें फँस गई और हम लोगोंका विश्वास करने लगी। परन्तु हम लोग अब सबको विश्वास दिलाना चाहती हैं कि माध्यमोंका सब काम धोखा है।

जब उसकी बड़ी बहन ने इस पत्रको समाचार-पत्रोंमें देखा तब उसने उत्तर दिया कि मुझसे तथा मेरी बहनोंसे झगड़ा हो गया है। इसलिए इन लोगों ने मुझसे बदला लेनेके विचारसे ऐसा कहा है। मैंने कभी भी पब्लिक को धोखा नहीं दिया और माध्यमोंका सब काम सत्य है। इसके बाद मारगरेट ने न्यूयार्क एकेडमी की सङ्गीतशालामें में सबके सामने दिखला दिया कि कैसे ये लोग अँगूठोंकी सहायताके शब्द उत्पन्न किया करते थे। तब सब लोगोंको विश्वास हुआ कि मारगरेट ने ही सच कहा था और सचमुच इन लोगों ने आज तक पब्लिक को धोखा दिया था।

इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि पाश्चात्य देश परलोकवाद का जन्म धोखा से हुआ। इसके प्रचारमें भी धोखा तथा धूर्तता ने कम काम नहीं किया। परन्तु जो लोग इन सब भीतरी बातोंको नहीं जानते, वे अब भी इन धूर्त्त माध्यमोंके फेरमें फँस हीजाते हैं। भारतवर्ष में भी इस ठगविद्याका अब प्रचार होने लगा है और कुछ लोग इसके जाल में फँस भी गये हैं। इसलिए पब्लिकको इससे सावधान रहना चाहिए।

(सरस्वती से)

वैज्ञानिकीय

[ले० श्री जनार्दन शुक्ल जी]

१—पृथ्वीका आकार

यह बात विवादग्रस्त है कि पृथ्वीका आकार कैसा है? इस देशके पढ़े-लिखे लोग पृथ्वीको भले ही गोल—नारंगी सी, जिसका ऊपरी और निचला हिस्सा कुछ धँसा हुआ और बीचका हिस्सा कुछ उभरा हुआ—मानें, किन्तु अधिकांश लोग उसे ऐसा नहीं मानते। यह चाहे उनकी शिक्षाका दोष हो या पुरानी लकीरको पीटते रहने के कारण हो। इधर पाश्चात्य देशवाले भी अपना मत बदलने लगे हैं। कुछ वैज्ञानिक अब पृथ्वीको नारंगी-सी नहीं मानते। मैं यहां थोड़ेमें पुराने समयसे इस समय तक भिन्न भिन्न लोग पृथ्वीको जैसा समझते आए हैं, उसका ज़िक्र करूंगा। पीछे आजकलके वैज्ञानिकोंका मत पाठकोंके सामने रक्खूंगा। आशा है, इससे उनका मनोरञ्जन होगा।

२—जड़ोंवाली पृथ्वी

आदि-कालके लोगोंका विश्वास था कि पृथ्वी चौरस है और इसकी गहराई अनन्त (Flatland of Infinife depth) है। इसी पर सूर्य, आकाश, तारे आदि सभी स्थित हैं। किन्तु जब से लोग नावों पर बैठकर समुद्रके किनारोंकी सैर करने लगे, तब से उनका मत बदला और वे इसे एक अज्ञात-विस्तारके समुद्रमें तैरता हुआ मानने लगे—इसके बाद इस विश्वास पर पहुँचनेमें लोगों को अधिक दिन नहीं लगा कि पृथ्वी एक वृक्ष है और उससे बड़ी बड़ी मोटी जड़ें निकल कर उसे समुद्रमें एक स्थान पर जकड़ा हुई है; इसलिये वह उस स्थानसे दूसरे स्थानको नहीं जाती।

३—खम्भों पर स्थित पृथ्वी

कुछ पुराने लोगोंका विचार था कि पृथ्वी बारह मोटे मोटे खम्भों पर स्थित है; किन्तु ये खंभे किस आधार पर खड़े हैं? धार्मिक लोगोंका कहना था कि यज्ञ, हवन, बलिदान आदि धार्मिक कृत्यों ही से ये खम्भे खड़े हैं। इनके बिना वे एक क्षण भी नहीं ठहर सकते।

४—नल सदृश पृथ्वी

ईसाके पांच सौ वर्ष पूर्व एक ग्रीक, ऐनेक्झिमैंडर ने यह परिणाम निकाला था कि पृथ्वी नल सदृश (Cylinder) है। जिसका व्यास उसकी ऊँचाई का तिगुना है। यह आकाश गुफेके केन्द्रमें तैरती है। इसका सिर्फ़ ऊपरका हिस्सा आबाद था। जिसका उत्तरी भाग योरप और दक्षिणी भाग आफ्रिका और एशिया था।

५—छः पहलकी पृथ्वी

इसके कुछ ही दिन बाद प्लेटो ने प्रतिपादित किया कि पृथ्वी छः पहल है, उनका कहना था कि ऐसे ही आकारकी पृथ्वी मनुष्यके वासस्थानके उपयुक्त है।

६—ध्रुवों पर ऊँचे पहाड़वाली पृथ्वी

पाश्चात्य देशवालोंके बहुत पहलेसे प्राच्य देश वाले पृथ्वीको गोलाकार मानते हैं, किन्तु उनका विश्वास था कि पृथ्वीके उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं। इनमें उत्तरी ध्रुवके पहाड़ों पर देवता रहते हैं और दक्षिणी ध्रुवके पहाड़ों पर दैत्य।

७—हिन्दुओंकी पृथ्वी

इसी सम्बन्धमें कुछ लोगोंका ऐसा भी विश्वास था कि उत्तरी ध्रुवके पहाड़ पृथ्वी और स्वर्गको मिलानेका काम करते थे इसके अतिरिक्त वे ही अक्षरेखाका भी काम करते थे और इन्हींके चारों ओर आकाशीय नक्षत्र घूमा करते हैं।

८—हाथियों पर पृथ्वी

प्राचीन हिन्दुओंकी धारणा थी कि पृथ्वी हाथियोंकी पीठ पर अवस्थित है। शायद वे पृथ्वीको गोल छितके सदृश मानते थे। यह छितका चार हाथियोंकी पीठों पर उलट कर रखा हुआ है और हाथी एक कछुएकी पीठ पर खड़े हैं।

चारों हाथी, चार वायुओंके प्रतिस्वरूप हैं और विशालकाय कच्छप शक्ति, धैर्य, सन्तोष और मुक्ति का अवतार माना जाता है।

९—अंडाकार पृथ्वी

पृथ्वीके आकारकी एक और पुरानी धारणा है, उसे अंडेके आकारका मानना। अरबका भौगोलिक एड्रिसी, जो ११वीं शताब्दीमें था, इस अंडे अर्थात् पृथ्वीको आधा पानीमें डूबा हुआ मानता था। जो हिस्सा पानीमें डूबा हुआ था उसके विषयमें लोग कुछ नहीं जानते थे। आठवीं शताब्दीका वेनरेबुल बीड़ी जिसका मत एड्रिसी के मतसे मिलता जुलता था, पृथ्वीके आकार के विषयमें यों लिखता है—"पृथ्वी एक मौलिक पदार्थ है जो दुनियाके बीचमें उसी प्रकार है जिस प्रकार अंडेके बीचमें उसका पीला हिस्सा। इसके चारों ओर समुद्र हैं जैसे कि अंडेके पीले हिस्सेके चारों ओर उजला भाग रहता है। अंडेके इस उजले हिस्सेके ऊपर झिल्ली होती है, उसी प्रकार पृथ्वीके चारों ओर हटा है। जैसे सबके ऊपर छिलका होता है, उसी प्रकार वायुके ऊपर अग्नि है। पृथ्वीका वह हिस्सा जो जलते हुये सूर्यके ठीक सामने है, वहाँ लोग नहीं रहते। इसके दोनों किनारे इतने ठंडे हैं कि वहाँ मनुष्य निवास नहीं कर सकते। किन्तु जो हिस्से नातिशीतोष्ण हैं, वहां मनुष्य रहते हैं। समुद्र जिसमें पृथ्वी तैरती है, उसे दो हिस्सोंमें बांटती है। ऊपरी हिस्सेमें हम लोग रहते हैं, किन्तु हम लोग नीचेवाले हिस्सेमें नहीं जा सकते और न नीचेके हिस्सेमें रहनेवाले मनुष्य ही हमारे पास आ सकते हैं।"

१०—खरबूजे की आकार की पृथ्वी

दूसरी शताब्दीमें टोलेमी (Ptolemy) ने पृथ्वीको खरबूजे या विलायती बैंगनके आकारका माना था ध्रुव बड़े समथल भूमिके बीचके हिस्से हैं। इस सिद्धान्तको आदर्श मानकर १५२० ई० में

११—ताम्बूलाकार पृथ्वी

ऐपिपनस ने इसे पानके आकारका बतलाया। मध्य युगके लोगोंका विश्वास था कि पृथ्वी ईश्वर का हृदय है। कोलंबस का नाम सभी लोग जानते होंगे। इसने पृथ्वी को शंखाकार

१२—शंखाकार पृथ्वी

(PearShaped) माना था पुरानी दुनिया जिसमें कोलंबस रहता था, गोलाकार था, किन्तु नई दुनियांमें जिसका उसने पता लगाया था, विषुवत्-रेखाके पास ऊँचे पहाड़ थे। ये पहाड़

१३—नासपातीके आकारकी पृथ्वी

उत्तरसे खसककर पश्चिमकी ओर चले आए थे। पृथ्वीको उसने प्रायः नासपातीके आकारका माना था। डांटेकी पृथ्वीको भी पहाड़ थे। ये पहाड़ विषुवत्-रेखासे ३० डिग्री नीचे थे और उनके ठीक विपरीत दिशामें जेरुसलेम शहर था। ये दोनों पृथ्वीको ठीक ठीक "बैलेंस" किए हुए थे।

१४—कई गोलकों की पृथ्वी

अब और हालके सिद्धान्तोंको लीजिए। १८१८ ई० में केप्टेन जान क्लेम्ससिम्स ने पृथ्वीको कई गोलक (Spheres) बतलाया जिसके एक ही केन्द्र हैं। १८२२ और १८२४ ई० में उसने यूनाइटेड स्टेट्सके कांग्रेसके दो ऐसे बर्तनोंको देनेके लिये प्रार्थना की जिनमें बैठकर वह पृथ्वीके अन्दर जा सके। सिंसके सिद्धान्तानुसार पृथ्वी और सभी तारे कई गोलकोंके समूह हैं। ये गोलक बहुत कुछ ठोस पदार्थ हैं और इन सबोंके केन्द्र एक ही स्थान पर हैं। पृथ्वी कमसे कम पांच गोलकोंसे बनी हुई है। इन गोलकोंके ऊपरी और निचले हिस्सोंमें मनुष्य रहते हैं। उत्तरी ध्रुवके पास का छिद्र व्यासमें ४,००० मील और दक्षिणी ध्रुव का छिद्र व्यासमें ६,००० मील होगा।

१५—खोखली पृथ्वी

१९१३ ई० में मार्शल गार्डनर ने "पृथ्वीके गर्भ की यात्रा" शीर्षक लेखमें पृथ्वीका आकार सम्बन्धो अपना सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। उसका कहना है कि पृथ्वो एक खोखड़ा पदार्थ है, जो ध्रुवोंके पास खुला हुआ है और इसका छिलका ८०० मील मोटा है और इसके भीतर भी एक सूर्य है। ध्रुवोंके पास जो छिद्र हैं उनका व्यास १,४०० मील है।

१६—त्रिभुजाकार पृथ्वी

(Astronomy to day) में थियोफाइल मोरे (Moreux) ने लिखा है कि पृथ्वी एक त्रिभुजाकार मीनार है। इस सिद्धान्त ने ज्योतिषके जितनी बातों का सन्तोषजनक उत्तर दिया है उतना और किसी सिद्धान्त ने नहीं दिया है। यदि असली बात पूछी जाय तो आजकलका कोई भी वैज्ञानिक पृथ्वोको गोलाकार (Sphere) नहीं मानता। त्रिभुजाकार मोनारवाले सिद्धान्तको सबसे पहले Lowthiangreen ने १८७५ में उठाया था। मोरे ने पुनः उसीका पक्ष लेकर संसारमें हलचल मचा दिया है। अभी हालमें कैप्टेन जार्ज लिटिलहेल्स, यूनाइटेड स्टेट्सके इञ्जिनीयर जापान को गए हैं। वे चाहते हैं कि अन्य देशोंकी सहायता से वे पृथ्वीके ¾ भाग—समुद्र का नक़शा खींचे। जापानको रवाना होते समय इन्होंने कहा था कि पृथ्वी का दोनों भाग चौरस—छिला हुआ—है। और इसका बीचका भाग खरबूजेका ऐसा उभरा हुआ है। यह एक अनिश्चित अक्ष पर घूमती रहती है।

निकेल और इस्पातके मिश्रणसे एक धातु-मिश्रण बना है। जिसे इनवार (Inwar) कहते हैं। यह पदार्थ किसी भी तापक्रम पर लोच नहीं होता। इसके द्वारा पृथ्वीके सतहका पहलेसे ठीक माप हुआ है और यह नतीजा निकला है कि कोई भी अक्षांश-विषुवत् रेखा भी—वृत्त नहीं है। इसलिये अब पृथ्वीको लोग न तो गोल (Sphere) समझते हैं और न अंडाकार (Sphered) वे इसे एक Geoid कहते हैं। Geovid क्या है? पृथिव्याकार पदार्थ और पृथिव्याकार पदार्थ क्या है—एक Geoid। अभी तक किसी ने इसकी परिभाषा नहीं बतलाई है, इसलिये पृथ्वीका आकार अब तक अनिश्चित है।

—रमेश प्रसाद

२ भोजनमें प्रोटीन

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि हमारे भोजनमें प्रोटीन कितना आवश्यक पदार्थ है। सन् १९१० में जर्नल आव् अमेरीकन केमीकल सोसायटीमें शेरमन और हिगिन्स ने भारतीय खाद्य पदार्थोंकी परीक्षा करके निम्न विवरण प्रकाशित किया था जिसे हम पाठकोंके उपयोगके लिये नीचे दे रहे हैं एक ही पदार्थके कई नमूनोंको जांचकी गई और ये परिणाम यकायक बहुत शुद्धता पूर्वक निकाले गये हैं।

पदार्थ	जल प्रतिशत	नोषजन प्रतिशत	प्रोटीन प्रतिशत	मज्जा प्रतिशत	भस्मीकरण का तापकनारी प्रतिग्राम
गेहूँ	१०.२०	१.९६	१२.२५	२.१७	४.०१०
गेहूँका आटा	९.८२	२.३३	१४.५६	३.३९	४.०९३
” ”	१०.५१	२.०२	१२.६३	२.१४	३.९४९
मकाई	१ .००	१.७७	११.०६	५.०३	४.१३२
मकाईका आटा	९.९४	१.५२	९.५०	४.४१	४.०५७
अरहरकी दाल	९.७०	३.५८	२२.३८	१.५१	४.०६७
”	९.३०	३.५८	२२.३८	१.४५	४.०७२
”	७.९४	३.६५	२२.८१	१.८२	४.११
चनेकी दाल	९.००	३.५०	२१.८८	४.८१	४.२९०
”	८.९४	३.५४	२२.१३	५.१४	४.२९३
”	९.४८	३.८२	२३.८८	५.१४	४.२७४
उर्दकी दाल	९.९५	३.९६	२४.७५	०.७५	४.०२६
”	१०.४३	३.९१	२४.४४	०.८८	४.०४२
मसूरकी दाल	९.७८	४.२३	२६.४४	०.६७	४.०६३
”	१०.१९	४.४२	२७.६३	०.७०	४.०५८
”	९.८०	४.२४	२६.५०	०.८०	४.६०
मटरकी दाल	९.८२	४.२२	२६.३८	०.९०	४.०४१
”	९.८२	४.८७	३०.४४	१.०२	४.११०
मूंगकी दाल	९.८०	४.०९	५.५६	०.८५	४.०५१
बर्माका चावल	८.९१	१.२६	७.८८	०.४२	३.८२३
रंगूनी चावल	११.१९	१.२९	८.०६	०.४१	३.८१८
नया चावल	१०.८२	१.२३	७.६९	०.१९	३.८१
पुराना चावल	१०.६९	१.१९	७.४४	०.२९	३.८०१

३—तम्बाकूका व्यवसाय

इस समय संसारके प्रायः समस्त देशोंमें किसी-न-किसी रूपमें तमाकूका व्यवहार एवं उपयोग हो रहा है। धूम्रपान स्वास्थ्यके लिये हानिकर होने पर भी अधिकांश शिक्षित लोग इस व्यसनमें फँसे हुए हैं। सभ्यता एवं शिक्षाको डींग मारनेवाले यूरोपीय देश तो इस व्यसनमें इतने फँसे हुए हैं कि इससे उद्धार पाना उनके लिये सर्वथा असंभव ही है। वर्तमान वर्षके प्रथम दश मासमें अकेले इङ्गलैंडमें ३४,०००,००० पाउंड वज़नके तमाकूकी खपत हुई है। गत वर्ष इसकी अपेक्षा १६,०००,००० पाउंड कम और सन् १९२५ ईसवामें १९२७ की अपेक्षा २५,०००,००० पाउंड कम तमाकूकी खपत हुई। तमाकूकी इस उत्तरोत्तर वृद्धिका कारण है (Preferance duty) प्रेफरेन्स शुल्कमें ह्रास। रोडेसिया, न्यूज़ीलैंड तथा कनाडा में तमाकू की खेती खूब जोरों में बढ़ चली है। भारत भी इसमें पीछा नहीं है। यहाँ भी तमाकू की खेती दिन-दिन अधिक परिमाण में होने लगी है।

भारतवर्षमें मुख्यतः मद्रास, बंगाल, बिहार, ब्रह्मा एवं बम्बई प्रभृति प्रांतोंमें तमाकूकी खेती होती है। समग्र देशमें प्रायः दश लाख एकड़ भूमिमें तमाकूकी खेती होती है। यद्यपि देशके अधिकांश मिलोंमें तमाकूकी खेती होती है; किन्तु अब तक किसी भी स्थानमें कोई उपयुक्त केंद्र स्थापित नहीं हो सका है।

भूमिकी उर्वरा शक्तिके अनुसार ही तमाकूका पैदावार अल्पाधिक परिमाणमें होता है। इसके अनुसार प्रति एकड़ भूमिमें १६० पाउंडसे लेकर ६०० पाउंड तक पैदा होते देखा गया है। कहीं-कहीं जमीन बहुत अच्छी होने पर प्रति एकड़ ८०० से लेकर ३२०० पाउंड पर्यंत पैदा होते देखा गया है।

गत पाँच वर्षोंसे इस देशमें विदेशी तमाकूकी आमदनी बहुत बढ़ गई है। इस वृद्धिका कारण है भारतके कारखानोंमें अधिक परिमाणमें बीड़ी तथा सिगरेटका बनना और देशमें उनका अधिकाधिक व्यवहार किया जाना। गत १९२२-२३ सालमें दस लाख पाउंडसे अधिक वज़नके तमाकूकी पत्तियाँ विदेशसे यहाँ आई। १९२३-२४ सालमें ४५ लाख पाउंड तथा १९२४-२५ साल में ७० लाख पाउंडकी आमदनी हुई। १९२५-२६ सालमें इस आमदनीमें कुछ कमी होकर सिर्फ़ ५० लाख पाउंडकी आमदनी हुई। १९२६-२७ सालमें इस आमदनीमें गत वर्षकी अपेक्षा कुछ वृद्धि हुई है। ऊपर दी गयी तालिकाके साथ इन्हीं वर्षोंमें विदेशी सिगरेटकी आमदनीकी तुलना करनेसे जान पड़ता है कि विदेशी सिगरेटकी आमदनीमें भी बहुत कुछ कमी हो रही है। १९२२—२३ सालमें ४० लाख पाउंड, १९२३-२४ में ३५ लाख पाउंड, १९२४-२५ में २० लाख पाउंडकी आमदनी हुई। १९२५-२६ सालमें यह आमदनी कुछ बढ़कर ३५ पाउंड तथा १९२६-२७ सालमें ४० लाख पाउंड की हुई है।

इस प्रकार एक ओर तो विदेशी तमाकू की पत्तियोंकी आमदनीमें क्रमशः वृद्धि हो रही है और दूसरी ओर इसके साथ-साथ विदेशी सिगरेटकी आमदनीमें क्रमशः ह्रास हो रहा है। इससे पता चलता है कि भारत में बीड़ी और सिगरेट के कारखाने बढ़ रहे हैं और इस व्यवसायमें उन्नति हो रही है। विदेशी सिगरेटों की अपेक्षा देशी सिगरेटों का प्रचार बढ़ रहा है। किन्तु इस सम्बन्धमें यह बात भी अवश्य शोचनीय है कि यद्यपि देशी सिगरेटों के अधिकाधिक प्रचारसे हम विदेशी व्यवसाय पर जयलाभ करनेमें समर्थ हो रहे हैं। किन्तु देशमें धूम्रपान करनेवालों की संख्या जो निरन्तर बढ़ रही है वह स्वास्थ्यकी दृष्टिसे कम भयावह नहीं है। एक बात और है भारतमें विदेशी तमाकूकी पत्तियोंकी आमदनी तो होती है किन्तु इसके साथ-ही-साथ इस देशसे भी

तमाकू की पत्तियाँ प्रतिवर्ष प्रचुर परिमाण में इङ्गलैंड, इस्ट्रेटसिटलमेंट, अदम, हांगकांग, नेदरलैंड तथा जर्मनी आदि देशोंमें चालान होती हैं। सन् १९२२-२३ सालमें २१५ लाख पाउंड तथा १९२४-२५ साल मे ४३० लाख पाउंडसे ऊपर तमाकूकी पत्तियाँ इस देशसे विदेशोंको भेजी गईं। १९२५-२६ सालमें इस रफ्तनीमें कुछ कमी होकर ३७० लाख पाउंड तथा १९२६-२७ में २९० लाख पाउंडकी रफ्तनी हुई है। यह संतोष की बात है कि अन्याय व्यवसायों की तुलना में तमाकू का व्यवसाय हमारे देशमें विदेशी प्रतियोगिता के मुकाबिलामें उन्नति कर रहा है।

जगन्नाथप्रसाद मिश्र बी० एल०

बन्दरोंकी जातियाँ

(१)

इस भूमंडल पर जितने भी प्राणी जीते हैं उनमें मनुष्यका नम्बर सबसे ऊँचा है अर्थात् मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। मनुष्यके बाद बन्दरका नम्बर आता है। अतएव बानर जातिके सम्बन्धमें आज यहाँ कुछ लिखा जाता है।

ओरांग

इस जातिका बन्दर बहुत बड़ा होता है ओरांग उटांग, शव, मलायी भाषा है। यह बानर सुमात्रा, बोर्नियो और मलक्काके जङ्गलोंमें पाया जाता है। इसके हाथ बहुत लम्बे होते हैं। सीधे खड़े होने पर हाथकी अँगुलियाँ जमीनको छूती रहती हैं। इसके पैर हाथसे मिलते जुलते होते हैं। पैरका अँगूठा अंगुलियोंसे जुड़ा हुआ नहीं है। अंगूठा लम्बा भी होता है यह चारों हाथोंकी सहायतासे वृक्ष पर चढ़ जाता है। वृक्षोंके बहुत पास पास होने पर यह बन्दर एक शाखा पकड़ कर झूलता है और तब उछल कर दूसरी डाली पर जा लटकता है। बिना सहारा लिये यह खड़ा नहीं हो सकता। चारों हाथोंकी सहायतासे यह बहुत तेज़ दौड़ सकता है। इस जातिके बन्दरके पूँछ होती ही नहीं। यह मनुष्यसे मिलता जुलता प्राणी है। किन्तु मनुष्यके चैहरेसे इसका चेहरा बिलकुल भिन्न प्रकारका होता है और इसके सारे शरीर पर बाल होते हैं।

यह बन्दर फेंकी हुई वस्तुको हाथोंमें ले सकता है और आदमी जो कुछ काम करता है उसकी नकल करने लगता है फिर भी यह किसी उपयोगी कामको करना नहीं सीख सकता।

यह आगके पास बैठ कर मजेसे तापता रहता है। मगर आगको सुलगती रखनेका काम यह नहीं सीख सकता। यह मनुष्यको कोयला लकड़ी झोंकते देखता है, मगर यह खुद वैसा कर नहीं सकता। फल ही इसका मुख्य भोजन है, किन्तु अंडे छोटे २ जीव और रेंगने वाले प्राणियों को भी यह खा जाता है। इस जातिका बन्दर बहुत ही बड़ा और चपल होता है। इसको हिलाना बहुत मुश्किल है परन्तु छोटे बच्चे बहुत जल्दी हिल जाते हैं। यह प्राणी चतुर होता है छोटेपनमें यह प्राणि बहुत माया मोह रखता है किन्तु बड़े होने पर इसके ये गुण बदल जाते हैं। यह डरावना और प्राण नाशक बन जाता है। छोटा बच्चा सुन्दर और प्यारा लगता है।

गोरीला

सभी प्रकारके बन्दरोंसे गोरीला अधिक बल-शाली और डरावना होता है। यह आदमोके बराबर ऊँचा होता है इसका शरीर बहुत मज़बूत होता है। सारी देह काले बालोंसे ढकी रहती है। इसका सर बाघके सरसे मिलता जुलता है। ईसवी सन् से पाँच सौ वर्ष पहले कार्थेज शहरके नौसेनाधिपति हान्नो ने अफ्रिका के तट पर गोरीला को देखा था। सन् १५९८ में फ्रेंच नाविक ने अपने रोजनामचे में गोरीला का वर्णन किया है।

गोरीला करीब पाँच फुट ऊँचा होता है। ताकतमें यह सिंहकी बराबरी करता है। कहा जाता है कि यह सिंह पर धावा करके उसे मार डालता है। गोरीला चारों हाथोंकी सहायतासे बहुत तेज दौड़ता है। इसके हाथ अधिक लम्बे होते हैं जिससे यह झाड़ पर ज्यादा फुर्ती और सरलतासे चढ़ सकता है। यह झाड़की डाली पकड़ कर लटक जाता है और तब झूला लेकर बहुत दूर पर जा गिरता है।

कोचीन, चीन, स्याम, सुमात्रा और बोर्नियोके घने जंगलोंमें यह पाया जाता है। बंगालके पूर्व कछार और आसाममें एक प्रकार का बन्दर पाया जाता है जिसको "चिल्लाने वाला" गिबन कहते हैं। इसके गलेमें एक बड़ी सी थैली होती है जिसमें हवा भर जाने से एक प्रकार का शब्द होता है। इसी शब्दके कारण इसका नाम दिया गया है।

लम्बी नाकका बन्दर

आदमीके नाकसे इसकी नाक लम्बी होती है। इसीसे इसे यह नाम दिया गया है। यह करीब पांच फुट ऊँचा होता है। यह बहुत भयानक प्राणी है। यह बोर्नियोमें पाया जाता है। यह रात दिन वृक्ष पर ही रहता। यह पाला नहीं जा सकता।

चिम्पाझी

अकल और हाथकी बनावटमें यह प्राणी मनुष्य से बहुत मिलता जुलता है। अफ्रिका देशके जंगली और ऊजड़ प्रदेशोंमें पाया जाता है। गबून और लोपैझ अन्तरीपके पासके प्रदेशोंमें ही यह नजर आता है। अन्य स्थानों पर यह बहुत कम दिखाई देता है। यह बन्दर ओरांग उटांगसे ज्यादा अक्लमन्द और गरीब है। इसका चेहरा बहुत ही बूढे आदमीके चेहरे जैसा होता है। छोटे छोटे बच्चे जल्दी हिल जाते हैं। इसे भाँति भाँतिके मनोरम खेल सिखाए जाते हैं परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि सभी जातिके बन्दर बुरी बात अच्छी बातोंकी अपेक्षा बहुत जल्दी सीख लेते हैं।

चिम्पाझी हिल सकता है और अच्छे अच्छे खेल इसको सिखाए भी जा सकते हैं, किन्तु इसकी चोरी करनेकी आदत नहीं जाती। यह आदमीकी नकल करना बहुत जल्दी सीख जाता है। कांटे और चमचेसे खाना, प्यालेसे पानी पीना। पेय पीनेके बाद ओंठ पोंछ डालना, सिगरेट पीना, अपने लिये बिस्तर बिछाना आदि अच्छी तरह सीख जाता है।

शंकरराव

सोंठ

संसारमें भारतवर्ष, वेस्ट इंडीज और पश्चिमीय अफ़रीका सोंठ की पैदावारके मुख्य स्थान हैं। यहींसे सब देशोंके लिये सोंठका निर्यात होता है। आजकल सबसे अच्छी सोंठ जेमैकामें पैदा होती है। समस्त पैदावार की दृष्टिसे भारतवर्ष की सोंठ कुछ हलकी होती है; किन्तु कालीकट की सोंठका मूल्य जेमैकाके बराबर होता है। साइरा-लियोनकी सोंठ बहुत हलके दर्जेकी होती है; पर ग्रेट-ब्रिटेनमें इसी सोंठकी खपत है। अब कुछ दिनोंसे ग्रेट ब्रिटेनमें अच्छी सोंठकी माँग बढ़ रही है। इसलिये जो देश इस व्यवसायमें उन्नति करना चाहते हैं उन्हें अपने देशमें अच्छी सोंठकी पैदावार बढ़ानी चाहिये। भारतवर्षके व्यापारियों के लिये यह अच्छा अवसर है कि वे अच्छी सोंठ की नई माँगसे लाभ उठावें। यह लाभ उठानेके लिये भारतवर्षमें अच्छी सोंठकी पैदावार बड़ी शीघ्रतासे बढ़नी चाहिये। वर्तमान नये वैज्ञानिक उपायोंके प्रयोगसे इसकी पैदावार बढ़ सकती है।

सोंठ—या अदरकका पैदा सीधा लगता है। वह दो फीट तक ऊँचा होता है। धड़के बीच-बीच में डालियाँ लगती हैं। इसके तने ज़मीनके अंदर तक फैलते हैं। आदरक ज़मीनके अन्दर पैदा होती है। इसकी अच्छी पैदावारके लिये उपयुक्त

वर्षा और उगनेके समय अधिक गर्मी होनी चाहिये। जिस ज़मीनमें अधिक वर्षा होती हैं, वहाँ इसकी पैदावार अच्छी होती होती है।

इसका पौदा सीधा लगता है। वह दो फीट तक ऊँचा होता है, और इसके धड़के बीच-बीचमें डालियाँ लगती हैं।

जेमैकाकी अदरकवाली ज़मीनमें वर्ष भरमें ८८ इंचकी वर्षा होती है। किंतु भारतवर्षके दक्षिण पश्चिम के प्रान्तोंमें १०० इञ्च से भी अधिक वर्षा होती है। बीज बोने और खेत ठीक करने के समय सूखा मौसम होना अच्छा है, जिससे कि ज़मीन दुरुस्त करनेमें कोई कठिनाई न पड़े। पर यह कोई आवश्यक नहीं है। इसको पैदावारके लिये अधिक गर्मी होनी चाहिये। पर इससे यह न समझ लेना चाहिये कि इसकी उपज उन्हीं प्रान्तोंमें होगी, जहाँ अधिकसे अधिक गर्मी पड़ती हो। जिस स्थानमें अधिकसे अधिक ताप और सूर्यका प्रकाश पड़ता है, वहाँ इसकी पैदावार बढ़नेमें कोई भी कठिनाई नहीं है। कारण, शीतकाल आनेके पूर्व ही अदरक खोद ली जाती है। इसकी पैदावारके लिये अच्छी उपजाऊ ज़मीन होनी चाहिये। जल भरी हुई या कँकरीली ज़मीनमें अदरक नहीं पैदा होती है। साग पैदा होनेवाली जमीनमें अदरक बोई जा सकती है। खेतोंकी क्यारियों में कहीं पानी न रुकने पावे; क्योंकि पानीके इकट्ठा होने से पौदोंके सड़नेकी आशंका रहती है। जेमैका में अदरक बालूवाली चिकनी मिट्टीमें पैदा होती है। भारतवर्षमें काली मिट्टीकी जमीनमें जो अदरक पैदा होती है, वह बालूवाली मिट्टीसे हल्की होती है। जमीनमें बालूका अंश तीस प्रति सैकड़ासे अधिक न होना चाहिये। पर मिट्टी भी बीस प्रति सैकड़ासे अधिक न हो। जेमैकामें पैदावार बढ़ानेके लिये जमीनमें अच्छी खाद देते हैं। चिकनी मिट्टीके मिश्रणमें दस-दस सैकड़ेके अनुपात से फासफरस, अमोनिया और सोडा मिलानेसे बहुत अच्छी खाद तैयार होती है। यही खाद एक एकड़ जमीनमें एक टनके बराबर होती है। जेमैका की जिस जमीनमें अदरक नहीं पैदा होती थी, वहाँ भी इसके खादके डालनेसे पैदावार हुई है। भारतवर्षमें लोग खली और गोबरकी खाद देते हैं। उगनेके समय अंडीकी खली देने और पत्तियाँ रखनेसे जमीन अच्छी हो जाती है। भारतवर्षमें अदरक १० से १२ फीट लम्बी और ३ से ४ फीट चौड़ी जमीनकी क्यारियाँ बना कर बोते हैं। इस प्रकार क्यारियाँ बनाकर वृक्षोंकी पत्तियाँ या हरी घास वगैरहसे जमीनको जमीन को ढँक देते हैं, जिससे कि वह नर्म बनी रहे। वर्षाके उपरान्त खेतोंको दुरुस्त करते हैं। बोने के पहले फिर जमीनको अच्छी तरहसे जोत लेना चाहिये। जेमैकामें एक हजारसे पन्द्रह सौ पौंड तक सोंठ एक एकड़ जमीन से निकलती है। पर अच्छी अवस्थामें दो हजार पौंड तक निकलती है। भारतवर्षके प्रान्तोंकी पैदावार अत्यन्त भिन्न है। बंगालमें एक एकड़ जमीनमें १००० से १५०० पौंड तक पैदा होनेका औसत है। किन्तु पंजाब में २१०० पौंड और ट्रावनकोर में २००० से २५०० पौंड तक की पैदावार है। बम्बई प्रांतके सूरत आदि जिलोंमें, जहाँ खेती अभी प्रयोगके रूप आरंभ की गई है, वहाँकी पैदावार ८००० पौंड प्रति एकड़ है। प्रायः चार हजार टन अदरकसे एक टन सोंठ तैयार होती है। इससे अदरककी पैदावार का अनुमान लगाया जा सकता है।

अदरकके पौदोंमें कीड़े लगते हैं और उनमें बीमारी पैदा हो जाती है। फलवाले वृक्षोंके कीड़ोंसे पौदोंको बचाना चाहिये। पर रंगपुर (बंगाल) में तो मक्खियाँ शाखाओं को बहुत हानि पहुँचाती हैं। दक्षिण भारतमें कई प्रकार की मक्खियाँ पौदे नष्ट कर देती हैं। इसके अतिरिक्त पौदोंमें बीमारी फैलने पर उनकी पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। धीरे-धीरे धड़ का रंगभी बदलता है, और वे कुछ समय उपरान्त नष्ट हो जाते हैं। भारतवर्षमें इस रोग की पहचान

श्रीयुत बटलर महाशय ने पहले-पहल सूरतमें की थी। बीमारी फैलने पर रोगी पौदों को हटाकर जला देना चाहिये और उस जमीनमें चूना या लोहगन्धेत (सलफेट ऑफ् आयरन) डालना उपयोगी है। अभी कुछ समयसे अदरकके पौदोंमें एक नई बीमारी पैदा होने लगी है। यह बीमारी गोदावरी जिलसे आरम्भ हुई है। वर्षा में फैलती है। यह पत्तियों को पीला कर जड़ को कमजोर कर देती है। पर शीतकालके आ जानेसे बीमारी जाती रहती है। इस बीमारीसे पौदों को बचानेके लिये बोरडेक्सका मिश्रण व्यवहारमें लाना चाहिये।

सोंठका सब मसालोंसे अधिक उपयोग होता है। चटनी, अचार और मुरब्बे आदिमें सोंठ पड़ती है। इसकी शराब भी बनती है। औषधिके लिये तो इसका सबसे अधिक खपत है। इसका तेल भी तैयार होता है। कई सुगंधित तेलोंमे इसका अर्क मिलाया जाता है। इसके तेलको लोग पीते भी हैं। यूनाइटेड किंगडममें अच्छी सोंठकी माँग शराब आदिके लिये अत्यन्त बढ़ रही है। विदेशी दवाइयाँ भी इससे तैयार होती हैं। पर ये सब वस्तुएँ अच्छी सोंठसे बढ़िया तैयार होती हैं, इसलिये विदेशमें साइरालियोनकी हल्दी सोंठके स्थान पर जेमैका और भारतवर्षमें सोंठको माँग निःसंदेह बढ़ेगी।

जेमैका, भारतवर्ष और साइरालियोनसे युद्ध के पूर्व और आजकल इङ्गलैंडमें सोंठका आयात इस प्रकार है—

सन्	हंडर	पौंड
१९१२	६५५२९	१३१६४५
१९१३	३९२७५	७२८१२
१९२१	२३५९७	७३६९४
१९२२	३८८५५	१२८९८५
१९२३	३००५४	१३१२५२
१९२४	४६८७७	२१०१९९
१९२५	५०३७०	१८६७५३

इन अंकोंसे यह प्रकट होता है कि इङ्गलैंडमें सोंठको माँग किस तेज़ीसे बढ़ रही है। इस सम्बन्धमें इङ्गलैंडके ख़ास-ख़ास व्यापारियों की यह राय है कि अच्छी सोंठकी माँग लंदनके बाज़ार में सदैव बनी रहती है। निश्चय ही विदेशमें बढ़िया सोंठ बहुत बिक सकती है। हमारे इस कथनकी पुष्टि नीचेके विवरणसे हो सकती है—

देश	वजन (हंडर)	दाम (पौंड)
सायरालियोन	१७२९१	६१४८३
भारतवर्ष	१६२८८	६९४९१
वेस्ट इन्डोज	७२६३	५३३८७
अन्य देश	५७३९	२४४९७
कुल	४६८७७	२१०१९९

इसके अतिरिक्त अमेरिकामें इन सभी देशोंसे इस प्रकार सोंठका आयात हुआ—

	हंडर	डालर
१९१२—१३	६९२५१	३९९२७०
१९२२	५२९५५	६०४६५९
१९२५	३८०८३	६०९५४२

सोंठके उत्पादनमें अन्य देशोंकी अपेक्षा जेमैका ने अच्छी उन्नति की है। यहाँ इसकी खेती बगीचे के रूपमें होती है। यहाँसे भिन्न-भिन्न देशोंमें सोंठका निर्यात इस प्रकार होता है—

सन्	इङ्गलैंड	अमेरिका	आस्ट्रेलिया	कनाडा	कुल निर्यात	कुल मूल्य
१९१२	१३२१२	९३००	२५५	१९८९	२५२१४	४८०३८
१९१३	९८४७	८७००		२०८४	२०६३८	३६३७४
१९२१	२५७७	६९३२	७२	१९००	१२३६१	६३३५०
१९२२	५५३२	६५५२	३७३	४८२	१३११६२	९०१६१
११२३	५९९३	८१७१	१०६	१०६४	१७११८४	११२६०१
१९२४	७१३२	५७२२	६१२	१७९१	१५४५७	९३६६९
१९२५					२१२९७	६८६८४

भारतवर्षमें कालोकट, कोचीन, सूरत, थाना, रंगपुर औ कुमाऊँ आदि जगहोंमें अधिक सोंठ पैदा होती है। भारतवर्षमें ही सोंठकी बहुत अधिक खपत है, किन्तु निर्यात भी अधिक है। पिछले कई वर्षोंसे व्यापारियोंकी उदासीनताके कारण निर्यात व्यवसाय घट गया है। भारतवर्षके निर्यात का व्योरा इस प्रकार है—

सन्	वजन	मूल्य (पौंड में)
१९१२-१३	८८८४५	१५८४२५
१९१३-१४	८२२७३	१२२६६१
१९२१-२२	७४४६३	१९६११०६
१९२२-२३	५१९४६	७७९८५१
१९२३-२४	४५७६५	२०३४४२५
१९२४-२५	३६७७८	२७४६२४२
१९२५-२६	३२५६६	१६५०९९८

सोंठका अधिक भाग बम्बई और मद्रासके बन्दरगाहोंसे निर्यात होता है। बम्बईकी सोंठ हलकी होती है, और उसकी खपत अदन आदि स्थानोंमें ही ज्यादातर होती है। मद्रासकी सोंठ का निर्यात इङ्गलैंड और अमेरिकाके लिये होता है। इसका अधिक भाग सीलोन भी जाता है।

१९२५-२५ में भारतवर्षके कुल निर्यातमें बंबई का हिस्सा २३६३६ हन्डर और मद्रासका ११९६६ हन्डर था, जिसमेंसे ६३७४ हन्डर इङ्गलैंड, २१३२ हन्डर अमेरिका और १०५१ हन्डर माल सीलोन गया था।

सायरालियोन के पैदावार की इङ्गलैंडमें ही अधिक खपत होती है। कनाडा अब उसका नया ग्राहक बना है। निम्नलिखित विवरणसे यहाँके तीन वर्षों का निर्यात प्रकट होता है—

	१९२३		१९२४		१९२५	
देश	हन्डर	पौंड	हन्डर	पौंड	हन्डर	पौंड
इङ्गलैंड	३४१६	६५५२	१३६४१	३६५२४	२४९२०	६२२००
अमेरिका	२४३८४	३९५९४	२४८३९	६६३८७	२१४११	५१६७०
फ्रांस					२२२९	४७४४

इसके अतिरिक्त मलाया, सीलोन, फिजी, क्वीन्सलैंड, सेंटलूसिया, बारबेडोस, माटसेटट और डोमिनिका आदि देशोंमें भी केवल स्थानीय खपत इतनी भी अदरक नहीं पैदा होता है। ब्रिटिश साम्राज्यके बाहर जापानमें भी सोंठ पैदा होती है और न्यूयार्कके बाजारमें उसका भाव निकलता है। आश्चर्य तो इस बातका है कि जिस भारतवर्षमें अच्छी-सी-च्छी चाहे जितनी सोंठ पैदा हो सकती है, उस देशमें उल्टे जापानसे माल आता है। जापानकी सोंठके अमेरिका और भारतवर्ष दो ही प्रधान ग्राहक हैं।

१९१७ और १९१८ में जापान की सोंठ का निर्यात ६३७८००० पौंड और ७८८३००० पौंडका हुआ था। १९२० से जापान की व्यवसाय-तालिकामें सोंठ के व्यवसाय के अंक सम्मिलित प्रकाशित होते हैं। आजकल जापानका निर्यात बहुत घट गया है। १९२४ में केवल ३४४६५ पौंड का निर्यात हुआ था। भारतवर्षमें जापानकी सोंठका आयात अब तक इस प्रकार हुआ है—

सन्	पौंड
१९१७—१८	२२८६३६८
१९२१—२२	४५४२२
१९२२—२३	९४५३९२
१९२३—२४	१३४०७५२
१९२४—२५	८१८९४४

नीचेके विवरण में लंदनके बाजारमें सोंठके मूल्यकी घटा-बढ़ी प्रकट होती है—

स्थान	श्रेणी		मूल्य की घटा-बढ़ी—(प्रति हन्डर में) १९२४	१९२५	१९२६
			शि०—पें०	शि०—पें०	शि०—पें०
जेमैका	अच्छी से एकदम बढ़िया	ऊँचा	१७०—१८५	१५०—१८०	१३५—१४५
		नीचा	१७०—१८०	१३५—१४५	८५— ९५
	साधारण से मध्यम तक	ऊँचा	१४५—१७०	१३५—१४५	१२५—१३०
		नीचा	१४०—१६०	१२०—१३०	६०— ७५
कालीकट	मध्यम से बढ़िया तक	ऊँचा	१३५—१४५	१४५—१५०	१४५—१५०
		नीचा	१२०—१२५	१३५—१४५	१४५—१५०
	साधारण से मध्यम तक	ऊँचा	१२०—१३०	१३०—१४०	१३०—१४०
		नीचा	१००—११५	१२०—१३०	१२०—१३५
कोचीन	हलकी से बढ़िया तक	ऊँचा	८५— ९५	९५—१०५	९५—१०२ शि०६पें०
		नीचा	८०— ९०	९५—१०२	६० – ८५
	साधारण से मध्यम तक	ऊँचा	९०	९०	७५
		नीचा	७०—७५	७५	५०
जापान		ऊँचा	१००	१००	८०
		नीचा	९०	८२ शि० ६ पें०	५५
अफ्रीका		ऊँचा	९०	८५-८७ शि० ६ पें०	५२ शि० ६ पें०
		नीचा	८२ शि० ६ पें०	५८	३२ शि० ६ पें०

इन अंकोंसे यह प्रकट होता है कि अन्य देशों की सोंठका मूल्य घटने पर भी कालीकटकी, सोंठके अब भी अच्छे दाम मिलते हैं। भारतवर्षके व्यापारियोंको विलायती अढ़तिए, और दलालोंके भरोसे पर न रह कर विदेशी बाजारोंसे सीधा सम्बन्ध स्थापित कर व्यवसाय करना चाहिये, उन्हें विदेशी बाजारोंकी हर समय पूरी खबर रहनी चाहिये। जिन कारणोंसे भारतीय मालकी खपत न होती हो, उन्हें भी दूर किया जाय। कोई कारण नहीं है कि जब लंदनमें अच्छी सोंठ की मांग बढ़ रही हो, तब भी भारतीय व्यापारी दूसरोंके भरोसे पर बैठे रहें। सायरालियोनके आगे भारतवर्षके मालकी लंदनमें अच्छी खपत होगी। फिर इम्पीरियल प्रिफरेंसके नीति जारी होनेसे भी भारतीय मालकी माँग होगी। इस सम्बन्धमें भारतीय व्यापारियों का यह कर्तव्य है कि वे सीधे निर्यात कर अच्छे समयमें अपना माल बेंचे। यदि वे इस नफे में से किसानों को अधिक दाम देंगे, तो निश्चय ही अच्छी पैदावार बढ़नेमें देर नहीं लगेगी। व्यापारिक प्रतिद्वन्द्वताके इस अवसर पर यदि भारतीय व्यापारियोंने उपेक्षा की तो जिसे प्रकार चीनमें हमारा सूतका व्यापार नष्ट हो गया, उसी प्रकार यह भी नष्ट हो जायगा। कारण, लंदनकी अच्छी सोंठ मांगके कारण अन्य देश अवश्य ही अच्छी सोंठ की पैदावार बढ़ावेंगे।

जी० एस० पथिक

प्रकाश क्या है ?

[१]

[ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी०]

प्रकाश और मनुष्यका भी खूब ही घनिष्ट सम्बन्ध रहता आया है। जिस दिनसे नवजात शिशुकी आँखोंमें प्रकाशकी पहिली किरण पड़ती है उस दिनसे चिताके प्रकाशमें जब तक यह पार्थिव शरीर लुप्त नहीं होता—मनुष्का सारा जीवन प्रकाशमें ही व्यतीत होता है। यहाँ तक कि ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक प्रकाशके अभावमें कृत्रिम प्रकाशका आविष्कार मनुष्यको करना पड़ा है।

प्राचीनसे प्राचीनकालकी ओर दृष्टि दौड़ाइये। सृष्टिके आरम्भमें तो पृथ्वी स्वयं प्रकाशित थी, सारा नभोमंडल प्रकाशके उज्ज्वल गोलोंसे भरा था सृष्टिकर्ता भी "सूर्यचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत" इत्यादि मनुष्यका प्रादुर्भाव हुआ। वैदिक कालके आर्य धानके लहलहाते हुए खेतोंमें खड़े हो उषादेवीकी उपासना कर रहे हैं उधर सूर्य सात घोड़ोंके रथमें चढ़ा प्रकाश फैलाता जा रहा है। सन्ध्या हुई और प्रकाशके विचित्र विचित्र रूप दृष्टिगोचर हुए "सांध्यं तेजः गति नवजवा पुष्प रक्तं दधान"। रातमें भी प्रकाशके बिन्दुओंसे सारा आकाश भरा पड़ा है फिर थोड़ी ही देर बाद उधार लिया हुआ प्रकाश बखेरता हुआ निशापति आता है। चन्द्र यदि नहीं है, यदि तारोंको बादलों ने ढक लिया है तो भी चपलाकी चमक अन्धेरे मैदान को प्रकाशित करेगी। कुछ भी न हो तो जुगुनू तो है ही। ध्रुवकी निशामें भी अरोरा प्रस्तुत है।

यह तो हुआ ईश्वरकी सृष्टिमें प्रकाशका साम्राज्य। अब आधुनिक मनुष्यकी सृष्टिमें देखिये। कमरोंमें पहले तेलके दिये, फिर केरोसिनकी लालटेन और सभ्यताके आधुनिक युगमें बिजलीको बत्ती। सड़क पर इक्केका टिमटिमाता दिया और मोटर की चकाचौंध कर देनेवाली बिजलीकी बत्ती। सिनेमामें परदे पर प्रकाश है, अस्पतालमें रौञ्जन किरणोंके रूपमें। बेतारकी प्रकाश तरंगे गाना सुनाती हैं और जाड़ेमें प्रकाश ही से बदन गरम कीजिये।

यही नहीं कवियों तकको प्रकाश ने नहीं छोड़ा। चन्द्रमाकी उज्ज्वल किरणोंसे तो इन्हें पुश्तैनी दुश्मनी है—इस कारण विरही विरहणियों को यह सह्य नहीं। पर कोई नायिकाओं में प्रकाशकी झलक देखते हैं—ऐसी झलक कि उसके आगे और कुछ दिखाई ही न दे। दूसरी ओर "निसि दिन पूनोई रहे आनन ओप उजास"। कहीं प्रकाश लज्जा निवारण का काम देता है।

प्रकाशके रूपमें ऋषियों ने परमात्मा को कल्पित किया है। संसारमें सभी अच्छे कामों का संबन्ध प्रकाशसे और पापोंका अन्धकारसे होता है। शेक्सपियरके ओथेलोमें जब ओथेलो, डेसडेमोना की हत्या करने जाता है तो यही कहता है।

Put out the light and then put out the light.

अस्तु !

परन्तु यह प्रकाश जिसका सार्वभौतिक साम्राज्य प्रगट है क्या है? यही प्रश्न आजसे हजारों वर्ष पहले प्रस्तुत था और वही आज हमारे सामने है। इस बीच, कई वैज्ञानिकों ने समझा कि हमारी विजय हो गई—प्रकृतिका यह रहस्य हमने सुलझा डाला। परन्तु थोड़े ही समयमें नये अनुसन्धानों ने इस प्रश्नको और भी उलझा दिया। हम प्रकाश क्या है? इस प्रश्नके उत्तरसे उतने ही या उससे भी अधिक अनभिज्ञ हैं जितने हमारे पुरखा थे।

इस प्रश्न पर विचार करने के पहले ऊपरी तौर से यह बताना आवश्यक है कि प्रकाशसे हमारा क्या तात्पर्य है। वैज्ञानिक साहित्यमें प्रकाशका अर्थ बहुत ही विस्तृत है। यह जो हम आँखोंसे देखते हैं यह तो है ही—इसमें नीलेसे लेकर लाल तक रंग हैं—लालसे परे जो प्रकाश है उसे आँखोंसे

नहीं देख सकते और कुछ भाग इसका ताप की किरणोंके रूपमें है। उसके आगे बेतारके तारसे सम्बन्ध रखने वाली प्रकाश की किरणें हैं। उधर दीखने वाले प्रकाशके दूसरी ओर दूसरी किरणें हैं जिनका कि रासायनिक प्रभाव होता है। फिर रौञ्जन किरणें हैं। इनका कुछ विस्तृत वर्णन प्रकाश का तरङ्ग सिद्धान्त लिखनेके बाद सम्भव होगा।

यह निश्चित है कि प्रकाश क्या है ? इस विषय में पहले अनुमान हिन्दुओंके ही हैं। न्यायसूत्रके भाष्यकार वात्सायन ने मृगतृष्णाके विषयमें मत प्रकट किया है परन्तु न्याय सूत्रोंका यह मुख्य विषय तो है ही नहीं इसलिये बहुत सम्भव है कि उस युगकी वैज्ञानिक पुस्तकोंमें इन विषयोंका पूरा विवेचन हो पर आजकल वह उपलब्ध नहीं है। इसी भाष्यमें यह मत प्रगट किया गया कि आँखोंसे कुछ किरणें निकल कर जिस वस्तुको हम देखना चाहते हैं उस पर पड़ती हैं और इनही की सहायता से हमें उस वस्तुका अस्तित्व मालूम होता है दर्पणोंमें प्रतिमूर्त्ति बनना इसी प्रकार समझाया गया है। न्यायसूत्रसे पहले कहा जाता था कि प्रत्येक वस्तु किरणें फेंकती हैं परन्तु न्यायसूत्र कर्ता ने इसके विरुद्ध मत प्रगट किया है। अरस्तू ने उक्त सिद्धान्तका विरोध किया। इन्होंने कहा कि यदि आंखोंसे किरणें निकलतीं तो अन्धकारमें भी हमको देखना चाहिये। इसके मतानुसार प्रकाश का उद्गम माध्यममें है।

अब हम बिना ऐतिहासिक दृष्टिसे इस विषय पर विचार किये प्रचलित सिद्धान्तों पर ध्यान देंगे।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन ने प्रकाश का एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। प्रकाशित वस्तुसे छोटे छोटे टुकड़े निकलते हैं और यही प्रकाशकी किरणें कही जा सकती हैं। प्रकाशका आवर्तन समझानेके लिये कहा गया कि प्रकाशके कण मान लीजिये एक कांचके टुकड़े पर पड़े। यह सतह इन्हें आकर्षित करेगी और इसलिये इनकी गति बदल जायगी और यह सरलतासे सिद्ध किया जा सकता है कि फल स्वरूप प्रतीत ऐसा होगा कि प्रकाशकी किरण की दिशा भी बदल गई और यही आवर्तनमें होता है। पर इस विषयमें एक बात याद रखनी चाहिये। वह यह कि इस सिद्धान्तके अनुसार साधारण माध्यमसे घने माध्यममें प्रकाश की गति अधिक होगी। अर्थात् वायुकी अपेक्षा प्रकाश की गति जलमें अधिक होगी। न्यूटनके समय तक यह बात प्रयोगों द्वारा ठीक ठीक निर्धारित न हो सकी थी पर धीरे धीरे प्रयोगों द्वारा पाया गया कि व्यवहारमें ठीक इसका उलटा होता है अर्थात् प्रकाश की गति घने माध्यममें कम हो जाती है। यह इस सिद्धान्तके पतनका मूल कारण हुआ।

जैसे जैसे प्रकाश सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि होती गई, नई नई बातोंका आविष्कार हो चला और किसी भी सर्वमान्य सिद्धान्त में उनकी उपेक्षा होना असम्भव था। यह पाया गया कि प्रकाश की दो किरणें एक खास परिस्थिति में एक दूसरे का विनाश कर सकती हैं अर्थात दो प्रकाश की किरणें परस्पर अन्धकार उत्पन्न कर सकती हैं। यह प्रयोग किस प्रकार होता है इसका विवरण आगे संक्षिप्तमें किया जायगा पर यहां इतना ही कहना बहुत होगा कि प्रकाश के इस सिद्धान्तके दिन पूरे हो चुके थे। न्यूटनके महान व्यक्तित्वके कारण वैज्ञानिक संसार किसी प्रकार इसे निबाह रहा था। इस प्रकाश के विनाश को व्यतिकरण (Interference) नाम दिया गया।

प्रकाश का तरंग सिद्धान्त

अब प्रकाशका तरंग सिद्धान्त प्रचलित हुआ। इसकी नींव न्यूटन के समयसे ही पड़ चुकी थी परन्तु कारणवश न्यूटन ने इस सिद्धान्त को नहीं माना प्रत्युत इसके विरुद्ध कई आक्षेप किये। एक तो न्यूटनके विरोधके और दूसरे इन आक्षेपोंके

कारण यह सिद्धान्त न पनपने पाया। पहले यह विचार करना आवश्यक है कि तरंग सिद्धान्तका अर्थ क्या है ?

तालाब या नदी के जल की तरंगोंसे सभी परिचित हैं। स्थिर जलमें एक ढेला फेंकने पर कंकड़ी पड़ने के स्थान पर केन्द्रित हो लहरें चलती हैं। यह किसी वेगसे आगे बढ़ती जाती हैं।

तरंगें भी दो प्रकारकी होती हैं। एक तो खड़ी (Transverse) और दूसरी अनुदैर्ध्य (Longitudnal) । पहले प्रकार की तरंगोंका एक उदाहरण हम ऊपर दे आये हैं। दूसरा परिचित उदाहरण है वीणाके तारका स्पन्दन। प्रकाशमें हमें इसी प्रकारको तरंगोंसे काम पड़ेगा। दूसरे प्रकारकी तरंगें शब्दकी वायु इत्यादिमें तरंगे होती हैं। शब्द उद्गम स्थानसे हमारे कानों तक इन्हीं के द्वारा पहुँचता है।

लहरको हम कागज़ पर इस प्रकार बना सकते हैं यदि मान लीजिये जलमें एक लकड़ी हम बराबर "न" बार प्रति सेकिण्ड ऊपर नीचे करें तो इस कम्पनके कारण तरंग बनेगी।

पाठक देखेंगे कि इस प्रकार की तरंगमें एक ही नमूना बार बार आया है अर्थात् क और ख बिन्दु के बीचका हिस्सा आगे बढ़ता जाता है। इस दूरी को (क→ ख) को एक तरंग लम्बान (लहर लम्बाई) कहते हैं। यही बात एक तरंगको दूसरी तरंगसे भिन्न बताती है। ध्यान रखना चाहिये कि यह तीव्रतासे बिलकुल भिन्न है। गानेमें गान्धर्व और निषादमें क्या भेद है ? इसी तरंग-लम्बान का। यदि रे की तीव्रता अधिक करदी जाय तो वह "ग" नहीं हो जायगा।

अब मान लीजिये दो तरंगें जिनकी लहर लंबाई एक ही है दो ओरसे आवें। यदि वह एक दूसरे पर ऐसे सवार हो जावें कि एकका नीचा भाग दूसरी के ऊँचे भाग से मिले तो वह एक दूसरेका विनाश कर डालेंगी। यही तरङ्गोंका व्यतिकरण (Interference) है। इस पर विश्वस्त प्रयोग डा० यंग के हुए। तरङ्गोंमें एक और विशेष बात होती है। उसको कहते हैं बर्तन (Diffraction)। यह तो हम बता आये हैं कि शब्द वायुमें तरङ्गोंके रूपमें बढ़ता है। अब यदि एक दीवारके पीछे शब्द

क ख

किया जाय तो उसके इस ओर खड़ा मनुष्य उस शब्दको सुनेगा। इसका अर्थ यही है कि शब्द तरङ्गें सीधी रेखामें नहीं चलतीं पर रुकावट आने पर मुड़ जाती हैं। प्रकाश साधारणतया सीधी रेखामें जाता है। यदि एक प्रकाश बिन्दुके सामने एक पैसा रख दिया जाय तो सामनेकी दीवार पर उसकी एक तीक्ष्ण छाया पड़ेगी। यदि प्रकाश तरङ्ग रूपमें चले तो उसकी भी तरंगें मुड़ जानी चाहिये। इस प्रकार न्यूटन ने यह आक्षेप किया कि यदि प्रकाश तरङ्ग रूपमें चलता है तो उसका सीधी रेखा

में गमन हम कैसे समझ सकते हैं। इसका कोई संतोषप्रद उत्तर उस समयके वैज्ञानिक न दे पाये। परन्तु धीरे धीरे हायगेन्सके सिद्धान्तकी सहायता से तरङ्ग सिद्धान्त द्वारा भी प्रकाशका सीधी रेखामें चलना सिद्ध होगया। फ्रेनेल ने साधारण प्रकाशमें बर्तन (Diffraction) का अस्तित्व सिद्ध किया और प्रयोगों द्वारा उसका मान भी निकल सका। यह दृश्य तो बड़ी सुगमता से देखा जा सकता है। एक साधारण सेफ्टी उस्तुरेके फलको लेकर एक प्रकाशके उद्गम स्थानकी ओर देखिये। ध्यानसे

देखने पर काली और उज्ज्वल रेखायें दिखाई देंगी। सिद्धान्त पर विचार करनेसे एक बड़ा विचित्र फल निकला। मान लीजिये कि एक प्रकाश बिन्दु से कुछ दूरी पर एक पैसा लटका दिया गया। अब प्रकाश बिन्दु और पैसेके केन्द्रको मिलानेवाली रेखा पर साधारण सिद्धान्त के अनुसार अंधकार ही अन्धकार होना चाहिये। पर तरङ्ग-सिद्धान्त से यह फल निकला कि कुछ दूरी पर उस रेखा पर तीव्र प्रकाश होगा। इसकी आशा भी न थी और तरङ्ग सिद्धान्त पर यह एक आक्षेप किया गया। पर प्रयोग करने पर इसकी भी सत्यता प्रगट हुई।

आप कहेंगे कि तरंगे जलमें होती हैं और वायु में भी, पर यह प्रकाश तरंगे किस माध्यममें होता है? यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा है। देखा गया कि प्रकाश तरंगे एकदम पार्थिव पदार्थ विहित जगहमें जा सकती हैं। इनके लिये एक माध्यम 'आकाश' की कल्पनाकी गयी। यह एक प्रकारकी लचीली वस्तु मानी गयी जिसमें प्रकाश तरंगे जा सकें। इसका नाम दिया गया, 'प्रकाश वाहक आकाश'। इसकी कल्पना तो करली पर इसके साथ सौ जंजाल साथ साथ बंध गये। प्रश्न हुआ इस लचीले पदार्थमें ग्रह इत्यादि कैसे चलते हैं? क्या यह ग्रहोंके भ्रमणमें उनके साथ घूमता है या स्थिर रहता है? यह बहुत महत्व पूर्ण प्रश्न थे और इसका उत्तर ढूंढ़नेके लिये माइकिलसन और मोर्ले नामके दो अमेरिकाके वैज्ञानिकों ने एक अभूत पूर्व प्रयोग किया। फल कुछ न निकला। जिसकी आशा थी वह कुछ न मिला। वैज्ञानिक संसारमें हलचल मच गयी। कुछ दिन बाद विश्वविख्यात् आइन्स्टाइन ने अपने सापेक्षवादका प्रतिपादन किया जिसने आधुनिक विज्ञानके दृष्टिकोणको बदल दिया। आकाश का अस्तित्व अभी सन्देह पूर्ण है। अस्तु!

यहाँ तक तो प्रकाशको तरंग रूप माननेमें हमें कुछ भी आपत्ति नहीं है। यह तो छाया चित्रण द्वारा सिद्ध हो चुका है कि शब्द तरंग रूपमें चलता है अब जो जो बातें शब्द तरंगोंमें होती हैं वह सब प्रकाशमें पायी गयीं। अर्थात् वह एक स्थिर गतिसे चलती हैं, उनमें व्यतिकरण आदि होता है पर एक और बात प्रकाशमें ऐसी होती है जिसके अध्ययनसे प्रकाशको तरंगरूप देनेमें तो कोई सन्देह रह ही नहीं जाता पर साथ ही साथ यह किस प्रकारकी तरङ्गें हैं यह भी निश्चित हो जाता है। इस दृश्यका नाम है दिग्प्रधानता (Polarisation)। इसको समझानेके लिये एक उदाहरण लेना होगा।

मान लीजिये कि एक रस्सीको दो आदमी पकड़ कर खड़े हों और उनमेंसे एक उसका एक सिरा ऊपर नीचे करे। फल यह होगा कि रस्सी में तरंगे सी चलने लगेंगी और यह खड़ी होंगी। अब यदि इनकी हलचलके समानान्तर एक दरार खड़ी कर दी जाय तो भी रस्सामें तरंगे चलती रहेंगी पर यदि दरारको एक समकोणसे घुमा दें तो तरंगे न चल सकेंगी। अब यदि आप दो दरारें लें और दोनोंको हलचलके समानान्तर रक्खें तो तरंगे चलती रहेंगी पर यदि एक को आड़ा और दूसरी को खड़ी रक्खें तो रस्सी स्थिर ही रहेगी। यह इसलिये होता है कि तरंगमें एक दिशात्मक हो जाती हैं।

कुछ ऐसा ही प्रकाशमें होता है। यह पाया गया कि यदि साधारण प्रकाशकी एक रश्मि को टूरमेलिन नामक एक रवेमेंसे निकलने दिया जावे और उस किरणको दूसरा वैसा ही रवा आँख पर लगाकर देखा जावे तो आंख वाला रवा घुमाने पर ज्ञात होगा कि एक खास स्थिति में पहले रवे में से निकली हुई किरण दूसरे रवे से नहीं निकलने पाती और कुछ स्थितियोंमें स्वतन्त्रतापूर्वक निकल सकती है। यही प्रतीत होता है कि जो स्थान दरारोंका रस्सी के सम्बन्धमें था वही काम यह रवा प्रकाश के लिये करता है। ऐसे और प्रयोगोंसे परिणाम निकला कि प्रकाशकी तरङ्गें प्रकाशमें खड़ी हैं, अनुदैर्घ्य नहीं। यह विषय बहुत ही मनोरञ्जक और

महत्वपूर्ण है पर इस छोटेसे लेखमें अधिक विवरण देना सम्भव न होगा।

समालोचना

क्लोम याथातथ्यम्—ले० वै० पं० हरिप्रपन्न जी, श्री भास्कर औषधालय, तीसरा भोईवाडा, बम्बई। पृ० सं० ३२। मूल्य ।=) छपाई और कागज़ सुन्दर।

क्लोमका उल्लेख वैद्यक ग्रन्थोंमें बहुत आता है। यह क्या है, इसके सम्बन्ध में सब विद्वान एक मत नहीं हैं। कोई फुफ्फुस या गल नाड़ीको क्लोम बताता है तो डा० आपटे और कवड़े शास्त्री ने आयुर्वेदीय तालु और कण्ठस्थितावकाशको क्लोम सिद्ध करनेका प्रयास किया है। मोनियर विलियम्स ने दक्षिण फुफ्फुस और हृदयको क्लोम लिखा है। कुछ लोग फैरिंक्सको क्लोम बतलाते हैं। हरिप्रपन्न जी ने इन सबके मतोंकी मीमांसा की है और शतपथादि वैदिक ग्रन्थोंके आधार पर सिद्ध किया है कि उपर्युक्त विद्वानोंके विचार निर्मूल हैं। हमारे योग्य लेखक ने वैदिक क्लोमका स्थान उदर निश्चित किया है। आपकी युक्तियाँ विचारपूर्ण हैं और मीमांसा योग्यता पूर्वक की गई है। विद्वज्जनोंसे हमारा निवेदन है कि क्लोम याथातथ्यम्को अवश्य पढ़ें और यथोचित लाभ उठावें।

गंगाका गंगांक—मूल्य ॥), प्रकाशक गौरीनाथ झा, कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर।

सम्पादक-त्रय ने 'गंगा' के ज्येष्ठका अंक गंगांक निकाला है। भारतीय संस्कृति और साहित्यमें गंगाका कितना महत्व है यह किसीसे भी छिपा नहीं है, अनेक अवसरों पर भारतीय इतिहास में गंगा ने काया-पलट कर दिया। इस दृष्टिसे गंगांक का निकालना अति उपयुक्त हुआ है। इसमें अनेक दृष्टिकोणोंसे गङ्गाका निरीक्षण किया गया है। पौराणिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक और साहित्यिक गङ्गाओंकी धारायें बहाई गई हैं। लौटूसिंह और वीरेश्वरनाथरायके ऐतिहासिक लेख, रामदासगौड़का वैज्ञानिक गङ्गावतरण, दयाशंकर दुबेका आर्थिक महत्व, 'प्रभाकर' का आयुर्वेदिक विवरण, और अनेक लेखकोंके साहित्यिक एवं नैसर्गिक निरीक्षणों द्वारा यह गङ्गांक सुन्दर, उपयोगी और सर्वथा पठनीय हो गया है। हम इस सुन्दर अंकके लिये सम्पादकमंडलको शतशः बधाई देते हैं। इस पत्रिकाका भविष्य बहुतही उज्ज्वल है और आशा की जाती है कि इससे हिन्दी जगत्को उपयोगी और मूल्यवान् साहित्य प्राप्त होगा।

—सत्य प्रकाश

GRAND CLEARANCE SALE
701 VALUABLE PRESENTS ON
Rs. 2-8-0 only.
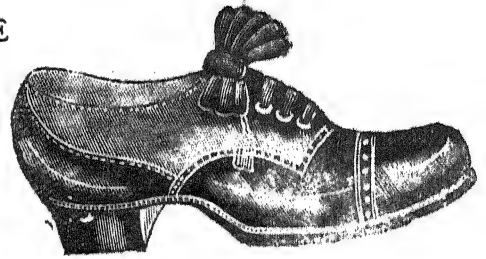
Purchaser of our 5 Phials "OTTO" on Rs. 2-8-0 will get the following presents free of charge. The present consists—one gold-gilt "Toy" wrist watch, one band, one fancy handkerchief, one stone-set ring, one fancy mirror, one comb, one scented soap, one lead pencil, one clip, one fountain pen, one dropper, 174 blue-black ink tablets, one stone-set stud, one pair gold-guilt Makri, one money bag, one vest, one pair shoe lace, one knife, one pair ear-ring, one spectacle, one "Toy" pocket watch, 24 safety pins, 50 water pictures, one baloon, one safety razor blade, 25 needles, 100 caps, 25 nibs, 12 hair pins, one pair girder, 6 balloon whistle, one fancy holder, one pair "JEAN" Shoe (measurement required), one packet cobra, one pair hair clip, one "PISTOL", one ouse pin, one mouth organ. Price including presents Rs. 2-8-0 Packing & Postage As. 15.

THE NATIONAL WATCH CO., 15/1, Joy Mitter Street, P. O. Hatkhola, Calcutta.

WONDERFUL CHARKA ! WONDERFUL CHARKA !!

Follow strictly the message of Mahatma Gandhi, the greatest man of the world that Charkha is the only means for the country's freedom. It will provide for half the necessaries of your life. Have faith in the Mahatma at least.

In this Charkha, the yarns can be spun like the big charkhas. It can be taken anywhere with ease. Even a child can work it. It is a wonderfull small thing about 4 oz. in weight.

Price Re. 1/—, packing extra As. –/4/– If three are taken no charges for packing will be made. To be had of :

DUTT & CO., 15/1, Joy Mitter. Street, P. O. Hatkhola, Calcutta.

पूर्ण संख्या—
१६४

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. **Reg. No. A. 708.**

भाग ३३
VOL. 33.

मिथुन, संवत् १६८८

संख्या ३
No. 3

जून १६३१

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ३३ } मिथुन, संवत् १९८८ { संख्या ३

वाष्प इञ्जिन

[ले० श्रीजगपति जी चतुर्वेदी, हिन्दीभूषण, विशारद]

मनुष्य ने आज तक जितने आविष्कार किये हैं उनमें वाष्प-इंजिन सबसे महान है। इसके धीरे धीरे विकास और उन्नति की कथा बड़ी ही रोमांचकारी है जिसकी तुलना मनुष्य की कुशलता और अध्यवसायके अन्य किसी भी कार्यसे नहीं की जा सकती। मनुष्य ने इसी की सहायतासे प्रकृतिकी दुर्गम कठिनाइयों पर एक विलक्षण ढंगसे विजय पानेमें सफलता पाई है। वह अपने जीवनके सभी स्रोतोंमें विस्मय जनक कार्य करनेमें सफल हो सका है जिनका वाष्प-इंजिन की सहायता बिना हो सकना सर्वथा ही असंभव था। इसकी सहायतासे केवल यात्रा ही तीव्र गतिकी नहीं हो सकी है प्रत्युत व्यापार और उद्योग धन्धोंके मार्ग खुल गये हैं।

जिस प्रकार अन्य सभी आविष्कारोंके लिए एकके बाद दूसरे आविष्कारकोंके सतत उद्योग करते रहने पर बादका कोई आविष्कारक किसीएक आविष्कारको पूर्ण सफल बना सका है उसी प्रकार पूर्ण सफल वाष्प इंजिन भी बहुतसे आविष्कारकों के प्रयोगों और प्रयत्नके पश्चात् ही बनाया जा सका है। इन आविष्कारकोंमें सेवरी, न्यूकमेन, पाटर और जेम्स वाटका नाम बहुत प्रसिद्ध है परन्तु इन सबके पूर्व आजसे सहस्रों वर्ष पहले भी इस विषय पर लोगों ने विचार कर कुछ बातें ज्ञातकी थीं और इस विकट और प्रचंड शक्ति पर अधिकार जमानेका प्रयत्न किया था।

आजसे कमसे कम दो सहस्र वर्ष पूर्व लोगों को वाष्पकी शक्तिका ज्ञान था। सन ईस्वी के २०० वर्ष पूर्व मिस्र देशमें सिकंदरियाके हीरो नाम के एक व्यक्ति ने इस शक्तिसे कुछ काम लेनेका भी प्रयत्न किया था। हीरो यन्त्र विद्याका प्रसिद्ध

लेखक था और इसने कितने ही यंत्रों और विचित्र खिलौनों को बनाया था। इसने मिश्र देशके मन्दिरोंका फाटक वाष्पकी सहायतासे खोलनेका प्रयत्न किया है। इसने लिखा है कि पूर्वकालके लोगोंको वाष्प-शक्तिका ज्ञान था और वे साधारण लोगोंको विस्मयमें डालनेके लिए इससे विचित्र कार्य कर दिखलाते थे।

हीरो ने वाष्प-शक्तिसे नाचने वाला एक नाचने वाला गोला बनाया था। संसारका सर्व प्रथम वाष्प-इंजिन इसीको कहा जा सकता है जिसका उल्लेख मिलता है। यद्यपि यह गोला खेल सा था फिर भी इसके सिद्धान्त पर वाष्प-इञ्जिन बनाया जा सकता था। आधुनिक कालमें आविष्कृत नूतन ढंगका वाष्प चक्र इंजिन वा टरबाइन का सिद्धान्त इसी प्रकारका है। इस गोलेको नचानेके लिए एक पानीके बन्द बर्तन में ऊपर की ओर नलियाँ लगी थीं। इन नलियों का सिरा इस प्रकार मुड़ा था कि गोला उनके बीचमें लटकाया जा सके, और घूम सके। गोला भीतर से खाली था और उसमें ऊपर नीचे दो टोंटियाँ लगी थी जिनका मुँह एक दूसरेके उलटी ओर मुड़ा था। जब बर्तनमें नीचे आग जलानेसे उसमें भाप बनती थी तो वह एक नली से होकर खाली गोलेमें जाती थी। इस तरह भापके ज़ोरसे बाहर निकलने पर गोला नाचने लगता था।

प्राचीन कालमें यदि कोई ऐसी बात करता जिसको साधारण लोग न समझ पाते तो लोग समझते कि वह जिन वा प्रेत द्वारा होता है। मिश्र देशके पुरोहित साधारण लोगोंकी इस मूर्खतासे लाभ उठा कर भापकी शक्तिसे कुछ विचित्र काम दिखा कर उसको देवताओं का कार्य बतलाते। इसी प्रकार मध्य युगके दूसरे देशोंके पुरोहित भी लोगों पर आतंक रखते।

एक स्थान पर पुरोहितों ने एक देवताकी ऐसी मूर्ति बनाई थी जो धातुकी थी लेकिन उसका सिर खोखला था। उसमें पानी पहुँचा कर गुप्त रीति से भाप उत्पन्न की जा सकती थी। उस मूर्तिकी आँखोंमें छेद था जिसमें काग लगा हुआ था। जब सिरके खोखले भागमें भाप अच्छी तरह भर कर बाहर निकलेका प्रयत्न करनेके निकट होती तो पुजारी भोले भाले लोगों को मन्दिरमें मूर्तिके सामने लाते। उसी समय भाप आंखोंका काग बाहर ढकेल कर बड़े वेगसे धड़ाका पैदा कर बाहर आ जाती जिससे मूर्तिका सारा शरीर ढक जाता। इस पर पुरोहित लोगोंको बतलाते कि देवता बड़े अप्रसन्न होकर तुम लोगों को दर्शन नहीं देना चाहते। इस कारण लोग भयभीत होकर देवताको प्रसन्न करनेके लिए बहुत कुछ पूजामें चढ़ाते। इस तरह पुरोहितोंको बड़ी आमदनी होती।

यद्यपि इतने दिनों पूर्व कुछ लोगोंको ज्ञात था कि भाप एक महान प्राकृतिक शक्ति है जिससे मानव-समुदायके बहुतसे लाभदायक कार्य कराये जा सकते हैं परन्तु सैकड़ों वर्ष तक लोगों ने परीक्षण से दूर रह कर इस शक्तिके उपयोग में कुछ भी उन्नति नहीं की। संसार भरमें अज्ञानान्धकारका युग व्यतीत होता रहा जिसमें लोगोंको शक्तियोंका उपयोग युद्ध वा दूसरे कार्योंमें होता रहा और शान्तिमय बनानेके स्थान पर संसारके संहारके लिये आयुधों के निर्माणमें ही लगी रही।

इतने दिनोंके बाद सोलहवीं शताब्दीमें वाष्प-शक्तिकी ओर लोगोंका ध्यान गया। सन् १५४७ ई० में इटली देशके बोलोन नगरमें हीरो की एक पुस्तकका अनुवाद प्रकाशित हुआ। उसके एक भागमें वाष्प-शक्ति का भी वर्णन था। ब्रैंका नामके इटलीके एक चिकित्सक ने हीरोके इस इञ्जिन का वर्णन पढ़ा और बहुतसे यंत्र बनाए जो भापसे चल सकें। उसने सन् १६२८ ई० के लगभग एक ऐसा वाष्प इञ्जिन बनाया जो यथार्थमें काम दे सकता था। इसमें पानी गर्म करनेका बर्तन एक आदमीके आकारका बनाया गया था। उसमें

पानी रख कर नीचे आग जलानेसे मुँहसे भाप निकलती थी। मुँहके सामने एक पहिया था। उस पहिये पर भापकी धारा पहुंचनेसे वह इस प्रकार घूमने लगता था जिस प्रकार पनचक्कीमें पङ्खोंके ऊपर हवा का वेग पहुंचनेसे वह घूमने लगते हैं।

ब्रैंका ने जिस ढङ्गके वाष्प-इंजिनका सिद्धान्त निकाला, वह बड़ा ही उत्तम था। उसमें यदि सुधार किया जाता तो उससे बड़े बड़े काम कराये जा सकते परन्तु लोगों ने इस ओरसे ध्यान हटा कर एक दूसरे ही प्रकारके वाष्प-इंजिनको जन्म दिया। जब ऐसे इंजिनोंका प्रचार होनेके बहुत दिनों बाद सन् १८८४ ई० में पारसन नामके आविष्कारक ब्रैंकाके सिद्धान्त पर नए ढङ्गके वाष्पचक्र इञ्जिन का आविष्कार किया तो लोग स्तब्ध रह गए। उसके पहले ही इंजिन ने एक मिनटमें १६००० चक्कर करनेमें सफलता प्राप्त की।

ब्रैंकाके सिद्धान्तसे दूसरे ढङ्गके जिस इञ्जिन का लोगों ने जन्म दिया वह पिचकारीकी भांति था। जिस प्रकार पिचकारी में एक नली और उसके अंदर एक डंडा होता है जिसके भीतरी सिरे पर कपड़े, सूत वा चमड़े की गद्दी होती है उसी प्रकार इन इञ्जिनोंमें भी एक बड़ी नली और नलीके भीतर सिरे पर गद्दी बँधा डंडा होता है। उस नलीको सिलिंडर और डंडेको पिस्टन वा बोता कहते हैं। जब जब सिलिंडर में भाप पहुंचाई जाती है तो उसके वेग से पिस्टन बाहर चला जाता है और भापका वेग कम हो जाने पर फिर नीचे चला आता है। इसी पिस्टनको किसी पहियेके साथ जोड़ देनेसे वह पहिया घूमता है।

पिस्टन और सिलिंडर के सिद्धान्त पर जो इञ्जिन पहले बने थे उनमें पिस्टनको सिलिंडरके बाहर भीतर करनेके लिए भापकी शक्तिसे काम नहीं लिया गया था। उसमें वायुकी शक्ति काम करती थी। यदि किसी जगहसे हवा बिलकुल बाहर निकाल दी जाय तो उस जगह हवा न रहनेसे वैकुअम पैदा करना वा वायुशून्य स्थान बनाना कहते हैं। वायुका यह गुण है कि यह जहाँ कहीं रिक्त स्थान पाती है वहाँ तुरन्त पहुंच जाती है। इस कारण कहीं वायुसे खाली स्थान रखना कठिन है। जब किसी बर्तनमें से बड़ी कठिनाईसे हवाको पम्प द्वारा बाहर निकालते हैं तो उसके अन्दर शून्य पैदा हो सकता है।

हवाकी इस शक्तिसे काम लेनेके लिए मार्किस आफ वोरसेस्टर ने उद्योग किया था। उसने एक ऐसा पम्प बनाया था जिसकी नलीमें भाप पहुँचाई जाती थी। जब भाप ठंडी हो जाती थी तो थोड़ी जगहमें हो जाती थी जिससे नलीमें शून्य पैदा हो जाता था। वैकुअम पैदा होनेसे हवा उस जगह पहुँचना चाहती थी परन्तु ऊपरसे घुसनेकी जगह न होनेसे वह पम्पके निचले मुँह से नलीके भीतर घुसना चाहती थी। पम्पकी नलीका निचला सिरा पानीके अन्दर होता था। इस कारण वायुका पम्पके ऊपर दबाव पड़नेसे पानी नलीमें ऊपरको ओर चढ़ जाता था। उस नलीका निचला मुँह उसी समय बन्द कर नलीमें फिर भाप पहुँचाई जाती थी जिसका दबाव पड़नेसे पानी नलीमें ऊपरकी ओर चला जाता और एक छेदसे बाहर हो जाता था। इस युक्तिसे ४० फीट की ऊँचाई तक पानी चढ़ाया जा सकता था।

इसी प्रकार शून्य पैदा कर हवाके दबावसे काम लेनेके लिए हालैंडके प्रोफेसर ह्यूजिन ने भी प्रयोग किया। उसने भापकी जगह बारूदसे शून्य पैदा करनेकी युक्ति निकाली। इसके लिए वह सिलिंडरमें बारूद रख कर एक छेद द्वारा उसमें लुत्ती लगाता जिससे बारूद भड़क उठती। सिलिंडरमें उसने एक वाल्व वा आवरण युक्त छिद्र बनाया था जो बाहरकी ओर ही खुल सकता था इसलिये जब बारूद का धड़ाका होता तो हवा वाल्वसे बाहर निकल जाती और सिलिंडर में शून्य पैदा हो जाता। शून्यकी जगह

भरनेके लिये वाल्वसे हवाको मार्ग नहीं मिलता इसलिये वह सिलिंडरके ऊपरसे पिस्टन पर दबाव डालती जो भीतर चला आता। पिस्टन को भीतर और बाहर कर कुछ काम निकालनेके लिए ह्यूजिन ने एक खम्भे पर एक गड़ारी लटका दी। उस गड़ारी परसे एक रस्सी लटकती थी जिसका एक सिरा एक ओर पिस्टनसे बँधा था और दूसरा सिरा दूसरी ओर एक बोझसे। पिस्टनसे सिलिंडर के भीतर जाने पर रस्सी खिंच जानेसे उस बोझको उठाया जा सकता था। यह एक बिलकुल खेल सा था लेकिन इससे पिस्टन और सिलिंडरसे काम की लेनेकी युक्ति ज्ञात हो गई थी। इसी सिद्धान्त पर प्रयत्न करने पर वाष्प इञ्जिन बन सकता था। परन्तु इसका गौरव ह्यूजिन को न मिल सका।

पहले पहल सिलिंडर और पिस्टनका उपयोग कर वाष्प इञ्जिनके आविष्कार का गौरव डा० डेविस पेपिन को है। यह फ्रांस देशका रहने वाला था लेकिन सन् १६७५ ई० में इङ्गलैंडमें आकर बस गया था। वहीं पर उसने १५ वर्ष बाद उस इञ्जिन को जन्म दिया जिसके सिलिंडरमें भाप द्वारा शून्य पैदा कर पिस्टनको नीचे ऊपर किया जा सकता था। पेपिन ने यह भी देखा था कि भापमें बहुत अधिक फैलनेकी शक्ति है इस लिए उसने इसके बहुत अधिक फैल जानेके कारण सिलिंडर को फटनेसे बचाने के लिए सिलिंडरमें ऐसा छिद्र बनाने की युक्ति निकाली जिससे आवश्यकतासे अधिक फैलनेके समय भाप बाहर निकल जाय। डेविस पेपिनका वाष्प इञ्जिन बहुत कुछ सफल था परन्तु उसकी किसी ने पूछ न की और वह कष्टमें अन्तिम आयु व्यतीत कर इस लोकसे चल बसा। वैज्ञानिक अन्वेषण और आविष्कार-जगतमें ऐसा सदा हुआ है। पूर्ण सफलताओंमें से अधिकांश छोटे छोटे व्यक्तियोंके प्रयत्नोंके संचयसे हुई हैं और निरन्तर एकके बाद दूसरे कितने ही आविष्कारकोंके सर्वथा असफल वा आंशिक रूपमें सफल उद्योगोंके पश्चात् ही कोई अन्तिम आविष्कारक उसे पूर्ण कर यशका भागी बन सका है।

जिन दिनों पेपिन ने अपने वाष्प-इञ्जिनको जन्म दिया था उन्हीं दिनो सत्रहवीं शताब्दीके अंतिम भागमें इङ्गलैंड में खानोंके अन्दरसे पानी बाहर उलीचने वाले पम्पोंकी बड़ी आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी। लोग लकड़ीके अभावमें खानोंके अन्दरसे पत्थर कोयला खोद खोद कर उनका इतना अधिक प्रयोग कर रहे थे कि ऊपरी तहोंमें मिलने वाला पत्थर का कोयला सबका सब समाप्त हो चला था और वह अब इतनी निचाई पर ही मिलता था जहाँसे पानी निकलता है। इस कारण खानों में कोयलेकी खोदाई करने वालोंकी मृत्यु हो जाने का भी संकट पैदा हो जाता था। इन संकटोंसे बचने और कोयलेको प्राप्त करनेके लिए इञ्जिनसे चलने वाले तेज पम्पोंकी बड़ी अधिक आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी अतएव आविष्कारकों ने पेपिनके इञ्जिनमें सुधार कर उससे काम लेनेकी ओर विशेष ध्यान दिया। इनमें सेवेरी और न्यूकमेनका नाम उल्लेखनीय है।

सेवेरी एक चतुर व्यक्ति था। यह एक खानों के प्रान्तमें पैदा हुआ था इसलिये खानवालों की कठिनाई देख पम्प की ओर इसका ध्यान गया। इसने भाप की सहायतासे पानीको ऊपर उलीचने के लिये मार्क्विस आफ वोरसेस्टर के पम्पको ही सुधारा हुआ रूप दिया जिससे १०० फीटकी ऊँचाई तक पानी चढ़ाया जा सकता था परन्तु यह संतोषजनक विधि नहीं थी। इसमें घोर परिवर्तनके लिये न्यूकमेन ने जो युक्तिकी वह बहुत ही महत्वपूर्ण थी।

न्यूकमेन ने जो इञ्जिन बनाया उसमें पिस्टनसे भी काम लिया जाता था। उसने पानीको ऊपर चढ़ानेवाली नलीमें ही भापसे शून्य पैदा कर पानी ऊपर खींचनेकी जगह भापका इञ्जिन पानीकी नली व पम्पसे पृथक रक्खा। उसने इञ्जिन द्वारा पम्पसे पानी खींचनेके लिए एक खम्भे पर कीलसे

एक तुलादंड लटका दिया। जिस प्रकार तराजूकी डंडी बीचकी रस्सी पकड़ कर टांगने पर दोनों ओर पलड़ोंको लटकाए रहती है उसी प्रकार खम्भेमें लटके तुलादंडके एक सिरेसे रस्सी व कड़ी द्वारा वाष्प-इञ्जिनका पिस्टन बँधा था और दूसरी ओरसे पम्पका पिस्टन। जब इञ्जिनका पिस्टन सिलिंडरमें शून्य पैदा होने पर हवाके दबावसे नीचे जाता तो तुलादंडका इस ओरका सिरा झुक जाता और दूसरी ओरका उठ जाता जिससे पम्पका पिस्टन ऊपर खिंच आता। जब इञ्जिनका पिस्टन नीचे हो जाता तो उसे तुलादंडकी दूसरी ओर बँधा हुआ बोझ अपने दबावसे उसे ऊपर खींच लेता। इस तरह इञ्जिनका पिस्टन नीचे ऊपर होनेसे तुलादंडके कारण पम्पका पिस्टन भी ऊपर नीचे होता। इस कारण पम्पके निचले सिरेके पानीके अन्दर होनेसे पानी ऊपर खिंच आकर बाहर हो जाता। न्यूकमेन ने इस प्रकारके इञ्जिनको पहले पहल सन् १७०५ ई० में तैयार किया था।

न्यूकमेन ने खानोंसे पानी उलीचनेके लिए इस प्रकारका जो इंजिन बनाया वह बहुत भद्दा था और १ मिनटमें केवल ४, ५ बार ही चलता था लेकिन उसमें धीरे धीरे सुधार कर उसे कुछ अच्छा रूप दिया जा सका। इस इञ्जिनको चलानेके लिए पहले सिलिंडरमें भाप पहुँचा कर भाप ठंढी कर शून्य पैदा करनेके लिए सिलिंडरके ऊपर एक टंकीसे पानी छोड़ते थे। एक बार ऐसा हुआ कि इञ्जिन पहलेकी अपेक्षा अधिक तीव्र गतिसे चलने लगा। ध्यानसे देखने पर ज्ञात हुआ कि सिलिंडरके ऊपर जहाँसे पिस्टन भीतर घुसा हुआ होता है उस छेदसे हवा न आने देनेके लिए सिलिंडरके ऊपर जो पानी रक्खा रहता था वह कहीं जगह पाकर सिलिंडरके अन्दर चला गया था इस कारण सिलिंडरके ऊपर पानी छोड़नेकी अपेक्षा भीतर पहुँचे पानीसे भाप जल्दी ठंढी हो जाती जिससे इञ्जिनकी गति कुछ अधिक हो गई। यह देख कर सिलिंडरमें भाप पहुँचा कर उसे ठंढी करने के लिए उसके भीतर ही नली से पानी पहुंचाया जाने लगा।

इसी प्रकार इञ्जिनकी गति तीव्र करनेवाली एक और आकस्मिक घटना हुई। इञ्जिनको चलानेके लिए पहले सिलिंडरमें भाप पहुँचानेके लिए भापकी नलीका छेद खोल दिया जाता था फिर ठंढे पानीको पहुंचानेके लिए उसकी नली। इन दोनों नलियोंके मुँहको बारी बारीसे खोलनेका काम एक बार हम्फ्री पाटर नामका लड़का करता था। उसने इस काममें चित्त न लगते देख खेलनेके लिए समय निकालनेकी इच्छासे नलोंकी टोंटियोंका संबंध ऊपरके तुलादंडसे इस ढंगसे कर दिया कि वे बारीबारीसे खुलें। इस तरह एक लड़केकी करामातसे टोंटियाँ स्वयं खुलने और बन्द होने लगीं जिससे इञ्जिनकी गति बहुत बढ़ गई और वह १ मिनटमें ५, ७ बार-की जगह १६ बार काम करने लगा।

न्यूकमेन ने जो वाष्प-इञ्जिन बनाया था उसमें वास्तवमें भापकी शक्तिसे काम नहीं लिया जाता। सिलिंडरके अन्दर भापको ठंढे पानीसे संयोगसे द्रवीभूत कर शून्य पैदा करनेका ही काम लेते थे। इसमें एक और बड़ा दोष था। जब भापको द्रवीभूत करनेके लिए सिलिंडरमें ठंढा पानी पहुँचाते तो सिलिंडर ठंढा हो जाता। फिर जब ठंढे पानी और उससे द्रवीभूत भापको एक छेदसे बाहर निकाल सिलिंडरके अन्दर दुबारा भाप पहुँचाते तो उसको गर्मीका बहुत कुछ अंश सिलिंडरको दुबारा गर्म करनेमें ही लग जाता। इस कारण अधिक भाप व्यय करने पर भी थोड़ी ही शक्ति प्राप्त होती। इन बातोंका सुधार होने पर वाष्प-इञ्जिन बहुत तीव्र गतिसे काम कर सकता था। परन्तु कई आविष्कारकोंके छोटे मोटे सुधार करते रहने पर भी ७० वर्ष तक वाष्प इञ्जिनोंका रूप उसी रूपमें रहा। इसमें घोर परिवर्त्तन कर बिलकुल दूसरा ही रूप देनेका गौरव जेम्स वाटको मिला जो कभी कभी भ्रम से वाष्प-इञ्जिनका आविष्कारक कहा जाता है।

जेम्स वाट इंग्लैंडके ग्रीनाक ग्रामके एक व्यापारीका लड़का था। यह लड़कपनमें इतना निर्बल था कि इसके पिता ने इसे स्कूलमें न भेजा परन्तु इसे घर पर ही अच्छी शिक्षा मिली। यह बड़ा ही विचारवान और कुशल व्यक्ति था और सदा वैज्ञानिक समस्याओं पर विचार किया करता था। इसे पिताकी निर्धनताके कारण अल्प वयस्क होने पर भी जीवनके कार्य क्षेत्रमें उतरना पड़ा। इस कारण इसने कल पुर्ज़े बनानेका व्यवसाय प्रारम्भ किया। इसे शीघ्र ही ग्लासगो विश्वविद्यालयमें कल पुर्ज़े बनानेवालेकी जगह मिल गई और इसे विश्वविद्यालयके अंतर्गत ही एक दूकान मिली। वहीं पर काम करते हुए सन् १७६३ ई० में उसका ध्यान वाष्प-इंजिनकी ओर गया जिसमें सुधार कर उसे बिलकुल नया रूप देनेके कारण उसे इतनी प्रसिद्धि मिल सकी।

विश्वविद्यालयमें न्यूकमेनके नमूनेका एक वाष्प-इञ्जिन था उसके बिगड़ जाने पर उसकी मरम्मतका काम वाटको मिला। वाटको उन दिनों यंत्रविद्याका विशेष ज्ञान न था परन्तु उसने घोर परिश्रम कर उस सम्बंधकी विद्याओंका भली भाँति अध्ययन करना प्रारम्भ किया और वाष्प-इञ्जिनके संबंधमें जितनी पुस्तकें मिल सकती थीं उन सबको पढ़ कर सेवेरी, न्यूकमेन आदिके आविष्कारोंका भलीभाँति ज्ञान प्राप्त कर लिया। इतना परिश्रम करने पर उसने इञ्जिनकी मरम्मत तो कर दी परन्तु वह इञ्जिन संतोषजनक कार्य न कर सका। इस पर वाट ने फिर पुस्तकोंकी ओर दृष्टि डाली परन्तु उस कठिनाईको निवारण करनेवाली युक्ति कहीं नहीं दिखाई पड़ी। किन्तु उसने हताश न होकर इसके सुधारके लिए विचार करना जारी रक्खा। अंतमें उसे सफलता मिल ही गई।

वाट ने इस बातको देखा कि सिलिंडरमें शून्य पैदा होने पर पिस्टनके एक आघातके बाद जब सिलिंडरमें फिर भाप पहुंचाई जाती तो उसका अधिकांश सिलिंडर ठंढा होनेके कारण उसमें घुसते ही द्रवीभूत हो जाता। इसके लिए उसने सोचा कि यदि सिलिंडरमें भाप द्रवीभूत न कर एक दूसरे ही पात्रमें की जाय जिससे सिलिंडर बराबर गरम रक्खा जा सके तो बहुत सी भाप व्यर्थ जानेसे बच जाय और इञ्जिनकी शक्ति बढ़ जाय। इसलिए उसने सिलिंडरसे पृथक् भापको द्रवीभूत करनेके लिए एक शीतक पात्र बनाया और इस शीतक पात्र का सिलिंडरसे एक नली द्वारा संबंध कर दिया। शीतक या भापको द्रवीभूत करने वाला पात्र बराबर ठंढा रक्खा रहता और उसमें एक ऐसा पम्प लगा होता जो इञ्जिन चलने पर उसीकी शक्तिसे चल कर शीतकमें से हवा बाहर कर उसमें शून्य पैदा कर देता। शीतक में से शून्य पैदा होने पर सिलिंडरसे भाप खिंच कर उसमें आ जाती। इस सिलिंडरमें भापको ठंढा करनेके लिए पानी पहुँचानेकी आवश्यकता न रह गई।

वाट ने शीतक पात्र पृथक् बनानेके अतिरिक्त उसमें और भी सुधार किए। उसके पहले पिस्टनको सिलिंडरके भीतर केवल शून्य पैदा कर ही लाया जाकर इञ्जिनमें गति पैदा की जाती थी परन्तु वाष्प की प्रसार शक्तिसे काम नहीं लिया जाता था। जब पानी वाष्प रूपमें होता है तो उसका १६०० गुना अधिक प्रसार हो जाता है परन्तु इतनी प्रबल शक्तिका उपयोग कुछ न कर लोग भापसे केवल शून्य पैदा करनेका काम लेते थे। वाट ने पहले पहले भापकी प्रसार-शक्तिका अनुभव कर उसके दबावसे पिस्टनको नीचे ऊपर करनेकी युक्ति निकाली। जब पिस्टन सिलिंडरके भीतर होता तो उसके सिर पर भाप पहुँचानेसे भापके दबावसे वह आगे या ऊपर जाता। फिर उसे नीचे या पीछे लानेके लिए उसके सिरेके दूसरी ओर भाप पहुंचाई जाती जिससे उधरसे भापका दबाव पिस्टनको नीचे ढकेल देता। जब भाप काम कर चुकती तो वह तुरन्त शीतक पात्रमें पहुँच कर ठंढी कर दी जाती। इस प्रकार भापके दबावसे चलनेवाला इञ्जिन बनाया जा सका। वाट ने सिलिंडरको गर्म

रखनेके लिए उसके ऊपर एक ढक्कन लगा दिया और ढक्कन तक सिलिंडरके बीचकी जगहमें भाप भर दी जिससे सिलिंडर पूर्ण रीतिसे गर्म रह सके। इस प्रकारका सुधार हो जाने पर वाटके इञ्जिन ने पहलेके इञ्जिनोंकी अपेक्षा दस गुना अधिक तीव्र गतिसे काम करना प्रारम्भ किया।

जेम्स वाट ने वाष्प इञ्जिन में जो कुछ सुधार किए उनमें उसका मस्तिष्क तो अकेला ही था परन्तु यदि उसे आर्थिक सहायता न मिलती तो उन आविष्कारोंको कदाचित क्रियात्मक रूप न मिल सकता। इसके लिए जेम्स वाट एक कारखाने के मालिक मैथ्यू बोल्टनका ऋणी है जिसने विचार-शीलतासे काम लेकर बड़ी कठिनाईके साथ वाटकी भरपूर सहायताकी और उसके आविष्कारको सफल बनानेके लिए अपने कारखानेके चतुर कारीगरों और धनकी सहायतासे पहुँचाई। अन्यथा अन्य आविष्कारकोंकी तरह वाट भी अपने जीवनको कठिनाईमें व्यतीत कर अपने आविष्कारको दूसरों द्वारा पूर्ण होनेके लिए छोड़ जाता।

जेम्स वाट और मैथ्यू बोल्टनके सहयोगसे जिन वाष्प-इञ्जिनोंका जन्म हुआ उन्होंने आज भूतल-में कितना युगान्तर उपस्थित कर दिया है इसे हम प्रत्यक्ष देखते हैं।

प्रकाश क्या है ?

[२]

[ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी०]

विद्युत चुम्बकीय सिद्धान्त

अभी तक जिन तरङ्गोंका विवरण हम दे आये हैं वह आकाशमें उसके लचीलेपनके कारण चलनी थीं। अभी तक प्रकाश और विद्युत् या चुम्बकीय विज्ञानमें किसी प्रकारका सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ था। फैरेडे ने एक प्रयोग किया जिससे यह अनुमान होता था कि इन दोनोंमें कोई सम्बन्ध है। उसने चुम्बकीय क्षेत्रस्थित कांचके एक टुकड़ेमें से प्रकाशकी एक दिग्प्रधान (Polarised) किरण भेजी। फल यह हुआ कि कम्पन दिशा बदल गयी। प्रयोगसे निष्कर्ष यह निकला कि प्रकाश और चुम्बकीयक्षेत्रका अवश्य कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी प्रकारके प्रमाण और भी कई मिले और अन्तमें मेक्सवेल ने यह सिद्धान्त प्रसिद्ध किया कि प्रकाश स्वयं विद्युत् चुम्बकीय है। यह फल उसने उसीके नामसे प्रसिद्ध कतिपय समीकरणोंके रूपमें वैज्ञानिक संसारके सामने रखा। इनकी नींव इतनी दृढ़ है कि जिसको विश्वविजयी सापेक्षवाद का सिद्धान्त भी न हिला सका। इनके अनुसार प्रकाशकी तरंगे आकाशमें लचीली तरंगे नहीं थीं, पर वैद्युत् चुम्बकीय हैं। इन समीकरणोंके अनुसार यह लहरें आकाशमें प्रवाहित होती थीं।

मेक्सवेल ने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया सही पर उसके पश्चात् हर्ज ने उसे पूरा किया। उसने कहा कि यदि एक संग्राहक और आवेश एक विशेष प्रकारसे कुंडलीमें रक्खे जांय और एक वैद्युत् धक्का उसे मिले तो वह एक विशेष परिस्थितिमें भूलन कुण्डली हो जायगा। गणितसे पाया गया कि इसमेंसे वि० चु० लहरें निकलना चाहिये। यहां तक तो कागजी बातचीत थी पर प्रतिभाशाली हर्ज ने प्रयोग किये और १००० मीटर से १० मीटर तक तरंग लम्बाई की तरंगे उत्पन्न करके उनका अस्तित्व परखा। विज्ञान के इतिहास में क्या मानवीय सभ्यताके इतिहासमें यह घटना सुवर्णाक्षरोंसे लिखने योग्य है क्योंकि न केवल इस दिन मनुष्य ने प्रकृतिका एक गूढ़ रहस्य खोज डाला पर बेतारके तारको इसी समय नींव पड़ी। सारे संसारमें यह प्रयोग हुए और लम्पा, सर जगदीश चन्द्र वसु इत्यादि ने तो ४ शतांशमीटर तक लम्बाई की तरंगे उत्पन्न कर उनके गुणोंका अध्ययन कर यह सिद्ध कर दिया कि यह भी एक प्रकारकी प्रकाश किरणें हैं।

प्रकाश का विस्तृत अर्थ

साधारणतः प्रकाशसे हम क्या समझते हैं ? जिसकी सहायतासे हम नेत्रों द्वारा किसी वस्तु का अस्तित्व जान सकें उसीको हम प्रकाश कह देते हैं। न्यूटन ने रीतिपूर्वक एक त्रिपार्श्वसे प्रयोग करके देखा कि सूर्यका दृष्टिगोचर प्रकाश और हर एक श्वेत प्रकाश (जैसे मोमबत्ती इत्यादि) मोटे रूपसे सात रंगोंका बना हुआ है। यह रंग थे कासनी, नीला, हलका नीला, हरा, पीला, नारंगी, लाल। आधुनिक ज्ञानसे हमें मालूम है कि यह ठीक बात कहनेकी मोटी रीति है। एक रंगका प्रकाश दूसरेसे भिन्न होता है। यह हम वैज्ञानिक भाषामें इस प्रकार रक्खेंगे कि प्रत्येक रंगके प्रकाशकी तरंग लम्बाई भिन्न भिन्न होती है। उदाहरणार्थ पीले प्रकाशकी तरंग लम्बाई अनुमानतः $\frac{६}{१०००००}$ शतांश मीटर होती है और कासनी की $\frac{३\cdot५}{१०००००}$ श० मी०। इस दृष्टिसे श्वेत प्रकाशमें सात या इससे अधिक रंगोंकी बातचीत करना व्यर्थ है। वैज्ञानिक परिभाषाके अनुसार तो प्रत्येक पद पर रंग बदलता है। इस प्रकार सूर्य प्रकाशके किरणचित्रमें अनन्त रंग हैं। जिन लोगों ने इन्द्रधनुष या फव्वारेकी फुहारसे अठखेलियाँ

करते हुए सूर्य रश्मियोंको देखा है वह सब श्वेत प्रकाशके इस विश्लेषणसे परिचित होंगे। प्रकाश इन ही रंगोंसे बना है। यह इससे सिद्ध होता है कि इन रंगोंको अलग अलग लेकर मिलानेसे श्वेत प्रकाश बन जाता है। प्रकाश की वैज्ञानिक परिभाषा है, आकाश स्थित वे सब तरङ्गें जो प्रकाश की गतिसे अर्थात् १८६००० मील प्रति सेकिन्ड चल सकें, चाहे नेत्रोंसे उनका अस्तित्व जाना जा सके अथवा नहीं। अब हम देखेंगे कि अदृष्य ही दृष्यसे अधिक है पर मनुष्य ने बुद्धि—नेत्रोंसे सबकी छानबीन की है। प्रकाशका विस्तार नीचे दिये हुये चित्रसे प्रकट होगा।

अब हम प्रत्येक भागका कुछ वर्णन करेंगे।

* १. दृष्य :—इस भागसे सभी परिचित हैं। जैसा कि ऊपर लिखा जो चुका है यह भाग मोटे रूपसे ७ रंगोंमें बांटा जा सकता है इनकी तरंग लम्बाई ३५०० एं० से लगभग ७००० एं० तक होती है जैसे जैसे हम इस भागके कासनी सिरेकी ओर अग्रसर होते हैं उनका रासायनिक प्रभाव बढ़ता जाता है। फोटोके प्लेट पर सबसे अधिक असर कासनी भागका होता है।

पराकासनी भाग :—यह पाया गया कि कासनी भागसे परे भी अदृष्य प्रकाश किरणें हैं। इन
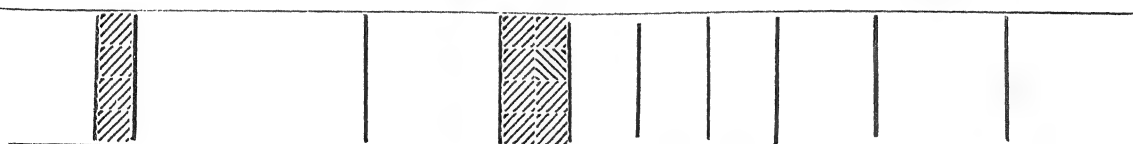
वैद्युतिक किरणें
पराकासनी
परालाल दृष्य
गामाकिरणें
$१०^{६}$ बेतारोपयोगी
$१०^{-२}$
$१०^{-४}$
$१०^{-८}$ अन्तरिक्ष किरणें
रोञ्जनकिरणें
तापकिरणें

किरणोंमें रासायनिक प्रक्रियाको उत्तेजित करनेके गुण हैं। फोटो प्लेट पर इनका असर बहुत शीघ्र होता है। सूर्य प्रकाशमें यह किरणें कुछ परिमाण में हैं परन्तु बहुत अधिक नहीं। जीवोत्पत्ति और जीव पालनमें इनका बड़ा भाग रहता है। आजकल सूर्य प्रकाशसे वञ्चित विलायत की खानों इत्यादिमें काम करने वाले बालकों और युवाओंको इनके द्वारा स्वास्थ्य प्रदान किया जाता है। बिल्लौर पारद चापमें यह प्रचुर मात्रामें उत्पन्न होती हैं और बाहर आती हैं। पश्चिमी चिकित्सा शास्त्रमें इनके गुणोंका प्रतिदिन आदर बढ़ रहा है, उदाहरणार्थ सूखियासे ग्रसित बच्चोंका इलाज इन ही के द्वारा किया जाता है। राजयक्ष्मा में भी इनके सेवनसे जिसे 'कृत्रिम सूर्यस्नान' कहते हैं आशातीत सफलता मिली है। इनमें कीटाणुओंके नाश करने की भी शक्ति पायी जाती है और जल और दूधको शुद्ध करनेमें भी इनका उपयोग हो चुका है। लगभग १८५० एं० के बाद यह बिल्लौरमें से भी नहीं निकलतीं और फिर वायु इनका शोषण करने लगती है इसलिये इससे कम तरङ्ग लम्बाई की किरणों पर प्रयोग

* अब तरङ्ग लम्बाई को एङ्गस्ट्राम इकाइयोंमें प्रदर्शित करना होगा

$$१ \text{ एं०} = \frac{१}{१००००००००} \text{ श० मी०}$$

शून्यमें किये जाते हैं। पदार्थ निर्माणके विषयमें इनके अध्ययनसे बहुत सहायता मिली है।

रौञ्जन रश्मियाँ :—पराकासनी तरंगोंसे कम लम्बानकी किरणें रौञ्जन किरणोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनसे प्रायः सभी एक्स-किरणों के नामसे परिचित हैं। इनकी उत्पत्ति शून्य-स्थित एक धातुके टुकड़े पर ऋणाणुओंके आघातसे होती है। इस विषय पर विस्तृत लेख विज्ञानके पिछले अंकोंमें निकल चुके हैं। भौतिक विज्ञानमें इनके रश्मिचित्रका विशेष रूपसे अध्ययन किया गया है जिससे अणु और परमाणुओंके आंतरिक संगठन का रहस्य ज्ञात हो सका। चिकित्सा शास्त्रमें इनका विशेष उपयोग टूटी हड्डी, गोलीकी स्थिति इत्यादि निकालनेमें होता है। चर्मरोग और विशेष प्रकारके फोड़ों की चिकित्सामें भी यह उपयुक्त होती हैं। अपनी भेदन शक्तिके कारण और भी इनके अनेक उपयोग हैं जिनका विस्तृत वर्णन यहाँ देना सम्भव न होगा।

साधारण रौञ्जन किरणोंकी लम्बान १ एं० के लगभग होती है।

गामाकिरणें:—रेडियम अथवा रश्मिम् इत्यादि रश्मि शाक्तिक (Radioactive) तत्वोंसे बहुत ही छोटी लम्बान की तीव्र भेदन शक्ति वाली किरणोंका स्रोत निकलता रहता है। कृत्रिम रूपसे अभी सफलतापूर्वक यह उत्पन्न नहीं की जा सकी हैं। अभी तक यह प्रकृतिकी प्रयोग शालामें ही परिमित हैं। अभी तक इनका प्रधान उपयोग चिकित्सा शास्त्रमें हुआ है। कैन्सर नामी भयानक रोगमें यह विशेष उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इनकी तरंग लम्बान लगभग १/१० एं० के होती है। उत्पत्ति स्थान ठीक अणुके भीतर केन्द्रमें होता है।

अन्तरिक्ष किरणें :—इनका अस्तित्व हाल ही में सिद्ध हुआ है। ग्रह और नक्षत्रोंके बीचमें जो अंतरिक्ष है वहीं उनका उद्गम स्थान कहा जाता है मिलीकन इत्यादि ने देखा कि कुछ किरणें ऐसी हैं जो कई फुट मोटे सीसे के टुकड़ेको भी भेद जाती हैं। झीलोंके पेंदेमें और पर्वत शिखरों पर प्रयोग करनेसे पता चला कि यह कहाँसे आ रहीं हैं। इनकी उत्पत्तिकी कथा बड़ी विचित्र है और उस पर मनन करनेसे आभास होता है कि हम जगन्नियन्ताकी सृष्टिके एक छोर पर आ पहुँचे। इससे परे और प्रकाश मिलना असम्भव सा प्रतीत होता है।

यह तो सभी को मालूम है कि तत्व आजकल ऋण और धन विद्युतके बने माने जाते हैं। जिस प्रकार मकान ईंट पर ईंट रख कर बनाये जाते हैं उसी प्रकार तत्व भी ऋण और धन विद्युत की ईंटों—इकाइयोंसे बनते हैं। पर इन ईंटोंमें एक विशेषता है; वह यह कि इस ईंटके और छोटे भाग नहीं हो सकते। सबसे सीधी गठन उदजनके परमाणुकी है—एक धन विद्युतका भारी केन्द्र और उसके आस पास जैसे सूर्य के चारों ओर पृथ्वी घूमती है उसी प्रकार एक ऋणाणु धन विद्युतके केन्द्रके चारों ओर घूमता है। और तत्वोंके परमाणु इसी प्रकारके अनेक इकाइयोंके बने माने जा सकते हैं इसलिये यदि उदजनका परमाणुभार १ मान लिया जाय तो प्रत्येक परमाणु भार पूर्ण संख्यक ही निकलना चाहिये। प्रयोगोंसे प्रतीत हुआ कि परमाणुभार पूर्ण संख्यासे कुछ कम होते हैं। उसका कारण यह बतलाया गया कि जिस समय धन और ऋण विद्युतके कणोंसे तत्वोंके परमाणु बन रहे थे कुछ पदार्थ प्रकाशमें परिवर्तित हो गया। अंतरिक्षमें परमाणुओं की उत्पत्ति या विनाश चल रहा है और इस प्रकार पदार्थका नाश हो यह अन्तरिक्ष किरणें बनती हैं। यह विज्ञान की सबसे आश्चर्यजनक खोज है और दार्शनिक विचारों पर इसका बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ेगा।

अन्तरिक्ष किरणों की तरंग लम्बाई लगभग $\frac{१}{१००००००००००००००}$ श० मी० होगी।

अब हम प्रकाशकी उच्च तरंगोंकी ओर अग्रसर होंगे। दृष्य प्रकाशके लाल सिरेसे आगे परालाल आता है। इन किरणोंमें तापगुण अधिक होते हैं। यह सिद्ध किया जा चुका है कि इनकी उत्पत्ति परमाणुओं से है और इनके अध्ययनसे उन्हींकी अन्तर-रचनाके विषयमें ज्ञान होता है। हाल ही में परालाल किरणों का उपयोग कोहरेमें इशारे भेजनेके लिए हुआ है। वैसे इनका कोई विशेष औद्योगिक उपयोग नहीं है।

परालाल किरणोंकी तरंग लम्बाई जब अधिक हो जाती है तब वह बेतारकी तरंगोंकी श्रेणीमें आ जाती हैं। बेतार की तरंगोंकी जो बेतारके उपयोगमें आ रहीं है तरंग लम्बाई १ मीटरसे लेकर ६००० मीटर या इससे अधिक है। अर्थात् मीलों लम्बी तरंगे भी उसी बिरादरी की हैं जिसकी कि अन्तरिक्ष किरणें। बेतार की किरणें वैद्युत-चुम्बकीय रीतियोंसे उत्पन्नकी जाती हैं और अणु या परमाणु प्रत्यक्ष रीतिसे उसमें भाग नहीं लेते। एक तरंग लम्बाई ऐसी भी है जिस पर परमाणुओं द्वारा भी तरंगे बन सकती हैं और कृत्रिम रीतिसे भी। इस ओर प्रयोग हुए हैं और दोनों छोरोंको मिला दिया गया।

हमने संक्षेपमें प्रकाशका अभी तक आविष्कृत चित्रपट देख लिया। इस कुलमें हम केवल चर्म चक्षुओं द्वारा केवल जरासे भागसे परिचित हैं। इसीको ध्यानमें रख आचार्य जगदीश चन्द्र बोस ने एक बार कहा था कि "हम प्रकाशके महासागरमें अन्धे हैं"। यह कथन उपयुक्त है पर मानव जाति ने ज्ञान चक्षुओं द्वारा सारे सागर का परिचय पा लिया है, यही नहीं गहराईमें से रत्न भी निकाले हैं।

क्वाण्टम सिद्धान्त

पदार्थ और प्रकाश की मुठभेर

हमने ऊपर देखा कि प्रकाशका तरंग सिद्धान्त कितना सफल हुआ। इसीकी नींव पर प्रकाश सम्बन्धी ज्ञानकी आशातीत वृद्धि हुई। अनूठी २ बातें आविष्कृत हुईं और समझीं गईं। इस आधार पर भविष्य कथन भी सत्य हुए। परन्तु इसकी जड़ भी हिलने लगी। बीसवीं सदीके आगमनके साथ प्रकाशके भाग्याकाशमें से काले २ बादल उमड़ पड़े।

यह तो सभीको ज्ञात है कि गरम करने पर लोहा लाल हो जाता है। इस समय इसका तापक्रम ५२५° श के लगभग होता है और ४'८८° श तक इसका यही रंग रहता है। यदि तापक्रम बढ़ाते जाँये तो कम तरंग लम्बाईका प्रकाश निकलने लगेगा १३००° श पर पोला सा प्रकाश निकलता है और २५००° श पर श्वेत प्रकाश निकलने लगता है। सन् १८९० ई०के लगभग कुछ वैज्ञानिक इस प्रकाशका अध्ययन करने लगे। अब प्रकाश और तापका क्या सम्बन्ध ? एक वस्तुको गरम करने पर उसमें अणुओं और परमाणुओंकी हलचल बढ़ जाती है इसके फल स्वरूप प्रकाश निकलता है। साधारण तरंग सिद्धान्तसे जब एक तापक्रम पर कितना और कैसा प्रकाश निकलेगा यह जाननेकी चेष्टा की गई तो पाया गया कि सिद्धान्तसे जो फल आता था वह प्रयोगसे नहीं। इसलिये वैज्ञानिकों ने सोचा कि सिद्धान्तमें ही कुछ फेरबदल आवश्यक है। बहुत गहरे अध्ययन और लम्बे प्रयोगोंके पश्चात् प्लंकने यह सिद्धान्त संसारके सामने रखना पड़ा कि प्रकाशके एक निश्चित परिमाणके कण होते हैं। जब प्रकाश उत्पन्न होगा या शोषित होगा तो इसी कणके रूप में। यदि उस प्रकाश रश्मिकी भूलन संख्या 'न' है तो उसके एक कणमें सामर्थ्य होगी स×न। वहां 'स' प्लैंकका स्थिर गुणक कहलाता है। इसी भूलन संख्याके प्रकाशकी इससे कम पुड़िया न बनेगी।

उस समयके लिये तो यह एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त था पर आइन्सटाइन ने इसके पक्ष में ऐसे सबूत दिये कि वैज्ञानिक संसारको इसका समर्थन करना पड़ा।

यह था प्रकाश-वैद्युत्-प्रकाश (Photo-electric Effect) इसका अस्तित्व हर्जको ज्ञात हुआ और रिघी, हालवेख और लेनार्ड ने इस पर और प्रयोग किये। पर यह क्या है? जब पराकासनी प्रकाश एक धातु—मान लीजिये एक जस्तके टुकड़े-पर पड़ता है तो इस धातुमेंसे ऋणाणु निकलने लगते हैं और इस कारण यह धन विद्युतसे भर जाती है (साधारण अवस्थामें धातुमें ऋण और धन विद्युत बराबर परिमाणमें है पर ऋणाणुओंके निकलनेके कारण धन विद्युत अधिक हो जाती है)। लेनार्ड ने इन ऋणाणुओंकी गतिका अन्दाज़ा किया पर बड़ा आश्चर्यजनक फल मिला। सोचा यह था कि ऋणाणुओंका वेग प्रकाशकी तीव्रता पर निर्भर होगा पर यह नहीं हुआ। प्रयोगों ने सिद्ध किया कि ऋणाणुओंका वेग प्रकाश की भूलनसंख्या पर निर्भर है न कि तीव्रता पर। यदि एक तरंग लम्बाईका प्रकाश धातु पर ताल द्वारा केन्द्रित कर दिया जावे तो प्रति सेकिण्ड अधिक ऋणाणु निकलने लगेंगे पर उनका वेग वही रहेगा जैसा कि क्षीण प्रकाशमें। एक और भी बात थी कि प्रत्येक धातु के लिये एक ऐसो भूलन संख्या निश्चित थी जिससे नीचे भूलनसंख्या होने पर ऋणाणु नहीं निकलता था।

इस परीक्षाफलको समझाना तरङ्ग सिद्धान्तके लिये असम्भव सा प्रतीत हुआ। पर आइन्स्टाइन ने प्लेङ्कके प्रकाश क्काण्टम—या कण सिद्धान्तकी सहायतासे इसका सन्तोषजनक विवरण दिया। यदि प्रकाश सामर्थ्यकी पुड़ियोंके रूपमें चलता है या शोषित होता है तो फिर जहां एक ऋणाणुको एक पुड़िया मिली और वह धातुसे चला। इसलिये एक तो प्रकाश पड़तेही ऋणाणुओंको निकल पड़ना चाहिये, दूसरे यदि प्रकाश कणमें इतनो सामर्थ्य न हो कि वह ऋणाणुको बन्धन-मुक्त कर सके तो फिर ऋणाणुका निकलना असम्भव है चाहे जितना तीव्र प्रकाश हो। ध्यान रखना चाहिये कि प्रकाशकी एक पुड़ियाको दो काम करने पड़ते हैं, एक तो ऋणाणुको बन्धन मुक्त करना और दूसरे इस मुक्त ऋणाणुको गति देना। यदि प्रकाशकी पुड़ियामें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह ऋणाणुको बन्धन मुक्त कर सके तो फिर गति मिल ही नहीं सकती। इस विषय पर प्रख्यात वैज्ञानिक मिलीकन ने बड़े सूक्ष्म प्रयोग किये। सारा काम शून्य में हुआ और इसी कारण उस यन्त्रका नाम शून्यमें यन्त्रशाला रखा गया।

इसके पश्चात् एकके बाद दूसरी अनेक खोजें हुईं जिन्होंने क्काण्टम सिद्धान्तको और भी महत्व दिया। आपेक्षिक तापके सिद्धान्तकी कठिनाइयोंको दूर करनेमें डिबाई ने इसकी सहायता ली पर १९१३में इसका स्वर्णयुग आया। बोह्र नामके एक युवक ने आणविक रश्मि चित्रको क्काण्टम सिद्धान्त-की सहायतासे समझाया। उदजनके रश्मि-चित्रमें कुछ रेखायें होती हैं और कुछ तत्वोंमें तो असंख्य रेखाएं होती हैं। बोह्र इनही का तत्व ढूंढ़ निकालनेकी चेष्टा कर रहा था। उसने कहा कि ऋणाणु धन विद्युतीय केन्द्रके चारों ओर घूम रहा है। मान लीजिये वह किसी कारण उत्तेजित हो तो यह नहीं के केन्द्र से कुछ दूर और सरक जाय। यह सरकनेकी क्रिया निर्धारित है। क्काण्टम सिद्धान्तानुसार कुछ विशेष मण्डल ही ऋणाणुके लिये खुले हैं और इनहीको उछल कूद से रश्मि रेखाएं निकलती हैं। किसी दूसरे लेखमें इस विषय पर विचार करेंगे।

इस क्षेत्रमें क्काण्टम सिद्धान्त बहुत सफल रहा। उदजन का रश्मि चित्र तो सुलझ गया और सापेक्षवाद और क्वाण्टम ने मिल कर ऐसी २ बारीकियां सुलझाईं कि सारे वैज्ञानिक संसारको इसका लोहा मानना पड़ा। संसारकी सब प्रयोग शालाएं इस ओर प्रयोग करने लगीं और कुछ ही वर्षोंमें अणुओंकी आन्तरिक रचनासे हम लोग परिचित होगये। जहां जहां क्काण्टम सिद्धान्तका प्रयोग किया गया साधारणतः सफलता ही हुई।

प्रसिद्ध अमेरिकन वैज्ञानिक काम्प्टन ने प्रकाश और पदार्थकी मुठभेड़ पर कुछ प्रयोग किये और

जो फल निकले उनसे क्वाण्टम सिद्धान्तकी सत्यता स्थापित हो गई।

यदि एक स्थिर लोहेकी गेंदसे दूसरी गेंद आकर टकराये तो क्या होगा ? चलित गेंदकी सामर्थ्य कम हो जायगी क्योंकि अब तक स्थिर गेंद कुछ शक्ति लेकर चलने लगेगी । यही काम्प्टन असरमें होता है । प्रकाश क्वाण्टम आकर एक ऋणाणुसे टकराता है जिसका फल यह होता है कि क्वाण्टमकी सामर्थ्य कम हो जाती है अर्थात् भूलन संख्या कम हो जाती है और ऋणाणुको गति मिलती है। प्रयोग रौञ्जन किरणोंसे किया गया और देखा कि ऋणाणुसे मुठभेड़के पश्चात् राञ्जन किरणें 'नरम' हो गई थीं अर्थात् उनकी भूलनसंख्या कम हो गई । प्रयोगके सब फल क्वाण्टम सिद्धान्तसे समझना बहुत ही सरल है।

क्वाण्टम सिद्धान्तके पक्षमें दूसरा प्रमाण है रमन असर। इस पर विस्तृत लेख विज्ञानके पिछले अङ्कोंमें निकल चुका है। प्रकाश क्वाण्टम एक परमाणुसे टकराता है और परमाणु उससे कर रूप कुछ सामर्थ्य लेकर प्रकाशकी भूलन संख्या कम करके नये रंग की सृष्टि करता है।

क्वाण्टम सिद्धान्तका उपयोग यहीं तक परिमित नहीं, खरबों मील दूर नक्षत्रों और ग्रहोंमें भी इसके प्रयोगसे सफलता मिली। भौतिक वैज्ञानिकों को सारी सृष्टि आजकल सर्वव्यापी क्वाण्टम और ऋणाणुमय दीखती है।

पर आजकल वैज्ञानिकबड़ी दुविधामें हैं। एक तो तरंग सिद्धान्त, व्यतिकरण, बर्तन (diffraction) दिग्प्रधानता (polarisation) इत्यादिको समझानेमें समर्थ है। उधर जहां पदार्थ और प्रकाशकी मुठभेड़ होती है वहां ऐसा प्रतीत होता है कि क्वाण्टम ही काम कर रहे हैं। दोनोंमें से न तो किसी सिद्धान्तको छोड़ सकते हैं न किसीको पूर्ण रूपसे ग्रहण कर सकते हैं। इस समय गज ग्राहकी सी कहानी है—प्रत्येक अपनी २ गलीमें शेर है। आधुनिक खोजोंके हिसाब से तो क्वाण्टम सिद्धान्त ही सर्व मान्य हो रहा है। अणु परमाणु और ऋणाणुके लिये तो प्रकाशका अणु अतीव आवश्यक है । दोनों सिद्धान्तों को विचित्र रूपसे मिलाया गया है । हम प्रकाश कण भी कहते हैं और साथ ही साथ उसकी भूलन संख्याकी भी बातचीत करते हैं। कणकी भूलन संख्या क्या हो सकती है ?

क्वाण्टम और तरङ्ग सिद्धान्तको मिलानेकी चेष्टा कुछ समय से की जा रही है । इसको कहते हैं 'पदार्थका तरङ्ग सिद्धान्त'। आजकल हम लोगों ने कणसे प्रकाशको तरंगमें परिवर्तित किया और फिर तरङ्ग से कणके रूपमें। तरङ्गको तो हमने कणका रूप दिया, साथ ही साथ पदार्थ या ऋणाणु और धनाणु जिनको हम सदा कण रूप मानते थे उनको तरंग रूप दे दिया । पदार्थकी भी अब तरङ्गके रूपसे कल्पना करते हैं या यों कहिये कल्पना करते ही नहीं । यह रूप कल्पनातीत है केवल गणितके समीकरणों द्वारा कागज़ पर समझाया जा सकता है । पदार्थके साथ संयोजित तरंगोंकी तरंग लंबान भी निकाल ली गई है और उन्हीं रीतियोंसे जिनसे कि रौञ्जन किरणोंकी निकाली गई। हम लोग तरङ्गोंके समूह हैं, क़लम तरङ्गोंसे बना है और संसारकी सारी वस्तुएं सूक्ष्म से सूक्ष्म रूपमें तरङ्ग हैं और समूह रूपसे कण। यही प्रकाशके लिये ठीक है। सच तो यह है कि आजकल पदार्थ और प्रकाशको हम लोग भिन्न २ नहीं मानते, केवल सामर्थ्यके दो भिन्न २ रूप, पदार्थ तो प्रकाशमें परिवर्तित हो जाता है जैसा कि अन्तरिक्ष किरणोंसे प्रकट है पर प्रकाश पदार्थ में बदलता हुआ अभी नहीं पाया गया।

प्रकृति ने यह पहेली मानव जातिके सामने रक्खी है। कई बार ऐसा प्रतीत हुआ कि इस भूलभुलैयाका रहस्य निकल आया पर वह अनुमान ही अनुमान था। एक आविष्कार ने उथल पुथल कर दी, फिर तो 'मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों २ दवा की'।

और प्रकृति मुसकरा कर एक बार फिर वही पहेली मनुष्यको चिढ़ा कर रखती है।

प्रकाश क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर कभी निश्चित रूपसे मिल सकेगा इसमें सन्देह है।

ताण्डवनृत्य

[लेखक 'विज्ञानी']

रामलाल 'विज्ञानी'से तो आप लोग परिचित होंगे ही। यथा नाम तथा गुणके सिद्धांतानुसार विज्ञान शास्त्रको तो आपने ऐसा मथा है जैसे कोई दहीको मथा करता है और उसका मक्खन निकाल कर उसका जीवनमें भली प्रकार प्रयोग करते हैं। संसारकी छोटी मोटी जितनी भी बातें इनके सामने आती हैं सभीको वैज्ञानिक आधार पर निर्मित होना सिद्ध करना ही इनका मुख्य उद्देश है। हाँ, बहुत सी बातें ऐसी भी हैं जिनका कोई वैज्ञानिक आधार विज्ञानी महाशयको मिलता ही नहीं, उसमें आप विश्वास भी नहीं करते पर अधिकांशतः जितनी भी प्रणालियां भारतवर्षमें प्राचीनकालसे चली आई हैं उन सभीका वैज्ञानिक आधार आपने खोज निकाला है। जीवनके भूत-प्रकरण पर भी विचार करनेमें आपने समुचित समय नष्ट किया है, जिसके फलस्वरूप ही उस विषयमें भी आपके विचार बहुत ही स्पष्ट एवम् कटे छुटे हो गए हैं और अब इनको यही इच्छा रहती है कि इस विषय पर और लोगोंको कुछ न कुछ दर्शाया जावे।

एक समय की बात है कि विज्ञानीजीको अपने मित्रों सहित एक मकानमें दस बारह मास रहनेका अवसर प्राप्त हुआ। अब तो आपको बड़ी ही उत्कण्ठा हुई कि उसी गहन विषय सम्बन्धी कुछ प्रयोग किये जावें। नीचे का मकान खाली पड़ा रहता था और यह सभी लोग दूसरी मंजिल पर रहते थे, तीसरी मंजिल पर भी एक कमरा था और वहीं विज्ञानीजीका कार्य्यालय था। सभी पटाव साधारण खप्रैल हीका था और विज्ञानीजीका कमरा ऐसा था कि उससे कुछ कष्ट उठाकर सभी छतों पर घूमा जा सकता था। इस मकानमें भूतोंके बसनेकी आख्यायिकाएं भी बहुत कुछ प्रचलित थीं पर बात केवल और वास्तविक यही थी जिसका मकान था उससे और इस मकानके पड़ोसियोंसे मैत्रीका अभाव था। यह लोग उसमें प्रेस रखनेको थे पर कुछ न कुछ कारणवश उनकी यह इच्छा सफल न हो सकी। तभीसे उन्होंने प्रेसका अपभ्रंश करते करते प्रेत कर दिया। जब ही कोई नया किरायदार आता तभी उसे इसी विषयकी अनेकानेक बातोंसे भड़काने लगते थे। खैर! मकानमें आनेसे पहिले ही ऐसी बातोंकी भङ्कार विज्ञानीजी एवम् उनके मित्रोंके कानोंमें भी पड़ीं। और लोग तो बहुत घबड़ाए पर विज्ञानीजीके ढाढ़स बंधाने पर तथा बहुत कुछ समझाने बुझाने पर और अन्ततोगत्वा यह विश्वास दिलाने पर "कि यदि कोई विशेष बात होगी तो तुरन्त ही किसी दूसरे मकानका प्रबन्ध करलेंगे, अभी तो चलना ही है क्योंकि कोई दूसरा मकान मिलता नहीं है और कार्य्य आवश्यक है" सब लोग उस मकानमें जाने को उद्यत हुए थे और फिर गए थे। जिस दिन यह लोग गए थे तो देर हो जानी बहुत सम्भव एवम् साधारण ही थी। कुछ रात्रि हो गई थी और दुमंजिले पर नलसे पानी न पहुँचनेके कारण सबको जल लेने नीचे जाना पड़ा। वह भाग बड़ा अंधेरा था ही और नीचे के लम्बे चौड़े कमरे कई वर्षोंसे खाली पड़े हुए होनेके कारण और भी भयावने लगने लगे थे। इन लोगोंके हृदय तो पहिले हीसे कुछ कमज़ोर हो गए थे, नलके निकटकी एक ओर लालटैनके मन्द प्रकाशमें कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई दिया जिसके दो मोटी मोटी टागें पृथ्वी पर लम्बरूप खड़ी हैं और कमरका ऊपरी भाग कुछ है ही नहीं, केवल लम्बा पतला सा सर है। बहुत हिम्मत करते हुए देखने पर भी यही धारणा बढ़ती गई और जल जो कुछ जमा हुआ था या न हुआ था, उसीको लेकर अर्द्ध चेतनामय ऊपरको आकर और सब लोगोंसे कहा कि भाई, लोग बात ठीक ही कहते थे, किसी अन्य मकानका ही प्रबन्ध करना पड़ेगा, कमसे कममें तो रहूँगा ... खैर कुछ नहीं, विज्ञानीजीने लालटैन उठाई और सब लोग भी साथ चले।

जाकर देखा तो कुछ नहीं, केवल प्रेस था जिसमें पत्र इत्यादि दबाए जाते हैं। उसके चूड़ीदार हएडेका निकला हुआ ऊपरी भाग ही किंचित्स्थूल होनेके कारण ही सरका आभासरूप दृष्टिगत होता था। सबका संशय इस समय तो मिट गया पर अब वह व्यक्ति जिसने इसका पूर्वरूप देखा था कितनी भी कल्पना करने पर इस प्रेसमें वह पूर्वरूप न देख सका जो उसने इससे पूर्व देखा था और यद्यपि सब लोगोंको और सबके साथ उसका भी शंका-समाधान समुचित रूपसे हो गया पर इसके हृदयमें यह निर्बलता बनी ही रही कि नहीं यह बात नहीं है, प्रेस तो है ही पर उस समय अवश्य ही प्रेसके पीछे प्रेत था। प्रेसका यह रूप हो ही नहीं सकता है। और वास्तवमें है भी ऐसा ही। बहुधा हमलोग किसी अँधेरी रातमें रस्सीको देखकर डर जाते हैं और यह भय इस मात्रा तक पहुँच जाता है कि दृढ़तासे देखने पर भी उसी रस्सीमें सर्पकी चालका उसके हिलने डुलनेका भी स्पष्ट दृष्य दीखने लगता है पर जब एक बार ज्ञान हो जावे कि यह रस्सी है तब उसमें कोई भी कल्पना शक्ति उन कल्पनाओंका दर्शन नहीं करा सकती जो पहिले हो चुकी हैं। किसी भी वस्तु या दृष्यका जब तक भली प्रकार ज्ञान न हो, तब तक यदि उसमें कोई अशुद्ध कल्पना हो जावे तो बस फिर ज्यों ज्यों और विचार करोगे वही धारणा अधिकाधिक प्रमाणोंसे पुष्ट ही होती जावेगी। उसी दृष्यमें उस कल्पित दृष्यका ही रूप, स्वरूप, चाल, ढाल, रंग इत्यादि सभी बातोंका आभास बढ़ता ही जावेगा। पर यदि एक बार स्पष्ट ज्ञान हो जावे तो फिर कितनी भी चेष्टा करो यह कुछ भी दृष्टिगत न होगा। जब कल्पनाका आधार ही न रहेगा तो फिर हो भी कैसी सकती है।

——०——

२

——०——

एक दिनकी बात है कि विज्ञानीजी किसी आवश्यक-कार्य्यवश कहीं बाहर गए हुए थे। ऋतु वर्षाकी थी और आकाश मेघमय हो रहा था। यद्यपि जलवृष्टिकी कोई आशा न थी तथापि कुछ वर्षा हो ही तो गई और सायंकालको तो वर्षाकी हलकी बूँदोंकी झड़ी ही बंध गई। विज्ञानी जीने लाख प्रयत्न किए पर वह जलदी न आ सके और अँधेरा हो ही तो गया। घर पर पहुँचे तो इनको चारों ओर सन्नाटा ही मालूम पड़ा। सभी लोग भोजनादिसे निवृत्त होकर एक कमरेमें बैठ गोष्ठी कर रहे थे। विज्ञानी जी सीधे अपने कमरे में जाकर कपड़े आदि उतार कर गए और भोजन कर आए। ऐसा करनेमें उन्हें उस कमरेके सामनेसे होकर जाना पड़ा जिसमें वह लोग बैठे हुए थे पर एक तो वर्षाकी बूँदोंकी खप्रैल पर टपरटपरकी झंकार, दूसरे गोष्ठीमें संलग्नता, तीसरे दरवाज़ेका बंद होना और फिर विज्ञानी जीका बड़ी सावधानीसे जाना, किसीको इनका ध्यान तक न आया और यह भी भोजन कर चुकने पर बर्त्तन ठीक उसी भाँति बन्द कर रख आए जिस प्रकार रक्खे हुए थे और ऊपर आकर फिर कपड़े पहिन कर अपने मित्रोंको पुकारा और जाकर उसी गोष्ठीमें सम्मिलित हुए। कुछ समय पश्चात् भोजनकी बात चली तो आपने कहा कि तुम लोगोंने तो मेरे लिये रक्खा ही नहीं है—कुछ लोग तो बहुत चकित हुए और कुछ कुछ कुछ क्रुद्ध, पर अन्ततोगत्वा जब एक व्यक्तिने जाकर देखा तो वास्तवमें भोजन वहाँ न था। अब तो सब लोग बहुतही आश्चर्य्यमें पड़ गये और अनेकानेक कल्पनाएँ करने लगे। किसीने बिल्लीको दोष लगाया पर वाह, बिल्ली कैसे सब रोटियाँले जा सकती है जबकि वर्त्तन उसी भाँति बन्द रक्खे हैं जैसेकि रक्खे गये थे। किसीने कहा कि विज्ञानीजी खा चुके पर यह कैसे सम्भव हो सकता है, यह तो अभी आये हैं कपड़े भी नहीं उतारे फिर थाली भी धुली हुई साफ़ रक्खी है, इन्होंने खाया किसमें और फिर यदि यह आते तो आते तो इधर ही से, हम लोग देखते अथवा सुनते नहीं······इत्यादि······

इत्यादि ...... किसीने फिर वही पूर्व परिचित भूतोंकी बात छेड़ दी और किञ्चिद् वादविवाद के पश्चात् यही बात सर्वमान्य रही। आज प्रथमातिप्रथम सब लोगोंने सप्रमाण उस गृहमें प्रेत वासको निश्चय रूपसे निश्चय माना।

सोने जानेके बाद अभी थोड़ी देर हुई थी और सभी लोग सुषुप्तावस्थामें ही थे कि रामलालने अपने मकानसे ही कुछ घुंघरू तथा एक थाली घनघनाना आरम्भ कर दिये। रुक रुक कर कभी इस कोने कोनेसे और कभी उस कोनेसे, कभी धीरे कभी ज़ोरसे आप इस प्रकार घनघनाते थे कि मालूम हो कि कई व्यक्ति घुंघरू पहिने हुए इधर उधर चल रहे हैं। फिर आपने बाहर निकल कर एक थालीके चारो ओर घुंघरू बाँध कर और थालीमें एक डोर बांध कर एक ओरकी खप्रैलके दूर वाले सिरे पर बड़े झड़ामसे फेंका और फिर उसे डोरी द्वार घनघनाते हुए खींच लिया। नीचे सोने वाले बेचारे सन्न रह गए। ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई झड़ामसे छत पर उतरा हो और क्रीड़ा कर रहा हो। फिर विज्ञानीजीने यही किया दूसरी छतकी ओर भी की। इस प्रकार उन्होंने अपने समस्त मित्रोंको भली भांति रात भर छकाया। बेचारे कुछ तो डर ही रहे थे फिर सायंकालकी दुर्घटनाने तो उन पर वज्रपात ही कर दिया, कोई भी हिलाडुला नहीं। सभी चुपचाप ज्योंके त्यों पड़े रहे और विचार कर रहे थे कि बस अब शीघ्रातिशीघ्र किसी दूसरे घरका प्रबन्ध करना चाहिए और यहां भी कल ही हवन होना उचित है। किसीने कुछ विचारा, किसीने कुछ। राम राम कहते हुए किसी प्रकार वह दिन कटा। प्रभात हुआ और सब लोग फिर अपनी अपनी दिनचर्य्यामें लग गए। रातकी बातें सबको भूल गईं। इधर विज्ञानीजीने क्या किया कि भोजनालयसे पृथक् अपने ही कमरेमें गुप्तरूपसे वही भोजन तैयार किया जो कि भोजनालयमें बना था और सायंकालको टहलने निकल गए ताकि उनको सब लोगोंके भोजन कर चुकनेके पश्चात् अवसर मिले। यही हुआ। जब वह आये तो सभी लोग खाचुके थे और इनका भोजन इनकी प्रतीक्षा कर रहा था। यह जो भोजन करने गए तो चुपकेसे अपनी रोटियां भी जाकर मिला दीं और फिर कहने लगे कि आओ, सब लोगो! जल्दी आवो, मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। जब सबने कहा कि हम लोग तो खा चुके हैं तो आप बोले कि वाह, यह सब भोजन फिर क्या मेरे लिए ही है, मैं आदमी न हुआ, दानव हुआ। सबने आकर जो देखा तो वास्तवमें वहां कोई लगभग उतनी ही रोटियां थीं जितनी कि कुल बनी थीं। यह देख कर सब भौचक्के रह गए। कल्पना-सागरका मन्थन करने पर भी यही निश्चय रहा कि बस अवश्य ही इस गृहमें प्रेतवास है, वही कभी तो खा जाता है और कभी रख जाता है। जब और कहीं शरण नहीं मिलती है तो मनुष्य ईश्वरकी ओर झुकता है। यद्यपि यह लोग नास्तिक हो रहे थे—जैसे कि प्रायः सभी आजकलके पढ़े लिखे लोग होते हैं—और भूतप्रेत मंत्र तंत्रका तो किञ्चित् मात्र भी विश्वास न करते थे पर इस समय सारे वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्र अथवा अदालत मुन्सिफी जब निष्प्रभाव प्रतीत हुए तो आस्तिकताके अतिरिक्त और कोई आश्रय न रहा। दिन होता तो शायद किसी ओझा आदिकी भी बन पड़ती पर रातमें कहां जावें। जिसके पास हनुमान चालीसा था उसने उसका पाठ किया और जिसे जो कुछ कर मिला वह किया। पर जब हृदयमें ढाढ़स न बंधा तो सब लोग सिनेमा देखने चल दिये। दूसरा दृष्य ही देखनेको मिलसकता था, इस कारण नौ बजे सब लोग उधर चल दिए, केवल वैज्ञानिकजी अपने कामोंमें और नीचे दो व्यक्ति जो जल्दी ही सो गये थे अथवा बेहोश हो गये थे रह गये। जब सब लोग किसी विषयकी बात करते थे तो वैज्ञानिकजीकी वही दशा हो जाती थी जो वायुके समग्र पत्तोंकी होती है और यद्यपि यह सब उन्हीं की करनी थी पर वह इस रूपसे वार्तालाप करते कि किसीको कुछ स्पष्ट

न होता। जब सब लोग चले गये तो इधर उन्होंने क्या किया कि एक व्यक्तिके पास जाकर, जो दरवाज़ेके पास ही सो रहा था, किवाड़की आड़में खड़े हो गए और पहिले उसका सीना दबाया, फिर गला दबाने लगे। बेचारा बेहोश तो था ही उसे कुछ पता न चला। केवल दबनेका अनुभव हुआ और कुछ बोल भी न निकल सका। फिर इन्होंने एक बार बड़े बलसे दबाकर और फिर नाकको हिलाया। तत्पश्चात् शीघ्र ही उसे छोड़ कर अपने कमरेमें आकर सो रहे। उधर जब उसे होश आया तो बेचारा छींक कर उठा और भागा हुआ अपने साथीके पास गया। उसकी घिग्घी बँध गई थी और मारे डरके कुछ बोल न सका। जिधर ही देखता उधर ही उसे कोई खड़ा दीखता था। दोनों ही व्यक्ति डरे हुये विज्ञानीजीके पास गये। उन्होंने बड़ा आश्चर्य माना और कहा कि देखो मैं यहां अकेला ही रहता हूँ और कुछ नहीं दिखाई पड़ता। वहाँ क्या बात है, अच्छा लो मैं जाता हूँ। वहां अकेला सोऊँगा तुम लोग यहीं रहो, यहां कुछ नहीं है और फिर मैं तो एक मंत्र भी लिखे जाता हूँ और एक क्रिया भी किए जाता हूँ जिससे यहां किसीकी हिम्मत नहीं पड़ सकती है। ऐसा कह कर और कुछ करकरा कर विज्ञानीजी नीचे जाकर सोए। इन लोगों को कुछ आश्रय जो मिला तो डर दूर हो गया और सो गए। उधर जब उन लोगोंका सिनेमासे लौटनेका समय हुआ तो विज्ञानीजीने साइकिल उठाई और जाकर रास्तेके उस भागमें स्थित एक अत्यन्त ही जीर्ण पुराने वृक्षके नीचे खड़े हो गए जो बिल्कुल सुनसान और अँधेरा था। जब वह लोग आए तो यह सानुनासिक रूप मिनमिनाने लगे "अवधबिहारी! अवधबिहारी" (यह उन लोगोंमेंसे एक व्यक्तिका नाम था) यह सुनते ही सबके दिल दहल गए। सबने अपनी अपनी साइकिलें तेज़ कीं। तब विज्ञानीजी चिल्लाकर कहने लगे, "अरे तू बोलत नाहीं, हमार रोटियां खूब खाईं। भलो चहउ तो उतरि पर" सुनते ही रहे सहे प्राण भी उड़ गए। और भी स्पीड अप की थी कि एक व्यक्ति, न जाने अंधेरेमें किसी ईंटसे टकरा जानेसे या बहुत घबराहट एवम् बेहोशीके कारण अथवा बहुत ज्यादा स्पीडअपके कारण, अपनी साइकिल परसे लौट पड़ा। अब तो सबके दिलमें धक हो गई, सब उतर पड़े उसे, सँभाला सुभूंला और होश या बेहोशमें आगे बढ़े। किसीको कुछ पता नहीं कि कहां जा रहे हैं, कहां नहीं। इनके निकल जाने पर विज्ञानीजीने तो झट साइकिल उठाई और दूसरी ओरसे घर आए। यह लोग भी राम रहीम करते घर पहुँचे तो बेहोश ही हो गये। विज्ञानीजीने प्रातःकाल ही उन्हें अच्छी वस्तुएँ सुंघाईं और होशमें लाए। सबने अपनी अपनी कथा कही। विज्ञानीजीने भी कहा कि हां भाई है अवश्य ही यहां कुछ न कुछ, जब मैं ऊपरसे नीचे सोने आया तो ये भूत चारों ओर बैठे गोष्ठी कर रहे थे पर मुझसे क्या बन पड़ती। कोई पांच वर्ष हुए मेरे घरमें बहुत भूत प्रेत थे, मेरे भाई बहिन सभीको बहुत तंग करते थे, चारों ओरके ओझे बुलाए गए थे और सहस्रों रुपया नष्ट किया गया। तब कुछ ठीक हुआ। तभीसे मैंने भी उन ओझाओंमेंसे एकको गुरू बनाया और दो चार मास्टर क्रियाएँ सीख लीं। तबसे अब तक मैंने कोई मामला नहीं देखा। आज फिर अवसर आया है। तुम लोग घबराओ नहीं, मैं तो अवसर ढूँढ़ ही रहा था कि तुम लोगोंको कुछ न कुछ दिखलाऊँ और यहाँ वास्तवमें मिल ही गए। आज ही सबको भून कर रख दूंगा। सबको हाथ बाँध कर हमारी सलाम करनी पड़ेगी और यदि हमारे लिए प्रतिदिन आवश्यक भोजन ला देनेका वचन न देगें तो फिर देखना उनकी क्या दशा होती है।

---o---

३

---o---

अच्छा तो आज दिखाओगे, क्या क्या दिखलाओगे?

नहीं जी, कुछ नहीं, मैंने अब अपना विचार पलट दिया है। मैं कुछ नहीं दिखलाऊँगा।

नहीं भाई, दिखलाना अवश्य, आजका आपने वायदा किया था मैंने कई व्यक्तियोंको निमन्त्रण दे रक्खा है। सभी आवेंगे, यदि ऐसा करोगे तो बेचारोंको बुरी तरह निराश होना पड़ेगा।

ओ! हो! तब तो और भी आवश्यक है कि मैं वह खेल न दिखलाऊँ, न जाने कैसे कैसे मनुष्य आवें। जो निर्बल हृदयका होगा वह तो मारे डरके अधमरा ही हो जावेगा। सम्भव है, किसीके मस्तिष्क पर इसका बहुत ही हानिकारक प्रभाव पड़े।

अजी नहीं, ऐसा निर्बल कोई भी नहीं है, फिर जब आप सब कुछ दिखला सकते हैं तो उनसे उत्पन्न हानियोंको ठीक भी तो कर सकते हो……

अच्छा ख़ैर, देखा जावेगा, कुछ भी हो मैं आज अत्यन्त जटिल नृत्य तो दिखलाऊँगा नहीं क्योंकि यद्यपि मैं उसको अपने वशमें रखता हूँ पर फिर भी यदि किसीके हृदय अथवा मस्तिष्क पर उसकी निर्बलता के कारण ही कुछ प्रभाव पड़ जावे तो उसे तो ठीक नहीं कर सकता हूँ।

इसी प्रकार विज्ञानी अपने मित्रोंसे वार्त्तालाप करते जारहे थे। आपने आज ताण्डवनृत्य दिखलानेके लिए कुछ व्यक्तियोंको निमन्त्रण दे रक्खा है। दो तीन बजेसे आपने अपने कार्य्यालयमें किसीको जाने नहीं दिया है। बड़ी बड़ी विशेष तैयारियाँ हो रही हैं। इसी प्रकार बात चीत करते करते उनका कार्य्यालय भी आ गया और यथेष्ट समय भी हो गया था। सबका एक ओर घोर अन्धकारमें बैठनेका स्थान था और विज्ञानीजी अपने मंच पर जा विराजे। किसीको कुछ दिखाई न दिया। अब कुछ ही देरमें लोगोंने देखा कि कुछ चमकदार प्रकाशकी लकीरें उठीं और उन्होंने एकदम चारो ओरसे लम्ब रूप खड़ी होकर एक दरवाजासा बना दिया। फिर एक खोपड़ी अपने बड़े बड़े दांतोंको फैलाए हुए और चपटीनाकके साथ छत परसे उतरती दृष्टिगत हुई और धीरे धीरे आकर दरवाज़ेकी ऊपर वाली लकड़ीके बीचमें जम गई। देखने वालोंको लकड़ी इत्यादि कुछ न दिखलाई पड़ती थी, केवल प्रकाशका ही स्वरूप दिखलाई पड़ता था। आश्चर्य्य तो सभीको बहुत मालूम हुआ परन्तु किसी किसीको आश्चर्य्य मिश्रित भय भी। इसके पश्चात् एक गर्दन नीचेसे उठी और उस सरके नीचे जम गई और फिर इस गर्दनके दाई बाई ओरसे एक एक हड्डी आई और गर्दनमें लग गई जिससे कन्धा बन गया। इसी भांति प्रकाश रूप ही हाथोंकी एक एक हड्डी नीचेसे उठ उठ कर अपने स्थानमें जम गई और आदमीका पूरा स्वरूपसा ही प्रकाशमें बनने लगा। शीघ्र ही सीना और रीड भी, प्रकाश रूप ही, न जाने कहांसे आकर अपने स्थान पर जम गया और उसमें टागोंकी हड्डियां जुड़ने लगीं। जुड़ते जुड़ते वह सारा ही मनुष्य पूरा बन गया। पूरे दस फीटका मनुष्यका अस्थिपंजर, पूरे भारी दरवाज़ेको नीचेसे ऊपर तक घेरे हुए खड़ा था। देख कर सभी लोगोंमें कुछ न कुछ भयका संचार हुआ ही था कि उसने एक टांग आगे बढ़ाई और दांत कटकटाए। इस कटकटानेके हृदय विदारक स्वरके कान तक पहुँचते ही और टांगका बढ़ना देखते ही सभी लोग मारे डरके कांपने लगे और भाग खड़े हुए। इनका भागना देखते ही विज्ञानीजीने एक बड़ा ही विशाल हाथ (प्रकाश रूप ही) उठाया और एक भारी हुँकार देते हुए उस हाथको दरवाज़ेके दाईं ओरसे बाईं ओर तक फेरा और वह सभी हड्डियां एकाएक पृथ्वी पर गिर पड़ीं। केवल वह प्रकाशमय शीश ही अपने स्थान पर स्थित रह सका। अब कहींसे एक स्वर आया, चलो और वह शीश दरवाज़ेके बीचो बीचमें आकर जम गया। और चलो—एक और शीश केवल प्रकाश रूप ही आकर पूर्वशीशके बाईं ओर जम गया और चलो—एक और शीश आकर कुछ ऊपर जम गया। जल्दी जल्दी चलो—

बस फिर क्या था, जल्दी जल्दी सटासट सर आकर उस केन्द्रस्थित सरके चारों ओर अपना अपना स्थान लेने लगे। किसीके दांत बहुत बड़े बड़े और बाहर निकले हुए थे, किसीके दांत बीच बीचमें टूटे होनेके कारण बड़े भयानक लगते थे, किसीके एक भी दांत न था और मुँह केवल कन्द्रामय ही दीख पड़ता था।

इस प्रकार भांति भांतिके एक से एक भयानक चेहरे वहां पर उपस्थित हुए। नाक सबकी चपटी थी और आंखोंका स्थान सभीमें आंखोंसे शून्य था। एक सानुनासिक स्वर बोला—तो अब चलें ? हूं के आदेश पर चारों ओर की खोपड़ियां उस केन्द्रस्थित खोपड़ीके चारो ओर घूमने लगीं। पहिले धीरे धीरे पर शनैः शनैः उनकी गति बढ़ने लगी। कभी कभी बीच वाली खोपड़ी खिलखिला कर हँस पड़ती थी और बीचमें घूमनेवाली खोपड़ियोंमें भी मुस्कराने हँसनेका आभास होता था। डरावने दृश्य की भी कुछ सीमा होती है। कभी कभी जो सानुनासिक स्वर हो जाता था, उसे यदि कोई गर्भिणी देख लेती और सुन लेती तो शायद उसका गर्भपात अवश्य हो जाता। न जाने वह लोग कैसे हृदयको थामें बैठे रहे। देखते देखते हम लोगोंका पेट भर ही गया था और समाप्त करनेकी प्रार्थना अथवा भाग जानेका पक्का इरादा करने वाले थे ही कि एक बृहद् सींगदार राक्षसका अर्द्ध शरीर आकर इन नाचने वालोंके सन्मुख खड़ा हो गया और अपने दोनों हाथ ऊपर उठा कर हो हो करता हुआ सबको नाचता दिखलाई दिया। सब लोग बस बस करने लगे पर सबकी घिग्घी बँध गई थी और कोई स्पष्ट स्वर न निकलता था।

अपेक्षावाद

(उत्तरार्ध)

[ले० श्रीरामस्वरूप जी शर्मा एम० एस-सी०]

पिछले लेखमें हमने देखा है कि अपेक्षावाद के अनुसार मात्रा और सामर्थ्य दो भिन्न भिन्न वस्तु नहीं है परन्तु असलमें वे एक ही चीज़के सिर्फ़ दो रूप हैं। सामर्थ्यमें मात्रा होती है और मात्रा सामर्थ्यके रूपमें बदल सकती है। इन दोनोंमें इस तरहका सम्बन्ध है—

सामर्थ्य = मात्रा × स²

(स = रोशनी चाल)

सामर्थ्य और मात्राके बारेमें यह विचार आजकल भौतिक विज्ञानमें मामूली तरहसे प्रयोग किये जाने लगे हैं। ख़ास कर भिन्न भिन्न परमाणुओं की बनावट समझनेमें इनका प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक भौतिक विज्ञानके अनुसार सब तत्वोंके परमाणु उदजन केन्द्र (Nucleus, अथवा धनाणु) और ऋणाणुओंसे बने हैं। इसलिये यदि धनाणुकी मात्रा १ मानी जाय तो सब प्रकारके परमाणुओं की मात्रा पूर्ण संख्या होनी चाहिये। परन्तु प्रकृतिमें बात इससे उलटी पाई जाती है। डा० ऐस्टन ने वर्षोंके प्रयोगके बाद यह नतीजा निकाला है कि ज़्यादातर परमाणुओं का तथा उनके समस्थानिकों (Isotopes) का भार पूर्ण संख्या नहीं है। मिसालके लिये उदजन का परमाणु भार १·००८ है और हिमजनका ४ है। यह भी हम जानते हैं कि हिमजनके केन्द्रमें ४ धनाणु (Proton) और २ ऋणाणु हैं। यदि ऋणाणुओं के भार (जो कि एक धनाणुके भार का केवल $\frac{१}{१८५७}$ हिस्सा है) को छोड़ दें तब भी हिमजनका परमाणु भार ४ से ज्यादा होना चाहिए। सवाल अब यह उठता है कि बाक़ी मात्रा कहां गई। आधुनिक विज्ञान की रायमें जब चार धनाणु तथा ४ ऋणाणुओंके समावेशसे एक हिमजनका परमाणु बनता है तो कुछ सामर्थ्यका विकास होता है। यह सामर्थ्य नए बने हुए परमाणुसे अलग हो जाती है। अपेक्षावाद के अनुसार सामर्थ्यमें मात्रा होती है। इस प्रकार इस सामर्थ्यके साथ हिमजन परमाणुसे कुछ मात्रा भी अलग हो जाती है। अस्तु, इस परमाणुका भार ४·०३२ होनेके बजाय सिर्फ़ ४ रह जाता है। इस प्रकार और भी परमाणुओंके निर्माणमें कुछ सामर्थ्य जाती है और उसी अंशमें उनके परमाणु भारोंमें कमी आ जाती है। कुछ वैज्ञानिकों की यह राय है कि बड़े बड़े तारोंके अन्दर इतना अधिक ताप है कि वहां किसी तत्वका परमाणु समूचा नहीं रह सकता। बल्कि वहां सिर्फ धनाणु और ऋणाणु ही हैं। यह दोनों जब एक दूसरेके बहुत नज़दीक आ जाते हैं तो इन दोनों का लोप हो जाता है और उनके स्थानमें उसी अंशमें सामर्थ्य प्रकट होती है। यह नव विकसित सामर्थ्य तारोंमें जो कमी आ जाती है उसको पूरी करती रहती है। यही सबब है कि यह सब बड़े बड़े सूरज अपरिमित समयसे रोशनी और ताप शून्यमें विकिरण कर रहे हैं तब भी उनकी गर्मीमें कमी नहीं आई।

यह भी मत प्रगट किया गया है कि डा० मिलीकन ने जिन सूक्ष्म किरणों पर प्रयोग किया है उनका जन्म धनाणु और ऋणाणुओंके विनाशसे होता है। यह किरण इतने सूक्ष्म हैं तथा इनके स्पन्दन इतने तेज़ हैं कि यह कई फुट पानी तथा शीशे को भी पार कर जाते हैं। यह किरण दिन रात पृथ्वीमें कहीं बाहरसे आया करते हैं।

अपेक्षावाद के आन्तरिक अभिप्राय की ओर सबसे पहिले ध्यान मिङ्कावेस्की ने आकर्षित किया। उन्होंने बतलाया कि अपेक्षावाद का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि देश और कालमें कोई वास्तविक भिन्नता नहीं है। लम्बाई, चौड़ाई, और मोटाई के समान समय भी एक

व्यापक संसारका चौथा विस्तार है। यह व्यापक संसार देश और कालके समावेशसे बनता है और चतुर्परिमाणीय है। वास्तवमें यही संसार सच्चा है। समय को यदि हम $\sqrt{-1}$ स से गुणन करें तो वह देशके विस्तारके समान हो जायगा।

सन् १९१५ में आइन्स्टाइन ने विशेष अपेक्षा-वादको और भी विस्तृत रूप दिया। अब की बार उन्होंने आकर्षण शक्तिके भेद को समझाया। यह साधारण अनुभव है कि जब हम किसी चीज़को बिना किसी सहारेके छोड़ देते हैं तो वह पृथ्वी पर आ गिरती है। यह भी शायद आपको मालूम हो कि अगर हम दो चीजों को, जिनका कि भार तथा घनत्व भिन्न है, एक साथ ही एक जगहसे छोड़ें तो वह दोनों बराबर एक ही समय में पृथ्वी पर पहुँचेंगी। मिसालके लिये, अगर एक मनका लोहा और एक पाव लकड़ी इस प्रकार छोड़े जांय तो दोनों एक साथ ही पृथ्वी पर पहुँचेंगी। सबसे पहिले गलीलियो ने अपने प्रयोगों द्वारा इस बातको सिद्ध किया था। लेकिन विचारेको इस अविष्कार के फल स्वरूप जेल जाना पड़ा था।

दो चीज़ोंके साथ पहुँचनेका कारण यह है कि पृथ्वी हर एक चीज़ पर बराबर वेगान्तर पैदा करती है। यह वेगान्तर लगभग ३२ फीट प्रति सेकण्ड है।

न्यूटन ने जिस गति विज्ञान का निर्माण किया था और जिसके उन्होंने तीन व्यापक नियम ढूँढ़ निकाले थे उसके जरिये इस विचित्र बातको नहीं समझा सके। अस्तु, उन्हें एक नई शक्ति की खोज करनी पड़ी। इस शक्ति को उन्होंने आकर्षण शक्ति का नाम दिया। इसका एक नियम भी ढूँढ़ निकाला वह इस प्रकार है—

प्रत्येक अणु प्रत्येक दूसरे अणु को अपनी ओर खींचता है। यह आकर्षण शक्ति $= \frac{\text{म . मा}}{\text{द}^2}$

म—एक अणुकी मात्रा

मा—दूसरे अणु की मात्रा

द—उन दोनोंकी दूरी

इस आकर्षण शक्तिके जरिये पृथ्वी, जो कि बहुत बड़ी है हर एक चीज़को अपनी ओर खींच लेती है। इस आकर्षण नियमके ज़रिये उन्होंने पृथ्वी, चन्द्रमा, तथा अन्य ग्रहोंके चालों का समाधान किया। लेकिन एक छोटी सी त्रुटि रह गई जो आगे बतलाई जायगी।

एक बड़ी कठिनाई आकर्षण नियमके माननेमें यह है कि पृथ्वी तथा अन्य चीज़ोंसे कोई दृश्य लगाव या जोड़ न होते हुए भी वह किस प्रकार चीज़ोंको अपनी ओर खींचती है। आइन्स्टाइन ने तर्क किया कि अगर हम चीज़ोंके गिरनेको देशका एक गुण मान लें तब भी सब बातोंका समाधान हो जाता है। और हमें किसी नई आकर्षण शक्तिकी कल्पना करनेकी ज़रूरत न होगी। इस बातकी पुष्टिमें उन्होंने एक बहुत सुन्दर मिसाल दी है। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि शून्यमें एक बड़ा भारी सन्दूक है। यह सन्दूक पृथ्वी, सूर्य तारा-गण इत्यादिसे इतनी दूरी पर है कि वहाँ किसी प्रकारकी आकर्षण शक्ति नहीं है। यह भी मान लीजिये कि इस सन्दूकके अन्दर कुछ वैज्ञानिक प्रयोग करनेके लिये बैठे हैं। इन लोगोंको क्या अनु-भव होगा? यह लोग जिस प्रकार पैरोंके बल खड़े हो सकेंगे उसी आसानीसे सिरके बल भी खड़े हो सकेंगे ऊपर नीचेका भेद सन्दूकके अन्दर न रहेगा। जो चीज़ जहाँ छोड़ दी जायगी वहीं आसानीसे अधरमें खड़ी रहेगी। इस बातसे हम वैज्ञानिकोंको कोई अचम्भा नहीं होगा। किसी चीज़में कोई बोझ नहीं होगा। अब मान लीजिये कि कोई दानव इस सन्दूकको रस्सीसे बाँध कर एक ओरको खींचता है। यह भी मान लीजिये कि जिस ओर वैज्ञा-निकोंका सर है उसकी ओरको सन्दूक बराबर वेगान्तरसे खींचा जाता है। फ़ौरन ही वैज्ञानिकोंको

अपने शरीरका भार मालूम होने लगेगा। उनके पैर तले पर आ जाँयगे। सन्दूक़के अन्दर ऊपर नीचेका भेद होने लगेगा, विशेष कर, यदि वे दो चीज़ोंको बीचमें छोड़ देंगे तो वे दोनों एक ही समयमें तले पर पहुँचेंगी। चूंकि उनको सन्दूक़के बाहरका हाल नहीं मालूम, न उनको यही मालूम कि कोई दानव उनको बाहर खींच रहा है, वह न्यूटनके समान ख्याल करेंगे कि सन्दूक़ सब चीज़ोंको नीचेकी ओर खींचता है। इस आकर्षण शक्तिकी वजहसे सब चीज़ों पर एक ही वेगान्तर पैदा होता है।

लेकिन हम जानते हैं कि सन्दूक़के अन्दर कोई आकर्षण शक्ति नहीं है। बल्कि हम समझते हैं कि एक ही वेगान्तरसे सन्दूक़की तरफ सब चीज़ोंका जाना वहाँके देशका गुण मात्र है। सन्दूक़में कोई वास्तविक आकर्षण शक्ति नहीं है। इस सुन्दर उदाहरणके ज़रिये आइन्स्टाइन ने साबित कर दिया कि जिसको न्यूटन पदार्थ (Matter) की आकर्षण शक्ति मानते थे वही पदार्थके निकटके देशका गुण भी माना जा सकता है। उन्होंने बतलाया कि पदार्थके मौजूद रहनेसे आस-पासका देश-काल रूपी चतुर्परिमाणीय संसार वक्रित (Curved) हो जाता है और इस प्रकार देश और काल अलग २ भी वक्रित हो जाते हैं। इस वक्रित देशमें सब वस्तु स्वभाव ही से 'न्यून-पथ' (Geodesy) में चलती हैं। यही आकर्षण नियम है।

आइंस्टाइनके इस नियम (Law of gravitation) को समझनेके लिये न्यून-पथ (Geodesy) काअर्थ भली प्रकार समझना ज़रूरी है। यदि किसी धरा-तलमें दो बिंदु दिये हों तो उनके बीचमें बहुतसी लकीरें खींची जा सकती हैं। इनमें सबसे छोटी सीधी लकीर होगी। अगर यही दो बिंदु किसी गोले पर दिये हों तो उन दोनोंके बीचमें सबसे छोटी कौनसी लकीर होगी। उदाहरणके लिये मान लीजिये कि दुनियाके सतह पर दो शहर दिये हैं जो कि एक ही अक्षांश पर हैं। अब सवाल यह है कि यदि कोई जहाज़ एक शहरसे दूसरे शहरको सबसे कम समयमें जाना चाहता है तो वह कौनसे रास्ते-से जायगा भूगोलके विद्यार्थियोंको मालूम होगा कि यह रास्ता अक्षांशके बराबर न होगा। वास्तवमें यह रास्ता एक बड़ा वृत्त (Great circle) होगा जो इन दोनों शहरोंके बीचसे खींचा गया है। उदा-रणहके लिये लन्दनसे आस्ट्रेलिया जानेवाला हवाई जहाज़को लेमीग्रेड (Lemigrad) होकर जाना पड़ता है। दो बिंदुओंके बीचके सबसे छोटे रास्तेको उस सतहका 'न्यून पथ' (Geodesy) कहते हैं।

आइन्स्टाइनके नियमसे अनुसार पदार्थके पास देश वक्रित हो जाता है। इसलिये वहाँ पर न्यून पथ सीधी लकीरें नहीं होता बल्कि वक्रित लकीरें हो जाता है। अब प्रश्न यह है कि देश की वक्रता का पता प्रयोगोंके ज़रिये चल सकता है या नहीं। फर्माट ने रोशनीकी चालके बारेमें एक नियम ढूँढ़ निकाला था कि रोशनी एक बिंदु से दूसरे बिन्दुको ऐसे रास्तेसे होकर जाती है जो सब-से छोटा हो। अर्थात् रोशनी 'न्यून पथ' के रास्तेमें चलती है। अब अगर किसी देशमें 'न्यूनपथ' वक्रित हों तो वहाँ रोशनी भी वक्रित रास्तेसे जायगी, सीधी लकीर में नहीं जायगी। इस बातकी भविष्यद्वाणी आइन्स्टाइन ने १९१५ ही में कर दी थी कि बड़े २ तारोंके पास रोशनीका रास्ता सीधा न रहेगा बल्कि झुका होगा। विशेष कर, सूरजके समानान्तर अगर कोई किरण जा रही है तो वह सूरजकी ओर झुक जायगी। इस झुकनेके दो कारण हैं—

(१) रोशनी एक प्रकारकी सामर्थ्य है। और विशेष-अपेक्षावादके अनुसार सामर्थ्यमें भी मात्रा होती है। अस्तु, सूरज इस मात्राको अपनी ओर खींच लेगा जैसा कि वह और सब चीज़ोंको अपनी ओर खींचेगा।

(२) चूंकि सूरजमें पदार्थ इतना ज़्यादा है कि उसके पासका देश बहुत काफ़ी वक्रित है, इस

सबबसे भी सूरजके पास रोशनीकी किरण झुक जायगी। इस भविष्यद्वाणीकी जाँचके लिये हमें ऐसे तारोंकी रोशनीकी सहायता लेनी होगी जो कि सूरजके पास हैं। लेकिन साधारणतः ऐसे तारे सूरजकी चमकके कारण दिखलाई ही नहीं देते। हाँ, इस प्रयोगके करनेका बड़ा अच्छा मौक़ा हमें पूरे सूर्यग्रहणके वक़्त मिलता है क्योंकि उस समय सूरजके पूरी तरहसे छिप जानेके कारण तारे दिखलाई देने लगते हैं। चित्र (१) में नमा लीजिये कि 'त' एक तारा है जो कि सूरजके पास है। 'च' चन्द्रमा है और 'प' पृथ्वी। 'त' से जो किरण आती है सूरजकी ओर वह थोड़ी सी झुक जाती है और परिणाम यह होता है कि तारा हमें 'ता' पर दिखलाई देता है। यानी अपनी जगहसे कुछ उठा हुआ वह दिखलाई देगा। आइन्स्टाइन ने अपनी भविष्यद्वाणीमें यह भी बतलाया था कि यह झुकाव १.७ सेकण्ड होगा। भाग्यवश सन् १९१९की मईमें एक पूरा सूरजग्रहण पड़ा। उस समय जो चित्र ताराओंके लिये गए उनसे पूरी तरह यह साबित हो गया कि सूरजके पास रोशनी १.७ सेकण्ड झुक जाती है।
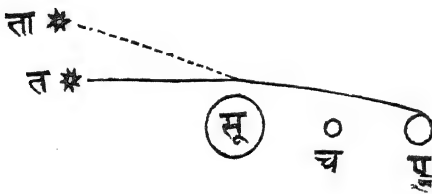
चित्र नं० १

दूसरी भविष्यद्वाणी जो आइन्स्टाइन ने की थी वह बुध ग्रहके चालके विषयमें। पहिले बतलाया जा चुका है कि न्यूटनके नियममें एक छोटीसे त्रुटि रह गई थी। इसके अलावा सौर जगत् के हर ग्रह तथा उपग्रहकी चालोंका बोध हो गया था। हम जानते हैं कि सब ग्रह सूरजके चारों तरफ़ अंडाकार रास्ते में चक्कर लगाते हैं।

इस प्रकार जब ग्रह 'क' पर रहता है तो वह सूके र्यसबसे ज्यादा निकट आजाता है और जब वह 'का' पर रहता है तो वह सूरजसे सबसे ज्यादा दूरी पर रहता है। इसके अलावा 'क' के पास ग्रह की चाल सबसे तेज़ होती है और 'का' पर सबसे कम। बुधकी चालमें एक विशेषता यह थी कि 'क' एक शताब्दीमें ४३ सेकण्ड आगे बढ़ता है। हिसाबसे मालूम हुआ कि इस बारीक चालका बोध न्यूटनके नियमके ज़रिये किसी प्रकार नहीं हो सकता। तब ज्योतिषियों ने यह ख्याल किया कि शायद बुध और सूरजके बीचमें कोई और भी ग्रह है जो अब तक ढूंढ़ा नहीं जा सका और इसी ग्रहके आकर्षणके कारण बुधकी चालमें यह फ़र्क आ गया है। बहुतेरी कोशिश की गई परन्तु ऐसा कोई ग्रह नहीं मिला।
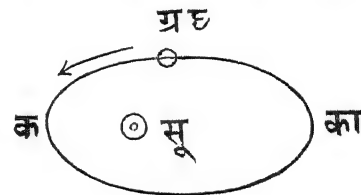
चित्र नं० २

आइन्स्टाइनके आकर्षण नियमके जरिये यह कठिनाई भली प्रकार हल हो जाती है। अभी बतलाया गया कि 'क' के पास ग्रह की चाल बढ़ जाती है अस्तु, विशेष—अपेक्षावादके मतमें ग्रहकी मात्रा वहां बढ़ जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि ग्रहकी चाल और भी बढ़ जाती है अर्थात् 'क' बिन्दु कुछ आगे को बढ़ जाता है। गणना करनेसे ज्ञात हुआ कि इस प्रकार बुधका अंडाकार रास्ता १ शताब्दीमें लगभग २४ सेकण्ड आगेको बढ़ेगा। फिर आइन्स्टाइनके आकर्षण नियमके अनुसार 'क' के पास देश वक्रित होता है। इस सबबसे भी ग्रहकी चाल वहाँ पर बढ़ जाती है। इन दोनों कारणोंसे बुध ताराका अंडाकार रास्ता १ शताब्दी में ४३ सेकण्ड आगे को बढ़ता है।

आइन्स्टाइन ने एक तीसरी भविष्यद्वाणी की थी। उन्होंने बतलाया कि अगर किसी भारी तारेकी रोशनीका विश्लेषण किया जाय तो उस किरण चित्रकी रेखाएँ लालकी ओर हटी होगीं। हम जानते हैं कि किरण-चित्रकी प्रत्येक रेखाकी एक ख़ास भूलन-संख्या और उसके लहर की एक विशेष लम्बाई होती है। यह भूलन संख्या देश तथा काल दोनों पर निर्भर है। लेकिन अपेक्षावादके अनुसार एक भारी तारेके पास यह दोनों वक्रित हो जांयगे। परिणाम यह होगा कि किसी कम्पायमान चोज़की भूलन संख्या कम हो जायगी, और लालकी ओर स्पन्दन संख्या कम होती है इसलिए ऐसे तारेकी रोशनी में फिर चित्रकी रेखाएँ लालकी तरफ झुक जांयगी। लेकिन यह असर इतना कम है और साथ ही इसके और भी कई कारण हो सकते हैं इसलिये आइन्स्टाइनकी इस भविष्यद्वाणीको जांचना सहज नहीं है। बहुतसे तारोंकी रोशनी का विश्लेषण किया गया है और अधिकतर सबूत इसी बात का मिलता है कि आइन्स्टाइनका बतलाया असर पाया जाता है। विशेष कर सिरियस तारेकी रोशनीमें यह असर काफी अंशमें पाया जाता है। सिरियस एक बहुत चमकीला तारा है। इसका एक साथी भी है जो अँधेरा है और छोटा है। परन्तु यह इतना ज्यादा भारी है कि सिरियसके पास देश, काल बहुत वक्रित हो जाता है।

इस प्रकार आइन्स्टाइन ने देश तथा कालकी निरपेक्षिताको नष्ट किया परन्तु साथ ही उन्होंने इन दोनोंके समावेशसे एक नए चतुर्परिमाणीय संसारका आविष्कार (अथवा सृष्टि) किया। यही संसार वास्तवमें सत्य है। देश तथा काल को भिन्न २ मानना सत्यके केवल एक टुकड़ेको देखना है जो अधूरा है। इससे उन्होंने सामर्थ्य तथा विभिन्नता को साबित कर दिया। पदार्थ (Matter) तथा देश और कालमें क्या सम्बन्ध है यह भी उन्होंने बतलाया और साथ आकर्षण शक्तिका बहुत सुन्दर समाधान किया। इसके बाद इन्हीं विचारोंका प्रयोग उन्होंने अपने विश्वका विस्तार निकालनेमें किया है। उनकी रायमें अपना विश्व अपरिमित नहीं है। जहाँ पदार्थ नहीं वहां देश सिकुड़ कर एक बिन्दु रूप हो जाता है और समय की गति स्थगित हो जाती है। यह भी मुमकिन है हमारे विश्वके अलावा और कई विश्व हैं जिनके बीचमें देश काल कुछ नहीं है। ख़ैर यह विचार तो बहुत काल्पनिक हैं। परन्तु अपेक्षावादके मूल सिद्धान्त प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुके हैं जैसा कि ऊपर हम देख चुके हैं।

यक्ष्मा

(गतांकसे आगे)

[ले० श्री कमला प्रसादजी, एम० बी०]

रक्त-क्षरण—फुफ्फुससे रक्तक्षरण होना निस्सन्देह फुफ्फुसके रोगाक्रान्त होनेका प्रबल प्रमाण है, किन्तु बहुतसे रोगियोंमें रक्त-क्षरण होने पर भी फुफ्फुस रोगके कोई चिह्न नहीं मिलते। ऐसे युवक रोगी तीन प्रकारके होते हैं जिन्हें रक्त-क्षरण होता है।

एक प्रकारके ऐसे रोगी मिलते हैं जिनकी शारीरिक अवस्था सब तरहसे अच्छी रहती है, जिन्होंने कोई ऐसा काम नहीं किया जिसमें असाधारण बल-प्रयोगकी आवश्यकता पड़ी हो, न जिन्हें किसी प्रकारकी चोट लगी हो और न जिनके परिवारके किसी व्यक्तिको यक्ष्माने सताया हो। इन रोगियोंको एकाएक रक्त-क्षरण होता है तथा बन्द हो जाता है। बहुधा संदेह होता है कि इनके फुफ्फुसमें कहीं न कहीं यक्ष्माका आक्रमण अवश्य हुआ है पर वास्तवमें ऐसा होता नहीं, और अधिकांश रोगी ऐसे मिलते हैं, मानो इन्हें कभी कुछ हुआ ही नहीं।

दूसरे प्रकारके ऐसे रोगी मिलते हैं, जो सब तरह स्वस्थ तो हों किन्तु जिन्होंने कभी असाधारण-बल-प्रयोग किया हो। इनके फुफ्फुसमें यक्ष्माका कोई चिह्न नहीं मिलता किन्तु कुछ दिनोंके उपरान्त इनके रक्त-रंजित खखारमें यक्ष्मा कीटाणु पाये जाते हैं।

तीसरे प्रकारके ऐसे रोगी मिलते हैं, जिनका स्वास्थ्य एक वा दो माससे कुछ २ बिगड़ता जा रहा हो किन्तु उन्होंने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया हो। उनका ध्यान उस ओर तभी आकृष्ट होता है जब रक्त-क्षरण एक वार हो जाता है। ऐसे रोगियोंके फुफ्फुसमें यक्ष्माके चिह्न मिलते हैं। इनके खखारमें यक्ष्मा कीटाणु भी पाये जाते हैं।

वास्तवमें ६० से ८० प्रतिशत यक्ष्मा रोगियोंको रक्त-क्षरण होता है, तथा स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष-रोगियोंको ही अधिक होता है।

रक्त-क्षरण वार वार होता है और किसी किसीको रोगके आरम्भसे लेकर मृत्यु पर्यन्त होता है। १/१० से लेकर १० छटांक तक रक्त एक साथ निर्गत हो सकता है।

रोगके आरम्भके रक्त-क्षरण तथा अन्य समयके रक्त-क्षरणमें कुछ भेद होता है—यथाः—

रोगके आरम्भमें रक्त-क्षरण

(क) रक्त-क्षरण बहुत कम होता है, वार वार हो सकता है और इससे मृत्यु नहीं होती।

(ख) फुफ्फुसके किसी बड़े अंशके घुलने वा श्वास-प्रणालीकी श्लेष्मा-झिल्लीके घिसनेके कारण रक्त-क्षरण होता है।

रोगकी अन्तिम अवस्थामें रक्त-क्षरण

(क) रक्त-क्षरण अधिक होता है, एकाध वार ही होता है और इससे मृत्यु हो सकती है।

(ख) किसी बड़े आकारकी रक्त नलिकाके घिसने वा फुफ्फुसीया धमनीके किसी स्थानमें फटनेके कारण रक्त-क्षरण होता है।

रक्त-क्षरण सहसा आरम्भ हो जाता है। रोगीको एक प्रकारके लवणका स्वाद मालूम पड़ता है और उसका मुख रक्तसे भर जाता है। इसके साथ साथ कुछ खाँसी आती है, तथा एक वा दो दिनों तक थोड़ा थोड़ा रक्त निकलता ही रहता है। इस रक्तकी कुछ विशेषतायें होती हैं। यह फेन एवं श्लेष्माके साथ मिला रहता है, देखनेमें चमकीले लाल रंगका होता है किन्तु यदि अत्यधिक परिमाणमें हुआ तो इसका रंग कुछ काला हो जाता है। खखार कुछ दिनों तक रक्तरंजित रह सकता है या उसमें कोई लाल रेखासी दीख पड़ती है, कभी कभी उसमें कुछ शीघ्र टूटने वाली गाँठें भी मालूम पड़ती हैं जो रक्ताणुओंकी बनी रहती हैं। कभी कभी श्वास प्रनाली रूपी सांचेमें ढाले हुए रक्तके थोक पाये जाते हैं।

श्वास-कष्ट—साधारणतः फुफ्फुस-यक्ष्माके रोगी को श्वासकष्ट (Dyspnoea) नहीं होता। यदि एक फुफ्फुस पूर्णतः रोग-ग्रस्त हो तथा दूसरेके शिखर पर भी कुछ आक्रमण हो चुका हो तो भी श्वासमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं होती। ज्वरका वेग जिस समय अधिक रहता है, उस समय भी श्वास-कष्ट नहीं होता। किन्तु यह निम्नलिखित अवस्था-ओंमें सम्भव है—

(क) यदि दोनों फुफ्फुसोंमें शीघ्रतापूर्वक श्वास-नल-फुफ्फुस प्रदाह हो जाय।

(ख) फुफ्फुसमें बहुसंख्यक यक्ष्मा प्रादु-र्भूत हो।

(ग) फुफ्फुसका वायुमंडलकी वायुसे सम्बन्ध हो जाय।

(घ) जीर्ण रोगियोंके फुफ्फुसावरणके नीचे वायुका यथेष्ट समागम हो।

(ङ) वक्षोऽदर मध्यस्था मांस पेशीके साथ फुफ्फुसावरण अनेक स्थानों पर संलग्न हो जाय।

वा (च) फुफ्फुस-शिखर सिकुड़ जायँ और फुफ्फु-सावरण मोटा हो जाय—जिससे हृत्पिंडका आकार बढ़ जाता है।

साधारण लक्षण

ज्वर—प्रायः देखा जाता है कि रोग रहित मनुष्योंका तापक्रम भी तीसरे पहरके समय कुछ न कुछ अधिक हो जाता है—साधारणतः ९८·४° के बदले ९९° वा १००° तक हो जाना सम्भव है*। इसी प्रकार चंचल प्रकृतिके वा अधिक रक्तवाले व्यक्तियोंके गुदाका तापक्रम मुखके तापक्रमकी अपेक्षा १ डिग्री अधिक रहता है। अस्तु, किसी यक्ष्मा-ग्रस्त रोगीके वास्तविक तापक्रमका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये दो दो घण्टों पर इसकी जाँच करना आवश्यक है।

किसी यक्ष्मा केन्द्रसे विषाक्त वस्तुओंके रोगीके रक्तमें संचरण करने एवं मस्तिष्कके ताप-केन्द्रको उत्तेजित करनेके कारण शरीरका तापक्रम बढ़ता है। रोगकी अन्तिम अवस्थाओं में अन्य कीटाणुओं द्वारा प्रादुर्भूत विषोंके प्रभावसे भी तापक्रम अनियमित होने लगता है। अन्य अवयवोंमें रोगके एक क्षुद्र केन्द्रसे सम्भवतः इतना विष नहीं निकल सकता जिसका शरीरके नाशकारी एवं निर्माण-कारी क्रियाओं पर ऐसा प्रभाव पड़े कि शरीरके तापक्रममें अधिक हेर फेर हो जाय। किन्तु यदि यही रोग-केन्द्र फुफ्फुस, लसीका ग्रन्थियोंमें हो तो उससे निर्गत विषाक्त वस्तुओंका परिमाण इतना अधिक होता है कि वे रक्तमें मिश्रित होकर तापकेन्द्र (Centre of heat) को यथेष्ट उत्तेजित करती हैं। विषाक्त वस्तुओंका प्रभाव ठीक वैसा ही होता है जैसा कि शरीर हीमें प्रस्तुत वैक्सीनको सूई द्वारा प्रवेश करानेका।

ऐसे कारण जो रक्त वा लसीका संचारमें सहा-यता करते हैं, अप्रत्यक्ष रूपसे विषाक्त वस्तुओंको अधिकाधिक रक्तसे मिश्रित कर इनके प्रभावको बढ़ा देते हैं। उदाहरणार्थ, रोगी यदि सोया रहे तो उसका रक्त-संचार इतनी तेज़ीसे नहीं होता। अस्तु, रोग केन्द्रोत्पन्न विषाक्त पदार्थ शरीरमें अधिक उप-द्रव नहीं मचाता और ज्वर शान्त हो जाता है किन्तु ज्योंही रोगी कुछ घूमने फिरने लगता है अथवा किसी प्रकार का व्यायाम करता है, शरीरमें अधिक रक्त-संचारके साथ विषाक्त वस्तुओंका भी अधिक संचार होने लगता है और ज्वर बढ़ कर १०२° वा इससे भी अधिक हो सकता है।

नूतन अवस्थाओंमें ज्वर निरन्तर बना रहता है, जैसा कि त्रिदोषज्वर वा फुफ्फुस प्रदाह इत्यादि रोगोंमें देखा जाता है किन्तु भोरके समय कुछ कम हो जाता है। ज्वर जाड़ा देकर आ सकता और पसीना देकर उतर जा सकता है। ऐसे भी रोगी मिलते हैं जिन्हें अन्तर-ज्वर (Intermittant fever) आता है। ज्वरकी प्रबलता एवं उसका निरन्तर

* मनुष्य शरीरका तापक्रम फेरनहीट तापमापक (Thermometer) द्वारा लिया जाता है।

बना रहना स्थानीय क्षतकी वृद्धिके द्योतक हैं। ऐसे रोगियोंकी, जिनका ज्वर विश्राम करने पर कम हो जाता है, अवस्था आशाजनक समझी जाती है, किन्तु कुछ ऐसे भी रोगी पाये जाते हैं जिनका रोग तो उत्तरोत्तर वृद्धि पर रहता है पर ज्वरका वेग नहीं बढ़ता—ऐसे रोगी बहुत कम मिलते हैं।

यक्ष्माके रोगियोंका तापक्रम बहुत क्षुद्र कारणोंसे प्रभावान्वित होता है। जैसे किसी प्रकारकी मानसिक उत्तेजना, थोड़े व्यायाम, कोष्ठ-बद्धता इत्यादिसे—जिससे स्वस्थ मनुष्योंकी कोई क्षति नहीं होती—यक्ष्मा-रोगियोंका तापक्रम भली भाँति बढ़ जा सकता है।

रोगी इस बातको भली भाँति जानते हैं कि ज्वर कब बढ़ता है और सच पूछिये तो १०१° तापक्रम तक उन्हें कुछ आराम मिलता है, यदि ज्वरके साथ साथ पसीना नहीं आवे तो ज्वर कोई ऐसा लक्षण नहीं है जिससे रोगीको कुछ कष्ट प्रतीत हो।

फुफ्फुस तंतुओंके घुलने एवं गर्त्तनिर्माणके साथ साथ अन्य पीब उत्पन्न करने वाले कीटाणुओंका भी समावेश हो जाता है, और तब कुछ कुछ घण्टोंके अन्तर पर ज्वर आता रहता है। दिनके अधिकांश समय रोगी न केवल ज्वरसे बचे रहते हैं, बल्कि उनका तापक्रम ९८.४° से भी कम रहता है। दोपहरके उपरान्त ज्वर कुछ बढ़ने लगता है और तीसरे पहर तक यह पराकाष्ठाको पहुँच जाता है। संध्या समय—५ से लेकर ८ वा १० बजे रात तक—ज्वर एकसा बना रहता है, तदुपरान्त घटने लगता है और भोर होते होते अथवा ८ बजे तक एक दम कम होकर ९५° तक पहुँच सकता है। दिनके ८ से १२ बजे तक एकदम कम रहता है और तब १२ बजेके उपरान्त बढ़ने लगता है। भोरके समय जब तापक्रम कम होने लगता है तब बहुत पसीना भी आता है जिससे रोगीको बहुत कष्ट होता है।

पसीना—कभी कभी इतना अधिक पसीना निकलता है कि रोगी उससे भीग जाते हैं, और यह उनके कष्टका एक बहुत बड़ा कारण होता है। पसीना उस समय आता है जब ज्वर उतरने लगता है (बहुधा भोरके समय) अथवा दिनमें भी जब कभी रोगी सोकर उठता है। पसीना आना रोगकी बहुत आरम्भिक अवस्थाओंमें भी सम्भव है किन्तु यह लक्षण बहुधा उस समय उपस्थित होता है जब फुफ्फुसमें गर्त्त-निर्माण हो चुकता है। किसी किसी रोगीको पसीना एकदम नहीं आता।

नाड़ी-स्पन्दन—इसकी संख्या तापक्रमके अनुसार बढ़ती घटती है, किन्तु जिस समय ज्वर नहीं भी रहता उस समय भी नाड़ी कुछ न कुछ अवश्य तेज़ रहती है, तथा रोगीके रोगयुक्त होने पर भी कुछ दिनों (वर्षों) तक नाड़ी कुछ न कुछ तेज़ चलती है।

शारीरिक-क्षय—धीरे धीरे रोगीका तौल घटने लगता है। आरम्भमें प्रति सप्ताह १ से १½ सेर तक घटना सम्भव है। जितना ही अधिक ज्वर होता है उतना ही अधिक तौल घटता जाता है। जब रोगकी गति अवरुद्ध हो जाती है, तब रोगीका तौल पुनः बढ़ने लगता है। ऐसी अवस्थामें प्रति सप्ताह १ सेरके हिसाबसे भी तौलका बढ़ना संतोष-जनक होता है। शक्ति-दौर्बल्य शारीरिक क्षयकी अपेक्षा अधिक होता है एवं आरम्भसे ही लक्षित होता है।

चिह्न—(विशेष रूपसे वर्णन "निदान" शीर्षक अध्यायमें किया गया है)

दर्शन—साधारणतः वक्षस्थलके आकार प्रकारको देखनेसे भी यक्ष्माका कुछ कुछ आभास मिलता है, किन्तु किसी आकृतिके वक्षस्थलमें यक्ष्माका होना असम्भव नहीं है। अधिकांश रोगियोंके वक्षस्थल लम्बे और पतले हो जाते हैं, पर्शुकान्तर-स्थान खिंच जाते हैं तथा आकारमें विस्तीर्ण हो जाते हैं, पर्शुकायें खड़ी (सीधी) हो जाती हैं। अंसफलक (वा स्कंधास्थि—Scapula)

दोनों ओर डैनेकेसे निकल पड़ते हैं। कभी कभी वक्षस्थल एकदम चिपटा हो जाता है, उपपर्शुकायें (Costal cartilage) स्पष्ट दीखने लगती हैं और उरोस्थि (Sterumm) भीतरकी ओर धंस जाती हैं। अक्षक (Clavicle) बहुत प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है।

बायें या दाहिने किसी ओरके शिखर-स्पन्दन—(श्वासके समय)—में कमी हो जाना एक प्रधान चिह्न है, तथा बहुत आरम्भमें पाया भी जाता है। बायें शिखरके रोगग्रस्त होनेसे बहुधा हृत्पिंडका स्पन्दन बहुत विस्तृत स्थान—२ रे, तीसरे एवं चौथे पर्शुकांतर स्थानोंमें दिखाई पड़ता है। क्षत फुफ्फुसकी ओरके कक्षको वेष्टन करने वाली मांस पेशियाँ सूख जा सकती हैं और मेरुदण्ड उसी ओर कुछ झुक भी जा सकता है। जिस ओर क्षत वर्त्तमान रहता है उस ओरके वक्षस्थलकी गति तो कम हो ही जाती है, इसके अतिरिक्त सारे वक्षस्थलके स्पन्दनमें कुछ न कुछ कमी अवश्य हो जाती है।

स्पर्श—अक्षकके निम्न भाग और पार्श्वोंमें, दोनों तलहत्थियों द्वारा स्पर्श करते समय रोगी यदि धीरे धीरे पूरी सांस ले तो किस ओरके वक्षस्थलकी गतिमें न्यूनता आ गई है इसका पूरा पता चल जायगा। रोगीके पीछे खड़े हो कर दोनों ओरके अक्षकके ऊपर हाथके अंगूठेको रख कर एवं उनके नीचे अन्य उंगलियों द्वारा स्पर्श करनेसे वक्षस्थलके दोनों पक्षकी गतिमें अपेक्षाकृत न्यूनाधिक्यका पता चल सकता है। सच तो यह है कि अन्य चिह्नोंके प्रादुर्भूत होनेके पूर्व भी एक फुफ्फुस-शिखरकी गतिकी न्यूनता देख कर रोगके वर्त्तमान रहनेका अनुमान किया जा सकता है।

स्वर-स्पन्दन—यह पहले कहा जा चुका है कि स्वस्थ व्यक्तियोंमें यह बायीं ओरकी अपेक्षा दाहिनी ओर अधिक अनुभूत होता है। यह स्पन्दन जिस स्थानमें यक्ष्मा गांठें तैयार हो जाती हैं या गर्त्त निर्माण हो जाता है उस स्थानमें अधिक जान पड़ता है। यदि फुफ्फुसावरण मोटा हो जाय तो यह स्पन्दन कम जान पड़ता है।

विघातन—(Percussion) गांठें, प्रदाह-द्रव, सौत्रिक-तंतुओंकी अधिकता, एवं गर्त्त फुफ्फुसके साधारण झंकारको कम कर देते हैं। किन्तु कभी कभी सीमित क्षत (localised disease) में (जैसे गांठें यहाँ वहाँ छितराई हुई हों और उनके चारों ओर वायुपूर्ण स्वस्थ तंतु हों) इस झंकारमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं होता। यही दशा वैसे रोगियोंमें भी देखी जाती है जिनमें रोग प्रायः गुप्त (Incipient) रूप धारण किये रहता है। किन्तु यदि विस्तृत स्थानमें प्रदाह-जनित-द्रव-संचार होता हो तो यह झंकार अवश्य ही कम हो जायगी। अक्षक पर तथा इसके ऊपर उक्त झंकारकी कमी बहुत आरम्भमें पाई जाती है। गहरी सांस लेकर श्वास मार्गको कुछ क्षणके लिए बन्द कर रखने पर दोनों फुफ्फुसके झंकारोंकी तुलना करनेमें बहुत सहायता मिलती है। आरम्भिक अवस्थाओंमें इस झंकारका बहुत कम ह्रास होता है। और इसका ज्ञात होना चिकित्सकके श्रवणेन्द्रियकी योग्य शिक्षा पर निर्भर करता है।

अधःक्षेपण क्रियायुक्त फुफ्फुस-प्रदाह (Caseating Pneumonia) द्वारा फुफ्फुसके किसी अंशके ठोस हो जाने पर यह झंकार उस स्थान (क्षत-स्थान) में टाँय टाँय शब्दमें परिवर्त्तित हो जाती है। जीर्ण यक्ष्मा जनित शिखर वा फुफ्फुसाधारमें अधिक सौत्रिक तंतुओंके एकत्रित हो जाने पर काठ पर ठोकनेका सा शब्द पाया जाता है। ऐसे वृहदाकार गर्त्त पर जिसकी दीवार बहुत पतली हो ठोकने पर फूटी हाँड़ीसे निकले शब्दका सा शब्द पाया जाता है (cracked-pot sound)।

स्वर-परिचायक यन्त्र द्वारा सुनना (Ascultation)—रोगके बहुत आरम्भमें श्वास शब्द बहुत ही धीमा हो जाता है क्योंकि क्षत-स्थानमें उतनी वायु प्रवेश नहीं कर पाती जितनी कि अक्षत स्थानोंमें। अस्तु, परीक्षा करते समय उचित है कि

रोगीके वक्षस्थलके दोनों ओरके शब्दोंकी तुलनाकी जाय और उस समय उसे गहरी सांस लेने वा खांसनेसे रोक रक्खा जाय। पुनः आरम्भमें अन्तः-श्वसनका स्वर इतना धीमा हो सकता है कि उसका सुनना प्रायः असम्भवसा हो जाता है, बहिश्वसनमें अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। ऐसे भी रोगी मिलते हैं जिनके रोगारम्भमें श्वासके साथ साथ एक कठोर झर्झर शब्द (Harsh respiratory murmer) पाया जाता है। गहरी सांस लेनेसे कभी कभी अन्तःश्वसन् रुक रुक कर झोंकेके साथ होता है जिसे कौगह्वील (Cog-wheel) श्वास कहते हैं। ज्यों ज्यों रोग बढ़ता जाता है, ज्यों ज्यों अन्तः श्वसन्—शब्द कठोर (harsh) होता जाता है। जब फुफ्फुस ठोस हो जाता है, तब उन अंशोंमे नलाकार शब्द सुनाई पड़ता है—अर्थात् श्वास शब्द बहुत ज़ोरसे सुन पड़ता है। जो राल्स धीरे धीरे सांस लेते समय सुने जायँ वे यदि निरन्तर पाये जायँ तो उनकी एक विशेष प्रधानता होती है। गहरी सांस लेने पर आरम्भसे एवं अन्तमें जो कुर्कुराहट सुनाई पड़ती है उसका कुछ विशेष अर्थ नहीं होता। किन्तु खांसनेके उपरांत जो राल्स बने रह जाते हैं, वे बड़े महत्वके हैं—वे ही रोग निदानमें बहुधा एक मात्र सहायक होते हैं। ठोकनेसे शब्द परिवर्त्तनके साथ २ शब्द परिचायक द्वारा सुनने पर राल्सका पाया जाना भी उतना ही प्रयोजनीय है।

जब फुफ्फुस तंतु घुलने लगते हैं तब और भी ऊँचे स्वरके राल्स एवं बुद्बुद राल्स (Bubbling rales—ऐसा स्वर मानो किसी तरल वा जलसे निर्गत होता हो) पाये जाते हैं। जब गर्त्त निर्माण हो जाता है तब राल्स और भी कड़े एवं गर्गराहट के साथ सुने जाते हैं। जब फुफ्फुस तन्तु ठोस हो जाता है तो उससे नलाकार शब्द (Tubular sound) निर्गत होता है और बड़े गर्त्त निर्माण होने पर गर्त्त-शब्द (मानो शब्द किसी भांड़ीसे निकला हो—amphoric sonnd) पाया जाता है। फुफ्फुसके अक्षत अंशोंसे श्वास शब्द कठोर तथा बच्चों के फुफ्फुससे निर्गत श्वास-शब्द सा जान पड़ता है।

उच्चारण-स्वर-झंकार (Vocal Resonance) तीव्र हो जाता है (प्रायः सभी अवस्थाओं में) ठोस स्थानोंमें और गर्त्तके ऊपर रोगीकी फुसफुसाहट तकका शब्द (Whispering Pectorilogy) सुनाई पड़ता है और कभी कभी ऐसा शब्द भी सुन पड़ता है मानो दूर पर एक बकरा मिमियां रहा हो, इसे ब्रौङ्कोफोनी (Bronchophony) कहते हैं। किसी किसी अवस्थामें फुफ्फुसा-वरण-प्रदाह-जनित घर्षण शब्द (Pleuritic friction sound) पाया जा सकता है। जब क्षत-स्थान हृत्पिंडके निकट रहता है तब कभी कभी फुफ्फुसा-वरण एवं हृदयावरणके घर्षण द्वारा उत्पन्न विचित्र शब्द सुन पड़ता है जो प्रायः हृदयकी गतिके साथ साथ सुना जाता है।

गर्त्त निर्माण के चिह्न

(१) यदि फुफ्फुसावरण मोटा नहीं हो गया हो या क्षतके समीपवर्त्ती फुफ्फुस तन्तु और घने नहीं हो गये हों, तो ठोकने पर लगभग वैसा ही शब्द निकलेगा जैसा कि साधारणतः स्वस्थ्य अवस्थामें निकलता है। किन्तु बहुधा यह शब्द कुछ धीमा हो जाता है, अथवा एक दम ठांय ठांय (Tympanitic) हो जाता है। रोगी के मुँह खुले वा बन्द रहनेके अनुसार ठोकनेसे निकले हुए शब्दका स्वर धीमा वा उच्च हो सकता है। यह न्यूनाधिकता रोगीके एक ओर करवट बदलने पर और भी प्रत्यक्ष हो जाती है। एक बड़े गर्त्तकी दीवारें यदि पतली हों वा एक गर्त्तके ऊपर दूसरा गर्त्त बन गया हो तो क्षत स्थानमें ठोकने पर फूटी हांड़ीसे निकले शब्द का सा शब्द पाया जायगा। इस शब्दकी परीक्षाके समय रोगीका मुख खुला हुआ रहना चाहिए एवं ठोकने वाली उंगलियों का प्रहार तेज़ीसे होना चाहिये। ऐसे रोगियोंके जिनका प्रायः सारा फुफ्फुस खोखला हो गया हो

वक्षस्थल ठोंकने पर ऐसा जान पड़ता है मानो इसमें हर ओर केवल वायु भरी हो।

(२) शब्द परिचायक द्वारा सुनने पर बहुतसे गर्त्त शब्द (Cavernous sounds) सुने जाते हैं—(क) श्वास-शब्द आंधीकी भांति वा नलाकार वा गर्त्तसे निर्गत शब्दके से सुने जाते हैं। कभी कभी ऐसा जान पड़ता है मानो ये शब्द किसी पतली नलीसे निकल कर एक चौड़े स्थानमें जा रहे हों। (ख) बुद्बुद् राल्स (Bubbling rales) सुने जाते जो बड़े तीव्र होते हैं एवं खांसने पर धातुकी झंकार के से (metallic ringing) ज्ञात होते हैं। खांसते समय इनसे एक प्रकारकी गर्गराहट (gurgling) भी निकलती है। एक बृहद्गर्त्तसे, जिसके चारों ओर के फुफ्फुस तन्तु कुछ ही समय पहले ठोस हो गये हों, जो राल्स निकलते हैं उनसे ऐसा प्रतीत होता है मानो फुफ्फुस और वक्षस्थलके मध्यका सारा स्थान केवल वायुसे भर गया है। बहुतसे शुष्क गर्त्त मिलते हैं जिनसे राल्स एक दम नहीं निकलता। (ग) उच्चारण-स्वर-झंकार (vocal resonance) उच्च हो जाता है और रोगीकी फुसफुसाहट भी बहुत आसानीसे सुनाई पड़ती है। शिखरस्थ एक बड़े गर्त्तसे हृदय-स्पन्दनके शब्द भी बड़ी सुगमतापूर्वक सुने जाते हैं। एक बड़े गर्त्तसे जिसकी दीवारें चिकनी हो एवं जिसमें पतला द्रव भरा हुआ हो भीतरकी ओर वायु खिंच जाने का सा शब्द (Succsion sound) एवं रुपयेकी झंकार (coin sound) के से शब्द सुने जाते हैं।

मिथ्या गर्त्त—यदि किसी बड़ी श्वास-प्रनाली के निकटवर्त्ती फुफ्फुस तंतु ठोस हो जायँ तो उक्त स्थानमें यक्ष्मा-जनित-फुफ्फुस-गर्त्तके सभी चिह्न पाये जायँगे यद्यपि वास्तवमें वहाँ पर कोई गर्त्त नहीं रहता। इस प्रकारका धोखा होना कोई असम्भव बात नहीं है।

(३) सौत्रिक यक्ष्मा (Fibroid Tuberculosis). इसके निम्न लिखित भेद माने जाते हैं—

(क) नितान्त सौत्रिक—जिसमें यक्ष्मा गांठे नहीं होतीं।

(ख) सूत्रमय-यक्ष्मा—जिसके आरम्भमें तो यक्ष्मा-जनित अंग-विकृतियाँ वर्त्तमान रहती हैं किन्तु अन्तमें यक्ष्मा गांठोंमें सौत्रिक परिवर्त्तन हो जाती है। (Tuberculofibroid Disease)

(ग) सूत्रान्त यक्ष्मा—आरम्भमें फुफ्फुसमें सौत्रिक परिवर्तन होता है किन्तु अन्तमें यक्ष्मा गांठें भी तैय्यार हो जाती हैं। (Fibro-tuberculous Disease)

सूत्रमय यक्ष्मा यक्ष्मा-जनित-श्वास-नल-फुफ्फुस-प्रदाह वा जीर्ण फुफ्फुस-यक्ष्माके अन्तमें आरम्भ होता है। सारा फुफ्फुस वा केवल शिखर सूत्रमय हो जाता है और ऐसी अवस्थामें यह कहना कठिन हो जाता है कि इसका कारण यक्ष्माका ही आक्रमण है वा नहीं।

यह रोग बहुत ही जीर्ण रूप धारण करता है और १० से २० वर्षों तक बना रह सकता है। इस बीचमें रोगी की शारीरिक अवस्था अच्छी ही रहती है। इसके प्रधान लक्षण हैं, रह रह कर खांसी होना और किसी प्रकारका बल-प्रयोग करने पर श्वास कष्ट (Dyspnoea) होना। बलगम पीवका सा (Purulent) होता है और कभी २ इससे दुर्गन्ध भी निकलती है। ज्वर शायद ही कभी होता है।

इसके चिह्न स्पष्ट होते हैं। वक्षस्थल भीतर की ओर धंस जाता है। क्षत ओर का स्कंध झुक जाता है। हृत्पिंड ऊपरकी ओर खिंच जाता है और अपने स्थानसे हट भी जाता है। यदि बांया फुफ्फुस क्षत-ग्रस्त हुआ तो जिस स्थानमें हृदय-स्पन्दन लक्षित होता है उसकी आयत विस्तृत रहती है। क्षत-स्थानमें ठोकने पर भरा शब्द

(Dullness) निकलता है। स्वर-स्पन्दन (Tactile Fremitus) कम हो जाता है किन्तु यदि वहां कोई गर्त्त हो तो यह स्पन्दन अधिक ज्ञात होता है। शिखर पर गर्त्त शब्द (Cavernous sound) सुन पड़ता है और फुफ्फुसाधारके निकट दूरस्थ नलाकार शब्द (Distant bronchial sound) प्राप्त होता है। किसी किसी रोगीके दोनों ही फुफ्फुस आक्रान्त हो जाते हैं अथवा उसे बार बार रक्त क्षरण होता है जिससे उसकी मृत्यु भी हो जा सकती है। जीर्ण प्रदाहके कारण फुफ्फुस तंतु घुल २ कर श्वेतसारके से (Amyloid degeneration) होने लगते हैं तथा हृदयकी शक्ति-क्षीणताके कारण शोथ (Dropsy) भी प्रकट होता है।

फुफ्फुस-यक्ष्मा सम्बन्धी अन्य उपद्रव
(Complications of pulmonary tuberculosis)

श्वासोच्छ्वास संस्थान में—

(१) स्वर नल—इस पर प्रायः निश्चितरूपसे आक्रमण होता है। पहले स्वर कुछ भारी हो जाता है। पीड़ा होती है—विशेष कर निगलनेके समय। खांसीके साथ २ सांय २ की आवाज निकलती है। खांसी प्रायः व्यर्थ ही हुआ करती है अर्थात् खांसने पर बलगम नहीं निकलता। पीछे बोली बन्द हो जाती है। एक दम निगला नहीं जाता। जब स्वर-नलका ढक्कन वा काग-मुख (Epiglottis) भी क्षतग्रस्त हो जाता है तो निगलते समय बहुत हो कष्ट होता है और कभी कभी झोंकेके साथ खाया हुआ पदार्थ नासारंध्रों द्वारा निकल जाता है।

(२) प्रनाली प्रदाह—(Bronchitis) एक बहुत साधारण क्रिया है।

(३) फुफ्फुस प्रदाह (Pneumonia) यह भी बहुधा देखा जाता है तथा मृत्युका द्योतक होता है।

(४) तंन्तु-स्फालन (Emphysema) फुफ्फुस अक्षत वायुस्थानों की स्थिति स्थापक शक्ति नष्ट हो जाती है। वे सदैवके लिये फैल जाते हैं और वक्षस्थल को भीतर से ऐसा ढंक देते हैं कि किसी प्रकार के चिह्न स्पष्ट नहीं होने पाते।

(५) फुफ्फुस का सड़ना (Gangrene of the lung) यह भी कभी २ सम्भव है।

(६) फुफ्फुसावरण—शुष्क प्रदाह (Dry pleurisy) बहुधा देखा जाता है। इस के द्वारा फुफ्फुस की कभी कभी रक्षा होती है क्योंकि जिन स्थानों पर आवरण प्रदाह होता है उन स्थानों पर इसके मोटा हो जाने के कारण फुफ्फुस के फटने और फुफ्फुस तथा वक्षस्थल के बीच वायु के प्रवेश करने का भय नहीं होता। द्रवयुक्त फुफ्फुसावरण-प्रदाह (Pleurisy with Effusion) रोगके पहिले ही उपस्थित रहता है नकि इसके साथ साथ और जब यह पाया जाया है तो रोग की जीर्णता की ओर संकेत करता है। इससे निंगत तरल पदार्थ भी अनेकों प्रकार के होते हैं—फाइब्रिन मिश्रित, विशुद्ध-रक्त-मय, लसीका के से, अथवा पीव के से तरल पदार्थ निकल सकते हैं।

फुफ्फुस एवं वक्षस्थल के बीच वायु का प्रवेश कर जाना एक साधारण बात है जिससे कभी कभी २४ घण्टोंके भीतर ही मृत्यु हो जा सकती है। कभी कभी इन दोनों के बीच पीव भर जाता है और तब रोगी कई दिनों तक घुलटता रहता है और अन्तमें कालकवलित होता है। वायुप्रवेश किसी किसी रोगी को रोगमुक्त होनेमें सहायता भी करता है क्योंकि इसके द्वारा फुफ्फुस सिकुड़ जाता है जिससे क्षत अंश को निरोग होने का अवकाश मिलता है।

अन्य अंगों मे उपद्रव :—

(१) हृदय और रक्त नलिकायें। फुफ्फुसके यक्ष्माके साथ साथ हृत्पिंडके रोग बहुत कम देखे जाते हैं। फुफ्फुस के सिकुड़ जानेके कारण हृत्पिंड क्षत-स्थान की ओर खिंच जाता है और इसका स्पन्दन द्वितीय तृतीय और चतुर्थ बायें

पशु'कान्तर स्थानों में लक्षित होता है क्योंकि इन स्थानों को (स्वस्थ अवस्थामें) ढांकने वाला पर्दा का सा फुफ्फुस का कुछ अंश हट जाता है। धमनियोंका दबाव कम जाता है। अस्तु, नाड़ी दुर्बल किन्तु तेज़ रहती है। कभी हाथ के पीछे की शिराओंमे भी स्पन्दन पाया जाता है।

(२) रक्त—कुछ रक्तक्षीणता अवश्य होती है किन्तु जितनी बाहर से देखने पर प्रतीत होती है उतनी नहीं। रक्त-विन्दुओं (Blood platelets) की संख्या बहुत बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त रक्त में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं होता। महामति औस्लर ने व्यंग करते हुए कहा है कि रक्त-परिवर्तन पर केवल इसीलिए अधिक ध्यान आकृष्ट किया जाता है कि समय समय पर ऐसे वीर आविष्कर्त्ता भी निकल आते हैं जो केवल रक्त-परिवर्तनों पर ही यक्ष्मा का निदान निर्भर कराना चाहते हैं, अतएव इसके सम्बन्ध के नित नये नये आविष्कार किया करते हैं। हां, अन्त समय तक रक्त के श्वेताणुओं की संख्या भी कुछ बढ़ जाती है।

(३) पाचक सम्बन्धी उपद्रव—जीभ प्रायः रुखड़ी रहती हैं, किन्तु कभी कभी एक दम स्वच्छ और लाल रहती है। कभी कभी उस पर छोटे छोटे घाव हो जाते हैं जिनसे रोगी को बहुत कष्ट भोगना पड़ता है। मसूढ़ों पर कभी कभी एक लाल रेखा सी ऊग आती है। लाला (लार) की पाचन शक्ति नष्ट नहीं होती। कंठ (Pharynx) बहुधा यक्ष्मा ग्रस्त हो जाता है और तब निगलने के समय भयानक कष्ट होता है।

पाकस्थली सम्भवतः यक्ष्मा ग्रस्त नहीं होती। भूख का नहीं लगना, मितली आना और वमन होना इत्यादि लक्षणों के लिए स्थानीय कारण (पाकस्थलीके रोग-ग्रस्त होने के कारण) ढूँढ़ना भूल है। किन्तु साथ साथ पाकस्थली में अम्ल रस की न्यूनता भी हो जाती है।

भूख नहीं लगना आरम्भ का एक प्रधान लक्षण है। भोजन से वास्तविक अरुचि हो जाती है और उसे देख कर मितली सी आने लगती है। कभी कभी न तो मितली ही आती है और न भोजन के उपरान्त किसी प्रकार का कष्ट ही होता है किन्तु तो भी रोगी को खिलाने के लिए प्रत्येक दिन धींगाधींगी करनी ही पड़ती है। सम्भवतः ऐसी अवस्थाओं में ज़ोर कर कुछ खिलाना ही उचित है—इससे बहुत लाभ होता है।

(४) वात संस्थान सम्बन्धी उपद्रव—

(क) मस्तिष्क में यक्ष्मा गांठें प्रादुर्भूत हो सकती हैं, जिससे अनेक प्रकार के लक्षण (जैसे पक्षाघात इत्यादि) उत्पन्न हो सकते हैं।

(ख) मस्तिष्कावरण का यक्ष्मा-जनित प्रदाह।

(ग) हाथ पैर इत्यादि में पक्षाघात।

(घ) उन्माद

(५) नेत्र—नेत्र श्लैष्मिका (Conjunctiva) का प्रदाह बहुधा नहीं देखा जाता किन्तु पुतली का छोटी बड़ी होना एक साधारण क्रिया है।

(६) बहुधा देखा जाता है कि पुरुषों का उस ओर का स्तन जिधर यक्ष्मा का आक्रमण होता है स्थूल हो जाता है।

(७) मूत्र एवं जननेन्द्रिय सम्बन्धी उपद्रव—मूत्र में कोई विशेष विकृत पदार्थ नहीं पाया जाता। जब ज्वर बना रहता है तो इसका प्रभाव मूत्र पर अवश्य पड़ता है। अस्तु, मूत्र द्वारा दो प्रकार से अल्ब्यूमेन निकल सकता है—ज्वर की अधिकता से वा वृक्क के यक्ष्माक्रान्त होने से,

* ये लक्षण पाकस्थलीके रोग-ग्रस्त होनेके कारण अथवा मस्तिष्कके भिन्न भिन्न केन्द्रोंके उत्तेजनसे उत्पन्न होते हैं। यक्ष्मा रोगियोंकी पाकस्थली स्वस्थ रहती है किन्तु रक्तमें मिश्रित कीटाणु-विष मस्तिष्कके केन्द्रोंको व्यर्थ उत्तेजित करते रहते हैं जिससे ये उपद्रव आविर्भूत होते हैं।

किन्तु यदि वृक्क नहीं भी आक्रान्त हुआ हो तो भी मूत्र द्वारा यक्ष्मा कीटाणु निकल सकते हैं। कभी कभी शोथ प्रादुर्भूत होता है तथा जीर्ण वृक्क-प्रदाह (Chronic Nephritis) के सभी लक्षण उपस्थित होते हैं।

मूत्र में पीव तभी पाया जा सकता है जब मूत्राशय (वस्ति-Bladder) अथवा वृक्क-गह्वर (Pelvis of the kidney) क्षतग्रस्त हो। कभी २ सारा मूत्रसंस्थान नष्ट प्राय हो जाता है किन्तु फुफ्फुस-यक्ष्मा के रोगियों में इस प्रकार का क्षत नहीं देखा जाता। रोग के आरम्भ में कुछ रोगियों-किन्तु बहुत कम—के मूत्र से रक्त निकल आता है।

अण्ड यक्ष्माग्रस्त हो सकते हैं।

(८) त्वक्-संस्थान सम्बन्धी उपद्रव—त्वचा सूख कर कठोर हो जाती है। कभी कभी उस पर एक प्रकार के धब्बे से ऊग आते हैं। उँगलियों के अग्रभाग मुग्दर के आकार धारण कर लेते हैं और नख टेढ़े हो जाते हैं।

फुफ्फुस-यक्ष्मा के वर्त्तमान रहते हुए, फुफ्फुस पर अन्य कीटाणुओं के आक्रमण।

यक्ष्मा कीटाणुओं के अतिरिक्त फुफ्फुस-प्रदाह कीटाणु (Pneumococci), इन्फ्लुयेञ्जा कीटाणु एवं अन्य पीव उत्पन्न करने वाले कीटाणु साथ ही साथ पाये जा सकते हैं। इनमें से अधिकांश बलगम द्वारा निकलते रहते हैं और अणुवीक्षण-यन्त्र द्वारा शीघ्र ही पहिचाने जा सकते हैं। इनकी उपस्थिति के कारण क्षत एवं लक्षण इत्यादि में विशेष परिवर्त्तन हो जाता है—ज्वर अधिक हो जाता है तथा अन्य लक्षण रुद्र रूप धारण करते हैं, पीव उत्पन्न करने वाले कीटाणु फुफ्फुस के सड़ने में बड़ी सहायता करते हैं तथा रोग को कई गुना बढ़ा देते हैं—

फुफ्फुस यक्ष्मा के साथ साथ वर्त्तमान रहने वाले अन्य रोग:—

फुफ्फुस प्रदाह। (lobar pneumonia) यह बहुधा मृत्यु का कारण होता है। जीर्ण फुफ्फुस यक्ष्मा में यह प्रायः अन्त समय उपस्थित होता है। यदि रोग के आरम्भ में इसका भी आक्रमण हो तो यक्ष्मा से पृथक् करना बहुत कठिन हो जाता है।

त्रिदोष ज्वर (Typhoid Fever) इसका विस्तार पूर्वक वर्णन पहले ही हो चुका है।

एरीसेप्लस (Erysepelas)—यह एक प्रकार का स्ट्रिप्टोकौकस कीटाणु जनित रोग है। कभी कभी तो यह लाभ पहुँचाता है क्योंकि इसके आक्रमण से खांसी कम जाती है किन्तु बहुधा यह भी मृत्यु का कारण ही होता है।

गोटी (Pox)—रोग के बहुत आरंभ में हो सकती है, इसके मध्य में नहीं देखी जाती, यदि रोगी को रोगाक्रान्त होने के उपरान्त गोटी का टीका लगाय जाय तो गोटी अपना नियमित रूप धारण करती है।

गुदा के घाव (Fistula in Ano)—फुफ्फुस यक्ष्मा के साथ साथ यह रोग-बहुधा सम्मिलित रहता है और इसका कारण भी यक्ष्मा कीटाणुओं का स्थानीय आक्रमण है। इसे काटने पर यह और भी ज़ोर पकड़ता है।

हृदय रोग (Heart disease)—साधारणतः यह नहीं पाया जाता।

प्रमेह (Diabetes)—यह होता तो बहुत कम है किन्तु यक्ष्मा के साथ साथ इसका उपस्थित होना मृत्यु की ही सूचना देता है।

कैन्सर (Cancer—एक प्रकार का गुल्म)। कैन्सर और यक्ष्मा में कोई विरोध नहीं दिखाई पड़ता, कभी कभी क्षय रोगी की मृत्यु कैन्सर से ही होती है।

आयु के दोनों छोरों पर फुफ्फुस यक्ष्मा जनित विशेषतायें:—

बाल्यावस्था । नितान्त बाल्यावस्था के रोगियों की कमी नहीं होती, कभी कभी रोग जन्म ग्रहण के पूर्व से ही वर्तमान रहता है—किन्तु ऐसे रोगियों की संख्या बहुत कम होती है।

वृद्धावस्था। पहले कुछ लोगों का यह अटल विश्वास था कि वृद्धावस्था में फुफ्फुस-यक्ष्मा का आक्रमण नहीं होता, किन्तु काल के प्रभाव से यह विश्वास निर्मूल हो चुका है। सच्ची बात यह है कि रोग बहुत छिपा रहता है और इसकी वृद्धि बहुत धीरे धीरे होती है, इसके अतिरिक्त वार्धक्य जनित अन्य रोगों के उपस्थित रहने के कारण इसके लक्षण और चिह्न बड़ी ख़ूबी के साथ छिप जाते हैं। फल यह होता है कि वृद्धावस्था में फुफ्फुस-यक्ष्मा बहुत से रोगियों की मृत्यु का कारण बनता है, अस्तु, ६० से अधिक आयु वाले (कभी कभी ६० से अधिक आयुवाले) व्यक्तियों में फुफ्फुस यक्ष्मा का पाया जाना तथा इसीसे उनकी मृत्यु होना कोई आश्चर्य जनक बात नहीं है।

फुफ्फुस-यक्ष्मा द्वारा मृत्यु की रीतियां।

(क) क्रमशः शक्ति-ह्रास (By Asthenia)। इस प्रकारकी मृत्यु प्रायः शान्ति पूर्वक होती है किन्तु कभी २ खांसी बहुत दुखदाई होती है। मृत्यु पर्यन्त चेतना बनी रहती है।

(ख) श्वासावरोध द्वारा (By asphyxia) इस प्रकारकी मृत्यु नूतन-यक्ष्मा वा फुफ्फुस-प्रदाहीय (Pneumonic) यक्ष्मा में होती है। जीर्ण-यक्ष्मामें इसकी मृत्यु नहीं देखी जाती।

(ग) हृदयके स्पन्दनावरोध द्वारा। साधारणतः इस प्रकार मृत्यु नहीं होती, किन्तु उन रोगियों की हो सकती है जो रोगकी अन्तिम अवस्थाओं में भी चलने फिरनेसे बाज नहीं आते। इसके लिए आवश्यक नहीं है कि हृत्पिंड अधिक वसावृत्त (Fatty) हो वा अन्य रोगों द्वारा पहलेसे भी आक्रान्त हो। कभी २ अत्यन्त रक्तक्षरण के कारण वा वृहद्रक्त-नलिकाओंमें रक्तके छिछड़े (Thrombus) जम जानेके कारण वा अन्य बाहरी पदार्थोंके प्रवेश करनेके कारण (Embolus) हृदय की गति एक दम रुक जा सकती है।

(घ) रक्तक्षरण द्वारा। किसी बड़ी रक्तनलिका के घिस कर फटनेके कारण अथवा उसकी दीवारोंके पतली हो कर फूलने तथा फटनेके कारण इतना रक्त स्राव हो सकता है कि उससे मृत्यु हो जा सकती है।

(ङ) मस्तिष्क सम्बन्धी उपद्रवों द्वारा। मस्तिष्कावरण-प्रदाहके कारण मूर्छा तथा मृत्यु सम्भव है। कँपकँपीके साथ मृत्यु बहुधा नहीं देखी जाती।

गणितका इतिहास

[लेखक श्री जनार्दन शुक्ल बी० एस-सी०]

मनुष्य जातिके इतिहासमें ऐसे ऐसे आविष्कार जैसे कि चकरीका पहिया है, बहुत पहले हो चुके होंगे। पर इनका कारण तो मनुष्यकी आवश्यकता ही है। किसी मनुष्यको एक पत्थर ले जाना था। उसे सूझा कि यदि उसको किसी चीज पर रख कर ले जाया जाय तो सुगमता होगी। और इसी प्रकार अकस्मात् किसी चतुर ने तुला दण्ड (Lever) का आविष्कार कर डाला। पर यह नहीं है कि जितनी विद्यायें इस संसारमें हैं वहम नुष्यकी आवश्यकताओं ही से निकली हों या उसकी आवश्यकताओंकी ही पूर्ति उनसे होती हो। अनेक विद्याओंकी उन्नति का कारण मनुष्यकी मानसिक लिप्सा भी है। यह संभव है कि वह विद्या आगे चल कर मनुष्यकी कुछ आवश्यकताओंकी पूर्ति करने लगें पर यदि इस आवश्यकताके लक्ष्य से उनकी उन्नति की जाती तो यह असंभव था कि वह यह फल देतीं जो कि मनुष्यकी मानसिक लिप्सासे मिला। गणितका भी यही हाल था। पहले तो इसकी उन्नति इस विचारसे हुई कि यह मनुष्योंकी कुछ आवश्यकताओंको पूरी करे, पर आगे चल कर उसकी उन्नतिका भार मनुष्यकी लिप्सा ही पर पड़ा। हाँ, यह अवश्य है कि अब गणितके उपयोग इतने अधिक हो गये हैं कि यह कहना कि इसकी उन्नतिका कारण मनुष्यकी मानसिक लिप्सा है या नहीं, व्यर्थ होगा।

जो हो, पहले पहल गणित विद्याका कुछ हाल मिश्र देशके लोगोंमें पाया जाता है। सबसे पहले जब मिश्र देशकी नील नदीमें बाढ़ आई और उसके मार्गमें परिवर्तन हो गया तो वहाँके लोगोंको भूमिके नापनेकी आवश्यकता पड़ी, जिससे गणितका ज्ञान वहाँके पुजारियोंको हुआ। इस प्रकार रेखा गणितका ज्ञान फैला। रेखा-गणितका दूसरा नाम भूमिति भी है जिससे यह ज्ञात होता है कि उपर्युक्त कथा ठीक है। मिश्रके लोगोंका उद्देश्य उनकी आवश्यकताओं ही पर निर्भर था। उनको मंदिर बनानेके लिये उत्तरी और दक्षिणी रेखाओंकी आवश्यकता पड़ी। इनको तो नक्षत्रों की सहायता से खींच लिया। पर जब पूर्वी रेखा का सवाल आया तो लम्ब रेखा कैसे खींची जाती? उसके लिये उन्होंने एक लंबी रस्सी ली और इसमें ३ : ४ : ५ के निष्पत्ति में गांठ लगादी। बीच के भाग को तो उन दो उत्तरी दक्षिणी रेखाके सहारे रक्खा और बाकी दो भागों को गाठों के सहारे घुमा कर मिला दिया। इस प्रकार एक गाँठ पर समकोण बना कर लम्ब खींचे। उन्होंने पूर्वी पश्चिमी रेखा खींची। इस सिद्धान्त का वर्णन यूक्लिडकी पुस्तकमें दिया है।

मिश्र देशकी भूमिति का हाल हमको अधिकतर पेपीरस (Papyrus) केद्वारा मिलता है। उसने मिश्र देश के एक अहमस (Ahmes) नामक पुजारीकी लिपि को ढूँढ कर एक डेढ वर्ष ईसा के पहले का हाल पता लगाया तो मालूम हुआ कि उनके कोई सम्बंध प्रमेयोपपाद्य के रूपमें नहीं दिये हैं बल्कि वस्तूपपाद्य के रूपमें हैं। उसके वर्णन से इसका भी ज्ञान होता है कि मिश्र के गणितज्ञ सूचीकी नाप का कुछ ज्ञान रखते थे। वह भिन्न को कई भिन्नों में विभाजित करनेमें भी निपुण थे। उन्होंने "+" "—" "=" आदि का भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था। भिन्न और इन चिह्नों का ज्ञान आरम्भ में बड़ी कठिनता से प्राप्त हुआ होगा। यह इतना सरल नहीं है जितना कि अब हम लोगों को मालूम होता है।

मिश्र देश के लोगों के बाद गणितकी विद्या ग्रीस देशमें फैली। ग्रीक लोगों ने बीजगणित पर तो बिलकुल ध्यान नहीं दिया, न अंकों की ओर ही उनकी रुचि हुई, पर हाँ रेखा गणितमें उन्नति होती रही। जोड़ने घटानेकी कठिनता उनको इस कारण न होने पायी कि उन्हें हिन्दुओं और अरब के ग्रन्थों से abacus rule मालूम होगया था। इस प्रणाली से यदि एकसे नौ तक की संख्या मालूम हो तो

उसको उचित स्थान पर रखने से कोई भी संख्या लिखी जा सकती है। हाँ, शून्यका ज्ञान होना भी इस प्रणाली में बहुत ही आवश्यक है। ६४० वर्ष ईसा के पहले जब थेलस (Thales) मिश्र देश में गया तो पहले पहल वह इस विद्या को ग्रीस में लाया। उसने खुद भी भूमितिमें अनेक संबंध स्थापित किये पर उनको एक पद्धतिमें न रख सका। उसके बाद पाइथागोरस (Pythagoras) ने भूमिति की उन्नति की। उसने भूमिति के जो संबंध स्थापित किये वे मनुष्यकी आवश्यकतायोंके आधार पर बिलकुल न थे। इसके बाद औरों ने भी इस विद्याके अध्ययनमें रुचि लेनी आरम्भ करदी। उनमें से मुख्य छः सात हैं। प्रथम तो प्लेटो, फिर आरचिटस (Archytas) मिनाकमस (Menaechmus), यूक्लिड, आरकेमीडीज़, अपोलोनियस (Appollonius) आदि। मिश्र के लोगों को तो केवल धरातल भूमिति का ही ज्ञान था पर थेलस द्वारा ग्रीक के लोगों को तर्क का ज्ञान हुआ जिस से वे एक संबंध से दूसरे संबंध स्थापित करने लगे। यह बात बड़ी नवीन थी और इस कारण संसार को इससे बड़ा लाभ हुआ। थेलस के द्वारा ही पहले पहल पटरी और परकालका आविष्कार हुआ जिसके द्वारा वह एक चक्रका क्षेत्रफल निकालनेमें समर्थ हुआ। ऐसे छोटे छोटे विचार जैसे कि समद्विबाहु त्रिभुज क्या है, व्यास एक परिधि को आधोआधमें बांटता है, अगर एक त्रिभुज जिसका आधार एक व्यास हो खींचा जाय और उसका शीर्ष एक वृत्त की परिधि पर हो तो उस शीर्ष पर समकोण होगा, आदि उन्हीं के द्वारा मनुष्य को प्राप्त हुये।

इस समय के बाद ग्रीक लोगोंमें गणितके दो विभाग हो गये। एक तो ऐसे संबंधों की उपपत्ति जो विश्लेषण रूपमें हो, और दूसरे बीजगणित विश्लेषण रूप को उपपत्तिमें परिणाम पहले ही मान कर उपपत्ति करते हैं और फिर उसको बैठाल लेते हैं। यदि वह उपपत्ति ऐसी है कि उसका संश्लेषण भी हो सकता है तो परिणाम ठीक है। बीजगणित की ओर ग्रीक लोगों का ध्यान बहुत दिनोंमें गया। ईसा के ४०० वर्ष बाद डायोफेण्टस (Diophantis) ने पहले अंकगणितमें शब्दों और चिह्नों का प्रयोग किया जिसके द्वारा बड़े कठिन तर्क भी अति सुगम हो गये। यही नहीं, अर्थशास्त्रमें भी अधिक लाभ हुआ। और अंतमें पाइथागोरस ने अपरिमाणशील संख्याओं को ढूँढ निकाला। उसने कहा कि एक वर्ग का कर्ण एक अपरिमाण शील संख्या है। एक अपरिमाणशील संख्या वह है जिसका ठीक मान (Value) न मालूम हो पर उससे अधिक से अधिक निकट का अनुमान हो सके। इस प्रकार ग्रीक के लोगों ने पहले पहल संख्या को परिमाण से पृथक किया। इससे मनुष्य मात्र को बड़ा लाभ हुआ। ग्रीक लोगों को बिंदुपथ का भी ज्ञान था जिससे उनको सर्वे में बड़ी सहायता मिली, इसी सर्वेकी आवश्यकता के कारण उनका विन्दुपथका ज्ञान हुआ और उसी की सहायतासे त्रिकोणमिति की उन्नति होने लगी पहले त्रिकोणमितिको तो हिपारकस (Hiparchus) ने निकाला पर उसकी उन्नति बहुत दिनों तक रुकी रही। हिन्दुओं ने इस पर कुछ ध्यान दिया था पर उनको गिने कौन। अरब के लोगों को भी त्रिकोणमिति से रुचि थी क्योंकि उसका काम सर्वेमें पड़ता है। कोण की नाप तो ठीक ठीक हो सकती है और इसी के आधार पर रेखा की नाप का अंदाज लगाना ही त्रिकोणमिति का काम है।

ग्रीक लोगोंके बाद रोमवासियोंकी बारी आती है। इनके राज्यमें कोई नई कला या विद्या का ज्ञान तो नहीं प्राप्त हुआ पर हाँ अरब आदि देशों से इन्होंने गणित विद्या को लेकर उसका प्रचार ११५० से १४५३ तक मध्य यूरोपमें किया। इस प्रकार गणित का प्रचार ग्रीक लोगों के अलावा सम्पूर्ण यूरुप में होने लगा।

आधुनिक गणित का आरम्भ ७ वीं शताब्दी ईसाके बादसे हुआ। यह सबको विदित है कि योरप ने गणितमें डेढ़ हज़ार वर्ष तक कोई उन्नति नहीं की। उसका मुख्य कारण यह था कि गणितके विषयमें प्रणाली ठीक न थी और न किसी की उस ओर रुचि ही थी। आधुनिक गणितके कर्ता धर्ता रेनी-डेकार्टीज़ (Reni Descartes) का समय १५९६ से १६५० तक है। इनमें विशेषता यह थी कि यह अपने विचारों को बहुत सरलता और सुगमता के साथ प्रगट करते थे। इन्होंने लिखा है कि "बड़ी से बड़ी विचारगति भी जिससे गणतज्ञ निर्णय तक पहुँचते हैं सदा सरल होती है और विचार-धारा सब विषयोंमें एक ही समान बहती है। ऐसी कोई भी बात नहीं है जो इतनी कठिन हो कि हम उसको न समझ सकें। यदि हम केवल इस बात का ध्यान रक्खें कि कौन बात हमारे कामकी है और कौन नहीं और उसमें कितना २ सत्य है और कितना झूठ।" उनको इसका बड़ा ध्यान था कि कई विचार कहीं एक साथ न मिल जांय। जिस समय डेकार्टीज़ बीज गणित और भूमिति के विचारोंमें मग्न थे एक और ऐसा विचार कल्पित हुआ जिसने कि गणित की बहुत सहायता की। वह था घाताङ्कगणन। इसकी उटपति जोन नेपियर (John Napier) से हुई। इनका मुख्य लाभ यह है कि गुणा और भाग का काम सङ्कलन और व्यवकलन से ही हो जाता है।

वीजगणित के लिये जो शब्द अंगरेज़ी भाषा में हैं वह अरबी भाषाका अपभ्रंश है जिसके पहले शब्दका अर्थ है कि एक समीकरण के दोनों ओर से यदि एक ही संख्या जोड़ या घटा दी जाय तो कोई अंतर न पड़ेगा और आखीर के शब्द का कि यह सरल क्रिया का एक क्रम है। बीजगणित का प्रचार अरबों में मोहम्मद बेन मूण उपनाम अलकारिसमी के द्वारा हुआ जिसमें कि ८३० वर्ष ईसा के बाद के समय में यह विद्या हिन्दुओंसे प्राप्त की थी। इस विद्या से जो लाभ मनुष्य को हुये या यह कहिये कि यूरुप में जो दशमलवका प्रचार हुआ वह उन्हीं अरबकी पुस्तकोंके आधार पर हुआ है जो कि ये हिन्दुओं से लिख लाये थे। अरबके लोगोंमें यह अवश्य था कि दूसरेके गुणोंकी परख करनेमें वे न चूकते थे। इसी कारण उन्होंने ग्रीक और हिन्दुओंके गणि-तज्ञोंकी पुस्तकोंकी लिपि कर डाली थी। खुद उन्होंने ऐसा कोई प्रभुत्व का काम नहीं किया जिससे गणितको कोई अधिक लाभ हुआ हो, पर इसका लाभ अब मालूम होता है कि अरबों ने कितना बड़ा काम किया। यदि उनकी दूसरोंकी रचनाओंमें रुचि न होती तो यूरुपमें गणितकी इतनी उन्नति न हुई होती। बीज गणित का प्रचार इटली में १२०२ ई० के आस पास पीसा के लियेनार्डोकी रचनाओंके द्वारा हुआ जिन्होंने अलकारिसमीकी लिपिसे ज्ञान प्राप्त किया था। इंगलेण्डमें बीजगणितका प्रचार रॉबर्ट रेकर्डके द्वारा १५१० से १५५२ तक हुआ। उनका काम 'व्हेटस्टोन आव् विट' नामक पुस्तकमें है जो उसी समय प्रकाशित हुई थी। अलबर्ट गिराड, (Albert Girad) टामस हेरिआट, डेकार्टिज़ आदिने उसमें बड़ी उन्नतिकी। डेकार्टिज़ ने पहले पहल यह किया कि अंगरेजी वर्णमालाके आदि अक्षर बीजगणितमें जानी हुई संख्याके लिये और अंतके अक्षर उन संख्याओंके लिये जो मालूम करनी हो या न मालूम हो निश्चित किये। इस प्रकार यदि किसी समीकरणका रूप इस प्रकार है जैसे $ax+by=c$ तो a, b और c मालूम रहते हैं और x और y निकालना होता है जिनका मान a, b, c के रूपमें होता है। इसका एक बड़ा लाभ यह था कि तब हीसे मनुष्योंको विषमका ज्ञान हुआ जिसके आधार पर फलकी भी नीव पड़ी। इस प्रकार अगर x के एक मान पर y का भी एक मान निकाला जा सके तो y, x का फल हुआ। इसी विचारके आधार पर आधुनिक कलन यानी चलन कलन और चलराशिकलन आदिकी नींव पड़ी।

डेकार्टीज़ ने हेरिग्राट की मदद से एक और बड़ा काम किया, वह यह था कि एक समीकरण ax+by=c कय+खर=ग के बजाय यदि ax+by-c कय+खर—ग=० लिखा जाय तो समीकरणके घातोंका ठीक २ पता लग सकेगा और उसीके आधार पर उच्च घातोंका विवरण निकाला जा सकेगा। इन्हीं विवरणों के निकालने में ही इसी समय कल्पित मूल भी निकाले जाने लगे।

जब डेकार्टे आदि को समीकरण का ज्ञान हुआ तो उसी से भुजयुग्म रेखागणित की उत्पत्ति हुई। एक वक्र की कल्पना कीजिये तो उसको आप एक बिन्दु का बिन्दुपथ कह सकते हैं और इस बिन्दुपथ को आप समीकरण के द्वारा भी बना सकते हैं। इस प्रकार यदि हम एक बिन्दु वक्र पर चुनें तो उसकी स्थिति का ठीक पता दो स्थापित रेखाओं से लम्ब की लम्बाई जानने पर मालूम कर सकते हैं और इन्हीं लम्बाइयों को यदि य और र के द्वारा पुकारें तो उन्हीं से वक्र की शकल को खींच सकते हैं। यही बात भुजयुग्म रेखागणित का आधार है जिसकी नीव पहले पहल डेकार्टीज़ ने डाली। जिस समय उन्होंने इस ओर ध्यान दिया उसकी महिमा कोई न समझ सका पर आगे चल कर लीब्निज़ ने उनकी इस रेखागणित को छुपा कर तैयार कराया। इस गणित के भाग से हमको ऋणात्मक संख्याओं का भी ज्ञान होने लगा। इस मूलबिन्दु के एक ओर ऋण और दूसरी ओर धन की तरफ वक्र खिंच सकता है। और भी पहले हम कह आये हैं कि एक √२ अपरिमाणशील संख्या है पर इसको लम्बाई वक्र के रूप में एक कर्ण के रूप में समझी जा सकती है। इस प्रकार रेखा गणित और बीज गणित का परस्पर मेल हुआ। अब जिस प्रकार दो चलन संख्याओं के रहने से धरातल वक्र का ज्ञान होता है इस प्रकार संसार की जितनी वस्तु हैं उनको हम गणित द्वारा समझ सकते हैं। यहीं इस काल में गणित की उन्नति हुई। यही नहीं पर मनुष्यों को इसी समय अंतिम सीमा यानी Limt का भी ज्ञान होने लगा जो बड़ी से बड़ी व छोटी से छोटी हो सकती है और अनेक अपरिमाणशील संख्याओंके ज्या, Sine ज्या, आदिके रूपमें रख कर त्रिकोणमिति का भी समागम इसी समय इसमें हो गया।

ग्रीक लोगों ने इस बात की चेष्टा की थी कि एक ऐसा ढङ्ग निकाला जाय कि जिससे किसी भी वक्रका क्षेत्रफल निकाला जा सके और उनको इतना भी मालूम हुआ कि अगर एक चतुर्भुज का क्षेत्रफल मालूम हो तो ऐसा हो सकता है, पर उनको अंदाज (Approximation) का नियम न मालूम होने के कारण सफलता न प्राप्त हुई। इस प्रकार यदि एक चक्र हो तो उसे अनेक त्रिकोणों में विभाजित कर सकते हैं और यदि एक त्रिकोण का क्षेत्रफल मालूम हो तो सब का मिला कर भी मालूम होगा। पर इन त्रिकोणों का क्षेत्रफल चक्र के क्षेत्रफल से कम होगा। हां अब अगर अंदाज का ज्ञान होता तो यह खींचा जा सकता था कि यदि त्रिकोण अनेकों यानी बहुत हो जावें तो दोनों के क्षेत्रफल बराबर हो जावेंगे तो कुल काम बन गया होता। पर ऐसा नहीं था। क्योंकि ज़ोनो ने इसके विरुद्ध बड़ा ज़ोर दिया था। केप्लर आदि ने १६३० ई० के आस पास इन समस्याओं को हल किया। उसी समय केवालिरी ने अबंध से हम लोगों को परिचय कराया जिसके कारण किसी भी क्षेत्रफल का निकालना सरल हो गया। यही नहीं पर इन्हीं महाशय के चेलों ने चलन कलन और अत्कलपकलन की नीव इन्हीं विचारों पर डाली जो अब गणित का मुख्य आधार है और जिन पर कुल भौतिक विज्ञान आधारित है।

भुजयुग्म रेखागणित और कलन की उत्पत्ति से गणित को कितना लाभ हुआ इसका बतलाना हमारी सामर्थ के परे है पर हां इतना ही कहना ठीक है कि बड़ी से बड़ी विचार धारा भी जो कभी

अपनी पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो न हो सकती, उसकी अब एक मामूली गणितज्ञ आसानी से पूर्ति कर सकता है। इन्हीं दोनों के आधार पर अनेक वैज्ञानिकों और गणितज्ञों ने गणित के अनेक विषय खोल दिये हैं। इन्हीं विचारों की नीव पर भौतिक विज्ञान खड़ा है जिसकी सहायता से मनुष्य को कितने लाभ हुये हैं और हो रहे हैं। गतिविद्या, स्थितिविद्या, जल गति, जल स्थिति विद्या आदि सभी इन पर निर्भर हैं। इनके मुख्य कर्ताओं का नाम कौन न जानता होगा। न्यूटन, गेलिलियो को कौन नहीं जानता। जोन बर्नाउली (१६६७ से १७४२ तक) यूलर (१७०७-१७८३) क्लेवेराट (१७१३-६८), लैग्रेञ्ज (१७३६-१८१३) लाप्लास (१७४९-१८२७) फोरियर (१७६८-१८३०), पोयसां (१७८१-१८५०) आदि के भी काम प्रभावशाली हैं, जिन्होंने उन विचारों की उन्नति इतने वेग और ठिकाने से को कि अब मनुष्य मात्र को उन पर गौरव है।

पृथ्वीका गर्भस्थ धन

[ले० श्री जगपति चतुर्वेदी]

खानोंकी खुदाई

संसारमें अत्यधिक लाभदायक, मनोरंजक और बहुमूल्य वस्तुओंमेंसे कुछ हम लोगों के पैरके नीचे मिट्टीमें छिपी हुई हैं। आजकल सबसे लाभदायक वस्तु पत्थरका कोयला है किन्तु इसका महत्व अधिक दिनोंमें जाना जा सका। यदि हम आज से दो सौ वर्ष पूर्व इस भूतल पर होते तो कदाचित् ही कहीं पत्थर-कोयलेकी ज्वाला दिखाई पड़ती, किन्तु आज संसारके सभी देशोंमें इसका पर्याप्त प्रचार हो चुका है।

पूर्व कालमें पत्थर-कोयला (खनिज-कोयला) अज्ञात था परन्तु बहुमूल्य धातुओं का मूल्य भली भाँति ज्ञात था और जिस देशमें सोने और चांदी की खानों का बाहुल्य था वहाँ इनकी रक्षाके लिये प्रबल सेना की आवश्यकता होती थी। आजकल अपनी इच्छानुसार वस्तु पाने का सबसे सुगम और संतोषजनक साधन वस्तुओंका विनिमय है परन्तु प्राचीन कालमें अधिक प्रचलित साधन आक्रमण था और प्राचीन इतिहासके अत्यधिक प्रसिद्ध युद्धोंमें से अधिकांश विजय होने पर अतुल धन और वैभव प्राप्ति की लालसासे किये गये थे। जब दारा और सिकन्दर महान् ने अपनी सेनाओंको दूर देशों तक चढ़ाया था तो उनको उत्साहित करने वाली बात धन प्राप्ति की इच्छा थी जो नगरोंके लूटे जाने पर पूरी हो सकती थी। फोनीशियाके उपनिवेश कार्थेज पर रोमवालोंके आक्रमणका विशेष कारण उनसे स्पेनकी सोनेकी खान छीन लेना था। कालान्तरमें कोलम्बस की यात्रामें कार्टीज़ द्वारा मैक्सिको पर विजय प्राप्ति, पिज़ारो द्वारा पेरूके अधिकृत होने और सर फ्रांसिस ड्रेक की लूटकी यात्रायें सबकी सब मुख्यतया सोना और चांदी प्राप्त करनेके लिये की गई थीं जिन्हें दूसरों ने परिश्रम द्वारा पृथ्वीके गर्भ से प्राप्त किया था। यदि हम किसी देशका इतिहास अपने समीप वहाँका भूगोल रखकर पढ़ें तो हम देखेंगे कि वहां की प्राकृतिक सामग्री उसकी उन्नति और संवर्द्धन पर कितना अधिक प्रभाव डालती है। यदि वह देश प्रचुर मात्रामें खाद्य पदार्थ उत्पन्न करनेमें समर्थ है तो वहाँकी मनुष्य-संख्या अधिक होगी परन्तु मनुष्य साधारणतया सादा, मितव्ययी जीवन व्यतीत करेंगे। यदि वहाँ खाद्य पदार्थों को छोड़ करके अन्य लाभदायक वस्तुयें वा बहुमूल्य खनिज पदार्थों की अधिक मात्रा उपलब्ध होगी तो वहाँ मनुष्य-संख्या न्यून या अधिक होना अन्य देशोंसे खाद्य प्राप्त करनेकी सुविधा पर निर्भर होगा। यदि वहाँ पत्थर कोयला, तेल या जल आदि शक्ति उत्पन्न करने वाले प्रचुर साधन विद्यमान होंगे तो वह खाद्य पदार्थ और कच्चा माल उत्पन्न कर सकने वाली भूमिके अभावमें भी वह एक महान कारबारी वा शिल्प निर्मायक वा कल कारखानोंसे प्राकृतिक सौंदर्य नष्ट हो जाता है। वहाँके मनुष्यों का जीवन अधिक उद्योगी तो होता है किन्तु उनके स्वास्थ्य की दशा बुरी होती है।

सबसे प्राचीन सभ्यताओंके युगसे पृथ्वीकी पपड़ीमें छिपा हुआ धन पृथ्वीसे बलपूर्वक छीननेकी समस्या विशेष महत्वपूर्ण रहती आई है और खानों की खुदाई सबसे प्राचीन विद्याओंमेंसे एक है। यह कितने पूर्व प्रारम्भ हुई इसे तो कोई नहीं कह सकता, परन्तु इतना हम जानते हैं कि आजसे पांच सहस्र वर्ष पूर्व प्राचीन मिस्र निवासी खानसे सोना निकालना अवश्य जानते थे और उससे भी पूर्व लोगों को ताँबे और लोहेका ज्ञान था।

प्रारम्भिक खनकों (खान खोदने वालों) के पास जब खान खोदनेके हथियार नहीं थे तो खोदाई के लिए किसी चट्टानको ऐसे पत्थरके औजार से तोड़ते थे जो चट्टानसे अधिक दृढ़ होता था। कभी कभी वे चट्टानको तोड़नेके लिए उसके सामने आग जलाते थे। इस तरह कार्य बहुत अधिक

परिश्रम का था और बहुत अधिक मजदूरोंके लगने पर ही कुछ विशेष खुदाई हो सकती थी। जब खानके अन्दर खुदा हुआ गड्ढा जिसे खानिगह्वर कहा जा सकता है, अधिक लम्बा हो जाता तो उसके भीतरी भाग में हवाका पहुँचना कठिन हो जाता, इसलिए खुदाईका कार्य बहुत ही अस्वस्थ्यकर हो जाता। जब कार्थेज वाले ईसाके पूर्व सन् ३०० और २०० के मध्य स्पेनकी खाने खुदवा रहे थे तो वहाँ मरण-संख्या इतनी अधिक बढ़ गई थी कि उन्हें आफ्रिकासे दास पकड़ कर लाने पड़ते थे। आजसे दो सहस्र वर्ष पूर्व इसी समय दास प्रथाका एक रूपसे श्रीगणेश हुआ था, जिसका प्रचार पाश्चात्य देशोंमें १८०० वर्षो से अधिक तक रहा।

इस तरह प्राचीन कालमें खानकी खुदाई प्रारम्भ तो हुई थी परन्तु वह नाममात्रको ही थी और अठारहवीं शताब्दीके आगमन तक संसार भरमें पृथ्वीके गर्भ का धन मुख्यतया खानोंमें ही गुप्त रहा। केवल थोड़ी बहुत चाँदी और सोना मनुष्यके हाथमें पहुँच सका था जो तलवारके बल पर हस्तान्तरित होता रहता था। परन्तु अठारहवीं शताब्दीमें समय ने पलटा खाया और पत्थर कोयले तथा लोहे का भाग्य चमका। वाष्प-इञ्जिन और उससे चलने वाली कलोंका जन्म और प्रचार होनेसे उनके बनानेके लिए अधिक लोहेकी आवश्यकता हुई और लोहेकी आवश्यकताके कारण लोहा ढालनेके कारखानों (आइरन फाउंड्री) में पत्थर-कोयलेकी अधिक आवश्यकता हुई जो अधिक प्रज्वलित होनेके लिए एक दूसरे रूपमें कर प्रयुक्त किया जाता था जिसे कोक कहते हैं। इस प्रकार कल कारखानोंका युग प्रारम्भ होने पर सन् १७७० ई० के पश्चात् पत्थर कोयले और लोहेकी दिन पर दिन अधिकाधिक आवश्यकता ने खानोंकी ओर लोगोंका विशेष ध्यान आकर्षित किया और संसारके सभी सभ्य देशोंमें उनसे लोहे और पत्थर कोयलेकी तीव्र गतिसे खुदाई होने लगी, जहाँसे उनको कारबारी प्रान्तों तक ले जानेके साधन उपलब्ध थे।

सन् १८४९ ई० में केलिफोर्निया में और सन् ई० में आस्ट्रेलिया में सोनेका पता लगनेके कारण इस धातुकी आमदनी बहुत अधिक हो गई। इसके साथ ही शिल्प निर्माणमें उन्नति होने के कारण अन्य धातु ताँबा, सीसा, टिन, जस्ता और प्लेटिनम (परशैप्यम्) की माँगभी बढ़ गई है जिससे खानकी खुदाई आज संसारमें सबसेबड़ा व्यवसाय हो गया है।

समालोचना

स्मृतिमन्दिर प्रवेशकः (हिन्दी प्रोडिंग्ज) ले० श्री श्यामकुमार जी। प्रकाशक, शान्ति प्रेस, शीतला गली, आगरा। सजिल्द, छपाई कागज़ उत्तम। पृ० सं० २४२, मूल्य १॥)

आजकल प्रायः सभी अदालतों में दरख्वास्त आदि के कामों में उर्दू या अंग्रेज़ी का व्यवहार होता है। जहाँ कहीं नागरीलिपि प्रचलित भी होगई है, वहां भाषा तो वही पुराने ढर्रे की उर्दू ही है। इसको देख कर प्रत्येक हिन्दी भाषी को ग्लानि अवश्य होती है। साधारणतः लोगों का विचार है कि न्यायालय सम्बन्धी भाषाके उपयुक्त अभी हिन्दी भाषामें पारभाषिक शब्द हैं ही नहीं। यह बात बहुत कुछ ठीक भी थी। आवश्यकता इस बात को थी कि संस्कृत के प्राचीन साहित्य से इस प्रकारके पारभाषिक शब्दों का संग्रह किया जाय, और जहाँ भावसूचक शब्द न मिलें वहाँ नये शब्द भी बनाये जाँय। हमें यह देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि श्री श्यामकुमार जी ने इस ओर सफल प्रयत्न किया है। उनकी प्रस्तुत पुस्तक से एक चिर-आवश्यकता की पूर्ति होगी।

इस पुस्तक में चार खंड हैं। पहले खंडमें ५० पृष्ठोंमें लेखक ने योग्यता पूर्वक सैद्धान्तिक दृष्टि से इस पुस्तक के उद्देश्य, हिन्दी और उर्दू के प्रश्न, और पारभाषिक शब्दोंके निर्माणके विषय में उचित प्रकाश डाला है। दूसरा खण्ड स्मार्त्त शब्द-कल्पद्रुम है जिसमें स्मर्त्ति-शब्दों का संग्रह दिया गया है। इसमें अंग्रेज़ी के शब्दोंको सफलता पूर्वक भाषान्तरित किया गया है। यह खण्ड बहुत ही उपयोगी है।

तीसरा खंड अभियोग-आवेदन पत्र है। इस में यह स्पष्टतः दिखाया गया है कि अर्ज़ियां या दरख़्वास्त हिन्दीमें किस सुन्दरता और रोचकता से लिखी जा सकती हैं। यह खंड हमारे मुख्तारों पेशकारों, और कोर्टके क्लर्कोंके लिये आदर्श रूप होगा। यह खंड सबसे अधिक महत्व पूर्ण है।

चौथे खंडमें साहित्य सम्मेलन की आरायज नवीसी परीक्षा का सम्पूर्ण पाठ्य विषय दिया गया है। अतः इसकी उपयोगिता विद्यार्थियों की दृष्टिमें कुछ कम नहीं है।

यह पुस्तक हिन्दी साहित्यमें उच्चस्थान पाने योग्य है। इसका उपयोग प्रयोगात्मक रुपमें कचहरियों में होगा या नहीं, यह कहना कठिन है, पर हमें पूर्ण विश्वास है कि वायुमण्डल हमारे अनुकूल परिवर्तित हो रहा है और एक समय आयगा जब न्यायालयोंमें हिन्दी की दुन्दुभी अवश्य बजेगी और उस समय श्रीश्यामकुमार जी के श्रमका महत्व समझमें आवेगा। हम लेखक महोदयके अत्यन्त आभारी हैं कि उन्होंने साहित्य की एक बड़ी आवश्यकता को पूरा किया है। हमें आशा है कि हिन्दी जनता इससे यथोचित लाभ उठावेगी।

—सत्यप्रकाश

आयुर्वेद-संदेश का वातांक—

दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज लाहौरसे आयुर्वेद संदेश नामक द्विमासिक पत्रिका निकलती है। इसका अषाढांक वातांक है। कफ़, पित्त, वात आदिका हमारे पुराने आयुर्वेदमें विशेष महत्व है। वर्तमान चिकित्सक-विज्ञान तो इसमें विश्वास नहीं करता है। अस्तु, वात क्या है, शरीरमें इसका क्या उपयोग है, इसमें विकार होनेसे कौन कौनसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं, आदि विषयों पर लेखोंका उचित संग्रह किया गया है। यह वातांक सर्वथा संग्रहणीय है।

—सत्यप्रकाश

सूर्य-सिद्धान्त

(गताङ्क से आगे)

[ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी० एल० टी० विशारद]

सकृदुद्गतमब्दार्धं पश्यन्त्यर्कं सुरासुराः ।
पितरः शशिगाः पक्षं स्वदिनं च नराभुवि ॥७४॥

अनुवाद—सुर और असुर एक बार के उदय हुए सूर्य को लगातार आधे वर्ष तक देखते रहते हैं, चन्द्रलोकके निवासी पितृगण उसको एक पक्ष तक और पृथ्वी के निवासी मनुष्य उसको अपने एक दिन तक देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोकके पूर्वार्धका अर्थ वही है जो ६७ वें श्लोकमें बतलाया गया है। उत्तरार्धके प्रथम पदके अर्थमें ही कुछ विशेषता है जिसे समझाने की आवश्यकता है। सनातनधर्मी हिन्दुओं का विश्वास है कि चन्द्र-गोलके ऊर्ध्व भागमें पितृगण निवास करते हैं। यह भाग पृथ्वीके सन्मुख नहीं होता। पाश्चात्य ज्योतिषी भी कहते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा इस प्रकार करता है कि इसका अधोभाग ही पृथ्वीके सन्मुख रहता है और ऊर्ध्व भाग सदैव पीछे रहता है। इसलिए चन्द्रमा अपने अक्ष पर एक भ्रमण उतने ही दिनों में करता है जितने दिनमें वह पृथ्वीकी परिक्रमा करता है। इसका प्रमाण कठिन नहीं है। चन्द्र बिम्बको ध्यानसे देखने पर ज्ञात होता है कि उसके काले धब्बे बिम्बके किनारेसे सदैव एक ही स्थितिमें देख पड़ते हैं जिससे प्रकट होता है कि चन्द्र बिम्बका वह भाग जो पृथ्वीके सन्मुख है सदैव उसी दशामें रहता है अर्थात् चन्द्रमाका अक्ष-भ्रमण-काल उसके परिक्रमा कालके समान ही होता है। इस पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रमामें अक्ष-भ्रमण होता ही नहीं। परन्तु यह ठीक नहीं है। यह एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा। एक दीपक बीचमें रख दीजिये और उसकी ओर देखिए। मान लीजिए कि दीपक आपके उत्तरकी ओर है। अब दीपक को देखते हुए आप उसके चारों ओर घड़ीकी अनुकूल दिशामें घूमिए। जब आप चौथाई चक्कर कर लेंगे तब दीपक आपके पूरब हो जायगा। आधा चक्कर कर लेने पर दीपक आपके दक्षिण हो जायगा, तीन चौथाई चक्कर करने पर वह आपके पच्छिम हो जायगा और पूरा चक्कर करके उसी स्थान पर आ जाने पर जहाँसे चक्कर लगाना आरम्भ किया था वह दीपक फिर आपके उत्तर हो जायगा। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि इस प्रकारके एक चक्करमें आपका मुख सदैव दीपककी ओर रहता है और पीठ सदैव उसके पीछे। साथ ही साथ आपका शरीर भी एक बार घूम जाता है क्योंकि घूमने में भी तो आपका मुख उत्तर, पूरब, दक्षिण और पच्छिमकी ओर होता रहता है।

जब चन्द्रमाका ऊर्ध्व भाग सदा पृथ्वीसे विमुख रहता है तब उसका सम्बन्ध सूर्यसे किस प्रकार रहता है ? अमावास्या के दिन सूर्य और पृथ्वीके बीचमें चन्द्रमा रहता है इसलिए इसका ऊर्ध्व भाग सूर्यके ठीक सामने रहता है। ऊर्ध्व भागमें पितृलोग निवास करते हैं इसलिए अमावस्याके दिन सूर्य पितरोंके ठीक सिर पर रहता है अर्थात् इस दिन उनका मध्याह्न होता है। इसीलिए अमावास्या के मध्याह्न कालमें पितरोंके लिए श्राद्ध तर्पण आदि किये जाते हैं। पूर्णमासीके दिन इनकी मध्यरात्रि होती है। कृष्ण पक्षका आधा भाग बीतने पर सूर्य

पितरोंको उदय होता हुआ देख पड़ता है और शुक्लपक्षके आधे भाग तक वह बराबर उनको देख पड़ता है अर्थात् पितरोंका प्रातःकाल कृष्णपक्षकी अष्टमीको होता है और सायंकाल शुक्ल पक्षकी अष्टमी को।

ग्रह कक्षाके और ग्रह गतियोंका सम्बन्ध—

उपरिस्थस्य महती कक्षाऽल्पाधः स्थितस्यच ।
महत्याकक्षया भागा महान्तोऽल्पास्तथाल्पया ॥७५॥
कालेनाल्पेन भगणं भुङ्क्तेऽल्प भ्रमणाश्रितः ।
ग्रहः कालेन महता मण्डले महति भ्रमन ॥७६॥
स्वल्पयातो बहून भुङ्क्ते भगणांश्छीत दीधितिः ।
महत्या कक्षया गच्छंस्ततः स्वल्पं शनैश्चरः ॥७७॥

अनुवाद—(७५) जो ग्रहकक्षा ऊपर है अर्थात् पृथ्वीसे दूर उसका परिमाण अधिक है और जो ग्रहकक्षा है अर्थात् पृथ्वीसे निकट है उसका परिमाण कम है। बड़ी कक्षाके अंश बड़े और छोटी कक्षाके अंश छोटे होते हैं। (७६) छोटी कक्षा पर चलने वाले ग्रह अल्प कालमें अपना भगण अर्थात् चक्कर पूरा कर लेते हैं और बड़ी कक्षा पर चलने वाले ग्रह अधिक कालमें अपना भगण पूरा करते हैं। (७७) चन्द्र कक्षा बहुत छोटी है इसलिए चन्द्रमा अनेक भगण पूरा करता है जब कि शनिश्चर बड़ी कक्षामें होनेके कारण थोड़े ही भगण पूरा कर पाता है।

विज्ञान-भाष्य—ग्रहोंकी कक्षाओं और उनकी गतियोंके सम्बन्धमें मध्यमाधिकार श्लोक २६, २७ तथा उसके विज्ञान भाष्य पृष्ठ २४—२६ में कुछ बतलाया जा चुका है इसलिए यहाँ अधिक विस्तारकी आवश्यकता नहीं है। बड़ी कक्षाके अंश बड़े और छोटी कक्षाके अंश छोटे कैसे होते हैं इसका प्रमाण पृष्ठ २४ के चित्र १ से सहज ही मिल सकता है। बड़े वृत्तका २४ अंश जितना बड़ा है उतना ही छोटे वृत्तका ३६ अंश है अर्थात् बड़े वृत्तका एक अंश छोटे वृत्तके एक अंशसे बड़ा है। यह भी स्पष्ट है कि जो ग्रह बड़ी कक्षामें भ्रमण करते हैं उनका भगण काल बड़ा और जो ग्रह छोटी कक्षामें भ्रमण करते हैं उनका भगण काल छोटा होता है। परन्तु ग्रहके भगणकाल और उसकी दूरीमें ऐसा सरल सम्बन्ध नहीं जैसा कि भारतीय ज्योतिषी समझते थे और जैसा कि इसी अध्यायमें आगे बतलाया गया है। यह सम्बन्ध केपलरके तीसरे नियमके अनुसार है जो ग्रहगतियों और उनकी दूरियोंके सूक्ष्म विचार से निश्चित किया गया है (देखो पृष्ठ १२७—१३६)।

दिनपति, मासपति आदि जानने की रीति

मन्दादधः क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपः ।
वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीयाश्च प्रकीर्तिता ॥७८॥
ऊर्ध्व क्रमेण शशिनो मासानामधिपाः स्मृताः ।
होरेशा सूर्यतनयादधोधः क्रमशस्तथा ॥७९॥

अनुवाद—(७८)—शनिसे नीचेका चौथा ग्रह क्रमानुसार दिनपति और तीसरा ग्रह वर्षपति होता है। (७९) चन्द्रमा

से ऊपरके ग्रह क्रमशः मासपति तथा शनिसे नीचे ग्रह क्रमशः होरापति होते हैं।

विज्ञान-भाष्य—इन दोनों श्लोकोंकी पूरी व्याख्या मध्यमाधिकारके पृष्ठ ६१—६६ में की गयी है इसलिये यहां अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

नक्षत्र कक्षा, आकाश कक्षा तथा ग्रह की गतियों का सम्बन्ध—

भवेद्भकक्षा तिग्मांशोर्भ्रमणं षष्टि ताडितम्।
सर्वोपरिष्टाद्भ्रमति योजनैस्तैर्भमण्डम् ॥८०॥
कल्पोक्त चन्द्रभगणा गुणिताः शशिकक्षया।
आकाशकक्षा सा ज्ञेया करव्याप्तिस्तथा रवेः ॥८१॥
सैव यत्कल्प भगणैर्भक्ता तद्भ्रमणं भवेत्।
कुवासरैर्विभज्याह्नः सर्वेषां प्राग्गतिः स्मृता ॥८२॥
भुक्ति योजनजा संख्या सेन्योर्भ्रमण संगुणा।
स्वकक्षाप्तातु सा तस्य तिथ्याप्ता गति लिप्तिकाः ॥८३॥

अनुवाद—(८०)—सूर्य-कक्षाके योजनोंको ६० से गुणा करने पर नक्षत्र-कक्षाके योजनोंका मान आ जाता है। सब ग्रहोंसे ऊपर नक्षत्र मण्डल इतने ही योजनोंमें घूमता है। (८१) शशिकक्षाके योजनोंको एक कल्पके चन्द्र भगणोंकी संख्यासे गुणा करने पर आकाश कक्षाका मान ज्ञात होता है। सूर्यकी किरणें वहीं तक जाती हैं। (८२) आकाश कक्षाके मानको जिस ग्रहके कल्प-भगणोंकी संख्यासे भाग दिया जायगा उसी ग्रह की कक्षाका मान योजनोंमें ज्ञात होगा। आकाश-कक्षाको कल्पके सावन दिनोंके भाग देने पर सब ग्रहोंकी दैनिकगति योजनोंमें आ जाती है। (८३) इस योजनात्मक ग्रह गतिको चन्द्र-कक्षासे गुणा करके जिस ग्रहकी कक्षासे भाग देकर लब्धिको १५ से भाग दें उस ग्रहकी दैनिक गति कलाओं में आ जायगी।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकोंमें जो कुछ बतलाया गया है उसकी चर्चा कई जगहकी गयो है (देखो पृ० २३—२६; ६४२—६४५)। संक्षेपमें इसका सार यह है :—

(१) नक्षत्र कक्षा = रवि कक्षा × ६०

(२) आकाश कक्षा = कल्पके चन्द्र भगण × चंद्र कक्षा

(३) $\frac{\text{आकाश कक्षा}}{\text{कल्पमें किसी ग्रहकी भगण संख्या}}$ = उस ग्रह की कक्षा

(४) $\frac{\text{आकाश कक्षा}}{\text{कल्पके सावन दिन}}$ = प्रत्येक ग्रहकी दैनिक योजनात्मक गति

(५) $\frac{\text{ग्रहकी योजनात्मक गति} \times \text{चंद्र कक्षा}}{\text{ग्रह कक्षा} \times १५}$ = ग्रहकी दैनिक कलात्मक गति

दूसरे और तीसरे समीकरणसे स्पष्ट है कि आकाश कक्षा का विस्तार उतना माना गया है जितना प्रत्येक ग्रह एक कल्पमें योजनोंमें चलता है। इससे यह सिद्ध है कि हमारे आचार्य प्रत्येक ग्रहकी योजनात्मक गति समान समझते थे जो आजकल के वेधोंसे अशुद्ध है। ग्रहकी दैनिक कलात्मक गति जाननेका सिद्धान्त वही है जो ६४३—६४५ पृष्ठोंमें अच्छी तरह समझाया गया है।

नक्षत्र कक्षा और आकाश कक्षाके विस्तार कल्पित हैं। नक्षत्रों या तारोंकी दूरीकी सीमा नहीं है। आज कलके वेधों से सिद्ध होता है कि कोई कोई तारे पृथ्वीसे इतनी दूर हैं कि उनके प्रकाशके पहुँचनेमें लाखों वर्ष लग जाते हैं।

ग्रहकी दूरी जानने की रीति

कक्षा भूकर्ण गुणिता महीमण्डल भाजिता।
तत्कर्णा भूमिकर्णोना ग्रहौच्च्यं स्वंदली कृताः ॥८४॥

अनुवाद—किसी ग्रहकी कक्षाको भूव्याससे गुणा करने और भूपरिधिसे भाग देने पर उस ग्रहकी कक्षाका व्यास होता है। इससे भूव्यास घटा कर शेषका आधा करनेसे भूपृष्ठसे उस ग्रहकी ऊँचाई अथवा दूरी ज्ञात होती है।

विज्ञान-भाष्य—परिधिसे व्यास जानने का एक नियम है। भूव्यासका भूपरिधिसे जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध प्रत्येक ग्रह की कक्षाके व्यास और परिधिमें होता है। इस श्लोकके पूर्वार्धका सरल अर्थ यह है कि ग्रहकी कक्षाको ३·१४१६ से भाग देने पर उसकी कक्षाका व्यास आ जाता है।

श्लोकके उत्तरार्धमें जो बात बतलायी गयी है वह पृष्ठ ५८७ के चित्र ७८ से स्पष्ट हो जाती है। इस चित्रमें यदि भ द रेखाको द की ओर इतना बढ़ाया जाय कि वह चन्द्र कक्षा और सूर्य कक्षा तक पहुँच जाय तो द से चन्द्र कक्षाके बिन्दु की दूरीको सूर्यकी ऊँचाई समझनी चाहिये। इसी तरह अन्य ग्रहों की ऊँचाईके बारेमें भी समझना चाहिये।

ग्रहकक्षाओंके विस्तार योजनोंमें

खत्रयाब्धि द्विदहनाः कक्षा तु हिमदीधितेः।
ज्ञशीघ्रस्याङ्क खद्वि त्रिकृत शून्येन्दवस्ततः ॥८५॥
शुक्रशीघ्रस्य सप्ताग्नि रसाब्धि रसषड्यमाः।
ततोऽर्क बुधशुक्राणां खखार्थै कसुरार्णवाः ॥८६॥
कुत्र स्याप्यङ्कशून्याङ्क षड्वेदैकभुजङ्गमाः।
चन्द्रोच्चस्या कृताष्टाब्धि वसु द्वित्र्यष्ट वह्नयः ॥८७॥
कृततु मुनिपञ्चाद्रिगुणेन्दु विषया गुरोः।
स्वर्भानोर्वेदतर्काष्ट द्विशैलार्थखकुञ्जराः ॥८८॥
पञ्चवाणाक्षि वागर्तु रसाष्टर्काः शनेस्ततः।
भानां रविखशून्याङ्क वसुरन्ध्रशराश्विनः ॥८९॥
खव्योम खत्रयखसागर षट्कनाग
व्योमाष्ट शून्य यमरूप न गाष्टचद्राः।
ब्रह्माण्ड सम्पुट परिभ्रमणं समन्ताद
भ्यन्तरे दिनकरस्य कर प्रसारः ॥९०॥

अनुवाद—(८५) चन्द्रमाकी कक्षा ३२४००० योजन, बुध शीघ्रकी कक्षा १०४३२०९ योजन; (८६) शुक्र शीघ्रकी कक्षा २६६४६३७ योजन; सूर्य, बुध और शुक्रकी कक्षाएं ४३३१५००; (८७) मङ्गल की कक्षा ८१४६९०९ योजन, चन्द्रोच्चकी कक्षा ३८३२८४८४ योजन; (८८) गुरुकी कक्षा ५१३७५७६४ योजन, (८९) शनिकी कक्षा १२७६६८२५५ योजन, नक्षत्र कक्षा २५९८८९

००१२ योजन और (६०) आकाश या ब्रह्माण्डकी परिधि १८७१२०८०८६४००००००० योजन है जहां तक सूर्यकी किरणों का प्रसार होता है।

विज्ञान-भाष्य—यदि ग्रहोंके कल्प भगण मध्यमाधिकारके श्लोक २९-३३ के अनुसार मान कर इनकी कक्षाओं की गणना श्लोक ८२ के अनुसार की जाय तो ऊपर दी हुई संख्याओंकी इकाईके अंकमें थोड़ा सामानातर पड़ता है इसका कारण यह जान पड़ता है कि पूरी संख्या लिखनेके लिए भिन्नात्मक अंश या तो छोड़ दिया गया है या आधेसे अधिक होनेके कारण १ मान लिया गया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि चन्द्रोच्च और राहुकी कक्षाएँ नियमकी समानता दिखलानेके लिए दी गयी हैं क्योंकि ये आकाशमें स्वतन्त्र पिंड नहीं है, ये तो चन्द्र कक्षाके ही दो विशेष विन्दु हैं। नक्षत्र कक्षाका भी विशेष महत्व नहीं जान पड़ता।

आजकल वेधोंसे यह सिद्ध होता है कि ग्रहोंकी कक्षाएँ गोल नहीं है वरन् दीर्घवृत्त है जिनकी एक नाभि पर सूर्य की ही परिक्रमा करते हैं । पृथ्वीसे किसी ग्रहकी दूरी सर्वदा समान नहीं रहती जैसा कि ५६० पृष्ठके लम्बनों की सारणीसे तथा पृष्ठ ८६० में दिये हुए शीघ्र कर्णोंकी सारणीसे स्पष्ट है। इन शीघ्र कर्णोंके मान ऐसी इकाइयोंमें दिये हुए हैं जिनकी १००० इकाई पृथ्वीसे सूर्यकी मध्यम दूरी मानी गयी है। ऐसी १००० इकाइयां ९२९००००० मील (९ करोड़ २९ लाख मील) के समान होती हैं क्योंकि पृथ्वीसे सूर्यकी मध्यम दूरी इतनी ही है (देखो पृष्ठ ६४४)। यदि यह दूरी योजनोंमें जानना हो तो मीलोंको ५ से भाग दे देना चाहिए (देखो पृ० ८२)।

इस प्रकार भूगोलाध्याय नामक १२ वें अध्याय का विज्ञान-भाष्य समाप्त हुआ।

पूर्ण संख्या—
१६६

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३३
VOL. 33.

कर्क, संवत् १९८८
जुलाई १९३१

संख्या ४
No. 4

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)]   विज्ञान परिषत्, प्रयाग   [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३३ } कर्क, संवत् १९८८ { संख्या ४

रेलगाड़ी

[ले० श्री जगपति चतुर्वेदी]

साधारणतया लोग यही जानते हैं कि रेलगाड़ी का आविष्कारक जार्जस्टिफिंसन ही था परन्तु स्टिफिंसनके बहुत पहले कितनी ही भापसे चलने वाली गाड़ियां बन चुकी थीं। अन्य आविष्कारोंकी तरह रेलगाड़ीके लिये भी निरंतर कई आविष्कारकोंके प्रयत्न करते रहने पर स्टिफिंसन ने अन्तमें रेलगाड़ीको पूर्ण रूपसे सफल बना कर संसारके सम्मुख रखनेमें सफलता प्राप्त की थी। इसे यथार्थ में रेलगाड़ीको सुधार कर बहुत अच्छा रूप देनेमें उसी प्रकार गौरव प्राप्त है जिस प्रकार जेम्सवाटको वाष्प-इञ्जिनमें। वाटके पूर्व ह्यूजिन सेवेरी, न्यूकमेन, आदि ने वाष्प इञ्जिनको जन्म देनेका प्रयत्न किया था, उसी प्रकार रेलगाड़ीको जन्म देनेमें स्टिफेंसनके पहले कई आविष्कारकों ने उद्योग कर आंशिक सफलता पाई थी।

यात्रा करनेके लिए वाष्प-शक्तिसे चलने वाले यानका विचार कई शताब्दियों पूर्व आविष्कारकोंके मास्तिष्कमें स्थान किये हुए था। इनमेंसे एक व्यक्ति १७ वीं शताब्दीके मध्य ऐसी कल्पना करनेके कारण ही फ्रांस देशमें पागलखानेमें भेज दिया गया था। इसका नाम सालमन डी कास था। जब कोई व्यक्ति पेरिसके पागलखानेके समीप जाता तो उसे सालमन कहता, "मैं पागल नहीं हूँ, मैं पागल नहीं हूँ। मैंने ऐसी खोजकी है कि यदि मुझे उसका परीक्षण करनेका अवसर मिले तो मैं संसारका सबसे बड़ा उपकारी कहा जाऊँ। यदि मेरी बातों पर ध्यान दिया जाय तो लोग घोड़ोंसे भी अधिक द्रुत गतिसे वाष्पकी शक्तिसे यात्रा कर सकेंगे।"

जब लोग सालमनकी बात सुन लेते तो पागलखानेका रक्षक कहता कि इस आदमीका अनुमान है कि इसने एक बड़ी खोजकी है, उसके लिये इसने सरकारको सहायता देनेके लिए बारम्बरा

इतना तंग किया है कि अंतमें उसने इसे पागलखाने में बन्द कर दिया है।

जिस समय सालमन ने वाष्पचालित यानकी कल्पनाके कारण पागलखानेका मुँह देखा था उसके एक शताब्दी पश्चात् फ्रांस देशके ही एक दूसरे आविष्कारक को पहले पहले वाष्पयान बनानेके लिये कारागारकी यातना भोगनी पड़ी। इस आविष्कारक का नाम जोजेफ निकोलस कगनट था। इसने पहले पहल सन् १७६६ ई० में वाष्प से चलने वाली गाड़ी बनाई जिसमें तीन पहिये थे। देखनेमें यह बहुत ही भारी थी। इसके आगे की ओर भाप पैदा करनेके लिये पानी गर्म करनेका पात्र अथवा बायलर था। यह सन् १८७० ई० में चार यात्रियोंको बैठा कर पेरिस की एक सड़क पर चलाया गया और यह वाष्प शक्तिसे चालित सर्व प्रथम यान २½ मील प्रति घण्टेकी चालसे चल सका। उन दिनों फ्रांसके लोगोंको इंगलैंडमें आविष्कृत वाष्प-इञ्जिनोंका ज्ञान नहीं था। इस कारण वे कगनट की गाड़ीको बिना घोड़ा बैल लगे ही एक अज्ञात शक्तिसे चलते देख बिलकुल स्तब्ध हो गए। उन लोगों ने सोचा कि यह अवश्य ही इन्द्रजाल वा प्रेतोंका का काम है।

यह संसारके लिये एक बड़ा ही हर्षका अवसर था जब कि यात्राके साधनोंमें बिलकुल युगान्तर उपस्थित करने वाले साधनकी मनुष्यने खोज कर ली परन्तु बेचारा कगनट अपने इस आविष्कारके लिए प्रशंसित और पुरस्कृत होनेको जगह लोगों द्वारा दुतकारा गया। एक बार संयोग वश उसका वाष्पयान एक दीवारसे टकरा गया और जिससे दीवार गिर गई। इसी अपराध के बहाने फ्रांसके न्यायाधीशों ने कगनटको जेलमें डाल दिया।

कगनट ने पहले पहल जो वाष्पयान बनाया वह यद्यपि बहुत भद्दा था और एक बार १५ मिनट से अधिक नहीं चल सकता था, फिर भी यह बहुत लाभदायक था किन्तु कगनटके प्रयत्नका इस प्रकार अन्त होनेसे उसका वाष्प-यान जहाँका तहाँ ही रह गया। कगनटके वाष्पयानको अब भी पेरिसके संग्रहालयमें देखा जा सकता है।

कगनटके उद्योगके पश्चात् इंग्लैंडमें वाष्पयान बनानेकी धुन पहले पहल विलियम मरडक नामके एक व्यक्तिको लगी। यह जेम्सवाट और बोल्टन के कारखानेमें काम करता था जो सोहो नामक स्थान में था। इसीने अपने बुद्धिबलसे पहले पहल कोयलेकी गैससे प्रकाश उत्पन्न कर सोहोके कारखानेको प्रकाशित किया था। मरडकको इस आविष्कारसे न तो कुछ आर्थिक लाभ और न ख्याति ही मिली किन्तु इसके बाद उसे एक दूसरा आविष्कार करनेका अवसर मिला जिसने उसको प्रसिद्धि की। वाट और बोल्टन वाष्प-इञ्जिनोंको बेच कर धन लाभ कर रहे थे इस कारण उनको दूसरे आविष्कारकी ओर ध्यान देनेका तो अवसर न था परन्तु मरडकने इस ओर ध्यान दिया। मरडककी बुद्धि तीव्र थी। एक बार इसे वाट और बोल्टनसे दूर खानोंमें इञ्जिन बैठाने जाना पड़ा। वहीं रहते हुए इसने भापसे चलने वाली गाड़ीका नमूना बनानेका निश्चय किया। मरडकको भय था कि वाष्पयानका नमूना बनाते हुए देख कर लोग उसको बुरा भला कहेंगे और उसके मालिक भी रुष्ट होंगे इस कारण वह गुप्त रीतिसे ही रातको काम कर वाष्पयानका नमूना तैयार किया करता था। इसमें तीन पहिए लगे हुये थे। एक आगेकी ओर दो पीछे की ओर थे। यह नमूना सन् १७८४ ई० में तैयार हुआ। उसकी चाल देखनेके लिये मरडक ने रातको उसे एक एकान्त सड़क पर अंधेरेमें चलानेका निश्चय किया जिससे कोई देख न सके परन्तु संयोग वश उसी समय एक व्यक्ति उस ओर घूमने गया था। उसने दूरसे एक लहकती हुई आगके साथ दौड़ती चीज़ को आवाज करते आते देखा तो भयके मारे उसके प्राण सूख गए और इसे प्रेत समझ कर वह बड़े ही जोर से भागा और मार्गमें प्रेत मिलनेकी बात सारे

नगरमें प्रसिद्ध की। इस घटनाके बाद मरडक को फिर कभी अपने नमूनेको बाहर निकालने का साहस किया।

कुछ दिनों बाद किसी तरह मरडकके आविष्कार की बात जेम्स वाटके कानों तक पहुँची। वाट ने सोचा कि यदि मरडक अपने आविष्कार में सफल हो जायगा तो वह पृथक् हो कर काम करने लगेगा और ऐसे चतुर व्यक्तिके उसके कारखानेसे निकल जानेसे उसकी बड़ी हानि होगी। इसलिये उसने समझा बुझा कर मरडकको अपना आविष्कार स्थगित कर देनेके लिये मना लिया। इस प्रकार यह प्रयत्न भी जहां का तहां ही रह गया।

जिस कामको मरडक ने अधूरा छोड़ दिया था उसे उसके एक शिष्य ने पूरा किया। इसका नाम रिचार्ड ट्रेविथिक था। ट्रेविथिक एक बड़ा ही विलक्षण और प्रतिभाशाली व्यक्ति था। यंत्रकला में इसके समान दूसरा प्रवीण व्यक्ति न हुआ। इसने अपने गुरु मरडकसे भी अधिक प्रतिभाका परिचय दिया और जेम्स वाट तथा जार्ज स्टिफिंसनसे भी अधिक प्रसिद्ध पाई।

ट्रेविथिक एक खानमें काम करता था। वहीं उसके विचारमें एकभापसे चलनेवाली गाड़ी बनाने की बात आई। उसने अपने उद्योगसे ऐसे वाष्पयान बनाये जो साधारण सड़क और पटरी बिछी सड़क दोनों पर चलाये जा सकें। ट्रेविथिकके पहले बोझसे लदी गाड़ीको सुगमतया खींचे जानेके लिये ऐसी सड़कें बनाई जाती थीं जिन पर लकड़ीकी समानान्तर पटरियाँ बिछी होती थीं। उन पटरियों के ऊपर गाड़ीका पहिया चलनेसे भारी गाड़ी भी आसानीसे खींची जा सकती थी परन्तु ऐसी पटरियों पर चलने वाली गाड़ियाँ घोड़ों द्वारा ही खींची जाती थीं। ट्रेविथिक ने पहले पहल वाष्प-इञ्जिनसे चलने वाली ऐसी गाड़ी बनाई जो पटरियों के ऊपर चल सके। अंग्रेजीमें पटरियोंको रेल और पटरियोंकी सड़कको रेलवे कहते हैं। उन पटरियों पर चलनेके कारण ही रेलगाड़ी नाम प्रसिद्ध हुआ है, इस लिए पहले पहल वाष्पशक्तिसे चलने वाली रेलगाड़ी बनानेका श्रेय इस ट्रेविथिक को ही है।

ट्रेविथिक जब लगभग २५ वर्षका था तब उसने अपने वाष्प-यानका नमूना तैयार किया था। उसके चार वर्ष बाद सन् १८०१ ई० में उसका वास्तविक वाष्पयान तैयार हुआ जो सड़क पर सफलतापूर्वक चल सका। उसके चार दिन बाद वह फिर चलानेके लिये बाहर निकाला गया परन्तु उसी दिन उसका अन्त हो गया। वह एक जगह एक झोपड़ीमें रक्खा था। उसमें अकस्मात् आग लग गई जिससे यान बिल्कुल तहस नहस हो गया। इस यानमें चार पहिये लगे हुये थे और इसका आकार लेटा कर रक्खे हुये गोल पीपेकी तरह था। उसमें आगेकी ओर ऊपर निकला हुआ लम्बा धुआँदान था।

ट्रेविथिकका यह प्रथम वाष्प-यान साधारण सड़क पर चलने वाला था। जब इस प्रकार अंत हुआ तो उसने इससे अधिक उत्तम एक दूसरा यान बनानेका निश्चय किया। इसमें उसके एक चचेरे भाई ने सहायताकी जिसका नाम विवियन था। यह वाष्प यान तैयार होने पर पूर्ण सफल रहा। इस पर कुल ८ यात्री बैठ सकते थे। यह वाष्पयान मरडकके नमूने की गाड़ीसे बिल्कुल भिन्न था।

इस वाष्पयानको सड़क पर १०० मील चला कर एक बन्दरगाह पर पहुँचाया गया और वहाँ से जहाज पर लाद कर लंदन नगर लाया गया। वहाँ इसे सड़कों पर चलाने पर लोगोंको बड़ा ही विस्मय हुआ।

इसी समय ट्रेविथिकको रेलगाड़ीके लिये एक सुअवसर मिला। सेमुअल होम्फ्रे नामके एक

व्यक्ति ने रिचार्ड क्रैशवेसे बाज़ी लगाई कि वह केवल वाष्प-शक्तिसे बहुत सा लोहा पटरियोंके ऊपर ९ मील दूर तक पहुँचा सकता है। इस बाजी जीतनेके लिये होम्फ्रेने ट्रेविथिकको एक उपयुक्त इञ्जिन बनानेकी आज्ञा दी जो सन् १८०३ ई० में तैयार हो सका। इस इञ्जिन ने पटरियों पर चल कर लगभग २७० मन लोहा ९ मील दूर पहुँचा कर बाजी मार ली। इस इञ्जिन ने सब तरहसे सफलता पाई। इसमें एक विशेष बात यह थी कि जब सिलिंडरमें भाप पिस्टन पर अपना दबाव डाल चुकती थी तो वह भट्टीके बीचसे होकर धुआँदानसे निकलती थी। इस प्रकार अग्नि अधिक प्रज्वलित होकर इञ्जिनकी गति तीव्र कर देती थी। गाड़ीके पहियेको पटरी पर ही रखनेके लिए पटरीमें भीतरकी ओर कोर निकला हुआ था इसलिए पहियोंमें कोर निकालने की आवश्यकता न थी। गाड़ीकी गति यद्यपि केवल ५ मील प्रति घंटेही थी तथापि पटरियोंके कमज़ोर होनेके कारण उनको बड़ी हानि पहुँची और वे टूट फूट गईं। इससे यह देखा गया पटरियों या रेलके ऊपर चलने वाली भापकी गाड़ी सफल नहीं हो सकती।

इन प्रयत्नोंके पश्चात् ट्रेविथिक ने सन् १८०८ ई० में लोगोंके मनोरञ्जनके लिए लन्दन नगरमें एक रेलकी गोल सड़क बनाई और उस पर एक इञ्जिन चलाना आरम्भ किया। उस इञ्जिन पर दर्शक घुमाए जाते थे। उन्हें एक पूरा चक्कर लगानेके लिए १२ आना देना पड़ता था। इस तमाशेको देखनेके लिये बहुत लोग जुटते और जिस किसीकी इच्छा होती वह चक्कर लगा आता। लेकिन यह कौतुक अधिक दिनों तक न चल सका। एक बार एक पटरी टूट गई जिससे इञ्जिन टूट फूट गया और फिर उसकी मरम्मत न की जा सकी। इस दुर्घटनाके साथ इस तमाशे और ट्रेविथिकके इञ्जिन बनानेका उद्योग भी समाप्त हो गया।

जिन दिनोंमें ट्रेविथिक वाष्प-यानों के बनानेमें लगा हुआ था, उन दिनों इङ्गलैंडमें खानोंसे कोयला ढोनेके लिये लकड़ीकी सड़क बनाकर उन पर घोड़ों द्वारा गाड़ी चलानेका प्रचार था। उसके लिए पटरियाँ बनी थीं। उन पर गाड़ीका पहिया न फिसलने देनेके लिये वहाँ उनमें भीतरकी ओर कोर निकली होती थी। वहाँ एक आविष्कारक ने ऐसा भी उद्योग किया था कि पटरीकी जगह पर गाड़ीके पहियेमें कोर निकली रहे और पटरी सादी रहे। उसने लोहेकी ढली हुई पटरियोंको स्थिर रखनेके लिये उनको लकड़ीके तख्तोंके ऊपर जड़ने भी व्यवस्था की थी।

इसी प्रकार अन्य बहुतसे आविष्कारक बिल्कुल नए नए मार्गोंमें या पुराने मार्गोंमें ही सुधार करनेमें दत्तचित्त थे। इनको विश्वास था कि वाष्पयान का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है किन्तु इनमेंसे बहुतोंको असफलता और निराशाका सामना करना पड़ता था। इन आविष्कारकोंमें कुछको आंशिक सफलता भी मिलती रही। इनमेंसे एक जोन ब्लेंकिंसमके व्यक्ति ने एक ऐसा वाष्पयान बनाने की योजनाकी जो दांतों वाले पहियेके बल चल सके। इसके लिये उसने पटरी को तो चिकना रक्खा लेकिन उसके उभारके बगलमें कुछ नीचे दांत पकड़ने वाले खाने बनाये। इनसे सम्बन्ध रखने वाला एक दाँतों वाला पहिया उसने गाड़ी में एक ओर बीचमें लगाया। उस पहिये के अतिरिक्त साधारण तौर से होने वाले उसके चारों पहिये बिना दाँतोंके चिकने ही। इस प्रकार पाँच पहियोंका इञ्जिन सन् १८१२ ई० में बन कर तैयार हुआ और ८ डब्बों पर ७०० मन कोयला और ४० यात्रियोंको लेकर चल सका। पीछे इस इञ्जिनसे ३० लदे हुए डब्बे तक खींचे जाने लगे किन्तु कुछ ही समयमें यह बात प्रकट हो गई कि चौरस भूमिकी सड़क पर दाँतोंवाले पहिये और पटरीकी बिलकुल आवश्यकता नहीं परन्तु पर्वतोंकी चढ़ाई पर जाने वाली रेल

गाड़ियोंको बनानेका जब समय आया तो उन्हें इसी योजनाके अनुसार बनाना पड़ा।

क्रिस्टफर ब्लैकेट नामका एक व्यक्ति न्यूकैसिल के निकट वाइलम नामक स्थानकी खानके मालिकोंमें था। इसका रेलगाड़ीके विकासमें प्रयत्न उल्लेखनीय है। इसकी इच्छा थी घोड़े गाड़ीकी जगह वाष्प शक्ति चालित गाड़ीसे कोयलोंके ढोनेका काम लिया जाय। इसके लिए इसने सन् १८०५ में ट्रेविथिकका एक इञ्जिन प्राप्त किया। यह इञ्जिन पहले पहल कोरदार पहियों वाला बनाया गया था परन्तु कोरदार पहिये वाइलमकी लकड़ी की पटरियोंके बिलकुल अनुपयुक्त थे, इस कारण इससे वहां स्थिर इञ्जिनकी भांति काम लिया जाने लगा।

यहाँ स्थिर इञ्जिनके सम्बन्धमें कुछ कह देना अनुचित न होगा। जिन दिनों पटरीके ऊपर चल सकने वाले अच्छे ढङ्गके वाष्प इञ्जिनोंका जन्म न हो सका था और साथ ही लोग घोड़ोंकी जगह इञ्जिनसे काम लेना चाहते थे तो उसके लिये पटरियोंकी सड़क पर जगह जगह इञ्जिन खड़े कर दिये जाते थे। वे वहीं ठहरे रह कर अपनी शक्ति से कुछ दूरके कोयले भरे डब्बोंको रस्सों द्वारा खींचते थे। इसी तरह थोड़ी दूरी तक एक एक इञ्जिनके खींचे जानेसे डब्बे इच्छित स्थान तक पहुँचाए जाते। ये ही इञ्जिन स्थिर इञ्जिन कहलाते थे।

जब वाइलमकी रेलकी सड़क पर लकड़ी की जगह ढले हुए लोहेकी पटरियाँ बिछाई जा सकीं तो ब्लैकेटने ट्रेविथिक को दूसरा इञ्जिन बना देने की आज्ञा दी परन्तु ट्रेविथिक उन दिनों वाष्प यान छोड़ कर दूसरे आविष्कारोंमें लग गया था इसलिये उससे कोई इञ्जिन न मिल सका। इस कारण ब्लैकेट ने ब्लेकिंसापके इञ्जिनकी ओर ध्यान दिया परन्तु उसके दाँतों वाले पहिए को पसन्द न कर उसने विलियम हेडली नामके व्यक्तिसे एक इञ्जिन बनवाया। हेडलीका पहला इञ्जिन असफल रहा परन्तु उसने फिर उद्योग कर सन् १८१३ ई० में 'पुफिंगबिली' नामका एक सफल इञ्जिन बनाया इस नमूनेका इसी नामका एक इञ्जिन अब भी सुरक्षित है।

पुफिंगबिली की ही भांति एक दूसरा इञ्जिन 'वाइलम डिली' बनाया गया। इन दोनों इञ्जिनोंसे कोयलेके डब्बोंको ढोने काम लिया जाने लगा। इनमेंसे पुफिंग बिली सन् १८६२ ई० तक और वाइलम डिली सन् १८६७ ई० तक काम देता रहा। जब इन इञ्जिनों ने पहले पहल चलना प्रारम्भ किया तो इनसे इतना अधिक धुआं निकलता और इतना अधिक शब्द होता कि रेलकी सड़कके समीपके निवासियों ने उद्विग्न हो कर अभियोग चलाया जिससे विवश होकर इंजिनकी सिलिंडरसे निकली भाप एक शब्द कम करने वाले खानेसे होकर बाहर निकाली जाने लगी।

इन्हीं दिनों रेलगाड़ी का उद्धार करने वाला एक व्यक्ति इस ओर ध्यान देता दिखाई पड़ा जिसे संसार जार्ज स्टिफिंसन के नाम से जानता है। जार्ज स्टिफिंसन के बालपन की दरिद्रता और कठिन परिश्रम की कहानी बहुत प्रसिद्ध है। उसकी चर्चा करने से कोई लाभ नहीं। संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि उसने एक अपढ़ और निर्धन कुली रह कर विद्या अर्जित की और एक प्रवीण यंत्र कलाविज्ञ होकर वाष्पयान के सुधार में हाथ लगाया जिसमें उसको अभूत पूर्व सफलता मिली और उसका नाम विश्वविख्यात हो गया। जिस समय स्टिफिंसन ने इस ओर ध्यान दिया उस समय रेल की पटरियों पर चलने वाले वाष्प इंजिन केवल कोयले के डब्बे ढोते थे। उन दिनों लोगों को यह बात स्वप्न में भी न आ सकी थी कि इसी ढङ्ग के यानों पर कभी यात्रा की जा सकेगी और कभी ऐसा समय आयगा कि जबकि संसार के कोने कोने में रेल के ऊपर दौड़ने वाले वाष्प इञ्जिनों का असीम प्रचार हो सकेगा और

लोग रेलगाड़ी कहने से रेल पर चलने वाली घोड़ा गाड़ियों की कल्पना भी न कर केवल द्रुतगामी वाष्प यानों को ही समझ सकेंगे।

स्टिफिंसन की सफलता का यही रहस्य है कि जब चारों ओर से विरोध और बाधाएँ उपस्थित होती रहीं तब भी उसने भविष्य में वाष्प के सर्वत्र प्रभुत्व स्थापित करने का पूर्ण विश्वास कर रेलगाड़ी के इञ्जिन में सुधार करने और इसके प्रचार में बराबर प्रयत्नशील रहा। जिस समय सन् १८१३ ई० में उसने अपना पहला पहला इञ्जिन बनाया उस समय वह इञ्जिन भी अन्य इञ्जिनों की भांति पटरी को तोड़ कर टूट फूट गया। उसमें धक्के से बचने के लिये कमानी नहीं लगी थी, इस कारण धक्के से रक्षित न रह सका।

इस तरह पहले प्रयत्न में असफल होने पर भी स्टिफिंसन दूसरे इञ्जिनों को बनाने और उनका सुधार करने में बराबर लगा रहा। सन् १८२१ ई० में स्टाकटन और डार्लिंग्टन नामके दो स्थानों के बीच कोयला ढोने के लिए पटरी की सड़क बनाने की योजना हो रही थी। इस मार्ग के लिए कुछ लोगों की तो यह राय थी कि इस सड़क पर घोड़ा-गाड़ी चलाने की ही व्यवस्था रक्खी जाय और कहीं कहीं अधिक चढ़ाईके स्थान पर स्थिर इञ्जिनों से काम लिया जाय। स्टिफिंसन ने इस सड़क के मालिकों को सुझाया कि वे घोड़ों की जगह भापसे चलने वाली गाड़ीके लिये पटरी बिछवावें। उसने विश्वास दिलाया कि वाष्प इञ्जिन केवल अधिक शक्तिशाली ही न होंगे प्रत्युत उनसे व्यय में भी कमी होगी। किसी प्रकार मालिकों ने उसकी योजना स्वीकार कर ली परन्तु उन्होंने निर्णय किया कि केवल कोयला ढोने वाली गाड़ियाँ ही इञ्जिनों से चलाई जायँगी और यात्री ढोने वाली गाड़ियाँ घोड़ों द्वारा खींची जावेंगी।

इस सड़क के बनाने का कार्य सन् १८२३ ई० में प्रारम्भ हो सका, उसी समय स्टिफिंसन ने न्यूकैसिल में एक इञ्जिन बनाने का कारखाना खोल दिया, जहाँ इस सड़क के लिए तीन इञ्जिन तैयार किए गए। इन इञ्जिनों में भट्टी से बायलर के बीच होकर एक नली धुआँदान से जा मिली थी जिस से भट्टी से गर्म गर्म हवा सीधे बायलर में होकर धुआँदान में जाती थी। इस कारण बायलर में अधिक गर्मी पहुँचा कर भाप अधिक बनाती थी।

सब कुछ तैयारी हो जाने पर जब इस रेल की सड़क को खोलने का अवसर आया तो चारों ओर से दर्शकों की भीड़ जुटी। इनमें कुछ लोग तो अपना यह अनुमान सत्य होने देखने के लिये पहुंचे कि रेलगाड़ी अवश्य ही असफल होगी और इञ्जिन फट जायगा किन्तु कुछ लोग इसके विपरीत रेलगाड़ी को सफलतापूर्वक चलने की आशा में भी देखने आये।

जब इञ्जिन को स्टिफिंसन ने स्वयं चलाना प्रारम्भ किया और उसके पीछे छः माल लदे डब्बे, २१ यात्रियों से भरे डब्बे और सबसे पीछे छः और माल लदे डब्बे कुल ३२ डब्बों की गाड़ी चलने लगी तो लोगों को बड़ा विस्मय हुआ।

स्टाकटन और डारलिंग्टन के मध्य रेलवे लाइन सफल होने पर भी रेलगाड़ी की सब कठिनाइयां दूर नहीं हुईं, लोगों का विरोध बिल्कुल दूरकर देनेके लिये कुछ और कर दिखानेकी आवश्यकता थी। इसका अवसर लिवरपुल और मैनचेस्टर के बीच रेलवे लाइन बनाने के समय मिला। इस मार्गमें एक बड़ा भारी दलदल पड़ता था। उसको पाटकर लाइन तैयार करना बड़ा कठिन कार्य था इसलिये जब उसको पूरी करनेके लिये स्टिफिंसन ने अपनी योजना लोगों के सामने रक्खी तो लोगों ने बहुत बड़ा विरोध खड़ा किया। लोग कहते कि दलदल पाटने का प्रयत्न मूर्खता है, पानी में पैसा फेंकना है कुछ लोगोंका तो ऐसा विश्वास था कि दलदल का कहीं पेंदा ही नहीं है। फिर भी स्टिफिंसन ने साहसकर इसके ऊपर सड़क बनाने में सफलता प्राप्त कर ली।

इस सड़क पर चलने वाली गाड़ीके विषयमें भी बड़ा विवाद था। वाष्प इंजिन के पक्षमें इने गिने लोग ही थे। किसी प्रकार स्टिफिंसनके प्रयत्नसे इस सड़कके मालिकोंने यह निश्चय किया कि यदि उपयुक्त इञ्जिन मिलसके तो उसका उपयोग किया जाय। इसके लिये उन्होंने घोषणा की। कुछ शर्त्तों कोपूरा कर जो इंजिन सफलता-पूर्वक चल सकेगा उसे साढ़े सात हज़ार रुपये का पारितोषिक दिया जायगा।

इस पारितोषिकके लिए कई व्यक्तियोंने इंजिन तैयार किए। स्टिफिंसन ने भी राकेट नामका अपना प्रसिद्ध इञ्जिन तैयार किया। जब इञ्जिनों की परीक्षा करनेका निश्चित समय आया तो बहुतसे दर्शक एकत्रित हुए। राकेटको छोड़कर चार और इञ्जिन भी पारितोषिक पाने की इच्छासे लाए गए थे परन्तु राकेटको छोड़कर कोई भी इञ्जिन सब शर्त्तों को पूरी न कर सका। इसके विपरीत जहां कुछ शर्तों के अनुसार केवल १० मील प्रति घंटे चल सकना आवश्यक था वहाँ राकेट ३० मील प्रति घंटे की चाल से चल सका। निदान राकेट ही पुरस्कृत हुआ। राकेट की सफलता के कारण केवल स्टिफिंसन की ही व्यक्तिगत प्रशंसा न हुई, प्रत्युत वाष्प चालित यानों को भी लोगों ने पूर्ण रूपसे सफलता प्राप्त करते देखा। राकेट की इस सफलताने रेलगाड़ीके प्रचारका विरोध लोगों के मस्तिष्क से बिल्कुल दूर कर दिया।

हैज़ा

[ले० श्री गयाप्रसाद वर्मा]

यह बात अब संसार में सिद्ध हो चुकी है कि हैजे की बीमारी एक प्रकार के जीवित जंतुओं (Comma bacillus) के कारण पैदा होती है। सन् १८८० के पहिले डाक्टर लोग इस विषय में बहुत कम जानते थे मगर सन् १८८४ में प्रोफेसर कोचने बर्लिनमें यह बात प्रमाणित करदी कि इस रोगके उत्पादक एक प्रकारके जंतु हैं। ये जंतु केवल रोगीकी अंतड़ियोंमें ही पाये जाये हैं, नकि और किसी भागमें। रोगीकी मृत्यु, इन जंतुओंसे पैदा हुए ज़हर, जिसके कारण अधिक दस्त होते हैं, होती है। आगे चलकर हैजे की बीमारी का होना दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। पहला यह कि हैजेके जन्तु किस प्रकारसे मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करके बीमारी पैदा करते हैं और दूसरा यह कि मनुष्यके शरीर पर किस दशामें इन जन्तुओं का जल्दी असर हो सकता है। इन दोनों विषयोंमें से हम दूसरे विषय की अपेक्षा पहले विषयके संबन्ध में कुछ अधिक ज्ञान रखते हैं।

इस बीमारीके जन्तु बहुत कड़े रहते हैं और विपरीत अवस्थामें भी अधिक समय तक जीवित रह सकते हैं। यह मनुष्यके शरीरमें पेड़ की लताके समान परोपजीवोंके रूपमें भी रह सकते हैं। ये हवामें रहना अधिक पसन्द करते हैं और बेहवाके भी जीवित रह सकते हैं।

इन जन्तुओं से मनुष्य की मृत्यु का होना नहीं पाया जाता, किन्तु इनके द्वारा जो विष (Ptomaine) पैदा होता है उससे मनुष्यकी मृत्यु होती है। यह जहर बहुत ही कड़आ व जहरीला होता है और रसायनिक सिद्धांतके अनुसार यह अण्ड सितोद (Albuminoid) की श्रेणीका है और पेप्टोन है।

जबकि ये जन्तु मनुष्यके शरीर में रहते हैं उस समय ये बहुत क्षीण हो जाते हैं। इसका कारण केवल यही है कि इनको मनुष्य को अंतड़ियों में बराबर हवा नहीं मिलती, और इसीलिये जबकि ये मनुष्य के शरीरमें से पहले ही बाहर निकलते हैं उस समय इन पर बाहरी चीज़ों का बहुत जल्दी असर हो सकता है। इसके साथ ही साथ, मनुष्यके शरीरमें रहनेके कारण ये ताकतमें जितने कमजोर हो जाते हैं, उतने ही जहरीलेभी होते जाते हैं। याने बदनमें ये बाहरकी अपेक्षा सौगुने अधिक जहरीले होते हैं।

इन्हीं सिद्धांतों पर प्रोफेसर कोचने यह सिद्ध किया है कि यह बीमारी छूतकी नहीं है, कीट वाहित (Infectious) है। याने जन्तुओं को एक रोगीके शरीरमें से निकलनेके बाद कुछ समय के लिये हवामें रहकर इतनी ताकत पैदा कर लेनी चाहिये कि वे दूसरे मनुष्य की अंतड़ियों पर अपना असर कर सकें।

ऐसी दशामें जबकि कीटाणु केवल रोगीकी अंतड़ियोंमें ही पाये जाते हैं तब यह बात निश्चयात्मक है कि जबतक ये जन्तु खाने पीने की चीज़ों द्वारा न निगले जावें तब तक यह बीमारी किसी मनुष्यको कदापि नहीं हो सकती, चाहे कितने ही जोरोंसे हैजा क्यों न फैला हो। इसलिये हैजेकी बीमारीके समय गरम, पका हुआ भोजन व उबला हुआ पानी पीना अत्युत्तम है।

इस रोगके जन्तु हमेशा खाने पीने की चीज़ों द्वारा मनुष्य की अंतड़ियों तक पहुँच जाते हैं, और बहुतसे सिद्ध किये हुए प्रमाण ऐसे हैं कि जिनमें मक्खियों (House fly) ने इस बीमारी को एक जगहसे दूसरी जगह तक फैलानेमें खास काम किया है। प्रोफेसर हाफकिनने अपनी एक जांचमें हैजेकी बीमारीके वक्त शुद्ध किये हुए दूध (Sterilised milk) को एक नये वर्तनमें खुला रखकर उसपर मक्खियों को बैठने दिया, और बाद

में उस दूधके जाँच करने पर उसमें काफी संख्या में हैजे के जन्तु पाये गये।

हैजा से बचने के कुछ उपाय

(१) कच्चे व अधिक पके हुये फल व हरी भाजी न खाना चाहिये।

(२) मकान व उसके आसपास की जगह बराबर साफ़ रहे जिससे मक्खियां वहाँ न रह सकें।

(३) दूध व पानी हमेशा उबाल कर पीना चाहिये। खाने पीनेकी चीज़ें ढांक कर रखी जावें जिससे मक्खियां उन पर न बैठ सकें।

(४) ये जन्तु सिर्फ मनुष्यके मुँह द्वारा ही पेटमें जाते हैं किन्तु सिवाय अंतड़ियों के (bowels) ये किसी दूसरी जगह बढ़ नहीं सकते। इसका प्रमाण यह है कि ये रोगीके दस्तोंमें ही पाये जाते हैं, कै (Vomit) में बिलकुल नहीं पाये जाते। मामूली हालतमें जबकि इस रोगके कीटाणु पेटमें पहुँच जाते हैं, तब या तो ये पाचक रस द्वारा नाश कर दिये जाते हैं या हज़म हो जाते हैं। किन्तु जब पेट अच्छी दशामें नहीं रहता, याने बदहजमी वगैरह रहती है, तब ये रस ठीक तौरसे न बनकर जन्तुओं पर कुछ भी असर नहीं कर सकता और जन्तु किसी भी प्रकार पेटमें से मनुष्य की अंतड़ियोंमें पहुंच कर अपना असर दिखाने लगते हैं। इसलिये बीमारीके समय पाचन शक्तिको ठीक ठीक दशामें रखना अति आवश्यक है।

(५) मनुष्य की अंतड़ियोंमें जो द्रव पदार्थ है वह क्षार (Alkaline) के समान है जिसमें कि ये जन्तु बहुत जल्दी बढ़ते हैं। दूसरे जन्तुओंके अनुसार ये जन्तु भी खराब (Putrid) चीजों को बहुत ज्यादा पसन्द करते हैं, (जैसा कि कुपच पीड़ित मनुष्यके दस्तोंमें पाया जाता हैं) और इसलिये इस रोगके जन्तु भी रोगीके दस्तोंमें पाये जाते हैं। इसलिये अपने शरीरमें इन्हें स्थान न देनेके लिये पेट का साफ रखना बहुत आवश्यक है।

(६) नमकीन जुलाब (Saline purgative) न लिया जाय। अगर दस्त की शिकायत हो तो फौरन डाक्टर की सहायता ली जाय।

(७) हलका गंधकाम्ल या नींबू का सत, बीमारी के समय दिनमें दोबार १५-१५ बूंद पीना बहुत लाभदायक है।

(८) मरीजके कै व दस्तोंको फौरन चूने या किसी कीटाणु नाशक पदार्थसे ढांक कर उसे बादमें जला देना अत्युत्तम है। इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिये कि ये चीजें कुआं, तालाब नदी या और किसी प्रकारके पानीके स्थान के निकट न डाली जावें।

बीमारी के लक्षण

यह बीमारी बिलकुल प्रथम अवस्थामें मामूली दस्तसे आरम्भ होती है और किसी प्रकार का दर्द नहीं मालूम होता, किन्तु यदि इसकी ओर ध्यान नहीं दिया गया तो कुछ ही घंटोंके बाद पेटमें बहुत ज़ोरसे दर्द मालूम होने लगता है, नसोंमें कमजोरी हो जाती है, और दस्त वा कै का होना शुरू हो जाता है। खूनके बहावमें कमी पड़ जाती है, सांस लेनेमें तकलीफ मालूम पड़ती है, कुछ बेहोशी सी मालूम होनेके साथ २ दिलके ऊपर दबाव मालूम होने लगता है। लगातार दस्तोंमें पहिले तो अतड़ियों का कुछ हिस्सा दिखाई देता है और बादमें बिलकुल पनीला दस्त जिसका कि रंग चावलके पानीके सदृश होता है (Rice water stool) होने लगते हैं। कभी २ कुछ फीके लाल रंग मिले हुये व खूनकी मिलावटके दस्त होते हैं। लगातार कै-दस्त होनेके कारण कुछ ही घंटोंमें बदन ठंडा होने लगता है, ओंठ कालेसे मालूम देने लगते हैं, आखें अंदर धस जाती हैं, सांस ठंडी चलने लगती है और बहुत ज्यादा प्यास मालूम होती है। नाड़ी बहुत कम-

ज़ोर और जल्दी २ चलती है और पेशाब बंद हो जाती है। कभी २ मृत्युके समय रोगीका सारा शरीर नीलासा पड़ जाता है।

चिकित्सा

जब हैज़ेके कीटाणु अंतड़ियोंमें प्रवेश हो जाते हैं और रोगके चिह्न प्रतीत होने लगते हैं ऐसे समयमें पेटमें दवा देनेसे दवा रोगके स्थान तक कठिनतासे पहुँचती है और अगर पहुँची भी तो सिर्फ यही आशा हो सकती है कि वह किसी प्रकार ज़हरमें मिलकर उसके असर को कम करे। दवा के लिये यह बात असंभव सी प्रतीत होती है कि वहपेटमें पहुँच कर इतनी जल्दी सारे बदनमें फैल जाये कि बीमारीके जंतुओं पर उसका असर होने लगे क्योंकि जंतु पहले हीसे करीब २ बदनकी लंबाईकी सब अंतड़ियोंमें फैले रहते हैं और जितने समयमें दवा सब दूर फैल कर अपना असर करे उतने समयके अन्दर ये जंतु रोगी को मरण तुल्य कर देते हैं। इसलिये सिर्फ पेटमें दवा देकर रोगो को आरोग्य करनेकी प्रणाली असफल प्रतीत हुई है। चूंकि यह रोग अंतड़ियों (bowels) में हो कर वहीं पर मलमूत्र ही में पलता है और बढता भी है इससे जान पड़ता है कि इस रोगके निकट जल्दी पहुँचने का सीधा रास्ता गुदा के जरिये है।

डाक्टर हालके तरीके के अनुसार हजारों बार बतलाया गया है कि गरम पानीकी पिचकारी वाताशय में लगानेके पश्चात् यह पानी फौरन उसके सारे हिस्सेमें पहुँचनेके बाद ही आम अंतड़ियोंके छोटे २ भागमें भी पहुँच जाता है पानी नसों को सुकड़ा कर उनको फैलनेसे रोकता है और फिर एकाएक उनके अंदर का तमाम मलमूत्र निकाल कर एक दम साफ कर देता है और यही मलमूत्र रोगका उत्पादक व उसको बढने देने का स्थान है।

ऊपर बतलाया हुआ इलाज कोई नया इलाज नहीं है। यही इलाज सन् १८३१ में जर्मनीके डाक्टर प्रिसनिजने उत्तमताके साथ करके सफलता प्राप्तकी थी। डाक्टर आर० टी० ट्रेलकी बनाई हुई हाइड्रोपेथिक एनसाइक्लोपीडिया में भी जो सन् १८५४ में बनी थी इसी प्रकारकी चिकित्साके संबन्धमें वर्णन किया गया है।

शिकागोके डाक्टर ली ने रशियामें कई कालरा के रोगियोंको बजाय नमकके पानीके साबुन मिला कर पिचकारी देने से आरोग्य किया है।

डाक्टर हालने भी सन् १८८० में पानीमें साबुन मिली हुई पिचकारी लगानेकी प्रशंसा की है।

जंतु द्वारा अंतड़ियोंमें जो जहर फैलता है उसमें उद्‌जन का विशेष भाग रहता है। यदि यह बात सच है तो अमोनियाकी स्पिरिटको पानीके साथ मिला कर अंतड़ियों (bowels) में पिचकारी देनेसे उद्‌जनकी मात्रा कम हो जाती है और विषकी विषमता भी कम हो जाती है।

इस रोगके लिये अनेक प्रकारकी पिचकारियां व इलाज निकल चुके हैं जिनका वर्णन दूसरे लेख में किया जावेगा।

भारतवर्षमें वैज्ञानिक शिक्षा

[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०]

भारतवर्षमें वैज्ञानिक शिक्षाका आरम्भ हुए लगभग पचास वर्ष हो गये हैं। आधुनिक शिक्षाका आरम्भ बंगाल प्रान्तमें हुआ था और यही कारण है कि विज्ञान विभागमें काम करने वाले प्रमुख कार्य कर्त्ता आज भी बङ्गाली ही हैं। पचास वर्षके इस थोड़ेसे समयमें भारतवर्ष ने वैज्ञानिक उन्नतिमें कहाँ तक सहायता पहुँचाई है, इस प्रश्न पर कदाचित् ही कभी विचार किया गया होगा; यद्यपि यह विषय बहुत ही महत्व का है।

भारतवर्ष एक पराधीन देश है। पराधीनता का प्रभाव राष्ट्रके प्रत्येक विभाग पर पड़ता है। यदि देश पराधीन है तो उसकी उन्नति उसी सीमा तक हो सकती है, जिस सीमा तक इसके शासक उचित समझें। हम यह तो कह नहीं सकते हैं कि जिन व्यक्तियों ने सर्व प्रथम भारतवर्षमें वैज्ञानिक शिक्षाको पाठ्यक्रममें स्थान दिया था, उन्होंने ऐसा करनेका क्या उद्देश्य समझा ? क्या उनकी वस्तुतः यह शुभेच्छा थी कि भारतवर्ष वैज्ञानिक शिक्षा द्वारा कला कौशल, और व्यापारिक धन्धोंमें समृद्धशाली बन सके ? क्या उनके पास भारतवर्षकी वैज्ञानिक उन्नतिके लिए कोई निश्चित कार्यक्रम विद्यमान था, और यदि उनका उद्देश्य भी कल्याणमय था और इस उद्देश्यकी पूर्तिकी पूर्ण पूर्ण आयोजना भी उनके पास विद्यमान थी, तो क्या वे इसमें सफलीभूत हो सके हैं ? वस्तुतः हमें निरुत्तर ही होना पड़ता है जब हम सोचते हैं कि क्या हमें वैज्ञानिक शिक्षा अपने राष्ट्रकी शुभ कामनासे प्रेरित होकर दी जा रही है, अथवा हमारी शिक्षा हमारे राष्ट्रके निर्माण में बाधक तो नहीं हो रही है।

एशिया महाद्वीपमें केवल एक ही ऐसा स्वतंत्र राज्य है जिसने वैज्ञानिक पद्धति को पूर्णरीत्या अपनाया है। वह है जापान! जापान कितना छोटा देश है यही सभी जानते हैं! इस छोटेसे देशको प्राकृतिक विपत्तियाँ कितनी सहनी पड़ती है, यह भी स्पष्ट ही है। प्रतिवर्ष किसी न किसी भूचाल या ज्वालामुखीके भयङ्कर उद्गारका वृत्तान्त मिला ही करता है जिससे जापानके नगरके नगर तहस नहस हो जाते हैं। पर इन विपदाओंके होते हुए भी इस छोटे से देश ने संसारके बड़े बड़े राष्ट्रोंसे टक्कर लेनी आरम्भ कर दी है। यदि आज भारतमें विलायती पदार्थों और विशेष कर वस्त्रोंका आना कम हो गया, तो इसके साथ साथ यह भी तो है कि हमारे बाज़ारोंमें चीन और जापानकी वस्तुओं ने भरमार कर दी है। दुनिया के व्यापार पर इस छोटेसे जापान ने अमिट प्रभाव डाल रखा है। यह एक छोटेसे राष्ट्रकी करामात है जिसकी लम्बाई चौड़ाई हमारे एक छोटे प्रान्तसे अधिक नहीं है।

यूरोपके स्वतंत्र देशोंके विषयमें भला क्या कहा जाय, वे तो सब एक दूसरेसे बढ़ कर हैं। छोटे छोटे बेलजियम और हालैंड भी जिनका क्षेत्रफल हमारे कुछ बड़े बड़े नगरोंके योगके बराबर ही होगा, अपनी समृद्धिशालीनता और शक्तिमें बड़े बड़े राज्योंके छक्के छुड़ानेमें भी समर्थवान् रहते हैं। वे अपने कारखानों और व्यापार द्वारा संसारके प्रसिद्ध बाज़ारोंमें सफलता प्राप्त करते चले जा रहे हैं।

जापानमें भी वैज्ञानिक शिक्षाका प्रवेश उसी समयसे हुआ जबसे भारतवर्षमें, फिर क्या कारण है कि हमारा देश वैज्ञानिक शिक्षासे कुछ भी लाभ न उठा सका। क्या हमारे देश वासियोंकी योग्यता अन्य देश वासियोंसे कम है? क्या हमारे विद्यार्थी कला-कौशल और औद्योगिक विज्ञानको समझ नहीं सकते हैं? अथवा क्या हमारे देशवासियोंको इसकी आवश्यकता ही नहीं है? क्या हमारे देशमें वे साधन प्राप्य नहीं है जो उद्योग

और व्यापारके लिये आवश्यक हैं? किस बात की कमी है जिससे हमको अब एक छोटीसे छोटी चीजके लिये भी विदेशोंके कारखानोंका मुँह तकना पड़ता है। यह सब प्रश्न ऐसे हैं जिन पर गम्भीरता पूर्वक हमें विचार करना है।

वैज्ञानिक शिक्षाको हम तीन विभागोंमें विभाजित कर सकते हैं—सात्विक, राजसी और तामसी। सात्विक शिक्षासे तात्पर्य उस शिक्षासे है जिसका उद्देश्य प्रकृति-निहित सत्यकी मीमांसा करना है—वास्तविक तत्व-ज्ञानका पता लगाना है। जिस प्रकार मनुष्यके अन्दर अन्य प्रकारकी वासनायें होती हैं, और प्रत्येक व्यक्ति इन वासनाओं की तृप्तिके लिये प्रयत्न करता है, उसी प्रकार सात्विक ज्ञानी पुरुषोंमें भी एक प्रकार की ज्ञान-वासना विद्यमान रहती है। वह इस वासनाकी तृप्तिके लिये पागल बना घूमा करता है। उसका एक मात्र उद्देश्य ज्ञान-विशेषका प्राप्त करना होता है। उसे इस बातकी परवाह नहीं है कि उसका अमुक ज्ञान किसी सांसारिक या व्यावहारिक लाभ का है या नहीं। यदि हो तो अच्छा है और न हो तब भी अच्छा है! इसी प्रवृत्तिसे प्रेरित होकर एक ज्योतिषी अपनी वेधशालामें बैठा हुआ दूरस्थ ग्रहोंसे बातचीत करता है, वह उन नक्षत्रोंकी गतिके चित्र खींचता है, छिपी हुई प्रहेलिकाओंको बूझने का प्रयत्न करता है, चाहें उसकी बूझ अधिकांशमें लाल बुझक्कड़ की ही बूझके समान क्यों न हो। पर वह तो मस्त है, और उसकी बूझ पर उसकी प्रशंसक-मण्डली भी मस्त हैं। 'चक्की पैरमें बांधिके, हिरना कुदा होय' के समान पहेली बुझौवल, नहीं नहीं सत्यान्वेषण, पर लाल बुझक्कड़ तो दिल ही दिल प्रसन्न होता ही था पर उसकी भक्त मण्डली को तो उससे भी अधिक प्रसन्नता होती थी, वह लाल बुझक्कड़के पाण्डित्य पर गर्व करती थी। सत्यकी खोज करना ही मनुष्यका धर्म है, चाहें उसके द्वारा अन्वेषित सत्य वास्तविक सत्य हो या न हो। प्रत्येक वैज्ञानिक जानता है कि उसकी शक्ति परिमित है और उसके साधन सीमित हैं। ऐसी अवस्थामें उनके समाधान लाल बुझक्कड़के समाधानोंसे किसी प्रकार भी कम नहीं होते हैं।

आज यह तो नहीं कहा सकता है कि हमने किसी भी निहित सत्यको नग्न रूपमें देख लिया। हमने ज्ञान वृद्धिके प्रयत्न तो बहुत किये। एक बाद दूसरे, सिद्धान्तोंमें शोधन होते आये, और हमें यह आशा भी थी और हमें यह विश्वास भी रहा कि हम सत्यके बहुत कुछ निकट पहुँचते जा रहे हैं। इसी भावना, विश्वास और कामनासे प्रेरित होकर हमने जो ज्ञान वृद्धिकी वह हमारी सात्विक शिक्षाका फल है। इसी सात्विकी शिक्षा ने संसार के गणित साहित्यको इतना परिपूर्ण कर दिया। इसी शिक्षा ने भौतिकज्ञोंको प्रेरित किया और उन्होंने परमाणुओंके अन्दर प्रवेश करके गुप्त रहस्यों का उद्घाटन किया। इसी सात्विक प्रवृत्ति ने रसायनज्ञोंको बाध्य किया कि वे अणुओंका संगठन निश्चित करें और रासायनिक प्रक्रियाके रहस्यों का पता लगावें। इसी प्रवृत्तिसे जीववेत्ता वनस्पतिओं और प्राणियोंके अन्दर, छोटे छोटे कोष्ठों और स्नायुओंके भीतर, प्रविष्ट हो गये और उन्होंने जीवन स्पन्दनोंको अनुभव किया। भूगर्भवेत्ता भी इसी प्रवृत्तिसे भूमिके अन्दर छिपे हुए रहस्योंका पता लगाने और भिन्न भिन्न शिला-प्रस्तरोंके निर्माण कालके निर्णयकी ओर अग्रसर हुए। यही अवस्था विज्ञानके अन्य अंगोंकी भी है। मनुष्य अपनी ज्ञान-वासनाकी तृप्तिके लिये अपनी रुचिके अनुसार भिन्न भिन्न विज्ञानों द्वारा प्रयत्न करने लगा।

वैज्ञानिक शिक्षाका दूसरा भाग राजसी शिक्षा है। इस शिक्षाका उद्देश्य सांसारिक साधनोंकी प्राप्ति है। जिन साधनों द्वारा मनुष्यके सांसारिक दुःख दूर हो सकें, और कठिनतायें कम हो सकें, जिन साधनों द्वारा ऐश्वर्य और भोगकी प्राप्ति हो सके, उनको राजसी विभागमें रखा जाता है।

विचार कीजिये उस समयका जब मनुष्य वनमें नग्न विचरण करता था, उसका भोजन पेड़के फलफूलके अतिरिक्त कुछ और न था, कदाचित वह खेती भी करना न जानता था। पशुओंके आक्रमणोंसे रक्षाके लिये उसके पास विशेष अस्त्र शस्त्र भी न थे, शीत और वर्षा एवं कड़ी धूपसे बचनेके लिये उसके पास भव्य मन्दिर भी न थे। एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जानेके लिये उसके पास पैरोंके अतिरिक्त और कोई साधन न था। सूर्यके छिप जाने पर जिसके पास टिमटिमाते हुए तारों और यदाकदा चन्द्रकी ज्योतिके और कोई भी प्रकाश प्राप्त करनेका उपाय न था और मेघाच्छन्न रात्रियोंमें तो वह अन्ध तमिस्रा में पूर्णतः विलीन हो जाता था। ऐसी जातियाँ तो संसारके बहुतसे स्थलोंमें अब भी पायी जाती हैं। भारतके पहाड़ी और जङ्गली स्थलोंमें भी यह देखनेको कुछ मिल सकती हैं। अब राजसी वैज्ञानिक शिक्षाका प्रभुत्व देखिये। उसने पृथ्वीका धरातल बिलकुल ही परिवर्त्तित कर दिया। भौतिकज्ञों ने बेतारके तार, बिजली के लम्प और बिजलीके पंखे, वायुयान, और न जाने क्या क्या निकाल डाले। यन्त्रविद्या-विशारदों ने तरह तरह की मशीनें प्रचलित करदीं। मनुष्य जल, थल और आकाश तीनोंमें ज़ोर शोरसे तैरने, दौड़ने और उड़ने लगा। इञ्जिनियरों ने चालीस चालीस मंजिल ऊँचे मकान तैयार करके खड़े कर दिये, मरुस्थलोंमेंसे नहरें बहा दीं; बड़ी बढ़ी रुद्र नदियोंको भी वशमें करके पुल बांध दिये।

वैज्ञानिकोंने मनुष्यके दुःख निवारणके अन्य भी बहुतसे प्रयत्न किये। भीषण और भयङ्कर रोगोंके उपचारोंको ढूँढ़ निकाला। व्रणों और ज़खमोंको अच्छा करनेका यत्न किया। चीड़ा फाड़ी करके शरीरके अङ्गोंको नवीन जीवन प्रदान किया। अब तो यह विद्या यहाँ तक बढ़ चुकी है कि लोग अब अपना बीता यौवन भी वृद्धावस्थामें पुनर्प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

यह सब विज्ञानकी राजसी प्रवृत्तिका प्रभाव है जिसने भूमण्डलको जीता जागता स्वर्ग बना दिया है। पर इसके साथ साथ विज्ञानकी एक तीसरी तामसी प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्तिका रौद्र रूप गत योरोपीय महासमरमें स्पष्टतः देखा जा चुका है। निर्मम और निर्दोष जनसंख्याको अस्तव्यस्त करने के लिये रोमाञ्चकारी अस्त्र शस्त्रोंका निर्माण कर नारकीय यंत्रणा का जो दृश्य दिखाया गया है उसकी याद करके प्राण सूखे जाते हैं। इञ्जिनियरों और शिल्पकारोंने बड़े बड़े जहाज़ोंको क्षणमात्रमें डुबोनेके लिये तरह तरहकी पनडुब्बियोंकी आयोजना की, उधर रसायनज्ञों ने विषैली गैसोंका प्रचार किया जिनके द्वारा मनुष्योंको तड़पा तड़पा कर मारा गया और विस्फोटक पदार्थोंका तो कुछ पूछना ही नहीं! विचित्र विचित्र तरहकी गोला-बारूद द्वारा नगरके नगर दूरसे ही भस्मसात कर दिये गये। यह युद्धका हाल था।

अब तामसी प्रवृत्ति ने दूसरी ओर भी अपनी करामात दिखायी। भारतवर्ष तो ग़रीब और सुशिक्षित देश है, अतः यहाँ तो चोरी और डाके की विधियाँ भी वैसी ही हैं, पर अन्य देशोंमें, अमरीका और यूरोपमें, तो वैज्ञानिक साधनोंका उपयोग तरह तरहकी धूर्त्तता करनेमें होने लगा है। ठगों ने वैज्ञानिक साधनोंसे ठगी आरम्भ की, चोरों ने बड़े बड़े लोहेके तालों को तोड़ने में विज्ञान की सहायता ली। लोगों ने अनेक सम्मूर्च्छक इत्रोंको सुँघाकर कोष के स्वामियोंको निश्चेष्ट कर दिया और उनका सर्वस्व हरण कर लिया। यह सब विज्ञानकी तामसी और पैशाचिक प्रवृत्ति के कारण है। इसी ठगी प्रवृत्ति ने यूरोप और अमरीकामें प्रेतविद्याका जन्म दिया। विज्ञानके नाम पर तरह तरहके अनाचार किये जाने लगे। जब तक मनुष्यके अन्दर शैतानी प्रवृत्ति विद्यमान है तब तक विज्ञान भी इस प्रवृत्तिसे मुक्त नहीं हो सकता।

सात्विकी, राजसी और तामसी तीनों प्रकारके वैज्ञानिक विभाग एक दूसरेके समाश्रित हैं। सात्विकी प्रवृत्ति द्वारा अन्वेषित सिद्धान्तों ने हमारे व्यापार कलाकौशल और उद्योगके अन्य धन्धोंमें बड़ी सहायता पहुँचाई, इसी प्रकार जो साधन मनुष्य ने अपने ऐश्वर्य और भोगके लिये संचित किये थे उन्हींके द्वारा तामसी प्रवृत्तिको भी सहायता मिली। यदि किसी सम्मूर्च्छक पदार्थका उपयोग ओषधि विज्ञानमें चीड़ा फाड़ीके कष्टको दूर करनेके लिये किया जाना श्रेयस्कर समझा जा सकता था, तो उसी पदार्थ ने ठगविद्यामें भी सहायता पहुँचाई और धनापहरणमें सहायता दी। जिस छुरेसे बाल बनाये जा सकते हैं, और बाल काटकर सौन्दर्य बढ़ाया जा सकता है, उसी छुरेसे से निर्दोष व्यक्तियोंका पेट भी फाड़ा जा सकता है। जिन वायुयानों से एक देश से दूसरे देशमें आना जाना शीघ्र हो सकता है, और देशोंका पारस्परिक प्रेम और सम्बन्ध बढ़ाया जा सकता है, उन्हीं से निर्दोष नगरों पर गोलोंकी निर्द्वन्द्व वर्षा भी तो की जा सकती है। अतः यह स्पष्ट है कि सात्विक विज्ञानकी सहायतासे राजसी विज्ञानको उन्नति होती है, और यह राजसी विज्ञान ही मनुष्य की पैशाचिकप्रवृत्तिका आश्रय प्राप्त करके तामसी विज्ञानका भयङ्कर रुद्र रूप धारण कर सकता है। सात्विक विज्ञानका उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति है, राजसी विज्ञानका उद्देश्य भोग और ऐश्वर्य्य-प्राप्ति है तथा तामसी विज्ञानका उद्देश्य छल, कपट, और दूसरों को कष्ट देना है।

कभी कभी इन तीनों प्रकारकी वैज्ञानिक प्रवृत्तियोंकी आवश्यकता पड़ती है। सात्विकी और राजसी प्रवृत्ति की उपयोगितामें तो किसी को सन्देह हो ही नहीं सकता, पर तामसी विज्ञान भी कुछ कम महत्वका नहीं है। दुष्टों और क्रूर शत्रुओंको जब अन्य अन्य उपायों से अपने वशमें करना सम्भव नहीं होता, तब ऐसे साधन भी काममें लाये जा सकते हैं जिनका व्यवहार राजनीतिक दृष्टिसे अनुपयुक्त नहीं माना गया है। जर्मन युद्धसे पूर्व इंगलैण्डमें विस्फोटों के कारखानोंकी कमी थी, उनके पास जर्मनोंकी विषमयी गैसोंके प्रभावको शिथिल कर देनेके साधनभी विद्यमान न थे। ऐसी अवस्थामें उन्हें आरम्भमें बहुत कुछ क्षति उठानी पड़ी। पर इस प्रकार वे कब तक चुप बैठ सकते थे। युद्ध की ज्यों ज्यों भीषणता बढ़ती गयी त्यों त्यों उन्होंने भी अपने देशके प्रमुख रसायनवेत्ताओं की सहायता लेनी आरम्भकी। वस्तुतः, इस समय इन रसायनज्ञों ने जो सहायता दी वह सर्वथा स्तुत्य ही समझी जायगी। इस धन्धेमें जर्मनीसे प्रतियोगिता करना सरल कार्य न था। अस्तु, युद्धकी भयंकरताका सामना करनेके लिये तामसी प्रवृत्तिका आश्रय लेना ही पड़ा, आक्रमणके लिये इतना नहीं जितना कि स्वरक्षाके लिये।

अब हम इन सब बातोंको अपने देशके सम्बन्ध में विचारना चाहते हैं। पहली बात विज्ञानकी सात्विकी शिक्षाकी है। भारतवर्ष तो संसारमें आज भी अपनी दार्शनिक प्रवृत्तिके लिये प्रसिद्ध है। वह तत्वज्ञान सम्बन्धी उच्च कल्पनाओंके लिए सब जगह मान्य समझा जाता है, अथवा यह भी कहा जा सकता है कि वह इस प्रवृत्तिके के लिये कुछ बदनाम भी है। दार्शनिक प्रवृत्ति का अर्थ कभी कभी अकर्मण्यता भी कहा जा सकता है। उपनिषदों, और दर्शनोंकी शिक्षासे, तथा गोतमबुद्ध और शंकराचार्य के विशद सिद्धान्तोंके प्रभावसे राष्ट्रकी कर्मण्यशील शक्ति का ह्रास हो गया है, ऐसा बहुत सोंका विचार है। कारण चाहें कुछ भी क्यों न हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि भारतवासी स्वभावतः कुछ शान्तिप्रिय और आध्यात्मिक हैं, उन्हें भौतिक जगत्से कुछ घृणा सी है। वे प्रत्यक्षकी अपेक्षा परोक्षके विशेष पुजारी हैं।

जब ऐसी प्रवृत्ति यहाँ पहलेसे ही विद्यमान थी, तो फिर वैज्ञानिक शिक्षा भी हमारे देशमें

उसी सीमा तक फैली जहाँ तक सात्विकी विभागका क्षेत्र था। वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली भी हमारे देशमें इस प्रकार संकुचित करदी गई कि हमारा दृष्टिकोण भी अधिक विशाल न हो सका। भारतवर्षमें वैज्ञानिक शिक्षा किस प्रकार दी जाती है, इसको जरा देखिये। यह एक-तरफा शिक्षा है। स्कूलोंकी उच्च कक्षाओंसे इस शिक्षाका आरम्भ होता है, फिर स्कूल पास करके कालेजमें प्रवेश किया जाता है और यहां व्यक्ति भौतिक, रसायन, गणित, जीव विज्ञान और वनस्पति शास्त्रमें बी० एस-सी०, और अधिकसे अधिक एम० एस-सी० तक शिक्षा प्राप्त करते हैं। यह सब शिक्षा सैद्धान्तिक, अथवा दार्शनिक शिक्षा होती है। सब कुछ पढ़ाया जाता है, गूढ़ सिद्धान्तोंसे भली प्रकार परिचय कराया जाता है। जहां तक सम्भव होता है, लोग अपने अपने विषयमें विशेषज्ञता प्राप्त करते हैं। किसी प्रकारसे विद्यार्थी-जीवन समाप्त कर दिया जाता है, विद्यार्थी जीवन के समाप्त कर देनेका अर्थ ही यह है कि बी० एस-सी०, या एम० एस-सी० की उपाधियां प्राप्त कर ली जाती हैं। इस शिक्षा पर लाखों रुपये खर्च किये जाते हैं। यह सब धन सात्विकी शिक्षामें व्यय किया जाता है। अब इसका फल क्या होता है, यह भी सोचिये।

उदाहरणके लिये प्रयाग विश्वविद्यालय को देखिये। लगभग ३ लाख रुपया वार्षिक इस विद्यालयमें वैज्ञानिक शिक्षा पर व्यय किया जाता है। इस शिक्षासे प्रतिवर्ष १०० के लगभग विद्यार्थी बी० एस-सी० को उपाधि ग्रहण करते हैं और ४०-५० विद्यार्थी एम० एसी-सी० की उपाधि पाते हैं। इस प्रकार लगभग १५० विद्यार्थियों को उपाधि देनेमें विश्वविद्यालय का ३ लाख रुपया व्यय हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक विद्यार्थी को उपाधि देनेके लिये विश्वविद्यालय २००० रुपया व्यय करता है। विश्वविद्यालय को फीस देनेके अतिरिक्त प्रत्येक विद्यार्थी २०-२५ रुपयेके लगभग और भी प्रतिमास अपने अध्ययन में खर्च कर देता है। प्रत्येक उपाधि उसे दो वर्षमें प्राप्त होती है अतः इसमें उसके ५००-६०० रुपये और व्यय हो जाते हैं। इस प्रकार एक उपाधि प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक विद्यार्थी पर ढाई तीन हजार रुपया खर्च कर दिया जाता है। इसका अर्थ यह है कि जो विद्यार्थी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उन पर १०० रुपये मासिकका औसत-व्यय हो रहा है।

इस धनराशिका फिर फल क्या निकलता है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। उपाधियाँ ग्रहण करनेके उपरान्त विद्यार्थियोंकी जो भीषण दशा होती है, उसका तो उल्लेख करना ही कठिन है। शिक्षा तो हमें दी जाती हैं, पर हमें यह नहीं बताया जाता है कि अमुक शिक्षा हमें क्यों दी जा रही है। क्या भारतवर्षके विद्यार्थी इस राष्ट्र पर भार रूप हैं? क्या इन नौजवानोंकी देशको कोई आवश्यकता ही नहीं है? देश इन विद्यार्थियों पर १०० रुपये मासिक निःस्वार्थ खो रहा है, क्या इतनी उदारता इसमें बढ़ गई है? इनके ऊपर इतनी धन-राशि क्या इन्हें पंगु, असहाय और अन्धा बनानेके लिए व्यय की जा रही है? यदि देशको इस शिक्षा द्वारा शिक्षित युवकोंकी आवश्यकता नहीं है, तो फिर शिक्षा दी ही क्यों जा रही है? उससे तो कुछ और ही उपयोगी काम किया जा सकता था। यदि विज्ञानमें उपाधियाँ प्राप्त करके हमारे युवकों को आफिसमें मुहर्ररी, या बाद को लॉ-कालेजमें ही पढ़ना है, तो वस्तुतः इन वैज्ञानिक कक्षाओंकी कोई आवश्यकता नहीं है। यदि जीवन का उद्देश्य बेकारी है, तो इस उद्देश्यको प्राप्ति के लिये किसी दिग्गज अध्यापककी संरक्षकतामें बैठ कर विश्वविद्यालयमें शिक्षा पानेकी आवश्यकता ही क्या है? यदि देशको वैज्ञानिकोंकी अपेक्षा क्लर्कोंकी अधिक आवश्यकता है तो विश्वविद्यालय में विज्ञान-विभागके स्थानमें क्लर्क विभाग ही क्यों न खोल दिया जाय?

इस प्रकार अकर्मण्यरूपकी जो सात्विकी शिक्षा हमें दी जा रही है, उसका अधिकांश परिणाम तो यही होता है कि शिक्षित आवारोंकी संख्या बढ़ जाती है। जीवन संग्रामके दुर्भेद्य संघर्षमें यदाकदा सैकड़ों में से एक विद्यार्थी सात्विक वैज्ञानिक जीवन ग्रहण करने पर बाध्य हो जाता है, अपनी रुचिसे नहीं, बहुधा परिस्थितिसे प्रभावित होकर। इनमें से जिनका भाग्य ने साथ दिया अथवा जो चतुर, कुशल और परिश्रमी हुए, वे वैज्ञानिक दार्शनिक अन्वेषणोंकी ओर अग्रसर होते हैं।

भारतीय विद्यार्थियोंमें न बुद्धिकी ही कमी है, न योग्यताकी ही और न परिश्रमशीलताकी ही। कमी केवल इसी बातकी है कि भाग्यवश ये बेपेंदी के लोटेकी तरह एक ओरसे दूसरे ओर ठुकरा दिये जाते हैं। अथवा यह कहिये कि ये ऐसे सैलानी पथिक हैं कि जो यह तो समझते हैं कि हम किसी ओर जा अवश्य रहे हैं, पर कहां को और क्यों, इसका उनको पता ही नहीं है। उनका प्रत्येक पैर निःस्वार्थ और निरुद्देश्य उठ रहा है। जब सब अवस्था ईश्वराधीन ही है तो जहाँ हमारे अधिकांश विद्यार्थियोंका जीवन व्यर्थ नष्ट हो जाता है वहाँ अकस्मात् कुछ व्यक्ति अंधकारके परिविस्तृत आवरणमें कभी कभी चमक भी उठते हैं, और फिर समस्त देश इन चमकते हुए तारों पर गर्व भी करने लगता है। ये चमकते हुए तारे या दमकते हुए हीरे ही हम अंधोंकी ज्योति और निर्धनोंकी सम्पत्ति हैं। स्वर्गीय गणितज्ञ रामानुजन्, सर जगदीशचन्द्र वसु, सर चन्द्रशेखर रमन, सर प्रफुल्लचन्द्र राय, डा० मेघनाद शहा, डा० नीलरत्न धर, डा० भाटिया, डा० काश्यप आदि वैज्ञानिकों ने भारतवर्ष की इस दीनावस्थामें भी समुचित नाम पैदा कर लिया है। इन लोगों के प्रयत्नसे भारतवर्ष में सात्विक वैज्ञानिक शिक्षा के प्रचारमें बहुत कुछ सफलता मिली है। इन्होंने अपने अपने स्थानों पर शिक्षाके ऐसे केन्द्र स्थापित किये हैं जहाँ विद्यार्थी केवल विज्ञानका अध्ययन ही नहीं करते हैं प्रत्युत वैज्ञानिक अन्वेषणोंमें भी यथाशक्य भाग लेकर विज्ञानकी उन्नतिमें सहायता दे रहे हैं।

पर इतने बड़े विस्तृत देशमें इन इने गिने ७-८ व्यक्तिओं का ही होना हमारे लिये कुछ कम लज्जा की बात नहीं है। जहां हम देखते हैं कि जर्मनी, इङ्गलैंड, स्वेडेन, हालैंड आदि छोटे छोटे देशोंके एक एक विश्वविद्यालयमें कई कई नोबेल पुरस्कार विजेता, या रायल सोसायटीके फैलो विद्यमान हैं, वहां यदि हमारे इतने बड़े देशमें उंगली पर भी गिने जाने योग्य व्यक्ति नहीं हैं, तो हमारा मस्तक लज्जासे झुक जाता है।

इन बड़े बड़े भारतवर्षीय वैज्ञानिकों ने जो भी कुछ वैज्ञानिक काम किया है, वह सम्पूर्णतः मीमांसिक या सैद्धान्तिक ही है। उससे सात्विक ज्ञान वृद्धि अवश्य होती है, पर देशकी सम्पूर्ण आवश्यकताओंकी पूर्ति तो इनसे नहीं हो सकती। इन व्यक्तियोंका कार्य तो उन्हीं दर्शनकार ऋषियोंके समान है जो संसारसे विरक्त होकर नगरसे दूर आश्रमोंमें 'तत्त्वमसि' या 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' या 'मूलेमूलाभावादमूलं मूलम्' आदि प्रहेलिकाओंकी निःस्वार्थ मीमांसा किया करते थे। ऐसे वैरागी वैज्ञानिकों पर जो अपनी सात्विकी धुनमें ही मतवाले हो रहे हैं, हमें गर्व अवश्य है, पर राष्ट्रका निर्माण इनके ही आश्रय पर नहीं किया जा सकता है। इनकी सात्विकी दीक्षाके साथ साथ हमें लौकिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये और भी तो कुछ चाहिये।

एक समय था, जब भारतवर्ष संसारके अन्य भागोंसे पृथक् रह सकता था, सार्वभौमिक परिस्थितिके प्रभावसे वह मुक्त था, पर अब आधुनिक सभ्यतामें उसका एकाकी रहना असंभव है। यदि वह संसारके अन्य देशोंके साथ नहीं चल सकता है, तो उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जायगी। जिस प्राचीन सभ्यता और अभिभूतियों पर उसे गर्व है, वे भी नष्ट हो जायंगी।

संसारके राष्ट्रोंमें प्रतियोगिताकी भयङ्कर दौड़ हो रही है, पर हमने तो अभी चींटीकी चाल चलना ही सीखा है। हम अन्य देशोंकी अपेक्षा पिछड़े हुए तो हैं ही, और हमारी चाल भी उनसे कहीं धीमी है। ऐसी परिस्थितिमें भारतका भविष्य निराशाजनक ही प्रतीत हो रहा है। पर तब भी हमें हताश होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमारे देशमें अक्षय सम्पत्ति विद्यमान है। हमारे देशकी जनसंख्या और इसका विस्तार यूरोपके अन्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक है? अतः यदि हमारे राष्ट्रकी परिस्थिति हमारे अनुकूल हो जाय और वैज्ञानिक शिक्षाका ठीक प्रबन्ध हो जाय और हमारे विद्यार्थियोंसे यथोचित काम लिय जाय तो कोई कारण नहीं है कि हमारा देश दूसरे देशोंकी बराबरी न कर सके।

सात्विकी शिक्षाकी अपेक्षा हमें राजसी या व्यवहारिक शिक्षाकी बड़ी आवश्यकता है। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है यह बार बार कह कर हमें धोखा दिया जा रहा है। भारतवर्ष सदा सर्व-प्रधान देश रहा है। हमारे देशमें ही समस्त प्रकारके धन्धे विद्यमान थे, हमें अपनी आवश्यकताओंके लिये अन्य देशके कारखानोंका आश्रय नहीं लेना पड़ता था। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम फ़कीरोंसे त्यागका, या असभ्यों का सा निर्द्वन्द जीवन बिताते थे। हमारे देशवासियों ने जिस प्रकारके ऐश्वर्यका भोग किया है, वह तो अन्य देशोंमें कम ही मिलता है। हम एकसे एक स्वादिष्ट भोगोंके शौकीन थे, अति कोमल और सुन्दर वस्त्रोंके हम पहनने वाले थे, बढ़ियासे बढ़िया इत्र और तेल काममें लाते थे। हमारे मकानोंमें सुन्दरसे सुन्दर नक्काशीका काम किया होता था, हमें अपने फर्नीचर पर भी गर्व था। हमारे धातुके बर्तन सैान्दर्य और उपयोगिता दोनों में बढ़े चढ़े थे। तात्पर्य यह है कि राजसी जीवन का ऐश्वर्य भी भोगना हमें आता था। पर इस ऐश्वर्यके संचयके लिये हमें अन्यदेशोंकी बनी हुई वस्तुओंका आश्रय नहीं लेना पड़ता था। इन सब पदार्थों को तैयार करनेके एकसे एक अच्छे धन्धे हमारे देशमें विद्यमान थे। यह ठीक है कि इन धन्धोंको चलानेके लिये बड़े बड़े कारखाने हमने नहीं खोले थे जिनमें बड़ी बड़ी मशीनें चलती हों, यह तो सब हमारे घरेलू धन्धे थे और यही कारण था कि हमारे यहाँ बेकारीका नाम न था। इन धन्धोंकी शिक्षाके लिये भव्य भवनोंके विश्वविद्यालय नहीं थे, और इसीलिये उपाधिधारी विद्यार्थियोंकी बेकारीका सवाल ही हमारे सामने कभी न आया था। हमारे पुराने विद्यार्थी कारीगरके साथ उसकी झोंपड़ीमें ही काम करते थे, जहाँ उन्हें फीस देनेके स्थानमें उलटी कुछ प्राप्ति ही हो जाती थी। उन विद्यार्थियोंमें से प्रत्येक पर राष्ट्रका १००) मासिक खर्चा न होता था और प्रत्येक पढ़ने वाला जानता था कि उसे अमुक कार्य्य सीख लेनेके पश्चात् कैसा जीवन व्यतीत करना है। शिक्षाके आरम्भसे ही उसके जीवनका उद्देश्य निश्चित हो जाता था।

यह तो पुरानी बात थी, पर अब क्या हाल है। एक एक करके हमारे पुराने धन्धे तोड़ दिये गये? व्यापारिक विनिमयका ऐसा जाल फैलाया गया कि हमारे कारीगरों ने अपना पुराना काम छोड़ दिया। योरोपीय वैज्ञानिक प्रणालीकी दुन्दुभी बजने लगी। लोगोंको आशा थी कि कालेजोंमें पढ़े हुए विद्यार्थी भारतमें वैज्ञानिक प्रणालीको फ़ैला देंगे और हमारा राष्ट्र समृद्धशाली हो जायगा। पर यह केवल धोखेकी टट्टी निकली। लोगोंको झूठी आशा दिलायी गई थी। इसमें विद्यार्थियोंका कोई दोष न था, और न कालेज और विद्यालयोंका ही। लोगों ने इमलीके वृक्षसे आमकी आशा की, यही भूल थी, बस और कुछ नहीं।

औद्योगिक विज्ञानकी शिक्षा कहीं विश्वविद्यालयमें पढ़कर प्राप्त नहीं होती है। यह शिक्षा तो कारखानोंमें ही सीखी जाती है। यदि भारतमें बड़े बड़े कारखाने खोले जाते और उन कारखानोंके आश्रयमें विद्यार्थियोंको शिक्षा दी जाती तो बड़ा

भला होता। पर हुआ क्या, हमारे देशके घरेलू धन्धे बन्द कर दिये गये। नये कारखाने उनके स्थान पर खोले नहीं गये। हमारी शौकीनी और हमारी आवश्यकताओंको कम तो न किया गया, प्रत्युत योरोपीय रूप दे दिया गया, और फिर इसका फल क्या हो सकता था? केवल यही, कि हमारी आवश्यकताओंकी पूर्ति विदेशी मालोंसे धड़ाधड़ की जाने लगी, दूसरे देश हमारी सम्पत्ति पर मालामाल होने लगे, और हम अपनी छोटी से छोटी आवश्यकता के लिये भी विदेशों के मुहताज हो गये।

यही कारण है कि भारतमें राजसी प्रवृत्तिवाले औद्योगिक विज्ञानकी कोई उन्नति न तो हो पाई है, और न होनेकी आशा है। हम तो देशमें पराधीन दास हैं, अतः हमें अपनी रक्षाकी भी कोई चिन्ता नहीं करनी है। इसकी चिन्ता तो हमारे स्वामियों को स्वयं ही बहुत हैं। अतः उन्होंने युद्ध विद्या सम्बन्धी तामसी वैज्ञानिक शिक्षाके भारसे हमें सर्वथा उन्मुक्त कर दिया है जिसके लिये हम अपनी सरकारके आजन्म आभारी रहेंगे !!

स्वाद

[ले० श्री जटाशङ्कर मिश्र, एम० एस-सी०]

हमारी पांच इन्द्रियोंसे पांच प्रकारके विषयोंका ग्रहण होता है। आंखसे हम रूप देखते हैं, कानसे हम शब्द सुनते हैं, नाकसे हम गन्ध सूंघते हैं, त्वचासे हमें स्पर्शका ज्ञान होता है और जिह्वासे हमें रसका अनुभव होता है। भौतिक विज्ञान ने प्रकाश और शब्द (ध्वनि) के विषयमें तो बहुत ही अधिक उन्नति कर ली है और यह सिद्ध कर दिया है कि अणुओं, परमाणुओं और कणोंके विशेष स्पन्दनोंसे इन संवेदनाओंकी उत्पत्ति होती है। रसायन शास्त्रने रंगोंके विषयमें बहुत ही उन्नति की है। रंगोंके भौतिक कारणों को भी हम जानते हैं, और हमें इसका भी बहुत कुछ ज्ञान है कि पदार्थोंके रासायनिक संगठनमें और रंगोंमें क्या सम्बन्ध है। ध्वनि और रासायनिक संगठनका तो कुछ महत्व नहीं है, क्योंकि ध्वनिकी उत्पत्ति पदार्थों की स्थूलावस्था पर निर्भर है, इसका अणुओंकी आन्तरिक अवस्थासे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। एक बात अवश्य है। जितने धातु हैं उनसे एक विशेष प्रकारकी खनखनाहट निकलती है, और यह खनखनाहट भी प्रत्येक धातुके पत्रोंके लिये भिन्न है। अधातु पदार्थोंमें खनखनाहटके स्थानमें खटखटाहट होती है। इससे प्रतीत होता है कि पदार्थोंकी आन्तरिक रचनाका भी ध्वनि पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। इस विषयकी मीमांसा करना इस लेखका उद्देश्य नहीं है अतः इस पर फिर कभी विचार किया जायगा।

स्वाद और पदार्थोंकी रासायनिक रचनाओंमें तो कुछ सम्बन्ध अवश्य है। भौतिक विज्ञान ने अति विस्तारसे प्रकाश और ध्वनिके गुण और लक्षण ढूँढ़ निकाले हैं, पर स्वाद क्या है, इसका अनुभव हमें किस प्रकार होता है, स्वादके भेद क्या हैं? इत्यादि विषयों पर हमारा ज्ञान तो बिलकुल ही अपूर्ण है।

ध्वनि और प्रकाशका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तो हमारे पास बहुतसे यंत्र हैं पर स्वाद गुणको अंकित करनेके लिये कोई भी यंत्र नहीं है। हमें एक मात्र अपनी जीभके आश्रित रहना पड़ता है। जीभसे स्वादका काम चलाऊ ज्ञान तो हो जाता है। पर वैज्ञानिक दृष्टिसे अकेली जीभकी सहायतासे स्वादको कोई मीमांसा नहीं की जा सकती है। इसका कारण स्पष्ट है। प्रत्येक व्यक्तिकी रसना-शक्ति भिन्न भिन्न होती है। कम मीठा पसन्द करनेवाले व्यक्तिको उस दूधमें कहीं अधिक मिठास मालूम होगा जिसमें अधिक मीठा खाने वालेको कम मिठास मालूम होता है। एक ही दालके लिये कोई तो यह कहता है कि इसमें नमक अधिक पड़ा है, और कोई यह कहता है कि इसमें नमक तो बहुत ही कम है, वह और अधिक नमक डलवाता है।

यही नहीं, एक मनुष्यका स्वाद सम्बन्धी ज्ञान भी सदा एकसा नहीं होता है। उदाहरणतः, सेब या नाशपाती खानेमें मीठी लगती है। पर यदि इन फलोंके खानेके पहले यदि आप थोड़ा सा गुड़ या और कोई अधिक मीठी चीज खालें तो आपको वे ही फल फिर फीके मालूम होने लगेंगे। जिस फलको आप थोड़ी देर पहले मीठा कहते थे वही अब फीका लगने लगता है। जब ऐसी अवस्था है, तो हम जीभ पर कहाँ तक विश्वास कर सकते हैं। बुखार आ जाने पर हमें खाना कड़वा लगने लगता है, चीजोंका मिठास कम पता चलता है। बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं जिनको खा लेनेसे विशेष स्वादोंका अनुभव होना कुछ समयके लिये बन्द हो जाता है। यदि गुड़मार नामक औषधि खाली जाय तो फिर गुड़ मीठा नहीं लगेगा।

जीभके विषयमें एक बात और है। जीभ लम्बा चौड़ा मांसका एक टुकड़ा है। यह बात सन्देहजनक ही है कि इस जीभका प्रत्येक स्थान स्वाद सम्बन्धी एक ही तरहकी संवेदना देता है या नहीं। इस विषयमें बहुतसे प्रयोग किये गये हैं जिनके परिणाम भी भिन्न भिन्न हैं। इसकी मीमांसा करने पर यह पता चला है कि बहुधा पदार्थोंका मिठास और खट्टापन तो जीभकी अग्र नोकसे मालूम होता है कड़ुवा और नमकीन स्वाद जीभके मूल अधोभागसे मालूम होता है। सन् १८८८ में जोन्स हापकिन्सकी प्रयोगशालामें यह बात मालूमकी गई थी कि शर्करिन (सैकेरिन नामक मीठी चीज) का एक यौगिक यदि जीभके निचले पृष्ठसे चखा जाय तो यह कड़वा प्रतीत होगा पर यदि इसे आगेकी आधी जीभके किनारों से चखा जाय तो यह मीठा लगेगा। पर यह बात भी कुछ निश्चित नहीं है क्योंकि एक दूसरे प्रयोग-कर्त्ताका यह कहना है कि उसके प्रयोगमें १० में से ६ मनुष्योंमें जीभके मूल भागमें मिठासके अनुभव करनेकी सबसे अधिक शक्ति पायी गई और १० में से ७ व्यक्तियोंकी जीभके किनारोंमें खट्टेपनेकी सर्व प्रबल शक्ति थी। इसी प्रयोग कर्त्ता ने इसका समर्थन किया कि जीभके मूल भागमें कड़वा अनुभव करनेकी तो अधिक संवेदना विद्यमान रहती है पर इस स्थान पर खट्टेका अनुभव बहुत कम होता है।

इन सब प्रयोगोंमें लोगोंकी व्यक्तिगत रुचि का भी ध्यान रखना चाहिये। जीभके किसी एक ही स्थान पर पदार्थका रखना भी कठिन है क्योंकि घुल कर यह दूसरे स्थान पर पहुँच जाता है, और प्रयोगमें इस कारण त्रुटि आ सकती है।

जीभमें जहाँ स्वाद ग्रहण करनेकी शक्ति है वहाँ इसमें त्वचा भी है। त्वचाका धर्म स्पर्श है, अतः जीभसे स्वाद मालूम होनेके साथ स्पर्श भी मालूम होता रहता है। इस स्पर्श गुणके ज्ञात होनेके कारण स्वादमें और भी झमेला पड़ जाता है। यदि सुलेमानी नमकको जीभ पर रखा जाय तो नमकका नमकीन स्वाद तो मालूम ही होगा, पर उसके साथ साथ इसमें कुछ ठंडापन भी मालूम होगा। इस प्रकार स्पर्शके अन्य गुण भी प्रतीत होते हैं—जैसे गड़ना, या काटना, खुरखुराना इत्यादि।

प्रकाशके सम्बन्धमें हम भली प्रकार जानते हैं कि रंग कोई एक वस्तु नहीं है। जिसको हम एक रंग समझते हैं, वह भी कई रंगोंका मिश्रण है। श्वेत रंगमें साधारणतया सात रंग माने जाते हैं जिनका विभाग भौतिक विज्ञान में लहर लम्बाइयोंके आधार पर किया गया है। ध्वनिकी लहरें भी कम्पन संख्या पर निर्भर हैं और एक ध्वनि भी कई ध्वनियोंका सम्मिश्रण होती है। बाजेके सरगम आदि सात स्वरोंके मिश्रणसे अनेक प्रकारकी ध्वनियां निकाली जा सकती हैं। स्वादके सम्बन्धमें भी यही अवस्था है, नीबूका खटास नारंगीके खटाससे भिन्न है। आमकी मिठास नाशपाती और सेबके मिठाससे भिन्न है। मिचाकी कड़वाहट चिरायतेकी या नीमकी पत्तियोंकी कड़वाहटसे भिन्न है। सैन्धा नमक और सुलेमानी नमक या रसायनज्ञोंके अन्य लवणोंके नमकीन स्वादमें भी तो भेद है।

स्वादोंका वर्गीकरण करना कठिन है। संस्कृत साहित्यमें षड्रसोंका विवरण आता है, जैसे कटु (कड़वा), अम्ल (खट्टा), मधुर (मीठा), लवण (नमकीन), तिक्त (चरपरा) कषाय (कसैला)। पाश्चात्य मनोविज्ञान वेत्ता साधारणतः चार स्वादोंका उल्लेख करते हैं—खट्टा, मीठा, नमकीन, और कड़वा। पर वुण्ड (Wundt) नामक वैज्ञानिक ने इन स्वादोंमें दो स्वाद और बढ़ा दिये हैं—क्षारीय (Alkaline) और धात्विक (Metallic)। उसका विचार है कि क्षारोंमें और धातुओंमें एक विशेष स्वाद होता है, जिनके कारण इन्हें अलग विभागमें रखना आवश्यक है। अस्तु,

अन्य जितने स्वाद हैं वे सब इन्हीं स्वादोंसे मिल कर बने हुए माने जा सकते हैं। इसमें सन्देह ही है कि इस प्रकारका वर्गीकरण किसीको सन्तुष्ट भी कर सकेगा या नहीं।

स्वादका अनुभव उन्हीं पदार्थोंमें हो सकता है जो या तो द्रव हों, या जो जिह्वा पर स्थित जलमें घुल सकें। जितने भी पूर्णतः अनघुल पदार्थ हैं, उनमें किसी भी प्रकारका स्वाद नहीं पाया गया है। इस नियममें कोई भी अपवाद नहीं है। स्वादकी संवेदनाके प्रकट होनेके लिये यह परमावश्यक है कि पदार्थ कुछ न कुछ मात्रामें घुलनशील अवश्य हो। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि जितने घुलनशील पदार्थ होंगे वे कुछ न कुछ स्वाद देंगे ही। स्वादके लिये घुलनशील होना तो आवश्यक है पर स्वाद और घुलनशीलता में और भी कुछ सम्बन्ध है या नहीं, यह कहना कठिन है। बहुतसे प्रयोगकर्त्ताओंका कहना है कि बहुत सी गैसोंमें भी स्वाद होता है, और इन गैसोंके स्वादके अनुभवके लिए, उनका पानीमें घुलना आवश्यक नहीं है। पर, यह बात तो मानी नहीं जा सकती। यह कैसे कहा जा सकता है कि गैसका स्वाद अनुभव करनेके पूर्व जीभको पूर्णतया सुखा लिया गया है। और यदि ऐसा नहीं किया गया तो गैसका स्वाद जो अनुभव किया गया है वह जलमें घुली हुई गैसका स्वाद क्यों न माना जाय।

बहुतसे प्रयोगकर्त्ताओं ने यांत्रिक विधिसे स्वादकी संवेदना उत्पन्न करनी चाही। इस सम्बन्धमें उनके प्रयोग पूर्णतः विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते हैं। मनोविज्ञान-वेत्ताओंमेंसे बहुत सों का यह कहना है कि जीभको यदि रगड़ा जाय या दबाया जाय तो कुछ स्वादकी सी संवेदना उत्पन्न होती है। विद्युत् संचारों द्वारा भी स्वाद की संवेदनायें उत्पन्न हो सकती हैं या नहीं, इस विषय पर लगभग सौ वर्ष तक विद्वानोंमें विवाद होता रहा। अन्ततोगत्वा, यह दिखाया गया कि यदि चार व्यक्तियोंको इस प्रकार शृङ्खलाबद्ध किया जाय कि विद्युत् धारा एककी जीभमें प्रवाहित होकर दूसरेकी आँखमें जाय और वहाँसे वह अन्य दो व्यक्तिओंके हाथमें ली हुई मेंढककी मांसपेशियों में प्रवाहित हो तो एक व्यक्तिके मुखमें कड़वे स्वादकी संवेदना होती है और साथ ही साथ दूसरे मनुष्यकी आंखमें ज्योति उत्पन्न होती है और मेंढककी मांस पेशियोंमें गति भी उसी समय दिखाई देती है। इस प्रयोगसे स्पष्ट है कि विद्युत् द्वारा स्वादकी संवेदना उत्पन्नकी जा सकती है। अन्य प्रयोग भी इस बातका समर्थन करते हैं। बहुत सम्भव है कि सभी पदार्थोंके स्वाद जिह्वाको विद्युत् प्रक्रियासे ही अनुभव होते हैं। उन पदार्थों के घोलों और जिह्वाकी त्वचामें कोई विशेष अवस्था-भेद स्थापित हो जाता है। दाम्पत्य प्रवृत्तिमें पारस्परिक अधरोंके चुम्बनसे जिस माधुर्यका अनुभव होता है वह भी कदाचित् इसी प्रकारके विद्युत् उद्दीपनका परिणाम है।

मनोवैज्ञानिक जगत्में स्वादके सम्बन्धमें अन्य भी बहुतसे मनोरञ्जक प्रयोग किये गये। बहुतसे पशुओंमें बिना पदार्थोंके खाये हुये ही विशेष प्रकारकी स्वाद-संवेदना उत्पन्न करनेके लिये उनके रुधिरमें मीठे स्वादिष्ट पदार्थोंको सुइयों द्वारा पहुँचाया गया, पर इस प्रकारके प्रयोगोंसे कुछ लाभ न निकला। जहाँ कहीं इस प्रकारसे स्वादके कुछ लक्षण दिखाई भी दिये, वहाँ इसका कारण यह था कि लार-रस द्वारा ये पदार्थ जीभ पर आ जाते थे, और तब उनका स्वाद प्रकट हो जाता था। जिह्वा पर पदार्थोंका बाह्य संसर्ग हुए बिना ही स्वादका अनुभव होना सिद्ध न किया जा सका।

मनो विज्ञान वेत्ताओं ने एक बात और सुझाई है। हम सदा स्वप्न देखते हैं, इस स्वप्नमें मुख्यतया हम रूपका स्वप्न देखते हैं, चलती फिरती चीजें नजर आती हैं। कभी २ ध्वनिओंका स्वप्न भी हमें दिखाई पड़ता है। स्पर्शका भी स्पप्न हमें अनुभव होता

है। पर मनोविज्ञानके पण्डितोंका विचार है कि हमें स्वादका कभी स्वप्न नहीं दिखाई देता। स्वप्नमें हम कभी किसी भी पदार्थके मीठे, खट्टे, नमकीन, या कड़वे होने का अनुभव नहीं करते हैं। यह बात पूर्ण निश्चयपूर्वक तो नहीं कही जा सकती है, पर इतना तो अवश्य है कि स्वादका स्वप्न अन्य संवेदनाओंकी अपेक्षा बहुत ही कम होता है।

प्रत्येक चीज़को नापनेकी इकाई होती है। पर स्वादकी मात्रा किस प्रकार नापी जाय यह कहना कठिन है। किस वस्तुके चखनेसे कितना स्वाद उत्पन्न होता है इसके नापनेके हमारे पास कोई साधन नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्तिकी रुचि इतनी भिन्न होती है कि उनके अनुभवोंके आधार पर कोई निश्चित परिणाम नहीं निकाले जा सकते हैं। प्रयोग करके कुछ पदार्थोंके लिये यह निश्चित किया गया है कि उनकी कमसे कम कितनी मात्रा स्वाद उत्पन्न कर सकती है। एक बार ४० व्यक्तियों पर सात वनस्पतिक पदार्थोंके प्रयोग किये गये जिनसे यह परिणाम निकला—

स्वाद द्वारा १२००० भाग पानीमें १ भाग सेलिसिन पहचानी जा सकती है, १४००० भागमें १ भाग मोरफीन, ७६००० भागमें १ भाग कुनीन (कुछ व्यक्ति १०००००० भागमें १ भाग कुनीन पहचान सके); ६००० भागमें १ भाग केसीन, १६७००० भागमें १ भाग पिक्रोटाक्सीन; २१०००० भागमें १ भाग एलोइन, और ८२६००० भागमें १ भाग स्ट्रकूनीन (१२ व्यक्ति १२८०००० भागमें १ भाग तक इसे पहचान सके।

स्त्रियों और पुरुषोंकी स्वाद संवेदना शक्तिमें भी अन्तर होता है जैसा कि निम्न सारिणीसे स्पष्ट है :—

पदार्थ	पुरुष	स्त्री
कुनीन	१ भाग ३६२००० भाग जलमें	४५६००० भागमें
गन्नेकी शक्कर ...	१६६ ...	२०४ ...
गन्धकाम्ल ...	२०८० ...	३२८० ...
सैंधक अर्धकर्बनेत ...	८६ ...	१२६ ...
नमक ...	२२४० ...	१६८० ...

इससे यह स्पष्ट है कि नमकको छोड़ कर शेष पदार्थोंके लिये मनुष्योंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी स्वाद-संवेदन-शक्ति अधिक प्रबल होती है।

स्वाद और रासायनिक संगठनके सम्बन्धमें एक लेख विज्ञानमें [भाग २८, जनवरी १६२६] में प्रकाशित हो चुका है।

पत्थर-कोयलेकी खुदाई

[ले० श्री जगपति चतुर्वेदी]

हम लोग जानते हैं कि पत्थर-कोयला प्राचीन कालकी वनस्पतियोंके पृथ्वीके अंदर दब जानेसे बना है जो वंश परम्परा तक बहुत अधिक संख्यामें उगती रहीं जिससे उनके अवशेषकी एक बड़ी मोटी तह बन गई। प्रारम्भमें लोगोंकी यह धारणा थी कि आज कल जिस स्थितिमें पत्थर-कोयला पाया जाता है उसी स्थितिमें वे उगते रहे और पत्थर-कोयलेकी निचली तहें उनके जड़ का आधार थीं किन्तु कमसे कम कुछ तहोंके संबन्धमें यह बात ठीक नहीं है। यह बहुत कुछ सम्भव है कि इनको बनाने वाली लकड़ी नदियों द्वारा किसी झीलमें बहा कर लाई गई हो। जब झीलमें बहुत अधिक लकड़ी जम गई हो तो वह भर गई हो और यदि जमीन धसने लगी हो तो उसके ऊपर बालू या चूनेके पत्थरकी तहें इतनी अधिक जम गई हों कि उनके दबाव और भारसे नीचे पड़ी हुई सड़ती लकड़ी दृढ़ पिंड हो गई हो।

पत्थर-कोयलेमें पेड़के तनों और पत्तियोंके यथार्थ रूपका चिह्न बहुत ही कम उपलब्ध होता है इसलिये वैज्ञानिकोंका सदा माथा चक्कर खाता रहा है। ये चिह्न यह बतलानेके लिए पर्याप्त संख्या में पाए जाते हैं कि पत्थर-कोयला वनस्पतियोंसे ही बना है किन्तु अधिकांश भाग बिना किसी रचना या इसकी उत्पत्ति बता सकने वाले चिह्नका काला पहाड़ ही है।

इस प्रकारकी समस्याओं पर विचार करते समय हमें बहुत शीघ्र किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच जाना चाहिये और प्राचीनकालमें वस्तुओं का क्या रूप था इस बातका अनुमान करनेका प्रयत्न करते समय तो यह अधिक आवश्यक है। उदाहरणार्थ, पत्थर कोयलेकी मोटी तहसे प्रकट होता है कि वनस्पति बहुत ही अधिक उगती होगी, इस कारण कभी कभी यह कहा जाता है कि ऋतु उष्ण होगी किन्तु ऐसी बात नहीं है। शीतोष्ण प्रदेशोंमें वनस्पति बहुत अधिक और घनी उगती है विशेष कर यदि हवा आर्द्र हो। यही सम्भवतः अधिक निश्चित बात पत्थर-कोयला उत्पन्न करने वाली वनस्पतिके बहुतायतसे उत्पन्न करनेवाले युगके सम्बन्धमें हम कह सकते हैं। यह भी सम्भव है कि उस समय वायुमें आज कालकी अपेक्षा कर्बन द्विओषिद की अधिक मात्रा विद्यमान हो जो पौधों का आवश्यक भोजन है।

फिर, पृथ्वी पर हवामें खुली पड़ी लकड़ीकी सड़ान और पानीके अन्दर लकड़ीकी सड़ानमें विशेष अन्तर होता है। पहली अवस्थामें सड़ी वस्तु नर्म और भुरभुरी हो जाती है जिसे भुकुड़ी लकड़ी कहते हैं। यह सहज ही टूट फूट जाती है। दूसरी अवस्थामें यह काली हो जाती है किन्तु उसका रूप बना रहता है। अतएव पत्थर-कोयले का कुछ अंश अवश्य ही पानीके अन्दर बना होगा।

बिना किसी रचना वा आकारके भागोंका विवेचन करना अब बाकी है। कहीं घास पातके एकत्र हो जाने पर उनके सड़ते जाने पर मिट्टी बननेकी अवस्थाका निरीक्षण कर देखा गया है कि धरातलके कुछ नीचे जहाँ मिट्टीमें पानी भरा होता है और वायुका प्रवेश नहीं होता वहाँ सूखे पौधे एक भूरी वस्तुके रूपमें हो जाते हैं जिसमें उनकी रचना और आकारका लोप हो गया है। यह परिवर्तन जीवाणुओंका कार्य है। यदि परिवर्तन घास पातकी सड़ानमें होता है तो आजसे लाखों वर्ष पूर्व पत्थर कोयलेमें भी यह हुआ होगा। सूक्ष्म दर्शक यन्त्रसे बड़े कौशलसे खोज कर एक फ्रांसीसी विद्वान ने पत्थर-कोयलेके अन्दर जीवाणुओंकी ग्रन्थिकाका पता लगाया है जो वे संकट कालके समय अपनी रक्षाके लिये एक दूसरेसे बिलकुल चिपटकर बना लेते हैं और जिससे फिर उनकी उत्पत्ति हो सकती है। इस प्रकार एक और समस्याका उत्तर मिल सका है।

अब हम यह बतलानेका प्रयत्न करेंगे कि पत्थर कोयला किस प्रकार प्राप्त किया जाता है। पहले यह भी अन्य लाभदायक शिलाओं वा खनिज पदार्थोंकी भाँति किसी पपड़ीकी बगलमें निकला हुआ पाया गया था और रुखानी, कुदाल वा टांगे से काट कर अलग किया जाता था। जब खोदते खोदते खनक पहाड़ीके अन्दर पहुंच जाता था तो पत्थर कोयलेका कुछ अंश छोड़ दिया जाता था जो खंभेकी तरह रह कर छतको सभाँले रहता था। यदि छत वा अगल बगलका कोयला दृढ़ नहीं होता तो अगल बगल शहतीरके खम्भे खड़े कर उनके ऊपर बल्ली रख छत सँभाली जाती। परन्तु बहुत सावधानी से छत सँभालनेका प्रबन्ध होने पर भी बहुत अच्छी अच्छी खानोंमें बहुधा छत गिर जाया करती है। ऐसी दुर्घटनाओंके और खानिगह्वरके बीचमें मार्ग रुक जानेसे खानोंमें गैसके धड़ाकेकी अपेक्षा अधिक मनुष्योंकी मृत्यु होती है।

सभी खानोंके अन्दर दूषित वायु रहती है, विशेष कर पत्थर कोयलेकी खानोंमें अधिक होती है, इसलिए जब खनक आगे बढ़ता है तो उसे शुद्ध वायु अत्यावश्यक हो जाती है। इसके लिये खानों में प्रवेश मार्गके अतिरिक्त कुछ ऊँचाई तलसे सीधे खानके गह्वर तक एक छेद बनाते थे जिसे शैफ्ट कहते हैं। इसके निचले सिरे पर आग जलानेसे खानकी दूषित वायु ऊपर आ जाती थी और उसके स्थान पर प्रवेश मार्गसे शुद्ध वायु भीतर पहुँचती थी।

परन्तु यह साधन अधिक संकट पूर्ण है। पत्थर कोयलेकी बहुत सी खानोंमें ऐसी गैस होती है जो वायुके संसर्गसे अत्यधिक विस्फोट हो जाती है। ऐसी स्थितिमें यदि खानमें कहीं आगका प्रवेश हो तो तुरन्त ही गैस जल उठनेसे बड़े जोरों का धड़ाका हो और सब मनुष्योंकी जीवन क्रिया वहीं समाप्त हो जाय। इस कठिनाईको बचानेके लिए आधुनिक खानोंमें शैफ्टके ऊपरी सिरे पर पङ्खा चलाते हैं जिससे शुद्ध वायु भीतर भेजी जा सके वा दूषित वायु बाहरकी जा सके।

खानोंमें एक और भी बड़ी कठिनाई है। वहां गहराई और बन्द स्थान होने के कारण सदा अंधकार रहता है अतएव यदि प्रकाशका प्रबन्ध न हो तो कुछ काम ही न हो सके परन्तु प्रकाश करने पर तुरन्त ही गैस आग पकड़ ले। खान वालोंको यह एक बहुत बड़ी कठिनाई थी जिसके लिये उन्हें कोई उपाय नहीं सूझता था। अन्तमें हम्फ्री डेवी और जार्ज स्टिफिंसन ने पृथक् पृथक् उद्योगों द्वारा एक दूसरेसे स्वतंत्र ऐसे लैम्पोंका आविष्कार किया जिनके जलते रहने पर भी खानमें आग न लग सके।

यदि ताँबेके तारकी बारीक बिनी हुई जाली का एक टुकड़ा लिया जाय और उसे किसी जलती हुई गैस वा वस्तुके एक इञ्च या कुछ और ऊपर रक्खा जाय तो आगकी लौ जाली को छेद कर ऊपर न आ सकेगी और नीचे ही लौट जायगी किन्तु यदि जालीके ऊपर आग जला दी जाय तो उसके ऊपर भी निकलने लगेगी। लौके स्वयं जाली छेद कर ऊपर जलते न रहनेका कारण यह है कि ताँबा तापका सुचालक है इसलिये लौ को नीचे ही ठंडा कर देता है और उसके छेदमें को पार करते समय गैस और वायु जल नहीं पाती। इस परीक्षण को कोई भी व्यक्ति कर देख सकता है। यदि ताँबेका तार पहलेसे ठण्डा रहेगा तो उसकी घनी जालीके छेदोंसे लहर ऊपर न जा सकेगी परन्तु यदि तार पहलेसे ही गर्म हो तो लहर पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ेगा।

डेवीके लैम्पमें इसी सिद्धान्त पर उसके चारों ओर ताँबे की एक जाली लगी थी जिससे आग लगनेका भय दूर हो गया था। जब तक बाहरसे आग का संसर्ग न हो वा वेगसे हवाका झोंका न बहे तब तक खानके अन्दर लैम्प संकट रहित था।

धड़ाका उत्पन्न करने वाली गैसको छोड़ कर भी खानोंमें अन्य संकट भी होते हैं। खानोंके अन्दर कर्बन एकौषिद नाम की एक विषैली गैस उत्पन्न हुआ करती है इस कारण यदि कहीं छतके

गिरनेसे खानके किसी भागसे शैफ्ट तक मार्ग बंद हो गया तो वहांके मनुष्य अधिक बिलम्ब तक पड़े रहने पर इस विषैली गैससे मर जायेंगे इस कारण उनको तुरन्तु ही बाहर निकालनेका प्रयत्न किया जाता है। ऐसे संकटके समय खानोंके अन्दरसे संकटापन्न मनुष्योंकी रक्षाके लिये सधे हुए आदमी रक्खे जाते हैं जिन्हें कृत्रिम रूपसे मकानोंके अन्दर खानकी भाँति कृत्रिम संकट पैदा कर मनुष्योंकी रक्षा करनेकी शिक्षा दी जाती है।

हम देखते हैं कि पत्थर-कोयले की खानोंकी खोदाईमें मनुष्यको कितनी विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है परन्तु इसके बिना संसारका काम चल ही नहीं सकता। प्रत्येक वर्ष इसकी मांग बढ़ती जा रही है। यदि आज संसारसे कोयला वा उसी तरहकी अन्य शक्ति उत्पादक वस्तुएँ पृथक् कर दी जायँ तो संसार शताब्दियों पीछे चला जायगा। इस कारण यद्यपि प्रकृति ने पृथ्वीके गर्भमें बहुत गहराईमें अपने भंडारको संचित कर उसकी रक्षाके लिये उसके चारों ओर विपत्तियोंका जाल बिछा रक्खा है फिर भी मनुष्य हताश न हो कर उद्योगशील होता है और प्रत्येक वर्ष उस भंडार पर अधिकाधिक अधिकार जमाता जा रहा है।

पर्सपेक्टिव

(PERSPECTIVE)

[ले० श्री श्यामलाल कुटरियार]

प्रायः ऐसा होता है कि इञ्जिनियरिंग कामों का प्रोजेक्ट ऐसे निर्वाचित सज्जनोंके पास जाता है जो प्लैन और एलिवेशन (Elevation) से अपरिचित रहते हैं। यदि पर्सपेक्टिव (Perspective) चित्र बनाया जाय तो उसे वे भली भांति समझ सकते हैं। यदि पर्सपेक्टिवका वर्णन विस्तारपूर्वक किया जाय तो एक बड़ी सी पुस्तक बन जायगी। किन्तु कुछ ऐसे साधारण नियम हैं जिनका स्मरण रखना कठिन नहीं है और जिनके थोड़े ही व्यवहारसे किसी मकान या मकानके समूहोंका सन्तोष-जनक पर्सपेक्टिव चित्र बन सकता है। इनके व्यवहारसे मुख्य रेखायें निश्चित हो सकती हैं और तदनन्तर जितना चाहें उतना विस्तार बिना किसी विशेष बनावटके किया जा सकता है।
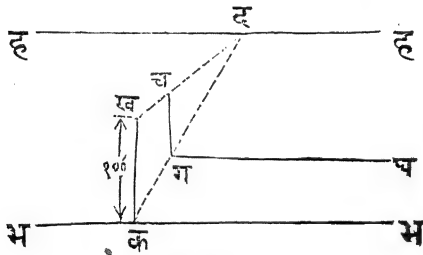
(चित्र नं० १)

१—भ भ तथा ह ह के बीच का स्थान, तुम्हारे चित्रमें सबसे निकट-वर्ती बिन्दुसे लेकर ह ह क्षितिज (Horizon) तक पृथ्वीकी समतल भूमि हैं।

२—उसी पैमाने (Scale) के अनुसार यदि क ख १०० फीट है, तो ह ह से भ भ तक (लम्ब) की दूरी, भूमिसे दर्शकके नेत्रकी ऊँचाई है।

३—ह ह क्षितिजका चित्र है।

४—द (दृश्य का केन्द्र) दर्शकके नेत्रके ठीक सामने है।

५—भूमि पर ग घ रेखाके किसी स्थान पर, भूमिसे १०० फ़ीटकी ऊँचाई, जो दृष्टिपथसे समकोण पर है चित्रमें ग च से सूचितकी जायगी। इस प्रकार त्रिभुज क ख द ऊँचाईके मापका स्केल है जिससे क्षितिज तकके किसी बिन्दुकी १०० फीट तक की ऊँचाई मिल सकती है।

६—उस खड़े धरातल (Vertical plane) को जो भूमिको भ भ रेखा पर काटती है, चित्र-धरातल (Picture plane) कहते हैं। इस धरातलके समानान्तर ढांचेकी जितनी रेखायें हैं वे सब अपनी ठीक दिशामें खींची जाती हैं।

७—वे सब रेखायें जो चित्र-धरातल पर समकोण बनाती हैं, बढ़ाये जाने पर द बिन्दु पर मिलती हैं।

थोड़े ही अभ्याससे यह ज्ञात होगा कि किसी वस्तुका यथार्थ चित्र बनानेके लिये हम लोगोंको चित्र-धरातलकी दिशाकी रेखाओंकी दूरी मापनेके लिये, उपर्युक्त बातोंके अतिरिक्त केवल एक नियमकी आवश्यकता होगी। यह नियम नीचे लिखा जाता है।
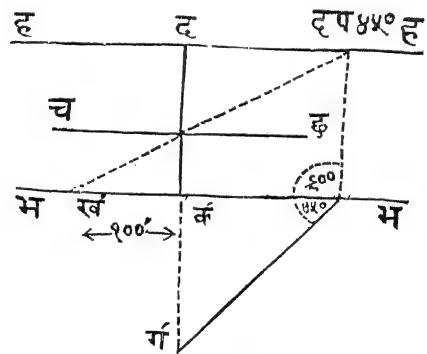
(चित्र नं० २)

८—यदि क ख=क 'ख'=१०० फीट, तो उसी पैमाने (Scale) से क 'ग' चित्र-धरातलके सम्मुख, दर्शककी दूरी है।

६—च छु चित्र धरातल (Picture Plane) से १०० फीट पीछे भूमि पर, एक रेखाका चित्र है। १०० फीट केवल उदाहरण मात्र है। कख और क 'ख' दोनोंके लिये कोई दूसरी दूरी भी रख सकते हैं।

ये ही सब आवश्यक नियम हैं, जिससे पाठक किसी वस्तुका यथार्थ चित्र इच्छानुसार खींच सकते हैं। परन्तु इसके लिये पूर्ण अभ्यासकी आवश्यकता है। सन्तोषजनक दृश्यके समान सन्तोष-जनक चित्र भी पूर्णतः दर्शककी स्थिति पर निर्भर है, अर्थात् क ग' की दूरी पर और भूमिसे दर्शकके नेत्रकी ऊँचाई पर निर्भर है।
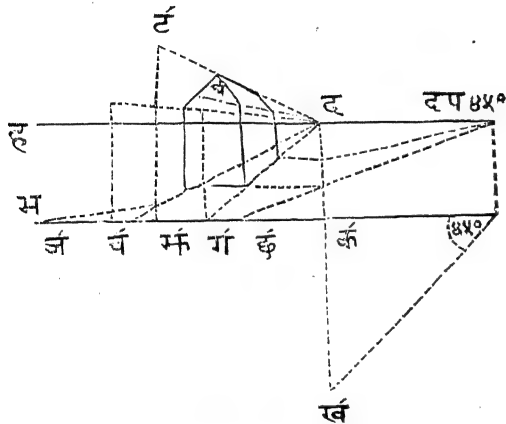
(चित्र नं० ३)

उदाहरण :—

एक छोटा सा मकान १५ फीट चौड़ा, ३० फीट लम्बा है। ऊँचाई ओलती तक २० फीट और बड़ेरी तक ३० फीट है। इसका सबसे निकट स्थान चित्र धरातल (Picture Plane) से १६ फीट पीछे है। मेरा नेत्र भूमिसे १५ फीट ऊँचाई पर और चित्र प्लेन से ३० फीटकी दूरी पर है। दाहिने तरफकी दीवाल दृष्टि-पथ से २० फीट बायें तरफ हट कर है। स्केल (Scale) $\frac{1}{8}''=1'$

ह × भ = १ $\frac{7}{8}''$, क्योंकि नेत्र १५ फीटकी ऊँचाई पर है (नियम २)

क 'ख'—३ $\frac{3}{4}''$, क्योंकि नेत्र चित्र-धरातल (Picture plane) से ३० फीट हट कर है। (नियम ८)

क'ग' = २$\frac{1}{2}''$ क्योंकि लम्बी दीवाल दृष्टिपथ से २० फीट पर बांये तरफ है।

ग'घ' = २$\frac{1}{2}''$ क्योंकि दीवाल २० फीट ऊँची है। (नियम ५)

ग'च' = $\frac{7}{8}''$ क्योंकि छोटी दीवालकी लम्बाई १५ फीट है (नियम २)

क'छ' = २" क्योंकि सबसे निकटकी दीवाल (चित्र धरातल) से १६ फीट पीछे है। (नियम ६)

छ 'ज' = ३$\frac{3}{4}''$ क्योंकि लम्बी दीवालकी लम्बाई ३० फीट है (नियम ६)

झ'ट' = ३$\frac{3}{4}''$ क्योंकि बड़ेरीकी ऊँचाई ३० फीट है। (नियम ५)

प्रथम वारके सिवाय क्षितिज तथा दो वैनिशिंग बिन्दुओं (Vanishing points) के अतिरिक्त ['द' चित्र-धरातल (Picture plane) पर लम्ब की रेखाओंके लिये और 'द प ४५°' चित्र-धरातल से ४५° पर रेखाओं के लिये] बनावटकी रेखाओं (Dotted construction lines) के खींचनेकी आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार प्लैन और एली-वेशन (Plan and elevation) की प्रथम वार खींचते समय प्रोजेकशन (Projection) की बिन्दुदार रेखायें (dotted lines) खींचते हैं, ठीक उसी प्रकार सीखनेकी अवस्थामें ये रेखायें भी दी जाती है।

इस प्रकार मुख्य रेखाओंके मिल जाने पर, केवल नियम ६ और ७ के स्मरणसे जितना विस्तार चाहें उतना बिना किसी बनावटके किया जा सकता है।

एरियल पर्सपेक्टिव (Aerial Perspective)

किसी दूरकी वस्तु पर चाहे जिस प्रकार दृष्टि स्थितकी जाय, हवा और भापके परदेके कारण उस वस्तुका आकार उतना पुष्ट और स्पष्ट नहीं दीख पड़ता जितना निकटकी वस्तु का। नेत्र किसी एक समयमें एक ही वस्तुको स्पष्ट रूपसे देख सकता है।

एरियल पर्सपेक्टिव (Aerial Perspective) के विचारसे चित्रका ठीक २ सुधार अपनी कलामय प्राकृतिक शक्ति (Artistic Instinct) से हो सकता है और इस विषयमें लिखना कठिन है। प्रायः दूरकी वस्तुओंको हलके रूपसे दिखलाना चाहिये और जो रेखायें यथार्थमें सीधी हैं वे केवल हाथ ही से (बिना किसी यन्त्र के Free hand) खींची जानी चाहिये, क्योंकि वे पूर्णतः सीधी नहीं दीख पड़ेंगीं।

जीर्ण-फुफ्फुस-यक्ष्माका निदान

[ले० श्री कमला प्रसाद जी, एम० बी०]

किसी जीर्णकाय, शक्ति-हीन, रक्त-रहित, निरन्तर ज्वर एवं खांसीसे पीड़ित, महीनोंसे रोग-ग्रस्त युवकको देखकर यह कहा जाय कि "वह यक्ष्माका रोगी है" तो न तो इसमें आश्चर्य की कोई बात होगी, और न ऐसा कहनेके लिए अधिक विद्वत्ताकी आवश्यकता होगी। ऐसी अवस्थामें जब रोग चिकित्सा योग्य नहीं रह जाता, इसके निदानकी घोषणा करने ही से क्या लाभ हो सकता है? सच तो यह है कि अन्तिम अवस्थाओं में यह रोग किसी प्रकार शान्त नहीं होता, प्रत्युत इसकी निरन्तर वृद्धि होती जाती है, तथा अन्तमें रोगीकी मृत्यु भी होती है। साथ ही साथ यदि बहुत आरम्भमें ही यह पकड़ लिया जाय तो इतनी सुगमतासे और किसी भी जीर्ण रोगकी चिकित्सा नहीं होती। अस्तु भैषज्य-संसारकी सदैव यही चेष्टा रहती है कि रोगका निदान इसके बहुत आरम्भसे ही हो जाय। वास्तवमें यह काम इतना सहज नहीं है जितना कि वाह्यदृष्टिसे देखने पर प्रतीत होता है।

सर्व प्रथम इस बातका ध्यान रखना उचित है कि जीर्ण फुफ्फुसयक्ष्मा अनेक रूपोंमें प्रकट होता है इसके बहुधा निम्नलिखित रूप पाये जाते हैं।

(१) प्रदाहरीय। रोगी बार बार सर्दी-खांसी से पीड़ित होता रहता है, या रह रह कर उसे इंफ्लूयेंजा* वा कास रोग सताता रहता है।

(२) धीरे धीरे आक्रमणकारी रूप। रोगीका साधारण स्वास्थ्य धीरे धीरे नष्ट होता जाता है। आरम्भमें उसे इसका कारण ज्ञात नहीं होता। वह अनेक बलकारी औषधियों (Tonics) का सेवन करता है, किन्तु अन्तमें उसके शरीरमें यक्ष्मा के प्रबल लक्षण उपस्थित हैं।

(३) मस्तिष्क सम्बन्धी लक्षणोंके साथ प्रकट होना। इस रूपमें रोगीको मस्तिष्क सम्बन्धी उपद्रवों—जैसे मानसिक क्लेद (खिन्न चित्त रहना), अतंद्रा, उदर-रोग इत्यादि—से पीड़ा होती रहती है।

(४) रक्त-क्षीणता रूप। इस रूपमें यह नव-युवतियोंको अधिक पकड़ता है।

(५) रक्त-क्षरण रूप।

(६) फुफ्फुसावरण-प्रदाह रूप।

(७) ज्वर रूप। नाड़ी तेज़ चलती है, थोड़े परिश्रमसे भी इसकी गति (बिना ज्वरके भी) बहुत बढ़ जाती है।

(८) अपच रूप।

(९) स्वर-बल-प्रदाह रूप। थोड़ी देर तक बोलनेसे थकावट आ जाती है। आवाज़ कर्कश निकलती है, और कभी कभी बोलना कठिन हो जाता है।

(१०) म्लेरिया रूप। ज्वर ठीक समय पर आता है।

इसके अतिरिक्त रोगका निदान निम्नलिखित उपादानों पर निर्भर करता है—

(१) लक्षण।
(२) चिह्न।
(३) रौञ्जन किरण (X-Ray)
(४) वैशेषिक प्रतिक्रियायें (टुबर्कुलिन-परीक्षा)।
(५) बलगमकी परीक्षा।
(६) रक्तकी परीक्षा।
(७) तापक्रम।

* यदि इन्फ्लुयेंजा अपनी अवधिको अतिक्रमकर बहुत दिनों तक बना रह जाय तो यह यक्ष्माकी ओर संकेत करता है। ऐसी अवस्थामें रोगीकी यथोचित परीक्षा होनी चाहिए

(१) लक्षण

(क) खांसी—कभी कभी यह नहीं होती, और कभी कभी इतनी कम होती है कि इसकी ओर अधिक ध्यान आकर्षित नहीं होता। अथवा खांसी रोगके आरम्भसे लेकर अन्त तक बनी रहती है और कुछ कुछ बलगम भी निकलता रहता है।

(ख) क्षय—रोगके आरम्भसे ही शारीरिक क्षय होता रहता है, तथा ज्यों २ रोग बढ़ता जाता है, त्यों त्यों इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। रोगी तौलमें निरन्तर घटता जाता है, तथा उसकी शक्तियां क्षीण होती जाती हैं।

(ग) रक्तक्षरण—यह कभी कभी रोगके बहुत आरम्भमें भी पाया जाया है। यह एक प्रकारका निश्चयात्मक लक्षण है। जेकर्डके कथनानुसार रक्तक्षरणको तब तक यक्ष्माका ही लक्षण मानना चाहिए, जब तक इसकी (यक्ष्माकी) उपस्थितिके विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण न मिल जाय। तथापि रक्तक्षरण निम्नलिखित अवस्थाओंमें भी पाया जाता है—

कुछ रक्त-सम्बन्धी रोग जैसे रक्तक्षीणता इत्यादि।

कुछ हृदय-सम्बन्धी रोग।

कुछ फुफ्फुस एवं वायुनलिका सम्बन्धी रोग।

इन्फ्लूयेंजा।

मुँह, नाक, वा मसूड़ोंकी कमज़ोरी।

(घ) स्वर भङ्ग।

(ङ) अपच। भोजनके उपरान्त पेट कुछ फूल जाता है, उदरके निम्न भागमें कभी कभी पीड़ा होती है। कोष्ठ-बद्धता सदैव सताती रहती है।

(च) ज्वर। यह रोगके आरम्भसे अन्त तक बना रहता है। ऐसा कोई शायद ही पाया जाय जिसे ज्वर न आता हो। बहुधा यही एक लक्षण रोगीका ध्यान आकर्षित करता है।

(छ) नाड़ीकी तीव्रगति। यदि ज्वर न भी हो तो भी नाड़ीकी गति प्रति मिनट १०० से कम नहीं रहती। (स्वस्थ व्यक्तियोंमें यह ७०—८० होती है)

(ज) स्वेदागम, शीत, और वक्षस्थलमें पीड़ा होना। ये लक्षण ठीक ठीक वैसे ही जान पड़ते हैं जैसा कि इन्फ्लूयेंजा वा म्लेरियामें। पसीना खूब आता है, शीतके कारण कँपकँपी मालूम होती है, किन्तु वक्षस्थलकी पीड़ा औषधियोंसे शान्त नहीं होती।

(झ) रक्त-क्षीणता।

(ञ) अन्य किसी रोगके आक्रमणके उपरान्त निर्बलताका बना रहना।

(ट) पारिवारिक इतिहास। इससे यह जाना जा सकता है कि रोगीका किसी अन्य यक्ष्मा-भोगी के साथ संसर्ग था वा नहीं।

(ढ) जीर्ण फुफ्फुसावरण प्रदाह।

(२) चिह्न।

[परीक्षा करते समय रोगीके वक्षस्थलसे सभी तरहके कपड़े हटा दिये जायँ। स्त्री-रोगियोंके भी शिर एवं पृष्ठ देशसे कपड़े हटा देना उचित है। पर्देके लिए चादर वा साड़ीके अंचलसे स्तनोंको चोलीकी भाँति ढाँप दे सकते हैं। तात्पर्य यह है कि वक्षस्थलका यथा-सम्भव विस्तीर्ण अंश परीक्षा के लिए खुला रहे। रोगीको एक मामूली तिपाई पर बैठा कर (जिसमें पैर नीचेकी ओर झूलते रहे) उसकी दाहिनी तलहत्थीको बांये स्कंध पर और बांयीको दाहिने स्कंध पर रख देना उचित है। कुहनियां नीचेकी ओर रहेंगी, तथा शिर झुका रहेगा। इस अवस्थामें चिकित्सक रोगीके पृष्ठ-भागकी परीक्षा कर सकते हैं।

सम्मुख ओरकी परीक्षा करते समय हाथोंको स्कंधोंसे हटा देना होगा, एवं चिबुकको यथासंभव ऊपरकी ओर उठा देना होगा।]

दर्शन।

साधारणतः फुफ्फुस-यक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्थाओंमें में वक्षस्थलकी आकृतिमें कुछ विशेष परिवर्तन नहीं होता। सम्भव है स्कन्ध स्थान पर वक्ष कुछ बाहरकी ओर निकला हुआ जान पड़े, अथवा शिखरके निकट कुछ चिपटा हो गया हो। किन्तु रोग ज्यों ज्यों विस्तीर्ण होता जाता है, त्यों त्यों इसकी आकृति गोल होती जाती है, तथा आकारमें अधिक लम्बा जान पड़ता है। पशुकायें स्पष्ट दिखाई देती हैं।

विघातन।

[परीक्षक के बायें हाथकी मध्यवर्त्ती उंगली रोगीके वक्षस्थलके साथ सटी रहेगी और दाहिने हाथकी उसी उंगलीसे उस पर हलका प्रहार किया जायगा। विघातन-क्रिया वक्षस्थलके ऊपरी भाग से आरम्भ कर नीचे तक की जायगी]

तुलनात्मक विघातन द्वारा फुफ्फुसके क्षत अंश का झंकारका लुप्त होना जाना जायगा। सी० रीवियरीमें मतानुसार यक्ष्माकी बहुत प्रारंभिक अवस्थामें भी निम्नलिखित दो स्थानोंमें यह झंकार लुप्त हो जाती है—

वक्षस्थलके पृष्ठ-भागमें पहली और दूसरी कशेरूकाओंके बीचका स्थान तथा पांचवी और सातवीं कशेरूकाओंके बीचका स्थान।

किन्तु अन्य लेखकों ने इनके इस मतका समर्थन नहीं किया है, विशेष कर गाई साहब ने तो इसे एकदम अस्वीकार किया है।

इसके अतिरिक्त ग्रीवा मूल के निकटवर्त्ती (फुफ्फुस-शिखरके ऊपरी) स्थानोंमें जिनमें साधारणतः झंकार पायी जाती है, रोगारम्भमें ही यह लुप्त हो जाता है।

स्पर्श।

इसके लिए रोगीको ज़ोर ज़ोर से श्वास लेना उचित है। परीक्षक अपनी दोनों तलहत्थियोंसे रोगीके वक्षस्थलको स्पर्श करते रहें, एवं बार बार भिन्न भिन्न स्थानोंका स्पर्श कर तुलनात्मक परीक्षा करें। श्वास लेनेके समय क्षत अंश की गति कम हो जाती है।

शब्द परिचायक द्वारा सुनना।

इस समय इन बातों पर ध्यान देना उचित है—

अन्तः श्वसन् तथा बहिःश्वसन्में पृथक् पृथक् कितना समय लगता है ?
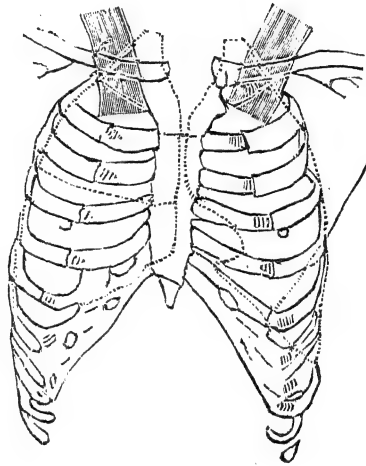
(चित्र नं० ४)

घने काले अंश क्लाइव रीवियरी द्वारा वर्णित स्थान हैं जिनमें यक्ष्माकी बहुत प्रारम्भिक अवस्थाओंमें विघातन-झंकार (Percussion Resonance) का लोप हो जाता है।

शब्दोंमें यक्ष्मा-जनित विकृति सूचक कुछ विशेषता है वा नहीं ? यदि है तो यह स्वस्थ मनुष्यों में भी पायी जा सकती है वा नहीं ? संकुचित वा विस्तृत स्थानमें है ? एक ही स्थान पर सदैव वर्त्तमान है ? बार बार परीक्षा करने पर भी मिलती है ? अन्य लक्षण इसकी उपस्थितिका समर्थन करते हैं वा नहीं ? यह उसी स्थानमें है जहां प्रारम्भिक-यक्ष्मामें इसके पाये जानेकी अत्यधिक सम्भावना रहती है (उदाहरणार्थ शिखर) ?

सर्व प्रथम स्वाभाविक (शांतिपूर्वक) श्वास लेते समय परीक्षा करनी चाहिए, तदनन्तर रोगीके मुख खोल कर ज़ोर ज़ोरसे श्वास लेते समय परीक्षा करनी चाहिए, और अन्तमें खाँस खाँस कर श्वास लेते समय परीक्षा करनी चाहिए।
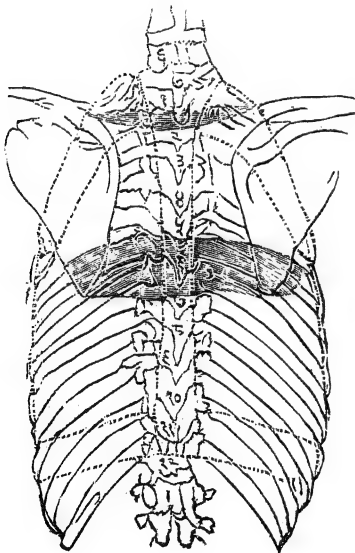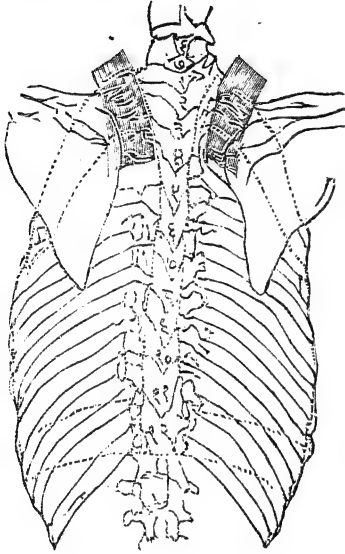
(चित्र नं० ५, ६)

रोगके आक्रमण होने पर—

(क) बहिः श्वसन्‌का शब्द अपेक्षाकृत देर तक सुन पड़ता है। यह आरम्भसे अन्त तक एक सा कर्कस (Rough) जान पड़ता है। वा

(ख) श्वास-शब्द बहुत ही मन्द हो जाता है, यहां तक कि गहरी श्वास लेने पर भी यह अधिक नहीं सुनाई पड़ता। ऐसी अवस्था एक निर्धारित (क्षत) स्थानमें पायी जाती है, और जितनी बार क्यों न परीक्षाकी जाय वहां पर उसी प्रकार धीमा शब्द सुन पड़ता है।

(ग) कभी कभी अन्तःश्वसन् बीचमें रुकता हुआ सा (Cog-wheel) जान पड़ता है।

(घ) कर्कश, तथा कुर्कुराहटके साथ अन्तः श्वसन्। इस कुर्कुराहटको यदि श्वास शब्दसे पृथक् कर सकें तो इसे राल्स कहते हैं। इस प्रकारके शब्दका वर्त्तमान रहना प्रारम्भिक यक्ष्मा का निश्चयात्मक चिह्न है।

(ङ) राल्स। ये प्रायः सदैव (रुग्नावस्थामें) वर्त्तमान रहते हैं। अन्तः श्वसन्‌के अन्तमें ३ । ४ वार कुर्कुराहट जो एक दूसरेसे संलग्न जान पड़ता हो यक्ष्मा-निदानके लिये यथेष्ट है। गहरी श्वास लेने पर अथवा खांसने पर ये और भी स्पष्ट हो जाते हैं। यदि स्वाभाविक श्वास लेने पर ये सुनाई पड़ें तो इसका अर्थ होगा कि रोग प्रथमावस्थाको अतिक्रम कर चुका है।

ज्यों ज्यों रोग बढ़ता जाता है, त्यों राल्सोंकी संख्या बढ़ती जाती है, और श्वास शब्दके दोनों पक्ष (अन्तः तथा बहिः श्वसन्) में सुन पड़ते हैं। ये कभी कभी सीटीकी आवाजसे अथवा सोते हुए व्यक्तिके खर्राटेके से जान पड़ते हैं। यदि राल्सों की संख्या अधिक हो तथा उन्हीं के अनुसार शारीरिक ह्रास नहीं हुआ हो तो इसका अर्थ होगा कि फुफ्फुस-यक्ष्माके अतिरिक्त प्रणाली प्रदाह (Bronchitis) भी वर्त्तमान है।

रालस वक्षस्थलमें जितने ऊँचे सुने जायँगे उतने ही इसके निदानका समर्थन करेंगे। यदि खांसनेके उपरान्त ये लुप्त हो जायँ तो इसका अर्थ होगा कि केवल प्रणाली-प्रदाह हो कर ही रह गया है, क्योंकि वास्तविक यक्ष्माके रालस खांसने पर और भी स्पष्ट हो जाते हैं। आश्चर्य तो इस बातका है कि रोगकी बहुत बुरी अवस्थाओंमें भी कभी कभी ये रालस नहीं मिलते।

यक्ष्मा-जनित गर्त्त के चिह्न

(Signs of Tuberculous cavities)

विघातन—झंकार कुछ कम हो जाती है अथवा यदि गर्त्त बहुत बड़ा हुआ तो यह झंकार और भी बढ़ जाती है। कभी यह झंकार एक दम प्रकृत सी जान पड़ती है—विशेष कर यदि फुफ्फुसावरण कुछ मोटा हो गया अथवा चारों ओरके फुफ्फुस-तन्तु अधिक ठोस नहीं हो गये हों। बड़े गर्त्तकी उपस्थितिमें फूटी हांड़ीका सा शब्द (यदि रोगी परीक्षाके समय मुख खोल रक्खें) निकल सकता है। यदि गर्त्त हो बहुत ही बड़ा हो तो विघातन द्वारा ढोलका सा कड़ा शब्द (Amphoric) सुन पड़ता है।

विण्टरिकका चिह्न (Wintrich's sign) रोगीके मुख खुले तथा बन्द रहने पर परीक्षा करते समय इस झंकारमें कुछ परिवर्त्तन पाया जाता है, किन्तु इसका मूल्य नगण्य है।

शब्द-परिचायक द्वारा सुनना।

श्वास—शब्द। आंधीके से वा नलाकार सुनाई पड़ते हैं।

बाहरी शब्द—रुक्ष (कर्कश) दीर्घ रालस—विशेष कर खांसनेके उपरान्त-सुने जाते हैं। यदि गर्त्त द्रव-विहीन हुआ (जैसा बहुत कम पाया जाता है) तो रालस नहीं भी मिल सकते हैं।

आकर्षण—शब्द (Post-tussic suction sound)। खांसनेके उपरान्त दीर्घ श्वास लेने पर सुसकारी (Hiss) का सा शब्द सुना जाता है। इसकी उपस्थिति गर्त्तको फुफ्फुस तंतुओंके ठोस हो जानेकी अवस्थासे पृथक् करती है।

गर्त्तोंके सम्बन्धमें कुछ विशेषतायें ये हैं—

(क) कभी कभी बड़े गर्त्तके वर्त्तमान रहने पर भी बाहरसे कोई चिह्न नहीं मिलता।

(ख) गर्त्तका निदान बहुधा आकर्षण-शब्द पर निर्भर करता है।

(ग) किसी बड़ी वायु-नलिकाके निकटवर्त्ती तन्तुओंके ठोस हो जाने पर गर्त्तका सा शब्द मिल सकता है।

अन्य फुफ्फुस रोगोंसे पृथक् करण (Differential Diagnosis)

(१) फुफ्फुस-शिखर-भ्रंश (Apical Collapse of the lung)

कारण—इस रोगका साधारणतः कोई विशेष कारण नहीं होता। वयस्कोंमें तो ऐसे ही हो जाया करता है, किन्तु बच्चोंमें कंठकी बीमारियां कभी कभी इसके कारण हो जाती हैं।

यक्ष्मा एवं इस रोगके चिह्नमें समानता—

(क) दोनों ही से फुफ्फुस-शिखर पर विघातन झंकार लुप्त हो जाती है।

(ख) बहिःश्वसन् दीर्घ एवं कर्कश जान पड़ता है।

किन्तु इस रोगमें—

(क) फुफ्फुस-यक्ष्माके अन्य कोई लक्षण वा चिह्न नहीं पाये जाते।

(ख) फुफ्फुस-प्रदाहके कोई चिह्न नहीं मिलते।

(ग) नासारंध्रों एवं कंठस्थ ग्रन्थियोंके प्रदाह वर्त्तमान रहते हैं।

(२) नूतन फुफ्फुस-शिखर प्रदाह (Acute Apical Catarrh) कभी कभी यह रोग नासा-रन्ध्रोंको श्लैष्मिक कलाके प्रदाहसे उत्पन्न होता है किन्तु बहुधा यक्ष्मा ही इसका कारण है, अथवा यह फुफ्फुस-यक्ष्मामें परिणत हो जाता है। अस्तु, इस अवस्थामें सतर्क रहना उचित है।

(३) जीर्ण प्रणाली प्रदाह (Chronic Bronchitis) तथा शिखर-भ्रंश ।

(क) इन रोगोंमें बार बार परीक्षा करने पर ऐसा प्रतीत होता है, मानो यक्ष्माके चिह्न कभी एक शिखर पर मिलते हों, कभी दूसरे पर ।

(ख) कुछ कालोपरान्त ये रोग भिन्न भिन्न पथ ग्रहण करते हैं ।

(ग) इन रोगोंमें रक्त-दबावकी अधिकता होती है

(४) हृद्रोग—जनित अथवा वृक्क-प्रदाह-जनित फुफ्फुसका सूजन ।

इस रोगको यक्ष्मासे पृथक् करना कठिन है। अन्य सहायक लक्षणों एवं रौञ्जन-किरण छाया-चित्र पर निर्भर करना होगा ।

(५) श्वासनल-स्फालन (Bronchiectasis)

(क) इस रोगमें कुक्कुर खांसी, पंसाही गोरी, अथवा श्वासनल प्रदाहका इतिहास पहलेसे वर्त्तमान रहता है ।

(ख) यह रोग बहुधा फुफ्फुस-मूल पर आक्रमण करता है, इसके विपरीत यक्ष्मा बहुधा फुफ्फुस-शिखरमें आरम्भ होता है ।

(ग) फुफ्फुस-शिखरका विघातन-झंकार-क्षेत्र संकुचित नहीं होता ।

(घ) रौञ्जन किरण द्वारा स्फालित श्वासनल दीख पड़ता है ।

(ङ) साधारण स्वास्थ्य अच्छा रहता है तथा अन्य लक्षण नहीं दिखाई पड़ते ।

(च) बलगम—

इसमें यक्ष्मा-कीटाणु नहीं मिलते ।

इससे दुर्गन्ध आती है ।

एक कांचके ग्लासमें इकट्ठा करने पर यह तीन परतोंमें विभक्त हो जाता है।

इसका गुरुतम अंश ग्लास में नीचे बैठ जाता है ।

(६) फुफ्फुसोपदंश (Palmonary syphilis)

इसको यक्ष्मासे पृथक् करना कठिन नहीं है किन्तु इसकी ओर चिकित्सकका ध्यान बहुत कम जाता है । (यह रोग होता भी है बहुत कम) निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं ।

(क) रोगका इतिहास ।

(ख) अन्य अंगोंमें इसके उपदंशके उपद्रव दीख पड़ते हैं वा नहीं ?

(ग) रक्त-विकृति—विक्षेप प्रतिक्रियायों द्वारा जानी जा सकती हैं ।

(घ) रौञ्जन किरण छाया चित्र इस रोग जनित व्रणको स्पष्ट कर देता है ।

(ङ) फुफ्फुसावरण-प्रदाह वा फुफ्फुस-प्रदाह का इतिहास नहीं मिलता ।

(च) यक्ष्माके अन्य लक्षण नहीं मिलते (किन्तु कभी २ दोनों ही के लक्षण एकसे जान पड़ते हैं ।

(छ) बलगममें यक्ष्मा कीटाणु नहीं पाया जाता

(ज) उपदंश की ओषधियों द्वारा रोग शांत हो जाता है ।

(७) शैवालकीटाणु द्वारा फुफ्फुसाक्रमण ।

(क) इसके लक्षणोंसे ऐसा जान पड़ता है मानो फुफ्फुसमें पीब भर गया हो, किन्तु उसके निकालनेकी चेष्टा करने पर पता चलता है कि वास्तव में फुफ्फुस का कुछ भाग ठोस हो गया है ।

(ख) बलगममें दुर्गन्ध आती है ।

(ग) यक्ष्माके अन्य लक्षण (क्षय इत्यादि) नहीं प्रकट होते ।

(८) यक्ष्माके साथ साथ जीर्ण श्वासनल-प्रदाह (Emphysema) ।

ऐसी अवस्थामें केवल बाहरी परीक्षा द्वारा यक्ष्माको पकड़ पाना कठिन है क्योंकि इन रोगोंके चिह्न एक दूसरेके प्रतिकूल होते हैं । उदाहरणार्थ, विघातन झंकार कुछ भी कमता नहीं, प्रत्युत कुछ अधिक ही जान पड़ता है । अस्तु, निदान बहुत कठिन हो जाता है ।

बलगममें यक्ष्माकीटाणुओंका पाया जाना, यक्ष्माका द्योतक है।

रौञ्जन किरण छाया चित्रसे भी कुछ सहायता मिल सकती है।

(६) कास-रोग (Asthma) के रूपमें फुफ्फुस-यक्ष्मा।

इसमें चिह्न यक्ष्माके मिलते मिलते हैं; और लक्षण कास-रोगके पाये जाते हैं।

३ रौञ्जन किरण
(X Ray)

"रौञ्जन-किरण छाया-चित्र द्वारा निदान इन किरणोंकी मानव शरीरके (भिन्न भिन्न) तंतुओंमें विषम-धारगामी शक्ति अथच इस (पारगामी शक्ति) को विषम अपारदर्शिताके दृश्य-चित्रसे अनूदित (परिणत) कर देने पर निर्भर करता है" अर्थात् शरीरके सभी तंतु रौञ्जन किरणोंको एक ही रूपसे पारगामी नहीं होने देते। प्रायः सभी तंतु कम वा अधिक इनको गतिके अवरोधक होते हैं। तन्तुओंकी इसी विभिन्न शक्तिका लाभ उठा कर रोगोंके निदानमें सहायता प्राप्त करते हैं।

रौञ्जन किरणों द्वारा दो प्रकारसे परीक्षाकी जाती है। एक तो चमक-सूचक (Fluoroscope) पर अवयवोंके प्रतिबिम्ब देख कर, दूसरे इनके वास्तविक छाया चित्र प्राप्त कर। दोनों रीतियोंके कुछ गुणावगुण हैं, यथा—

चमक-सूचक द्वारा लक्षित प्रतिबिम्ब।
(Fluoroscopic image)

(१) इसमें अवयवोंकी प्राकृतिक गति एवं उनकी वास्तविक स्थिति लक्षित होती है।
(२) प्रतिबिम्ब क्षण-स्थायी होता है। अस्तु, केवल परीक्षक ही उसे देख सकते हैं, तथा सम्भव है उसके निरीक्षणमें भूल भी करें।
(३) प्रतिबिम्बमें विस्तृत दृश्य पाना कठिन है।
(४) इससे अधिक समय तक कार्य लेना रोगी एवं परीक्षक दोनों होके लिए भयावह है।

रौञ्जन किरण छाया-चित्र।
(Skiagram)

(१) यह सम्भव नहीं।
(२) यह एक स्थायी चित्र है। जिसकी सभी कोई, चाहे जितने समय तक परीक्षा कर सकते हैं।
(३) छाया चित्र सभी प्रकार पूर्ण रहता है; तथा सूक्ष्माति सूक्ष्म अन्तरोंको भी प्रदर्शित कर देता है।
(४) इसके प्राप्त करनेमें भय का कोई विशेष कारण नहीं होता।

स्वच्छ व्यक्तियोंके वक्षस्थलका छायाचित्र

इसके उचित अध्ययनके लिए डनहमने※ इसे निम्न लिखित अंशों में विभक्त किया है—

(क) शिखर अंश। यह अक्षकके निम्नधार (Lower border of the clavicle) के ऊपर तक रहता है। इसमें किसी प्रकारकी छाया नहीं दिखाई पड़ती।

[इसके अतिरिक्त वक्षस्थलके शेषांश (अक्षक से वक्षोदर-मध्यस्था तक) को दो दो गोलार्ध-चापों (Arc of a hemisphere) द्वारा तीन भागोंमें विभक्त करते हैं]

(ख) आंतरिक अंश। इसमें फुफ्फुस-मूल का चित्र मिलता है।

※ J. Magnus Redding F. R. C. S.—X-ray Diagnosis
Dunham's divisi on of pulumonic field into zones quoted by J. M. Redding.

(ग) माध्यमिक अंश । इसमें सूक्ष्म वायु प्रणालियों इत्यादिके चित्र मिलते हैं

(घ) वाह्य अंश । इसमें किसी प्रकारकी छाया नहीं मिलती ।

(यह वर्णन वक्षस्थलके अर्धांश—एक पार्श्व—का है)

आन्तरिक अंश वा फुफ्फुस मूलकी छाया ।

छाया घनी विषम (सभी ओर एक सी नहीं) होती ।

आकारमें बाहरकी ओर उन्नतोदर, तथा विषम (irregular) होती है । ऊर्ध्व या अधः ओर कुछ विस्तृत होना असम्भव नहीं है ।

यदि यह बाहरकी ओर (बाह्य अंशमें) विस्तृत हो तो इसे अंग-विकृति-सूचक समझना चाहिये ।

इस छायाके निम्न लिखित कारण हैं :—

(१) श्वासनल-संलग्न लसीका ग्रन्थियां, और बृहद्लसीका नलिकायें ।

(२) दाहिना वा बाया श्वासनल तथा इसकी शाखायें ।

(३) फुफ्फुसकी बृहत् रक्त नलिकायें ।

(४) अन्तर तांतविक संयोजक तंतु ।

माध्यमिक अंशकी छाया ।

सूक्ष्म क्षीण रेखाओं (Linear striae) के रूपकी होती है । ये रेखायें संख्यामें बहुत रहती हैं, तथा फुफ्फुस मूलसे लेकर चारों ओर विकीर्ण रहती हैं, किन्तु शिखर अंश एवं वाह्य अंशमें प्रवेश नहीं करतीं ।

इस छायाके कारण हैं—
सूक्ष्म वायु-प्रणालियां ।
रक्त नलिकायें ।
लसीका नलिकायें ।
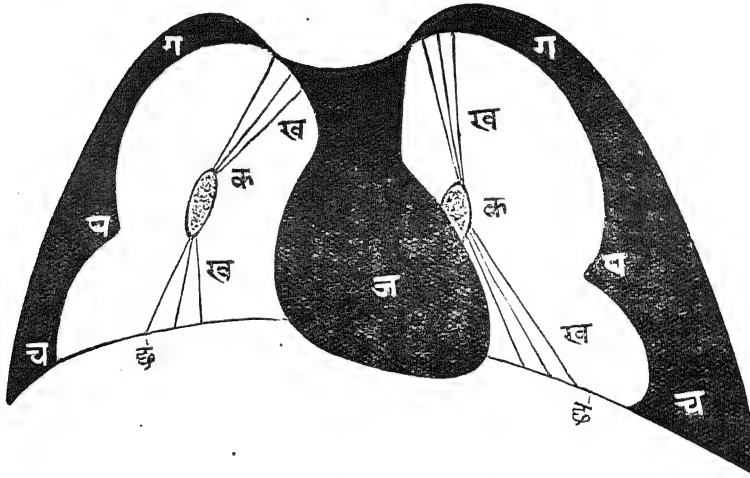
साधारण वक्षका छाया-चित्र ।

(अंकित)

(क) फुफ्फुस मूल । (ख) ऊर्ध्व तथा अधोगामी सूक्ष्म सौत्रिक-तंतु-जाल ।
(ग) मांसपेशियों एवं वक्षस्थलके अन्य तंतुओंकी छाया ।
(घ) स्त्रियोंमें स्तनोंकी छाया । (च) मोटे व्यक्तियोंमें वसाकी छाया ।
(ज) हृदय ।

इसके अतिरिक्त वक्षोदर मध्यस्था मांस पेशी की छाया मिलती है, जो चिकनी तथा समतल रहती है और बायीं ओर दाहिनी की अपेक्षा प्रायः १ वा १½ इञ्च ऊँची रहती है। वक्षस्थलकी मांस पेशियों, स्त्रियोंके स्तनों, और मोटे व्यक्तियोंमें वसाकी छाया मिलती है—जो बहुत क्षीण होती है।

यक्ष्मा-जनित अङ्ग-विकृतियोंके छाया-चित्र

अधःक्षेपित पदार्थ (Caseous material) की छाया घनी होती है, किन्तु उसकी (छाया की) परिधि बहुत स्पष्ट होती है। सौत्रिक तंतुओं की छाया रेखाओंकी सोहोती है। जिन तन्तुओंमें खटिक जम जाता है, उनकी छाया घनी, थोककी सी और नितान्त अपारदर्शी होती है। बढ़े गर्त्त फुफ्फुस-चित्रमें वास्तविक गड्ढेके से जान पड़ते हैं। छोटे गर्त्त तभी दिखायी पड़ते हैं जब सौत्रिक तन्तुओंकी कटोरियोंसे घिरे रहते हैं; तथा उन गर्त्तों की जिनमें द्रव भर जाता है, अथवा जो मोटे फुफ्फुसावरणसे वा फुफ्फुसतंतुसे ढँप जाते हैं छाया प्रायः नहीं मिलती। रुग्न ग्रन्थियोंकी छाया वृत्ताकार होती है। नूतन प्रदाह युक्त ग्रन्थियोंकी छाया नहीं मिलती।

क्षयाक्रान्त फुफ्फुस-मूलकी छाया।

अवस्थाओंके अनुसार इसके निम्नलिखित तीन प्रकारके चित्र मिलते हैं।

(१) जीर्ण तथा उपद्रव विहीन केन्द्र, जिसमें रोगके सद्यः प्रादुर्भाव का कोई चिह्न नहीं मिलता।

(क) फुफ्फुस-मूलकी छाया गहरी घनी होती है। इसमें जहां कहीं अधःक्षेपित पदार्थ वा खटिक पूर्ण (Calcifier) ग्रंथियोंकी छाया मिलती है।

(ख) ऊर्ध्व वा अधोगामी सूत्रोंकी छाया चौड़े फीतेकी सी जान पड़ती है।

(ग) फुफ्फुस-जाल कुछ घना हो जाता है

(घ) कभी कभी फुफ्फुस-शिखर एवं फुफ्फुसा-धारकी छाया नहीं मिलती, जिससे चित्र तितली का आकार धारण करता है।

(ङ) दोनों ही फुफ्फुसों की विकृति-सूचक छाया मिलती है।

(२) जीर्ण किन्तु ऐसे केन्द्र जिनमें रोगका कार्यक्रम चल रहा हो—

(क) मूलकी छाया घनी होती है, किन्तु इसकी परिधि क्षीण (धुन्धली) रहती है।

(ख) ऊर्ध्व एवं अधोगामी सूत्रोंकी छाया अपेक्षा-कृत क्षीण तथा ऊनकी सी जान पड़ती है।

(ग) फुफ्फुस-जाल कुछ मोटा दीख पड़ता है, और उसमें जहाँ कहीं छल्लेके चिह्न दिखाई पड़ते हैं।

(३) नूतन केन्द्र (जिनमें कार्यक्रम चल रहा है)

(क) सूत्रोंकी छाया छिन्न भिन्न रहती अथवा विलीन हो जाती है।

(ख) सारा चित्र शारदीय मेघमालापूर्ण आकाशका सा हो जाता है।

(ग) किसी २ स्थानमें फुफ्फुस तंतुओंके ठोस होनेका चिह्न (घनी छाया) पाया जाता है

(घ) बड़े गर्त्तोंकी छाया भी मिल सकती है।

क्षयाक्रान्त फुफ्फुस-शिखरकी छाया।

(क) ऊर्ध्व एवं अधःगामी सूत्र चौड़े, घने और गांठोंसे भरे हुए जान पड़ते हैं। उनकी चारों ओर भी गांठें दीख सकती हैं।

(ख) फुफ्फुसावरण मोटा होकर टोपीकी नाईं फुफ्फुस-शिखरको आच्छादित कर लेता है, जिससे शिखरकी विकृतियां बहुधा छिप जाती हैं।

(ग) ग्रंथियोंकी नूतन वृद्धि नहीं दिखाई पड़ती।

(घ) आक्रान्त फुफ्फुसकी ओरको वक्षोदर मध्यस्था मांस-पेशीमें कूबड़ापन दिखायी पड़ता है।

छाया-चित्रका अध्ययन किस प्रकार किया जाता है?

(१) मूलमें ध्यान देने योग्य बातें हैं।

(क) ग्रंथियां, बड़ी, पृथक्, अधःक्षेपित पदार्थ वा खटिक-पूर्ण हैं वा नहीं।

(ख) बड़े आकारके श्वासनल घने वृत्तके से दो जुटी हुई अंगूठियोंके से दिखाई पड़ेंगे। इनके चारों ओर यक्ष्मा गांठें भी मिल सकती हैं।

(ग) फुफ्फुस तंतु (Parenchyma) द्रव-युक्त पाये जा सकते हैं, जिससे छाया धुँधली तथा समतल दिखायी पड़ती है।

(२) फुफ्फुस-जाल (श्वासनल, रक्त नलिकायें लसीका नलिकायें, इत्यादि) में।

(क) आगे (सूत्र) चौड़े हो गये हैं वा नहीं?

(ख) गांठों वा अप्रस्फुट कुसुमकी छाया सी मिल सकती है।

(ग) अधोगामी श्वासनलिकायें श्लेष्मा-पूर्ण होने पर एक ठोस सूत्र की सी दिखाई पड़ती है। ध्यान देना होगा कि ये किसी जगह पर स्फालित हैं वा नहीं (जैसा कि बहुधा श्वासनल स्फालनमें पाया जाता है)

(घ) सारा फुफ्फुस जाल घना हो गया है तथा इसमें गांठें भी वर्त्तमान हैं वा नहीं।

(ङ) रोगकी नूतन अवस्थामें ये सूत्र तथा जाल छिन्न भिन्न हो जाते हैं और यदनाकेन्द्र अन्य तन्तुओंसे पृथक् (सम्बन्ध-विहीन) जान पड़ता है।

(३) फुफ्फुस तन्तु (Lung Parenchyma)

(क) एकदल अलक्षित रह सकता है।

(ख) इसमें एकाध पृथक् अथवा दो चार संयुक्त यक्ष्मा गांठें मिल सकती हैं।

(ग) कभी कभी द्रव-पूरित होनेके कारण धुँधला एवं समतल जान पड़ता है।

(४) इनके अतिरिक्त निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान देना चाहिए।

(क) फुफ्फुस-शिखर संकुचित जान पड़ता है वा नहीं?

(ख) हृत्पिण्ड अपने स्थानसे हट गया है वा नहीं।

(ग) पर्शुकाओंके अधिक झुक जानेके कारण पर्शुकान्तर स्थान अपेक्षाकृत संकीर्ण होगये हैं वा नहीं?

चमक-सूचक द्वारा दर्शित प्रतिबिम्ब।

इसके सम्बन्धकी दो बातें ध्यान देने योग्य हैं।

(१) साधारणतः अन्तःश्वसन तथा बहिः श्वसनके समय फुफ्फुस-तन्तुओंकी पारदर्शितामें कुछ अन्तर रहता है, अथच शिखरको अज्ञात-किरणें भली भांति पार कर जाती हैं जिससे शिखर आलोकमय जान पड़ता है। प्रारम्भिक यक्ष्मामें अन्तःश्वसनके समय अथवा खांसते समय फुफ्फुस शिखर पूर्णतः आलोकमय नहीं जान पड़ता।

(२) वक्षोदर मध्यस्था मांस पेशीकी गति कम जाती है तथा यह आयत में छोटी हो जाती है, क्योंकि कुछ न कुछ फुफ्फुसावरण-प्रदाह (शिखर, आधार वा अन्य-स्थान में) वर्त्तमान रहता है।

(क्रमशः)

प्राचीन हिन्दुओंकी कुछ विद्यायें

[अनु० श्री गंगाप्रसाद, उपाध्याय, एम० ए०]

हिन्दुओंके पराक्रमोंकी बची खुची बातोंसे ज्ञात होता है कि ज्योतिष, गणित, वैद्यक, युद्धशास्त्र आदिके अतिरिक्त प्राचीन भारतवर्षमें अन्य आवश्यक विद्याएं भी थीं। मिस्टर एलिफन्स्टन लिखते हैं कि "साइन्स को हिन्दू लोग खूब समझते हैं और उनमें परिश्रम करते हैं।" (History of India p. 133)

वैद्यककी उन्नतिसे ज्ञात होता है कि वानस्पत्य, रसायन, विद्युत् आदि अन्य विद्याएं भी उन्नत होंगी। अस्त्र विद्यासे विदित है कि यह लोग रसायन, गतिविद्या, वायुचक्र शास्त्र, भूगर्भविद्या, पदार्थ विद्या और अन्य ऐसी ही विद्याओंको आज कलसे बहुत अधिक जानते थे। विमान विद्यासे बोध होता है कि बहुत सी अन्य विद्यायें प्रचलित थीं। अगर प्राचीन हिन्दू इञ्जीनियरी न जानते होते तो बड़े बड़े प्राचीन मकान और एलीफेराटा, एलोरा आदि अनेक स्थानोंके बहुत बड़े मन्दिर जिनको देखकर बहुतसे न केवल प्रशंसा ही करते हैं किन्तु चकित भी हो जाते हैं कैसे बने होते। प्राचीन लोगोंकी इञ्जिनियरी तो वस्तुतः बड़ी अपूर्व थी। इतनी सभ्यताके समयमें भी यूरोपमें ऐसे इञ्जिनियरोंकी कमी है जो मिस्रके मीनार वा चट्टानोंके मन्दिर बना सकें। मोसिपोडो लेसेप्स* वास्तवमें एक बहुत बड़ा इञ्जीनियर और फ्रांसका रत्न था परन्तु उसने केवल अपने पूर्वजोंका ही अनुकरण किया था जो ऐसे ही चतुर थे और जिन्होंने पहले भी लालसागर और रूमसागरको मिला दिया था। मि० स्वेन (Swayne) लिखते हैं कि एक फ्रांसीसी इञ्जिनियर ने फिर ऐसा ही अपूर्व काम किया है जैसा प्राचीन देशी राजों और यूनानके टोलिमियों ने किया था अर्थात् रूमसागरका लाल सागरसे जोड़ा मिला दिया। यदि (स्वेज़को) नहरमें रेत न आवे तो लेसेप्स (Lesseps) का नाम अमर होगा। (Swayne's Heradotus p. 41) रेत अब भी बहुत उठा करता है।

* इस इञ्जीनियर ने स्वेज़की नहर निकाली है।

मिश्रकी मीनारोंके विषयमें ५०० खी० से पूर्वके खीष्टीय प्रचारकोंका यह विश्वास था कि यह आकाशसे गिरे हैं। बहुतसे यूरोप वाले समझते थे कि यह ज़मीनसे निकले हैं या शैतान ने बनाये हैं।

महाभारतसे विदित है कि प्राचीन हिन्दू लोग कलशास्त्रमें निपुण थे। माया सभामें जो मायासुर ने पाण्डवोंको दिखलाई थी, सूक्ष्मदर्शक यंत्र, दूरदर्शकयंत्र और घड़ियोंका हाल लिखा है। एक अमेरिकन विद्वानका कथन है कि माया सभा को (जिसमें सहस्रों मनुष्य आ सकते थे) कल ऐसी थी कि केवल दश मनुष्य उसे जिस ओर चाहे फिरा सकते थे। उसमें भापका अग्निरथ भी था।

इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन भारतवर्षमें बड़ा प्रबल दूरदर्शक यंत्र था। व्यास जी ने इन्द्रप्रस्थमें इस सञ्जय को दिया था कि कुरुक्षेत्रके युद्धको देख सके। (महाभारत भीष्म पर्व अध्याय २ श्लो० १०)

वानस्पत्य शास्त्रके विषयमें उपाध्याय विलसन लिखते हैं कि "हिन्दू लोग वनस्पतियोंके बाह्य और भीतरी गुणोंसे अभिज्ञ थे उनके यहाँ वनस्पतियोंकी एक पूर्ण सूची हैं जिनके गुण और लक्षण सूचक नाम दिये हुये हैं। (Mill's History of India vol. II. p. 97. footnote)

यदि अखबारसद्दीक (२५ नम्बर १८८६ पृ० ७) का विश्वास किया जाय तो १८८७ में काश्मीर में वनस्पतिके संस्कृत कोष को तीन जिल्दें निकली हैं।

मालती माधव नाटकमें लिखा है कि "रमणी ने माधव के हृदय को अयस्कान्तमणिकी तरह खींच लिया"। इससे मालूम होता है कि हिन्दुओंको चुम्बक बनाना आता था और चुम्बक के गुण मालूम थे। उपाध्याय विलसन ने भी इसकी पुष्टि की

है। वह आगे चल कर लिखते हैं कि लोग कुछ कुछ मानते थे कि संसार में कोई रिक्त स्थान नहीं और जब उन्होंने देखा कि वायुको कभी कभी निकाल भी सकते हैं तो परमाणुओंके पृथक्त्व के समझानेके लिये एक सूक्ष्मतत्व आकाशको मान लिया जो हरएक सूक्ष्मसे सूक्ष्म वस्तुमें व्यापक हो रहा है जिसको आधुनिक फिलासफी वाले उपग्रहोंकी गतिके सम्बन्धमें कुछ कुछ मानते हुये मालूम होते हैं। वे शब्दको आकाशका गुण मानते हैं। और उनकी यह राय इस अंशमें तो ठीक थी कि रिक्त स्थानमें शब्द नहीं होता। वायुका गुण स्पर्श बतलाया जाता है और इसीके द्वारा चीज़ें मिलती हैं। आकाश चीज़ोंको अलग करता है और वायु एक दूसरेकी ओर खींचता है। आग या प्रकाशका गुण आकार है। कोलब्रुक ने रंगको इसीका गुण बतलाया है। दोनों सिद्धान्त ठीक हैं क्योंकि जब तक प्रकाश न हो आकार और रंग दोनों ही नहीं दीखते। जलका गुण रस है यह बहुत ठीक है क्योंकि पानीमें मिले बिना किसी वस्तुको भी जिह्वा ग्रहण नहीं कर सकती"।

(Mill's India vol. II. pp. 95, 96)

इससे सिद्ध है कि हिन्दू लोग १८ वीं शताब्दी के साइन्स वेत्ताओंसे पीछे न थे।

यह तो हिन्दू लोग बहुत दिनोंसे जानते थे कि ज्वारभाटा चाँदके आकर्षणसे होता है। रघुवंश अ० ५ का ६१ वां श्लोक है।

> तं तस्थिवांसं नगरोपकंठे।
> तदागमारूढ़ गुरुत्वहर्षः॥
> प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रः।
> चन्द्रं प्रवृद्धोमिदिवोर्मिमाली॥

मृच्छकटक नाटकके एक श्लोक पर उपाध्याय विल्सन ने एक नोट दिया है इससे विदित है कि हिन्दू लोग बड़े निरीक्षक* और पदार्थवेत्ता होते थे। चारुदत्त लिखता है

> असौहि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्ते
> व्रजत्युन्नतकोटिरिन्दुः।
> जलावगाढस्य वन द्विपस्य तीक्ष्णं।
> विषाणाग्रमिवावशिष्टम्॥

इस पर विलसन लिखता है कि "नियत समय पर हाथीके गण्डस्थलसे मद निकलता है। इसको यद्यपि स्ट्रेबो जानता था पर क्यूवियरसे पहिलेके पशुवेत्ता नहीं जानते थे।"

(The Theatre of the Hindus vol I p. 22 footnote)

हीरा मुक्ता और मणियोंके वर्णन बड़ी योग्यता से दिये हुये हैं जिससे विदित है कि प्राचीन हिन्दू मछली पकड़ने, खान खोदने और पृथ्वीसे अनेक वस्तुओंके निकालनेकी विद्यामें दक्ष थे।

प्राचीन हिन्दुओंके रसायन, कल शास्त्र और विद्युदादिकी विद्यामें निपुण होनेका सबसे अच्छा प्रमाण इनकी विमान विद्या है। पाश्चात्य देशोंके गुब्बारोंसे कुछ कुछ समयमें आ सकता है कि विमान कैसे होंगे। ५० वर्ष पहिले विमान बनाना असम्भव समझा जाता था पर हर्षकी बात है कि यूरोपियन-सन्देहके वे दिन बीत गये और अब साइन्सका सबसे बड़ा आदर्श यह है कि विमानको उपयोगी बनाया जाय। एक यूरोपियन विद्वान लिखता है "प्राचीन हिन्दू लोग विमानकी विद्याको भली प्रकार जानते थे। वे इस विद्यामें दक्ष थे और विमानोंको हर प्रकारके काममें लाते थे"।

---

* भारतवर्षके कवियोंकी निरीक्षण शक्ति तो अब भी बढ़ी हुई है। अकबरके समयमें फ़ैजी ने सरापा लिखा था परन्तु उसमें पीठकी प्रशंसा नहीं थी। अकबरके कहनेसे सूरदासकी कविता पढ़ी गयी उसमें लिखा था "कदलि पत्र सम पृष्ठि सुहावन"। इससे पहिले किसी कवि ने पीठकी ऐसी प्रशंसा नहीं की है।

इससे विदित है कि हिन्दू लोग उन सब साइंसोंको जानते थे जिनके आधार विमान विद्या बनी हुई है। वे वायुकी भिन्न भिन्न तहों और तरङ्गों, और उष्णता, घनता आदि अनेक बातोंको जानते थे। वेदोंमें विमान विद्या स्पष्ट दी हुई है:—

यजुर्वेदके छठे अध्यायका २१ वां मंत्र यह है।

समुद्रङ्गच्छ स्वाहा अंतरिक्षङ्गच्छ स्वाहा देवं सवितारङ्गच्छ स्वाहा। मनुजो भी लिखते हैं—

संशोध्य त्रिविधं मार्गं षद्विधं च बलं स्वकम्।
सांपदायिक कल्पेन यायादरि पुरं शनैः॥

बहुतसे लोगोंका विचार है कि विमान विद्या वायु विद्याके अन्तर्गत थी जिसका शतपथ ब्राह्मण के ११ और १४ काण्डमें विधान है।

उपाध्याय वीवर कहते हैं कि "शतपथके १३ वें काण्डमें सर्प विद्याका और आश्वलायन सूत्रोंमें विष विद्याका विधान है"।

(Indian Literature. p. 263)

"चक्रपाणिके भाष्यमें शिवदास पतञ्जलिके किसी ग्रन्थसे लोह शास्त्रका वर्णन करता है"

(History of Hindu Chemistry Vol p. 55)

यूनान वालोंने विद्युद्विद्याको भारतवासियोंसे सीखा था। जब यूनानी विद्वान, थेलिस, भारतवर्षमें आया तो उसे मालूम हुआ कि यदि अम्बर को रेशमसे रगड़ा जाय तो उसमें हलकी वस्तुओंके खींचनेकी शक्ति आ जाती है।

विद्युत् और चुम्बक विद्याएँ प्राचीन भारतवर्ष में न केवल विद्यमान ही थीं किन्तु हिन्दुओं ने इनमें बड़ी उन्नतिकी थी। वेदान्ती लोग कहते हैं कि बिजली मेंहसे आती है। टोइलिट आदिके प्रसिद्ध निरीक्षणोंसे यह बात भली भांति सिद्ध हो सकती है। इन सब बातोंसे विदित है कि हिन्दू ऋषियों को विद्युत्, चुम्बक आदि वस्तुओंका ज्ञान था। इन साइन्सोंकी उन्नतिका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उनसे सर्व साधारण* के इतने उपयोगी काम निकाले जाते थे कि इनकी शिक्षायें प्राचीन हिन्दुओंके दैनिक व्यवहारमें सम्मिलित हो गई थीं। इससे सिद्ध है कि हिन्दू लोग वैज्ञानिक और व्यावहारिक दोनों ही बातोंमें दक्ष थे।

नींद केवल स्वास्थ्यके लिये ही नहीं किन्तु शरीर आत्माको इकठ्ठा रखनेके लिये भी ज़रूरी है। अब प्रश्न यह है सबसे अधिक लाभकी प्राप्तिके के लिये किस प्रकार सोना चाहिये। प्राचीन हिन्दुओं ने इस प्रश्नकी ऐसी अच्छी मीमांसा की है कि इससे न केवल उनकी चुम्बक और विद्युद्विद्या का ही बोध होता है किन्तु यह भी विदित होता है कि यह लोग अपने धर्ममें वैज्ञानिक बातोंको कितनी जल्दी सम्मिलित कर लेते थे। हर हिन्दू को माता वा दादी यह बता देती है कि सोते समय शिरको दक्षिण या पूर्वको करना चाहिये।

बाबू सीतानाथ राय ने शास्त्रोंसे इस प्रणाली की पुष्टिमें श्लोक दिये हैं। स्मृतियोंमेंसे एक पुस्तक आह्निक तत्वमें लिखा है:—

* वैज्ञानिक आविष्कारों के व्यवहारमें लानेका एक दृष्टान्त यह है। शिमला जाने वाले जानते हैं कि वहां बच्चोंको इस तरह लिटा दिया जाता है कि उनके ऊपर सोतेसे थोड़ा थोड़ा पानी टपकता है। इसको लोग क्रूरता कहते हैं यद्यपि किसी ने यह सिद्ध नहीं किया कि इससे मृत्यु बढ़ती है। इससे बच्चोंको सुलाया करते हैं और शायद यह बात इतनी हानिकारक नहीं है जितनी सभ्य दुनियांकी अनेक औषधियां। यह सुन कर और आश्चर्य होगा कि मैडकिल सुसाइटीका प्रेसीडेण्ट सरजोज़िफ फेरटर इसी प्रणालीको इङ्गलैंडमें प्रचलित करना चाहता है। उसका कथन है कि पानीके शिर पर बहानेसे झट नींद आ जाती है और जो बच्चे अपने माता पिता को बहुत दिक़ करते हैं उनको नलके नीचे कर देना चाहिये।

"१. गार्गर्षिदेव कहते हैं कि सोते समय मनुष्य पूर्वकी ओर शिर करके सोये परन्तु आयुष्मान होना चाहे तो दक्षिण की ओर करे। अन्य देशोंमें पश्चिमकी ओर भी शिर कर सकता है परन्तु उत्तर की ओर कभी शिर न करे"।

"२. आर्य वर मारकण्डेय महर्षिका उपदेश है कि पूर्वकी ओर शिर करनेसे विद्या आती है। दक्षिणकी ओर शिर करनेसे बल और आयु, उत्तर की ओर शिर करना रोग और मृत्युका कारण है"।

उसी विद्वान ने विष्णु पुराणसे एक श्लोक उद्धृत किया है जिसका अर्थ यह है "हे नृप, पूर्व और दक्षिणकी ओर शिर करना लाभदायक है जो मनुष्य नित्य किसी अन्य दिशामें शिर करके सोता है वह रोग ग्रसित हो जाता है"।

चुम्बक और विद्युत्सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें बतला कर जिनसे इन विद्याओंसे अनभिज्ञ मनुष्य भी उपर्युक्त बातोंको समझ सकें बाबू सीतानाथ राय लिखते हैं "इन बातोंसे यह समझना कठिन नहीं है कि पृथ्वी जिस पर हम रहते हैं सूर्यहीसे उत्पन्न हुई ताप-विद्युत्की लहरसे नित्य प्रति चुम्बक-मय होती रहती है। पृथ्वी गोल है इसलिए जब इसके पूर्वी भाग पर सूर्य्यकी गर्मी पड़ती है तो पश्चिमी भाग ठंडा रहता है। इसलिये सूर्य्यसे उत्पन्न हुई ताप विद्युत्की तरङ्ग पृथ्वीके ऊपर पूर्वसे पश्चिम को चला करती है। ताप विद्युत्की इस तरङ्गसे पृथ्वी चुम्बकमय हो जाती है और इसका भौगोलिक उत्तरी ध्रुव जो इस तरंग की दाहिनी ओर है चुम्बकका उत्तरीध्रुव हो जाता है और भौगोलिक दक्षिणी ध्रुव जो इस तरंगकी बाईं ओर है चुम्बकका दक्षिणी ध्रुव हो जाता है, पृथ्वी स्वयं एक बड़ा चुम्बक है इसका साक्षात् प्रमाण यह है कि इसके ध्रुवोंकी आकर्षण और प्रक्षेपण शक्तियोंके कारण, कुतुबनुमेकी सुई को चाहे किसी दिशामें रखदें इसके दोनों सिरे उत्तर दक्षिणको रहते हैं। भूमध्यरेखा पर जहाँ पृथ्वीके ध्रुवोंका आकर्षण चुम्बकके ध्रुवों पर सम रहता है कुतुबनुमेकी सुई सीधी रहती है परन्तु ध्रुवों पर जहां पृथ्वीके ध्रुवोंका आकर्षण सुईके ध्रुवों पर समय नहीं है सुई टेढ़ी हो जाती है अर्थात् एक सिरा उठ जाता है और दूसरा दब जाता है। ध्रुवस्थ देशोंमें सुईकी इस दशाको सुईका दबना कहते हैं।

"प्रयोग करनेसे यह बात सिद्ध हो गई है कि मनुष्यका शरीर चुम्बक-मय हो सकता है यद्यपि लोहे और स्टीलसे कम। परन्तु इस बातका कोई निषेध नहीं कर सकता कि शरीर चुम्बक-मय हो सकता है क्योंकि अन्य प्रमाणोंके अतिरिक्त एक प्रमाण यह है कि शरीरभरमें रुधिरमें लोहेका बहुत बड़ा भाग है।"

"अब चूंकि दिनके अधिकांशमें हमारे पैर इस बड़े चुम्बक अर्थात् पृथ्वीसे छूते रहते हैं इसलिए हमारा शरीर चुम्बक-मय हो जाता है, और चूंकि हमारे पैर उत्तरीय-गोलार्धके चुम्बकसे चुम्बक-मय होते हैं जहाँ कि उत्तरी ध्रुवके गुण विद्यमान रहते हैं। दक्षिणी ध्रुव हमारे पैरों और उत्तरी ध्रुवत्व शिरमें उपपादित हो जाता है। बचपनमें हम पैर और हथेली दोनोंके सहारे चलते हैं और बड़े पनमें भी हथेलियाँ नीचेको ही रहती हैं इसलिये दक्षिणी ध्रुवत्वका पैरोंकी भाँति हथेलियोंमें भी उपपादन हो जाता है। ध्रुवोंका उपर्युक्त क्रम स्वाभाविक है और इसलिये इससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है अगर चुम्बकीय ध्रुवत्व इसके अनुकूल रक्खा जाय तो शरीर नीरोग रहता है और यदि यह ध्रुवत्व कुछ बदल जाय इसकी तीक्ष्णता कुछ कम हो जाय तो रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

"यद्यपि मनुष्यके शरीरमें चुम्बकत्व विशेषतः पृथ्वीसे आता है परन्तु ओषजनसेभी उत्पन्न होता है। ओषजन गैस स्वभावतः एक उत्तम चुम्बकीय द्रव्य है और मनुष्यके शरीरके बाहर और भीतर फैली हुई है इसलिये पृथ्वीको इसके चुम्बक-मय करनेमें सहायता देती है।

"यद्यपि चुम्बक-मयीकरणके लिये सब शरीरोंकी एकसी ही दशा रहती है परन्तु उनकी चुम्बकीय ध्रुवत्वकी तीक्ष्णता और नित्यता एकसी नहीं होती। मनुष्य शरीरके यह दो गुण बनावटके घनत्व और लोहकणोंसे साक्षात् निष्पत्ति में रहते हैं।

अब यह समझना कठिन नहीं है कि यदि सोनेमें सिर दक्षिणको और पैर उत्तरको रहें तो पृथ्वीका दक्षिणी ध्रुव, और तुम्हारा सिर (जो तुम्हारे शरीरका उत्तरी ध्रुव है) और पृथ्वीका उत्तरी ध्रुव, और तुम्हारे पैर, (जो तुम्हारे शरीरके दक्षिणी ध्रुवकी दो शाखा हैं) निकटवर्ती होनेके कारण एक दूसरेको खींचती हैं और इसलिये शरीरका ध्रुवत्व इसके अनुकूल रहता है। इसी हिसाबसे यदि शिर उत्तरको और पैर दक्षिणको हों तो तुम्हारे शरीर और पृथ्वीके एकसे ध्रुव निकट आ जानेसे एक दूसरेको हटाते हैं और इसलिये शरीरका स्वाभाविक ध्रुवत्व नष्ट हो जाता है या तीक्ष्णता कम हो जाती है। तुम्हारे शरीरमें दिनके समय खड़े होने, चलने और बैठनेसे जो ध्रुवत्व उपपादित हुआ है वह सोते समय दक्षिणको सिर करनेसे तो रातको भी विद्यमान रहता है किन्तु उत्तरको सिर करनेसे वही ध्रुवत्व सोते समय नष्ट हो जाता है।

"प्रयोगसे सिद्ध हो गया है कि स्वाभाविक चुम्बकीय ध्रुवत्वसे स्वास्थ्य ठीक रहता और अन्यथा बिगड़ जाता है। इसलिये कोई मनुष्य इन श्लोकोंकी सत्यतामें सन्देह न करेगा जिनमें लिखा है कि सोते समय शिर दक्षिणकी ओर रहे और कहीं और कभी उत्तर की ओर न रहे।

अब विचारना यह है कि ऊपरके दो श्लोकोंमें पश्चिमकी अपेक्षा पूर्वको सिर करना क्यों अच्छा बतलाया गया है। वैद्यकसंबन्धी विद्युत् ग्रंथोंमें प्रयोगसे यह बात सिद्ध कर दी गई है कि यदि विद्युत धारा शरीरके एक भागसे दूसरे भाग तक निकल जाय तो उस भागकी सूजनको कम कर देती है जिस भागमें पहिले प्रविष्ट हुई थी और उसमें सूजन बढ़ा देती है जहाँ होकर निकली थी। दो बड़े सिद्धान्तोंका जिनको इंग्रेज़ीमें* एनीलेक्ट्रोटोनस (Anelectrotonus) कैटीलेक्ट्रोटोनस (catelectratonus) कहते हैं यही सारांश है।

"अब सोते समय पूर्वको सिर करनेसे ताप-विद्युत् की तरंग जो हमेशा पृथ्वी पर पूर्वसे पश्चिमको चलती रहती है हमारे सिरसे पैरोंकी ओर निकलेगी और सिरमें जो कुछ सूजन होगी वह नष्ट हो जायगी। अब यदि सिर पश्चिमकी ओर हो तो वही तरंग पैरमें होकर सिरकी ओर निकलेगी और सिरमें सूजन उत्पन्न कर देगी। रोगरहित मस्तिष्कमें विद्या शीघ्र आती है और सूजे सिरमें अण्डबण्ड विचार उठा करते हैं इसीलिये मारकण्डेय ने कहा था कि पूर्वकी ओर सिर करके सोनेसे विद्या आती है और पश्चिमकी ओर सिर करनेसे विचार अण्डबण्ड होजाते हैं" (आर्य्य मेगज़ीन दिसम्बर १८८३ पृ० २११)

अन्य भी बहुतसी बातें प्रचलित हैं जिनका आधार विद्युत् और चुम्बक पर है। जैसे (१) सब मन्दिरोंके सिरे पर लोहे या ताँबेकी शलाका लगी रहती है (२) शरीरके रोग ग्रसित अंगोंमें सोने, चाँदी वा लोहेकी मिंदुली पहिनते हैं (३) संध्या करनेमें रेशम, ऊन, कुश वा मृग अथवा सिंहचर्म पर बैठते हैं। जो लोग विद्युच्छास्त्रको जानते हैं वे इनका कारण सोच सकते हैं। वे जानते हैं कि मन्दिरोंके सिरे पर त्रिशूल रखनेका प्रयोजन यह है कि यह त्रिशूल विद्युत्चालक है। बिन्दुलियोंसे वही काम निकलता है जो विद्युत् छल्लों वा अन्य ऐसी वस्तुओंसे निकलता है जो रोगोंकी विद्युत्चिकित्सामें प्रयुक्त होते हैं। काशीमें

---

*किसी नाड़ीमें विद्युतधाराको प्रवेश करनेसे यदि तीक्ष्णता कम हो जाय तो उसे एनीलेक्ट्रोटोनस कहते हैं और यदि तीक्ष्णता बढ़ जाय तो कैटीलेक्ट्रोटोनस कहलाता है।

विश्वेश्वरका सोनेका मन्दिर बिजलीसे बचनेके लिए एक अच्छा मकान है। उपाध्याय मैक्समूलर कहता है कि बारूदखानेके चारों ओर ताँबेका पत्र लगाना चाहिये जिससे बिजली उस पर न गिरे, ऊनी वा चमड़ेके आसनोंसे बादलोंके गरजते समय हमारी रक्षा होती है क्योंकि विद्युत्का आघात हमारे शरीरसे पृथक् रहता है।

हिन्दुओंमें एक और रीति है जिसको आस्ट्रिया देशके एक वैज्ञानिक पुरुषने सिद्ध किया है। हिन्दू मन्दिरोंमें देवतोंके सिरों पर स्वर्णका छत्र होता है। परन्तु अब तक किसीको मालूम नहीं था कि इसके बनानेका क्या कारण है। आस्ट्रियाके एक प्रसिद्ध रसायनवेत्ता बेरन वोन रीकनबाक (Baron von Reichenbach) ने इसका यह कारण बतलाया है कि "मनुष्य-शरीर तथा अन्य जड़ और चेतन पदार्थों और सितारोंमें ओरा नामक एक सूक्ष्म तरल होता है जो चुम्बक और विद्युत्के समान दृष्ट पड़ता है, यद्यपि न तो यह विद्युत् ही है और न चुम्बक। यह तरल (fluid) यद्यपि हमारे समस्त शरीरसे निकलता है परन्तु शिरकी ओर विशेष होता है। इसीलिये सिर पर छत्र रक्खा जाता है। कर्नल अल्काट लिखते हैं, "वस्तुतः आर्य्य लोग इस ओरा नामक तरलको जानते थे जिसका रीकनबाकने आविष्कार किया है" और "अगर वीयनाका यह रसायन-वेत्ता प्रकाशित न करता तो हमको कृष्णके छत्रका कारण ही ज्ञात न होता क्योंकि यह आर्य्य जाति जिसमें एक समय बहुत ज्ञान था आज अज्ञानताके सागरमें निमग्न हो रही है" (देखो कर्नल अल्काका व्याख्यान जो उन्होंने ५ अप्रेल १८८२ को कलकत्तेके टौनहालमें दिया था)।

हिन्दुओंमें एक और प्रणाली है जिसको अन्य जातियाँ बहुत बुरा समझती हैं और यूरोपके सायंस वेत्ता अब उसके लाभको कुछ कुछ जानने लगे हैं। वह प्रणाली यह है कि जब यह लोग खाने बैठते हैं तो एक दूसरे से पृथक् बैठते हैं उनका चौका बना हुआ होता है जिसके मध्यमें बैठनेसे खाने वाला दूसरे मनुष्यसे छू नहीं सकता चाहे वह पिता, पितामह, पुत्र, भाई वा चाचा ही क्यों न हो। भोजनके समय वे एक दूसरेसे इतने अलग होते हैं मानो वे अन्य हैं। यदि मैं किसी ब्राह्मणका पोतलका लोटा वा थाली छू लूं तो जब तक उसे आगमें शुद्ध न किया जाय कोई ब्राह्मण उसे छुएगा तक नहीं। यदि वर्तन मिट्टीका हो तो वहीं तोड़ दिया जाता है। इसका क्या कारण है? यदि घृणासे ऐसा किया जाता तो वंशके आदमियोंके लिये यह नियम नहीं होना चाहिये था। कारण इसका यह है कि प्रत्येक ब्राह्मणको वंशज संबन्धके अतिरिक्त आत्मिक शक्ति का विकास समझा जाता था। यदि ऐसे समयमें जब प्राण भोजनके पचाने (हज़म करने) में लगा हो कोई दूसरा छूले तो आत्मिक शक्तिके निकल जानेका भय होता है जैसे सीसेके वर्तनमें यदि विद्युत् भरा हो और कोई हाथसे छूले तो विद्युत निकल जाती है। प्राचीन समयके ब्राह्मण उपनीत होते थे और उनकी आत्मिक शक्ति अग्निहोत्रादि उत्तम कार्य्योंमें व्यय होती थी। ब्राह्मणके वस्त्र, वर्तन, शय्या आदिको यदि कोई ऐसा पुरुष छूले जिसका आत्मिक बल कम है वा ब्राह्मण पवित्र स्थानोंसे नियत दूरीके बाहर चला जाय तो इन कार्य्योंमें बाधा पड़ती है। वेरन रेकनवाककी विद्युत् प्लेटमें एफ् (f) चिन्ह उस ओरा (विद्युत्तरल) का सूचक है जो मनुष्यके हाथसे निकलती है, और प्रत्येक स्त्री पुरुषके गुण तथा बलके अनुसार ओरा निकलती है। प्राचीन समयमें धार्मिक शिक्षा (आत्मिक शिक्षा) से ब्राह्मणकी ओरा पवित्र हो जाती थी, और यदि यह ओरा ऐसे मनुष्यकी ओरासे मिले जिसमें आत्मिक शक्ति कम हो तो इसके अशुद्ध और शक्ति हीन हो जानेकी संभावना है। रेकनवाक कहता है कि यह ओरा (तरल विशेष) धातुओंमें विद्युत्की अपेक्षा धीरे धीरे परन्तु उष्णताकी अपेक्षा वेगसे चल सकती

है और मिट्टीके वर्तनमें बहुत देर तक बनी रहती है उससे बाहर नहीं निकलतो। धातुके वर्तनमें ओराकी चालको उष्णतासे तेज़ कर देते हैं। और इसलिये यदि ब्राह्मण किसीके छुये बर्तनको अग्निमें रखता है तो वह वस्तुतः वही कर रहा है जिसे वोन रेकनबाक ने उपयोगी सिद्ध किया है।

भारतीयोंका भोजन

[ले० 'एक—ग़रीब']

भारतवर्ष ग़रीबोंका घर है। हमें अपनेको ग़रीब कहनेमें ही गर्व है। भारतवर्षकी समस्यायें अन्य देशोंकी समस्याओंसे सर्वथा भिन्न हैं। यह मुख्यतः शाकाहारी देश है। मांससे उपेक्षा न करनेवाले व्यक्ति भी मुख्यतः शाकका ही व्यवहार करते हैं, कभी कभी थोड़ासा मीन माँस भी खा लेते हैं। हमारे देशमें अन्न सस्ता है अतः आमिष-भोजन ने यहां कभी अन्न का स्थान नहीं लिया जैसा कि अन्य देशों में।

इस देशकी अधिकांश जनता किसान है, फिर मज़दूरों और धन्धे करने वालोंकी संख्या है। आधुनिक सभ्यतामें पले हुए नगर निवासी तो बहुत कमही हैं। हमारे मज़दूर और किसान दोनों ग़रीब ही हैं। वर्ष भर भयंकर परिश्रम करनेके उपरान्त भी उन्हें पेट भर अन्न मिलना कठिन हो जाता है। उनके पास इतना धन कहां है कि मांस या मछली मोल लेकर खावें अथवा अन्य देश-वासियोंके समान पशु पक्षियोंका शिकारही कर लावें। इसके लिये तो उनके पास साधन भी नहीं है। हां, मछुए और मल्लाह जातिके व्यक्ति अवश्य मछलियोंका अधिक सेवन करते हैं।

मांसाहारीभोजन समस्त भारतवर्षकी समस्या नहीं है। यह केवल समुद्रके तटस्थ निवासियों या जङ्गलोंके रहने वालों का ही प्रश्न है। ग़रीब मज़दूरों और किसानोंको तो इस प्रकारके पदार्थ दुर्लभ हैं, और यह है भी बहुत ही अच्छा। शाकाहारी भोजन जहां सात्विकी प्रवृत्ति को जन्म देता है, वहाँ यह हमारे स्वास्थके लियेभी पूर्णतः हितकर है। इस लेखमें हम शाकाहारी ग़रीब भोजन का ही उल्लेख करेंगे।

मनुष्य कितना भोजन करता है? इसके लिये कोई स्पष्ट मात्रा निर्धारित नहीं की जा सकती है। यह तो मनुष्योंके स्वास्थ और पाचन शक्ति पर निर्भर है। मनुष्य अपनी जीवन-चर्चा किस प्रकार बिताता है, इस पर भी भोजनकी मात्रा निर्भर है। खेती करनेवाले व्यक्तिको विशेष समयोंमें विशेष परिश्रम करना पड़ता है, अतः उसे अधिक भोजनकी आवश्यकता पड़ती है। लोहार और बढ़ई बैठ करही काम करते हैं उनकी बाहुओं पर तो विशेष बल पड़ता है पर पेट दबा जाता है। चरखा और करघा पर काम करने वाले जुलाहोंका शारीरिक श्रम बहुतही कम करना पड़ता है। सड़क और मकानोंके बनाने वाले या खुदाई करने वाले मज़दूर बहुत ही परिश्रम करते हैं। इस प्रकार प्रत्येकके व्यवसायका मनुष्यके स्वास्थ पर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है।

भारतवर्षमें मुख्यतः जिनपदार्थोंका सेवन किया जाता है उनका विवरण हम निम्नसारिणीमें देते हैं इसमें पदार्थोंका प्रोटीन, मज्जा, श्वर्करा, और कलारी ताप प्रति औन्स दिया गया है। विटेमिनों का भी उल्लेख किया गया है। जहाँ + + + तीन धन चीह्न हों वहाँ समुचित विटेमिन मानना चाहिये जहाँ + + दो धन चिह्न हों वहाँ विटेमिन मध्यम अवस्था का समझना चाहिये जहाँ + एक धन चिह्न हो वहाँ विटेमिन की मात्रा कम समझनी चाहिये—

इसमें प्रति औंस कितने ग्राम कौनसा पदार्थ है यह दिया गया है १ औंस = १/२ छटांक = २८. ४ ग्राम

भोजन	प्रोटीन (ग्राममें)	मज्जा (ग्राममें)	शर्करा (ग्राममें)	कलारीताप प्रति औंस	विटैमिन		
					ए	बी.	सी.
दूध के पदार्थ							
गायका दूध	०·९४	१·०२	१·३६	१८	+ + +	+ +	+
स्त्रीका दूध	०·४२	१·५०	०·७५	१८	+से+ +	+	+
मलाई	०·७०	५·२४	१·२७	५५	+++	+	...
मट्ठा (मक्खन मिला)	०·८५	०·१४	१·३६	१०	+	+	+
" बेमक्खन मिला	०·९६	०·०८	१·४४	१०	+	+	+
दही	१·४०	१·००	०·८०	१८	+ +	+	+
भेड़का दूध	१·५०	२·००	१·४१	३०	+++	+	+
बकरीका दूध	१·२१	१·१३	१·२१	२०	+++	+	+
भैंसका दूध	१·३५	२·१८	१·२४	३०	+++	+	+
तेल							
गरीका तैल	......	२८·००	...	२५२	+	०	०
अलसीका	......	२८·००	...	२५२	बहुत कम	०	०
जैतूनका	......	२८·००	...	२५२	"	०	०
महुआका, सरसोंका, बिनौलेका	......	२८·००	...	"	०	०	०
कोकोजम	......	"	...				
मारगरीन	......	२३·८	...	२१४	+	०	०
शकर आदि							
सफेद चीनी	......	...	२८·३	११३	०		
लाल चीनी	......	...	२६·९	१०८	०		
गुड़	०·०८	...	२५·०	८१	०		
शहद	०·११	...	२०·२१	९७	कम	कम	०
साबूदाना (सागो)	२·१८	०·०४	२२·०			कम	०
गन्ना	०·४२	०·१६	६·२०	२८	०	०	०
अन्न							०
गेहूंका आटा	३·९०	०·५४	२०·३५	१०२	+	+ +	०
मैदा	३·१४	०·३७	२१·५४	१०२	०	कम	०
चावल	२·३०	०·०८५	२२·३०	९९	कम	+	०
(असंस्कृत)							०

भोजन	प्रोटीन (ग्राममें)	मज्जा (ग्राममें)	(शर्करा) (ग्राममें)	कलारीताप प्रति औंस	विटेमिन		
					ए	बी.	सी.
चावल (धोया)	१·६२	०·१५	२६·३४	११३	०	०	०
चावल (संस्कृत)	१·७६	०·१३	२६·०६	११३	०	कम	०
बजरी	२·७८	०·४६	२३·३५	१०६	+ से + +	+ +	०
चोलम	२·६०	१·१७	१६·७	१०१	+	+ +	०
जौ	२·६७	०·६२	२०·६२	१००	+	+ +	०
जई	३·३७	२·४३	१६·८२	११५	+	+ +	०
मकाई	२·१३	०·४८	२०·८०	६६	+ +	+ +	०
सूजी	४·२०	०·६८	१४·२०	८०	+	+ +	०
दाल							
अरहर	६·४४	०·५०	...	११२	+	+ +	०
चना	६·७	१·४	...	१२०	+	+ +	०
उर्दू	६·६१	०·२२६	...	११३	+	+ +	०
मसूर	७·५६	०·१८	...	११२	+	+ +	०
मटर	८·४	०·२८	...	११४	+	+ +	०
मूंग	७·२	०·२२५	...	११३	+	+ +	०
मेवा							
बादाम	५·२६	१५·६६	४·३०	१८२	कम	+ +	०
गोला	१·६१	१४·३१	७·६०	१६७	+	+ +	०
अखरोट	७·३०	१०·६२	६·६०	१५५	कम	+	०
मुनक्का	०·४८	०·०६	११·६६	५०	...	०	०
खजूर	०·४५	०·०३	१६·७३	८१	...	+	...
अंजीर	०·५६	०·१४	१५·६६	६७	...	+	...
इमली	०·३६	......	८·८६	३७	...	+	+
फल							
सेब	०·०६	०·०६	३·५४	१५	...	+	+
केला	०·३५	०·०३	२·२६	११	कम	+	+
अंगूर	०·१७	०·०३	३·६३	१७	...	+	कम
नीबू	०·१४	०·१४	०·८८	५	...	+	+ + +
नारङ्गी	२·२५	०·०३	२·६६	१२	+	+	+ + +
नासपाती	०·०६	०·०३	२·१६	१०	...	+	+

भोजन	प्रोटीन (ग्राममें)	मज्जा (ग्राममें)	शर्करा (ग्राममें)	कलारीताप प्रति औन्स	विटेमिन		
					ए	बी.	सी.
अनार	०·१८	......	०·१६	२	...	+	+
लीची	०·८४	०·०७	१·६०	१२	...	+	++
आम	०·०४	०·२२	५·२०	२३	+	...	++
तरबूज	०·११	०·०६	१·६०	६	...	...	++
अमरूद	०·३७	०·२०	२·२७	१२	...	+	+
तरकारी							
आलू	०·७०	०·०४	८·१५	३६	कम	+	+से++
चुकन्दर	०·३४	०·०३	१·७५	६	,,	+	++
प्याज	०·३७	०·०३	३·०६	१४	,,	++	+
लहसुन	१·६२	०·०३	७·६०	४०	+	+	++
मूली	०·२५	०·०३	२·२४	१०	+से++	++	++
गाजर	०·२८	०·०३	०·६६	५	कम	+	+
शलजम	०·३४	०·०३	१·२५	७	कम	++	+
करमकल्ला	०·३६	०·०३	१·२७	७	+++	++	+++
टमाटर	०·२०	०·०३	१·२७	६	++	+++	+++
गोभी	०·५७	०·०६	१·६७	६	+	+	+
ककड़ी	०·१७	०·०२	०·५७	३	...	+	++

पूर्ण संख्या— १६७

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३३ VOL. 33.

सिंह, संवत् १६८८

अगस्त १६३१

संख्या ५ No. 5

प्रयागकी विज्ञान परिषत्का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३३ } सिंह, संवत् १९८८ { संख्या ५

'विज्ञान' की भयंकर आर्थिक परिस्थिति

भारतवर्षके इतिहासमें यह वर्ष विशेष उल्लेखनीय है। समस्त देशमें राष्ट्रीय क्रान्तिकी लहर तो आई ही थी, पर अब उस लहरके साथ साथ आर्थिक विपदाओंके भीषण बादल भी उमड़ते चले आ रहे हैं। सरकारके अक्षय कोषमें भी घाटे पर घाटा होता आ रहा है। व्यापारकी अवस्था तो बहुत ही शोचनीय है, जो भी काम किया जाता है उसमें हानि ही हानि उठानी पड़ती है। नौकरी पेशे वालों पर तो और भी अधिक गरीबी छायी हुई है। किसानोंकी अवस्थाका तो पूछना ही क्या! पेट भर भोजनकी चिन्ता ही सबको सता रही है। बेकारीका बाज़ार गर्म है।

इस परिस्थितिका 'विज्ञान' पर बड़ा ही घातक प्रभाव पड़ रहा है। हमारे 'विज्ञान' के प्रेमी दिन प्रतिदिन उदासीन होते आ रहे थे, पर अब तो अवस्था और भी अधिक विकट होगई है। हमारे ग्राहकोंकी संख्या घटकर इतनी कम होगई है कि उसके उल्लेख करनेमें भी हमें सङ्कोच होता है। यह हमीं जानते हैं कि इतनी कम ग्राहक संख्या होने पर भी हम 'विज्ञान'को ठीक समय पर कैसे निकालते चले आ रहे हैं। पर अब तो ऐसा भी करना सम्भव नहीं है। अब तो ऐसी अवस्था आ गई है कि 'विज्ञान'

की जीवन-मृत्युका प्रश्न प्रतिक्षण हमारे सम्मुख उपस्थित होने लगा है। इस समय हमें यह कहनेमें कुछ भी सङ्कोच नहीं होरहा है कि अब 'विज्ञान' हमें शीघ्र ही बन्द कर देना पड़ेगा। हम क्या करें, लाचारी है। हम इस आर्थिक सङ्कटको सहन करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। देशकी ऐसी दुःखित अवस्था है, कि इस समय हमें 'विज्ञान' के लिये अपनी जनतासे अपील करनेमें भी लज्जा होती है। फिर भी हम अपने विज्ञानके प्रेमियोंसे एक बार तो और यह पूछ लेना चाहते हैं कि यदि 'विज्ञान' बन्द कर दिया जाय तो क्या उन्हें इसमें कुछ भी दुःख न होगा ? क्या ऐसी अवस्थामें हमारी वे कुछ भी सहायता कर सकते हैं ?

'विज्ञान' १६ वर्षसे हिन्दी-साहित्यकी सेवा करता आ रहा है। इसने कैसा काम किया है, इसको हम स्वयं कैसे कहें, आप सभी जानते हैं। अच्छा बुरा जो कुछ भी हो सका, आज तक हमने आपकी सेवा की। पर अब भविष्य अंधकारमय प्रतीत हो रहा है।

'विज्ञान' का १२५) मासिकके लगभग का अथवा १३००–१४००) वार्षिकका व्यय है। इसका मासिक चंदा केवल ३) है। विज्ञापनोंसे विज्ञानको कुछ भी विशेष प्राप्ति नहीं हो सकती है। ऐसी अवस्थामें आप कब तक हमसे ऐसी आशा करते हैं कि केवल ५०–६० ग्राहकोंके बूते पर हम विज्ञानको प्रकाशित करते जावेंगे ? क्या कोई भी पत्रिका इतने कम ग्राहकों पर जीवित रह सकती है ? अपनी इस विकट परिस्थितिमें अब हम किसके आगे जाकर हाथ पसारें, और जाकर दो आँसू बहावें।

हमें अपील करना नहीं आता है, हम अब तक केवल अपने प्रेमियोंकी उदारता पर ही निर्भर रहते थे, पर अब इससे काम चलता दिखाई नहीं देता है। अब वह समय निकट आ गया है, जब कदाचित् हमें अपने पाठकोंसे अन्तिम बिदाई लेनी पड़े। इसके लिये हम अभी से कह दे रहे हैं। आगे ईश्वरेच्छा। आशा है कि इस अवसर पर हमारे प्रेमी अवश्य अपना कर्तव्य सोच रक्खेंगे। और हम क्या कहें !!

मोटरगाड़ी और गैस इंजिन

[ले०श्री जगपति चतुर्वेदी]

आधुनिक युगमें साधारण सड़कों पर जिस सजधज और वेगसे दौड़ती हुई मोटर-गाड़ी दिखाई पड़ती है उसका आजसे कुछ दिनों पूर्व कहीं अस्तित्व न था। उसके अभावमें लोग बैलगाड़ियों वा घोड़ा गाड़ियों पर ही यात्रा कर संतोष करते थे परन्तु जब समयने पलटा खाया और वैज्ञानिकों की प्रखर बुद्धिसे संसारमें युगान्तर उपस्थित करने वाले आविष्कारोंका जन्म होने लगा तो यात्रामें सुविधा और शीघ्रता करनेके लिए भी लोगों ने ध्यान दिया। इसके फलस्वरूप कगनट, मरडक, ट्रेविथिक आदि आविष्कारकों ने वाष्प-शक्ति से चलनेवाली गाड़ीको साधारण सड़क पर चलाने में सफलता प्राप्त की। इन उद्योगोंके पश्चात् वाष्प-शक्तिसे चालित गाड़ियोंको सुविधा पूर्वक और शीघ्रतासे चलानेके लिए जब लोगों ने लोहेकी पटरियों पर चलाना प्रारम्भ किया तो रेलगाड़ीका जन्म हो सका परन्तु रेलगाड़ीके जन्म होने पर भी कुछ लोग साधारण सड़कों पर चलने वाली वाष्प चालित गाड़ियोंके चलानेकी ओर प्रवृत्त हुए। इसका कारण यह था कि रेलगाड़ियाँ एक स्टेशनसे दूसरे स्टेशन तक ही दौड़ लगा सकती थीं। दूसरे उनके आने जानेका कुछ निश्चित समय बँधा होता था परन्तु लोगोंको स्टेशनसे घर पहुँचनेमें अधिक दूरकी यात्रा करनी पड़ सकती थी तथा कभी रेलगाड़ीके आने जानेका समय भी उनके उपयुक्त नहीं हो सकता था। इन कठिनाइयोंसे बचनेके लिए यदि ऐसा साधन होता जिससे रेलगाड़ीकी भाँति तीव्रगतिसे भी यात्राकी जा सकती और उसके द्वारा इच्छित समय पर घर जाया जा सकता तो वह सुविधा जनक होता। इसी सुविधाको पहुँचाने वाली वाष्प-चालित ऐसी गाड़ी थी जो साधारण सड़क पर दौड़ लगा सकती थी।

इन वाष्पयानों का जनक तो कगनट ही था जिसके इंजिनके दीवालमें टकरा जानेसे उसे कारा-वासका दंड मिला था परन्तु उसका वाष्पयान विशेष सुधार किए हुए काम नहीं दे सकता था। वह एक घंटेमें ढाई मीलकी गतिसे चल कर जो यात्रा पूरी करता था उसमें सवार हुआ मनुष्य पैदल धीरे धीरे चलने वाले व्यक्तिसे भली भाँति बातचीत करता चल सकता था परन्तु इतना ही नहीं, इंजिन एक बार १५ मिनटसे अधिक काम नहीं देता था, १५ मिनट इंजिनके चल चुकने पर उसमें भाप ठीक करनेके लिए यात्रीको नीचे उतर जाना पड़ता।

इस प्रकारके खिलौनेके पश्चात् ट्रेविथिक ने मनुष्य ढो सकने वाला जो वाष्प-यान बनाया वह कुछ संतोष जनक था; वह ६ मील प्रति घंटे चल सकता था। वह इस ओरसे ध्यान हटा कर दूसरे आविष्कारोंमें लग गया इसलिए इसकी विशेष उन्नति न हो सकी।

इन प्रयत्नोंके पश्चात् बहुतसे आविष्कारकों ने वाष्प-यानमें विशेष सुधार कर इसे दौड़ानेमें इतनी सफलता प्राप्तकी कि भिन्न भिन्न स्थानोंके बीच वाष्पयानोंको चलाने वाली दर्जनों कंपनियाँ खड़ी हो गईं। इन आविष्कारकोंमें एक विशेष प्रसिद्ध गोल्ड्सवर्दी गर्नी नामका व्यक्ति था। यह ट्रेविथिक का वाष्पयान देख कर ही इस ओर आकर्षित हुआ था। इसका पहला यान सन् १८२७ ई० में तैयार हुआ था जिस पर ६ यात्री भीतर और १५ यात्री बाहर बैठ सकते थे। इसकी गति १५ मील प्रति घंटे थी।

गर्नीका वाष्पयान लम्बी लम्बी यात्राएँ कर सकनेमें पूर्ण सफल हो सका परन्तु उन दिनों साधारण लोग सभी प्रकारके आविष्कारोंका जिस प्रकार विरोध करते थे उसका सामना गर्नीको करना पड़ा। एक बार गर्नी कुछ आदमियोंको अपने वाष्पयान पर ले जा रहा था। मार्गमें एक

गाँवमें मेला लगा था। वहाँ पर लोगोंने वाष्पयान के यात्रियों और गर्नी पर आक्रमण कर दिया। उन लोगों ने कल कारखानोंको अपना घोर शत्रु समझ कर इस वाष्पयानको नष्ट भ्रष्ट कर देना ही उचित समझा। इस आक्रमणमें बेचारा गर्नी चोट के कारण बेहोश हो गया। किसी प्रकार वह दूसरी जगह पहुँचाया गया जहाँ उसके प्राण बच सके।

इस प्रकारकी दुर्घटनाओं और लोगोंके विरोध का सामना कर भी वाष्पयानों को दौड़ानेकी धुनमें कितने व्यक्ति लगे रहे। इनमें ओगली नामके एक व्यक्ति ने सन् १८३१ ई० में एक ऐसा वाष्पयान तैयार किया जो १६ यात्रियोंको लेकर समतल भूमि पर ३५ मील प्रति घंटेकी चालसे दौड़ सका। यह पहाड़ीके ऊपर भी २० मील प्रति घंटेकी चालसे चढ़ सकता था। ओगली यह वाष्पयान बिना टूटे फूटे ८०० मीलकी यात्रा कर सका। ओगलीकी भाँति हैंकाकके वाष्पयानसे भी भली भाँति यात्रा होती रही और वह ४००० मीलकी यात्रा बिना किसी दुर्घटनाके पूरा कर सका।

इसी प्रकार सन् १८३० ई० से १८४० ई० तक कई वाष्पयान सफलतापूर्वक यात्रियोंको ढोते रहे जिससे लोगोंके आवागमनमें भी सुविधा होती रही और इनके मालिकोंको आर्थिक लाभ भी होता रहा परन्तु इन वाष्प-यानोंका जीवन अधिक दिनों तक न रह सका और इसके शीघ्र ही विकट शत्रु पैदा हो गए। ये शत्रु रेलगाड़ी और घोड़ा गाड़ी दोनों ही व्यवसायके मालिक थे। इन्होंने यह समझा कि साधारण सड़क पर चलनेवाले वाष्प-यानोंसे उनके व्यवसायको बड़ा धक्का पहुँचेगा।

उन दिनों सड़क पर चलनेवालोंको वाष्पयानोंको मार्गमें स्थान २ पर चुंगी देनी पड़ती थी। इस चुंगी के लेने वाले प्रायः घोड़ा गाड़ीके व्यवसाय वाले व्यक्ति थे। इन्होंने अपने व्यवसायकी रक्षाके लिए इन वाष्पयानों पर चुंगी बढ़ाना प्रारम्भ किया। यह सन् १८४० ई० में इतनी अधिक बढ़ा दी गई कि सब कुछ लाभ चुंगी लेने वालोंकी जेबमें ही जाने लगा और वाष्पयानके व्यवसायी घाटा उठाने लगे। इस कारण वाष्पयानोंका इंग्लैंडमें सर्वत्र लोप होने लगा।

जब यात्रियोंको ढोने वाले वाष्पयानों का शैशवावस्थामें ही इस प्रकार अंत होने लगा तो वाष्पयानके व्यवसायी यात्रियोंकी जगह भारी भारी बोझ ढोनेसे ही संतोष करने लगे परन्तु उनके प्रतिद्वन्द्वियोंसे यह भी न देखा गया और उनके उकसाने तथा उभाड़नेसे इंग्लैण्डकी पार्लयामेंट ने सन् १८६५ ई० में बड़ी भारी मूर्खता कर एक लाल झण्डेका कानून बनाया। इस कानूनके अनुसार सड़क पर चलने वाले वाष्पयानके आगे आगे १०० गजकी दूरी पर एक आदमीका लाल झण्डा लेकर चलना आवश्यक था और वाष्पयान ४ मील प्रति घंटेसे अधिक तीव्र नहीं चलाया जा सकता था। इस नितान्त मूर्खता पूर्ण कानून ने इंग्लैण्डमें साधारण सड़क पर चलने वाले वाष्पयानकी कुसमय ही अंतिम क्रिया कर दी।

यह बेहूदा कानून जब तक इंग्लैंडमें रहा तब तक वहाँ तो वाष्पयानका किसीने नाम न लिया परन्तु योरपके जर्मनी, फ्राँस आदि अन्य देशोंमें ऐसी कोई बाधा न होनेसे सड़क पर चलने वाले वाष्पयान मोटरगाड़ीमें उन्नति होती रही। यदि वहाँ कोई आविष्कारक इसके सम्बन्धमें कुछ खोज करता भी तो रातको चोरोंकी तरह तरह लुके छिपे। अन्तमें किसी प्रकार सन् १८९६ ई० में जब पार्लयामेंटके सदस्योंके मस्तिष्कमें कुछ ज्ञानका उदय हुआ और लाल झंडेका कानून उठा लिया गया तो मोटरगाड़ीके व्यवसायियों को कुछ साँस लेनेका अवसर मिला।

जिस समय इंग्लैंडमें यह कानून उठा लिया गया उसके पूर्व ही मोटरगाड़ीको चलानेके लिए वाष्पके स्थान पर एक दूसरी ही शक्तिका आविष्कार हो चुका था जिससे मोटर गाड़ीने आजकलका सा

रूप धारण किया। यह नई शक्ति गैस-इञ्जिनकी थी। इसी इञ्जिनकी सहायतासे मोटरगाड़ीने थोड़े समयमें जितनी अधिक उन्नति कर पवनसे भी तीव्र गतिसे दौड़ लगानेमें आज सफलता प्राप्त कर ली है। यह इञ्जिन क्या है और इसका किस प्रकार आविष्कार हुआ इन बातोंको जानना मोटरगाड़ीके जन्मकी कहानी समझनेमें आवश्यक है इस कारण यहाँ पर उसकी चर्चा करना उचित जान पड़ता है।

वाष्प इञ्जिनमें बायलरमें वाष्प पैदाकी जाती है, फिर उसे सिलिंडरमें पहुँचा कर उसकी प्रसार-शक्तिसे काम लिया जाता है परन्तु गैस इञ्जिनमें बायलरकी आवश्यकता नहीं होती। उसमें इञ्जिनमें ही गैस पहुँचा कर उसमें बिजलीकी लुत्ती वा अन्य साधनसे आग लगा दी जाती है जिससे धड़ाका पैदा होता है उसी धड़ाकेसे वाष्पकी भांति पिस्टनको सिलिंडरके बाहर-भीतर करने का काम निकाला जाता है। इस प्रकारके इञ्जिनमें सिलिंडर के अंदर ही गैस जला कर शक्ति पैदाकी जाती है इस कारण इन्हें अन्तर्दाह्य इञ्जिन कहा जाता है।

मोटरगाड़ीका पैट्रोल इञ्जिन अन्तरर्दाह्य ही होता है। उसमें पेट्रोलसे गैस पैदा कर इञ्जिन चलाया जाता है। पेट्रोल स्वयं विस्फोटक पदार्थ नहीं है परन्तु यह हवा पाकर, तुरन्त उसमें मिल जाता है है और हवाके साथ इसके मिल जानेसे एक बड़ी विस्फोटक गैस पैदा हो जाती है। पेट्रोल इञ्जिनमें एक डिबियामें कुछ पेट्रोल पहुँचा कर वायुका संयोग कर देते हैं और उससे जो गैस पैदा होती है उसीको सिलंडरमें पहुँचा कर उसमें आग लगा देते हैं। कुछ अन्य प्रकारके गैस इंजिनोंमें बड़े बड़े कारखानोंमें पैदा हुई व्यर्थ गैसको उपयोगमें लानेके लिए उसे उसे नलों द्वारा गैस इंजिनोंमें पहुंचाया जाता है और उसी निरर्थक वस्तुका उन इंजिनोंमें उपयोग कर बड़े काम निकाले जाते हैं।

गैससे इंजिन चलानेका विचार सर जार्ज कैली नामके मस्तिष्कमें आया था परन्तु लोगों ने उस समय इस विचार पर उसकी बड़ी हँसी उड़ायी। इस कारण कैली ने जिस शक्तिका भविष्यमें जन्म होनेका स्वप्न देखा उसे वह तो अपने जीवनमें न देख सका परन्तु उसके पश्चात् जिन दिनों जेम्स वाट वाष्प इंजिनके सुधारमें लगा था उन्हीं दिनों राबर्ट स्ट्रीट ने सचमुच एक गैस इंजिनका आविष्कार किया। राबर्ट स्ट्रीटका इंजिन सन १७९४ ई० में तैयार हो सका था परन्तु उसके चलानेमें सफलता न मिल सकी।

स्ट्रीटके बहुत दिनों बाद अठारहवीं शताब्दीके मध्यमें लेन्वायर नामके आविष्कारक ने गैस-इंजिनको चलाने योग्य बनानेमें सफलता प्राप्त की। उसका गैस इंजिन सन् १८६० ई० में संसारके सम्मुख रखा जा सका। इस गैस इंजिनमें जब पिस्टन कुछ बाहरकी ओर निकलने लगता तो पीछेसे गैस और वायु मिश्रित गैस सिलिडंरमें खींच लेता। फिर पिस्टनके आधी दूर पहुँचने पर उस गैसमें बिजली की लुत्तीसे आग लगा दी जाती। इस कारण शेष आधी दूर इस धड़ाकेसे उष्ण गैसके प्रसारके कारण पिस्टन शेष आधी दूर ढकेला जाकर सिलिडंरके दूसरे सिरे तक पहुँच जाता। फिर पिस्टनके पीछे आनेके कारण जली हुई गैस सिलिडंरसे बाहर निकल जाती और उसके दूसरे सिरे पर गैस खिंच आती। उसमें आग लगाने से पिस्टन सिलिंडरके निचले सिरे तक ढकेल दिया जाता। इंजिनको बहुत अधिक गर्म होनेसे बचानेके लिए सिलिंडर के ऊपर एक एक खोल चढ़ा दी गई थी और बीच की जगहमें पानी बहा करता था। इससे एक तो इंजिनके पुर्जोंके फट जाने और गल जानेका भय नहीं रहता, दूसरे अत्यधिक उष्णताके कारण सब पुर्जोंमें चिकनाहट लानेके लिए पहुंचाया हुआ तेल जल न जा कर अपना काम करता।

लेन्वायर ने गैस इंजिनमें इतनी जो बातेंकी थीं वह आज कलके इंजिनोंमें भी हैं परन्तु उसमें बहुत कुछ सुधारकी आवश्यकता थी। उस इंजि-

नमें पचास वर्ष बादके बने गैस इंजिनोंकी अपेक्षा पाच गुना छः गुना पेट्रोल लगता था और बहुत भद्दे वाष्प इंजिनोंसे भी अधिक व्ययमें गया बीता था। जिस प्रकार जेम्स वाट ने वाष्प इंजिनोंमें घोर परिवर्तन कर उन्हें बहुत अच्छा रूप दिया था उसी प्रकारमें सन् १८७६ ई० में जर्मनी देशके कोलोन नगरके निकट ड्यूजमें रहने वाले निकोलस ओटो नामके व्यक्ति ने गैस इंजिनमें महान सुधार कर ख्याति प्राप्त की।

ओटो ने लेन्वायरका पहला इंजिन बननेके कुछ वर्षों बाद एक ऐसा गैस इंजिन बनाया जिसमें वैकुअम पैदा कर बायुकी दबाव शक्तिसे काम लिया गया। लेन्वायरके इंजिनमें सिलिंडर पट रक्खा था परन्तु ओटोने उसे खड़ा रक्खा। इसमें एक ऐसा विचित्र प्रबन्ध था कि जब पिस्टन ऊपर जाता तो वह इंजिनके धुरादंडसे असंबद्ध हो जाता। पिस्टनको ऊपर लेजानेके लिए उसके नीचे गैससे धड़ाका वैकुअम पैदा कर देती तो ऊपरसे बायुका दबाव पड़नेसे पिस्टन नीचे आने लगता। उसी समय उसका धुरादंडसे सम्बन्ध कर दिया जाता। जो उसमें गति पैदा करता। इस प्रकार गैस इंजिन के चलाने पर लेन्वायरके इंजिनकी अपेक्षा दुगुनी अधिक शक्तिसे काम होने लगा।

परन्तु ओटोको जगत् प्रसिद्ध करने वाला उसका सन् १८७६ ई० में बनाया एक दूसरे प्रकार-का गैस इंजिन था। इस इंजिनके आविष्कारके कारण तुरन्त ही गैस इंजिनोंका इतना अधिक प्रचार हो चला कि उसकी अत्यधिक मांगके कारण ओटोको क्षणभरके लिए दम मारना कठिन होगया। कारखानेमें इतनी अधिक संख्यामें इंजिनोंका तैयार बिलकुल कठिन हो गया, जितनीका मांगें आने लगीं। दस वर्षोंके भीतर ही सहस्रोंकी संख्यामें सर्वत्र गैस इंजिनही विविध ढंगके कार्य करते दिखाई पड़ने लगे। इन इंजिनोंके उपयोगसे छोटे बड़े सभी कारखानोंको बहुत अधिक आर्थिक लाभ और ईंधनकी बचत होने लगी। ओटोका यह नूतन प्रकारका इंजिन उसके पहले ढंगके इंजिनसे दुगुना शक्ति शाली था परन्तु वाष्प इंजिनोंकी अपेक्षा चौगुना सशक्त था। इस इंजिनकी सफलताका रहस्य केवल यह था गैसमें धड़ाका उत्पन्न करनेके लिए आग लगानेके पूर्व उसका संकोचन कर दिया जाता था जिससे वह अत्यधिक स्फोटक हो जाती थी।

ओटोके इंजिनमें पिस्टनके एक वार काममें आनेके लिए उसमें चार आघात होते थे इस लिए उसे ओटो चक्र या चतुःचक्र कहते हैं। पहले आघातमें पिस्टन एक प्रवेश द्वारके सिलिंडरके अंदर वायु मिश्रित विस्फोटक गैस खींच लेता था। फिर प्रवेश द्वार बन्द कर दिया जाता तब पिस्टन फिर अपनी जगह पहुंचनेके लिए पीछे लौटता जिससे गैस बहुत संकुचित होकर बहुत अधिक विस्फोटक हो जाता फिर तीसरे आघातके प्रारम्भमें उस संकुचित गैसमें आग लगा दी जाती जिससे उष्ण गैसके जलने और प्रसारके कारण पिस्टन ऊपरकी ओर ढकेल दिया जाता। चौथे आघातके समय जबकि पिस्टन नीचे लौटने लगता तो जली गैस बाहर करनेके लिए बहिःद्वार खोल दिया जाता जली। गैसके बाहर चले जाने पर फिर गैस भीतर लानेके लिए प्रवेश द्वार खोला जाता और पिस्टन पूर्ववत् काम करता। इन चार आघातों में एक बार ही पिस्टनका बल इञ्जिन चलानेके लिए धुरा दंड पर पड़ता।

इस तरहके इञ्जिनसे भलीभाँति काम निकालनेके लिए एकही इञ्जिनमें चार पाँच सिलिंडरोंको रखनेकी व्यवस्था रक्खी जाने लगी। उन सबकी संयुक्त शक्तिसे एक बड़े पहिएमें गति उत्पन्नकी जाती जो किसी यंत्रको चलाता। ओटो इस तरह गैसके इञ्जिनोंसे बड़ा काम निकालनेमें समर्थ हो सका परन्तु मोटरगाड़ीको चला सकने योग्य गैस इञ्जिन बना सकने और उसका पहले पहल मोटर

गाड़ी चलानेमें उपयोग करनेका गौरव उसके साथ काम करनेवाले डैमलर नामके व्यक्तिको है।

डैमलर बहुत ही उच्चकोटिका कुशल इञ्जिनियर था। इसने ओटोके कारखानेमें आनेके पूर्व यंत्रशास्त्र का बहुत कुछ अनुभव प्राप्त कर लिया था। इसने गैस इञ्जिनको देख उससे चालित गाड़ी बनानेकी बात सोची परन्तु इसके लिए ओटोका इञ्जिन अधिक भारी और मन्दगति का था। वह अधिक से अधिक २५० चक्र प्रति घंटे पैदा कर सकता था। इस इञ्जिनसे गतिमें बहुत तीव्र और भारमें बहुत कम इञ्जिन बनाए बिना इससे मोटरगाड़ीका चला सकना कठिन था। इसलिए डैमलरने इसमें सुधार करनेका बीड़ा उठाया परन्तु लोगों ने उसे बताया कि यह बिलकुल असम्भव बात है, यदि इञ्जिन अधिक तीव्र चलाया गया तो वह अत्यधिक गर्म हो जायगा और सीधी स्थितिमें न रक्खे जा सकने के कारण उलट कर नष्ट भ्रष्ट हो जायगा।

डैमलरको अन्य सभी आविष्कारकोंकी भाँति साधारण लोगोंके चारों ओर कैसे विरोधके मध्य अकेले ही अपने आविष्कारको सफल बनानेमें प्रयत्न शील होना पड़ा। उसने किसी के कहनेकी कुछ भी चिन्ता न कर उद्योग करना प्रारम्भ किया। फलतः अनेक असफल प्रयत्नोंके पश्चात् अन्तमें वह एक ऐसा इञ्जिन बना सका जिसने लोगोंकी सभी आशंकाओंको निर्मूल सिद्ध कर ओटोके इञ्जिनकी उपेक्षा चौगुनी शक्तिसे चल सका। डैमलर ने अपने इस इञ्जिनको डरते डरते सन् १८८६ ई० में एक तीन पहिएकी पैरगाड़ीमें लगाया और उसकी आशापूर्ण रूपसे पूरी हुई। यही गैस इञ्जिनसे चलनेवाली संसारकी सर्व प्रथम गाड़ी थी। डैमलर ने अपनी इस मोटरगाड़ी पर तीन वर्ष तक सवारी की और उसका उसे बड़ा ही गौरव था। तीन वर्ष बाद सन् १८८९ ई० में फ्रांस देशके लेवेसर नामके एक व्यक्ति ने इसे क्रय कर लिया। लेवेसर लकड़ीके कलपुर्जे बनाने वाले एक कारखाने का मालिक था परन्तु उसके ध्यानमें यह बात कभी न आई थी कि वह मोटरगाड़ी बनानेका व्यवसाय कर सकेगा। किसी प्रकार उसने डैमलरकी मोटर गाड़ीकी चर्चा सुनी और उसके हृदयमें उसके देखनेकी उत्कंठा हुई। उसे देखकर वह इतना मुग्ध हो गया कि उसने उसे क्रय कर लिया और उसे अपने देशमें बनानेका अधिकार क्रय कर मोटरगाड़ी बनानेका कारखाना खोल दिया।

लेवेसरकी भाँति अन्य व्यवसायियों ने भी मोटरगाड़ी बनानेकी ओर ध्यान दिया। प्रारम्भमें तो इसके ग्राहकोंकी संख्या नहींके बराबर थी परन्तु इसकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित करने वाली एक बात हुई। यह मोटरगाड़ियोंकी दौड़ थी। सन् १८९४ ई० में पेरिसके एक समाचार पत्रके सम्पादक ने पेरिससे रोन नगर तक मोटरगाड़ियों की दौड़ करानेकी व्यवस्था की और सर्व प्रथमको पुरस्कार देनेकी घोषणा की। इसका फल अच्छा रहा। इस दौड़में कुल दस मोटरगाड़ियों ने भाग लिया जिनमें डियन नामके एक व्यक्ति की मोटर सर्व प्रथम रही। उसकी चाल १२ मील प्रति घंटे थी। एक दूसरी दौड़ सन् १८९५ ई० में पेरिस और बोर्डो नगरके मध्य हुई उसमें लेवेसर विजयी रहा।

इन दौड़ोंसे लोगों ने देख लिया कि पेट्रोल इञ्जिनसे चलनेवाली मोटरगाड़ी पर भली भाँति यात्रा की जा सकती है। इस कारण १८९५ ई० की दौड़के पश्चात् मोटरगाड़ियोंकी मांग इतनी अधिक बढ़ी कि इनके कारखाने उन्हें पूरा करनेमें कठिनाई का अनुभव करने लगे। बहुतसे लोग मोटरगाड़ी क्रय करनेमें समर्थ न हो सकनेके कारण पेट्रोल इञ्जिन चालित तिपहिया गाड़ी लेने लगे।

मोटरगाड़ियोंकी दौड़के कारण उनकी उन्नति भी बड़ी तीव्र गतिसे होने लगी और दिन पर दिन अधिक तीव्र गतिकी गाड़ियां दिखाई पड़ने लगीं। १८९५ में की दौड़में इसकी गति १२ मील प्रति घंटे थी। १८९५ ई० में १५ मील हो गई। सन् १९०० में विजयी गाड़ी ३५३ मीलका कुल मार्ग ३८⅓ मील प्रति घंटेसे तै कर सकी। सन् १९०३ ई० में गति

५६ मील प्रति घंटे हो सकी। इसी प्रकार दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति होनेसे सन् १६०५ ई० में ६५ मीलकी गतिसे मोटरगाड़ी चलाई जा सकी।

मोटरगाड़ीके विकासकी कहानीमें डनलप और फोर्डका उल्लेख न होनेसे यह अधूरी रह सकती है। ये दोनों ही व्यक्ति संसारमें अपनी कीर्ति फैला कर बहुत प्रसिद्ध हो चुके हैं। इनमें फोर्ड बहुत अधिक संख्यामें बहुत अच्छे ढङ्गकी मोटर गाड़ियां बहुत सस्ती तैयार करनेमें जितना सफल हो सका है उसका प्रमाण हम प्रत्येक देशके कोने कोनेमें दौड़ती हुई फोर्ड मोटरगाड़ियोंको देख कर पा सकते हैं परन्तु डनलप तो आधुनिक युगमें सड़क पर द्रुतगतिसे दौड़ लगानेवाली सभी गाड़ियोंका प्राण ही है। उसीकी बुद्धिके प्रसादसे गाड़ीके पहियोंमें हम रबरके टायर और हवा भरे ट्यूबको लगा देखते हैं। यदि पहियोंको सुगमतया द्रुतगतिसे चला सकनेवाले ये साधन न होते तो आज इतनी तीव्रगतिकी गाड़ियां सर्वथा न दिखाई पड़तीं।

आजसे बहुत दिनों पूर्व सन् १८८८ ई० में जब डेनलप ने पहले पहले एक तिन पहिए गाड़ीके पायोंमें रबरका टायर लगा कर चलाया तो कौन कह सकता था कि उसी आविष्कारसे यात्राके साधनोंमें युगान्तर उपस्थित करनेवाली गाड़ियोंकी गतिमें महान अन्तर उपस्थित हो सकेगा परन्तु जब कुछ दिनों बाद पैरगाड़ियों और मोटरगाड़ियोंको उसने अपनी आविष्कृत वस्तुकी शरणमें आते देखा तो उसके हर्षका पारावार न रहा।

डनलपके आविष्कारका कितनी शीघ्रतासे गाड़ियों पर प्रभाव पड़ा इसको समझनेके लिए इतना जान लेना पर्याप्त होगा कि जब डनलप ने सन १८८८ ई० में अपने वायवीय टायरको पेटेन्ट कराया तो संसार भरमें पैरगाड़ियोंकी संख्या तीन लाख थी परन्तु बीस वर्ष पश्चात् ही उनकी संख्या तीस लाख हो गई। इनके अतिरिक्त लाखोंकी संख्या में जो मोटरगाड़ियां बनीं उनकी संख्या पृथक् ही थी।

जीर्ण फुफ्फुस यक्ष्माका निदान

[ले० श्री कमला प्रसाद एम० बी०]

(गतांकसे आगे)

४ टुवर्कुलिन।

टुवर्कुलिन क्या ?

टुवर्कुलिन कई प्रकारका होता है।

(१) जीर्ण टुवर्कुलिन (कौक का) (T. A. K.)

कुछ यक्ष्मा कीटाणु ६ से ८ सप्ताह तक कुछ क्षारीय ५ °/० मधुरिन-पेप्टोन माध्यम पर उपजाये जाते हैं। इतने समयमें इनकी पुनरुत्पत्ति बन्द हो जाती है। अब इन्हें माध्यम (जिस पर ये उपजाते हैं) के साथ २ वाष्पकुंडी पर (Water bath) (८०° शतांश ताप पर) तब तक रखते हैं जब तक सारे पदार्थका केवल दसवाँ हिस्सा न रह जाय। इस बचे हुए अंशको कागज वा चीनीसे फिल्टर द्वारा छान लेते हैं। यह छाना हुआ पदार्थ भूरे रंग के शर्बतका सा होता है। यही टुवर्कुलिन है। इसको सुरक्षित रखनेके लिए इसमें ५°/० दिव्योल (Phenol) मिला देते हैं।

(२) नूतन टुवर्कुलिन (कौक का) (T. A., T. O., T. R.)

(क) यक्ष्माकीटाणु दशांश-प्रमित दाहक-सोडा में मिश्रित कर तीन दिन तक छोड़ देते हैं, तदुपरान्त उन्हें छान लेते हैं, तथा क्षारीय अंशको अम्ल द्वारा शिथिल (Neutralize) कर लेते हैं। इस प्रकार क्षारीय टुवर्कुलिन (Alkaline Tuberculin) प्राप्त होता है।

(ख) यक्ष्माकीटाणु शून्य (Vacuum) में सुखाये जानेके उपरान्त एक खरल में तब तक पीसे जाते हैं, जब तक छानने पर इनमें कोई सम्पूर्ण कीटाणु नहीं रह जाता। इस सुखाये थोकका एक ग्राम (Gramme) १०० घन शतांशमीटर कीटाणु-रहित स्रवित-जल (Sterile Distilled water) में घोल दिया जाता है। इस घोलको केन्द्र-गर्वित चक्र (Centrifugal machine) में रख कर बहुत तेजीसे घुमाया जाता है, जिसमें ठोस अंश निम्न भागमें बैठ जाता है, तथा तरल अंश ऊपर चला आता है, यही तरल अंश टुवर्कुलिन कहलाता है। इसमें यक्ष्माकीटाणुओंका घुलनशील अंश मिश्रित रहता है, तथा इसमें ५० प्रतिशत मधुरिन मिलाने पर तलछट नहीं बैठता। शरीरमें इसकी वैसी ही प्रतिक्रिया होती है, जैसी जीर्ण टुवर्कुलिन की।

(ग) उपर्युक्त टुवर्कुलिनके बचे हुए तलछट को जलमें घोलकर पुनरपि केन्द्रगर्वित चक्रमें घुमाते हैं। यह क्रिया कई बार दुहराई जाती है। जिससे अन्तमें सारा तलछट जलमें घुलकर दूधका सा हो जाता है। इसे शेषांश टुवर्कुलिन (T. R. वा Tuberculin Ruckstand) कहते हैं।

(३) कीटाणु-घोल नवीन टुवर्कुलिन। (B. E. वा Bacillary Emulsion—Bazillen Emulsion.)

यक्ष्माकीटाणुओंको चूर्ण कर स्रवित जलमें (१:१००) घोल दिया जाता है, तथा कई दिनों तक इसी प्रकार रख दिया जाता है, जिससे तलछट नीचे बैठ जाता है, एवं स्वच्छ तरल ऊपरी भागमें रह जाता है। इसी तरल अंशको टुवर्कुलिन कहते हैं। रक्षित रखनेके लिए इसमें ५० °/० मधुरिन मिला देते हैं।

कुछ अन्य टुवर्कुलिनके नाम ये हैंः—

(४) बुलियन फिल्टर (B. F. वा Deny's Bouillon Filtre)

(५) टुवर्कुलोप्लाज्मिन (Tuberculoplasmin)

(६) बेरैनेक (Beraneck)

(७) क्लेब्स (Klebs)

(८) स्पेंग्लरका पाशविक टुवर्कुलिन (Spengler's Bovine)

इस प्रकार यह विदित होगा कि'टुवकु'लिन वास्तवमें यक्ष्माकीटाणुओंके बिषका घोल है। यह टुवकुर्लिन वा यक्ष्माकीटाणु बिष यक्ष्मा-रहित व्यक्तियोंको कुछ भी हानिकर नहीं है। सद्यःजात शिशुको इसकी बहुत बड़ी २ मात्रायें दी जा सकती हैं। किन्तु यक्ष्मा-क्रान्त व्यक्तियोंके तन्तु इस विषके प्रति बहुत ही सचेत हो जाते हैं, और यदि ये रोगमुक्त भी हो जायँ तौ भी इनके शारीरिक तंतुओंकी यह चेतना प्रायः आजीवन बनी रह जाती है। अस्तु, इस चेतना की उपस्थिति केवल इसी बातकी द्योतक है कि जीवनमें किसी समय यक्ष्माका आक्रमण हो चुका। इससे यह पता नहीं चलता कि रोग इस समय भी कार्यनिरत (active) है वा नहीं।

जीवनके बहुत आरम्भमें ही—१० वा ११ वर्ष की अवस्थामें—प्रायः ६६ प्रतिशत मनुष्य यक्ष्मा द्वारा आक्रान्त हो जाते हैं। अतएव इसी अवस्था में यक्ष्माक्रमण एवं यक्ष्मा-रोगका एक ही अर्थ होता है। वास्तवमें बाल्यावस्थामें केवल इतना ही सिद्ध हो जाना यथेष्ट है कि यक्ष्माका आक्रमण हो चुका है, किन्तु वयस्कोंमें इसका कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि जो बहुत आवश्यक प्रश्न है—अर्थात् यक्ष्मा इस समय अपने कार्यक्रममें प्रवृत्त है वा नहीं उसका उत्तर टुवकु'लिन प्रतिक्रिया द्वारा नहीं मिलता।

टुवकु'लिन प्रतिक्रियायें।

ये तीन प्रकारकी होती हैं—

(१) स्थानीय अर्थात् जहाँ पर टुवकु'लिन प्रवेश कराया जाता है। त्वचामें प्रदाहके चिह्न से दीख पड़ते हैं।

(२) सर्वांग। इस प्रकारकी प्रतिक्रियायें बहुधा इन्फ्लूयेंजाका रूप धारण करती हैं। इसके लक्षणोंमें ज्वर, शिरदर्द, मितली, उबकाई, शीत इत्यादि है।

(३) कैन्द्रिक। ये प्रतिक्रियायें यक्ष्मा-क्षतोंमें होती हैं। क्षत-स्थानमें रक्ताधिक्य (Hyperaemia) [illegible] जाता है, और तदनुरूप लक्षण एवं चिह्न [illegible]स्थत होते हैं।

प्रतिक्रियायोंके प्राप्त करनेकी रीतियां।

(१) वौन पिर्केकी त्वचाप्रतिक्रिया (Von Pirquet's cutaneous reaction) रीति। जिस व्यक्तिकी परीक्षा करनी हो उसकी एक बांह के कुछ अंशको मद्यसारसे भली भांति धो डालते हैं, इस साफ किये गये स्थानों में एक खुर्चनी (Scarifier) द्वारा दो स्थानों में ठीक वैसे ही खुरच देते हैं, जैसा कि गोटीकी टीका लगानेके समय खुर्चा जाता है। ध्यान इस बातका रक्खा जाता है कि रक्त नहीं निकलने पाये, किन्तु रक्त नलिकाओंके बाहरी तलतक उपचर्म खुरच जाय। खुर्चे हुए स्थानोंमें एकमें टुवकु'लिन (जीर्ण) का एक बूँद लगा दिया जाता है, और दूसरेमें केवल २० % मधुरिन।

प्रतिक्रिया। कुछ समय (३ घंटेसे लेकर कुछ दिनों तक—बहुधा २४ घण्टों) के उपरान्त जिस स्थान में टुवकु'लिन लगाया गया था, एक लाल चकत्ता प्रकट हो जाता है, जो प्रायः ४८ घंटेमें सबसे बड़ा आकार धारण करता है, उस समय इसका व्यास $\frac{१}{१०}$ से $\frac{३}{१०}$ शतांशमीटर तक रहता है। तदुपरान्त यह मिटने लगता है और अन्तमें कुछ रञ्जक पदार्थोंका अपना चिह्न-स्वरूप छोड़ कर एकदम विलीन हो जाता हैं। दूसरे स्थानमें मधुरिन केवल तुलनाके लिए लगाया जाता है।

यदि प्रथम परीक्षामें यह प्रतिक्रिया नहीं मिलती तो कुछ दिनों के उपरान्त इस परीक्षाको पुनः दुहराते हैं। यदि दोनों बारकी परीक्षाओंमें प्रतिक्रिया लक्षित न हो तो इसका अर्थ यह होगा कि रोगी कभी यक्ष्माक्रान्त हुआ ही नहीं। किन्तु, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रतिक्रियाकी उपस्थिति इसी बातकी द्योतक है कि यक्ष्माका आक्रमण जीवनमें किसी समय हो चुका है—इस समय है वा नहीं इसका संकेत नहीं मिलता।

(२) नेत्र-श्लेष्मिकाकी टुवर्कुलिन प्रतिक्रिया। रीति। किसी प्रकारके नेत्रसम्बन्धी रोगकी उपस्थितिमें इस रीतिसे परीक्षा करना हानिकर होता है। स्वस्थ नेत्रमें एक १ °/₀ जीर्ण टुवर्कुलिन डाल दिया जाता है और २४ घण्टेके उपरान्त दूसरे नेत्रके साथ इसकी तुलना की जाती है। यक्ष्माक्रान्त व्यक्तियोंमें टुवर्कुलिन द्वारा प्रदाहके लक्षण उपस्थित होते हैं। यदि ये लक्षण नहीं मिलें तो दूसरे नेत्रमें ४—५°/₀ टुवर्कुलिन डाल कर परीक्षाकी जाती है।

सावधानियाँ। (क) केवल टुवर्कुलिन का व्यवहार करना चाहिए।

(ख) परीक्षाके समय नेत्र-संबंधी कोई रोग वर्तमान न हो।

(ग) एक ही नेत्रमें परीक्षा दुहरायी नहीं जा सकती।

(घ) गण्डमाला-युक्त लड़कों तथा वृद्ध रोगियोंमें यह परीक्षा अनुचित है।

(ङ) ऐसी अवस्थामें जबकि टुवर्कुलिन सुई द्वारा प्रवेश कराया जाय, इस प्रकारकी परीक्षाका नहीं होना ही उचित है।

किस अवस्थामें यह परीक्षा उपयुक्त है?

यह परीक्षा उसी अवस्थामें काममें आ सकती है जिसमें त्वचामें सुई द्वारा टुवर्कुलिन नहीं प्रवेश कराया जा सकता, उदाहरणार्थ ज्वरकी अवस्थामें।

फल—यदि प्रदाहके लक्षण उपस्थित हुए तो जाना जायगा कि सम्भवतः यक्ष्माक्रमण क्रियात्मक रूपसे वर्त्तमान है, क्योंकि बहुत कम स्वस्थ व्यक्तियोंमें यह क्रिया उपलब्ध होती है। विपक्षमें इन लक्षणोंकी अनुपस्थिति इस बातका कदापि द्योतक नहीं होती कि रोगी रोगाक्रान्त नहीं है क्योंकि बहुतसे ऐसे व्यक्तियोंमें भी जिनमें इस रोग का प्रथमावस्थामें वर्त्तमान रहना निश्चय रूपसे सिद्ध हो चुका है, यह प्रतिक्रिया कभी कभी नहीं पायी जाती।

(३) त्वचा एवं नेत्रश्लैष्मिकाकी संयुक्त प्रतिक्रियायें।

यदि दोनों स्थलोंमें प्रतिक्रियायें उपलब्ध हों तो इसका अर्थ होगा कि रोग इस समय वर्त्तमान है। यदि किसी स्थानमें प्रतिक्रिया नहीं प्राप्त हो तो रोग की अनुपस्थिति समझी जायगी; किन्तु यदि एक स्थानमें प्रतिक्रिया देखी जाय और दूसरेमें नहीं तो उसका मूल्य नगण्य होगा।

(५) सुई द्वारा त्वचामें टुवकुलिन प्रवेश कराने पर प्राप्त प्रतिक्रिया। (Subcutaneous test)

इसके लिए एक विशेष प्रकारके टुवकुलिन (T. A. F. Tuberculin Albumose free) की आवश्यकता होती है। सुई द्वारा वयस्कोंमें ०·२, १, ५, और १० घन सहस्रांशमीटर की मात्राओंमें तथा बच्चोंमें ०·१, ०·५, २·५, तथा ५ सहस्रांशमीटरकी मात्राओंमें यह टुवकुलिन त्वचाके नीचे (बाहु में) सुई द्वारा प्रवेश कराया जाता है। यदि पहली मात्राके ४८ घण्टेके उपरान्त प्रतिक्रिया उपलब्ध नहीं होती तो दूसरी मात्रा दी जाती है। भोरके समय टुवकुलिन प्रवेश कराना उचित है, जिससे सारे दिनमें प्राप्त होनेवाली प्रतिक्रियायें अलक्षित न रह जायँ। प्रतिक्रियायें सर्वाङ्ग (General) होती हैं। दो, तीन दिन पहलेसे ही प्रत्येक दो दो घण्टेका तापक्रम लेकर वक्र खींच लेना चाहिये। इससे शरीरके तापक्रमका तुच्छातितुच्छ न्यूनाधिक्य जाना जा सकता है।

निम्नलिखित अवस्थायें इसके विपक्षमें हैं।

(क) ज्वर—क्योंकि परीक्षाफल अनिश्चित होगा,

प्रतिक्रियायें उग्र एवं भयावह हो सकती हैं।

यदि शरीरका तापक्रम ६८.८° हो तो इस रीतिसे परीक्षा करना उचित नहीं है)

(ख) यदि रोगका निदान अन्य उपायों द्वारा सरलतापूर्वक हो।

(ग) यदि हाल ही रक्तक्षरण हुआ हो,
बहुसंख्यक यक्ष्माका सन्देह हो
हालमें कोई कठिन रोग हुआ हो,
मधुमेह, वृक्क-प्रदाह हृदय-प्रदाह, अपस्मार इत्यादि रोग वर्त्तमान हो।

प्रतिक्रिया।

(क) कमसे कम १ डिग्री (फैरनहीट) तक तापक्रमका अधिक होना, अथवा (ख) ०.७° की अधिकता तथा अन्य लक्षणोंका उपस्थित रहना रोगके निदानके लिए निश्चयात्मक है।

यदि तापक्रम इतना अधिक भी न हो जाय तो यह प्रतिक्रिया सन्देहात्मक होगी। ऐसी अवस्था में अत्यधिक मात्रामें टुबकुलिनका व्यवहार न कर पुनरपि अन्तिम दी गई मात्राको दुहराना उचित है।

यदि प्रतिक्रिया उपलब्ध नहीं हुई, तो इसका
(क) यक्ष्मा वर्त्तमान नहीं है।
वा (ख) यक्ष्मा-केन्द्र रोग मुक्त हो चुका है।
अथवा (ग) रोग बहुत दूर तक पहुँच गया है।

यदि प्रतिक्रिया उपलब्ध हुई तो—

(क) ज्वरकी अधिकता रोग की उपस्थितिकी द्योतक होगी।

(ख) यदि बहुत देरके उपरान्त यह उपलब्ध हुई तो इसका मूल्य कुछ भी नहीं है।

(ग) यह प्रतिक्रिया निम्न लिखित रोगोंमें भी प्राप्त होती है—
मूत्रकृच्छ्र, परीसेपेलस, गर्भाशयके रोग, गठिया, और त्रिदोष ज्वर (अन्तिम अवस्थाओं में)।

इस प्रतिक्रियाके सम्बन्धमें निम्न लिखित बातों पर ध्यान देना उचित है।

(क) ज्वराधिक्य किसी अन्य कारण-वश भी हो सकता है।

(ख) टुबकुलिनकी मात्राके दुहराये जाने पर भी कभी कभी ज्वर तो कुछ हो जाता है, किन्तु अन्य लक्षण उपस्थित नहीं होते, ऐसी अवस्थामें अनुमान किया जाता है कि रोग सम्भवतः वर्त्तमान नहीं है।

(ग) स्थानीय-प्रतिक्रिया (जिस स्थानमें सुई प्रवेश करायी जाय) का भी ध्यान रखना उचित है, क्योंकि सर्वाङ्ग प्रतिक्रिया उसी मात्रामें होती है, जिसमें स्थानीय प्रतिक्रिया।

(घ) कभी कभी कैन्द्रिक प्रतिक्रिया भी उपस्थित होती है, जिससे—

रोग किस स्थानमें वर्त्तमान है, इसका पता चलता है।

रोग वास्तवमें यक्ष्मा ही है।
रोग इस समय कार्यनिरत है, यह जाना जाता है।

किन्तु यह प्रतिक्रिया भयावह होती है। इसके उपस्थित होने पर निम्न लिखित लक्षण मिलते हैं—

खांसी अधिक होती है, तथा बलगम भी अधिक निकलता है।
वक्षस्थलमें पीड़ा होती है।
श्वास-कष्ट (हँफनी) होता है।
पार्श्वोंमें सुईका सा चुभता है।
क्षत स्थानमें विघातन झंकार लुप्त हो जाता है, तथा राल्स भी पाये जाते हैं।
इससे संदेह नहीं कि कैन्द्रिक प्रतिक्रिया निदानके लिए निश्चयात्मक होती है, किन्तु कभी कभी इसका इतना बुरा प्रभाव पड़ता है कि रोगीका भविष्य और भी अंधकारमय हो जाता है।

ट्युबर्कुलिन व्यवहारका पथप्रदर्शक

(१) उन अवस्थाओंमें, जिनमें ज्वर नहीं आता हो, या अन्य विरोधी लक्षण नहीं उपस्थित हों सुई द्वारा त्वचाके भीतर ट्युबर्कुलिन प्रवेश कराया जा सकता है।

(२) जहां इसके विरोधी लक्षण वर्त्तमान हों वहां त्वचा पर वा नेत्र-श्लैष्मिकामें ट्युबर्कुलिनका व्यवहार कर सकते हैं।

(३) यदि रोग ट्युबर्कुलिनके व्यवहार किये बिना ही जाना जा सके अथवा,

(४) रक्तक्षरण वा अन्य कोई निश्चयात्मक चिह्न वर्त्तमान हो, तो इसका व्यवहार अनुचित है।

५ बलगम

(Sputum)

(क) बलगममें यक्ष्मा कीटाणुओंकी प्राप्ति।

इसके लिए उचित है कि भोरके समय गहरी खांसीके उपरान्त जो बलगम निकले उसकी परीक्षा की जाय। यदि यह बलगम भीतर (फुफ्फुस) से नहीं निकला हो तो परीक्षा व्यर्थ है, क्योंकि बहुधा मुखके थूक खखार बलगमके से जान पड़ते हैं, किन्तु उनमें यक्ष्मा कीटाणुओंका पाया जाना आवश्यक नहीं है, और न वे फुफ्फुसकी अवस्थाओं के द्योतक हो सकते हैं। यदि बलगम सरलता-पूर्वक नहीं निकलता हो तो परीक्षाके पूर्व एकाध खुराक पांशुज नैलिद (पोटैशियम आयोडाइड) रोगीको खिलाया जा सकता है, जिससे बलगम ढीला होकर निकल आता है। किन्तु ऐसा करना भयावह है।

बलगमकी परीक्षा किस प्रकारकी जाती है यह बहुत पहलेके अध्यायों* में बताया जा चुका है, किन्तु कभी कभी—विशेष कर जब कीटाणुओंकी संख्या बहुत कम रहती है इस रीतिसे भी काम नहीं चलता। अतः दो एक अन्य रीतियोंका अवलम्बन करना पड़ता हैं ये हैं—

(१) ऐण्टीफौर्मिन द्वारा।

(Antiformin method of Uhlenhuth)

दाहक सोडा (NaOH) सैन्धक उपहरित (सोडियम् हाइपो क्लोराइट) को मिला देनेसे जो वस्तु प्रस्तुत होती है उसे ऐण्टीफौर्मिन कहते हैं। इसके प्रभावसे केश, मोम, वसा और छिद्रोज (Cellulose) को छोड़ कर अन्य सभी कर्बनोद्भूत पदार्थ भस्मसात् हो जाते हैं। बलगमके साथ इसे मिला देने पर बलगम शीघ्र ऊपर चला आता है, तथा घुल जाता है और अन्तमें पीले रंगका एक घोल तैयार हो जाता है। थोड़ा सा तलछट भी धारकके निम्नभागमें बैठ जाता है, एण्टीफौर्मिन के प्रभावमें अन्य सभी कीटाणु तो नष्ट हो जाते हैं। किन्तु अपनी वसानिर्मित कटोरियोंके कारण यक्ष्मा कीटाणु ज्योंके त्यों रह जाते हैं।

ये यक्ष्मा कीटाणु अपनी रंग-ग्रहण-शक्ति नहीं छोड़ते।

इस प्रकार यक्ष्मा कीटाओंके प्राप्त करनेकी रीति यह है:—

(क) २४ घंटेका बलगमको कांचके एक साफ बर्त्तनमें इकट्ठा किया जाता है। यदि इसका परिमाण अधिक जान पड़े तो केवल १५ वा २० घन शतांश मीटर ही लेना चाहिए।

(ख) यदि बलगम बहुत गाढ़ा हो उसमें उतना ही स्रवित जल (Distilled water) मिला दिया जाता है, पतले बलगममें उसीके अनु-सार जल मिलाया जाता है।

(ग) इस घोलमें चतुर्थांश ऐण्टीफौर्मिन मिलाया जाता है और इन्हें खूब चला कर १० से ६० मिनट तक छोड़ दिया जाता है।

(घ) अब इसमें बराबर भाग ९५ मद्यसार मिलाया जाता है, जिससे तलछट बैठनेमें सुविधा होती है। इस नये घोलको एक बार और चलाकर २ से ४ घंटे तक छोड़ दिया जाता है।

* विज्ञान पूर्ण संख्या १८४ जुलाई-अगस्त १९३०

(ङ) अब ऊपरका तरलांश फेंक दिया है, तथा तलछटकी पूर्वानुसार परीक्षा की जाती है।

(२) एलरमैन और एर्लैण्डसेनकी रीति।

(Ellermanns and Erlandsenn's method)

(यह रीति और भी उत्तम है, किन्तु इसमें प्रायः २४ से ४८ घंटेमें परीक्षा-फल ज्ञात होता है)

(क) एक अंश बलगम ०·६ सैन्धक कर्बनेतके घोलका अर्धांश मिला कर २४ घंटे तक ३७ शतांश तापक्रम पर छोड़ दिया जाता है।

(ख) अब इस घोलके तरलांश को पृथक् कर उसे केंद्र गर्वित चक्रमें रख घुमाया जाता है एवं अन्तमें तरलांशको फेंक दिया जाता है।

(ग) बचे हुए अन्शके द्विगुण वा चतुर्गुण २५°/₀ दाहक सोडा (उसमें) मिला कर उसे कुछ गर्म किया जाता है

(घ) एक बार और भी पूर्वोक्त यन्त्रमें घुमा कर तलछटकी परीक्षाकी जातो है।

रंगनेकी रीतियां।

(१) साधारणतः ज़ील-नीलसेनकी रीति (Zeihl-Neelsen's method) से रंगते हैं। यह रीति बहुत पहले बतायी गई है।

(२) म्यूककी रीति (Much staining)

कभी कभी देखा गया है कि यक्ष्मा कीटाणु अम्ल रंग नहीं ग्रहण करते, यद्यपि उनकी नाशकारक शक्तियां बनी रहती हैं, उदाहरणार्थ कुछ यक्ष्मा-जनित शीत व्रणों (Cold abscesse) से पृथक् करने पर जब ये (कीटाणु) रंगे नहीं जा सकते तो इनकी उपस्थिति विलायती चूहोंमें इन व्रणोंमें निर्गत पीवको प्रवेश करानेके उपरान्त सिद्ध होती है, क्योंकि ऐसी अवस्थामें ये पुनरपि अपनी रंग-ग्रहण-शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकारके कीटाणुओंको रंगनेके लिए म्यूककी निम्न लिखित रीति काममें आती है।

(क) प्रथमतः कांचके टुकड़े पर विस्तीर्ण बलगम पर दारील बैंजनी (मेथाइल वायलेट) घोल* डाल कर ३७° शतांश पर २४ घण्टे, कमरेके साधारण तापक्रम पर ४८ घण्टे, वा क्वथनांक पर कुछ क्षण तक छोड़ दिया जाता है। तदुपरान्त क्रमशः—

(ख) नैल घोल※ में १ से ५ मिनट तक

(ग) ५°/₀ नोषिकाम्ल (Nitric Acid) में १ मिनट

(घ) ३°/₀ उदहरिकाम्ल (Hydrochloric Acid) में १० सेकंड तक, कांचके टुकड़े (स्लाइड) को रख कर,

(ङ) उसे सिरकोन—मद्यसार‡ से धो दिया जाता है, और तब इसकी परीक्षा की जाती है।

इस परीक्षाके सम्बन्धमें दो बातें ध्यान योग्य हैं—

(एक) यदि यक्ष्मा कीटाणु नहीं पाये जायँ तो इसका मूल्य कुछ भी नहीं होगा।

(दो) यदि ये पाये जायँ तो इसका बहुत बड़ा मूल्य होगा।

(ख) क्षुद्र जन्तुओं में बलग़मको प्रवेश कराना।

बलग़मको १२°/₀ ऐण्टी फौर्मिनके साथ मिला कर केन्द्र गर्वित-चक्रमें घुमाया जाता है। तरलांश को फेंक कर तलछट में उतना ही सैंधव-घोल (Saline) मिलाया जाता है। इस घोल का १ घन शतांशमीटर एक विलायती चूहे की जांघके मध्य भाग में (त्वचा को कीटाणु-विहीन कर) सुई

* १०० घन शतांशमीटर मद्यसार (शुद्ध) में जितना मेथाइल वायलेट घुल सके, घोल दिया जाता है, और तब उसमें १०० घनशतांशमीटर २°/₀ दिव्योल (phenol) मिला दिया जाता है।

※ (नैल + पांशुज नैलिद)

‡ बराबर २ भाग सिरकोन और शुद्ध मद्यसार।

Chinese Medical Journal Nov. 1928

द्वारा प्रवेश कराया जाता है, तथा ४ घन शतांश-मीटर परिविस्तृत-कला में भी प्रवेश कराये जाते हैं।

६ सप्ताहके उपरान्त उस जन्तुको बृहत् ऊर्ध्वगा धमनी (Jugular vein) से रक्त निकाल कर मार दिया जाता है, तथा १५ मिनट तक उसे ५°/₀ कार्बलिकाम्लमें रख कर उसका अंग-व्यच्छेद किया जाता है। सर्व प्रथम जिस जांघ में सुई प्रवेश करायी जाती है, उसकी लसीका ग्रन्थियों की परीक्षा की जाती है। ये ग्रन्थियां आकारमें बढ़ जाती हैं।* इनके चारो ओरके कोषोंमें सूजन हो जाता है, और इनमें उजले रंग का पीब भरा रहता है। इसके उपरान्त उदर विदीर्ण कर निम्नलिखित अवयवों की परीक्षा की जाती है।

उदर-गह्वर—इसमें अपेक्षाकृत अधिक द्रव पाया जाता है।

यकृत—यह आकारमें बढ़ जाता है, इसके तल पर अनेकों गोल, असम, कुछ पीले तथा उजले रंग के दाने पाये जाते हैं, जिनमें बहुधा पीब भरा रहता है।

प्लीहा—अपने आकार का सतगुना वा अठगुना बढ़ा हुआ पाया जाता है। इसके तल पर भिन्न २ आकार के पीले दाने, जिनमें पीब भरा रहता है, दीख पड़ते हैं।

वृक्क—ये रक्त-हीन हो जाते हैं। उपवृक्क आकारमें बड़े तथा नीले रंगके हो जाते हैं।

फुफ्फुस—यक्ष्मागांठोंसे भरा रहता है। वक्षस्थ ग्रन्थियां बृहदाकार हो जाती हैं।

यदि सुई प्रवेश करानेके पूर्व जन्तु की जांघ की ग्रन्थियों को उँगलियोंसे कुचल दिया जाय, तो परीक्षा-फल प्राप्त करनेमें केवल ८ से १० दिन लगेंगे।

* यदि यक्ष्मा-कीटाणु बलगम में वर्तमान रहे तब।

(ग) बलग़म में अल्ब्युमिन (Albumin)।

गहरी खांसीके उपरान्त जो बलगम निकलता है, उसे काँच के एक बर्त्तन में इकट्ठा किया जाता है,* और उसमें चौगुना साधारण सैंधव-घोल (Normal saline) तथा ३°/₀ सिरकाम्ल (Acetic acid) के दो चार बूंद मिला दिये जाते हैं। इस नूतन घोल को भीगे हुए छन्ना कागज़ द्वारा छान लिया जाता है। अब इसे कांच की एक परख नली (test-tube) से रख कर, उसके ऊपरी अंश में दग्धक द्वारा आँच पहुँचायी जाती है, जिससे घोल का अल्ब्युमिन जम कर अंगूठी के रूपमें परख-नलीमें प्रकट होता है। दो एक बूंद शुद्ध सिरकाम्ल मिलाने पर यह और भी प्रत्यक्ष हो जाता है।

इस प्रकार की परीक्षाके सम्बन्धमें डा० रीवियरीके निम्नलिखित अनुभव हैं—

(क) प्रायः सभी फुफ्फुस-रोगियों (जिनमें रोग वर्त्तमान हो) के बलगम ने अल्ब्युमिन रहता है।

(ख) यदि लगातार ३ बार परीक्षा करने पर बलगम में अल्ब्युमिन नहीं मिले, तथा यक्ष्माकीटाणु भी न पाये जायँ, तो ये यक्ष्माकृत वर्त्तमान उपद्रव के विरुद्ध प्रबल प्रमाण माने जायँगे।

(ग) अल्ब्युमिन का पाया जाना संदेहात्मक प्रारम्भिक यक्ष्माके निदानमें सहायता पहुँचाता है।

(घ) जीर्ण फुफ्फुस-यक्ष्मा में इसका पाया जाना रोगके वर्त्तमान आक्रमण का द्योतक है।

(घ) बलग़म के भिन्न २ कोषों की गणना

यह परीक्षा व्यर्थ सी है, क्योंकि, इसके फल किसी ओर निश्चयात्मक नहीं जान पड़ते।

* परीक्षा गर्मियों में बलगम इकट्ठा करने के ६ घण्टे के तथा जाड़े में २४ घण्टे के अन्दर होनी चाहिए, अधिक विलम्ब उपयुक्त नहीं है।

६ रक्त

(क) रक्ताणुओं की गणना।

यक्ष्मा की बहुत प्रारम्भिक अवस्थाओंमें रक्त के अणुओं की संख्यामें कुछ ऐसा परिवर्त्तन नहीं होता कि इनकी गणना पर निर्भर किया जा सके। कुछ रक्त-क्षीणता अवश्य होती है—जिससे रक्ताणुओं की संख्या एवं हीमोग्लोबिन की मात्रा कम हो जाती है—किन्तु इसके अन्य अनेकों कारण हो सकते हैं। श्वेताणुओं की संख्या भी आरम्भ में कम हो जाती है, किन्तु कुछ कालोपरान्त इनकी संख्या बढ़ जाती है, विशेष कर बहु-शक्ति-केन्द्र श्वेताणुओं की संख्या अत्यधिक रहती है।

(ख) रक्तमें यक्ष्मा कीटाणुओं की प्राप्ति।

इसकी रीति ठीक वही है, जो बलग़मसे कीटाणु प्राप्त करने की। किन्तु रक्त में ये कीटाणु बहुधा मिलते नहीं।

(ग) अधःपातन परीक्षा

(Sedimentation Test)

यदि रक्त के साथ (ज्योंही वह शरीर से निर्गत हो) कोई ऐसी वस्तु मिला दी जाय, जो उसे जम कर छिछड़ा बनने नहीं दे, तथा उसे कांच की एक पतली नलीमें रक्खा जाय तो रक्त के रक्ताणु धीरे २ नली के निम्न भाग में बैठने लगेंगे। ये साधारणतः जिस गति से अधःपातित होते हैं; वह स्वस्थ व्यक्तियों के लिए निर्धारित है। किन्तु जब किसी प्रकारके प्रदाहसे, जिसके फलस्वरूप शारीरिक तंतुओं का क्षय होता है, एवं रक्तवारि में अधिक फाइब्रिनोत्पादक का आविर्भाव होता है, रक्ताणुओं के अधः पतन की यह साधारण गति परिवर्तित हो जाती है।

जैसे ज्वर किसी विशेष रोग का संज्ञक नहीं होकर, शरीर के विषाक्त होने की सूचना-स्वरूप एक साधारण प्रतिक्रिया है, उसी प्रकार रक्ताणुओं के अधःपतन की गति विशेष रोग (जैसे केवल यक्ष्मा) की सूचना न दे कर केवल इतना ही बता सकती है कि शरीर प्रदाहक कारणोंसे रुग्न है। हां, बार २ परीक्षा करने पर यह पता अवश्य चल जाता है कि स्वास्थ्य की गति किस ओर है:—और भी बिगड़ रहा है, वा इसमें कुछ सुधार हो रहा है।

रीति।

यद्यपि फहरियस (Fahroeus) ने सन् १९१८ में सर्वप्रथम इसका आविष्कार किया था, अन्य वैज्ञानिकों ने इसे सुधार कर इसकी वर्त्तमान अवस्था पर पहुँचा दिया है। रीति यह है:

१ घन शतांशमीटर का एक स्वच्छ पिपेट,* जो नोक तक एक सौ भागों में विभक्त हो, रबर के एक ऐसे काग पर खड़ा कर दिया जाता है, जिसमें उसकी आधी लम्बाई तक एक पतला छेद रहता है, और जिस (छेद) में पिपेट की नोक आसानी से बैठ सकती है। तदनन्तर सुई वाली पिचकारी (injection Syringe) में $\frac{1}{10}$ घन शतांशमीटर ३.८% सैन्धक नीबूयेत (Sodium citrate)† घोल ले लिया जाता है, और उसी पिचकारी द्वारा रोगी की किसी शिरा से इतना रक्त निकाला जाता है, कि दोनो (रक्त और घोल) मिल कर २ घन शतांशमीटर हो जायँ। इन दोनों को भली भांति मिला दिया जाता है, और यथा सम्भव शीघ्र उपर्युक्त पिपेटमें शून्यांक (जो पिपेट के ऊपरी भाग में अंकित रहता है, तक ढाल दिया जाता है।

अब ज्यों २ रक्ताणु अधःपतित होते जाते हैं, त्यों २ पिपेटमें, ऊपर केवल रक्तवारि रह जाता है और नीचे का अंश सघन होता जाता है। रक्ताणुओं के अधःपतन की यह गति १ घण्टे, २ घण्टे, ६ घन्टे, और २४ घन्टे में नोट की जाती है।

*कांच की लम्बी पतली नली, जिसके दोनों छोर पर मुख खुले हों, तथा जो नीचे की ओर कुछ नुकीली हो, और जिसके बाहरी भागमें यहां वहां आयतन-सूचक चिह्न बनाये हुए हों।

†यह रक्त को जमने नहीं देता।

२ घंटेके अन्तमें जो अंक प्राप्त होता है, साधारणतः उसीकी तुलनाकी जाती है। स्वस्थ व्यक्तियोंमें यह अंक पुरुषोंमें १० से १५ के बीच रहता है और स्त्रियोंमें १५ से २० तक हो सकता है। यक्ष्माके आक्रमणके साथ साथ यह अंक बढ़ता जाता है, तथा रोग-शमन होने पर यह अपनी साधारण अवस्था प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है।

इसमें संदेह नहीं कि अधःपतनकी तीव्र गति अन्य रोगोंकी भी द्योतक हो सकती है, किन्तु जहां प्रारम्भिक यक्ष्माका संदेह हो, तथा अन्य चिह्नों द्वारा इसका पता लगाना कठिन होता हो, यह परीक्षा बहुत सहायता कर सकती है।

(घ) शरीरोद्भूत विष द्वारा परीक्षा
(Auto-inoculation test)

इस परीक्षाका उद्देश्य इस प्रश्नका उत्तर प्राप्त करना है कि शरीरमें आक्रमण-कारी कोई यक्ष्मा-केन्द्र वर्त्तमान है या नहीं। दूसरे शब्दोंमें, शरीर में ऐसा कोई केन्द्र वर्त्तमान है वा नहीं, जहांसे प्रादुर्भूत टुवकुलिन रक्तवारिमें प्रवेश कर सकता है। इस प्रश्नके उत्तरके लिए औपसोनिक संख्या✽ की सहायता ली जाती है।

यह पहले कहा जा चुका है कि रक्तके श्वेताणुओंका एक बड़ा काम कीटाणुओं तथा इनके विषों के भक्षण करना है। अथच यह भी सिद्ध है कि रक्तवारिमें कुछ ऐसे पदार्थ रहते हैं, जो श्वेताणुओं की इस शक्तिको बढ़ा देते हैं। राइट (Wright) ने इन पदार्थोंका नाम औपसोनिन् (Opsonin) रक्खा। यक्ष्माक्रान्त व्यक्तियोंके रक्तमें इनकी कमी हो जाती है, किन्तु यदि कृत्रिम उपायसे कीटाणु वा इनके विष इनके (रोगियोंके) शरीरमें प्रवेश कराये जायँ तो ये औपसोनिन् बढ़ जाते हैं। उदाहरणार्थ टुवकुलिन प्रवेश कराये जाने वा रोगी द्वारा व्यायाम किये जाने पर—जिससे यक्ष्माकेन्द्र से अधिक कीटाणु-विष प्राप्त होता है—औपसोनिन् की मात्रा बढ़ जाती है। रक्तमें इनकी न्यूनाधिकता जाननेका केवल एक उपाय है—इनकी अन्य स्वस्थ व्यक्तियोंके रक्तस्थ ऐसे ही पदार्थोंके साथ तुलना करना। इस तुलना द्वारा प्राप्त संख्याको औपसोनिक संख्या कहते हैं। अर्थात्

$$\frac{\text{रोगीके श्वेताणुओंकी कीटाणु-भक्षक शक्ति}}{\text{स्वस्थ व्यक्तियोंके श्वेताणुओंकी कीटाणु भक्षक शक्ति}} = \text{औपसोनिक संख्या✽}$$

साधारणतः यह संख्या ०·८ से १·२ तक रहती है, किन्तु यक्ष्माक्रान्त रोगियोंमें यह क्षण क्षण घटती बढ़ती है। अस्तु, रोग निदानके लिए इस संख्याकी कई बार परीक्षाकी जाती है। जैसे—

(क) सर्व प्रथम व्यायामके पूर्व,
(ख) †व्यायामके एक घण्टा बाद,
(ग) व्यायामके ६ घण्टे बाद,
(घ) व्यायामके २४ घंटे बाद।

व्यायामसे फुफ्फुसस्थ यक्ष्मा-केन्द्र उत्तेजित हो जाता है, जिससे रक्तमें इतने टुवकुलिनका प्रादुर्भाव होता है कि औपसोनिक-संख्यामें यथेष्ट परिवर्त्तन पाया जाता है।

स्वस्थ व्यक्तियोंमें बार बार परीक्षा करने पर यह संख्या ज्योंकी त्यों बनी रहती है, किन्तु यक्ष्मा रोगियोंमें भिन्न भिन्न परीक्षाके समय यह संख्या बार बार घटती बढ़ती पायी जाती है।

७ ज्वर

तापक्रम द्वारा बहुत सी बातोंका पता चल जाता है। न केवल निदानमें ही सहायता मिलती है, बल्कि रोगीकी वास्तविक अवस्था अथच उसके भविष्यका भी पता लग जाता है।

✽ Opsonic index

✽ इस संख्याके प्राप्त करनेकी विधि कुछ कठिन है। अप्रासंगिक होने तथा विस्तार-भयके कारण इसका वर्णन छोड़ दिया जाता है।

† कुछ देर तक टहलना, वा ज़ोर ज़ोरसे सांस लेना इत्यादि।

तापक्रम किस समय लेना चाहिये? निदान के लिए प्रत्येक दो दो घंटेका माप आवश्यक है, किन्तु व्यायाम, वा भोजन इत्यादिके एक घंटेके उपरान्तका माप लेना उचित है। इस प्रकार तापक्रम लेना यदि असम्भव हो तो कमसे कम प्रत्येक ४ घंटे पर लेना चाहिए-भोरके समय सो कर उठने पर और इसके उपरान्त ५ बजे (भोरा) से ८ बजे संध्याके बीच प्रत्येक ४ घंटे पर।

किस अंगका तापक्रम लेना चाहिए? गुदाका माप सर्व-श्रेष्ठ होता है, यह अन्य अंगोंकेके मापसे कुछ अधिक भी होता है। यदि यह सम्भव नहीं हो तो मुखका तापक्रम लेना चाहिए। यह गुदाके मापसे प्रायः (फैरनहीट) कम रहता है। अन्ततः कक्ष (Axilla) का माप ले सकते हैं। यह सबसे कम होगा। इसके अतिरिक्त पेशाबका भी तापक्रम ले सकते हैं। गुदाका तापक्रम इसलिए सर्व-श्रेष्ठ है कि यह बाहरी अवस्थाओं (वातावरणका शीत, वा ताप) द्वारा प्रभावान्वित नहीं होता। गुदामें तापमापक (Thermometer) को केवल दो मिनट रखना चाहिए, किन्तु मुखमें ५ मिनट अथवा कक्षमें १५ मिनट रखना उचित है। तापमापक पर लिखे हुए मिनट वा "१ मिनट" इत्यादि पर विश्वास करना ठीक नहीं होता।

साधारणतः शरीरका तापक्रम कितना रहता है? यह कोई निश्चित संख्या नहीं होती। व्यक्ति विशेषके साथ साथ यह माप भी बदलता रहता है। निम्नलिखित अवस्थायें, इस मापको बढ़ा देती हैं:—

(क) भोजन

(ख) व्यायाम

(ग) गर्म ऋतु वा जल वायु,

(घ) कोष्ठ-बद्धता

(ङ) स्त्रियोंका मासिक स्राव

(च) मानसिक चञ्चलता

निम्न लिखित अवस्थायें इसको कम कर देती हैं।

(क) शीतकाल वा शीतल जल-वायु।

(ख) स्नान (ठंढे वा गर्म जल से)

(ग) स्त्रियोंके ऋतु-स्रावके उपरान्त,

(घ) मानसिक चञ्चलता,

(ङ) अतिसार।

प्रारम्भिक यक्ष्मामें तापक्रम।

यक्ष्माका सांकेतिक कोई विशेष प्रकार का तापक्रम नहीं होता, तो भी निम्नलिखित विशेषतायें इसके पक्ष में हैं—

(क) अस्थिरता—क्षणिक एवं तुच्छ कारण, जिससे व्यक्तियोंका कुछ भी अनिष्ट नहीं होता, यक्ष्मा रोगियों के तापक्रम को बढ़ा देते हैं। उदाहरणार्थ, लिखना पढ़ना, ताश खेलना, मानसिक खेद, वा बिलजीकी चमकसे भी इन्हें ज्वर हो आता है। बातचीत करने से तो यह और भी बढ़ जाता है।

(ख) भोरके समय खूब कम तापक्रम (गुदा का ९७°) तथा सारा दिन विश्राम करते रहने पर भी संध्या समय साधारण मापसे कुछ अधिक हो जाना, अथच सब मिला कर साधारण मापसे कुछ अधिक ही होना।

(ग) नाड़ीकी गति ज्वरके अनुसार न होकर कुछ अधिक रहना।

(घ) ज्वर रहने पर भी भूख मालूम होना।

यद्यपि संध्या समय स्वस्थ व्यक्तिओंका तापक्रम भी कुछ बढ़ जाता है, तथापि यदि किसी रोगीका तापक्रम भोरके समय ९६·५ और संध्या समय ९९·८ हो तो यह निश्चित है, कि उसे कमसे कम ३·३° का ज्वर आता है।

व्यायामके उपरान्त तापक्रम

(यक्ष्मा की ज्वर-परीक्षा)

साधारणतः स्वस्थ व्यक्तियोंका तापक्रम एक घण्टेमें दो मील चलने पर १°, एक घण्टेमें ४ मील

चलने पर २·१° तथा ६ मील चलने पर ४·३° बढ़ जाता है। किन्तु यह आधिक्य यथेष्ट विश्रामके उपरान्त घटकर साधारण अवस्थामें आ जाता है। दूसरे पक्षमें यक्ष्मा रोगियोंका तापक्रम व्यायाम द्वारा तो बढ़ता ही है, साथ ही साथ यक्ष्माकेन्द्रसे आविर्भूत कीटाणु-विषसे भी इसकी वृद्धि होती है, जो कभी कभी भयावह हो जाती है। प्रश्न यह है कि किस कारणसे तापक्रमकी कितनी वृद्धि हुई, इसका पता कैसे चल सकता है। इसका उपाय है कि रोगीके साथ साथ एक और स्वस्थ व्यक्तिको भी चलाया जाय। दोनोंके तापक्रमकी वृद्धियोंका अन्तर यह सूचित करेगा कि रोगोत्पन्न तापक्रम तापक्रम कितना बढ़ गया। वास्तवमें रोगीको तापक्रम स्वस्थ व्यक्तिके तापक्रमसे कुछ बढ़ा हुआ पाया जायगा। किन्तु यह परीक्षा अनुचित है, क्योंकि किसी प्रकारका व्यायाम यक्ष्मा रोगियोंके लिए भयावह है। व्यायामके उपरान्त यक्ष्मा रोगियोंका तापक्रम शीघ्र ही अपनी साधारण अवस्था पर नहीं आ जाता, कभी कभी तो ऐसा होनेमें दो दिन तक लग जाते हैं।

जहाज

[ले० श्री जगपति चतुर्वेदी]

यदि आजसे कुछ शताब्दियों पूर्व कोई जहाज का नाम लेता तो उसका अभिप्राय साधारण नदी-तालाबोंमें चलने वाली नौकाओंसे कई गुनी बड़ी काष्ठनिर्मित उस नौकासे होता जो कुछ सौ यात्रियोंको लेकर समुद्रमें चल सकती और उसका संचालन डाँड़ों वा पालोंसे होता परन्तु जब हम जहाजकी चर्चा करते हैं तो इससे हमारा अभिप्राय वाष्प चालित दानवाकार उन लौह पोतों से होता है जिन पर सहस्रोंकी संख्यामें यात्री सहज ही ढोए जाते हैं। नाम तो वही है परन्तु वास्तविक वस्तुमें घोर परिवर्तन उपस्थित हो गया है। इस परिवर्तनके कारण आधुनिक आविष्कार हैं। हम यहाँ पर इसी परिवर्तनकी कथाका उल्लेख करेंगे।

जब प्राचीन कालमें लोग समुद्रोंकी यात्रा करना चाहते थे तो उन्हें डाँड या पालोंकी शक्तिसे चलने वाले जहाजोंका आश्रय लेना पड़ता था। इन जहाजोंमें डाँड़से खेए जाने वाले जहाजोंका तो सदा क्षब्ध सागरोंमें चल सकना बड़ा ही कठिन था और इसका वर्णन बहुत प्राचीन कालके जहाज के साथ ही मिलता है परन्तु पाल द्वारा चलने वाले जहाज वाष्पपोतोंके आगमन तक प्रचलित रहे। पालदार जहाजों द्वारा यात्रा की तो जाती परन्तु वायुका प्रवाह अनुकूल दिशामें होने पर ही जहाज प्रस्थान कर सकता। यदि वायु प्रतिकूल होती तो उसे अनुकूल प्रवाहित होने समय तक सभी यात्रियों की प्रतीक्षा करनी पड़ती।

इस कठिनाईको दूर करनेके लिए मनुष्य इस चिन्तामें था कि उसे जहाजको ले सकने वाली कोई ऐसी शक्ति मिल जाय जिसको वह वायुके प्रवाहका विचार न कर इच्छित समय उपयोगमें लाकर मनमानी यात्रा कर सके। इसके लिए कुछ लोगों ने डाँड़की भाँति काममें आने वाला पनचक्की के पहिएके आकारका एक चक्र जिसे घुमानेसे पानी पीछे फेंका जाता और जहाज आगे बढ़ सकता। यह नौचालनी चक्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ। जब इस तरहकी एक युक्ति निकल आई तो कुछ लोगों ने डांड़की सहायतासे इसे घुमा कर जहाज खेनेका प्रयत्न किया। आगमन पर इस घोड़ेकी जगह वाष्प को देना स्वाभाविक ही बात थी।

यह कहना तो बड़ा कठिन है कि किस व्यक्ति ने पहले पहल वाष्प पोतका आविष्कार किया परंतु १७०७ ई० में फ्रांस देशके डेनिस पेपिन नामक आविष्कारकका एक नौचालनी चक्रसे चालित नौकाको वाष्प-इंजिनसे चलानेका वर्णन मिलता है। इसलिए पेपिन ही वाष्पपोतका प्रथम आविष्कारक समझा जा सकता है।

पेपिन फ्रांस देशका निवासी था किन्तु जर्मनी में जाकर बस गया था। वहीं पर उसने वाष्प-इंजिन से डाँड़ खेई जाने वाली एक नौका तैयारकी परन्तु उसको पूछनेवाला कोई नहीं मिला। उलटे मल्लाहों ने वाष्प-नौकाके कारण अपनी जीविका जानेके भयसे उस नौकाको तोड़ डाला और पेपिन पर भी आक्रमण किया। किसी प्रकार पेपिन अपना प्राण बचा कर भाग सका और इंग्लैण्डमें जाकर शरण ली। इस कारण उसके प्रयत्नका अंत हुआ। इसके तीन वर्ष पश्चात् निराशामें पड़े पड़े उसकी मृत्यु भी हो गई।

पेपिनके प्रयत्नके २९ वर्ष बाद इंग्लैंडमें जोनेथन हल नामके व्यक्तिने एक वाष्प नौकाको पेटेंट कराया। परन्तु उसने कोई वाष्प नौका सचमुच तैयारकी वा नहीं इसका प्रमाण नहीं मिलता। इसके बाद अमेरिकामें विलियम हेनरी और जोन फिच नामके दो व्यक्तियों ने और फ्रांसमें मार्किस डी जाफरे नामके व्यक्ति ने वाष्प-नौका बनानेमें सफलता प्राप्त की। इन आविष्कारकोंमें अमेरिका वालोंको तो उन की सरकारने मदद दी और उन्हें अधिक सफलता मिल सकी परन्तु फ्रांसकी सरकारने कोई सहायता

न की। इस कारण निराश होकर मार्किवस ने अपने सब प्रयत्नोंको छोड़ दिया।

स्काटलैंडमें पेट्रिक मिलर नामके एक व्यक्ति ने ने १७८७ ई० में एक वाष्प-नौका बनानेकी योजनाकी उसकी इस योजनाको विलियम सिमिंग्टन ने पूरा कर एक वाष्प-नौका तैयार की जो सन् १७८६ ई० में प्रति घंटे ७ मीलकी गतिसे चलाई जा सकी। परंतु मिलरको इससे संतोष न हुआ और उसने इस ओरसे ध्यान हटा लिया।

इसके दस वर्ष पश्चात् सिमिंग्टनको एक दूसरे व्यक्तिने वाष्पनौका बनानेका आदेश दिया जो नहर में चलाई जा सके। इस व्यक्तिका नाम लार्ड डंडाज् था। इसलिए जब सन् १८०२ ई० वाष्प नौका तैयार हो सकी तो उसके स्वामीके नाम पर उसका नाम चारलोटी डंडाज़ रक्खा गया।

यह वाष्प नौका भली भाँति चलाई जा सकी किन्तु नहरके मालिकोंको भय हुआ कि इसके नौचालनी चक्रके हिलकोरेसे किनारे कट जायेंगे इसलिए उन लोगोंने इसके चलानेका निषेध कर दिया। सिमिंग्टनके प्रयत्नके पश्चात् हेनरी बेल नाम के एक आदमी ने वाष्प नौका बना कर उस पर यात्रियोंके ढोनेका प्रयत्न किया। उसकी पहली वाष्प नौका कमेट नामकी बनी थी। पहले तो उसे बहुत घाटा रहा परन्तु कई वर्ष पीछे इस ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ और बेलकी कई वाष्प नौकाएँ चलने लगीं।

इंग्लैंड वा योरपके देशोंकी अपेक्षा अमेरिकामें नदियों और झीलोंकी संख्या अधिक है इसलिए वहां इनमें चलने वाली वाष्प नौकाओंका अधिक प्रचार हो सकता था। इसके लिए राबर्ट फलटन ने फ्रांस और इङ्गलैंडके कारीगरोंसे सीख कर कई वाष्प नौकाओंका निर्माण किया। उसकी पहली वाष्प नौका क्लेरमांट नामकी थी जो १८०७ ई० में बनी थी। इस प्रकार उद्योग होनेके कारण अमेरिका में सन् १८२३ ई० में ३०० वाष्प नौकाएँ नदियों और झीलोंमें दौड़ लगाने लगी थीं।

जब इन वाष्प नौकाओंसे यह प्रकट हो गया कि नदियों और झीलोंमें वाष्प शक्तिका भली भांति उपयोग हो सकता है तो लोगोंका ध्यान वाष्पशक्ति से चालित पोतों द्वारा समुद्रोंके पार करनेकी ओर गया। इस कार्यके लिए पहले पहल समुद्र पार करनेके लिए लोग केवल वाष्प-शक्ति पर ही भरोसा नहीं कर सकते थे इसलिए जब सवन्ना नामका जहाज वाष्प-इञ्जिन लगा होकर अमेरिकासे इङ्गलैंडके लिए रवाना हुआ तो उस पर पाल भी लगे हुए थे। इतने लम्बे मार्गकी यह ३० दिनकी यात्रामें केवल ८० घंटे तक ही वाष्प इंजिनसे चलाया गया था।

सब सवन्ना जहाज ने अटलांटिक महासागर पार करनेमें सफलता प्राप्तकी तो लोगों ने देखा कि महासागरमें भी वाष्प इञ्जिन चालित पोत चल सकते हैं इस कारण इसे बिलकुल वाष्प-शक्तिसे पार करनेके लिए दो जहाजों ने प्रयत्न किया। इनमें एक ग्रेट वेस्टर्न बड़ा जहाज था किन्तु दूसरा सिरियस बहुत छोटा था। इन दोनोंने सन् १८३८ ई० में अकेले वाष्प-शक्तिसे अटलांटिक महासागर पार करनेमें सफलता प्राप्त की। इस यात्रामें सिरियस को सत्रह दिन और ग्रेट वेस्टर्नको पन्द्रह दिन लगे थे। इन दोनों जहाजोंको यात्रासे यह सिद्ध हो गया कि महासागरोंको पार करनेके लिए वाष्प इञ्जिनका भली भांति उपयोग हो सकता है। अतएव इनके बाद वाष्प पोतोंकी संख्या बराबर बढ़ने लगी।

जब समुद्र-यात्राके लिए डांड़ वा पालकी जगह वाष्प-शक्तिका उपयोग किया जाने लगा तो मनुष्य की एक बहुत बड़ी कठिनाई दूर हो गई। उसका मनमानी दिशामें अपने जहाजोंका ले जाना सम्भव हो गया परन्तु यदि वाष्प इञ्जिनको खेनेके काममें लाकर भी जहाजोंके निर्माणमें बराबर लकड़ीका ही उपयोग होता रहता तो समुद्र-यात्राकी समस्या पूर्ण रूपसे तै न हो पाती। आज ऐसे विशाल काल पोतों का कहीं नाम ही न होता। बड़े बड़े जहाजों में बड़ा तनाव और दबाव होता है। यदि लकड़ीका जहाज एक निश्चित

सीमासे अधिक बड़ा बनाया जाय तो वह तनाव और दबावका सहन नहीं कर सकता। इस कठिनाईसे बचनेके लिए जहाज बनाने वालों का ध्यान लकड़ी के स्थान पर लोहे का उपयोग करनेकी ओर गया। जहाज को लोहेका बनाने की बात सुन कर लोगों को बड़ा विस्मय हो सकता था क्योंकि लोहे और पत्थर जैसी भारी वस्तुएँ पानी में कभी भी तैर नहीं सकतीं फिर भी आज बड़े से बड़े आकार लाखों मन बोझ लादे नित्य महासागरों को पार करते दिखाई पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि यदि एक ही आयतन या विस्तारकी वस्तु उतने ही आयतनके पानी से भारमें कम हो तो वह वस्तु पानी तैर सकेगी। लकड़ी के टुकड़ेमें यही बात होती है जिससे वह तैरता रहता है और लोहे के टुकड़े में यह बात न होने से वह तैरता नहीं रह सकता परन्तु यही लोहा जब पत्तरके रूपमें जहाज बनानेमें योग देता है तो जहाज लोहेका होने पर भी बीचमें खाली होनेके कारण उतने ही आयतनके पानीसे बहुत ही हलका होता है जिससे उस पर बहुत अधिक बोझ लाद कर भी उसे तैरता रक्खा जा सकता है।

सबसे पहली लोहे नौका सन् १८१७ ई० में टामस विलसन नामके एक कारीगर ने बनाई थी। इसका नाम वल्कन रक्खा गया परन्तु इसमें वाष्प इञ्जिन नहीं लगा हुआ था। लोह निर्मित सर्व प्रथम वाष्प नौका होनेका गौरव आरन मैनबाई नामके एक व्यक्तिकी बनाई इसी नामकी नौका को है जो १८२१ ई० में बनी थी। आरन मैन नदीमें चलानेके बनी थी। यह इंग्लिश चेनल पार कर इङ्गलैंडसे फ्रांस जा सकी और सीन नदीमें कई वर्ष तक चलती रही।

इस वाष्प नौकाके बाद विशेषकर समुद्रमें चलनेके लिए सर्वप्रथम लोह-पोत लेडी लैसंडाउन नामका बना। इसे इङ्गलैंड और आयलैंडके बीच समुद्र में चलाया गया। इस लोहे पोत के पश्चात ग्रेट ब्रिटेन नामका प्रसिद्ध पोत बना। वास्तव में लोहेका बना यही सर्वप्रथम बड़ा वाष्पपोत था। यह जहाज सन् १८४३ ई० में तैयार हुआ था।

इस जहाजके पहले बने जहाजों को भाप की शक्तिसे चलानेके लिए नौचालनी चक्र को काममें लाते थे परन्तु उससे जहाज चलाने में बड़ी ही असुविधा होती थी। एक तो इस चक्र के पानी के ऊपर दिखाई पड़ने से शत्रु का गोला इस पर प्रहार कर जहाज को अपंगु कर सकता था, दूसरे तूफान के समय एक ओर के चक्र के नीचे दब जाने और दूसरे चक्रके लहरके ऊपर लटक जानेसे जहाज का चलाना बड़ा कठिन हो जाता। इस कठिनाई को दूर करनेके लिए पंखेके आकार का एक चक्र बनाया गया था जो जहाजके पीछे पेंदेमें चलकर जहाज को आगे बढ़ा सकता था। यह चक्र स्क्रू प्रपेलक वा पंखाकृति यंत्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार का यंत्र ग्रेट ब्रिटेन जहाजमें भी लगा था। इसके बादके बड़े बड़े सभी जहाजोंमें इसी यंत्र का उपयोग होने लगा।

जिस समय ग्रेट ब्रिटेन जहाज लोहे का बनाया गया उस समय लोग इस परिवर्तनके घोर विरोधी थे लेकिन एक बार इस जहाज को एक दुर्घटना का सामना करना पड़ा जिसमें लोहे की उपयोगिता सिद्ध हुई। समुद्र में चलना प्रारम्भ करने के तीन वर्ष पश्चात् एक बार यह उथले पानी में जमीन में फँस गया। वहाँ ११ मास तक पड़ा रह कर भयंकर तूफ़ानों का सामना करता रहा। ज्वारके कारण यह लगभग जलमग्न सा भी रहा परन्तु जब इतनी अवधि के बाद यह फिर तैराया जा सका तो यह सुरक्षित पाया गया।

इस घटना के कारण लोगों को लोह पोतों की उपयोगिता स्पष्ट मालूम हो गई। लोह पोतों की यों भी विशेष आवश्यकता थी। वाष्प इंजिन का उपयोग होने पर उसके कारण उत्पन्न झकझोरे का सामना काष्ठ निर्मित्त जहाज नहीं कर सकते थे। इसके विपरीत लोहे का जहाज काष्ठ निर्मित्त जहाज

से भारमें कम होकर भी अधिक पुष्ट हो सकता था। साथ ही जहाँ काष्ठ निर्मित जहाज केवल अपने भार के बराबर बोझ लाद सकता था वहाँ लौह पोत अपने भारसे दुगुना बोझ लाद कर द्रुतगति से चल सकता था।

जब १९ वीं शताब्दीके मध्य तक इन सब बातों का ज्ञान हो सका तो जहाज़ों के निर्माण में काठ के स्थान पर लोहे ने अपना सिक्का जमा लिया। फलतः बड़े बड़े लौह पोत बनाए जाने लगे। इन पोतों के आकार और गति में उन्नति होने के साथ साथ यात्रियों को सुख पहुँचाने की सामग्री जुटाने का इतना प्रयत्न हुआ कि समुद्र-यात्राके समय लोग घर से दूर न होने का अनुभव करने लगे।

१९ वीं शताब्दी के मध्य से लेकर २० वीं शताब्दी प्रारम्भ होने के दो वर्ष पूर्व तक बने इंग्लैंड के ओशेनिक, सिटी आफ़ पेरिस, सिटी आफ़ न्यूयार्क, कैम्पेनिया और लुसेनिया आदि दानवाकार लौह पोतों की कथा बहुत स्थान घेर सकती है। इनमें कैम्पेनिया और लुसेनिया सन् १८९२ ई० से समुद्र में चलना प्रारम्भ कर सन् १८९८ ई० तक जिस ठाटबाट और तीव्रगतिके साथ यात्रियों को वहन करते रहे उसकी समता करने वाला संसार भरमें कोई भी वाष्प पोत न था परन्तु जब जर्मनी वालों ने कैसर बिलहेल्म डर ग्रासी नाम का अपना पोत सन् १८९८ ई० में तैयार किया तो यह उनसे भी तीव्रगतिसे यात्रा कर इंग्लैंडके वाष्प पोतों को नीचा दिखा सका। इस जहाज के बाद जर्मनी वालों ने और भी तेज़ जहाज बनाए।

जिस समय लौह पोतों से तीव्र गति में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने के लिए प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी उसी समय वाष्प-इंजिन में युगान्तर उपस्थित करने वाला एक आविष्कार सफल हो सका। यह आविष्कार वाष्प चक्र इंजिन था जिसके आविष्कार का श्रेय सर चार्ल्स ए० पार्सन को है। सिलिंडर और पिस्टन वाले इंजिन में पिस्टन की ऊपर-नीचे की गति से काम लेनेके लिए पिस्टन को में एक संयोजक दंड रखते थे फिर उसे एक दूसरे बक्राकार धुरदंडसे जोड़ कर पहिएसे जोड़ते थे। इस प्रकार पहिए में चक्कर पैदा करने के लिए बीचमें शक्ति का ह्रास होता था। पारसन ने विचार किया कि बीच में इतने यंत्रों से काम न लेकर वाष्प शक्ति सीधे पहिए पर पहुँच कर ही काम कर सके तो उससे अधिक काम निकल सके। इसके लिए उसने पनचक्की की भाँति पहिए के किनारे छोटी छोटी चौड़ी पट्टियाँ लगाकर उन्हीं पर वाष्प-धारा बहा कर पहिए के घुमाने की विधि निकाली। पारसन का यही इंजिन वाष्प चक्र इञ्जिन नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पारसन का यह इञ्जिन वाष्प-इञ्जिन में युगान्तर उपस्थित करने वाला था। पहले तो इसकी गति इतनी अधिक तीव्र हो सकी कि उसकी तीव्रता ही एक बाधा प्रतीत हुई और उससे काम न निकल सका परन्तु पीछे उसकी गति नियंत्रित कर इससे बड़े काम निकाले जाने लगे। जहाजों में तो इसने ऐसा परिवर्तन उपस्थित कर दिया कि उसका कुछ ठिकाना ही नहीं। बड़े से बड़े जहाजों में इसी इञ्जिन का उपयोग अत्यंत आवश्यक हो गया।

इस इञ्जिन से अटलांटिक महासागर में चलने वाला सर्व प्रथम जहाज बर्जिनिया था जो १९०५ ई० में तैयार हुआ।

जर्मनी के जहाजों के कुछ दिन तक संसार में सबसे तीव्र रहने के पश्चात् इङ्गलैंड ने उनका उत्तर देने के लिए लुसोटेविया और मारीटेनिया नाम के विश्वविख्यात जहाजों को बनवाया। इन जहाजों को बनवाने वाली ह्वाइट स्टार कम्पनी थी। उसे इङ्गलैंड की सरकार ने इनके लिए २० लाख पौंड (लगभग ३ करोड़ रुपये) अगाऊ दिया था। इन में से प्रत्येक के बनाने में बीस बीस लाख पौंड व्यय हुए थे। इन जहाजों का वर्णन पढ़कर साधारण व्यक्ति उस पर सहज ही विश्वास नहीं कर

सकता। इसमें भोजनशाला, बैठक, वस्त्र पहनने का स्थान, शयनागार आदि सभी पृथक् पृथक् और सुसज्जित रक्खे गए। यात्रियों के लिए जहाज की छत पर ही खेल का मैदान भी बनाया गया। जहाज पर ही पुस्तकालय होने के अतिरिक्त बेतार के तार से आए संदेशों को मुद्रित कर नित्य एक दैनिक पत्र निकालने की भी व्यवस्था हुई। तात्पर्य यह कि मनुष्य आधुनिक विज्ञान और आविष्कार के बल पर सुख पहुँचाने की जो कुछ भी सामग्री उपस्थित कर सकता था वह इन जहाजों पर की गई। इन जहाजों में लुसीटेनिया तो गत महायुद्धके समय एक जर्मनी की पनडुब्बी द्वारा सभी यात्रियों के साथ पानी में डुबा दिया गया। परन्तु मारीटेनिया अब तक भी अपनी यात्रा जारी रक्खे है।

महायुद्ध समाप्त होने के समय जर्मनी वालों के पास संसार का एक सबसे लम्बा जहाज था। उसे ह्वाइट स्टार कम्पनी ने अपने डूबे हुए जहाज की क्षति पूर्ति के लिए ले लिया। उसी का नाम बदल कर मैजेस्टिक रख दिया गया। यह अब भी संसार में सबसे लम्बा जहाज है। इस पर कुल ५००० यात्री बैठाए जा सकते हैं जिनको आराम पहुँचाने के लिए सब कुछ प्रबंध रहता है। आज से कुछ दिनों पूर्व ह्वाइट स्टार कम्पनी का मारीटेनिया जहाज संसार भर में सबसे अधिक तीव्र था परन्तु कुछ दिनो हुए जर्मनी वालों के ब्रिमेन नामके जहाज ने अधिक तीव्र गति से चलने में बाजी मार ली।

भारतमें जल शक्तिका उपयोग

[ले० श्री मनोहर शान्ता राम देसाई एम० एस०-सी०]

आदिम कालके मनुष्यकी जब आवश्यकतायें बढ़ने लगीं तो उसने अपने मस्तिष्कसे काम लेनेकी चेष्टा आरम्भ की। प्रारम्भ में तो फलमूल और जंगली जानवरोंका मांस ही उसका मुख्य आधार था और ताप और शीतसे रक्षा पानेके लिये उसने अपने मारे हुए जानवरों की खालोंका उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। अपनी नग्नता ढकनेके लिये उसके पास और कोई साधन नहीं था। मस्तिष्क और बुद्धिके स्वाभाविक विकासके कारण तथा आवश्यकता अनुभव करने पर पहले तो उसने साधारण चीजोंको ही उन्नत करना आरम्भ किया। आदिम कालमें किसी चीज़को ढोनेके लिये सम्भवतः एक तख्ते पर उस वस्तुको रख कर एक बैल बांध कर घसीटा जाता था पर किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति ने पहिये का आविष्कार किया। उस महान व्यक्तिका नाम तो हम लोग जान ही नहीं सकते पर इसमें सन्देह नहीं कि पहियेका आविष्कार मानव इतिहासमें बहुत ही महत्व पूर्ण घटना थी। आजकल तो जीवन के प्रत्येक पहलू पर पहियेका प्रभाव है। आज यदि यह संसारसे उठा लिया जाय तो आधुनिक सभ्यताका दिवाला पिट जाय। अस्तु।

पहिया तो मिल गया। अब उसकी गाड़ी बना कर मनुष्य ने देखा कि कई काम आसानीसे हो सकते हैं। धीरे धीरे पालतू जानवर उस गाड़ीमें जोते जाने लगे। मनुष्य ने प्रकृतिके राज्यकी दूसरी प्रजा पर अपना आधिपत्य जमाना प्रारम्भ किया। परन्तु जैसे जैसे मनुष्यका पाशविक बल कम हुआ उसकी बुद्धि बढ़ती गई। कुटुम्बका आरम्भ होने से तथा नाज पीस कर खानेकी आदत हो जानेसे उसे यह प्रतीत हुआ कि यदि यह सब काम बिना अधिक व्यय किये या परिश्रम उठाये हो जाय तो अच्छा हो।

उसने एक दिन देखा कि आंधी आई। वायुके प्रचण्ड वेगमें छप्पर उड़ गये, पेड़ गिर गये और भारी भारी वस्तुएँ हिल गईं। मनुष्य ने सोचा वायुमें शक्ति है, क्या इससे काम नहीं लिया जा सकता? थोड़े ही समय पश्चात् कदाचित उसका ध्यान पास ही बहते हुए पहाड़ी झरने पर गया। उसके घरके पास ही एक छोटा सा जल प्रपात था। पहाड़से निकल कर पानीकी एक रेखा कल कल शब्द करती हुई नीचे गिरती थी और नीचे कंकरीली ज़मीन पर गिर कर आगे बढ़ जाती थी। धाराके पथके बीच मनुष्य ने एक लकड़ी रक्खी। वह बड़े वेगसे धारासे आघात पा नीचे गिर पड़ी। यहाँ भी इस प्रपातमें शक्ति थी। इसका भी उपयोग होना चाहिये।

सोचकर मनुष्य ने बच्चोंके खेलनेकी फिरकी की तरह एक हलका पहिया बनाया। फिर उसमें पाल लगा दिये। जब वायुके झोके आते तो उस पहिये को फिराते थे। प्रकृतिकी गुलामीकी जंज़ीरका पहला कुंदा बना। धीरे धीरे पहाड़ी झरनेको भी काम करना पड़ा। प्रपात एक पहिये पर गिरता था और पहिया चलता था। इस चालसे कई काम लिये जा सकते थे और उनमें पहला और सबसे आवश्यक था नाज पीसना। धीरे धीरे पानीके चक्रका उपयोग बढ़ने लगा, यहां तक कि सूत कातने तकमें इस शक्तिसे काम लिया जाने लगा।

साधारणतः जल शक्तिका उपयोग करनेके लिये दो प्रकारके पहियोंसे काम लिया जाता है और कौनसे प्रकारके पहियेसे काम लिया जाय यह इस बात पर निर्भर है कि जल प्रपात ऊँचा है या नीचा। एकको पेल्टन पहिया कहते हैं। एक लोहेके मज़बूत पहियेमें विशेष प्रकारकी कटोरियां लगी रहती हैं। जलकी धारा जब इन पर पड़ती है तो आघातके कारण पहिया घूमने लगता है। इस घूमनेका उपयोग बहुधा बिजली उत्पन्न करनेमें किया जाता है। अर्थात् इस पहियेसे बिजली उत्पन्न करनेका डायनमो चलाया जाता है।

जब प्रपातकी ऊँचाई कम होती है तो टरबाइन (Turbine) नामका एक यन्त्र काममें लाया जाता है। इसका सिद्धान्त ऊपर लिखे हुए पहिये के सिद्धान्तसे भिन्न है।

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं इस जलशक्ति का उपयोग विद्युत उत्पन्न करनेमें होता है। यह भी विचारणीय है कि विद्युत उत्पन्न करनेसे और विशेष कर इस रीतिसे उत्पन्न करनेसे क्या लाभ ?

साधारणतः विद्युतोत्पादनके लिये डायनमोंको एक तैल इञ्जिन या वाष्प इञ्जिनसे चलाया जाता है पर जल शक्ति द्वारा चलाना इन सब युक्तियोंसे सस्ता होता है क्योंकि शक्ति तो धाराके ऊपरसे गिरनेके कारण मिलती है और इसमें मनुष्यको कम ही व्यय करना होता है। दूसरे धुआँ इत्यादिका भी बचाव रहता है। विद्युत् उत्पन्न करनेका यह प्रयोजन है कि प्रपात तो एक जगह है और इस शक्तिसे काम लेना है दस जगह और वह भी सैकड़ों मील दूर। यह विद्युत् शक्ति द्वारा ही सम्भव है। इसको सैकड़ों मील ले जाना साधारण सी बात है। दूसरे विद्युत् शक्ति लगभग सब काम कर सकती है। प्रकाश, ताप, मोटर चलाना, रेल चलाना, भट्टी गरम करना, मिलमें सूत कातना और कपड़ा बनाना यह सब इसके द्वारा सम्भव है।

जबसे जलीय विद्युतका भारतमें उपयोग प्रारंभ हुआ है, लोगोंको आशा होने लगी है कि भारतमें इस प्रथाका बहुत विस्तार होगा। भारतमें इसके उत्पादनमें सुविधा हो सो बात नहीं पर यहां तो इसकी नितान्त आवश्यकता है। औद्योगिक उन्नति का मूल मन्त्र सस्ती शक्तिका मिलना है और सस्ती शक्ति मिलनेकी इससे अच्छी विधि कोई नहीं। कोयला तो भारतवर्षमें अधिक नहीं होता और खानें बम्बई, अहमदाबाद इत्यादि औद्योगिक केन्द्रों से बहुत दूर हैं, इसलिये कोयला बहुत महँगा पड़ता है।

अब सोचना चाहिये कि भारतमें कहाँ यह उत्पादन हो सकता है ? एक ऐसे स्थलकी आवश्यकता है जहाँ कि जल या तो बारहों महीने बहता हो या बरसात का पानी इकट्ठा किया जा सके। दूसरे पानीको ऊपरसे नीचे गिरना चाहिये। ध्यान देनेसे प्रगट होगा कि बम्बई प्रान्तके पश्चिमी घाटों में यह सम्भव है। बम्बई में लोणवाला खपोली और खेरजत इत्यादिके आसपास ऐसे यन्त्र हैं। टाटा कम्पनी इनका संचालन करती है। लोणवालाके तीन तालाबोंमें बरसातका विपुल जल एकत्रित किया जाता है। वहां से नहर द्वारा एक विशेष कोठार तक ले जाया जाता है। यन्त्र अर्थात् पहिया पहाड़के नीचे खापोली नामक गांवके पास है। पानीके कोठार से बड़े बड़े छः या सात नलों द्वारा पानी ले जाया जाता है। कुल उतार १७२५ फ़ीट है। पानी अपने वेगके कारण एक पहियेको और उसके द्वारा एक डायनमोको चलाता है और निकल एक नहर द्वारा खेतों इत्यादिमें बट जाता है। पहले पहल यह योजना ३०००० अश्व-बलके लिये सोची गयी थी पर धीरे धीरे इसको अधिक विस्तृत करना पड़ा। यहांसे बिजली बड़े भारी दबाव पर विशाल खम्भों पर स्थित तांबेके तारोंमें होकर बम्बई जाती है जहां कि अधिकांश मिल इसका उपयोग करती हैं। नगरमें भी यही काम आती है। जी० आई० पी० रेलवेकी बिजलीकी रेल इसी बिजलीसे चलती है।. बढ़ते बढ़ते कुछ दिनोंमें यह कारखाना १६०००० अश्व बल उत्पन्न कर सकेगा। कितने विशाल रूपसे प्रकृतिको जोत कर उससे काम लिया जाता है यह खापोली पर स्थित यन्त्रशाला देखनेसे ही पता चलता है। बिजलीका नियन्त्रण सब तारों द्वारा जरासा बटन दबानेसे होता है। ६० मील दूर बैठ कर एक मनुष्य बम्बईके सारे नगरको काबूमें कर सकता है। टाटा कम्पनी कोयना नदी पर एक और उत्पादक लगानेकी चेष्टा कर रही है। इस योजनाका खर्च लगभग ८ करोड़ १० लाख होगा।

मैसूर

भारतवर्षमें ही नहीं परन्तु समस्त पूर्वी देशोंमें पहले पहल इस प्रकारकी योजना मैसूर रियासत में कावेरी नदी पर प्रस्तुतकी गई थी। इसका उद्देश था कोलारमें सोनेकी खानमें काम करनेके लिये शक्ति उत्पादन करना। शिवसुन्दरम नामक स्थान पर प्रपात है और सोनेकी खान ६२ मील दूर है। बिजली बंगलोरको भी जो ५८ मील दूर है भेजी जाती है। यहां २५००० अश्वबल उत्पन्न होता है। शक्ति की आवश्यकता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है पर कावेरीसे इससे अधिक शक्ति मिलनेकी आशा नहीं है अतः अन्य स्थानों पर बिजलीघर बनानेकी चेष्टाकी जा रही है।

काश्मीर

काश्मीरमें भी हाल हीमें कई योजनाएं हाथमें ली गई हैं। इसमें बारामुल्लाके निकट झेलमके जलका उपयोग किया गया है। ५५ मील दूर श्रीनगरको यहांसे बिजली भेजी जाती है। काश्मीर दरबारकी रेशमकी फेक्टरी इसी शक्तिसे चलती है और आवश्यक ताप भी इसीसे लिया जाता है। राज्यके कारीगर चीज़ें बनानेमें अब बिजलीके यन्त्रों का अधिकाधिक उपयोग करते जाते हैं।

संयुक्त प्रान्त

हाल ही में संयुक्त प्रान्तमें बिजली गङ्गाकी नहर से उत्पन्नकी गई है और प्रान्तके कुछ हिस्सोंमें भेजी गई है। हाथरस, बुलन्दर शहर इत्यादि शहर यहींसे बिजली लेंगे। इस काममें कुल १०४१७०६१) रुपये व्यय होचुके हैं और ३४, ३८, ६७६ रुपये और खर्च होंगे। सन् १६३०—३१ में गवर्नमेंटको इससे ३, ६५, ३१३ रुपयेकी आय हुई और पूरा विस्तार होने पर और भी लाभ होनेकी सम्भावना है। नैनीतालमें भी एक छोटा बिजली घर है।

पञ्जाब

पञ्जाबमें मण्डी योजना चल रही है जो इस प्रान्तके बहुतसे नगरों तक बिजली पहुँचायगी।

दक्षिणमें कुछ दिनोंमें कई पहाड़ी नदियोंसे काम लिया जाने लगेगा। एक स्कीम ट्रावनकोर और मद्रास सरकार साथ साथ हाथमें लेंगे। हैदराबाद राज्य भी कुछ इस दिशामें प्रगति करने वाला है। इनकी योजनामें विशेष बात यह है कि मशीनसे निकल कर पानी खेतीके काम आयगा।

भारतवर्षमें जल शक्तिका भविष्य बड़ा उज्वल है पर आजकलके दिनोंमें इसमें लगानेको रुपया निकलना कठिन सा प्रतीत होता है। पर औद्योगिक उन्नति और विस्तारके साथ ही साथ जल शक्तिका काममें लाना नितान्त आवश्यक हो जायगा क्योंकि इसी प्रकार भारत अपने बलसे संसारकी शक्तियों का सामना कर सकेगा।

प्राचीन भारतका भौमिक व्यापार

[अनु०—श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०]

भारतवर्ष का भौमिक व्यापार चीन तुर्किस्तान, ईरान, बाबुल और कभी कभी मिस्र, यूनान और रोम तक फैला हुआ था। मिस्टर विन्सेण्ट लिखते हैं "वह उत्तरी देश जिससे हिन्दुस्तान वाले व्यापार करते थे चीन था" * (Vincent Vol. ii, pp. 574, 575)

पेरीप्लस के लेखक ने चीन की भौगोलिक अवस्था का वर्णन करके लिखा है कि "यद्यपि रेशम उसी देश से आता था परन्तु इसका व्यापार हिन्दू ही करते थे। यहां इंग्रेज़ी विद्वान् का कथन भी लिख देना चाहिये " यह कोई असम्भव बात नहीं है कि भारतवर्ष में रेशम इससे बहुत पहिले उत्पन्न न होता हो।" †

मध्य और उत्तरी एशिया के व्यापार के विषय में लिखा है कि "हिन्दुस्तानी लोग हज़ार २ दो दो हज़ार की टोलियों में व्यापार के लिये इडेस्टी (Ideste) और कोबी के स्वर्णयुक्त जङ्गलों में जाते हैं और तीन २ चार २ वर्ष तक घर नहीं लौटते"। तख़्तेसुलेमान जिसका टोलमी और टासियस ने वर्णन किया है चीन को जाने वाले हिन्दू व्यापारियों का चलनेका स्थान है।

प्रो० हीरन कहते हैं कि "इस मीनार से (तख़्ते सुलैमानी से) चीन को जाने वाले हिन्दू व्यापारी स्थान विशेष का मार्ग और यात्रा के दिनों को सुगमता से जान लेते थे। यदि हम यह मानलें कि वह काबुल या बलख से चलते थे तो पूर्वोत्तरी ओर ४१ दर्जे उत्तरी अक्षांशतक जाते होंगे, अब उनको पर्वत पर चढना पड़ता होगा और हेशान या ओश में होकर मीनार तक आते होंगे। यहां से काशगर होते हुये कोबीके जंगल में जो खोटन और अक्सु (टोलमी कथित कैसिया और औक्सेजिया) में होकर है। इन प्राचीन नगरों से रास्ता कोशोटी होकर सीचो तक था जो चीन की सीमा पर है, वहां से पेकिन को जाता था जो बहुत ही पुराना शहर है और जो टोलमी के कथनानुसार निस्सन्देह सेरीका की राजधानी थी। यह कुल दूरी २ हजार पांच सौ मील से अधिक है "।

(Historical Researches vol II, p. 290)

पश्चिमी एशिया के विषय में प्रो० हीरन लिखते हैं कि "पामीरियन लोग भारतवर्ष से भौमिक ही नहीं किन्तु सामुद्रिक व्यापार भी करते थे"

(Historical Researches vol. II, 409)

इन्साइक्लोपीडिया ब्रटानिका में लिखा है कि "रोम के नाश के पश्चात् बसरा एक बड़ा व्यापारिक नगर हो गया और हिन्दुस्तान से ओर्मस को माल जाने लगा।"

(Eng. Brit XI, 460)

हिन्दुस्तान का, यूरोप के साथ भौमिक तथा सामुद्रिक दोनों प्रकार का व्यापार होता था। उपर्युक्त लेखक कहते हैं कि "हिन्दुस्तान से यूरोप में माल अन्य मार्गों से भी आता था।

(१) पामीरिया से जो उस समय एक बड़ा नगर था रोम और पश्चिमी नगरों तथा सीरिया के बन्दरों में होकर।

(२) हिमालय पर्वत, औक्सस नदी और कास्प्रियन सागर में होकर यूरोप के बाजारों में"।

(Ency. Brit. vol XI, p. 456)

किसी जाति के विदेशी व्यापार से सिद्ध होता है कि उसका आन्तरिक वाणिज्य भी उत्तम होगा। यह बात भारतवर्ष जैसे बड़े देशों पर अधिक उपयुक्त होती है जहां अनेक प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं, अधिक मनुष्य निवास करते हैं और जहां

*वह लिखता है कि चीन शब्द भारतवर्ष से आया है

† Asiatic Researches vol. II, p. 286 See also Schlegel Berlin Calender p. 9 (Ed. 1829) See also 'art of weaving'.

की सभ्यता बहुत उच्च है। पैरिसनिवासी प्रोफेसर लैसिन कहते हैं कि धन्य हैं हिन्दू लोग जिन्होंने अपने देश के उत्तम पदार्थों के बाहुल्य को स्वयं ही मालूम कर लिया। अन्य देशों में भी बहुत सी चीज़ें होती हैं परन्तु वे बहुत दिनों तक लुप्त रहीं जब तक कि विदेशी लोगों ने उनका अन्वेषण नहीं किया परन्तु प्राचीन से प्राचीन हिन्दू भी उत्तम २ पदार्थों का भोग करते थे। राजों और धनाढ्य पुरुषों के बुद्धिमान हाथी, तेज़ घोड़े, सुन्दर मयूर, सुनहरी आभूषण, अच्छे २ इतर, मिर्च, हाथी दांत, मोती, रत्नादि रहते थे और इसीलिये काफिले निरन्तर इन तथा अन्य पदार्थों को इस बड़े देश के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण को लिये फिरते थे। कहा जाता है कि सीमास्थ नगरों और बन्दरगाहों पर यह लोग टायर, मिस्र, फारिस की खाड़ी और लाल सागर को जाने वाले काफिलों तथा जहाजोंको माल दे आते थे"।

(Ancient and Medieval India vol. II.) p. 348)

हीरन साहेब लिखते हैं कि "भारतवर्ष का आन्तरिक व्यापार भी बहुत होगा क्योंकि इसकी प्राकृतिक अवस्था ही इस योग्य है"।

(Historical Researches vol II. p.267)

देश भर में पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर को बड़ी २ सड़कें बनी हुई थीं। इनके अतिरिक्त ऐसी नदियां ही असंख्य हैं जिनके तट पर बहुत व्यापार होता है।

स्ट्रैबो, प्लूटार्क, अयेाेलोडोरस सब कहते हैं कि भारतवर्ष में कोने कोने तक सड़कें हैं जिनमें कोसों के पत्थर गड़े हुये हैं। यात्रियों के लिये मंजिल २ पर सरायें हैं

(Strabo chap. XII. pp. 474, 487)

हीरन साहेब कहते हैं कि इन सड़कों पर वृक्ष और फूल लगे हुये हैं।

(Historical Researches vol II. p. 279)

उत्तराय भारतवर्ष में गंगा के तटपर बहुत व्यापार होता था। सिन्धु नदी के किनारे तक्षिला से लेकर लाहोर होते हुये पलीभोत्र (बिहार) तक १०००० कोस (स्टडिया) लंबी सड़क थी *।

(Strabo p. 1010)

रामायण में भी एक सड़क का वर्णन है जो अयोध्या से यमुनातटस्थ हस्तिनापुर तथा लाहौर होकर पंजाब में गिनी बेराजा तक चली गई थी।

पेरीप्लसमें भी यह बतलाकर कि 'गंगा और उसकी सहायक नदियां उत्तरीय भारत में व्यापार के काम में आती हैं" लिखा है कि "दक्षिणी प्रायः-द्वीप की नदियों में जहाज़ चलते हैं"।

(Periplus p. 39)

एरियन कहता है कि पूर्वी और पश्चिमी तट के बीच में देश के बने हुये जहाजों द्वारा व्यापार होता था।

पेरीप्लस में लिखा है कि "दक्षिण देश में दो प्रसिद्ध हाटें हैं एक तगारा, दूसरी प्लुथामा यहां से बेरीगेजा अर्थात् बरोच को माल लदता था। †

ओज़ानी (उज्जैन) में आन्तरिक व्यापार की प्रसिद्ध मण्डी थी। यहां से निकटवर्ती प्रान्तों को हर प्रकार का माल जाता था। यह विदेशी व्यापार का भी केन्द्र था। यहां से हिन्दुस्तानी माल बरोच को जाता था और वहां से दूरस्थ उत्तरी देशों का माल आया करता था"।

(Historical Researches vol. II. p. 280)

मेलों में भी बहुत व्यापार होता था। ऐसे मेले देश के हर एक प्रान्त में होते थे। इन मेलों में भिन्न

---

*प्लिनी के भी इसका नेचुरल इतिहास, जि० ६ पृ० ८१ में वर्णन किया है।

† एलफिन्सटन भी अपने इतिहास पृ० ८२३ के फुटनोट पर इन स्थानों का वर्णन करता है। हीरन साहेब लिखते हैं कि "तगारा २००० वर्ष तक रूमसागर के व्यापार का केन्द्र रहा"।

भिन्न समय पर सहस्रों मनुष्य माल खरीदने तथा धार्मिक और नैतिक विचार करने के लिये एकत्र होते हैं। अब भी हरिद्वार, काशी प्रयाग, नर्मदा तथा अन्य स्थानों पर लखूखा मनुष्य आते हैं* [1]

हिन्दू मेलों के विषय में मिस्टर एलिफन्स्टन का कथन है कि "भारतीय मेले इंगलैण्डीय मेलों से बहुत मिलते हैं परन्तु इंग्लैण्ड की कोई भीड़ हिन्दुस्तान के उन प्रफुल्लित मनुष्यों की बराबरी नहीं कर सकती जिनके शरीर पर श्वेत वस्त्र गले में चमकीले दुपट्टे और शिर पर पगड़ियां होती हैं इनके विरुद्ध उत्तरीय लोगों की काली टोपियां और मैले कपड़े अच्छे नहीं लगते"* [2]

मिसिस मैनिंग कहती हैं कि वैदिक समय में भी हिन्दू लोग व्यापार करते थे और "इतने प्राचीन समय से यह देश व्यापार में उत्साही रहा है"।

(Ancient and Medieval India vol. II. p. 347)

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानीका जि० ११ के पृ० ४४६ पर लिखा है कि "यहां से अमूल्य पदार्थ, हीरे, सुगन्धियां और अमूल्य कृत्रिम वस्तुएं अन्य देशों को जाती थीं। यह देश जिसमें ऐसी उत्तम वस्तुएं उत्पन्न होती थीं बहुत धनाढ्य समझा जाता था और इसके सुख तथा प्रभाव के विषय में जो कुछ कोई कह देता था उसी को सच समझ लेते थे। मध्य काल में भी मिस्र और लालसागर के बन्दरों के साथ व्यापार होता था और वेनिस के व्यापारी भारतवर्ष के अमूल्य पदार्थों को यूरोप में ले जाते थे इससे भी लोग भारतवर्ष को उन्नत और धनाढ्य समझते थे"। *

२—धन

यदि इतिहास से कोई बात सिद्ध हो सकती है तो यह भी सिद्ध है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष सबसे अधिक धनवान था। एशियाटिक वा योरोपियन प्रत्येक का इसी की ओर देखना, दरिद्र देशों का इसके धन की ताक में रहना और प्रत्येक विजयी पुरुष का भारतवर्ष को जीतने की इच्छा करना ही प्रकट करता है कि इसके धन को दुनिया भर में प्रतिष्ठा थी।

उष्णजलवायु, अद्वितीय उर्वरत्व, विलक्षण खानों और दुनियां भर के व्यापार से ही प्राचीन काल में इस देश में इतना धन हो गया था कि जो कोई वीर विजयी हुआ वह इसी देश पर आक्रमण करता रहा। हीरन साहेब लिखते हैं कि "प्राचीन समय में भी इसका द्रव्य बहुत प्रसिद्ध था"।

(Historical Researches vol II. p. 268)

डाक्टर वाइज़ ने लिखा है कि हिन्दुस्तान की सम्पत्ति ने अलक्षेन्द्र को इतना मोहित कर रखा था कि जब वह ईरान से हिन्दुस्तान को चलने लगा तो उसने अपने सिपाहियों से कहा कि अब हम ऐसे स्वर्णमय भारत को चलरहे हैं जहां धन की कुछ सीमा ही नहीं है और जिसके सामने ईरान का धन कुछ भी नहीं। चेम्बर्स इन्साइक्लोपीडिया में

---

* १ "काशीजगन्नाथ आदि में जो लाखों मनुष्य हर साल एकत्र होते हैं उनसे व्यापार स्वभावतः ही बहुत बढ़ जाता है" Historical Researches vol. II. p. 279. [हरिद्वारके मेलोंका वृत्तान्त हार्डविक साहेब ने लिखा है (Asiatic Researches vol. II. p. 3)

वह लिखता है कि ढाई लाख आदमी हरसाल जुड़ता है। कुम्भ के मेलों पर तो संख्या बहुत ही बढ़ जाती है।]

* २ एलिफन्स्टन का भारतवर्ष का इतिहास पृ० १७६। वह यह भी लिखता है कि यह प्रसिद्ध स्थान माल के आने जाने का केन्द्र भी है

* प्राचीन भारतवर्ष के इतना धनाढ्य होने का मुख्य कारण यही था कि यहां का व्यापार इतना बढ़ा हुआ था।

लिखा है कि "भारत वर्ष मुद्दत तक अपने धन के लिये प्रसिद्ध रहा है"

(Vol. V. Art. India p. 536)

इन्साइक्लोपीडिया ब्रटैनिका में 'हिन्दुस्तान' शीर्षक लेख लिखने वाला लिखता है कि "हिन्दुस्तान स्वभावतः धन का केन्द्र था"।

(Vol XI. p. 446)

मिल्टन ने भारत वर्ष के धन की प्रशंसा करते हुये केवल लोकोक्ति का अनुकरण किया है॥

हिन्दुस्तान के असीम धन का परिमाण इसी से जाना जा सकता है कि जब सुलतान महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर को तोड़ा तो अकेली शिव की मूर्त्ति में असीम धन और अमूल्य हीरे मिले जिनका मूल्य लगाना भी कठिन हो गया।

(Lethbredge's History of India)

२६ दिन मथुरा में रहकर जहां उसने सहस्रों सोने चांदी की रत्नजड़ित मूर्त्तियां इकट्ठी कीं वह कन्नौज को गया जहां जाकर वह और उसके साथी जिनको यद्यपि मथुरा आदि नगरों का परिचय हो चुका था ऐसे चकित हुये कि कहने लगे कि धन और चमक दमक में कन्नौज का मुकाबिला स्वर्ग के अतिरिक्त अन्य कोई स्थान नहीं कर सकता।

॥ High on a throne of royal state which far.

Outshone the wealth of Ormug and of Ind

Where the gorgeous East with richest hand.

Showers on her kings barbaric pearls and gold

अर्थ—ऐसी राजगद्दी पर जो अरमुज़ और हिन्दुस्तान के धनसे भी चमकीली है और उस चमकीले पूर्व से भी जहां जंगली बादशाहों के पास असंख्य मोती और स्वर्ण है"।

स्वर्ण जिसको धन का चिह्न कहना चाहिये पहिले भारतवर्ष में ही मिला था। प्राचीन समय में हिन्दुस्तान हीरे और रत्नों की खान था। पेरीप्लस में लिखा है कि "यूनानी लोग सोने की ईंटों को हिन्दुस्तान से खरीदते थे"। कहते हैं कि प्राचीन समय में केवल नेलक्यण्ड वा नेलीसेरमही (जो कालीकट के निकट मालाबार के तट पर है) ऐसा नगर था जहां मोतियों का व्यापार होता था।

चेम्बर्स इन्साइक्लोपीडिया में लिखा है कि भारतवर्ष में अनेक प्रकार की धातुएं बहुतायत से होती हैं। हीरा, पन्ना, सीसा, गोमेदक (फीरोजा) पद्मराग (जवर जर) बहुत होते हैं। सोना यहां प्राचीन काल से मिलता है। दक्षिण और मलाबार॥ १ तो स्वर्ण के खेत समझे जाते हैं और धारवार में काचमणि की अमूल्य चट्टानें पाई गई हैं।

मुक्ता, पद्मराग, नीलमणि, लाल, पन्ना लज़्ली मूंगा आदि रत्नों के लिये तो भारतवर्ष प्रसिद्ध ही है। सब से प्रसिद्ध मोती और रत्न तो इसी देश के हैं। वह मोती जिसको जूलियस सीज़र ने ब्रूटस की माता सरवीलिया को भेंट किया था और क्लियोपाटरा के कानों के मोती हिन्दुस्तान से ही गये थे। दुनियां भरमें सबसे प्रसिद्ध हीरे भी हिन्दुस्तान के ही हैं। पिट हीरा जिसको अब रीजण्ट कहते हैं १३६⅞ कैरट का है और सब से बड़ा है। परन्तु कोहनूर हीरा जो केवल १०६⅙ कैरट का ही है और जिसकी कथा भी विलक्षण है दुनियां भर में सब से प्रसिद्ध हीरा है। यह दोनों हीरे इंगलैण्डको हिन्दुस्तान से गये हैं। पिट हीरा जो कटते कटते ४१० कैरट से १३६⅞ कैरट ही रह गया है १७१७ ई० में फ्रांस के रीजन्ट ड्यूक आफ़ औरलियन्स के हाथ बेच दिया गया था। यह अबतक पेरिस में लूवर में विद्यमान है। इसका मूल्य ४ लाख ८० हजार पौंड है और कोहनूर का मूल्य केवल १ लाख

॥ १ देखो दूसरा पृष्ठ

४० हजार है परन्तु कोहनूर के ऐतिहासिक मूल्य का पता नहीं ❀ २

यह हिन्दुस्तान का धन ही था जिसको देखकर जंगली अरबवाले और असभ्य तारतार यहां चढ़ आये। हिन्दुस्तान के धन ने ही नादिरशाह को यहां बुलाया जहां से वह असीम द्रव्य ले गया और जिसको देखकर अब्दाली को फिर आक्रमण करने की सूझी।

पेरीप्लस में (३६ पृ०) में गंगा के नीचे के मैदानों में स्वर्ण की खानों का वर्णन है। प्लिनी ने कैपीटेलिया पर्वत अर्थात् घाटों की सोने चांदी की खानों का हाल लिखा है"।

(Heerin's Historical Researches vol II)

❀ २ जब कोहनूर पहिले पहिल इंगलैण्ड गया तो १८६½ कैरट का था।

चाहे सौफोक्लीज़ का यह कहना ठीक हो कि सोना "दुनिया में सबसे बुरी चीज़ है। यह नगरों को नष्ट कर देता है लोगों को देश विदेश फिराता है, हृदय को दूषित कर देता है और धार्मिक पुरुषों को भी दुष्टकर्म करने के लिये उद्यत कर देता है"।

(Antigone Act I.)

परन्तु स्वर्ण में गुण भी हैं। यह सोना ही था जिसने गत शताब्दी में न केवल इंगलैण्ड और यूरोप की रक्षा ही की किन्तु नैपोलियन बोनापार्टी को डबोदिया।❀

❀ संयुक्त देशों के प्रतिनिधि वीयना में एकत्र हुये और नेपोलियन के एलबा से लौटने पर उसके राजद्रोही होने की व्यवस्था दे दी परन्तु द्रव्य के अभाव से लड़ना स्वीकृत न किया। तब इंगलैण्ड ने बहुत सा रुपया दिया जिससे वाटरलू की जय प्राप्त हुई।

कीटाणु और उनके परिणाम

[ले० श्री ओम् प्रकाश अग्रवाल, बी० एस-सी०]

लगभग पिछले सौ वर्षसे वैज्ञानिकोंका ध्यान कीटाणु ज्ञानकी ओर अधिक आकर्षित होरहा है जिससे यह भलीभांति सिद्ध होगया है कि कीटाणु संसारके बहुतसे ऐसे कार्य्योंका सम्पादन करते हैं जिसका कारण हम कुछ और ही समझे हुए हैं।

कीटाणु (Bacteria) शब्द छोटे छोटे अण्डाकार धागेकी तरह बारीक तथा चक्करदार कीड़ोंका सूचक है। यह सब इतने बारीक तथा लघु परिमाणके होते हैं कि आंखसे नहीं देखे जा सकते, केवल उत्तम अणुवीक्षण यन्त्रकी सहायता द्वारा ही इनका अन्वेषण हो सकता है तथा हो रहा है।

कीटाणुओंकी वृद्धि तथा उनका जीवन बहुधा किसी विशेष रसायनकी उपस्थिति तथा दूसरीकी सर्वथा अनुपस्थिति पर निर्भर है। तापक्रमका बड़ा भारी प्रभाव उनके जीवन पर पड़ता है। बहुधा कीटाणु नष्ट करनेका साधारण उपाय तापका बढ़ाना ही होता है—डाक्टरादि बीमारीके दिनोंमें पानीको उबाल कर तथा छान कर पीना लाभकर बताते हैं।

कीटाणु ही सर्वदा बीमारी फैलानेके जिम्मेवार हैं, और बहुधा बीमारीसे पहिले कीटाणु ही प्रवेश करके उसका कारण बनते हैं।

एन्थेसिस कीटाणु (Bacillii anthacis) गौ आदि पशुओंके रक्तमें प्रवेश करके स्प्लेनिक ज्वर का आरम्भ करते हैं। इसी प्रकार हैज़ा और महामारी के कीटाणु रक्तमें प्रवेश कर अपना विष संञ्चार करते हैं जिसके भयंकर परिणाम किसीसे छिपे नहीं हैं।

खमीरण (Fermentation) एक ऐसा कार्य्य है जो कीटाणु विशेषकी उपस्थितिमें ही होता है, जिसके परिणाम स्वरूप खाद्यपदार्थ या अन्य शाक भाजी द्वारा नये नये पदार्थ उत्पन्न होते हैं। और साथ ही कीटाणु भी वृद्धि करता है, परन्तु ऐसे कार्य्योंमें तापक्रमका प्रभाव तथा किसी वस्तु विशेषकी अनुपस्थिति अथवा उपस्थिति अत्यावश्यक है।

खमीरण द्वारा रासायनिक यौगिक छोटे छोटे भागोंमें विस्तृत होकर नई वस्तुओंका उत्पादन करते हैं। पास्ट्यूर ने यह देखा कि यदि चीनी अथवा शर्करा-जनक पदार्थोंमें यीस्ट नामक कीटाणुका प्रवेश करवाया जाये तथा तापक्रमादि भली भांति रक्खे जायें तो कुछ दिनों पश्चात् उसमेंसे बुलबुले निकलने लगते हैं और शराबकी गन्ध आने लगती है। इसका नाम मद्यिक खमीरण रक्खा गया और इस साधन द्वारा मदिरा बनाई जाती है।

टाइफोइड ज्वर तथा अति प्रचलित तथा भयानक रोक क्षय या यक्ष्मा तथा कोढ़ भी कीटाणु जनित रोग हैं। सम्भव है बहुत लोगोंको यह जान कर आश्चर्य होगा कि आलर्क (hydrophobia) भी कीटाणु द्वारा ही उत्पन्न होता है—परन्तु यह सिद्ध हो गया है कि वह बीमारी उस विष द्वारा उत्पन्न होती है जो कि बहुतसे कीटाणुओंमें मिलता है, और पास्ट्यूरके आदेशानुसार इसका इलाज हो रहा है। भारतवर्षमें इसका बड़ा केन्द्र कसौलीमें है।

पाठकोंमें से अधिकांश ने यह देखा होगा कि एक सेबको जो भीतरसे बिलकुल सफ़ेद है काट कर हवामें रख दिया जावे तो लगभग दो घंटे पश्चात् वह लाल हो जावेगा। हम यह ही सोच कर शांत हो जाते हैं कि यह बासी हो गया, परन्तु इस लाली का क्या कारण है यह नहीं सोचते यह केवल कीटाणुओंका समूह ही है जो हवासे उस पर बैठ गये हैं।

कुछ कीटाणु ऐसे हैं जिनका प्रभाव रंग बदलने वाला तथा अन्धेरेमें चमक (Phosphorescence) पैदा करने वाला होता है। बहुधा यह रंग कीटाणुओं के बाहिरी भागमें जमा हुआ पाया जाता है। एक वैज्ञानिकका कथन है कि जिस प्रकार पेड़ तथा

पौधोंमें पर्णहरिन (क्लोरोफिल) रहता है उसी प्रकार अधिकांश कीड़ोंमें (Beggiatoa Roeso-persicina) रंग पाया जाता है—

इन्हीं-कीटाणुओंको कुछ श्रेणियाँ रंग उत्पन्न करनेके अतिरिक्त प्रकाश देती है जो कि स्फुर प्रकाश की भांति अन्धेरेमें भली प्रकार देखा जा सकता है। इन कीटाणुओंको प्रकाश कीटाणु कहते हैं। चमक प्रकाश कीटाणु (Photo bacterium phosphore-scense) बड़ी आसानीसे जिलेटिन पर रहनेसे बढ़ता है। यह द्राक्षशर्करा और यव शर्करा में खमीरण उत्पन्न कर देता है। प्रकाश कीटाणु फ्लूगेरी सबसे अधिक चमकदार कीटाणु है। एक और कीटाणु फिशेरी है जो बालटिक सागरमें पाया जाता है जिसके प्रभावसे जिलेटिन पानीमें डालनेसे पिघल जाती है।

वस्तुतः हमारे चारों ओर कीटाणुओंका ही राज्य है। वायु मण्डलमें कितने कीटाणु हैं और कितनोंका अन्त हम एक बार ही श्वास लेनेमें करते हैं अनुमान लगाना कठिन है। परमात्माकी माया विचित्र है।

प्रकाश संश्लेषण

(PHOTOSYNTHESIS)

[ले० श्री० आत्माराम जी राजवंशी एम० एस-सी०]

यह बहुधा बहुतसे लेखकोंका विचार है कि प्राचीन समयमें आर्य्य लोग सूर्य्यको देवता मान कर पूजते थे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वह ऐसा करते थे, परन्तु वह सूर्य्यके उन लाभों को भी अवश्य जानते थे, जिससे कि सूर्य्यको एक देवता कहा जा सकता है। इस लेखमें इस बातकी चेष्टा की गई है कि प्राचीन वैज्ञानिक अनुसन्धानके अनुसार कहाँ तक हम लोग सूर्य्यको देवता कह सकते हैं।

इस समय बहुतसे वैज्ञानिकों की दृष्टि इस विषयके ऊपर, कि किस प्रकार सूर्य्य प्रकाशसे वृक्षों की जीविका चलती है एक वैज्ञानिक रूपसे पड़ी हुई है, और किस प्रकार यह सूर्य्यकी सामर्थ रसायनिक सामर्थ में बदल जाती है, वह बहुत सी क्रियायें, जो पत्तोंमें होती हैं, जिससे कि कर्बन द्विओषिद और जलके मिलनेसे शर्करा और कर्बोदेत पैदा होते हैं, अधिक समयसे वैज्ञानिकोंके मनको खींचे हुये हैं। इस क्रियाको विशेष रूपसे **प्रकाश संश्लेषण** कहते हैं, हरे पौधे अपनी पत्तियोंमें पानीके अतिरिक्त वह पदार्थ उत्पन्न करते हैं, जिस पर सारे पौधोंका जीवन निर्भर है, केवल यह ही नहीं बल्कि सारे पृथ्वीके प्राणियों की जीविकाका आधार है, पौधोंमें जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वह उन पदार्थोंसे जिनसे कि वह बने हैं अधिक सामर्थके होते हैं, इस प्रकार प्राचीन वृक्षोंकी इकट्ठी की हुई सामर्थ कोयले, तेल और पेट्रोलियमके रूपमें रह गई है, जिसकी सहायतासे वर्तमान काल की कलायें और दस्तकारियें चल रही हैं।

प्रकाश संश्लेषणकी प्रक्रिया साधारण रूपमें इस प्रकार लिखी जा सकती है,

$$\text{न क ओ}_2 + \text{न उ}_2 \text{ ओ} + 110000 \text{ ग्राम कलारी} = (\text{कउ}_2 \text{ ओ})_{\text{न}} + \text{न ओ}_2$$

यद्यपि हमको इन क्रियाओंका ज्ञान जोसेफ़ प्रिस्टलेके समयसे हुआ है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम इन क्रियाओंको पहिलेसे नहीं जानते थे। नहीं, बल्कि हमको इसके विषयमें बहुत कुछ ज्ञात था। यदि इसके इतिहास पर दृष्टि डाली जाये, तो ज्ञात होगा, कि सबसे पहिले वान हेलमंट ने अरस्तूके सिद्धान्तको, कि वृक्ष अपनी जीविका केवल पृथ्वीसे ही लेते हैं, अप्रमाणित सिद्ध किया। उसने यह प्रयोग किया जो कि अभी तक बड़ी श्रद्धापूर्वक माना जाता है, कि एक पौधेको जिसका वज़न ५ पौंड था २० पौंड मिट्टीमें जो कि बिलकुल खुश्क थी, इस प्रकार रक्खा कि उसमें वर्षाका पानी न जाये, न कहींसे मिट्टी गिर सके, उसने ज्ञात किया कि पौधेका बोझ १६४ पौंड हो गया है, और पृथ्वी केवल २१ पौंड घटी है, उसने इसका कारण पानीको बताया और क ओ$_2$ की आवश्यकता नहीं समझी। हम इस बातके लिये कि वृक्षोंको कुछ वायुमंडलसे भी मिलता है, स्टफिन हेल्सके कृतज्ञ हैं। यह शायद वह ही था कि जिसने सबसे पहिले प्रकाशकी आवश्यकता बतलाई।

इसके पश्चात् प्रीस्टलेका इतिहास जनक अनुसन्धान आता है, जिसने कि अरस्तूके सिद्धान्तको बिलकुल ही मिटा दिया, उसने १७७१ में यह दिखाया कि यदि पत्ते किसी बेलजियमके भीतर रक्खे जायें और उसमें पहिलेसे कर्बन द्विओषिद हो तो कर्बन द्विओषिदसे ओषजन बन जाती है। जब उसने फिर उसे दोहराया तो उसका प्रयोग असफल हो गया, उसी समय शीले भी स्वीडनमें अपनी, विज्ञानशालामें इस पर प्रयोग कर रहा था, परन्तु वह भी इसमें सफल न हो सका, जान इञ्जन हाउज ने जो अपने प्रयोगोंमें अधिक भाग्यशाली था, बताया कि केवल पौधोंका उगना ही वायुके शुद्ध होनेसे सम्बन्ध नहीं रखता। उसने तुरन्त ही प्रकाशकी आवश्यकताको बतलाया

और साथ साथ प्रीस्टलेकी असफलताका कारण भी बताया क्योंकि रात्रिके समय या अंधेरेमें पौधे कर्बन द्विओषिद अपने भीतरसे निकालते हैं। यह बात, कि पौधेमेंसे ओषजन उसी समय निकलती है, जब कि वह कर्बन द्विओषिदको शोष लेवें, सबसे पहिले सेनीबायर ने बतलाई, परन्तु तौ भी इञ्जन हाउज़ ही को इस सिद्धान्तका बतलाने वाला कहा जा सकता है। इससे भी अधिक उपयोगिता का कार्य्य डि सासौरेने किया जो कि अधिक विख्यात है। उसने शोषी हुई कर्बनद्विओषिद और बाहर निकली हुई ओषजनका सम्बन्ध ज्ञात किया।

यद्यपि सासौरे अपने अनुसन्धान पर पूरा विश्वास नहीं करता था क्योंकि उसके प्रयोग बहुत मोटे सादे तौरसे किये गये थे, परन्तु तब भी उसके अनुसन्धान सब वैज्ञानिक कहीं अधिक सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं।

जिस समय कि प्रीस्टले, इञ्जन हाउज, सासौरे और सेनीबायरने इन सब बातोंको जनाया था उसी समय डुट्रोकेट ने १८३७ में यह सबसे पहिले बतलाया कि, पौधोंका हरा हिस्सा ही कर्बन द्विओषिद शोषता है, उसने इसको यहां तक बढ़ाया कि यह केवल हरे ही का भाग कार्य्य है जो कर्बन द्विओषिद को शोषता है और इसको पर्ण हरिन् कहते हैं।

पहिले वैज्ञानिकों ने कि जिसका इसमें वर्णन किया है, यह सिद्ध कर दिया था, कि पौधोंमें कार्बनिक पदार्थका आधार केवल कर्बन द्विओषिद है और यह लीबिगके ही परिश्रमका फल है कि अरस्तूका सिद्धान्त बिल्कुल जाता रहा।

जब कि यह बात मान ली गई कि वृक्षोंका कार्बनिक पदार्थ उस कर्बन द्विओषिदसे जो कि पत्तों में शोषी जाती है, बनता है, तब यह भी स्पष्ट हो गया कि पौधोंकी क्रियायें कितनी घनिष्ठ होती हैं। सूर्य्यप्रकाशसे हरी पत्तियोंके कोष्ठोंमें कर्बनद्विओषिद शोषी जाती है, जिससे कि कर्बोदेत पैदा होते हैं, और ओषजन निकलती है, जैसा कि सासौरेके प्रयोगोंसे ज्ञात होता है और जिसको बादमें बोसिंगौल्टके प्रयोगों ने ठीक ठीक सिद्ध कर दिया है, कि शोषी हुई कर्बनद्विओषिद और बाहरको निकाली हुई ओषजनका आयतन बराबर होता है, और इस निष्पत्तिको प्रकाश संश्लेषण गुणक कहते हैं और अधिकतर एक होती है। इस क्रियाका समीकरण जो कि ऊपर लिखा हुआ है,
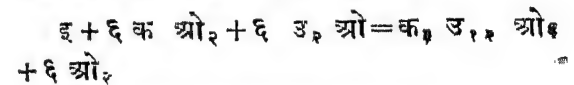
$$इ + ६ क ओ_{२} + ६ उ_{२} ओ = क_{६} उ_{१२} ओ_{६} + ६ ओ_{२}$$

प्रकाश संश्लेषणका स्वभाव

प्रकाश संश्लेषणकी प्रकृतिके जाननेका प्रयत्न दो उपायोंसे किया गया है प्रथम गैसका आदान-प्रदान और कार्बनिक पदार्थका बनाव। बहुधा यह प्रश्न उठा है कि क्या केवल वायुमंडल ही, वृक्षकी प्रकाश संश्लेषण क्रियाके लिये पर्याप्त कर्बन द्विओषिदका दायक है? सेनीबायरके समयसे जिसका कि यह मत था कि वृक्ष अपनी जड़ोंके द्वारा कर्बन द्विओषिद खींच लेते हैं, यह प्रश्न विवाद ग्रस्त है। पृथ्वीमें कीटाणुओं की क्रियाके द्वारा कर्बन द्विओषिद बहुत अधिक परिमाण उत्पन्न होती है। पृथ्वीमें उत्पन्न हुई इस कर्बन द्विओषिदके फल स्वरूप, पृथ्वीके ऊपर इस गैसका समाहरण साधारणतयः जैसा कहा जाता है उससे कहीं ऊँचा है, पानीमें की कर्बन द्विओषिद इसके आंशिक दबावसे जानी जाती है।

ओषजनका विकासः—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कि एक बात जो कि प्रकाश संश्लेषणके सम्बन्धमें जानी गई थी वह यह थी कि प्रकाशमें वृक्ष कर्बन द्विओषिद ले लेते हैं और ओषजन निकाल देते हैं। इस प्रकार ओषजनका निराकरण तथा कर्बन द्विओषिदके आगमनका इस नियमके जाननेमें प्रयोग किया गया। इस आदान प्रदान का ज्ञान प्राप्त करनेके लिये बहुतसे भारात्मक प्रयोग किये गये। ओषजनके विकाशका दिग्दर्शन

मिथीलिन तथा नील कार्मीनके ल्युकोयौगिक के द्वारा कराया गया। ओषजन के विकासका ज्ञान प्राप्त करनेका सबसे अच्छा उपाय, अन्दर घुसे हुये जलीय पौधेके कटे हुए सिरेसे जो बुलबुले निकलते है उनकी गणना करना है। सम्भवतः केवल ओषजन ही ऐसी गैस है, जो कि प्रकाश संश्लेषणके समय वृक्षसे निकलती है।

प्रकाश संश्लेषणका भाज्य फलः-

वृक्षोंकी श्वास प्रश्वास क्रिया की जानकारीके लिये, प्रकाश संश्लेषण के ज्ञानमें-ओषजन जो वृक्षसे निकलती है उसके कर्बन द्विओषिद जो कि वृक्ष खींच लेते हैं अनुपात, बहुत ही उल्लेखनीय है क ओ२/ओ२ अनुपात, जिसको कि प्रकाश संश्लेषण भाज्य फल कहते हैं, बिलकुल इकाई है जैसा कि सासैार तथा बोसिंगाल्टके अनुसंधानोंसे सरलता पूर्वक जाना जाता है। किन्तु यह बात सदैव सत्य नहीं है क्योंकि अनुपात पर और भी तत्वोंका प्रभाव पड़ता है तथा श्वास क्रिया स्वयं ही सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करती है। ओ२/क ओ२ अनुपात अंधकार-श्वास प्रश्वास भाज्य फल नाम से जाना गया है।

वह भाग जो कि प्रकाश संश्लेषण के क्रम पर प्रभाव डालते हैं।

प्रकाश संश्लेषण के नियम में और बहुत सी उलझी हुई रीतियां हैं, जिनमें कि प्रकाश रासायनिक तथा उत्प्रेरणकारी प्रक्रियायें भी हैं।

१. कर्बन द्विओषिद का आंशिक दबाव।

२. प्रकाश जो काम मे आता है उसकी तीव्रता तथा झूलन संख्या।

३. ताप, विशेष कर क्लोरोप्लास्ट का ताप।

४. पर्ण हरिन् के तत्व।

५. प्राप्य जल का परिमाण।

६. अन्य आन्तरिक दशायें।

कर्बन द्विओषिद तथा प्रकाश विशेष ध्यान देने योग्य हैं। प्रकाश संश्लेषण का क्रम इन तत्वों की तीव्रता के साथ एक सीमा तक बढ़ता जाता है अतएव ब्लैकमैन की सीमा बहुत आवश्यक है। यह बात विशेष आश्चर्य जनक है कि प्रकाश संश्लेषण क्रिया किरणचित्र के लाल भागों में, अन्य भागों से बड़ी बताई गई है, जब कि वारबुर्ग ने यह बताया है, कि छोटे लहर विस्तार वृक्षों के लिये वास्तव में हानिकारक हैं। इसके विपरीत वेली, नोलरतन-धार तथा उनके अनुयाइयों के काम ने यह दिखा दिया है कि छोटे लहर-विस्तारों की लहरें जो कि भूमध्य भाग के सूर्य प्रकाश में पाई जाती है; प्रकाश संश्लेषण पर प्रभाव डालने के लिये अधिक ध्यान देने योग्य हैं।

प्रकाश संश्लेषण का गतिक्रम, निम्न समाहरणों पर कर्बन द्विओषिदके समाहरण की बढ़तीके साथ ही बढ़ता है, परन्तु उपरिसमाहरणों पर यह स्वतंत्र हो जाती है। वायु में कर्बन द्विओषिदका समाहरण ०·०३ प्रतिशत है जो कि कम से कम कहा जा सकता है।

अभी यह जानना बाकी है कि इस तत्व की बढ़ती उपज के लिये लाभदायक होगी या नहीं।

प्रकाश संश्लेषण के गति क्रम पर ताप का क्या प्रभाव पड़ता है। इस पर अभी अधिक छानबीन नहीं हुई है।

वृक्ष पर जल का प्रभाव तथा वायु में जल की भाप का Stometic opening पर जिनके भीतर से कर्बन द्विओषिद प्रकाश संश्लेषण क्रिया के केन्द्रों तक आती जाती है उसका जो प्रभाव होता है, बहुत पहले जाना जा चुका है। इसके अतिरिक्त, यह बात कि पत्ती का जल तत्व, कर्बोदेत अनुपात को प्रभावित करता है, प्रकाश संश्लेषण में जो यह अपनी विशेषता रखता है, अत्यावश्यक जान पड़ता है।

पत्तियों का पर्णहरिन् तत्व, प्रकाश संश्लेषण ज्ञान के लिये बहुत ही ध्यान देने योग्य विषय है।

विल्सटैटर और स्टोल के विख्यात अनुसंधानों द्वारा यह तत्व अत्यन्त आवश्यकीय सिद्ध हुआ है। क्लोरोप्लास्ट की दशा, का प्रश्न, भी मुख्य स्थान रखता है। क्लोरोफिल की क्रिया की विधि का विषय विवादग्रस्त है।

अन्य बहुतसे तत्वों, अर्थात् कर्बन द्विओषिद पिपीलिकाम्ल आदि तथा अफीमिन और कोकेन इत्यादि नरकोटिकों का प्रभाव प्रकाश संश्लेषण को गतिविधि बतायेगा। ताम्रम्, दस्तम्, तथा पारदम्, इत्यादि रसों का वृक्षों की बाढ़के लिये हानिकारक है। लोहस गन्धेत तथा लोहिक हरिद प्रकाश संश्लेषण की वृद्धि करते हैं। उदहरिकाम्ल के बहुत सामान्य घोल का बहुत उत्तेजक प्रभाव पड़ता है। नोषिकाम्ल, गन्धकाम्ल तथा स्फुरिकाम्ल का भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है। पांशुज श्यामिद का सामान्य घोल भी हानिकर है।

प्रकाश संश्लेषण से उत्पन्न किये हुये पदार्थ

वह पदार्थ जो कि प्रकाश संश्लेषण से उत्पन्न, होते हैं कर्बोदेत तथा, ओषजन हैं। प्रकाश संश्लेषण का अन्वेषण ओषजनके विकास का ही फल है। यह बड़ी सरलता से दिखाया जा सकता है कि वृक्ष के आसपास के वायुमंडल में ओषजन का आधिक्य तथा कर्बन द्वि ओषिद की कमी होती जाती है। जो गैसें निकलती हैं उनमें ओषजन के अतिरिक्त, नोषजन तथा कर्बन द्विओषिद भी होती हैं।

जो कर्बोदेत वृक्षों में पाये जाते हैं, और जो साधारणतया प्रकाश संश्लेषणसे उपजती हैं, उनमें नशास्ता तथा शर्करा भी रहती हैं। कुछ में नशास्ता नहीं पाई जाती जिसका कि कारण द्राक्षोज़ का अधो समाहरण है। वृक्षों में जो शर्करिद होती हैं उनका यह मान है। एक ← →शर्करिद द्विशर्करिद→ ← बहुशर्करिद। कर्बोदेतों में, द्वयोज और बहुशर्करिद द्वयोज अर्थात् मधुओलिन तथा मधुरिक मद्यानार्द्र प्रकाश संश्लेषण की प्रथम उपज कही जाती हैं यद्यपि वृक्षों में उनकी स्थिति संदेह जनक है। चतुरोज़ तक यह शर्करायें वृक्षों में नहीं रहती हैं यद्यपि उनमें से कुछ द्राक्षोषिद की उदविश्लेषण द्वारा पाई गई हैं। पंचोज़ वृक्षों में बहुत मिलती हैं और वे बहुधा पंचोज़ के रूप में मिलती हैं, तथा कभी कभी स्वतन्त्र पंचोज़ भी पाई जाती हैं वृक्षोंमें दारील पंचोज़ भी मिलती हैं।

षष्ठोज़ वृक्षोंकी शर्कराओंमें सबसे ऊँचा स्थान रखती हैं क्योंकि वे वृक्षों जानवरोंकी क्रियाओंके लिये उत्तरदायी हैं। वास्तवमें द्राक्षोज़ को शक्ति का मुख्य द्वार समझना उचित है, जो कि बहुत से वृक्षों तथा जानवरोंके कोष्ठो (cells) का कार्योंके संचालित करनेके योग्य बनाती हैं। षष्ठोज़ द-द्राक्षोज़ द-मनोज, द-दुग्धस्योज, तथा द-खोरबोज के रूपमें मिलती हैं विशेष कर द-द्राक्षोज के रूप में। वे प्रकाश ग्रामक रूपमें कार्य करती हैं, और उनकी इस क्रियाकी तथा पौधोंके असमसंगठिक संश्लेषण विवेचना करना बहुत कठिन है एक शर्करिदोंका नशास्ता (starch) के रूपमें बदल जानेका विषय, अभी तक सिद्ध नहीं किया जा सका है।
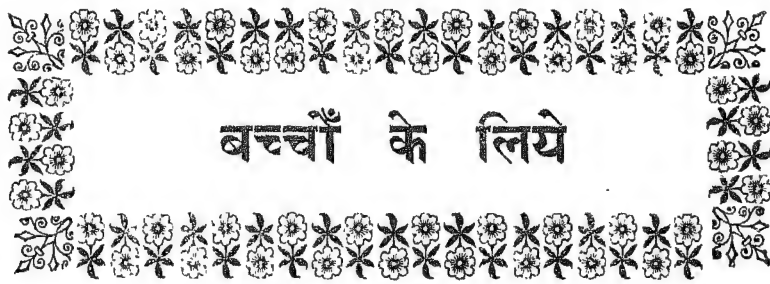
बच्चों के लिये

ऋतुएँ

जुलाईके महीनेमें सब स्कूल खुल जाते हैं। गर्मी की छुट्टियाँ ख़तम हो जाती हैं। अब भी गर्मी बहुत पड़ती है। दोपहर की धूपमें चलना कठिन हो जाता है और छाता लगा कर चलना पड़ता है। स्कूलोंके कमरोंमें पंखे चलाये जाते हैं। कभी कभी आँधी सी भी आ जाती है जिससे कमरोंमें धूल भर जाती है।

पर इन दिनों उतनी गरमी नहीं है जितनी कि एक दो महीने पहले थी। जुलाई महीनेके आरम्भसे ही आकाशमें बादल आने लगते हैं। बादलोंके आने पर गरमी कम हो जाती है। कभी कभी पानी भी बरसने लगता है। पानी बरसनेके बाद आकाश फिर साफ़ हो जाता है और फिर तेज़ धूप पड़ने लगती है।

गरमी गई और बरसात आ गई। किसी किसी दिन तो सुबहसे शाम तक पानी ही पानी बरसता रहता है। सूरजके दर्शन ही नहीं होते। दिनमें भी अँधेरा छा जाता है। मूसलाधार पानी बरसने लगता है। बादल गड़गड़ाने लगते हैं और बिजली भी कभी कभी चमक उठती है। आँखोंमें चकाचौंध हो जाता है।

पानीके ज़ोरसे पेड़की डालियाँ झुकने लगती हैं। छोटे छोटे पौधोंके सिर ज़मीनसे छू जाते हैं। बरसातकी यह ऋतु जुलाईसे अक्टूबर महीने तक रहती है। बताओ इस ऋतुमें, बाज़ारमें कौन कौन से फल बिकनेको आते हैं? आम, जामुन, खिन्नी, फालसा?

अक्टूबरके बादसे ही कुछ सरदी पड़ने लगती है। शामको सुबहको और रातको बहुत ठण्ड मालूम होती है। इस समय कम्बल या रजाई ओढ़नी पड़ती है। केवल एक चद्दरसे काम नहीं चलता। पर दोपहरको कभी कभी अब भी तेज़ धूप निकल आती है और गरमी लगती है।

नवम्बरके समाप्त होते होते जाड़ा आ जाता है। दिसम्बर, जनवरी और फर्वरीमें कड़ाकेका जाड़ा पड़ने लगता है। ऊनके कोट और रूईके कपड़े पहनने पड़ते हैं। लोग अँगीठी जला कर तापते भी हैं।

सुबह और शाम कभी कभी कोहरा भी छा जाता है। दूरकी चीज़ें नहीं दिखाई पड़तीं। बताओ आज कल कौनसे फल बहुत बिकने को आते हैं—अमरूद और बेर।

फर्वरीके अन्तमें जाड़ा कम होने लगता है। गर्मी फिर पड़ने लगती है। मार्च-अप्रैलसे लेकर मई जून तक बड़े ज़ोरोंकी गर्मी पड़ती है। मई जूनमें इतनी गर्मी पड़ती है कि स्कूलमें पढ़ना कठिन हो जाता है और छुट्टी कर दी जाती है। लू बड़े ज़ोर से चलने लगती है।

घरोंमें लोग दिन भर पंखे हाँकते रहते हैं। पसीना भी बहुत आता है। लोग बर्फ़का या सुराही का ठण्डा पानी पीते हैं। गरमीके कपड़े बहुत पतले होते हैं।

गरमीमें कौन कौनसे फल खानेको मिलते हैं—खरबूजा, तरबूज और ककड़ी।

इस तरह वर्ष भरमें तीन ऋतुएँ होती हैं। बरसात, जाड़ा और गर्मी। बरसातके बाद जाड़ा आता है, जाड़ेके बाद गर्मी, और गर्मीके बाद फिर बरसात आती है। सदा ऐसा ही होता रहता है।

निरीक्षण

१, आज कल कौन सी ऋतु है ?
२, आसमान साफ़ है या बादल घिरे हैं ?
३, आज कल कैसे कपड़े पहनते हो ?
४, बाजारमें कौन कौन फल बिकने को आते हैं ?
५, आज कल कौन कौन तरकारियाँ आती हैं ?
६, किसी खेतमें जाकर देखो कि वहाँ क्या क्या बोया गया है ?

बोलती फिरती फिल्में

MOVIES AND TALKIES

[ले० श्री हरिकुमारप्रसाद वर्मा एम० एस-सी०]

यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि सिनेमेटोग्राफीका जन्म उस समय हुआ जब शुष्क पटों (Dry plate) के द्वारा फोटो उतारने की कलामें अच्छी तरहसे उन्नति हो ली थी। सिनेमेटोग्राफी क्या है? सिलसिलेवार तसवीरों का एक एक करके काफ़ी जल्दी फोटो खींचना और तेज़ प्रकाश द्वारा परदे (Screen) पर इतनी शीघ्रता पूर्वक उनकी छाया डालना कि दर्शकोंको यह न जान पड़े कि पहली तसवीरको हटाकर दूसरी तसवीर दिखानेमें कुछ भी समय लगा है। ऐसा कर दिखाना इसलिए मुमकिन है कि हम सब लोगों की आँखोंमें एक दोष है जिसको दृष्टि निर्बन्ध (Persistence of vision) कहते हैं। अगर कोई वस्तु हमारी दृष्टिसे हटा ली जाय तो उसका चिह्न (Inpression) दिमागमें उसके हटाये जानेके लगभग १२४ सेकण्ड बाद तक बना रहता है। एक सफ़ेद पट्टे पर एक तरफ एक तोतेका चित्र बनाओ और दूसरी तरफ एक पिंजरेका। अब अगर इस पट्टेके टुकड़ेको शीघ्रतासे घुमाया जाय तो तोता पिंजरेके अन्दर दिखाई पड़ेगा। इसका कारण यह है कि दिमाग़से तोतेका चित्र मिट नहीं पाता कि पिंजरेका चित्र आकर अंकित हो जाता है। सिनेमामें जो तसवीरें दिखाई जाती हैं वह १६ प्रति सेकिण्डकी गतिसे खींची जाती हैं। परदे पर फेंकते समय हर तसवीर $\frac{1}{32}$ सेकिण्ड तक परदे पर ठहरी रहती है। फिर इतनी ही देर तकके लिए एक चक्कर खाते हुए शटर द्वारा रोशनी रोक दी जाती है। इसी बीचमें कल द्वारा पहली तसवीरकी जगह पर दूसरी आ जाती है। शटर जब हटता है तो परदे पर दूसरी तसवीर आ जाती है। दर्शकों को ऐसा ही मालूम होता है कि पहली तसवीर ही दूसरीमें बदल गई है।

इतिहास

सन् १८२४ ई० में पीटर मार्क रोजिट (Peter Mark Roget) ने रायल सोसायटीकी एक मीटिंगमें चलती फिरती चीज़ोंमें दृष्टि निर्बन्ध (Persistence of vision with regard to moving objects) पर एक लेख पढ़ा। इसी दृश्यको काममें लाते हुए एक खिलौनेका आविष्कार हुआ जिसका नाम जोट्रोप (Zoetrope) या जीवन-चक्र (Wheel of life) पड़ा। इसके द्वारा गतिके बहुतसे स्वरूपोंको प्रदर्शित करने वाले चित्र देखे जाते थे।

सन् १८६० ई० में सेलर्स (Sellers) ने काइनेमेटास्कोप बनाया, जिसमें वह ज़ोट्रोपके सिद्धान्तके साथ फोटोग्राफी भी काममें लाए। १८७० ई० में हायल साहिब (Heyl) ने बैरन उचेटियस (Baron Uchatius) के आविष्कारको सहायता लेकर फेसमेट्रोप (Phasmatrope) बनाया। उन्होंने ६ फ़ोटोग्राफ लेकर हर एककी तीन तीन कापी एक पहिये पर लगाईं और उसको रेचेट और पौल प्रक्रिया (Ratchet and Pawl mechanism) से इस तरह चलाया कि परदे पर फेंकने पर तस्वीर कुछ देरके लिये ठहरी रहती थी। यह बात बड़े महत्वकी थी।

सन् १८७२ ई० में माईब्रिज (May bridge) ने* २४ केमरे एक कतारमें रक्खे और पीठ (back-ground) के लिये एक सफेद परदा लगा दिया। जैसे ही घोड़ा केमरेके सामने आता था वैसे ही उसका परदा खुल जाता था और तसवीर खिंच जाती थी। इस तरहसे उसने बहुत से जानवरोंकी चलते फिरते हुए और दौड़ते हुए, कूदते हुए, कुश्ती लड़ते हुए आदमियोंकी तसवीरें खींचीं। दूसरे साल इन सिलहूटी (silhouettey) को लेकर वह फ्रान्स गया। इनमेंसे बहुत सी तसवीरें ऐसी अजीब मालूम होती थीं कि कोई

* घोड़ोंकी फोटो लेनेके लिए जब कि वह चल फिर रहे हों।

चित्रकार उस प्रकार चित्रमें नहीं बनाता मगर परदे पर सिलसिले वार फेंकने पर उनमें कोई गलती नहीं दिखाई देती थी । बहुतसे केमरोंकी जरूरत होनेके कारण इस विधिमें व्यापारिक सफलता नहीं हो सकती थी फिर भी माईब्रज साहिब सिनेमेटोग्राफीके जन्मदाता ख्याल किए जाते हैं।

जिस तरह कि पेट्रोल-मोटरके बग़ैर ऐरोप्लेन का बनाया जाना नामुमकिन था उसी तरहसे सेलूलायड फ़िल्मके बिना दुनिया सिनेमा घरोंसे ख़ाली होती । सेलूलायडको जिसका नाम उसके आविष्कारक पार्कस साहब पर पारकेसीन पड़ गया था, लोग बहुत दिनोंसे काममें ला रहे थे मगर इसका फोटो खींचनेके लायक पतला फिल्म बनाना बहुत दुष्कर कार्य्य निकला । ईस्टमेन साहबके लगातार पांच साल तक लगे रहनेके बाद सन् १८८६ ई० में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई । उसी साल एडीसन (Edison) ने अपनी मशीन कायनेटासकोप (Kinetoscope) और पचास फीट इस्टमेनके बनाए हुए फिल्म द्वारा यह दिखा दिया कि चलती फिरती तसवीरें सिर्फ ख्याली चीज़ ही नहीं हैं।

कायनेटास्कोप एक पीप-शो-विधि अर्थात् झाँक कर देखनेकी विधि (Peep-show device) थी जिसमें कि फिल्म अभिवर्धक ताल और लेम्पके बीचमें लगातार चलता रहता था। इस मशीनमें पचास फीट फिल्मकी एक रील लगती थी । इस फिल्म पर ४८ फी सेकिण्डके हिसाबसे तसवीरें खिंची रहती थीं। यह तमाशा १३ सेकण्डमें समाप्त हो जाता था । ऐडीसन महोदय भी इसको एक खेल ही समझते थे, यहां तक कि उन्होंने ग्रेट ब्रिटिनमें काइनेटास्कोपको पेटेंट करानेकी भी आवश्यकता न समझी । उनके बनाए फिल्मका आकार और इसमें जो किनारे पर छेद होते हैं उनकी तरतीब बिलकुल वैसी थी जैसा कि आज कलके फिल्मोंमें होती है। कायनेटास्कोपमें फिल्म बराबर चलता रहता था जिसकी वजहसे तस्वीरें परदे पर मद्धिम, और धुँधली दिखाई पड़ती थीं । सन् १८९५ ई० में पाल महोदय (Paul) ने एक यन्त्र बनाया जिसका नाम उन्होंने थेट्रोग्राफ (theatrograph) रक्खा था। इसके द्वारा तस्वीर फेंकनेके बाद थोड़ी देर परदे पर ठहराई जा सकती थी।

उस वक्त तक जितनी मशीनें प्रचलित हुई थीं वह सब एक प्रकारकी ही थीं । इसी साल लुई और अगस्टे लूमियर (Louis and Auguste Lumiere) ने सिनेमेटोग्राफ (Cinematograph) का आविष्कार किया । इसमें उन्होंने किनेटास्कोप (Kinetoscope) के फिल्मको मैजिक लैण्टर्न द्वारा परदे पर फेंका । इस तस्वीरको एक ही समय में बहुतसे दर्शक देख सकते थे जिससे आमदनी भी ज्यादा होती थी । सिनेमेटोग्राफसे केमरा, फिल्म छापनेकी मशीनें और प्रोजेक्टर तीनों कार्य लिये जा सकते थे। ऐडीसन ने फिल्म पर ४८ तसवीरें प्रति सेकिण्ड खींचनेकी प्रथा डाली थी मगर इन लोगों ने १६ तसवीरें प्रति सेकिण्ड खींचना शुरु कीं । मूक फिल्मोंका अभी तक यही आदर्श चला आता है।

परदे पर चलती फिरती तसवीरोंका व्यापारिक जीवन २३ अप्रेल सन् १८९६ ई० से शुरू हुआ। उस रातको न्यूयार्कके कास्टर और बायलके संगीतालय (Coster and Bial's) में वीटास्कोप (Vitascope) काममें लाया गया था । थोड़े दिनों बाद ही १००० फीट लम्बे फिल्म इस्तेमाल होने लगे । यही आज कलके आदर्श फिल्मकी इकाई एक रील (Reel) है।

सन् १९०३ ई० में पाल साहब ने पहले पहल 'रेलगाड़ीमें भयङ्कर डकैती' (The great train robbery) नामक एक उपन्यासकी कहानीका फिल्म बनवाया, यह एक रील लम्बा था। तबसे कहानियोंके सैकड़ों फिल्म बन चुके हैं। उस ज़माने के कहानियोंके फिल्म केवल एक रील ही लम्बे होते थे। सन् १९०७ ई० में 'बेन-हर' (Ben-Hur)

नामक फिलम १६ रीलोंमें बना था। सीरीअल का विचार सन् १६१५ ई० के करीबसे आरम्भ हुआ जब कि पहले हास्य 'फिलीके पंकचर्ड रोमांस' (Fillie's Punctured Romance) का फिलम बनाया गया था। इस शताब्दीके शुरूमें अमरीका, इङ्गलैंड, फ्रान्स, जरमनी इटली वगैरःमें फिलम बनानेके स्टूडियो खुल गए थे मगर लड़ाई छिड़ जानेके कारण अमरीका ही ने इस कारबारमें सबसे अधिक उन्नतिकी है, और वहांके बने हुए फिलम दुनिया भरमें चक्कर लगा रहे हैं। सन् १६२८ ई० में अमरीकामें बोलने वाले फिलम बनने लगे थे। इनके द्वारा आगे आनेवाली नसलें आजके बड़े बड़े आदमियोंकी असली बोली सुन सकेंगी।

सिनेमा ने कितने महत्वकी जगह हासिल कर ली है इस बातसे विदित हो जायगा कि सन् १६२५ ई० में दुनियामें ५०,००० सिनेमा घर थे। इनमें से २०,००० केवल यूनाइटेड स्टेटस आफ अमरीकामें थे, ३५०० ग्रेट ब्रिटेनमें, २२०० इटली में, ४००० जर्मनीमें और ३००० फ्रान्समें। सन् १६१० ई० में यूनाइटेट स्टेट्समें केवल ६००० सिनेमा घर थे। इस देश ने सन् १६१३ ई० में ३२,०००.००० फीट, सन् १६२४ में १७८,०००,०००, फीट और सन् १६२५ ई० में २३५,०००,००० फीट फिलम देशोंको भेजे थे।

विधि

निगेटिव बनाने के लिए जो फिलम काम में लाया जाता है वह ३५ मिलीमीटर (या १'३८ इञ्च चौड़ा होता है और उसकी लम्बाई २०० फीट से १०० फीट तक होती है। यह दो प्रकार का होता है। एक प्रकार के फिलम पर मामूली रफ़्तार से फोटो लिये जाते हैं। दूसरे प्रकार पैंक्रोमेटिक फिलम की होती है जो तस्वीर लेने के वक्त तेज़ रफ्तार पर चलाए जाते हैं। निगेटिव और पाज़िटिव फिलम की चौड़ाई में दोनों सिरे पर सूराख़ होते हैं जिनसे वह मशीन में चलाए जाते हैं। फिलम और इन सूराखों की लम्बाई और चौड़ाई ख़ास तौर से निश्चित की जाती है:—

सूराखों की लम्बाई	०'११० इञ्च
" " चौड़ाई	०'०७८ इञ्च
फिलम की चौड़ाई	१'३७७५ इञ्च
दो सूराख़ोंमें फ़ासला (चौड़ाईमें)	०'६६६ इञ्च
" " " " (लंबाईमें)	०'१८७ इञ्च

एक सूराख के बीच से दूसरे सूराख़ के बीच की दूरी १'१०६ इञ्च (फिलम की चौड़ाई में)। सिनेमा में जितनी मशीनें, केमरा इत्यादि काम में आती हैं वह केवल इसी फिलम के लिये बनाई जाती हैं।

केमरा—सिनेमा में दिखाने के लिए जिन केमरों से तसवीरें उतारी जाती हैं वह बहुत कीमती होते हैं। वह इस प्रकार बने होते हैं कि पूरी रील में से फिलम का थोड़ा २ हिस्सा एक खिड़की के सामने जिससे रोशनी आ सकती हो, लाया जा सके। ताल और खिड़की के बीच में एक परदा होता है। उसके द्वारा जब तक फ़िलम चलता रहता है तब तक उस पर प्रकाश नहीं पड़ने दिया जाता मगर जब फिलम ठहरा हुआ होता है तो वह उठ जाता है। तस्वीरें दिखाने की जो रफ्तार है फोटो खींचते समय फिलम की उससे अठगुनी तक रफ्तार हो सकती है। केमरा में २०० फ़ीट से लेकर १००० फ़ीट तक लम्बी फिलम की रीलें आ सकती हैं। जिस केमरा में बोलते हुए फिलम की तस्वीरें उतारी जाती हैं वह एक ऐसे बक्स में बन्द रहता है जिसको ध्वनि न भेद सके। उसमें रोशनी जाने के लिए विशेष प्रकार के मोटे शीशे की खिड़कियाँ लगी रहती हैं। बड़े छिद्र ताल जिनकी दृष्टि-वैषम्यिक-नाभि-दूरी २ या ३ इञ्च होती है प्रयोग में लाये जाते हैं। फिलम को रोशनी से बचाने के लिए दो परदे होते हैं, एक ताल के साथ होता है और दूसरा शटर जो हर केमरे में होता है और जिसमें छिद्र (या खिड़की) को घटाने बढ़ाने का भी इन्तज़ाम होता है। तस्वीरें

खींचने की औसत रफ्तार १६ प्रति सेकिण्ड है। चित्रालयों के प्रकाशित करने के लिए चाप-दीप इस्तेमाल किये जाते थे मगर अब तुल्फ्राम-तन्तुदीप (Tungstan filament lamp) ज्यादा काम में लाए जाने लगे हैं। नेगेटिव को 'एक्सपोज़' करने के बाद उसको जल्दी से 'डेवलप' कर लिया जाता है ताकि अगर किसी दृश्य की तस्वीर ठीक न उतरी हो तो उसका फ़ोटो फिर से लिया जा सके। दृश्य की चीज़ों को फिर से जुटाने के लिये बहुत ज़्यादा खर्च पड़ता है। निगेटिव बहुत ही कीमती होते हैं क्योंकि उनकी तय्यारी में बहुत रुपया ख़र्च होता है इसलिये उन्हे जल्दी ख़राब होने से बचाना भी आवश्यक होता है। इस लिए उनका 'फिक्स' करना, धोना और सुखाना बड़ी होशियारी से किया जाता है। डेवलप करनेके बाद पहले 'प्रिण्ट' जो लिए जाते हैं वह 'रश' (rushes) कहलाते हैं। उनका उद्देश्य यही होता है कि अगर फ़ोटो ठीक नहीं उतरी है तो फिर दूसरी फ़ोटो फ़ौरन ही खींची जा सके। फिर पूरी कहानी के निगेटिव इकट्ठा करके उनका 'प्रिण्ट' लिया जाता है। इसे दिखाने वाली कम्पनी (producing company) के पास भेज दिया जाता है ताकि फिल्म सम्पादक उसे काट छाँट कर फ़िल्म में वही हिस्सा रहने दें जो अन्तिम चित्र में रहेगा।

पाज़ेटिव फ़िल्म बनाने के लिए निगेटिव और पाज़िटिव फ़िल्म दोनों को साथ २ केमरा में उसी प्रकार चला कर 'एक्सपोज़' किया जाता है जिस प्रकार फ़ोटो खींचते समय किया था। प्रकाश की तीव्रता दृश्यकी आवश्यकता अनुसार घटाई बढ़ाई जा सकती है और यह निगेटिवसे पार होकर पाज़ेटिव तक पहुँचता है। पाज़ेटिव फ़िल्मका डेवलप करना इत्यादि स्वयं चलने वाली मशीनों द्वारा किया जाता है। रङ्गीन फिल्म और कई प्रकार के टोनिंग (Toning) के काम में लाकर परदे पर नाना प्रकार की लुभावनी तस्वीरें दिखाई जाती हैं।

सिनेमा में स्वाभाविक रंग

जो लोग इस कार्य्य के कर रहे हैं उनका सदा यही उद्देश्य रहा है कि काले और सफ़ेद के बजाय उन्हीं रङ्गों में फोटो उतार सकें जैसा कि हम देखते हैं। सिनेमा में अभी तक अरबन स्मिथ महोदय (Urban-Smith) महोदय की सिनेमारंग-विधि (Kinema-color process) ही को सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है इसी लिए इसी का वर्णन किया जाता है। न्यूटन महोदय ने यह सिद्ध किया था कि सात रंगों (यानी लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला और बैंगनीको मिला कर सफ़ेद रंग बना है। सूर्य्य के प्रकाश को त्रिपार्श्व में प्रवेश करके जो किरण-चित्र आता है उसमें यही रंग रहते हैं। अगर हरी, नीली और लाल लालटेनों की रोशनी परदे पर एक ही जगह पड़ रही हो तो वह जगह सफ़ेद रंग की दिखाई देगी। अगर लाल और हरे रंग की लालटेनों की रोशनी परदे पर एक ही जगह पड़े तो वह भाग पीला दिखाई देगा। अगर एक ही लालटेन में हरे, लाल और नीले काँच के परदे लगा दिये जायँ तो अंधेरा हो जायगा और प्रकाश बाहर न आ सकेगा। स्वाभाविक रंगों के फ़िल्म बनाने में यही सिद्धान्त काम में लाया गया है।

तीन पैंक्रोमेटिक फ़िल्म लेकर एक पर लाल, दूसरे पर हरे और तीसरे पर नीले रंग के रंगदार छन्नों द्वारा फ़ोटो खींची जाती है। इन निगेटिवोंका पाज़िटिव बनाकर उसको एक सफेद परदे पर हर एक फिल्म एक विशेष प्रकारके प्रकाशसे फेंका जाता है यानी जिस पाज़िटिव फिलमका निगेटिव लाल रंगकी रोशनीसे बना है उसे लाल ही रङ्गके प्रकाशसे फेंकते हैं। तीनों बिम्ब परदे पर एक ही जगह पड़ते हैं। ऐसे फिलम की रफ्तार मोनोटोन फिलमकी रफ्तारसे तिगुनी होनी चाहिये यानी ४८ तसवीरें प्रति सेकिण्ड। इसमें एक बड़ी खराबी थी कि जब फिलम इतनी

तेज़ीसे चलाया जाता था तो वह बहुत जल्दी टूट जाता था। बादमें यह पता चला कि कृत्रिम प्रकाश में बहुधा नीले रङ्गकी किरणोंकी कमी रहती है इसलिये नीले रङ्गके परदेकी विशेष आवश्यकता नहीं है।

सिनेमारंग-विधिमें केवल दो परदे ही काममें लाये जाते हैं। एक लाल रंगका और दूसरा हल्के हरे रङ्गका जिसमें नीचे प्रकाशका कुछ अंश बाहर आ सके। निगेटिव बनाते समय फिल्म मालूमीसे दूनी चाल पर चलाया जाता है और प्रकाश तक पहुँचनेके पहले एक घूमते हुए वर्ण-पटसे जिसमें एक हरा और एक लाल पारदर्शक जिलेटिन का टुकड़ा लगा रहता है होकर जाता है, शेष क्रिया पोजिटिव फिल्म बनाने तक सब उसी प्रकार होती है। परदे पर फेंकते समय संग्राहकके आगे एक वैसा ही घूमता हुआ वर्ण-छन्ना लगा रहता है। फिल्मको ३२ तस्वीरें या दो फीट प्रति सेकिंड की चालसे चलाते हैं। इन तस्वीरोंमें नीले और बैंगनी रङ्गोंकी कमी रहती है।

परदे पर फेंकनाः—फिल्म सेलूलायडका बनाया जाता है और उसमें बड़ी जल्दी आग लग सकती है, इसलिये तसवीर फेंकने वाले कमरे (Projecting room) की दीवारें लोहेकी चादरोंकी या सिमंट की बनाई जाती हैं जिसमें आग लग जाने का डर न रहे। जिस सिनेमा-घरमें ऐसी तस्वीरें जो कई रीलोंकी हों दिखाई जाती हैं वहां पर दो मशीनें रखते हैं ताकि एक रीलके ख़त्म होते ही दूसरी मशीन पर बाद वाली रील चलने लगे, नहीं तो जितनी देर रील बदलनेमें लगे उतनी देर दर्शकों को इन्तजार करना पड़े। तसवीर फेंकनेकी मशीनें तस्वीर खींचने वाले कैमरा ही की तरह होती हैं। उनमें फिल्म बराबर नहीं चलता रहता बल्कि रुक रुक कर चलता है। जब तक फिल्म चलता रहता है तब तक एक परदा रोशनी रोके रहता है और जब वह ठहरा है तो परदा भी हट जाता है। परदे की इस गतिको (Matese cross movement) कहते हैं प्रकाशकी कंपकंपी। (Flicker) को कम करनेके लिये एक विशेष प्रकारका परदा लगाया जाता है और चित्र फेंकते समय फिल्मकी चाल तेज़ कर देते हैं। तस्वीर खेंचते समय फिल्मकी चाल ६० फीट फी मिनट होती है और चित्र फेंकते समय औसत चाल ८५ फीट प्रति मिनट होती है। चाप-प्रकाशसे चित्र फेंके जाते हैं। फिल्म दिखानेके बाद उसे खोल कर देख लेना और अगर किसी जगह पर खराब हो गया हो तो उसकी मरम्मत कर देना अत्यन्त आवश्यक है। आज कल तो दुनियाकी बड़ी घटनायें उनके होनेके कुछ दिनों बाद ही बड़े बड़े सिनेमा घरोंमें दिखाई जाती हैं।

केमराका जादू

(Camera magic)

सिनेमाके प्रसिद्ध होनेका एक कारण यह है कि फोटोग्राफीकी चालाकियों द्वारा ऐसी बातें दिखाना जो दर्शकोंको अद्भुत मालूम पड़ें एक सरल बात है। जैसे एक पहलवान भालूसे कुश्ती लड़ रहा हो लड़ रहा हो और लड़ते २ भालू एकाएक गायब हो जाय या उसकी जगह एक शेर आ जाय या एक मट्टीका ढेर धीरे २ अपने आप ही एक खूब-सूरत खिलौना बन जाय, ज़मीनसे उड़ कर ईंटें एक सुन्दर मकानका रूप धारण करलें या रंदे अपने आप लकड़ी रन्दने लगें, ज़रा सी देरमें बीजसे पौधा निकले, बढ़े, फूले फले और मुर्झा भी जाय। इसी तरहकी न जाने कितनी बातें हम लोग सिनेमा में रोज़ देखते हैं।

सिनेमा केवल दिल बहलानेका तमाशा ही नहीं है। मुश्किल चीड़ा फाड़ीके फिल्म बनाकर विद्यार्थियोंको दिखाये जाते हैं ताकि वह भी बड़े २ चिकित्सकोंकी तरह निपुण बन जाँय। सिनेमा और रौञ्जन रश्मिके द्वारा दिल की धड़कनका पूरा हाल मालूम हो गया है। केमराके खटकेको दूरसे दबाने का प्रबन्ध करके जंगली जन्तुओंके रहन सहनके

चित्र बनाए गये हैं। विशेष प्रकारकी डुब्बक घंटियाँ (Diving bell) बनाकर समुद्री जन्तुओंके जीवनका हाल बहुत कुछ मालूम हो गया है। योरुप और अमरीकामें बच्चोंको पढ़ानेके लिये सिनेमाका प्रयोग बहुत बढ़ गया है।

लगातार चलती फिरती तसवीरें

हाल हीमें एक नई मशीनका आविष्कार हुआ है जिसका नाम वैनास्कोप (Vanoscope) रक्खा गया है। इसमें फिलम बराबर चलता है और दर्शकों को ८ तस्वीरें प्रति सेकिंड दिखाई जाती हैं। इससे प्राकृतिक रंगकी सिनेमेटोग्राफीको बहुत सहायता मिलनेकी सम्भावना है।

साधारण सिनेमेटोग्राफी

(Amateur cinematography)

बड़े बड़े चित्रालयोंमें फिलम बनानेके लिये जो केमरा काममें आते हैं वह बहुत कीमती होते हैं। बाज़ारमें ऐसे केमरा भी आने लगे हैं जिनके द्वारा कोई भी आदमी फिलम बना सकता है। पाथे कम्पनी ने एक फिलम बनाया है जिसकी लम्बाई ६ मीटर और चौड़ाई ९½ सहस्रांश मीटर होती है। तस्वीर खींचनेके बाद इसके डेवेलप करनेका एक विशेष तरीका है जिससे निगेटिवका पाजिटिव बन जाता है, और तुरन्त ही मशीनमें इस्तेमाल हो सकता है। इसी प्रकारका फिलम ईस्टमेन कोडक कम्पनी सन् १९२३ से बना रही है। इसकी चौड़ाई १६ सहस्रांश मीटर होती है। बिजली द्वारा चलाए जाने वाले हलके केमरा और तसवीर फेंकने की मशीनें वैज्ञानिक और चिकित्सक लोगोंके बड़े कामकी वस्तु हैं। ऐसे छोटे आकारकी थियेटरी फिलमोंकी नकलें भी बाजारमें मिल सकती है।

ध्वनियोंसे संयोजन

(Synchronization with sound)

बोलते हुये फिलम दो प्रकार के हैं। (१) फिलम के साथ साथ एक रेकार्ड बना कर उसे परदे पर फेंकते समय ग्रामोफोनकी तरह बजाते हैं। रेकार्ड पर चलने वाली सुईकी कम्पन एक वैद्युतिक कुंडली में कम्पन पैदा कर देती है जो एक त्र्योद कपाट (Three electrode valve) द्वारा विकसित होकर एक विद्युत्-भोंपू (Electric loudspeaker) की सहायतासे दर्शकोंके सुनाने योग्य आवाज़में परिवर्तित हो जाती है।

(२) आवाज़को सूक्ष्मदर्शक द्वारा विद्युत् धारा में परिवर्तित कर देते हैं। इसको विकसित करके एक बिजलीकी बत्ती जलाते हैं। जिसका प्रकाश धाराके साथ २ तीव्र और मद्धिम होता रहता है। इसी प्रकाशके द्वारा फिलमके सिरे पर लगभग १/१० इञ्च चौड़ी पट्टी पर ध्वनि चित्र बनाया जाता है। परदे पर फेंकते समय ध्वनि चित्र की रोशनी एक प्रकाश विद्युत् बाटरी पर डाल कर विद्युत्में परिवर्तित की जाती है, फिर ऊपर लिखे हुए तरीकेसे आवाजकी जाती है।

जबसे बोलते हुए फिलम बनने लगे हैं तभीसे सिनेमेटोग्राफी में विद्युत काममें लायी जाने लगी है। ३५ वर्षके समयमें ही सिनेमेटोग्राफीने कितनी अधिक उन्नति करली है। वह दिन दूर नहीं है जब हम रंगदार सिनेमेटोग्राफी में भी महत्व पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेंगे।

मुफ़्त ! मुफ़्त !! मुफ़्त !!!

आजसे पहले जो मंत्र २) रु० में मिलता था अबसे १५ दिन तक मुफ्त भेजा जायगा—

यह मंत्र संसार भरके जादू, मन्त्र-तन्त्र और ज्योतिषके गुणोंसे बढ़ कर है। इसके सेवन करनेसे प्रत्येक कामनायें पूर्ण होंगी जैसे रोज़गारमें फायदा, मुकद्दमा में सफलता, सन्तानका होना—परीक्षामें पास होना—इच्छानुसार नौकरी मिलना जिसको चाहना वश में कर लेना—हर एक प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पाना और दूरके गये हुये मनुष्यका हाल चन्द मिनटमें जान जाना। भूत प्रेत इत्यादि को काबू में कर लेना। स्वप्न दोषका दोष मिटना मरे हुये आदमीसे बातचीत करना—राज दरबारमें आदर पाना इत्यादि। आशय कि इसके सेवनसे हर एक प्रकारकी कठिनाइयोंसे छुटकारा मिलता है। जिस कामको शुरू कीजियेगा। अवश्य सफलता होगी और विजय होगी—यह मन्त्र केवल १५ दिन तक मुफ्त भेजी जायगी यह समय बीत जाने पर मन्त्र का मूल्य २) प्रति मन्त्र होगा और ३ मन्त्र का ५॥) होगी और डाक खर्च ॥=)—याद रहे कि यह मंत्र मरे हुओं की १ पुस्त तक का हाल बतायेगा, दूसरी पुस्तके हम जिम्मेवार नहीं। झूठा साबित करने वाले मनुष्य को १५) रु० इनाम दिया जायगा। सन्तानके चाहने वाले मर्द और औरत दोनों इस मन्त्र को मंगावें।

पता—दत्त कम्पनी १६३/१ मसजिद बारी स्ट्रीट पोस्ट बीडन स्ट्रीट कलकत्ता
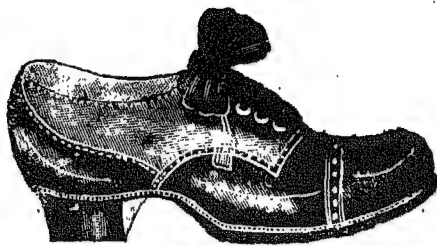
ग्रान्ड क्लियरेन्स सेल।

केवल २) रु० में ७०१ सुन्दर, खूबसूरत और मजबूत चीजें।) हमारी ४ शीशी ओटोके खरीदने वाले को निम्न लिखित चीजें मुफ्त मिलेंगी।

१ सुन्दर गोल्ड गिल्ट टाय रिष्ट वाच, १ बाजा, १ सुन्दर रूमाल, १ नगीनादार पत्थरकी अँगूठी, एक फैंसी शीशा (आइना) १ कंघी, १ खुशबूदार साबुन, १ शीशे की पेन्सिल, १ क्लिप १ फाउनटेन कलम, १ डायर, १७४ ब्ल्यू ब्लैक स्याही की टिकिया, १ जोड़ी पारसी मकड़ी, १ बटुवा, जोड़ी जूतेका फीता, १ चाकू, १ जोड़ी कानकी बालियां, १ चश्मा, १ टाय जेब घड़ी, २४ सेफ्टीपिन, ५० पानी से उतारने वाली तसवीरें, २५ निब, १२ बालोंके पिन, १ जोड़ी गोटर १ रबड़ का गुब्बारा, १ सेफ्टी रेजर ब्लेड, २५ सुइयां, ६ रबड़ की सीटियां, १ सुन्दर कलम, १ जोड़ी जीन का जूता (आर्डरके साथ पैर का नाप अवश्य भेजना चाहिये) १ पिस्तौल, १ नाक छबी, १ मुंह का बाजा। मूल्य इनाम सहित केवल २) रु० डांक महसूल अलग।

पता—FRANCE WATCH CO.
15-I, Joymitter Street,
P. O. Hatkhola, Calcutta.

पूर्ण संख्या— १६८

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. **Reg. No. A. 708.**

भाग ३३ VOL. 33. | कन्या, संवत् १९८८ | संख्या ६ No. 6

सितम्बर १९३१

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—पृथ्वीका आकार विस्तार और तौल—[ले० श्रीजगपति चतुर्वेदी] ...	२४१
२—पौधोंका भोजन—[ले० श्री एन० के० चटर्जी एम० एस-सी०]	२४६
३—वायुयान—[ले० श्रीश्यामलाल कुटरियार]	२५३
३—यक्ष्मा—[ले० श्री कमलाप्रसाद जी, एम० बी०]	२५५
४—बच्चोंके लिये—	२६०
६—प्राचीन हिन्दुओंकी गानविद्या—[अनु० श्री गंगाप्रसाद, उपाध्याय, एम० ए०]	२६५
७—गन्ध—[ले० सत्यप्रकाश] ...	२७०
८—चौदह प्रश्न—[ले० श्रीजगपति चतुर्वेदी]	२७३
९—हेनरी मोआयसां—[ले० श्री० आत्माराम जी राजवंशी एम० एस-सी०] ...	२७८
१०—फैराडे शताब्दि—[ले० श्रीयुधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी०] ...	२८२
११—मराठी का वैज्ञानिक साहित्य और पारिभाषिक शब्द—[ले० सत्यप्रकाश]	२८४
१२—समालोचना—	२८८

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३३ } कन्या, संवत् १९८८ { संख्या ६

पृथ्वीका आकार विस्तार और तौल

१—पृथ्वीका आकार

[ले० श्री जगपति जी चतुर्वेदी]

जब छोटे छोटे बालक पाठशालाओंमें पढ़ते हैं तो उन्हें अन्य विषयोंकी शिक्षाके साथ भूगोलका भी पाठ पढ़ाया जाता है। भूगोल पढ़नेसे उन्हें ज्ञात होता है कि पृथ्वीका आकार और विस्तार कैसा और कितना है, भूतल पर कितना जल खण्ड और कितना स्थल खण्ड है, पृथ्वीकी मुख्य उपज क्या है, और उस पर कैसी जातियाँ निवास करती हैं। इस प्रकार भूगोलका ज्ञान प्राप्त करते हुए बालकोंको ज्ञात होता है कि पृथ्वी नारंगी की तरह गोल है और उसका विस्तार बहुत अधिक होनेके कारण मनुष्यकी दृष्टि बहुत कम दूर तक ही पहुँच सकती है जिससे भूतल चपटा मालूम पड़ता है। परन्तु इन बातों को रटने के अतिरिक्त बालकोंको इसका कुछ भी पता नहीं होता कि लोगों ने पृथ्वीके गोलाकार होने वा उसके विस्तार का किस प्रकार ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त किया।

बहुत ही प्राचीन कालमें पृथ्वीको देख कर सभ्य जातियों ने इसका ठीक ठीक आकार और विस्तार जाननेके लिए अवश्य प्रयत्न किया होगा परन्तु उनको ठीक ज्ञान प्राप्त हो सकना कठिन था। मनुष्यकी जहां तक पैदल पहुँच हो सकती थी वहाँ तक चल कर जब उसने देखा कि भूमि सर्वत्र चपटी ही दिखाई पड़ती है तो उसका यह अनुमान करना स्वाभाविक ही था कि पृथ्वी चपटी है। उसने स्थान स्थान पर गहरे गर्त और ऊँचे पर्वतों को धरातल पर देखा किन्तु उन ऊँचे नीचे स्थानोंसे पृथ्वीके चपटेपनमें कोई सन्देह करनेका कारण नहीं था। जिस प्रकार सड़कमें ऊँचे नीचे स्थान हो सकते हैं उसी तरह धरातलमें भी ये ऊँचे नीचे स्थान थे।

यदि पृथ्वी नारंगीकी तरह गोल आकारकी थी तो एक स्थानसे चलना प्रारम्भ कर उसकी परिक्रमा कर फिर उसी स्थान तक पहुँचना सम्भव था परन्तु उन दिनों ऐसे साधन नहीं थे जिससे इतनी अधिक लम्बी यात्राकी जा सके। समुद्रमें चलने वाले जहाजों पर इतनी दूरकी यात्रा नहीं हो सकती थी और समुद्रको छोड़ भूखंड पर तीव्र गतिसे यात्राके साधन नहीं थे। दूसरे, सारे भूमण्डलमें भूखंड फैला भी न था। इन कारणोंसे बहुत दिनों तक पृथ्वीके चारों ओर घूम आनेकी किसीको कल्पना भी नहीं हुई जिससे पृथ्वीका गोलाकार होना सिद्ध हो जाय।

इन बातोंके होने पर भी कुछ विद्वानों ने प्राचीन कालमें ही अपने बुद्धिबलसे गणित द्वारा पृथ्वीका गोलाकार पिंड होना ज्ञात किया। इन विद्वानोंमें भारतीय ज्योतिषी आर्यभट्टका नाम उल्लेखनीय है। इसने ज्ञान किया था कि पृथ्वी गोल आकारकी है और लट्टूकी तरह नाच रही है। इसके नाचनेसे ही दिन रात होते हैं। आर्यभट्टके पश्चात् कितने ही ज्योतिषियों ने उसके सिद्धान्तका खंडन करने का प्रयत्न किया था अतएव इस बातको दृढ़ता पूर्वक कह सकना बड़ा कठिन था कि किसका सिद्धान्त सत्य है। इस दुविधाको दूर करनेमें वैज्ञानिक परीक्षणोंकी सहायता अपेक्षित थी।

इस बातको बराबर देखते आए हैं कि चन्द्रमा प्रति रात्रि घटता बढ़ता है, इसे उसकी कलाका घटना बढ़ना कहते हैं। चन्द्रमाके इस परिवर्तनके साथ उसमें एक और परिवर्तन होता है जो सदा नहीं होता, कभी कभी ही होता है। यह हम लोग जानते हैं कि चन्द्रमा स्वयं प्रकाशमान नहीं है, उस पर सूर्यका प्रकाश पड़नेसे ही वह प्रकाशित होता है। अब इस प्रकाशसे उसका पूर्ण रूप दिखाई पड़ता है तो उसे पूर्ण चन्द्र या पूर्णिमाका चन्द्र कहते हैं। कभी कभी जब पूर्ण चन्द्र दिखाई पड़ना चाहिये तो उसका कुछ या पूरा अंश दृष्टिसे ओझल हो जाता है। इसे ग्रहण लगना कहते हैं। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा पृथ्वीका परिक्रमा करता है। जब उसके परिक्रमा करने पर कभी पृथ्वी सूर्य और उसके बीचमें आ जाती है तो पृथ्वीके कारण उस तक सूर्यका पूरा प्रकाश नहीं पहुँचता अर्थात् पृथ्वीकी उस पर छाया पड़ती है। यह देखा गया है कि ग्रहणके समय पृथ्वीकी यह छाया सदा गोल ही होती है।

यह निश्चित बात है कि प्रत्येक अवस्थामें गोल छाया उत्पन्न करने वाली वही वस्तु हो सकती है जो गेंदकी तरह गोल हो। यदि कोई वस्तु गोल तख्ते या दफ्तीकी तरह चपटी गोल हो तो उसकी छाया केवल एक अवस्थामें भी गोल हो सकती है जब कि प्रकाश डालने वाली वस्तु और जिस वस्तु पर प्रकाश पड़े उनके मध्य उस वस्तुका धरातल प्रकाशकी रेखासे समकोण बनाता हो। अतएव हम यह परिणाम निकालते हैं कि या तो पृथ्वी एक गोल तख्तीकी तरह है जो सूर्य किरणोंके समक्ष एक ही स्थितिमें रहती है या यह गेंद या नारंगीकी तरह गोलाकार है।

पृथ्वीका धरातल वक्र है इसका प्रमाण सहज हो सकता है। यदि हम किसी समतल भूभागमें चल रहे हों और कहीं अधिक दूरी पर कोई ऊँचा मन्दिर या भवन हो तो दूरसे पहले उसका ऊपरी भाग ही दृष्टि गोचर होगा, फिर कुछ आगे बढ़ने पर कुछ नीचेका भाग दिखाई देगा, उससे आगे बढ़ने पर और नीचेका भाग दिखाई पड़ेगा। फिर निकट आने पर वह मन्दिर पूर्ण रूप में दिखाई पड़ेगा। यही निरीक्षण यदि समुद्रके किनारे किया जाय तो उससे अधिक स्पष्ट प्रमाण मिले। समुद्र-तल भूतलकी अपेक्षा अधिक समतल होता है और उसमें की लहरोंकी ऊँचाई निचाई पहाड़ों और घाटियोंकी अपेक्षा बहुत कम होती हैं।

यदि हम समुद्र-तट पर खड़े होकर दूरसे आते हुए किसी जहाजको देखें तो हमें पहले केवल

उसका धुआँ ही दिखाई देगा; जब जहाज कुछ निकट आएगा तो उसका मस्तूल दिखाई देगा, फिर और निकट आने पर जहाजका कुछ ऊपरी भाग दिखाई देगा। इसी तरह निकट आते जाने पर उसका सब भाग धीरे धीरे दिखाई पड़ने लगेगा। यदि पृथ्वीका धरातल चपटा होता तो पहले जहाजका केवल ऊपरी हिस्सा ही नहीं दिखाई पड़ता, उसका सब अंग एक साथ ही दिखाई पड़ता यद्यपि वह बहुत छोटा और धुँधला ही दिखाई पड़ता। परन्तु ऐसा नहीं होता और दूर होने पर उसका केवल ऊपरी भाग दिखाई पड़ता है इसलिए हमें ज्ञात होता है कि पृथ्वीका तल वक्र है।

पृथ्वी की गोलाई का एक और पुष्ट प्रमाण है। आजसे कुछ शताब्दियों पूर्व नाविकों ने जहाज पर एक स्थानसे यात्रा प्रारम्भ कर एक ही ओर चलते हुए फिर उसी स्थान पर पहुँचनेमें सफलता प्राप्त कर ली। इनमें मैगेलन, फ्रान्सिस ड्रेक, कप्तान कुक का नाम उल्लेखनीय है। इनमें मैगेलन सर्व प्रथम था। इन नाविकोंके पश्चात् वाष्प पोतोंका जन्म होने पर मनुष्य का पृथ्वीकी परिक्रमा करना नित्य का खेल हो गया और आज नित्य ही पृथ्वीके के चारों ओर जहाजों पर यात्रा की जाती है। यदि पृथ्वी गेंद की तरह गोल न होती तो उसकी इस प्रकार परिक्रमा कर सकना किसी प्रकार सम्भव न होता।

२—पृथ्वीका विस्तार

लोग यह समझेंगे कि पृथ्वीका गोलाकार होना सिद्ध करना तो इतना सुगम है किन्तु उसका विस्तार जान सकना बड़ा ही कठिन होगा। परन्तु यह जितना देखने में कठिन मालूम होता है उतना कठिन नहीं है। यह कितना सुगम है इसे बतानेके लिए हम यहाँ यह दिखलाते हैं कि यूनानके एक ज्योतिषी एरिस्टारकस ने आजसे २००० वर्ष पूर्व किस प्रकार पृथ्वीके विस्तारका ज्ञान प्राप्त किया था।

प्राचीन काल में मिश्र देशके निवासी बड़े ही कुशल थे। इन्होंने गृह-निर्माण विद्यामें बड़ी कुशलता प्राप्त की थी। इसी विद्याकी उन्नति करने के लिए उन्होंने रेखागणितका जन्म दिया था। उन्होंने इन विद्याओंके साथ ज्योतिष और नाविक विद्या की भी उन्नति की थी। सन् ३३३ ई० के लगभग यूनान वालों ने मिस्र पर आक्रमण किया। वहाँ पर कतिपय यूनानी शासकों ने विशेष विद्याध्ययन की उन्नति की। इनके प्रयत्नसे मिस्रकी राजधानी सिकंदरियामें एक वृहद् पुस्तकालयकी स्थापना हुई जिसमें सब देशोंसे उत्तमोत्तम पुस्तकें संगृहीत कीं और सब देशोंके विद्वान वहाँ एकत्रित होने लगे।

सिकंदरियाके विद्वानोंमें एक हीरो नामका व्यक्ति था जिसने पहले पहल वाष्प-शक्ति चालित एक इञ्जिन बनाया था। इसने अन्य कई यंत्र भी बनाए थे। एक दूसरा विद्वान यूकलिड था जिसने रेखागणित पर तेरह पुस्तकें लिखी थीं जिनमें चार कुछ दिनों पश्चात् एक बार आग लगने पर भस्मीभूत हो गई थीं। आधुनिक काल तक युकलिडकी रेखागणितकी पुस्तकें सर्वोत्कृष्ट प्रामाणिक पुस्तकें मानी जाती रही हैं और पाठशालामें पढ़ने वाले सभी विद्यार्थियों को उसके तीन भाग पढ़ने पड़ते थे।

इसी सिकन्दरिया नगरमें एरिस्टारकस ने भी विद्याध्ययन किया था। उसने ज्योतिष का अध्ययन कर पृथ्वीकी परिधि और व्यासका जिस प्रकार ज्ञान प्राप्त किया था वह नीचेके चित्रसे प्रकट हो सकता है। इस चित्रमें ह विन्दु पृथ्वीका केन्द्र माना गया है और म म म उसकी परिधि। ह र रेखा व्यासार्ध, इससे समकोण बनाती हुई अ ब रेखा है जिसे क्षैतिज रेखा कहा जा सकता है।

कल्पना कीजिए कि ह र व्यास चक्कर लगाता है और कुछ दूर चलकर ह ल रेखाका स्थान लेता है। इस तरह इसकी क्षैतिज रेखा भी घूमेगी और घूम

कर स द रेखा का स्थान लेगी। अब यह देखा जा सकता है कि नए और पुराने व्यासार्धोंके बीच का कोण र ह ल पुरानी और नई क्षैतिज रेखाओंके बीचके कोण अ ग स के बराबर अवश्य ही होगा क्योंकि व्यासार्ध और उनकी क्षैतिज रेखाएँ साथ साथ घूमती हैं।
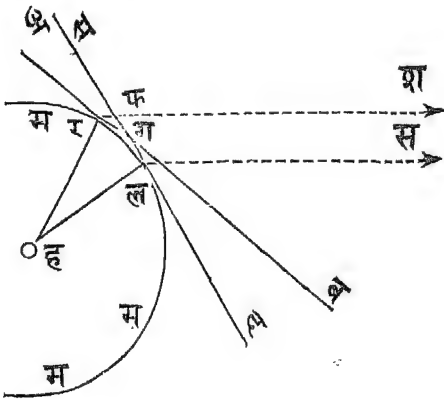
इस चित्रमें परिधिका र विन्दु सिकंदरिया को प्रकट करता है और उससे कुछ दूर ल विन्दु कैरो नगर। एरिस्टारकस ने अनुमान किया था कि कैरो सिकंदरियासे ठीक दक्षिण है।

एरिस्टारकस ने गणना करनेके लिए आकाशमें किसी तारेको चुनना आवश्यक समझा जिसको वह अपना स्थिर लक्ष्य बना सके। फिर उसने देखा कि सिकंदरिया नगरसे तारेको देखनेके लिए उसकी दृष्टिको क्षैतिज रेखाके साथ कितने अंशका कोण बनाना पड़ता है। दृष्टि की यह रेखा चित्र में र श रेखाके रूपमें विन्दुओं द्वारा दिखाई गई है। इस तरह वह ब र श कोणको जान सका। फिर दूसरी रातको उसने कैरो जाकर उसी तारेका उसी प्रकार निरीक्षण किया और द ल स कोण जान सका।

यह देखकर कुछ विस्मय हो सकता है कि र श और ल स दो भिन्न भिन्न समानान्तर रेखाएँ एक ही तारेको संकेत करती हैं किन्तु यह जानकर यह भ्रम दूर हो सकता है कि यद्यपि वह दोनों रेखाएँ एक ही तारे तक पहुँचती हैं तथापि उनके मिलनेका स्थान बहुत ही अधिक दूरी पर है। इस कारण इन दोनों रेखाओंको समानान्तर मान लेने पर कोई व्यावहारिक अशुद्धि नहीं हो सकती।

यदि एक बहुत बड़ी आकृति बनाई जाय और कोणों का नापा जाय तो पता चलेगा कि श फ द कोण स ल द कोण के बराबर है। कोण श फ द कोण श र ब और अ ग स के योग के बराबर भी है। अब यदि कोण श र ब को कोण श फ द से पृथक् कर लिया जाय तो कोण अ ग स शेष रह जाता है।

हमने पहले देखा था कि कोण अ ग स पृथ्वीके केन्द्र परके कोण ल ह र के बराबर है। कोण श फ द कोण शलदके बराबर है। इसलिए हम कह सकते हैं कि यदि कोण श र ब जो सिकंदरियामें क्षैतिज रेखाके साथ तारेकी दिशाके साथ बनता हुआ कोण है जो कि कैरोमें इसी प्रकारके बने कोण श ल द से घटा दिया जाय तो बचा हुआ पृथ्वी के केन्द्र पर बने कोण ल र ह के बराबर होगा। एरिस्टारकस ने इस तारेकी दिशाका कोण दो स्थानों पर जान कर केन्द्र पर बने कोणको ज्ञात किया।

लोग यह पूँछेंगे कि इतना हिसाब लगानेसे एरिस्टारकस ने क्या लाभ उठाया? इसका उत्तर यह है कि इतनी जानकारी कर पृथ्वीका विस्तार जाननेके बहुत निकट पहुँच गया। इसके लिए उसे एक काम करना और शेष था। उसने सिकंदरियासे कैरो तक की दूरी नाप कर जान ली। यह दूरी जान लेने पर उसने गणनाके द्वारा व्यासार्द्ध ह र की लम्बाई और पूरे वृत्तकी परिधि तथा व्यास जान लिया। यही पृथ्वीकी परिधि और व्यासकी लम्बाई थी। रेखागणित जाननेवाले जानते हैं कि किसी भी विन्दु पर कुल ३६०° का कोण बनता है इसलिए पृथ्वीके केन्द्र पर बने एक कोण को भुजाओंसे कटे परिधि वा चापकी लम्बाई

मालूम होने पर पूरी परिधिकी लम्बाई सहज हो ज्ञात हो सकती है। परिधि ज्ञात होने पर व्यास जान सकना सुगम है।

परिस्टारकस ने जिस प्रकार हिसाब लगाया उसके अनुसार पृथ्वीकी परिधि २६००० मील हुई। आज हम जानते हैं कि आधुनिक गवेषणाओंके अनुसार पृथ्वीकी परिधि २५००० मील ठहराई गई है परन्तु इतनी थोड़ी अशुद्धि होने पर हमें विस्मय होता है कि परिस्टारकस ने किस बुद्धिमत्तासे पृथ्वीका विस्तार लगभग ठीक ठीक ज्ञात कर लिया था। इस थोड़ी सी अशुद्धिका एक कारण था। कैरो सिकंदरियाके ठीक दक्षिण स्थित न होकर कुछ पूर्वकी ओर है इस कारण बिलकुल ठीक दक्षिण पृथ्वीके धरातल की लम्बाई परिस्टारकस द्वारा ज्ञात दूरीसे कुछ कम ही है। यदि यह संशोधन कर दिया जाय तो गणना बिलकुल ठीक ठीक होगी।

परिस्टारकस ने पृथ्वी का विस्तार जाननेके लिये जो सिद्धान्त निकाला था आज भी उसी सिद्धान्त पर ज्योतिषी पृथ्वीके विस्तारका ज्ञान प्राप्त करते हैं परन्तु नाप ठीक करने के लिए आज कल की भाँति परिस्टारकस के पास साधन नहीं थे। उन दिनों दूरदर्शक यंत्रका आविष्कार न हो सका था और तारेको दिशाका कोण समतल-सूचक जलयंत्रसे क्षैतिज रेखा खींचकर तारेकी ओर दृष्टि डालकर नापा गया था।

समतल-सूचक जलयंत्र हीरो द्वारा आविष्कृत हुआ था। यह एक बहुत मामूली यंत्र था। यह मानी हुई बात है कि यदि दो या अधिक खुले बर्तन एक या अधिक नली द्वारा नीचेसे जोड़ दिए जायँ और उन बर्तनोंमें से किसी एकमें कुछ पानी डाला जाय तो पानी नली द्वारा दूसरे बर्तनों में इतनी ऊँचाई तक पहुँच जाता है जितना पहलेमें होता है। हीरोके यंत्रमें दो शीशेकी नलियाँ एक नली द्वारा जुड़ी थीं। जब पानी एक नलीमें भरने पर दोनों शीशेकी नलियोंमें बराबर ऊँचाई तक पहुँच जाय तो एक नलीमें की पानीका ऊँचाई से दूसरे नलमेंके पानीकी उँचाई तक एक सीधमें दृष्टि डाली जाय तो दृष्टिकी रेखा क्षैतिज रेखा होगी। इस प्रकार नलियोंकी सहायतासे परिस्टारकस ने क्षैतिज रेखा ज्ञात की थी।

३—गैलिलियो और उसके कार्य

हम सब जानते हैं कि पृथ्वीमें पर्याप्त भार है। जिन शिलाओंसे इसकी रचना हुई है वे अधिक भार वाली हैं परन्तु ८००० मील व्यासके पृथ्वीके गोलेका भार जान सकना सुगम नहीं था, इस कारण प्राचीन कालमें इस ओर विद्वानोंका ध्यान विशेष आकर्षित न सका। यह सत्य है कि यूनानके एक विद्वान ने वहांके राजासे कहा था यदि मुझे पृथ्वी को उठानेके लिए एक उत्तोलक या त्राण और उसे टेकनेके लिये स्थान दिया जाय तो मैं समस्त पृथ्वी को उठा लूँ परन्तु उसके इस कथनका केवल यही अभिप्राय था कि पृथ्वीको उठानेमें बहुत अधिक शक्तिकी आवश्यकता है।

भार और आकर्षण शक्तिका अध्ययन यन्त्र-विज्ञानसे सम्बन्ध रखता है और इस विज्ञानके मुख्य सिद्धान्तोंको दो व्यक्तियों ने निकाला था जो पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दीमें हुए थे। इनमें गैलिलियो और दूसरा न्यूटन था। हम यहां पर इन दोनोंके सम्बन्धमें कुछ लिखना उचित समझते हैं।

गैलिलियोका जन्म सन् १५६४ ई० में इटलीमें हुआ था। इसका पिता गान विद्याका अच्छा ज्ञाता था परन्तु इस विद्यासे जीवन निर्वाह नहीं हो सकता था इसलिए गैलिलियोको कपड़ेके व्यवसायमें लगना पड़ा परन्तु वह बड़ा योग्य और विचार शील था इसलिए उसने यह अपनी बुद्धिमत्तासे दिखला दिया कि वह एक व्यवसायीकी अपेक्षा अच्छा विद्वान हो सकता है। इस कारण इसके

पिता ने इसे पीसा विश्वविद्यालयमें विद्याध्ययन करनेके लिए भरती करा दिया। विश्वविद्यालयमें गैलिलियोको पहले चिकित्सा शास्त्र अध्ययन करना पड़ा जिससे कुछ आय हो सके परन्तु उसने इसे छोड़ कर गणित का अध्ययन प्रारम्भ कर उसमें विशेष योग्यता प्राप्त की।

गैलिलियो ने विद्यार्थी अवस्था ही में एक खोज की जो उसकी बुद्धिकी प्रखरता प्रकट करती है। उसने एक बार गिरिजाघरमें जाकर देखा कि जंजीरसे लटका हुआ एक भारी लैम्प जलानेके बाद छोड़ देने पर डोल रहा है। लैम्पका डोलना साधारण बात है लेकिन उस पर विचार करते हुए गैलिलियो ने अनुमान किया कि उसके एक ओर जाकर दूसरी ओर जाने में जितना समय लगता है उतना ही समय उसकी गति या दोलन-विस्तार कम होने पर भी एक बार इधरसे उधर जानेमें लगता है। इस तरह प्रत्येक दोलनमें बराबर समय लगने का निश्चय करनेके लिए उन दिनों घड़ी सुलभ नहीं थी। केवल धूप घड़ी वा जल घड़ीसे ही समय जाना जा सकता था परन्तु उनका गिरिजा घरके अन्दर ला सकना कठिन था। इसलिए गैलिलियो ने समय नापनेका काम अपने हाथकी नाड़ीकी धड़कनसे लिया। इस प्रकार उसे निश्चय हुआ कि किसी दोलक-विस्तारके कम या अधिक होने पर उसके दोलनमें बराबर एक ही समय लगता है, केवल दोलकके अधिक या कम लम्बे दण्डसे लटकाने पर ही दोलन कालमें अंतर पड़ सकता है। इसी सिद्धान्त पर गैलिलियो ने पचास वर्ष बाद लटकन द्वारा नियंत्रित होने वाली घड़ीकी योजना तैयारकी और उसके पुत्र ने उसी के अनुसार घड़ी तैयार की।

गैलिलियोको विश्वविद्यालयमें अधिक दिन तक रहनेका अवसर नहीं मिला। धनाभावके कारण उसे पढ़ाई अधूरी छोड़ देनी पड़ी। दो वर्ष तक वह घर पर वैज्ञानिक गवेषणामें लगा रहा। इसके बाद वह पीसा विश्वविद्यालयमें ही एक व्यक्ति की सहायतासे गणितका अध्यापक नियुक्त हो सका।

उन दिनों योरपमें यह पद्धति थी कि प्रत्येक प्रश्नके उत्तरके लिए लोग यूनानके अरस्तू और अर्कमीदिस आदि प्राचीन विद्वानों की लिखी पुस्तकोंका अवतरण प्रमाण रूपमें उपस्थित करते थे। इन विद्वानों ने जो कुछ भी लिखा था वह ध्रुव सत्य समझा जाता था। यदि कोई व्यक्ति इनकी बातों पर अविश्वास प्रकट करता तो उसकी कुशल नहीं थी किन्तु गैलिलियो स्वतंत्र विचार वाला निर्भीक व्यक्ति था। उसे तर्क करनेके कारण लोग झगड़ालू कहते थे। उसने प्राचीन कालकी लिखी पुस्तकोंकी कितनी ही बातोंको तर्क परीक्षण की कसौटी पर रखना प्रारम्भ किया। यदि कोई बात सत्य उतरती तो उसे स्वीकार करता अन्यथा उसे असत्य कहनेमें न हिचकता।

अरस्तू ने एक बात लिखी थी कि भारी वस्तुएँ हलकी वस्तुओंकी अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे पृथ्वी पर गिरती हैं। यदि एक सेर और १० सेर के दो गोले साथ ही ज़मीन पर गिराए जायँ तो बड़ा गोला छोटेकी अपेक्षा दस गुने अधिक वेगसे गिरेगा। अरस्तूकी इस बात पर लोग १८०० वर्षों से आंख मूँद कर विश्वास करते रहे थे और किसी भी व्यक्ति ने इसे स्वयं परीक्षण कर देखनेका साहस नहीं किया था किन्तु गैलिलियो ने इसकी सत्यता वा असत्यताकी जांच करनेका स्वयं उद्योग किया। पीसामें एक बहुत प्रसिद्ध टेढ़ी मीनार है जिसका सिरा आधारकी अपेक्षा बहुत अधिक झुका हुआ है। गैलिलियो छोटे बड़े दो गोलोंको लेकर इसके ऊपर चढ़ गया और सब लोगोंके सामने दोनों गोलोंको साथ ही नीचे गिराया। जब लोगों ने देखा कि भिन्न भिन्न परिमाणके दो गोले भूमि पर साथ ही गिरते हैं और अरस्तू की को बात असत्य सिद्ध होती है तो उनके विस्मयका ठिकाना नहीं रहा।

यह एक निश्चित नियम है कि एक साथ गिराई हुई छोटी बड़ी सभी वस्तुएँ भूमि पर साथ ही पहुँचती हैं परन्तु कहा जा सकता है कि काग़ज़ के टुकड़े वा चिड़ियोंके पंख किसी भारी चीज़के साथ ही जमीन पर नहीं गिरते। इसका कारण यह है कि हवाके कारण कागज़ के टुकड़े वा पंख उसमें तैरते हुए चक्कर खा कर नीचे उतरते हैं जिससे भूमि पर विलम्बसे पहुँचते हैं। यदि शीशे की कोई ऐसी खाली नली ली जाय जिसमेंसे वायु निकाल ली गई हो तो वायुका अवरोध न हो तो वायुका अवरोध न होनेके कारण पंख और किसी भारी वस्तु की गोली साथ ही नीचे गिरेगी।

गैलिलियोंकी खोजोंसे ऊपर वाली खोज ही वास्तविक रूपमें प्रस्तुत पुस्तकसे सम्बन्ध रखती है परन्तु गैलिलियोके जीवनके कार्य इतने मनोरञ्जक हैं कि हम उनका वर्णन किए बिना नहीं रह सकते।

बहुतसे लोग सोचेंगे कि गैलिलियो ने अपनी बुद्धिमत्ता दिखला कर जो गवेषणाएँकीं उनसे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी होगी परन्तु बात इसके विपरीत ही थी। उन दिनों लोग अन्धविश्वासी थे, इस कारण नई बातें कहनेके कारण वे गैलिलियो के शत्रु हो गए। इस कारण उसे विवश होकर पीसा छोड़ना पड़ा। कुछ दिनों तक बेकार रहनेके पश्चात् किसी प्रकार उसे पदुआ विश्वविद्यालयमें गणितके अध्यापकका पद मिला। वहां पर कुछ अन्य अध्यापकों का जो वेतन था उसके दशमांश वेतन पर ही उसे नौकरी मिली।

इस नए पद पर काम करने लगने पर गैलिलियो ने अपना ध्यान फिर आविष्कारकी ओर लगाया और गर्मीकी मात्रा जाननेके लिए सर्व प्रथम तापमापक यन्त्र बनाया। सन् १६०९ ई० में उसने यह सुना कि हालैण्डके किसी वैज्ञानिक ने ऐसा यंत्र बनाया है जिससे दूरकी वस्तुएँ निकट जान पड़ती हैं। उस समय उसने रात भर लगे रह कर दूसरे दिन एक दूर दर्शक यन्त्र बना ही लिया। इस यन्त्रके आविष्कारसे उसका ध्यान ज्योतिषकी ओर गया जिसके अध्ययनसे उसे ख्याति और विपत्ति दोनों ही बहुत अधिक मिली।

दूर दर्शक यंत्रसे चन्द्रमाका अवलोक कर गैलिलियो ने पता लगाया कि साधारण नेत्रोंसे चन्द्रमामें जो दाग दिखाई पड़ते हैं वे वास्तवमें पर्वत और घाटियां हैं। इसी प्रकार अन्य आकाशा पिण्डों के सम्बन्ध में उसे कितनी ही बातें ज्ञात हुईं।

बृहस्पति को लोग अकेला ग्रह मानते थे परन्तु दूर दर्शक यन्त्रसे ज्ञात हुआ कि उसकी परिक्रमा करने वाले चार चन्द्र या उपग्रह हैं। शनि ग्रहमें उसके चारों ओर एक वलय या अँगूठी है, वलय का ठीक ठीक ज्ञान उस समय तो न हो सका परन्तु शनिका रूप विचित्र दिखाई पड़ा। सूर्यके तल पर धब्बे देखे जा सके और शुक्र चन्द्रमाकी भांति कला-परिवर्तित करता दिखाई पड़ा।

शुक्रके कला-परिवर्तनको देख कर गैलिलियोको निश्चय हुआ कि वह सूर्यकी परिक्रमा करता है जिससे भिन्न भिन्न समय पर सूर्य और पृथ्वीके अनुसार उसकी विभिन्न स्थिति के कारण उसके भिन्न भिन्न तल आलोकित दिखाई पड़ते थे। गैलिलियो ने इसे देख कर सोचा कि जब शुक्र सूर्यकी परिक्रमा करता है तो पृथ्वी सहित अन्य ग्रह क्यों न परिक्रमा करते होंगे। इस कारण उसने निर्भीकता पूर्वक प्रकट किया कि सभी ग्रह सूर्यके चारों ओर घूमते हैं और सूर्य इस सौर मंडलका केन्द्र है।

गैलिलियोकी यह निर्भीक घोषणा उसके लिए घोर विपत्तिका कारण हुई। योरपमें सदासे लोग यही विश्वास करते आये थे कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य, चाँद, तारे सभी इसकी परिक्रमा करते हैं। इतने अधिक दिनोंके विश्वास को लोग सहज ही नहीं छोड़ सकते थे। इस कारण गैलिलियो

पर सब ओरसे शब्दोंकी बौछार होने लगी। इन विरोधियों में सबसे प्रबल ईसाइयोंका धार्मिक संगठन था। ईसाइयोंकी धर्म पुस्तकमें लिखी बातें गैलिलियोकी घोषणाके बिलकुल विपरीत थीं इस कारण गैलिलियोको धर्म च्युत कर दंड देनेकी धमकी दी गई और उसे यह कहनेके लिए विवश किया गया कि पृथ्वी नहीं घूमती, सूर्य ही उसकी परिक्रमा करता है।

इतनेसे भी विपत्ति न टली। जब कुछ दिनोंके पश्चात् बहुत वृद्ध हो गया तो उसे फिर ईसाइयों के महन्त पोपके सम्मुख उपस्थित होने के लिए विवश होना पड़ा और उसे अपने सिद्धान्त को असत्य स्वीकार कर घोर मानसिक वेदनामें अन्तिम दिन काटने पड़े। जब उसकी मृत्यु हो गई तो ईसाई धर्म समाज ने उसकी समाधिके ऊपर स्मारक न बनने दिया परन्तु सौ वर्ष पश्चात् जब लोगोंके हृदयसे अविद्यान्धकार दूर हुआ तो उसकी अस्थियाँ पुरानी समाधिसे उखाड़ कर एक दूसरे सुन्दर स्थानमें गाड़ी गई और उस पर एक स्मारक बनाया गया।

पौधों का भोजन

[ले० श्री एन० के० चटर्जी एम० एस-सी०]

कर्बन द्विओषिदका परिमाण (CO_2 Concentration) गोड्लेविस्की (Godlewski) ने सन् १८७३ में पहले पहल पौधोंमें भोजन बनाने की गति पर कर्बन द्विओषिदके परिमाणका प्रभाव देखा था। पेफरके यूडियोमिटर यन्त्र द्वारा भोजन बननेके समय पत्तियोंसे जो ओषजन निकलता है उसको माप कर वे इस सिद्धान्त पर आये थे कि पत्तियोंके आस पास कर्बन द्विओषिदका परिमाण बढ़ानेसे भोजन बनानेकी गति भी कुछ सीमा तक बढ़ती जाती है, परन्तु परिमाणको इस सीमाके अतिरिक्त बढ़ाने से गति कम हो जाती है और उन्होंने इस पर भी ध्यान दिया था कि गतिकी महत्तम संख्या हर पौधे में समान नहीं होती।

सन् १८८५ में क्रेसलर (Kreusler) ने प्रकाशके लिये बिजलीकी बत्तीकी सहायतासे गोड्लेविस्कीके उक्त सिद्धान्तका समर्थन किया और उन्होंने यह भी बताया कि भोजन बनानेकी गतिकी महत्तम (Optimum value) संख्या लगभग १० प्रति शत कर्बन द्विओषिद पायी जाती है। लेकिन इस समयके वैज्ञानिकों ने कर्बन द्विओषिदके सिवाय और किसी हेतु (Factor) पर ध्यान नहीं दिया था, इस कारण महत्तम संख्याकी निर्दिष्टता नहीं हो सकती। इसके बादके वैज्ञानिकों ने यह निश्चित किया कि कर्बन द्विओषिद का कम परिमाण (Low concentration) यानी जहाँ पर कि कर्बन द्विओषिद गतिको सीमावद्ध करती हो भोजन बनानेकी गति कर्बनद्विओषिदका परिमाण बढ़ानेसे बढ़ती जाती है और ब्लेकमान और स्मिथ ने यह नियम निकाला कि भोजन बनाने की गतिका परिमाण जब बहुत हेतुओं में से एक हेतु द्वारा सीमावद्ध होता है तो केवल उसी सीमवद्ध वाले हेतुके बढ़ानेसे भोजन बनानेकी गतिका परिमाण बढ़ जाता है। सन १९१९ में वारबुर्ग ने एक नये तरीके से क्लोरेला (chlorella) पौधे पर काम किया।

हालडेन और बारक्रोफ्ट ने रक्तमें गैस निकालने वाले यन्त्रसे काम लिया। इनके वक्र द्वारा यह ज्ञात होता है कि कर्बन द्विओषिदके कम परिमाणमें भोजन बनानेकी गति कर्बन द्विओषिदसे सीधी २ सम्बन्ध रखती है लेकिन कर्बन द्विओषिदके अधिक परिमाणमें गति कमती होती जाती है और अंतमें परिमाणसे बिलकुल सम्बन्ध नहीं रखती। वारबुर्ग यह समझते हैं कि भोजन बनानेकी गति कर्बन द्विओषिद परिमाणके अलावा और एक दूसरे पदार्थ के परिणामसे भी जो कि कर्बन द्विओषिदसे मिल जाती है यथोचित सम्बन्ध रखती है।

इसके बाद हार्डर ने भी इस विषय पर काम किया जिसका वृत्तान्त आगे दे चुके हैं। जातीय पौधोंकी अपेक्षा स्थलीय पौधोंकी गठन अत्यन्त जटिल होनेके हेतु उनके विषयमें कुछ निर्दिष्ट सिद्धान्त पर आना बहुत मुश्किल है। ब्राउन और ऐसकोम्ब ने सन १९०२ में यह दिखाया है कि पौधोंके पर्णहरिनका परिमाण भी कर्बन द्विओषिदकी उपयोगितामें दखल डालता है।

ऊपर दिये हुए वृत्तान्तसे यह ज्ञात होता है कि हवामें कर्बन द्विओषिदका परिमाण जो कि केवल ०.०३ है ब्लेकमेनके अनुसार यह कर्बन द्विओषिदका हेतु न्यूनतम संख्या में है अब कृषिविद्याकी ओरसे यह देखना उचित है कि यदि हवामें कर्बन द्विओषिद का परिमाण बढ़ाया जाय तो क्या यह खेती बारीमें कुछ उपकार ला सकती है इससे क्या अनाजकी फसल ज्यादा होगी ?

इस प्रश्न पर बहुत ध्यान दिया गया है और जर्मनीमें वात भट्टीसे जो फ्लूगैसें निकलती है उसका प्रभाव खेती में देखा भी गया है लेकिन कर्बन द्विओषिदके परिमाणके प्रभाव देखनेके पहले और बहुत सी बातों पर यानी जल और कर्बन

द्विओषिद्से पौधे के होने पर जो पदार्थ बनते हैं उन पर ध्यान देना विशेष आवश्यक है। और यह भी देखा गया है कि जाति जातिके पौधों पर प्रभाव एक साही नहीं पड़ता है।

डिमोयसे (Demoussy) से सन् १६०४ में यह देखा कि कर्वन द्विओषिदका परिमाण बढ़ाने से पौधोंकी उन्नति होती है। लुण्डे गार्ड भी इसी सिद्धान्त पर आये हैं लेकिन कर्बनद्विओषिदके अलावा दूसरे हेतु भी प्रभाव डालते हैं, आबहवा और जमीनकी उपजशक्ति इनमेंसे मुख्य हैं। कर्बन द्विओषिदका परिमाण अत्यन्त अधिक होनेसे वह पौधेके लिये हानिकारक होता है। कर्बनद्विओषिद के १५-२५ प्रतिशत बढ़ावको रोक लेता है।

पौधोंको प्राकृतिक अवस्थामें पृथ्वीके भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न तापक्रमके परिमाणमें उगते हुए देख कर यह निश्चित होता है कि ये अपना भोजन हर एक तापक्रमके परिमाणमें बना सकते हैं। ध्रुव प्रदेश (Polar region) के समुद्र के जलीय पौधे ०°श में बहुत दिनों तक पड़े रहने पर भी जीते रहते हैं।

मिस हेनरिसि (Miss Henrici) ने सन् १६२१ में यह देखा कि अलहाठन पहाड़के पौधे—१६° अंश और—२०° अंश पर भी उगते हैं।

बाहर मैदानों पर भोजन बनानेकी गति पर ध्यान देना बहुत कठिन है क्योंकि यहां पर बहुतसे हेतु अलग अलग अपना प्रभाव डालते हैं और इसी कारण हम लोगोंको वैज्ञानिक फलोंके लिये जांच घरकी परीक्षायोंसे ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है।

तापका प्रभाव देखनेमें बड़ी कठिनाइयां यह होती हैं कि हम पौधोंका तापक्रम ठीक तौरसे नहीं मालूम कर सकते। छोटे छोटे जलीय पौधोंमें तो प्रकाश देने पर उनमें तापक्रमका अन्तर बहुत अधिक नहीं होता लेकिन स्थलीय पौधेमें तापक्रमका अन्तर बहुत अधिक हो जाता है—क्योंकि पौधोंमें प्रकाश देनेसे पत्तियां प्रकाशका बहुत कम हिस्सा तो रासायनिक शक्ति (Chemical energy) के लिये काममें लाती हैं और अधिक हिस्सा केवल पत्तियोंके तापक्रमको बढ़ा देनेमें लाती हैं और प्रकाश के बिना भोजन बनानेका काम चल ही नहीं सकता। प्रकाश द्वारा यह तापक्रम बढ़ जानेके कारण पौधों से जल भापके रूपमें निकल जाता है और पत्तियोंके छिद्र-खुलाव (Stomatal opening) में अन्तर हो जाता है और कई एक भीतरी हेतुओंमें परिवर्तित हो जाती हैं। इसलिये स्थलीय पौधेके भीतरी तापक्रमको देखना बहुत आवश्यक है।

ब्राउन और एसकोम्ब (Brown and Escombe) ने इस पर काम किया है। इन्होंने नीचे लिखी चार बातों पर ध्यान देते हुए पौधों पर तापक्रमके प्रभावका अध्ययन प्रमाणित किया है—

(१) समस्त विकिरण सामर्थ्य (Radiant energy) जो प्रति इकाई क्षेत्रफल (area) पर इकाई (unit) समय में पड़ता है, उसका परिमाण।

(२) इस सामर्थ्यमें पत्ती जो सामर्थ्य अपने लिये ले लेती है, उसका परिमाण।

(३) पत्तीके भीतर जो क्रिया होती है यानी जल का भापके आकारमें बाहर निकल जाना और भोजन बनाने कि गति, इनका परिमाण।

(४) और पत्तीके कुल तापक्रमका परिमाण।

इन वैज्ञानिकोंके बाद ब्रेकमेन और मिस मेथाई ने (Blackman and Miss Mathaei) इस पर काम किया। इन्होंने प्रकाश देते समय पत्तीके तापक्रमका अन्तर देखते हुए उसके भोजन बनाने की गति पर ध्यान दिया था। सन् १६०५ में कुमारी मेथाई (Mis Mathaei) ने भोजन बनानेकी गति पर तापक्रमका प्रभाव देखा था। तापक्रमके बढ़ाने और घटानेसे भोजन बनानेके समय पत्ती द्वारा जो कर्बन द्विओषिद ली जाती थी उसकी तापकी कुछ मात्रा तक भोजन बनानेकी गति बढ़ती जाती है उसके बाद प्रकाश या कर्बन द्विओषिदका परिमाण ही गतिको रोकता है और तापक्रमके बढ़ानेसे बहुत कम असर होता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि हरएक तापक्रमकी संख्याके लिये एक निर्दिष्ट भोजन बनानेकी गति का संख्या है और उस संख्याको उस तापक्रमके लिये महत्तम संख्या समझना चाहिये और यह संख्या बढ़ाई नहीं जा सकती और जब तक कि न प्रकाश और कर्बन द्विओषिद्का परिमाण ठीक हो वह संख्या प्राप्त नहीं हो सकती है।

तापक्रमके प्रभावमें एक मुख्य बात यह है कि यह समयसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, इससे यह मतलब है कि अधिक तापक्रममें महत्तम गति कुछ देर तक ही कायम रह सकती है, उसके बाद गति कम होजाती है और जितनी अधिक तापक्रम बढ़ाया जाय यह महत्तम गति उतनी ही कम देर तक ठहरती है और उतनी ही तेजीके साथ यह गति घट जाती है। इसके कारण को समयका हेतु (Time factor) कहा जाता है। कम तापक्रमोंमें भोजन बनाने की गति एक घंटेके बाद अनुक्रमिक (Successive) घंटेके लिये करीब करीब एकसी होती है। लेकिन अधिक तापक्रम में यह बात नहीं पाई जाती और २४° से अधिक तापक्रम होनेसे ही समयके अनुसार भोजन बनानेकी गति कम होने लगती है। लेकिन यह तापक्रमका परिमाण भिन्न भिन्न पत्तियों के लिये अलग होता है।

इस उपर्युक्त घटनासे ब्लेकमेन और दूसरे वैज्ञानिक इस सिद्धान्त पर आये कि समयका प्रभाव भोजन बनाने की महत्तम गति पर दो कारणोंसे निश्चित होता है। मिस मैथाईके परीक्षा फलसे यह मालूम होता है कि ५° से लेकर २५° के भीतर भोजन बनानेकी गति तापक्रमसे वैरट होफ (van't Hoff) के नियमानुसार सम्बन्ध रखती है यानो हर १०° तापक्रमके बढ़ानेसे भोजनकी गति २·१ (करीब करीब दूनीसे बढ़ जाती है, लेकिन ५° से लेकर २५° तक) अलावा यह बात नहीं पाई जाती। इसके अलावा यह भी देखा गया है कि भोजनकी गति पर तापक्रमका प्रभाव रासायनिक प्रक्रिया पर तापक्रम का प्रभाव होनेसे उत्प्रेरण पर जो असर पड़ता है उससे बहुत कुछ मिलता है। डूकलाक्स और टैमेन (Tammann and Ducklaux) के खमीरन पर तापक्रम के प्रभाव का फल प्रकाश संश्लेषण में काम लाया गया। इन दो वैज्ञानिकों ने यह बताया है कि खमीर होनेके समय पर तापक्रम का प्रभाव दो हेतुओं द्वारा निर्धारित होता है, एक तो तापक्रमका प्रभाव और दूसरा खमीर का परिमाण और यह खमीर मामूली तापक्रममें सुस्त या नष्ट हो जाते हैं लेकिन तापक्रमके बढ़ानेमें नष्ट होनेकी गति भी बढ़ जाती है इसलिये तापक्रमके बढ़ानेसे खमीरण की गति तो बढ़ जाती है लेकिन साथ ही साथ खमीर भी नष्ट होते रहते हैं क्योंकि यह खमीर अधिक तापक्रममें बहुत देर नहीं ठहर सकते इसलिये किसी तापक्रममें खमीरणके महत्तम स्थान पर पहुँच कर खमीर नष्ट होजानेके कारण समयके अनुसार कम होते हैं या बिलकुल बन्द हो जाते हैं।

विलस्टेटर और स्टोल ने सन १९१८ में यह देखा कि तापक्रमका प्रभाव पत्तोंके पर्णहरिनके परिमाणसे भी सम्बन्ध रखता है। जिन पत्तियोंमें पर्णहरिन्का परिमाण कम होता है तापक्रम के बढ़ानेसे उनका प्रकाश संश्लेषण इस कदर साधक नहीं होता जो कि उन पत्तियोंमें जिनमें पर्णहरिन का परिमाण अधिक होनेसे पाया जाता है।

पर्णहरिनका परिमाण—प्रकाश संश्लेषणके लिये पर्णहरिनकी बहुत जरूरत है, इसके बिना प्रकाश संश्लेषणको क्रिया बिलकुल नहीं हो सकती। कुछ पौधे अकसर लाल या पीले देखने में पाये जाते हैं लेकिन उनमें पर्णहरिन रहता है, इस कारण प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया उनमें होती है। निम्न श्रेणीके जीवाणु भी कर्बन द्विओषिद्का उपयोग करते हैं और उनमें पर्णहरिन् नहीं होता लेकिन इनकी क्रिया प्रकाशसंश्लेषणसे भिन्न है। जीवाणु की क्रिया रासायनिक है क्योंकि इनको प्रकाशकी ज़रूरत नहीं होती।

किसी एक निर्दिष्ट पत्तीका पर्णहरिन्का परिमाण घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता इस कारण ऐसी हालतमें कि उसी जातिकी पत्तीमें जिसमें कि पर्णहरिन्का परिमाण किसीमें कम और किसीमें अधिक है प्रकाश संश्लेषणसे क्या सम्बन्ध रहता है देखा गया है।

लुबिमेङ्को ने (Lubimenko) पौधों को दो भागों में विभक्त किया है, एक तो वे जो छायामें रहते हैं, और दूसरे वे जो कि धूपमें। उन्होंने अपने सिद्धान्त द्वारा यह पाया कि छाया वाले पौधे धूप वाले पौधे से कम प्रकाशकी तेजी द्वारा उतनी ही प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया सुचारु रूपसे कर लेते हैं और इस क्रिया द्वारा उन्होंने यह सिद्ध किया कि छाया वाले पौधोंमें पर्णहरिनका परिमाण चूँ कि धूप वालों से अधिक होता है इसलिये थोड़ा ही सा प्रकाश अधिक पर्णहरिनके रहनेसे उपयोग कर लिया जाता है। उन्होंने यह भी देखा है कि पर्णहरिनका परिमाण ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है प्रकाश संश्लेषणमें तापकम और प्रकाशकी महत्तम संख्या कमती होती जाती है।

प्लेसटर (Plester) ने सन् १९१२में यह दिखाया कि पर्णहरिनका परिमाण (कर्बोहेत) के बनने में क्या सम्बन्ध रखती है; इन्होंने कम हरी पीली और साधारण प्राकृतिक पत्तीके पर्णहरिनके परिमाण पर ध्यान दिया था। इन्होंने कम हरी और पीली पत्तीमें प्रकाश संलेषणकी क्रिया कम पाई लेकिन इससे यह सिद्धान्त कि प्रकाश संश्लेषण पर्णहरिनसे कुछ सीधा सीधा सम्बन्ध रखता है नहीं पाया जाता।

हेनरिसि (Henreici) ने सन् १९१८ में जो पौधे ऊँचीजगहमें उगते हैं और जो पौधे समतल भूमि पाये जाते हैं उनके पर्णहरिनके परिमाण और प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया पर ध्यान दिया। इन्होंने यह देखा कि इसी जातिके पौधे अगर अधिक ऊँचाई की भूमि पर उगाये जायं तो उनमें पर्णहरिन् का परिमाण कम होता है और इसका कारण यह है कि अधिक ऊँचाई पर प्रकाशकी तेज़ी अधिक होती है। हेनरिसि ने यह देखा कि अधिक ऊँचाईवाले पौधे अधिक प्रकाश और तापकमको सहन कर सकते हैं और प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया समतलमें उगनेवाले पौधोंसे अधिक प्रकाशकी तेज़ीमें आरम्भ होती है। लेकिन तापक्रमकी न्यूनतम संख्या समतल वाले पौधोंसे कम है।

प्रकाश संश्लेषण पर पर्णहरिनका प्रभाव भली भांति विलस्टेटर और स्टाल द्वारा ही निकाला गया है। इन दो वैज्ञानिकों ने पर्णहरिन् पर सबसे ज्यादा काम किया है। इन्होंने पर्णहरिन पर परीक्षा करते समय दो मुख्य बातों पर ध्यान दिया था जिसमेंसे पहली यह है कि परीक्षा करते समय पर्णहरिनका परिमाण बदल नहीं जाता और दूसरी बात यह है कि पर्णहरिन (क) और पर्णहरिन (ख) की निष्पत्ति परीक्षाके समय समान रहती है।

इन दो वैज्ञानिकों ने पत्तीके बढ़ावकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें पर्णहरिनके परिमाण पर दृष्टि देते हुए प्रकाश संश्लेषणकी परीक्षा की है। इन्होंने उन पौधों पर भी काम किया है जिनकी जातिके कुछ पौधोंकी पत्तियां पीली या सफेद होती हैं। और परीक्षा करते समय तापकम, प्रकाशकी तेज़ी और कर्बन द्विओषिदका परिमाण इस अधिक परिमाणमें रक्खा था जिससे प्रकाश संश्लेषणकी गति रुक न जाय। इनके परीक्षाक-फल द्वारा यह मालुम होता है कि पर्णहरिनका परिमाण प्रकाश संश्लेषणसे सीधा सीधा सम्बन्ध नहीं रखता और पत्तीके बढ़ावकी भिन्न भिन्न अवस्थामें पर्णहरिनका परिमाण भी बढ़ता जाता है और प्रकाश संश्लेषण की क्रिया भी बढ़ जाती है लेकिन दोनोंमें कुछ सम्बन्ध नहीं है। पतझड़में जब कि पत्तियां रंग बदलती रहती हैं और पीली पड़ जाती हैं प्रकाश संश्लेषण कि क्रिया भी घट जाती है लेकिन उस समय यह भी देखा गया है कि पर्णहरिनका परिमाण भी घट जाता है।

वायुयान

[ले० श्रीश्यामलाल कुटरियार]

'विज्ञान' के पाठकों ने हवामें कनकौव्वोंको उड़ते देखा होगा। यह कहनेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं कि कनकौव्वे हवासे भारी होते हैं। क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता तो ये हवामें बिना किसीकी सहायताके उड़ते रहते। आपने प्रायः देखा होगा कि कनकौव्वेंको हवामें उड़ते रहने (Balance) के लिये लड़के उसमें एक दुम लगा देते हैं। तागा भी इस तरह रखा जाता है कि कनकौव्वे हवामें उचित कोण पर रहें और हवा उनकी सतह पर टकराती रहे। जिस समय हवा जोरसे नहीं बहती रहती, उस समय कनकौवे उड़ाना कठिन हो जाता है। उस समय लड़के हवा में ज़ोर लानेके लिये उसकी विपरीत दिशामें दौड़ते हैं। इस प्रकार जब तक वे दौड़ते रहते हैं, तब तक कनकौव्वे उड़ते रहते हैं, किन्तु ज्योंही वे ठहर जाते हैं, त्योंही कनकौवे नीचे चले आते हैं। जिस समय हवा तेज बहती रहती है, उस समय वे तागेमें ढील देते हुए आगे बढ़ते जाते हैं और कनकौव्वे आकाशमें ऊपर उठते जाते हैं।

इस समय प्रश्न होता है कि कौन सी शक्ति इसको ऊपर उठाती है? कौन कौन सी शक्तियाँ इस पर कार्य्य करती रहती हैं? कनकौव्वे जिस समय आकाशमें उड़ते रहते हैं, उस समय उन पर तीन शक्तियाँ कार्य्य करती हैं। पहिली तो हवा उनके ढलुवें सतह पर टकराती रहती है और इससे वे ऊपर उठते जाते हैं। इसे हम लोग हवाका उभार (Wind-thrust) कह सकते हैं। इसके बाद दूसरी शक्ति है गुरुत्व। यदि कोई अन्य शक्ति इसे गिरनेसे नहीं बचावे, तो ये अपने ही भारसे नीचे गिर जांय। यही नीचेकी ओर खींचने वाली शक्ति है गुरुत्व। तीसरी शक्ति है तागेका खिचाव। हवाके उभारको रोकने वाली यही शक्ति है।

(चित्र १)
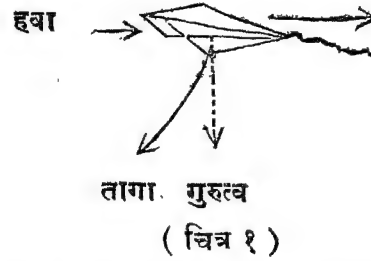
इसी उपर्युक्त सिद्धान्त पर वायुयानका आविष्कार हुआ था। कहा तो ऐसा जाता है कि बालकों ही ने वैज्ञानिकोंके मस्तिष्कमें वायुयानके आविष्कार का बीज बोया था। क्योंकि वैज्ञानिकोंने लड़कोंको कनकौव्वे उड़ाते देख कर ही वायुयान सम्बन्धी कई कठिनाइयाँ हल कर ली थीं।

एक तला वायुयान

(चित्र २)
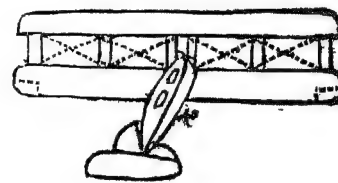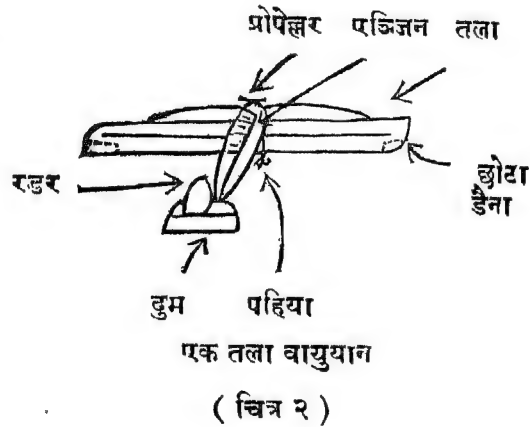
दोतला वायुयान

(चित्र ३)

अब मैं मुख्य विषय पर आता हूँ। वायुयान तो न मालूम आज तक कितने निकल चुके हैं। किन्तु ये मुख्यतः दो भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। मौनोप्लेन (Monaplane) अर्थात् एक तला वाला और दूसरा बाईप्लेन (Biplane) अर्थात् दोतलेवाला। इन तलोंको आधारतल (Supporting planes) कहते हैं। और ये मोटे आधार तल कनविसके बने होते हैं जो एक चौकठे पर खूब मजबूतीके साथ तने रहते हैं और आगेसे पीछेकी ओर कुछ मुड़े रहते हैं। आजकल ये तले हलके धातुके भी बनते हैं। दोतले यानोंमें ऊपर वाला तला नीचे वाले तले पर कुछ डंडोंके सहारे ठहरा रहता है। नीचे वाले तले पर उड़ाका (Piolt) की सीट रहती है। नीचे वाले तलेके मध्यसे मैशीन के पिछले हिस्से तक एञ्जिन फैला रहता है। इन आधार तलों (Supporting planes) के किनारों (ends) को गौरसे देखनेसे दो छोटे छोटे डैने नज़र आते हैं। ये डैने इधर उधर हटाये या मोड़े जा सकते हैं। इन्हें एलीरस (Ailerous) कहते हैं। इनका काम है यानको दोनों पहलुओंकी ओर से गिरने से बचाना। जिस समय यान उड़ते समय मोड़ लेता है, उस समय वह केन्द्र गर्वित शक्ति (Centrifugal force) के कारण मोड़की ओर नीचे गिरने लगता है। लेकिन 'पाइलौट' उस समय कण्ट्रोल लीवर (Control lever) की सहायतासे जो उसके सीटकी दाहिनी ओर लगी रहती है मोड़की ओर वाले छोटे डैने (Ailerous) को नीचा कर देता है। इस तरह वह यानके बैलेन्सको ठीक कर गिरनेसे बचा लेता है।

तलोंके सामने एक छोटा सा प्लेन (Plane) रहता है, जिसे एलिवेटर (Elevator) कहते हैं। यह भी 'कण्ट्रोल लीवर' ही के द्वारा चालित होता है। जिस समय 'पाइलौट' यानको ऊपर उठाना चाहता है, उस समय वह 'लीवर' के पृष्ठ भाग को खींचता है। इससे 'एलीवेटर' ऊपर उठ जाता है और हवाको ठीक कोण पर काटता है। इससे यान जमीनसे ऊपर उठने लगता है। जिस समय उसे नीचे उतरना होता है, उस समय वह 'लीवर' को आगेकी ओर दबाता है। उसे दबानेसे 'एलीवेटर' नीचे चला आता है और यान ज़मीनकी ओर नीचे मुड़ जाता है। मशीनके अन्तमें हाल (Rudder) रहती है। यह दाहिने—बायें मुड़ सकती है और 'पाइलौट' के पैरोंसे एक डंडे द्वारा चालित होती है। मजबूत तारों द्वारा यह डंडा और 'रडर' मिले रहते हैं। बस यही वायुयानके मुख्य अंग हैं।

यानको उड़ानेके समय एक आदमी उसके सामने जाता है और प्रोपेलर (मशीनके मुँह पर लगी एक लम्बी चर्खी) को ज़ोरसे घुमाता है। तुरन्त एञ्जिन गरज उठता है और चर्खी (Propeller) बड़े जोरोंसे घूमने लगती है। हम समझते हैं कि उसका चक्कर एक मिनिट में १००० के हिसाबसे होता होगा। 'प्रोपेलर' इस तीव्र चक्करके द्वारा हवाको काट कर एक रास्ता बना लेता है। ज्योंही एञ्जिन चलने लगता है, त्योंही यान 'रबर-टायर' युक्त पहियोंके सहारे आगेकी ओर दौड़ने लगता है। ज्यों ज्यों जमीन पर वह आगे बढ़ता जाता है, त्यों त्यों उसकी गति बढ़ती जाती है। ठीक इसी समय 'पाइलौट' 'एलिवेटर' को दबाता है और तुरत वायुयान हवाको चीरता हुआ धीरे धीरे ऊपर उठने लगता है और कुछ मिनिटोंमें एक दम ऊपर चढ़ जाता है। इस समय वह तलों (Supporting plane) ही के सहारे हवामें ठहरता है। और ठीक कनकौव्वे ही की नाईं आकाशमें उड़ता है। अन्तर केवल इतना ही है कि लड़कोंके तागेके बदलेमें इसमें एञ्जिनकी शक्ति है, जो इसे आगे बढ़ाती जाती है।

Adapted from "The Airman and his Craft"

बालकोंमें फुफ्फुस यक्ष्माका निदान

[ले० डा० कमला प्रसाद जी एम० बी०]

बालक-रोगियोंमें यक्ष्माका आक्रमण-मार्ग।

यक्ष्माकीटाणु फुफ्फुस द्वारा वा श्वास-नल की श्लैष्मिक कला द्वारा शरीरमें प्रवेश करते, तथा लसीका ग्रन्थियोंमें पकड़ लिये जाते हैं। छोटे बच्चोंमें प्राथमिक केन्द्र प्रायः फुफ्फुसमें ही होता है, और साथ २ इस केन्द्रसे लेकर फुफ्फुस-मूल तककी ग्रन्थियोंका एक चेन सा रोग-ग्रस्त हो जाता है। ये ग्रन्थियाँ आकारमें बढ़ जाती हैं, तथा इनमें अधःक्षेपण क्रियायें भी होती रहती हैं। अस्तु, इस अवस्थामें भारोत्पन्न लक्षण (Pressure symptom) उपस्थित होते हैं। कुछ वयस्क बालकोंमें यह देखा जाता है, कि प्रवेश मार्ग तो रोग-मुक्त हो गया है, किन्तु इन ग्रन्थियोंमें सुलगती हुई आगकी भाँति रोग अवरुद्ध रहता है। इस प्रकार आक्रान्त केन्द्र वर्षों शांत रह सकता है, तथा जीवनके और किसी कालमें, जब अवरोधिनी शक्ति नष्ट हो जाती है, पुनः उपद्रव मचा सकता है। किन्तु यह बहुधा रोग रूपमें प्रकट नहीं होता।

यह भी सिद्ध हो चुका है कि शहरके रहने वाले १० से ११ वर्षके बालकोंमें प्रायः ९६ प्रतिशत किसी न किसी समय यक्ष्माक्रान्त हो चुके हैं, किन्तु यद्यपि उनमेंसे बहुतोंके फुफ्फुस तथा लसीका ग्रन्थियाँ भली भाँति आक्रान्त रहती हैं, तो भी न तो उनके शारीरिक-ह्रास-सूचक कोई लक्षण उपस्थित होते और न उन्हें दवाकी अथवा जलवायु व अभ्यास परिवर्त्तनकी आवश्यकता होती है। अस्तु, बच्चोंमें यदि कोई लक्षण उपस्थित नहीं हों तो केवल यक्ष्माक्रान्त आक्रमण ही भयावह नहीं समझा जा सकता।

बालकोंमें फुफ्फुस-यक्ष्माके लक्षण।

(क) क्षय। यक्ष्मा-जनित क्षय एक प्रधान लक्षण है, किन्तु इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि बालकोंका शारीरिक ह्रास बहुतसे अन्य कारणों से भी होता है।

(ख) खांसी। कभी कभी बहुत कम होती है, किन्तु होती है अवश्य, तथा अन्य कारणों द्वारा भी सम्भव है।

(ग) रातमें स्वेदागम। यह भी अन्य कारण-वश हो सकता है।

(घ) ज्वर।

(ङ) वक्षस्थलमें पीड़ा। कभी कभी होती है।

(च) अग्नि-मांद्य, तथा अपच।

इन लक्षणों पर विचार करते समय इन बातों पर भी ध्यान देना होगा कि, बालकको किसी प्रकार रोगके छूत लग जानेकी सम्भावना अथवा परम्परागत आक्रमणकी कोई सम्भावना थी वा नहीं।

रोगके चिह्न।

[स्वस्थ बालकोंके वक्षकी बनावट और कार्यक्रममें प्रायः निम्नलिखित विशेषतायें साधारणतः पायी जाती हैं।

(क) वक्षस्थल आकारमें छोटा तथा गोलाकृति होता है।

(ख) साधारण विघातन झंकार स्पष्ट रहता है, तथा इसका कुछ कुछ लुप्त हो जाना पता नहीं लगता।

(ग) शब्द-परिचायक द्वारा बहुधा सीटीका सा शब्द सुना जाता है।

(घ) शब्द एक फुफ्फुससे दूसरेमें बहुत सरलता-पूर्वक जाता है।

(ङ) प्रदाह द्वारा अथवा बिना किसी कारणके ही फुफ्फुसका कोई अंश भ्रष्ट (Collapsed) हो जा सकता है, जिससे फुफ्फुस तंतुके ठोस हो जाने अथवा फुफ्फुसावरणमें प्रदाह जनित द्रवके एकत्रित होने का सन्देह होने लगता है।

(च) कुछ कुछ श्वासकष्ट (हंफनी) बालकोंमें बहुधा देखा जाता है।

(१) दर्शन ।

सम्मुख भाग

(क) सारे वक्षस्थलका दौर्बल्य लक्षित होता है ।

(ख) त्वचा की शिरायें भरी हुई जान पड़ती हैं । लसीका-ग्रन्थियोंके आकारमें बढ़ जानेके कारण वक्षस्थलके भीतरी भागमें बडी शिराओं पर पूरा दबाव पड़ता है, जिसके फल-स्वरूप त्वचाकी शिरायें रक्तागमसे कुछ स्फालित हो जाती हैं तथा रक्त-पूरित जान पड़ती हैं ।

(ग) लसीका-ग्रन्थियाँ—ग्रैवी, अक्षक (Clavicle) के ऊपरकी गलेके पश्चात् त्रिकोणकी, कक्षकी तथा अन्त्रधारक-कलाकी—आकारमें बड़ी तथा कड़ी हो जाती हैं ।

पीछेकी ओर—

(घ) रोयें (रोम) अधिक दीख पड़ते हैं ।

(ङ) मेरुदण्डको घेरे हुए स्फालित शिराओंका एक जाल सा (Spinal talengectiasis) दीख पड़ता है ।

(२) विघातन—

सम्मुख भाग ।

(क) तुलनात्मक विघातनसे कुछ विशेष लाभ नहीं होता, सम्भवतः दाहिने शिखर पर विघातन-झंकार कुछ लुप्त हुआ सा जान पड़ता है ।

(ख) वक्षोऽस्थिके दोनों पार्श्वोंमें प्रायः १ शतांश-मीटर तक साधारणतः विघातन-झंकार लुप्त रहता है, किन्तु यक्ष्माक्रान्त वक्षमें यह दूरी बढ़ कर २, ३ वा ४, ५ शतांशमीटर तक पहुँच जाती है ।

पीछेकी ओर—

(ग) साधारणतः स्वस्थ बालकोंके पृष्ठ-भागमें एक ऐसा स्थान पाया जाता है जिसमें विघातन-झंकार लुप्त रहता है, यह अंडाकार स्थान वक्षकी प्रथम कशेरुका से पञ्चम कशेरुका तक विस्तीर्ण रहता है । यक्ष्माक्रान्त बालकोंमें यह स्थान और भी बढ़ कर ७ वीं कशेरुका तक पहुँच जाता है ।

(३) शब्द परिचायक द्वारा श्रवण ।

(क) दाहिने शिखर पर नलाकार शब्द सुना जा सकता है, तथा बहिःश्वसन् अपेक्षाकृत अधिक देर तक सुना जाता है ।

(ख) कभी कभी (किन्तु बहुत कम रोगियोंमें) अन्तःश्वसन्के साथ साथ सूक्ष्म रालसका पता लगता है, जो कि एक ही स्थानमें बार बार सुनने पर भी पाया जाता है ।

(ग) बहुधा शब्द-सम्बन्धी कोई भी विशेषता ज्ञात नहीं होती ।

(घ) कभी कभी वक्षस्थलके मध्य भागमें कुर्कुराहटका शब्द पाया जाता है, जो खांसने पर भी बना रहता है ।

पीछेकी ओर—

(ङ) यदि फुफ्फुसका अधिक अंश क्षयाक्रान्त हुआ तो दाहिने शिखर पर दीर्घ तथा सीटीका सा श्वास-शब्द सुन पड़ता है ।

(च) बाहरी शब्द (रालस इत्यादि) भी मिल सकते हैं ।

(छ) बहुधा कोई विशेषता नहीं पायी जाती ।

(४) स्पर्श—

यह निरर्थक है क्योंकि

(क) रोग बहुधा दोनों फुफ्फुसोंमें वर्त्तमान रहता है, और तुलना करने पर वक्षके दोनों पार्श्व एकसे जान पड़ते हैं ।

(ग) स्वस्थ बालकोंके वक्षमें भी स्पर्श द्वारा कुछ न कुछ भिन्नता पायी जाती है ।

(५) मेरुदण्ड-सम्बन्धी चिह्न

बहुधा दबावके कारण वक्षकी पञ्चम कशेरुकाके निकट स्पर्श द्वारा कुछ वेदना अनुभूत होती है । इसके अतिरिक्त अन्य चिह्न विश्वसनीय नहीं होते क्योंकि वे स्वस्थ बालकोंमें भी पाये जाते हैं ।

(६) ग्रन्थियोंकी वृद्धि द्वारा उत्पन्न दबावाधिक्य जनित अन्य लक्षण और चिह्न ।

(क) वायुमार्ग पर दबावाधिक्य—

बहिःश्वसनके समय श्वास-कष्ट होता है, तथा सुसकारी (सायँ सायँ) की सी आवाज़ आती है। अन्तःश्वसनके समय वक्षस्थलकी दीवारें भीतरकी ओर धँस जाती हैं। फुफ्फुसमें श्वास-शब्द बहुत सूक्ष्म हो जाता है, तथा राल्स सुन पड़ते हैं। यह अवस्था बहुत कम उपस्थित होती है, किन्तु यदि देखी जाय तो यथा-सम्भव शीघ्र वायुमार्गमें छिद्र कर वायु पहुँचाना होगा।

(ख) रक्त-नलिकाओं पर दबावाधिक्य :—

शिरायें—ये स्फालित हो जाती हैं, चेहरे पर नीलापन छा जाता है, कपाल एवं हाथ कुछ सूज जाते हैं, नासारंध्रोंसे रक्त-स्राव होता है।

धमनियां—फुपफुसीया धमनीः—फुपफुस-भ्रन्श (Collapse of lung) हो जाता है

अनामिका धमनीः—नाड़ी क्षीण एवं तीव्र चलती हैं।

(ग) नाड़ियों पर दबावाधिक्य—

खांसी, श्वास-कष्ट, वमन, नाड़ीका कम वा अधिक चलना, हृदयस्फालन इत्यादि।

(घ) आहार-पथ पर दबावाधिक्यः—

भोजनमें कष्ट होता है।

ये दबावाधिक्य-जनित लक्षण छोटे बच्चोंमें ही अधिकतर उपस्थित होते हैं।

बाल्यावस्थाके यक्ष्माके सम्बन्धमें दो एक और भी जानने योग्य बातें ये हैं—

(क) ५ वा ६ वर्षकी आयुसे लेकर यौवन-प्राप्तिके अवसर तक यक्ष्माके विरुद्ध अवरोधिनी शक्ति प्रबल रहती है। बहुधा इस बीचमें यह रोग सांघातिक नहीं होता।

(ख) फुफ्फुस-मूलीय यक्ष्मा उचित आहार तथा अन्य स्वास्थ्यकारी साधनों द्वारा शांत होता है, यद्यपि ग्रन्थियां बहुत समय तक बृहदाकार बनी ही रहती हैं।

(ग) इस बातको हम प्रायः भूल जाते हैं कि बच्चोंका मानसिक दौर्बल्य बहुधा यक्ष्माका ही रूपान्तर होता है।

(घ) ज्यों ज्यों बच्चा बढ़ता जाता है त्यों त्यों फुफ्फुस-शिखरके यक्ष्माक्रान्त होनेकी सम्भावना अधिकाधिक होती जाती है।

(ङ) यक्ष्मा प्रायः अन्य रोगोंके (गोटी, कुक्कुर-खांसी इत्यादि) उपरान्त तथा अपचके साथ साथ उपस्थित होता है।

(च) इसका निदान बहुत कठिन है।

अन्य उपादानोंकी सहायता

१ रौञ्जन-किरण।

छाया-चित्र।

(क) रोगाक्रान्त ग्रन्थियोंका चित्र एक पतले डंडेका सा अक्षक से लेकर २ तीय, ३ तीय, वा ४ र्थ पर्शुकान्तर स्थानोंके पश्चाद्भाग तक लक्षित होता है। छाया घनी एवं बाहरकी ओर उन्नतोदर होती है। दाहिनी ओर तो यह स्पष्ट दीख पड़ती है, किन्तु बायीं ओर अन्य अवयवोंके चित्रके साथ मिल कर धुँधली हो जाती है। अन्य स्थानोंमें भी ग्रन्थियोंकी छाया मिलती हैं।

(ख) फुपफुस-मूल सघन हो जाता है, इसको चारों ओरसे घेर कर यक्ष्मा-गांठोंकी अँगूठियां वा ४ के अंककी सी छाया वर्त्तमान रहती है।

(ग) स्वस्थ अवस्थामें फुपफुस जालकी कोई छाया नहीं मिलती, अतएव सारा क्षेत्र साफ रहता है, किन्तु यक्ष्माक्रान्त फुफ्फुसकी छायामें बहुतसे धागोंकी छाया प्राप्त होती है, इसके अतिरिक्त यक्ष्मागांठोंकी छाया (अँगूठी जैसी) भी वर्त्तमान रहती है।

(घ) फुपफुसावरणमें बहुधा प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। अस्तु, इसकी छाया समतल खुर्चे हुए काँचकी सी जान पड़ती है और कभी कभी इसमें वर्त्तमान द्रवकी भी छाया मिलती है।

चमक-सूचक-चित्र (Radioscopy)

(क) फुफ्फुसावरण-प्रदाह के कारण वक्षोदर मध्यस्था मांस पेशीकी गति बन्द रहती है, अथवा बहुत मन्द हो जाती है।

(ख) वक्षके भीतर किरणोंके अवरुद्ध हो जानेके कारण, वक्ष कुछ धुँधला जान पड़ता है। (स्वस्थ अवस्थामें यह एक दम चमकीला रहता है।

(ग) कभी कभी सारे क्षेत्रमें छोटे छोटे धब्बे दीख पड़ते हैं।

२ टुवर्कुलिन प्रतिक्रिया।

बाल्यावस्थामें इस प्रश्नका उत्तर कि "यक्ष्मा का आक्रमण कभी हुआ है, अथवा नहीं," रोग निदानके लिए यथेष्ट सहायक है। अस्तु, इस समय टुवर्कुलिन-प्रतिक्रियायोंका बहुत बड़ा मूल्य होता है। बच्चोंको टुवर्कुलिन पूर्वकथित कई रीतियों से दिया जा सकता है। यह वास्तवमें निदानको सरल कर देता है।

३ ज्वर।

साधारणतः स्वस्थ बालकों शरीरका तापक्रम कितना रहता है यह निर्धारित करना कठिन है, क्योंकि—

(क) इनके मस्तिष्कका ताप-केन्द्र (Heat centre) बहुत कम पुष्ट रहता है। अस्तु, शरीरके तापक्रमको एक सा बनाये रखनेकी शक्ति इन्हें नहीं रहती है।

(ख) बच्चोंको बहुत तरहके प्रदाह इत्यादि होते रहते हैं।

(ग) साधारणसे साधारण कारण—जैसे दांत निकलना इत्यादि—ये तापक्रममें बहुत बड़ा अन्तर उपस्थित कर देते हैं।

(घ) इनके विश्रामके समयका तापक्रम प्राप्त करना असम्भव है क्योंकि साधारणतः ये तब तक विश्राम नहीं करते जब तक वास्तवमें निद्राभिभूत नहीं होजाते, और जितने समय तक ये (एक साथ) सोते हैं वह इतना पर्याप्त नहीं होता कि इनका शारीरिक तापक्रम उतर कर अपनी वास्तविक अवस्थामें पहुँच जाय। अस्तु, इनके तापक्रमको जान कर किसी नतीजे पर पहुँचना उचित नहीं है। कुछ डिगरीके अल्पाधिक्यसे कोई सिद्धान्त निर्धारित नहीं हो सकता।

साधारणतः—

(क) सद्यः-जात शिशुका १०३.६° का तापक्रम अधिक नहीं समझा जा सकता।

(ख) बच्चोंका तापक्रम ९९.०५° से ९९.६८ तक रह सकता है।

(ग) ५ से १० वर्षके बालकोंका

भोरके समय ९९°

तीसरे पहरको ९९.३°

और ९ से १० बजे रात तक ९७.५° रह सकता है।

(घ) १० से १५ वर्षके बालकोंका

भोरके समय—९८.२°

तथा संध्या-समय—९९.२° रह सकता है*

(ये मुखके तापक्रम हैं)

(क) ज्वर नहीं हो सकता है

(ख) कभी कभी ज्वर हो सकता है

(ग) बहुधा भोरके समय ९९.६४°, संध्या समय ९९.४१° और रातके समय ९९.९° रह सकता है। स्वस्थ बालकोंके ये माप औसत ९७.५° होते हैं, अन्यथा दोनों (स्वस्थ तथा रोगाक्रान्त) के तापक्रममें प्रायः कोई अन्तर लक्षित नहीं होता।

(घ) तीन प्रकारका ज्वर हो सकता है—

(एक) केवल संध्या समय आता हो,

(दो) संध्या तथा भोरको आता हो, किन्तु संध्या समय अधिक हो

(तीन) दोनों ही समय अधिक ज्वर होता हो।

* Finlayson quoted by C. Rivere

४ बलगम

इसकी परीक्षामें कठिनता यह होती है, कि बालक बहुधा बलगमको निगल जाया करते हैं, तथा उनमें यक्ष्मा ऐसा रूप बहुत कम धारण करता है जिसमें बलगम निकलता हो (Open tuberculosis) प्रथम कठिनाईको दूर करनेके लिए कीटाणु-विहीन (Sterile) कपड़ेका एक टुकड़ा लेकर उसमें बालकके कण्ठको खुजाते हैं, जिससे खांसी होती है। उस समय जो बलगम कपड़े पर प्राप्त हो जाता है उसकी परीक्षाकी जाती है। परीक्षा-विधि पहले कही जा चुकी है।

वर्षा—भाप का बनना

पानी कब बरसता है? जब आकाश में बादल आते हैं। ये बादल यहाँ से कितनी दूर हैं? क्या तुम्हारी पतंग वहाँ तक पहुँच सकती है? पतंग की डोर कितने गज़ लम्बी है? ये बादल कई सौ फुट ऊँचाई पर हैं। यदि तुम पहाड़ों पर जाओ तो कभी कभी ये बादल तुम्हारे घरमें घुस आवेंगे और तुम्हारे कपड़ों को भिगो देंगे।

क्या तुम यह बता सकते हो कि ये बादल कहाँ से आते हैं? इनमें इतना पानी कहाँसे आता है? ज़मीन का पानी ही भाप बन कर ऊपर उठ जाता है, और यह भाप ही बादल के रूप में दिखाई देती है। बादल की भाप जब ठण्डी हो जाती है तो पानी बन कर बरसने लगती है।

नहाने के बाद तुमने अपनी धोती धूपमें फैला दी थी। उस गीली धोतीमें पानी था। बताओ धूप में रखनेसे वह पानी कहाँ चला गया ? एक रूमाल भिगो कर निचोड़ो और उसे अँगीठी के पास फैला दो। अँगीठी की गरमी पाकर रूमाल सूख जायगा। आग के पास भीगा रूमाल रखने से उसका पानी कहाँ चला गया ?

एक कटोरी में पानी लो और आग पर रख दो। थोड़ी देर में पानी गरम होने लगेगा। हाथ से छू कर तुम यह जान सकते हो। कुछ देर के बाद इतना गरम हो जायगा कि यदि तुम उसमें हाथ डालोगे तो तुम्हारा हाथ जलने लगेगा। अब देखो, पानी उबलने लगा। कटोरी के मुंह के ऊपर तुम्हें कुछ धुंआ सा उठता दिखाई देगा। इस धुंआ को क्या कहते हैं ? भाप। किसी ठगडी चम्मच से भाप को छुओ। चम्मच के ऊपर पानी की छोटी छोटी बूँदे दिखाई पड़ेंगी। ये बूँदें कहाँ से आयीं ? भाप से। चम्मच ठगडी थी, उसको छू कर भाप भी

ठण्डी हो गई, और उसका पानी बन गया। कटोरी को और गरम करो। थोड़ी देर में सब पानी भाप बन कर उड़ जायगा।

तुमने क्या देखा ? बहुत सी गरमी लेकर पानी भाप बन जाता है और यह भाप ठण्डी होकर फिर पानी बन जाती है।

एक प्याली में थोड़ा सा पानी लेकर धूप में रख आओ। घण्टे दो घण्टे के बाद जाकर देखो कि उसमें कितना पानी रह गया है। पानी धूप में रखने से धीरे धीरे कम होता जा रहा है। थोड़ी देर में प्याली सूख जायगी। पानी कहाँ चला गया ? यह भाप बन कर उड़ गया।

अब तुम बता सकते हो कि तुम्हारी दवात में स्याही क्यों सूख जाती है ? स्याही का पानी कहाँ चला जाता है ? गरमी की ऋतु में तुमने देखा होगा कि दवात बहुत जल्दी सूख जाती है और तुम्हें क़रीब क़रीब रोज़ ही पानी डालना पड़ता है।

गरमी में सड़कों की नालियाँ भी सूखी दिखाई देती हैं। यह क्यों? इनका पानी कहाँ उड़ जाता है?

एक हरे पत्तेको धूपमें रख दो। कुछ घण्टों के बाद तुम देखोगे कि वह हरा मुलायम पत्ता अब सूख गया? इसका पानी भाप बन कर उड़ गया है, इसी लिये वह सूखा दिखाई पड़ता है।

क्या तुमने देखा कि गरमी में छोटे छोटे तालाब सूख जाते हैं? अपने गाँव या शहर में तालाब, या पोखर हो तो जाकर देखो। इसी तरह से छोटी नदियाँ भी गरमी में बहुत कुछ सूख जाती हैं। तुमने देखा तो न होगा, पर अब तुम यह समझ सकते हो कि बड़े बड़े समुद्रों का पानी भी सूरज की गर्मी से हर एक ऋतु में भाप बन कर उड़ा करता है। गर्मी की ऋतुमें तो इसकी इतनी भाप बनती है कि वही तुम्हें गरमीके बाद बरसातमें कुछ ठण्डी होने पर बादल के रूप में दिखाई पड़ती है। अब तुम बताओ बादल कैसे बनते हैं?

निरीक्षण और प्रयोग

१, भीगा रूमाल धूप में सुखा कर दिखाओ।
२, कटोरी में पानी धूप में रख कर देखो कि क्या होता है।
३, स्याही से भरी दवात को धूप में रखो।
४, कटोरी में पानी गरम करके भाप बनाओ। भाप को ठंडा करके भी दिखाओ।
५, स्कूल के एक ऐसे स्थान में गड्ढा खोदो जहाँ धूप बहुत पड़ती हो। उस गड्ढे में थोड़ा सा पानी भरदो। एक ऐसा ही गड्ढा छायामें भी बनाओ और उसमें भी उतना ही पानी भर दो। एक दो दिन की धूपके बाद दिखाओ कि दोनोंमें कितना पानी है।
६, धूपमें धोती सुखाओ।
७, सड़कोंकी सूखी नालियाँ दिखाओ।
८, घास या हरी पत्तीको धूपमें रख कर दिखाओ।

प्राचीन हिन्दुओं की गानविद्या

[अनु० श्री गङ्गाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०]

गान भावोंके प्रकाश करनेका स्वाभाविक साधन है। यह स्त्री, पुरुष और बच्चों को सब अवस्थामें, हर समय और प्रत्येक देशमें अपने आप आ जाता है। सर ह्यूबर्ट पैरी (Sir Hubert Parry) का कथन है कि गीतसे मनुष्यके स्वभावकी वास्तविक बढ़ोतरी मालूम होती है। इससे ठीक ठीक ज्ञान हो जाता है कि गाने वाला किस किस चीज़को चाहता है और उसका स्वभाव किस प्रकारका है।

चीन वालों ने इस विद्याका मान इतना बढ़ाया है कि वे इसको विद्याओंकी विद्या कहते हैं।

जब प्राचीन हिन्दू लोग कवितामें प्रसिद्ध थे तो गान विद्यामें भी अवश्य ही प्रसिद्ध रहे होंगे। एनी. सी विल्सन अपनी पुस्तकमें (यह शायद यूरोपियन लोगोंमें सबसे हालका उदाहरण है जिसमें हिन्दुओंके रागोंको समझनेकी कोशिश की गई है) लिखती हैं कि " हिन्दुस्तानी वास्तवमें गाने वाले लोग हैं। भारतवर्षमें राग और जीवनका इतना साथ है कि दिनके हर एक घण्टे और वर्ष की हर एक ऋतुके लिये अलग अलग राग हैं। "

(A short account of the Hindu System of Music by Anne C. Wilson 1904 p. 5)

मिस्टर कोलमेन कहते हैं कि " गानविद्याके विषयमें एक योग्य लेखक ने (सर डब्लू जोन्स) अपना विश्वास इस प्रकार प्रकट किया है कि हिन्दू गान विद्या यूरोपियन गानविद्याकी अपेक्षा ऊँचे नियमों पर निर्धारित है।

(Coleman's Hindu Mythology, Preface p. 9)

कर्नल टाड लिखते हैं कि " (यूरोपियन लिखित) अंग्रेजोंके पूर्वीसाहित्यमें अभी यह कमी है कि हिन्दुओंकी प्राचीन गान विद्याका वर्णन विधान नहीं किया गया और न इसका यूरोपकी गान विद्यासे मुकाबिला किया गया है। जहाँ तक इस विद्या का पता हमको है हम कह सकते हैं कि जितनी इन्होंने उन्नतिकी थी उससे यूरोप अब तक अनभिज्ञ है और यह उन्नति उस समय हुई थी जब यूनानी लोग जंगली अवस्थासे कुछ ही कम थे" यह विद्या भी इतनी ही पुरानी है जितना कि संस्कृत साहित्य है। एनी सी. विल्सन ने लिखा है कि "इस पर वह लोग अभिमान कर सकते हैं कि उनकी लेखबद्ध गान विद्या दुनिया भरमें सबसे पुरानी है। इसकी मुख्य मुख्य बातें तो बहुत दिन हुये कि वैदिक ग्रन्थोंमें दो हुई थीं।..........इन नियमोंको अपनी उन्नतिके समयमें मुसलमान लोग भी मान चुके थे और आज पर्य्यन्त वे अपनी निज कवितामें इन्हींके अनुकूल काम करते हैं।"

(हिन्दू गानविद्याका संक्षेप वृत्तान्त पृ० ६)

हिन्दू लोग प्राचीन समयसे ही गानविद्याके प्रेमी थे*। वेदों (सामवेद) में भी इसका विधान है। हिन्दुओंकी गान विद्या सम्बन्धी उन्नति तो उनकी योग्यतासे ही प्रकट होती है। परन्तु इस विद्याका अपूर्व ग्रन्थ गन्धर्व वेद लुप्त हो गया है, और अन्य संस्कृत ग्रन्थोंमें जो कुछ इसका वर्णन है उसीसे हिन्दुओंकी गान विद्याके उच्च नियमों का पता लग सकता है।

---

* शेक्सपियर लिखता है।

"The man that hath no music in himself

Nor is not moved with concord of sweet sounds.

Is fit for treason, stratagems and spoils;

Let no such man be trusted"

† हिन्दू गान विद्याके नियम कई संस्कृत पुस्तकोंमें दिये हुये हैं (सर डब्ल्यू जोन्स)

हिन्दुओंकी राग रागनियां अब भी असंख्य हैं और बहुतसोंमें ऐसा सूक्ष्म भेद है कि " रागप्रिय यूरोपियनोंके सुशिक्षित कान " भी उनको भली प्रकार समझ नहीं सकते।

सर डब्ल्यू डब्ल्यू हण्टर कहते हैं कि भारतवर्षी गवय्योंने स्वर और उपस्वरसे सन्तुष्ट न होकर एक और बारीक भेद निकाला था जिसमें शब्दोंका ऐसा सूक्ष्म अन्तर था कि पश्चिमी लोग न तो इसे समझ सकते हैं और न इनको वे सुहावने मालूम होते हैं। इनके अष्टक (सप्तक) के २२ भेद हैं यद्यपि यूरोप वाले केवल १२ ही भेद करते हैं। हिन्दू गवय्योंकी योग्यताका पता उन थोड़ेसे हिन्दू स्वरों से कभी नहीं लग सकता जो इंग्रेजोंको अच्छे लगते हैं"।

(Imperial Gazetteer India p. 224)

एनी सी. विलसन लिखती हैं कि "हर एक देहाती गवय्येको तालका ज्ञान है। वह भूमि पर ताल देता जाता है और सुनने वाले ताली बजा कर उसका अनुकरण करते हैं। ताल और उसके ऐसे भेदोंको जिन्हें साधारण अंग्रेज नहीं समझ सकते वह खूब पहिचानता है। उसके कान रागोंके समझनेमें ऐसे तीक्ष्ण हैं कि वह चौथाई और आधे स्वरोंके गाने और बजानेके समय पहिचान लेता है और दर्शाता है।"

यूरोपवाले हिन्दू गान विद्याका अनुकरण नहीं कर सकते। मिस्टर आर्थर ह्विटिन लिखते हैं, "लेकिन मुझे यह दिखलाना है कि हमारे स्वरोंमें तो आधे स्वरसे कम कोई आवाज नहीं होती पर हिन्दुओं के स्वरोंमें चौथाई स्वर भी होते हैं जिससे यूरोप वाले उनका अनुकरण नहीं कर सकते। मुझे निश्चय है कि इनके रागोंको सिवाय उन पुरुषोंके और कोई नहीं गा सकता जिन्होंने बचपनसे अभ्यास किया हो। वह यह भी लिखते हैं कि यूरोप वाले प्राचीन हिन्दुओंके बहुत थोड़े स्वरोंको जानते हैं और उनको लिखने की गति आधुनिक स्वर विधिके अनुसार लिख नहीं सकते क्योंकि हमारे यहां गीत लिखनेके वे चिह्न वा अक्षर हैं ही नहीं जिनसे उपर्युक्त स्वर प्रकाशित हो सकें"।

(The Music of the Ancients p. 21)

उपाध्याय विलसन कहते हैं कि सर डब्ल्यू जोंस और मिस्टर कोलब्रुकके लेखोंसे विदित होता है कि गान विद्या वैज्ञानिक नियमोंके अनुसार सीखी जाती थी, और हिन्दू लोग सरगम चिह्न मिति ताल और स्वरोंके उन सूक्ष्म भेदोंको भी जानते थे जो यूरोपमें पाये नहीं जाते"।

(Mill's India vol. II. p. 41)

मिसिस मैनिंग लिखती है कि " हिन्दू गान विद्यामें ताल स्वर (Chromatic) और लघु विराम वाले (Enharmonic) दोनों प्रकारके गीत होते हैं"।

(Ancient and Medieval India vol II p. 153)

ओरियेण्टल क्वार्टरली रिव्यूमें लिखा है कि "यूरोपियन लोग हिन्दू गाने बजाने वालोंका जो इन्हें मिल जाते हैं उसी प्रकार वर्णन करते हैं जिस प्रकार इटलीके मुख्य गवय्ये गली कूँचेके आल्हा गाने वालोंका (दिसम्बर १८२५, पृ० १८७)।

सर डब्ल्यू डब्ल्यू हण्टर लिखते हैं कि "हिन्दुस्तानमें रहनेवाले यूरोपियन लोग हिन्दू गान विद्याका जितना अनादर करते हैं उतनी ही उन लोगोंकी इन नियमोंसे अनभिज्ञता सिद्ध होती है"*

(Imperial Gazetteer India p. 224)

* मिसिस एनी सी विलसन ने लिखा है "मुझे विश्वास है कि बहुत कम यूरोपियन लोगोंको ध्रुपद, पश्चिमोत्तर देशके टप्पा, ठुमरी, राजपूतोंके खरखा, हत्तरी, गुजरातियोंका लोरी और विवाह तथा मौतके गीत, मदरासियोंके वरणं पल्लम्, कीर्तन आदि का कुछ २ ज्ञान होगा···हममेंसे कौन ऐसा

प्रोफेसर विलसन लिखते हैं कि "प्रायः यूरोपियन लोग हिन्दू गान विद्याको बिलकुल नहीं जानते। वे केवल उन रागोंको सुन लेते हैं जो कीर्तनके साथमें गाये जाते हैं और जिनमें या तो गुलगपाड़ा होता है या मुसलमानी गीत होते हैं जो फारिसके हैं न कि भारतवर्षके*।

छः राग हैं और ३६ रागिनी। रागिनियोंमें भी रागोंके कुछ २ लक्षण पाये जाते हैं परन्तु कोमलता और मृदुभाव अधिक होता है। इन ३६ में से हर रागिनीके तीन २ भेद हैं जिनमें हर रागिनीके विशेष लक्षण पाये जाते हैं, और इन रागिनियोंके फिर अनन्त भेद हैं जो हर एक मुख्य रागका अनुकरण करते हैं। हिन्दू लोग कहते हैं कि रागिनियाँ इतनी ही असंख्य हैं जितनी समुद्रकी तरङ्गें"। हिन्दू गान विद्याके वैज्ञानिक नियमोंके अनुसार होनेका यह भी एक प्रमाण है। जैसा मिस्टर ह्विटन ने लिखा है कि हर एक राग चित्र किसी विशेष भाव तथा कामनाके पैदा करनेके लिये होता था और हर राग के लिए ऋतु, समय (रात व दिनका) स्थान वा प्रान्त नियत था और यदि कोई किसी रागको ऋतु वा स्थानके अनुसार नहीं गाता था तो हिन्दू लोग उसे बनावटी और भद्दा गवय्या कहते थे"।

छः मुख्य २ राग यह हैं :—

(१) हिंडोल—यह श्रोतागण पर वसन्त ऋतु का माधुर्य दर्शानेके लिये गाया जाता है। यह शहदकी तरह मीठा और सहस्रों पुष्पोंकी भाँति सुगंधित होता है।

(२) श्रीराग—इससे चित्त पर सायंकालकी शान्तिका प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार सायंकाल के समय रात्रि और अंधेरा आनेसे पहले सुनहरी बादल हो जाते हैं इसी प्रकार मनुष्यके विचार भी सुनहरी हो जाते हैं।

(३) मेघ मल्हार—इसमें बादल और वर्षाका वर्णन होता है। इसमें इतनी शक्ति है कि खुश्कीमें बादल बन जांय।

(४) दीपक—यह राग अब लुप्त हो गया है, चूँकि इसका गानेवाला ज़िन्दा नहीं रह सकता था इसलिये लोगों ने इसे छोड़ दिया। इसमें इतनी शक्ति होती है कि दीपक जल उठे और गाने वालेके शरीरमें ज्वाला उत्पन्न हो जाय जिससे वह मर जाय।

(५) भैरव—इससे चित्त पर प्रातःकाल, चिड़ियोंका चहचहाना, वायुकी सुगन्धि, ओसकी झलक इन सबका प्रभाव पड़ता है।*

(६) मालकोस—इस रागसे मनमें कुछ कुछ उत्साह उठता है।

हिन्दुओं और यूरोपियनोंकी बहुत सी बातें मिलती हैं। मिस्टर आर्थर ह्विटन लिखते हैं कि "निस्सन्देह हमारे और हिन्दुओंके सरगममें बहुत सादृश्य है। इसमें सात स्वर होते हैं और तीन अष्टक (सप्तक) और मनुष्यकी आवाज़ इतनी ही बढ़ सकती है। उनके राग और ध्वनि दोनोंके हमारी

है जो विद्यापति, चण्डीदास, जयदेव, तथा राम भगनदत्तके घराने (जो गाने वाले पक्षियोंका घोंसला कहलाता है) के गीतोंको जानता हो।

* आगे चल कर विलसन लिखते है "हिन्दू लोगोंमें अब गानेका अभ्यास कम हो गया है क्योंकि शायद मुसलमानों ने बन्द कर दिया था। सर डब्ल्यू डब्ल्यू हण्टर लिखता है "बहुत उन्नतिके पश्चात् हिन्दू गान विद्या मुसलमानोंके समयमें नष्ट हो गई (Imperial Gazetteer p. 223) परन्तु अब भी कुछ २ पुरानी बातें उपस्थित हैं जिनके विचित्र नियमोंको देखकर यूनानी गान विद्याके पण्डित भी चकित हो जाते हैं। (p. 224)

* लखनऊमें अभी थोड़े दिन हुए एक गवय्या था जिसका नाम मनई महाराज था। रातके समय पले हुए पक्षियोंके पिंजरेको बन्द कराके जब वह गाता था तो पक्षी प्रातःकालका विश्वास करके चहचहाने लगते थे। अभी मनईका पुत्र जीवित है, वह भी एक गवैया है।

तरह तीन तीन भेद हैं। वासको उदार, टैनरको मधुर, मध्यम और सोपरेनो की तरह अर्थात् उच्च स्वर कहते हैं। यह एक अद्भुत बात है कि हमारा सरगम हिन्दुओंके सरगमसे इतना मिलता है। हमारा सरगम यह है दोह, रे, मी, फाह, सोल, ला, टी, । हिन्दुओंका यह है सा, रे, गा, मा, पा, धा, नी।"

(Music of the ancients pp. 21, 22)

इस सादृश्यका कारण भी स्पष्ट ही है। सर डब्ल्यू हरटर लिखते हैं कि स्वरोंको चिह्नों द्वारा दिखलानेका नियम पाणिनिसे पहिले बन चुका था, और सात स्वरोंको पहिले सात अक्षरोंसे प्रकट करते थे। यह नियम ब्राह्मणोंसे फारिस होता हुआ अरब में पहुंच गया। वहांसे गाइडो डि एरेजो ने ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भमें इसे यूरोपकी गान विद्या में प्रवेश कर दिया।[1]

प्रो० वीबर लिखते हैं कि वान वोहलिन और बेन्फेका कथन है कि गीतोंके चिह्नोंकी रीति हिन्दुओंसे फारिस[2] वालों और उनसे अरब वालों तक पहुंची और ११वीं शताब्दीके आरम्भमें गाइडी डी एरेजो ने इसका यूरोपके गीतोंमें प्रचार कर दिया।

(Weber's Indian Literature p. 272)

परन्तु हिन्दू गानविद्या का यूरोपमें इससे बहुत पहिले प्रचार हो चुका था।

स्ट्रेबो लिखता है "बहुतसे यूनानी कहते हैं कि गानविद्याकी हरएक शाखा भारतवर्षसे निकली है। हम देखते हैं कि कभी कभी एशियाके सितारका ज़िकिर आता है और कभी २ बाँसुरीको फ्रीजियन कहते हैं। बहुतसे बाजोंके नाम जैसे नब्ल आदि जंगली भाषाओं से लिये गये हैं," कर्नल टाड लिखता है कि स्ट्रेबो जिस बाजेको नब्ल कहता है वह शायद भारतवर्षका तब्ला है। अगर स्ट्रेबो ने यह शब्द फारिस या अरबसे लिया हो तो न और त का भेद होना बहुत सम्भव है"। (राजस्थान जि० १ पृ० ५६६)

आगे लिखा है कि 'हमारे पास बहुतसे प्रमाण हैं और लेखबद्ध गीतोंके विस्तारसे जो कानको बुरे मालूम होते हैं और उनके सूक्ष्म भेदोंसे भी ज्ञात होता है कि उनके यहाँ संगीत सम्बन्धी स्वर सूची (chromatic scale) भी थी जिसको कहा जाता है कि अलक्षेन्द्र के समयमें टिमोथियस ने निकाला था और जिसको शायद वह सिन्ध नदीके तटसे ले गया होगा।' (राजस्थान जि० १ पृ० ५७०)

कर्नल टाड यह भी लिखते हैं कि "हरिदेवताके त्योहारोंमें जो रासमण्डल नामक नाच होता है उसमें नाचते हुये हरिके शिर पर चमकीला मुकुट रक्खा जाता है, वह बांसुरी बजाता है और गोपियां बाजा बजाती हुई उसके चारों ओर फिरती हैं। इन गोपियोंको नवरागिनी कहते हैं क्योंकि रागके ऊपर वह अधिष्ठातृ होती हैं और उनके संयोगसे नवरस उत्पन्न होते हैं। क्या अपोलो और पवित्र नौ परियां यहींसे तो नहीं निकलीं"।

प्राचीन भारतवर्ष के प्रसिद्ध गवय्ये भरत, ईश्वर, प्राण और नारद थे। नायक गोपाल और तानसेन हालके समयमें हुये हैं। नायक गोपालके विषयमें मि० हिन्टन लिखते हैं कि "गोपाल नायकके गानेके प्रभाव और मृत्युके विषयमें कहा जाता है कि अकबर बादशाह ने हुकम दिया कि रागदीपक गाओ। वह आज्ञा पालनेके लिये जमुनामें घुस गया और गर्दन तक पानी आ गया। जब वह अपना अपूर्व गीत गाने लगा तो उसका शरीर जलने लगा

---

१ बहुत से लोगोंका विचार है कि अंग्रेजीका गमट, संस्कृत के ग्राम और प्राकृत गामा' से निकलता है।

२ हिन्दू गवय्ये अन्य देशोंके राजोंके यहाँ आया करते थे। फारिसके बहराम बादशाहके कई हिन्दू गवय्ये थे।

और वह वहीं भस्म होगया* "तानसेनके विषयमें कहा जाता है कि अकबर बादशाह ने उससे दोपहर को श्रीराग (रातका राग) गवाया और गीतकी शक्तिसे रात्रि होगई और जहाँ जहाँ उसकी आवाज़ गई अंधेरा छा गया।" मालूम होता है कि भारतवर्ष में १७वीं शताब्दी तक भी औरफियस जैसे लोग उत्पन्न होते रहे थे।

* Music of the Ancients p. 21

डाक्टर टीनेट कहते हैं कि "यदि हम बाजोंकी संख्या और उनके बजानेके आधिक्य से जाँच करें तो हिन्दू लोग बड़े योग्य रागी सिद्ध होंगे"।

महादेव एक ऐसा सींग बजाता था जिसका बजाना और कोई नहीं जानता था। कहते हैं कि इसमें विलक्षण गुण थे।

आजकल हिन्दू लोग वीणा बहुत बजाते हैं। एक कवि कहता है कि "वीणा समुद्रसे उत्पन्न नहीं हुआ पर यह स्वर्गीय रत्न है। प्रिय मित्रके तुल्य दुःखित हृदयको प्रफुल्लित कर देता है और संगतके सुखको बढ़ा देता है। वियोगी जनोंके दुःखको दूर करता और भावोंको नये सिरेसे उत्तेजित कर देता है"।

गन्ध

[ले० सत्यप्रकाश]

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि 'घ्राण-ग्राह्यो गुणो गन्धः । स च द्विविधः सुरभिरसुरभिश्च । पृथिवी मात्र वृत्तिः ।' अर्थात् घ्राणेन्द्रिय (नासिका) द्वारा जिस गुणका ग्रहण होता है उसका नाम गन्ध है । यह गन्ध दो प्रकार की होती है, सुगन्ध और दुर्गन्ध । पृथ्वी तत्त्वका प्रमुख गुण गन्ध है । इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि पदार्थोंकी गन्धोंका ज्ञान हमें नाक द्वारा होता है, पर नाक इस विषयको किस प्रकार ग्रहण करती है, यह कहना कठिन है ।

साधारणतया मुखके ऊपर जो नाक दृष्टिगत होती है वह तो केवल श्वासको भीतर ले जानेका मार्ग है अथवा एक संकीर्ण पुल है जिसमें होकर वायुकी निर्दिष्ट मात्रा ही अन्दर प्रविष्ट होने पाती है । इस नाकके आन्तरिक सिरे पर वस्तुतः घ्राणेन्द्रिय स्थित है जिससे हमें गन्ध का अनुभव होता है ।

घ्राणेन्द्रिय सचमुच बड़ी ही विचित्र इन्द्रिय है । हमें अपनी नाक द्वारा गन्धका किस प्रकार परिज्ञान होता है यह कहना बहुत ही कठिन है । इतना हम अवश्य जानते हैं कि हमें उसी पदार्थ द्वारा गन्धकी संवेदना हो सकेगी जो गैस या वायव्य रूपमें हो । ठोस या द्रव पदार्थोंमें गन्ध होना असम्भव है । आप कहेंगे कि फूल तो ठोस पदार्थ है, फिर इसमें गन्ध किस प्रकार होती है, अथवा तैल तो द्रव है, फिर इनमें हमें तरह तरहकी गन्ध क्यों मालूम पड़ती हैं ? पर वास्तविक बात यह नहीं है । ठोस फूलों और द्रव तैलोंके अन्दर उड़नशील या वाष्पशील पदार्थ होते हैं जो हवा और तापक्रमके सहारे गैस रूपमें परिवर्तित होते रहते हैं, और इसीलिये इनकी महकका अनुभव हमको होता है । जितने भी इत्र हैं वे सब उड़नशील हैं । हवा इनका एक थोड़ा सा अंश उड़ा ले जाती है, उस इत्रको वह गैस अवस्थामें कर देती है और तभी आस पासके सभी आदमियोंको उसकी सुगन्धका अनुभव होने लगता है ।

इस बातको सभी जानते हैं कि दूर तक सुगंध तभी पहुँचती है जब वह वस्तु गैस रूपमें परिवर्तित कर दी जाय । मिर्च ठोस वस्तु है, ठोस मिर्चमें दुर्गन्धका कम पता चलता है, पर यदि इसे आग पर छोड़ दिया जाय तो इस मिर्चका एक चरपरा अंश गैस बन कर वायुमें विस्तृत हो जाता है, और वह नासिकेन्द्रियको इस प्रकार उत्तेजित करता है, कि वहाँ बैठना कठिन हो जाता है ।

यज्ञ और हवनकी उपयोगिता का भी यही आधार भूत सिद्धान्त है । यज्ञमें बहुत सी पौष्टिक और सुगन्धित वस्तुयें डाली जाती हैं, जो अग्निकी सहायता से वाष्पशील हो जाती हैं । सुगन्धित पदार्थोंकी ये गैस रूप वाष्पें हवामें फैल जाती हैं । बस, दूर दूर तकके लोगोंको सुगन्धका अनुभव होने लगता है ।

नासिकाको गैस पदार्थ ही उत्तेजित कर सकते हैं, इस नियमसे गत महायुद्धमें भी विशेष लाभ उठाया गया था । अत्यन्त विषकारी अथवा सम्मूर्च्छक गैस पदार्थ अथवा ऐसे द्रव पदार्थ जो शीघ्र ही गैसमें परिणत हो सकें अन्वेषित किये गये जिनकी गन्ध दूर दूर तक पहुँचाई गई । इससे लाभ यह हुआ कि थोड़ेसे ही पदार्थसे बहुत बड़ा कार्य्य निकाला गया ।

अतः यह स्पष्ट है कि कोई भी पदार्थ तब तक नासिकामें घ्राणकी संवेदना उत्पन्न नहीं कर सकता जब तक वह गैस रूपमें परिणत न हो जाय । संखिया या संखीणम् साधारण तापक्रम पर ठोस पदार्थ है, अतः इस तापक्रम पर इसमें कोई गन्ध नहीं होती है पर यदि गरम करके उड़ा दिया जाय तो इसकी तीक्ष्ण गन्धका अनुभव होने लगेगा । आप किसी इत्रको नाकमें चाहें कितना ही क्यों न

डंड़ेल दें, इसकी सुगन्ध आपको तब तक पता न चलेगी जब तक इसका कुछ अंश वाष्पशील होकर नाकमें न चला जाय। इस सिद्धान्तकी सत्यतामें वीबर न बहुत परीक्षायें कीं। पर कुछ लोगों ने इस नियमके विरुद्ध भी उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। बहुतसों का विचार है कि मछलीमें वास्तविक घ्राणेन्द्रिय होती है। कुछ लोगों ने T आकारकी नली नाकमें लगा कर यह दिखाया कि कपूर, या सुगंधित तैलके घोल नाकमें पहुँचानेसे उनकी गन्धोंका अनुभव होना सम्भव है। अस्तु, इन प्रयोगोंके होते हुए भी हम यही मानते हैं कि घ्राणेन्द्रियको उत्तेजित करनेके लिये पदार्थका गैस रूपमें होना आवश्यक है।

किसी भी सुगन्धित पदार्थको नाक तक ले जानेसे ही अपने आप गन्धका अनुभव नहीं हो जाता है। नाकके पास इसे ले जाकर 'सूँघना' पड़ता है। 'सूँघने' का तात्पर्य यह है कि सुगन्धित पदार्थकी निकटस्थ वायुको अभ्यन्तरिक प्रेरणासे हम नाकके अन्दर खींचते हैं, और ऐसा करनेसे गन्धका नासिकेन्द्रियसे संसर्ग होता है और तभी गन्धका परिज्ञान होता है।

कुछ शरीर-विज्ञान-वेत्ताओंका कहना है कि बिना किसी गन्धमय पदार्थकी सहायताके भी गन्धकी संवेदनायें उत्पन्न करना सम्भव है। नाकको रगड़ कर, मींज कर अथवा जोरोंसे छींक लाकर विशेष गन्धोंका अनुभव किया जा सकता है। डेढ़ शताब्दीके लगभग हुआ होगा कि रिट्टर नामक वैज्ञानिक ने नाकमें जस्ता और ग्रेफाइटके टुकड़े डाले और उसे विशेष प्रकारकी गन्धका अनुभव हुआ। जस्ता और ग्रेफाइटसे बाटरीका बोध होता है, और विद्युत्-लहर उत्पन्न होती है। उसे ऐसा पता चला कि धन-ध्रुवके पास 'अमोनिया' की सी गन्ध आने लगी और ऋणध्रुवके पश्चात् कुछ 'खट्टी' गन्ध आयी। कौन कह सकता है कि रिट्टर को जो संवेदनायें अनुभव हुईं वे केवल गन्धकी ही थीं न कि स्पर्श अथवा स्वाद की। कुछ अन्य प्रयोग-कर्त्ताओं ने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि ऋणोद को नाकमें लगा कर विद्युत् धारा यदि तोड़ दी जाय तो गन्धकी संवेदना उत्पन्न होगी। इसी प्रकार यदि धनोद नाकमें लगाया जाय तो विद्युत् धारा बहाने पर गन्धकी प्रतीति होगी। पर इन प्रयोगोंके होते हुए भी यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि विद्युत् या यांत्रिक कारणोंसे गन्धकी संवेदना उत्पन्न की ही जा सकती है। तापान्तर उपस्थित करके भी गन्धका उत्पन्न करना प्रमाणित नहीं हुआ है।

क्या यह परमावश्यक है कि गन्धके अनुभवके लिये पदार्थोंका नाकसे सीधा संयोग हो ही। यदि रुधिरमें सुगन्धित पदार्थोंका प्रवेश करा दिया जाय तो क्या वे नाकमें पहुँच कर गन्धकी संवेदना उत्पन्न नहीं कर सकते हैं? जानवरोंकी नसोंमें गन्धमय पदार्थों को प्रविष्ट कराके इस प्रकारके बहुतसे प्रयोग किये गये पर उनसे कोई निश्चित परिणाम न निकला।

भिन्न भिन्न गन्धमय पदार्थोंमें कौन सी ऐसी समानता है जिससे उनके गन्ध गुणकी योग्यता समझी जाय। इस विषयमें कुछ भी निश्चय पूर्वक कहना कठिन है। बहुतसे पौधे केवल दिनमें गन्ध देते हैं। कुछ पौधे ऐसे हैं जो सूख जाने पर महकते हैं पर कुछ ऐसे हैं जो सूख जाने पर बहुत कुछ निर्गन्ध हो जाते हैं, पर तर कर देने पर फिर सुगंध देने लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस अवस्थामें पदार्थोंके वाष्पशील होनेकी अधिक सम्भावना होती है, उसी अवस्थामें वे विशेष गन्धवान होते हैं। यदि पदार्थ रातमें अधिक वाष्पशील हो सकता है तो वह रातमें अधिक महकेगा। यदि दिनमें अधिक वाष्पशील होगा तो दिन को उसमें अधिक गन्ध होगी। यही अवस्था शुष्क और तरकी भी है। जिस अवस्थामें पदार्थकी अधिक मात्रा अधिक तीव्रतासे वाष्पवान् हो सकेगी उसी अवस्थामें उसमें अधिक गन्ध होगी।

सन् १७५६ में रोम्यू (Romieu) ने दिखाया कि यदि पानीके ऊपर कपूरके छोटे छोटे टुकड़े डाल दिये जायँ तो वे एक विशेष प्रकारसे नाचने लगते हैं। बादको यह पता चला कि अन्य गन्धमय पदार्थ भी पानीके तल पर इसी प्रकारसे नाचते हैं। बिल्कुल साफ कांचके पट पर यदि पानीकी छोटी तह हो, और यदि कपूरका चूरा इस पर डाला जाय तो पानीकी सतह सिकुड़ने लगेगी। यही दृश्य अन्य लगभग २०० गन्धमय पदार्थोंमें भी देखा गया है, चाहें वे वनस्पति-जन्य हों, चाहें पशुजन्य। हम यह भली प्रकार जानते हैं, कि पदार्थोंका यह गुण उनके विशिष्ट पृष्ठ-तनाव पर निर्भर है और प्रत्येक गंधवान् पदार्थमें विशेष पृष्ठ-तनाव होता है।

गंध कितने प्रकारकी होती हैं, यह कहना तो बहुत ही कठिन है। प्राचीन पुस्तकोंमें सुरभि और असुरभि अर्थात् सुगंध और दुर्गंध दो प्रकारका ही भेद किया गया है। कभी कभी तो स्वाद, गंध और स्पर्श की संवेदनाओंमें बड़ा भ्रम हो जाता है। जिसको हम प्याजका स्वाद कहते हैं, वह प्याजकी गंध होती हैं। अमोनिया और सिरकामें साथ साथ गंध और स्वाद उत्पन्न होता है और यह कहना कठिन है कि अमुक संवेदना गंधकी है या स्वाद की।

चाहें कुछ भी क्यों न हो, गंधका वर्गीकरण करना बड़ा ही कठिन है। सुगंध और दुर्गन्ध तो इतने सापेक्षिक शब्द हैं कि प्रत्येक व्यक्तिके लिये ये भिन्न भिन्न होते हैं। मलमूत्रकी सफाई करने वाले भंगियोंको मलमूत्रकी दुर्गन्ध उतनी असह्य नहीं होती है जितनी कि अन्यको। मांसकी गन्ध मांसाहारियोंको सुगंधि प्रतीत होती है, और दूसरों को महा-दुर्गन्ध। पनीर जब तक सड़कर दुर्गन्ध-मय न हो जाय तब तक पनीर खाने वालोंके लिये न तो वह स्वादिष्ट ही है और न सुगन्धित ही। पंख जलाने पर जो गन्ध उठती है, वह बहुत सों को तो बहुत ही अच्छी लगती है, पर साधारण व्यक्तियोंको तो वह दुर्गन्ध ही है। रासायनिक आधार पर भी गन्धका कोई वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है। एक ही पदार्थकी गन्धके विषयमें भिन्न भिन्न वैज्ञानिकोंकी भिन्न भिन्न सम्मति हो सकती है।

यह तो वर्गीकरणकी बात रही। अब प्रश्न यह है कि पदार्थकी कमसे कम कितनी मात्रा गंध की संवेदना उत्पन्न करनेमें समर्थ हो सकती है, और गंधकी मात्राको किस प्रकार नापा जा सकता है। यह प्रश्न भी ऐसा है जिसके विषयमें एकमत होना कठिन है। मनुष्यकी अपनी अपनी प्रकृति और सामर्थ्यके अनुसार यह मात्रा भिन्न भिन्न होती है। एक प्रयोगकर्त्ताको पता चला कि वायु जिसमें $\frac{१}{२०००००}$ भाग अरुणिन् की मात्रा थी काफ़ी दुर्गन्धमय (तीक्ष्ण दुर्गन्ध) थी। वायुमंडल में १/१७०००० भाग उद्जन गंधिद की महक मालूम की जा सकती है। ऐसा विचार है कि कमसे कम १/२०००००० मिलीग्राम कस्तूरी सूँघी जा सकती है। गंधके विषयमें कुछ प्रयोग इस प्रकार किये गये। एक बन्द खाली कमरेमें कुछ गन्धवान पदार्थोंकी निश्चित मात्रायें मद्यमें घोल कर डाल दी गई और पंखेसे वे शीघ्रतासे कमरे भरमें उड़ा दी गई और फिर गंधका पता चलाया गया। प्रयोग करने पर पता चला कि ५०००००००००० भाग आयतन हवामें १ आयतन 'पारदवेधन' (मरकप्टन) की गंध पता चल सकता है, अर्थात् १/४६००००० मिलीग्राम पदार्थ गंधकी संवेदना उत्पन्न करनेमें समर्थ है। इतने सूक्ष्म पदार्थका तो अणुवीक्षण यंत्रमें भी देखना कठिन है।

चौदह प्रश्न

[ले० श्री० जगपति जी चतुर्वेदी]

१—क्या आकाश गिर सकता है ?

आकाश गिर नहीं सकता क्योंकि ऐसी कोई वास्तविक चीज नहीं है, जिनको हम लोग आकाश कहते हैं । यह बहुधा हम लोगों को मालूम होता है कि मानों हम लोग एक उलटे लटके हुये बहुत बड़े कटोरेके अन्दर रहते हैं, सूरज, चन्द्रमा और सितारे उस कटोरेमें जड़े हुए हैं तथा इसके घूमनेके साथ साथ इसके चारों तरफ घूमते हुये मालूम होते हैं। सभी युगोंके मनुष्योंका यही ख्याल रहा है और इसकी चर्चा करते हुए हम लोग इसको आकाशी गोला कहते हैं।

लेकिन जब आकाशी पिंडोंकी गति पर अधिक ध्यान पूर्वक विचार किया गया तो यह माना गया कि हम लोगों से भिन्न भिन्न दूरी पर बहुतसे पिण्ड हैं।

अगर आकाश एक बड़े गुम्बजकी तरह बना होता तो हम लोग इस पर जरूर अचम्भित होते कि कौन सी चीज इसको धारण करती है। लेकिन जो कुछ हम लोग देखते हैं वह केवल एक रोशनी है जो पृथ्वी परसे हवा द्वारा प्रतिबिम्बित हुई है। नीलापन बहुत दूर दिखाई पड़ता है परन्तु ४० मीलसे ६० मील तक अधिकसे अधिक दूरी है, जहाँसे प्रकाश वायु द्वारा हमारी आँखों तक प्रतिबिम्बित होता है, इसी प्रतिबिम्बको हम लोग आकाश कहते हैं।

२—सूर्य्यमें कैसी आग है ?

सूरजमें उस तरहसे आग नहीं लगी है जैसे मामूली आगमें । इस बातका हम लोगोंको दो कारणोंसे निश्चय है। क्योंकि सूर्य्य जितने ऊँचे तापक्रम पर है उसमें जलन या दहन क्रिया नहीं हो सकती । यह बात कुछ विचित्र मालूम पड़ सकती है (२) यह सिद्ध किया जा सकता है कि यदि सूर्य्यकी गर्मी और रोशनी जलनेसे प्राप्त हुई थी तो यह अवश्य ही बहुत दिनों पूर्व अपनेको जला चुका होगा । सूर्य्य जितनी शक्ति उत्पन्न करता है उसका नाप सकना सम्भव है और उसका कारण जाननेके लिये हम लोगोंको अवश्य ही जलना छोड़ करके किसी दूसरी वस्तुकी ओर ध्यान ले जाना पड़ेगा। यह प्रश्न बहुत ही आवश्यक है कि सूर्य्य की रोशनी कहाँसे प्राप्त होती है। जलना इसका कारण नहीं, सूर्य्य जब अपने गुरुत्वाकर्षण शक्तिके प्रभावसे सिकुड़ता है तो उसके अन्दरके परमाणुओंके एक दूसरेसे टकरानेसे गर्मी पैदा होती होगी । दूसरे तारोंसे आई हुई गर्मी तथा रोशनी सूर्य्य पर कुछ प्रभाव डालती होगी, यह विचार किया जाता है कि सूर्य्यकी समस्त शक्ति उसके अन्दरके परमाणुओंमें पैदा होती होगी और वे पहले पहल विश्वनियन्तासे अपनी यह समस्त शक्ति प्राप्त कर सकते होंगे।

३—क्या आकाशमें सूर्य्यसे भी बड़े तारे हैं ?

यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर विज्ञान निश्चित रूपसे नहीं दे सकता जब तक कि तारोंकी दूरी जानना सम्भव न हो जाय। अभी तक बनी हुई किसी दुर्बीनसे किसी तारेका विस्तार जान सकना सम्भव नहीं है । हम लोग उसका मण्डल नहीं देख सकते, केवल प्रकाशका बिन्दु देख सकते हैं, इससे कुछ अनुमान होता है कि तारे कितनी अधिक दूरी पर हैं। जब नापनेके लिये कोई वस्तु न देख सकनेके कारण हम लोग किसी तारेका विस्तार ठीक ठीक नहीं नाप सकते हैं तो तारोंके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त करनेका साधन केवल उनकी चमक ही है किन्तु चमकसे हमें कुछ भी पता नहीं चलता। छोटासा चन्द्रमा हम लोगोंको सब तारों की मिली हुई रोशनीसे बहुत अधिक रोशनी देता है किन्तु इसका यह कारण नहीं है कि यह आकार में बड़ा है बल्कि यह हम लोगोंसे बहुत निकट है। इसलिये यदि किसी भी तारेके विस्तारको जान

कारी हमें प्राप्त करनी है तो पहले उसकी पृथ्वीसे दूरी जाननी चाहिये और तब उस दूरीके अनुसार उसकी चमकको तुलना करनी चाहिये। इस तरह हम तारेकी वास्तविक चमक जान सकते हैं और उससे उस तारेके विस्तारका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार भी हमारा ज्ञान बिलकुल ठीक ठीक नहीं हो सकता क्योंकि हम लोग केवल प्रकाश पर ही विचार करते हैं और तारा अपनी भिन्न भिन्न आयु में एक ही आकारका रहते हुये भिन्न भिन्न मात्रामें प्रकाश रख सकता है। कभी कभी हम यह जान सकते हैं कि कोई तारा दूसरे समीपी तारे पर गुरुत्वाकर्षणकी कितनी शक्ति डाल रहा है, गणित द्वारा यह जाना जा सकता है कि किस मात्राकी वस्तु कितनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति रखती है इसलिये गुरुत्वाकर्षण शक्ति जानकर ताराकी मात्रा जीनी जा सकती है। हालांकि ठीक ठीक विस्तार इस तरह नहीं जाना जा सकता।

इस प्रकार पता लगाया गया है कि हम लोगों का सूर्य्य थोड़े विस्तारका ही तारा है, आकाशमें इससे भी बड़े बड़े तारे भरे हुये हैं एक तारा तो ऐसा ज्ञात हुआ है जो सूर्य्यसे ३० हजार गुना बड़ा है। आकाशमें इससे भी बड़े तारे वा सूर्य्य होंगे।

४—क्या सूर्य्य भी चलता है ?

अवश्य, प्रत्येक वस्तु किसी न किसी ओर सदा चलती रहती है, गैलीलियो योरपमें यह कहने पर बन्दी बना लिया गया था कि पृथ्वी चलती है किन्तु आज संसारके सभी लोग यह बात कहते हैं, किसी समय लोगोंका यह विचार था कि ग्रह और उनके उपग्रह तो पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं परन्तु सूर्य्य एक स्थान पर बिलकुल स्थिर है किन्तु अब यह पता चल सका है कि सूर्य्यमें भी दो प्रकार की गतियाँ हैं। पहली गति साधारण है, ग्रहोंकी भाँति सूर्य्य भी अपनी कीली पर नाचता रहता है इस प्रकार उस परके एक धब्बेको, किसी समय एक किनारे पर और फिर सामने देखा जा सकता है, कुछ दिनके लिये धब्बा दृष्टिसे ओझल भी हो जाता है और फिर पहली जगह पर दिखाई भी देता है।

किन्तु कीली पर नाचनेके अतिरिक्त सूर्य्य एक तरफ को जा भी रहा है यह बात निस्सन्देह है कि अन्य सभी तारोंमें गति है इस कारण अन्य तारों और सूर्य्यकी गतिमें किसी तरहका सम्बन्ध न होना असम्भव सा ही था, फलतः जर्मनीके एक ज्योतिषी ने इसका अनुमान किया है कि तारागणोंके दो दल हैं जो एक दूसरेसे विरुद्ध दिशामें और विभिन्न गति से आकाशमें खिसक रहे हैं। हम लोगोंका सूर्य्य भी इन दलोंमेंसे एकमें है और अपने सभी उपग्रह उल्का और धूम-केतुओंके साथ एक ओर खिसक रहा है किन्तु सूर्य्य हमें कहाँ ले जा रहा है वा किसी दिन उसके खिसकनेका क्या परिणाम होगा उसे कोई ज्योतिषी वा वैज्ञानिक नहीं बता सकता।

५—समुद्रके बीच नाविक अपना मार्ग कैसे जानते हैं ?

कई शताब्दियों पहले जब नाविक नज़रसे ओझल हो जाते थे तो सिर्फ तारोंसे अपना रास्ता जानते थे। जितनी देर तक तारे दिखाई देते थे वे नाविकोंको दिशा बताते थे। पृथ्वीके उत्तरी गोलार्द्धसे जहां हम लोग रहते हैं और जहां मनुष्य जातिके बहुतसे लोग तथा पुरानी जातियां रहती थीं, हमेशा जबकि आकाश साफ रहता है उत्तरी तारा या ध्रुवतारा दिखाई देता है जो उत्तर दिशा बताता है। इसके मालूम होनेसे तमाम दिशायें मालूम हो जाती हैं।

यह माननेके लिये उचित कारण है कि ध्रुवतारे ने अपना स्थान बदला है। मनुष्यके देखनेमें २०००० वर्षोंके अन्दर भी इसने अपनी स्थिति बदली है जिसका मनुष्य ने निरीक्षण किया है। यह ठीक उत्तरमें नहीं है लेकिन एक समय देखनेमें था।

किन्तु हरएक मनुष्य जानता है कि मल्लाह आजकल कुतुबनुमेसे काम लेते हैं।

६—कुतुबनुमा सदा उत्तरकी ओर क्यों इशारा करता है?

हम लोग जानते हैं कि कुतुबनुमा सिर्फ लोहे का टुकड़ा है, जो बीचमें एक कीलीके ऊपर इस तरह रक्खा रहता है कि चारों ओर आसानीसे घूम सके। यह लोहेको एक किस्म है जो चुम्बकसे प्रभावित होता है। पृथ्वी स्वयं एक बड़ी चम्बक है जिसके उत्तरी और दक्षिणीय ध्रुव चुम्बक के हैं। दक्षिणीय चुम्बककी ध्रुव को ले. फनेरट शेकेल्टन ने अपनी ध्रुवी यात्रामें खोज की थी जिसको चुम्बकीय सूईका उत्तरी ध्रुव कहते हैं। वह सदा उत्तरकी अथवा उत्तरीय चुम्बकीय ध्रुव की ओर इशारा करती है और इस तरह नाविक ध्रुवतारे या किसी अन्य तारेकी अपेक्षा कुतुबनुमासे मार्गको बहुत अच्छी तरह जान सकते हैं।

७—हमारा दांत क्यों किटकिटाता है?

जब किसी आदमीको ठंडक लगती है वा डर लगता है तो उस समय दाँत कटकटाने लगता है। उस समय यदि आदमीका मुँह देखा जाय तो जबड़ोंको बन्द करनेवाली पेशियों में जल्दी जल्दी सिकुड़न होती दिखाई देगी। जब वे सिकुड़ेंगी तो जबड़ा उठेगा और सिकुड़न बन्द हो जाने पर वह अपने बोझसे गिर जायगा। इसी तरह पेशियोंमें बार बार सिकुड़न होगी जिससे दाँत किटकिटाने लगेंगे। जब पेशियोंमें ऐसी हरकत होतो है तो उसे अकड़ना कहते हैं। हम यह जानते हैं कि शरीरके बाहरी अङ्गोंमें जो हरकतें होती हैं तो उनके लिये मस्तिष्क शनाइयों द्वारा आज्ञा देता है। पेशियोंमें जो अकड़न होती है वह मस्तिष्कके बिना आज्ञा दिये ही होती है। भिन्न भिन्न प्रकारकी चित्त वृत्तियों वा मनोवेग के कारण अकड़न पैदा हो सकती है। सर्दीके कारण पेशियोंकी नसोंके सिरे उत्तेजित होते जान पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त विषोंसे भी अकड़न पैदा होती है।

८—क्या जानवर भी स्वप्न देखते हैं?

इस प्रश्नको हम जानवरोंसे नहीं पूँछ सकते हैं इसलिये अन्य घटनाओंसे विचार कर सकने पर ही मिल सकता है। छोटे छोटे बच्चे जब तक बोलना नहीं सीख जाते उनके स्वप्न देखनेकी बात जानवरोंकी ही तरह नहीं मालूम होती परन्तु हम लोगोंके यह विश्वास करने के यथेष्ट कारण हैं कि बच्चे और जानवर भी हम लोगोंकी तरह स्वप्न देखते हैं। बच्चे ज्योंहीं बोलना आरम्भ करते हैं त्योंही उनसे हमे पता चलता है कि वे स्वप्न देखते हैं इसलिये हम सोच सकते हैं कि वे किसी प्रकार स्वप्न पहले भी देखते होंगे।

हमें यह ज्ञात है कि बच्चे और जानवरोंके दिमाग़ और इन्द्रियां उन्हीं सिद्धान्त पर बनी हैं जिन पर हम लोगोंकी। उन पर भी ऐसे ही प्रभाव पड़ सकते हैं जैसे हम लोगों पर, इसलिये ऐसा होना कुछ विचित्र नहीं है कि मनुष्यकी तरह कारण उपस्थित होने पर वे भी स्वप्न देखते हों। स्वप्नमें कई तरह के भाव होते हैं और जिस तरह जगे रहने पर हम लोगोंका मुख्य भाव प्रकट करता है उसी प्रकार सोये रहने पर भी करता है। यदि हम यह देखें कि कोई जानवर जगे रहने पर जिस तरह भाव प्रकट करता है उसी तरहका भाव सोये होने पर प्रकट करता है वा नहीं, तो हमें पता चलेगा कि जानवर वैसा करता है। सोते हुए जानवरोंमें हम भाव प्रकट करनेका चिह्न पा सकते हैं जिससे साबित होता है कि जानवर भी स्वप्न देखते हैं।

९—कलीमें रंग कहांसे आता है?

पौधे बीजसे पैदा होते हैं और बीज ऐसे विचित्र ढङ्गका होता है कि आजतक उसे कोई नहीं समझ सका। बीजके हजारवें भाग में स्वयं कोई रंग न होते हुए भी पौधेके विभिन्न भागोंमें समय आने पर

रंग उत्पन्न करनेकी शक्ति मौजूद होती है इसीसे कलीमें रंग उत्पन्न होता है।

१०—माँड़ी से कपड़ा क्यों मोटा होता है ?

मांड़ीमें बहुत बड़े बड़े कण होते हैं। वे कण इतने बड़े होते हैं कि उनमें कितने अणु होते हैं उनको कोई नहीं जानता। बड़े कणोंको देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि वे घुल सकते हैं। चीनी और नमक जो छोटे अणुओंके कारण घुल जाते हैं उनकी तरह माड़ीका घुलना असम्भव सा है लेकिन पानीके साथ इसका घोल तय्यार हो जाता है और जब गर्मी पाकर पानी भाफ बन कर उड़ जाता है तो माड़ी रह जाती है माड़ी ऐसी चीज़ नहीं है जो उड़कर हवामें मिल सके इसलिये उसके बड़े कण कपड़ेके ऊपर जमें रह कर एक कड़ी मोटी तहके रूपमें हो जाते हैं। जब ऐसा कपड़ा भीगता है तो पानीके कारण कण घुलकर अलग हो जाते हैं और कपड़ेका कड़ापन दूर हो जाता है।

११—कितने तारे दिखाई देते हैं ?

केवल नेत्रोंसे दिखाई पड़ने वाले तारोंकी संख्या ६, ७ हजारके बीच है। इसमें वे सब तारे हैं जो बिना यन्त्रकी सहायता से साधारण नेत्रों द्वारा पृथ्वीके सभी स्थानोंसे दिखाई पड़ सकते हैं। किसी एक स्थानसे साधारण नेत्र द्वारा दो या ढाई हजार तारोंसे अधिक नहीं दिखाई पड़ सकते। इसका कारण यह है कि अन्य दीप्तिमान तारे या तो क्षितिजके नीचे होते हैं या उसके इतने समीप होते हैं कि वे देखे नहीं जा सकते। वे तारे जो यंत्रकी सहायता बिना साधारण नेत्रोंसे दिखाई पड़ते हैं उन्हें दूरदर्शक यंत्र से दिखाई पड़ सकने वाले दूरदर्शकीय तारोंसे पृथक् समझनेके लिये दीप्तिमान तारे कहते हैं। शक्ति शाली दूरदर्शक यंत्र द्वारा लाखोंकी संख्यामें तारे दिखाई पड़ सकते हैं। आकाश मण्डलमें तारोंकी संख्याकी किसी सीमाका कोई चिह्न दिखाई नहीं पड़ता कुछ ज्योतिषियोंका अनुमान है कि संपूर्ण तारोंकी संख्या ३००००००००००००० (३ नील) है। इस अनुमानके लगानेसे यह भाव प्रगट होता है कि तारोंकी संख्या अनन्त है।

१२—जहर मोहरा क्या है ?

जहर मोहरा कुछ ऐसी चीज़ोंका नाम है जिससे विषैले जन्तुओंके काटेका विष चूस लेनेका लोग विश्वास करते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा पता लगा है कि यह काल्पनिक पत्थर ही है और उसमें जहर उतारनेकी शक्ति नहीं होती। यह सम्भव है कि उसके लगानेसे मनुष्य पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़े। जहर मोहर कहा जाने वाला एक प्रकारका पत्थर एक जानवरकी पित्त ग्रन्थि (पित्त उत्पन्न करने वाली गिलटी) से प्राप्त पित्त मय शिला है, इसी तरहका जहर मोहरा बहुत मिलता है। एक दूसरे प्रकारका जहर मोहरा एक ऐसी वस्तुका बना होता है जो विशेष प्रेमसे नमी खींच लेता है और किसी नम तल पर उसके सूखने तक चिपका रहता है। जो लोग जहरमोहरेकी असलियत देखना चाहते हैं वे उसे अपने तालूमें लगाते हैं। यदि वह चिपक जाता है तो असली कहते हैं और गिर जाता है तो नकली। भिन्न भिन्न तरहके जहरमोहरे वैज्ञानिकोंके पास भेजे गये हैं लेकिन वे सब निरर्थक ही सिद्ध हुये हैं।

१३—क्या बन्दर पुल बना लेते हैं ?

यह बहुधा कहा जाता है कि बन्दर कभी कभी किसी नदीको पार करनेके लिये बन्दरोंका पुल बना लेते हैं, लोगोंके कथनानुसार बन्दर एक दूसरेकी पूँछ पकड़ लेते हैं और जिस नदीको पार करना होता है उसके किनारेके किसी वृक्षकी डालीसे एक जीवित रस्सीके रूपमें अपने आपको लटका लेते हैं। इस तरह कर वे आगे पीछे झूलना शुरू करते हैं, जबतक कि झूलेके बलसे उनका अन्तिम सिरा दूसरे किनारेकी किसी वृक्षकी डालीसे छू नहीं जाता तब पुलका दूसरा सिरा छोड़ दिया जाता है और झूल कर नदीके पार पहुँच जाता है। वैज्ञानिक इन कथाओं पर अविश्वास करते हैं। एक बड़े भारी

जीव विद्या विशारदका विश्वास है कि बन्दरोंके पुलकी कथा बिलकुल काल्पनिक है। फिर भी अगर कहते हैं कि जन्तुओं ने कौन सा कार्य कभी नहीं किया और कौन सा वे कभी नहीं कर सकते इसके कहनेमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। बन्दर जब तब एक दूसरेसे लटक जाते हैं और बहुधा एक दूसरेकी दुम पर चढ़ जाते हैं। कभी कभी कोई बन्दर दूसरे बन्दरको ऊपर भी खींच लेता है एक प्रकारके ऐसे बन्दर होते हैं जो एक दूसरेको पकड़ने और नाना प्रकारके खेल करनेके शौकीन होते हैं। शायद बन्दरों के पुलकी कथा इन्हीं के सम्बन्ध की है।

१४—क्या मछलियां डूब सकती हैं ?

डूबने शब्द के ठीक ठीक जो अर्थ हैं उस अर्थमें मछलियोंका डूबना सम्भव नहीं है। डूबनेका अर्थ पानीके नीचे होने पर दम घुट कर मर जाने से है। सभी मछलियां सांस लेती हैं किन्तु वे अपने गलफड़ों द्वारा पानीसे ही ओषजन (आक्सीजन) प्राप्त करती हैं। इस कारण ऐसे पानीमें रखनेसे उनका दम घुट सकता है जिसमें ओषजनकी मात्रा बहुत कम हो। उदाहरणार्थ, मछली ऐसे पानीमें दम घुटने से मर जायगी जिसे उबाल कर उससे ओषजन निकाल ली गई हो। इसीतरह यदि किसी छोटे तालाब या बर्तनमें बहुत अधिक मछलियाँ हों तो बहुधा दम घुटनेसे मर जायंगी किन्तु इसे डूबना नहीं कहा जा सकता है।

हेनरी मोआयसां

[ले० श्री० आत्माराम, एम० एस-सी०]

अभी तक नोबेल पुरस्कार योरोपके और देशोंमें ही रहा था। सन् १९०६ में मोआयसां ने नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर फ्रांसका माथा ऊँचा किया और अपनी मातृभूमिके गौरवको बढ़ाया।

यदि फ्रांसके रासायनिक इतिहास पर दृष्टि डाली जाये तो एकदम बड़े बड़े महानुभावोंके नाम दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे कि लवाशिये, गेलुसाक, डुमास और बरथेलो। यह कहना अधिक कठिन है, कि मोआयसां और बरथोलेमें से कौन बड़ा था क्योंकि दोनों समकालीन थे।

इस महापुरुषका जन्म फ्रांसकी राजधानी पेरिसमें २८ सितम्बर सन् १८५२ ई० को हुआ। पाठकोंको यह जान कर हर्ष होगा कि रसायनके इतिहासमें सन् १८५२ एक बड़ा ही महत्वपूर्ण वर्ष हुआ है। इस सालमें प्रो० वैण्टहाफ, प्रो० एमिल फ़िशर, विलयम आस्टवाल्ड जैसे रसायनके महाऋषियों ने जन्म लिया, मोआयसांका पिता टोलोस का रहने वाला था और उसकी माता औरलियन्स जातिकी थी। फिर भी वह एक पूर्ण फ्रांसीसी था।

अपनी स्कूल शिक्षाके पश्चात् वह मौरिक्स कालेज (College de France) में चला गया। बीस वर्षकी अवस्थामें युवक मोआयसां फ्रेमीकी प्रयोगशालामें जाकर काम करने लगा, साथ ही साथ क्लेयर डेविलके भाषण भी सुना करता था। इसके एक वर्ष पश्चात् वह डिकेनकी प्रयोगशालामें गया और १८७४ में ग्रेजुएटकी डिग्री पाई। सन् १८८० में उसे पेरिस विश्वविद्यालयसे डी० एस-सी० की डिग्री मिली।

इस समय तक मोआयसां ने केवल वनस्पति रसायन पर ही अनुसन्धान किये थे, परन्तु इसके एक वर्ष पश्चात् उसने इस प्रयोगशालाको छोड़ दिया और अपनी एक नई प्रयोगशाला खोल दी और अकार्बनिक रसायन पर कार्य्य आरम्भ कर दिया, जिसको वह अपने मरते समय तक करता रहा। तब वह सारबोनकी प्रयोगशाला को चला गया जिसका कि वह बादमें मुख्य अध्यक्ष होने वाला था। सन् १९०० ई० में मोआयसां पेरिस विश्वविद्यालयमें अकार्बनिक रसायनका आचार्य्य नियुक्त हुआ। इस पद पर वह अपनी मृत्यु तक रहा जो कि १९०६ में हुई जब कि उसे नोबेल पुरस्कार पाये दो मास ही बीते थे।

अकार्बनिक रसायनमें उसका सबसे पहिला अनुसन्धान लोहम्-समूहकी धातुओंके ओषिदों पर हुआ। इसमें उसने विशेष कर रागम् ओषिदों पर अधिक समय व्यतीत किया। मोआयसांके डी० एस० सी० उपाधिकी खोजोंमें भी इसका वर्णन आया है। इस अनुसन्धानमें उसने रागम् एकार्ध ओषिद को द्विरूपी बतलाया है। इनमेंसे एक अमोनियम रागेतको भस्म करनेसे प्राप्त होती है और दूसरी उदौषिद को ४४०° शतांश पर सावधानता पूर्वक सुखाने से।

इन विचारों ने मोआयसां को लोहम् समूहकी ओषिदोंके अवकरण पदार्थोंकी खोज करने पर उद्यत किया। उसने दिखाया कि जिस वस्तुको हम पायरोफोरिक लोहम् कहते हैं, और जो लोहम् काष्ठेतको भस्म करनेसे प्राप्त होता है, वास्तवमें लोहस ओषिद है। चुम्बकीय ओषिदका दूसरा बहुरूप लोहम्को नम उदजनमें गर्म करनेसे प्राप्त होता है। यह काला चुम्बकीय चूर्ण वायुमें भस्म करनेसे लोहिक ओषिदमें बदल जाता है। १५००° शतांश पर गरम करनेसे इसमें से ओषजन निकलता है, और चुम्बकीय ओषिद के एक वायव्य रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार और अनुसन्धान किये गये जिनमें कोबल्टम्, नकलम्, मांगनीज़ के पायरोफेरिक रूप बनानेका उद्योग किया गया।

रागम्के पारद-मेलोंसे धातु निकालनेके पश्चात् मोआयसां ने रागस लवणों को छानबीन करनेका

विचार किया जिनके विषयमें रासायनिक जनता बहुत कम जानती थी। उसने इस कार्य्यको बड़ी सफलताके साथ समाप्त किया और रागस हरिद व नीलेरंग का रागस गन्धेत प्रथम बार बनाया। इसके साथ ही साथ उसने रागस सिरकेत और काष्ठेत भी बनाये।

सन् १८८४ में उसने अपनी दृष्टि प्लविन्के यौगिकों की ओर डाली, और इस कार्य्यको इस सीमा तक पहुँचाया कि इसके लिये उसे नोबेल पुरस्कार मिला। उसने इसे स्फुर प्लविद, ताम्र स्फुरिद और सीस प्लविद को गरम करके सबसे पहिले बनाया था। यह एक गैस होती है और ओषजनके साथ तड़कानेसे विस्फुटित होती है और ओषप्लविद बन जाता है। फिर उसने इसे संक्षीण प्लविद, संक्षीणओषिद, गन्धकाम्ल, और खटिक प्लविद स्रवण करके बनाया। फिर इसका विद्युत् विश्लेषण किया जिससे कि संक्षीणम् और एक गैस उत्पन्न हुई जो कि तुरन्त पररौप्यम् बिजलोदको प्रभावित करती थी। स्फुर प्लविदके विद्युत् विश्लेषण करने पर स्फुर अवक्षेपित हो जाता है, परन्तु प्लविन नहीं निकलती।

मोआयसां इन अनुसन्धानों में सन् १८८८ तक लगा रहा। इसी वर्ष उसने कुछ कार्बनिक प्लविदों की खोज की, और ज्वलील नैलिदको रजत-प्लविदके साथ गरम करके ज्वलील-प्लविद बनाया।

दूसरे वर्ष उसने एक सबसे बड़ी बात ज्ञातकी जो कि प्लविदकी प्राप्तिका मुख्य कारण हुई। वह यह कि पांशुज-प्लविद और उदप्लविकाम्ल ६५° शतांश पर पिघल जाते हैं, और पांशुज प्लविद व उदप्लविकाम्लका मिश्रण—२३° शतांश पर भी द्रवित रूपमें रहता है और विद्युत् चलन करता है, इन ही मुख्य अनुसन्धानोंके कारण मोआयसांको प्लविन प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो कि उस समय अकार्बनिक रसायनके संसारमें एक मुख्य उलझन थी।

इस अनुसन्धानके करनेमें मोआयसां ने बहुत सी बातें मालूम कीं जिनके द्वारा वह अपना यंत्र बना सका जिससे कि प्लविन तैयारकी गई। सबसे पहिले प्लविनको बनानेके लिये उसने स्फुर प्लविद और स्फुरको रक्ततप्त पररौप्यम् पर प्रवाहित किया। ऐसा करनेसे एक गैस निकली जो कि पांशुज नैलिदसे नैलिन् निकालती थी, परन्तु बड़ी सरलतासे पररौप्यम् पर आक्रमण करती थी।

इनके पश्चात् उसने संक्षीण-प्लविदका विद्युत् विश्लेषण किया। परन्तु यह विद्युत् धारा का शिथिल चालक सिद्ध हुआ, और अनार्द्र उदप्लविकाम्ल मिला कर संक्षीण-प्लविदकी चालक शक्ति बढ़ानेकी चेष्टा की। परन्तु इन दोनोंमें पांशुज-प्लविद मिलानेसे कुछ अच्छा परिणाम हुआ। और इससे जरा ही आगे बढ़ना शेष रहा था, कि प्लविन का अनुसन्धान हाथोंमें ही था। बस अब क्या था, संक्षीण-प्लविदको निकाल कर उदप्लविकाम्ल और पांशुज-प्लविदका विद्युत् विश्लेषण करना रहा था।

उसने अपना यंत्र पररौप्यम् धातुका बनाया, बिजलोद पररौप्यम् व इन्द्रम्के पारदमेलका बनाया। बिजलोदके सिरोंको मोटा रक्खा गया जिससे कि वह शीघ्र पतले न पड़ जायें। पैराफीनकी डाटसे चूलह-नलीके सिरे बन्द किये गये, ऋणात्मक बिजलोदकी डाट शीघ्र ही जल जाती थी, इस कारण दूसरी बार फ्लोरस्पारके डाट लगाये गये।

इस प्रयोगमें मोआयसां प्लविन् प्राप्त करनेमें सफल हुआ, एक बिजलोद पर प्लविन निकली और दूसरे पर उदजन। प्लविन एक आसन्ननलिकासे बाहर निकाली गई। तत्पश्चात् उसने यह ज्ञात किया कि गन्धक, शशिम्, और थलम् इस गैसमें जलते हैं और सफेद अवक्षेप जम जाते हैं। गन्धकके साथ गप्ल₆ गैस बन जाती है और स्फुरके साथ, स्फुप्ल₅ स्फुप्ल₃ बनते हैं। उसने यह भी ज्ञात किया कि प्लविन् व उदजन अंधेरेमें भी मिल जाते हैं। बहुत सी धातें प्लविनसे अति शीघ्र मिल जाती हैं, और अग्नि ज्वाला तक निकलती है। यहां तक कि पररौप्यम् और स्वर्णम् तक इसके प्रभावको नहीं सह सकते। नैलिद और अरुणिद व हरिद इसके प्रभावसे

विभाजित हो जाते हैं और क्रमशः नैलिन, अरुणिन व हरिन निकलती हैं।

मोआयसां ने आलसीम् व प्रविनके मिलानेका भी उद्योग किया था परन्तु कोई सफलता प्राप्त न हुई, यद्यपि उसने अतिप्रभावशाली विद्युत् विसर्गसे इनके जिलानेकी चेष्टाकी।

मोआयसां ने कर्बनके दोनों वायव्य प्रविदोंको बना कर उनसे प्रविन निकाल देनेका प्रयत्न इस आशा पर किया कि कर्बन हीरेके रूपमें रह जायगा, परन्तु इस विचारमें कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई, और सर्वदा काली स्याही ही पैदा होती रही; इस प्रकार बढ़ते बढ़ते प्रयोगशालामें हीरा बनानेका विचार उत्पन्न हुआ। यह ज्ञात हो चुका था कि कुछ उल्काओंमें कर्बनके छोटे छोटे कण होते हैं, यद्यपि अधिकतर इनके भीतर लोहा होता है, और इसके भीतर छोटे छोटे हीरेकी कनी होती है। मोआयसांने अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे इनकी बनावट का एक सिद्धान्त रसायनिक संसारके सामने पेश किया।

उसका सिद्धान्त यह था, कि कर्बन पहिले ही से लोहेमें प्रविष्ट हो चुका था, जब कि वह पिघली हुई दशामें था। हीरेका पृष्ठतल एक दमसे ठण्डा हो गया था, कड़ा होने पर लोहे पर एक बड़ा भारी दबाव पड़ा, क्योंकि ठोस लोहा जिसमें कर्बन हो पिघले हुये लोहेकी अपेक्षा अधिक आयतन घेरता है, इन विचारोंको दृष्टिमें रखते हुये मोआयसां ने हीरा बनानेके लिये अपने प्रयोग आरम्भ कर दिये, जिनमें कि उसे अधिक सफलता प्राप्त हुई।

सबसे पहिले उसने कर्बनको लोहेमें १०००° शतांश पर घोला, परन्तु उसे इसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई, अतः उसने इस प्रकार विचार किया कि १०००° श से ऊपर लोहेमें कर्बन की घुलनशीलता साधारण सिद्धान्तके प्रतिकूल बढ़ जाती है। इस उलझन पर सफलता प्राप्त करनेके लिये विद्युत् भट्टी का आविष्कार किया, गया जिसके द्वारा १००० श से बहुत ऊपर तक पहुंच सकते हैं। पाठकोंको यह विदित हो गया होगा, कि किस प्रकार मोआयसां के तीनों बड़े अनुसंधान एक दूसरेका कारण हुए, और मोआयसांको तीक्ष्ण बुद्धिसे उनकी वृद्धि हुई। मोआयसांका उद्योग उसके ही शब्दोंमें भले प्रकार समझा जा सकता है, जोकि उसने अपनी पुस्तक विद्युत् भट्टी ("Electric furnace") की भूमिका में दिये हुये हैं:—परन्तु इन अनुसन्धानोंमें जिस असीम आनन्दका मुझे अनुभव प्राप्त हुआ है, वह मैं अपने शब्दोंमें प्रगट नहीं कर सकता। एक नये मार्गका निकालना, अपनी इच्छाकी पूर्ति करनेके लिये सब सुविधाओंका होना और यह कि प्रत्येक दिशासे नये नये विषयोंको प्रादुर्भूत होते देखना इन सब बातोंसे मेरे हृदयोंमें एक ऐसे आनन्दकी जागृति हुई है, जिसे केवल वही लोग अनुभव कर सकते हैं, जिन्होंने स्वयं वैज्ञानिक अनुसन्धानोंके आनन्दका आस्वादन किया है।

उसने विद्युत् भट्टी किसी व्यापारिक उद्देशसे नहीं बनाई थी बल्कि अपने अनुसन्धानोंमें सफलता प्राप्त करना ही उनका मुख्य कारण था। इसकी बनावट बड़ी सरल थी। दो कर्बनके बिजलोद थे, जिनके बीचमें विद्युत् चाप रहता था और गरम होने वाली वस्तु एक चूनेके बर्तनमें रखी जाती थी। चाप एक बड़े चुम्बक द्वारा नीचेको झुकाया जाता था जिससे कि पूरा ताप गरम होने वाली वस्तु पर ही पड़े। भट्टीका तापक्रम विद्युत् धाराकी तीव्रता पर निर्भर होता है, परन्तु कर्बनके उड़नशील तापक्रम पर भी निर्भर है।

इस अद्भुत यंत्रके द्वारा मोआयसां कई ऐसे अनुसन्धानोंमें सफल हुआ जो उस समय तक नहीं हुए थे और कुछ अधिक कठिन समझे जाते थे, जिनमेंसे कुछ तो व्यापारिक दृष्टि से लाभकारी हैं।

प्रयोगशालामें हीरा बनानेके दृढ़ विचार के कारण मोआयसां को लेखनिकके भिन्न भिन्न रूपों की पूर्ण छान बीन करनी पड़ी। उसने नाना प्रकारके

कर्बनोंको बहुत तेज़ गरम किया। इस प्रकार उसने कर्बनका भिन्न भिन्न दशाओंमें ज्ञान प्राप्त किया। इसी ज्ञानकी शक्तिसे उसने अन्तमें हीरेको प्रयोगशाला में बना कर दिखा ही दिया जो कि उस समय तक एक अनहोनी बात समझी जाती थी। इस प्रकार मोआयसां ने वैज्ञानिक जगतके ज्ञान चक्षु खोल दिये। इसके पश्चात् उसने भारी धातुओंके कर्बिदों की छानबीन की।

मोआयसां ने ही सबसे पहिले विद्युत्के द्वारा रागम् धातुको तैयार किया। इसी प्रकार के प्रयोग उसने और धातुओंके साथ भी किये, जैसे सुनागम्, वुल्फ्रामम्, मांगनीज़।

धातुओंके कर्बिदों पर उसने जगत् विख्यात कार्य्य किया और उन पर पानीका प्रभाव भी समझाया, कि किस प्रकार पानीके प्रभावसे यह वस्तुएँ ज्वलेन व दारेन देती हैं, इस विचारको दृष्टिगोचर रखते हुए उसने पेट्रोलकी उत्पत्ति का सिद्धान्त रासायनिक संसारके सामने रक्खा।

उसने बहुतसे शैलेत और टंकेत भी तैय्यार किये, जिनमेंसे लोहम् और रागम् पर मुख्य ध्यान दिया था, यद्यपि उसने कर्बोरण्डम् रवे प्राप्त कर लिये थे परन्तु यह बात किसी मुखपत्रमें नहीं छपवाई थी। उसने कुछ उदिद भी बनाये थे, परन्तु तब भी उसने अपने सबसे प्यारे प्लविन्को नहीं छोड़ा। उसने प्लविन का घनत्व भी निकाला।

इस प्रकार उसने ८०० लेख प्रकाशित किये थे। वह सर्वदा नये नये विचार सोचा करता था, अपने साथियोंकी सहायतासे उसने अकार्बनिक रसायन पर एक बड़ी पुस्तक कई भागोंमें लिखी। वह रायल सोसाइटी लन्दन का सदस्य था, और रायल इन्सटीट्यूशन व रसायनिक सभा लन्दन ने भी उसे इस सम्मानसे सुशोभित किया था, और बहुत सी वैज्ञानिक संस्थाओंका सदस्य रहा जैसे, अपसाला, पेरिस, ट्यूरिन, बेलजियम इत्यादि।

सन् १८८७ में पेरिस इन्सटीट्यूट ने उसे प्रिक्स लाकेज़ जो एक बड़ा पुरस्कार है, दिया। १८९६ में रायल सोसाइटीसे डेवी पदक मिला और १९०२ में हाफ़मैन पदक और सन १९०६ में सबसे बड़ी वैज्ञानिक विजयका भागी हुआ, अर्थात् नोबेल पुरस्कारसे सम्मानित किया गया, और दो मास पश्चात् यह अद्भुत व्यक्ति संसारको सर्वदाके लिये छोड़ गया। इस स्थान पर मोआयसांके रहन सहन पर कुछ कहना अनुचित न होगा। जिनको उसके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वही उसको भली प्रकार जान सकते हैं। उसकी भोली भाली मूर्त्ति ने किसको आकर्षित नहीं किया। उसका सा सद्व्यवहार प्रत्येक मनुष्यमें होना कठिन है, दयालुताका तो जानिये वह देवता ही था। अपनी मृत्यु समय तक वह विज्ञान पर मोहित रहा और उसकी ही यादमें प्राण गवां कर विज्ञानरूपी देवी को सम्मानित किया।

फैराडे शताब्दि

[ले० श्री० युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी०]

२९ अगस्त १८३१ भी संसारके इतिहासमें बड़ा ही महत्वपूर्ण दिन था। उस समय तो उसका महत्व किसीने न समझा होगा पर आज उसी दिनके कारण संसारका जीवन पलट चुका है। इस दिन माइकिल फैराडे ने अपने छोटी सी प्रयोगशालामें विद्युत् चुम्बकत्वका आविष्कार किया था।

फैरडेके पहले बिजलीका आविष्कार हो चुका था। वैसे तो पुराने समयमें घर्षण विद्युत्का अस्तित्व लोग जानते ही थे। कांच या आबनूसके डंडेको ऊनी या रेशमी कपड़ेसे रगड़नेसे उसमें विद्युत् उत्पन्न हो जाती है। इस पर एलिज़ाबथके डाक्टर गिल्बर्ट ने भी प्रयोग किये थे और विद्युत् बैटरीके आविष्कार के पश्चात् तो फैराडेके गुरू और अध्यक्ष डेवी ने एक बड़ी बाटरी बनवा कर उसके द्वारा विश्लेषण कर दिखाया था। पर फैराडे बिजलीकी समस्याको दूसरे दृष्टि-कोणसे देखता था। इससे पहले एम्पियर इत्यादि ने यह दिखा दिया था कि विद्युत् धारा द्वारा चुम्बकत्वकी सृष्टि हो सकती है। यदि एक तांबेके तारकी बेठनमें एक लोहेकी छड़ रख दी जाय और बेठनमें एक धारा प्रवाहित हो तो जितने समय तक धारा बहती रहेगी वह लोहेकी छड़ चुम्बकका गुण प्रदर्शित करेगी। यह तो हुआ विद्युत्का चुम्बकत्वमें परिवर्तन। फैराडेके सामने इसकी उलटी समस्या थी। वह किसी प्रकार चुम्बकत्वको विद्युत्में परिवर्तित करना चाहता था। पहले तो उसने एक लोहेकी कड़ी पर दो और तार लपेटे एक ओरके तारके सिरे एक विद्युत् सूचक यन्त्रसे जोड़ दिये गये। जब दूसरे तारमें विद्युत् धारा गयी थी तो फैरडे ने देखा कि धारा बहते ही सूचककी सुई हिली। किसी साधारण मनुष्यके लिये इस जरा सी हलचलका महत्व कुछ नहीं था पर फैराडे जैसे महान प्रतिभाशाली व्यक्ति की तीक्ष्ण दृष्टि ने इसको उपेक्षाकी दृष्टि से नहीं देखा। फैराडे तो आनन्दसे नाच उठा। उसका प्रयोग सफल हो गया था—प्रकृतिका एक नया रहस्य खुल गया था और उसी क्षण संसारमें एक नयी सभ्यताका बीजारोपण हुआ। यह बेल इतनी फैली, इतनी फलवती हुई कि आज हमारे आधुनिक संसारका समृद्धि, विकाश, और मङ्गल इस ही पर निर्भर है। इसोके पश्चात् दूसरा प्रयोग हुआ जो और भी महत्वपूर्ण था। तारकी एक बड़ी बेठन बनी और दोनों सिरे उसी प्रकार सूचकसे जोड़े गये। अब इस बेठनके भीतर एक चुम्बक डाला जाता था तो सूचककी सुई हिलती थी और यही उस चुम्बकको निकालने पर होता था। फैराडे ने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि जब किसी चालकके अन्दर चुम्बकीय क्षेत्रमें परिवर्तन होता है, विद्युत्की उत्पत्ति होती है। इसी सिद्धान्त पर आधुनिक डायनमो और सारे संसारमें जितने विद्युत् उत्पादनके यन्त्र हैं, बने। कुछ ही समय पश्चात् फैराडे ने रायल इन्स्टीट्यूशनके बड़े चुम्बकके बीच में तांबेका एक चक्र घुमा कर विद्युत् उत्पन्न की।

संसारके जीवनमें विशेष कर पाश्चात्य देशोंमें विद्युत् ने एक विप्लव कर दिया है। आधुनिक मनुष्यके जीवनमें तथा औद्योगिक आयोजनाओंमें इसका उपयोग दिन दूना रात चौगुना हो रहा है। रशियाका सोविट सरकार तो बिजलीका आश्रय ले एक बड़ा भारी प्रयोग कर रही है। पाठकों ने रशियाकी पञ्च-वार्षिक-योजना (Five year plan) का हाल सुना ही होगा। इसका मूल मन्त्र जो लेनिन ने सोचा था और जो आज उपयोगमें लाया जा रहा है यही है कि सारे रूसको विद्युत्मय करके उसका औद्योगिक विकास किया जाय।

क्या उस समय फैरडेको इसका आभास भी था कि यह प्रयोग संसारके लिये इतना महत्वपूर्ण होगा? दो एक घटनाओंको देख कर यह कहना पड़ेगा कि था अवश्य। यह बहुधा देखा जाता है

कि प्रतिभाशाली व्यक्तियोंमें भविष्यवाणी करनेकी शक्ति होती है। एक बार फैराडे रायल इन्स्टीट्यूशनमें इसी प्रयोग पर एक व्याख्यान दे रहा था। फैराडेके व्याख्यान बहुत मनोरञ्जक और सुबोध होते थे इस लिये उन्हें सुननेके लिये जनता अधिक संख्यामें पहुँचा करती थी। व्याख्यानके पश्चात् एक महिला ने पूछा कि प्रोफेसर महोदय! इस प्रयोगका उपयोग क्या? फैराडे ने उत्तर दिया, "क्या आप बता सकती हैं कि नवजात शिशुका क्या उपयोग?" यह कितना अच्छा उत्तर था इसका ज्ञान कदाचित् फैराडेको भी न हो। यह नवजात शिशु साधारण नहीं था। इसमें नेपोलियन या सिकन्दरकी दिग्विजयन्ती शक्ति थी और इसका एक छत्र साम्राज्य भूमण्डल पर हो रहा है। इसी प्रकार इंग्लैंडके प्रधान सचिव ग्लैडस्टोन ने यही प्रश्न पूछ कर मुँहतोड़ उत्तर पाया। फैराडे ने कहा 'महाशय! आप इस पर टैक्स लगा सकेंगे और क्या उपयोग होगा?' बात भी ठीक थी। ब्रिटिश साम्राज्य को विद्युत् सम्बन्धी वस्तुओं पर केवल टैक्स द्वारा करोड़ों रुपयेकी आय होगी।

इसी महापुरुषकी इस महान आविष्कार की स्मृतिमें २९ अगस्त १९३१ को शताब्दि मनाई गई। इङ्गलैंडमें प्रमुख वैज्ञानिक एकत्रित होकर अपनी अपनी श्रद्धांजलि फ़ैरेडेकी स्मृतिमें भेंट करेंगे। फैरेडेकी एक मूर्ति वही प्रयोग करते हुए बनेगी। और उसके आस पास उस आविष्कारके उपयोग प्रदर्शित किये जावेंगे।

फैरेडे जैसे महापुरुषोंका जन्म संसारमें किसी युगमें एक बार ही होता है। साधारण जिल्दसाज से उन्नति कर वह उच्चतम शिखर तक पहुँच सके। इनके यहाँ जिल्द बंधनेको जो वैज्ञानिक पुस्तकें आती थीं उनको पढ़ पढ़ कर ही उन विषयोंमें प्रवेश किया। डेवीके चार व्याख्यान सुन कर इनका जीवन बदल गया। साधारण नौकरके पद पर प्रयोगशालामें रह कर किसी समय उसीके अध्यक्ष हुए। इनमें विलक्षण प्रतिभा थी, इसमें सन्देह ही नहीं पर यह भी स्पष्ट है कि मातृभाषामें वैज्ञानिक साहित्य होनेसे ही फैरेडे संसारको मिला। यह हमारे यहाँ बड़ा प्रतिबन्ध है। कौन जानता है कि किस गलीमें या किस गांवमें कुछ फैरेडे मिल जांय। सुलभ और सुबोध वैज्ञानिक साहित्य राष्ट्रीय उन्नतिके लिये अतीव आवश्यक है।

मराठी का वैज्ञानिक साहित्य और पारिभाषिक शब्द

[ले० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०]

इसमें सन्देह नहीं, कि प्रत्येक प्रान्तीय-भाषा-भाषी अपनी भाषामें वैज्ञानिक साहित्य देखनेको उत्सुक है। प्रत्येकके समक्ष एक सी ही कठिनाइयाँ उपस्थित रहती हैं, और प्रत्येकका उद्देश्य एक होते हुए भी किसी प्रकारके सहयोग एवं संगठन न होनेके कारण विभिन्नताकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है। मराठी साहित्य भी उन्नतशील है और उसमें भी हिन्दीके समान धुरन्धर साहित्य-सेवी विद्यमान हैं। जिस प्रकार हमारी भाषामें सूरदास और तुलसीदास ने अपने सरस काव्यों द्वारा जान फूँक दी, उसी प्रकार मराठीमें भी समर्थ गुरुरामदास एवं श्री तुकाराम जी ने अपनी चिरस्थायी काव्य रचनाओं द्वारा इस भाषाको अमर कर दिया है। मराठी का औपन्यासिक साहित्य (कादम्बरी) भी प्रौढ़ावस्थाको पहुँच गया है, और इसके नाटक तो हमारी भाषाके नाटकोंसे कहीं अधिक अच्छे होते हैं।

मराठी भाषामें वैज्ञानिक साहित्य की ओर अभी थोड़े ही दिनोंसे प्रवृत्ति हुई है। प्रान्तीय भाषा-भाषियोंके साहित्यकोंमें कोई सहयोग न होनेके कारण प्रत्येक एक दूसरेके साहित्यसे सर्वथा अपरिचित है। हम निश्चय पूर्वक तो यह नहीं कह सकते हैं कि मराठीमें सर्व प्रथम कौन वैज्ञानिक पुस्तक लिखी गई थी और उसके उपरान्त किस प्रकारसे इसके साहित्यका विकास हुआ, क्योंकि इस समय इसके लिये हमारे पास कोई सामग्री नहीं है। यदि कभी हो सका, तो इस विषयमें विस्तारसे लिखा जायगा।

वैज्ञानिक पत्रिकायें

इस समय, जहाँ तक हमारा अनुमान है, मराठीमें दो वैज्ञानिक पत्रिकायें हैं—'दि एंजिनियर' और दूसरा 'सृष्टि-विज्ञान'। 'सृष्टि-विज्ञान' तो अभी हमारे देखने में नहीं आया है, पर 'दि एंजिनियर' विज्ञानके परिवर्तनमें अब नित्य हमारे यहां आने लगा है। मध्यप्रान्त, बरार और बाम्बे प्रेसीडेन्सी की एक संयुक्त 'मेकनिकल एंजिनियर्स असोसिएशन' है जिसका हेड-आफिस अकोला है। उक्त प्रान्तोंमें इसकी लगभग २५ शाखायें हैं। इसी असोसिएशनकी अध्यक्षतामें यह 'एंजिनअर' पत्रिका प्रकाशितकी जाती है। इसके इस समय सम्पादक श्री० भ० ग० केलकर, एल० टी० एम०; और श्री वि० चिं० बोडस हैं और आनन्द प्रेस पूनामें छपता है। इस मासिक पत्रिकका वार्षिक मूल्य ४) है। यह पत्रिका ६ वर्षसे प्रकाशित हो रही है। यह पत्रिका देखनेमें तो छोटी है—केवल बीस पृष्ठ ही प्रति मास प्रकाशित होते हैं। उनमें कुछ पृष्ठोंमें असोसिएशनके अधिवेशनोंका वृत्तान्त, परीक्षा फल आदि रहता है। कभी कभी अन्य पत्रिकाओंसे एकाध लेख अंग्रेज़ीमें ही ज्योंके त्यों उधृत कर दिये जाते हैं। पत्रिकाके शेषांशमें मराठी भाषामें एंजिनियरिंग सम्बन्धी सचित्र लेख होते हैं। एंजिनियरिंग-विषय की पारिभाषिक शब्दावली भी इस पत्रिका द्वारा अच्छी तैयार हो रही है। हमें खेद है कि हिन्दी भाषामें इस विषयका कोई साहित्य तैयार नहीं हो रहा है। हमारे लिये एक आसानी अवश्य हो गई है, वह यह कि हम इनके पारिभाषिक शब्दोंकी सहायता ले ही सकते हैं।

वैज्ञानिक पुस्तकें

नीचे हम मराठीकी कुछ पुस्तकोंका परिचय देते हैं।

१. यान्त्रिक प्रदीप—(On Mechanics) प्रथम भाग—लेखक और प्रकाशक श्री सखाराम विनायक आपटे, एम० ए०, बी० एस०, सी० वार्तक महाविद्यालय (इञ्जीनियरिंग कालेज) पूना। पृ० सं० २१८। सजिल्द। मूल्य २।=)।

प्रस्तुत पुस्तकमें यन्त्र सम्बन्धी भौतिक एवं गणितीय व्याख्या की गई है। पुस्तक गम्भीर तथा मनोरञ्जक दोनों ही है।

२. पडत्या फलाचा संदेश—गिरते हुए फलका संदेश)—ले० मल्हार विनायक आपटे, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस० प्रकाशक सदाशिव विष्णु चौधरी, ला कालेज पूना। पृ० सं० ८४, मूल्य ॥=)।

गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्तका उपयोग करते हुए इस पुस्तकमें चक्रयन्त्र (Pulleys, levers, and pendulums) आदिका उल्लेख मीमांसा पूर्वक किया गया है।

३. वाहती बीज—(विद्युत् शास्त्र)—ले० व प्रकाशक श्रीसखाराम विनायक आपटे एम० ए०, बी० एस-सी०, इञ्जीनियरिंग कालेज पूना। पृ० सं० ५३ मूल्य ।)।

इसमें विद्युत् सम्बन्धी विषयको प्रतिपादित किया गया है। विद्युत्की उत्पत्ति, बाटरियों का विधान, और विद्युत् चुम्बकीय गुण सम्बन्धी तीन लेखोंका संग्रह है जो चित्रमय जगतमें प्रकाशित हो चुके थे।

४. सामान्य पदार्थ विज्ञान—ले० श्रीमल्हार विनायक आपटे—पृ० सं० ४४, मूल्य ५ आने।

इसमें ठोस, द्रव, गैस आदि अवस्थाका वर्णन, वायु दबाव और साधारण परिमाणोंका उल्लेख है।

५. पारिभाषिक शब्द कोष (अपूर्ण) ले० श्री विश्वनाथ दामोदर लिमये, तथा श्रीसखाराम विनायक आपटे। पृ० सं० ३०।

इन पृष्ठोंमें इञ्जन सम्बन्धी शब्दोंका सङ्कलन और उनकी सूक्ष्म व्याख्याकी गई है। विद्युत्के कुछ शब्दोंका भी इसमें संग्रह है।

६. रसायन परिभाषा—ले० श्रीमल्हार विनायक आपटे। पृ० सं० २८, मूल्य ।)।

इस पुस्तकमें रासायनिक शब्दोंका छोटा सा पारिभाषिक कोष दिया गया है और जिन सिद्धान्तों के आधार पर ये शब्द बनाये गये हैं, उनकी भी मीमांसा की गई है।

७. इन्द्रिय रसायन (Biochemistry)—ले० श्री डा० म० वि० आपटे, बी० एस-सी०; एम० बी० बी० एस०। पृ० ५२+नेत्र विज्ञान १६।

इस पुस्तिकामें जीव रसायन सम्बन्धी विषयों का प्रारम्भिक परिचय दिया गया है। गूढ़ विषयों की ओर तो ध्यान नहीं दिया गया, प्रत्युत यह कहना चाहिये कि छोटे छोटे लेखोंका संग्रह है, न कि क्रम बद्ध पुस्तक। इसमें भोजनके सिद्धान्तों का विवरण दिया है और खाद्य पदार्थोंके रासायनिक अंशोंकी भी मीमांसाकी गई है।

८. रसायन-भूमिका—भाग १ और २। ले० और प्रकाशक श्रीमल्हार विनायक आपटे, बी० एस-सी०, एम० बी०, बी० एस०। पृ० सं० २२८। सजिल्द पुस्तकका मूल्य २)।

यह रसायनकी क्रमबद्ध पुस्तक है, और लेखक ने योग्यतापूर्वक स्पष्ट भाषामें लिखी है। हिन्दीमें श्री फूलदेव सहायजी वर्मा की रासायनिक पुस्तकें जिस श्रेणी की हैं, उसी ढंगकी इसे भी समझना चाहिये। इसके इन भागोंमें रसायनके प्रारम्भिक सिद्धान्त और अधातु प्रकारण दिये गये हैं।

मराठीकी जिन पुस्तकोंका उल्लेख ऊपर किया गया है, वह हमें श्री आपटे महोदयकी कृपासे प्राप्त हुई हैं, अतः इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। इन पुस्तकोंमें रसायन भूमिका, यामिक प्रदीप और पडत्या फलाचा संदेश विशेष उल्लेखनीय हैं। इस समय हमारे पास और पुस्तकें नहीं हैं, पता लगने पर उनकी फिर कभी मीमांसा की जायगी।

पारिभाषिक शब्द

आपटे आदि महोदयों ने जिन वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंका निर्वाचन किया है, वह हिन्दीमें प्रचलित शब्दोंसे बहुत कुछ भिन्न हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। मराठी संसारको इस बात

का वस्तुतः कुछ पता हो नहीं है, कि हिन्दीमें किस प्रकारका वैज्ञानिक साहित्य रचा जा रहा है और किस प्रकारके शब्दोंका व्यवहार किया जा रहा है। पर एक बात अवश्य असंदिग्ध है। अंग्रेजीकी शब्दावलीको ज्यों का त्यों अपनानेके विरोधी ये सज्जन भी प्रतीत होते हैं और ये भी संस्कृत शब्दों के आधार पर नवीन शब्दोंकी रचना आरम्भ कर रहे हैं। उद्देश्य, साधन और सिद्धान्त एक होने पर भी हम लोगोंकी पारिभाषिक शब्दावली में कितना अन्तर हो जाता है यह हम नीचे दिखानेका प्रयत्न करेंगे।

श्री० म० वि० आपटे ने अपनी 'रसायन-परिभाषा' पुस्तकमें पारिभाषिक शब्दोंके तीन विभाग किये हैं—(१) उपकरणोंके नाम, (२) द्रव्योंके नाम और (३) गुण-वर्णन-पर और तात्विक-विवेचन-पर शब्द। कुछ उपकरणोंकी नामावली इस प्रकार दी गई है—

अंग्रेज़ी	मराठी
U-tube	उकार नली
Dessicator	कोरडा-करंडा
Condenser	गारठाण
Beaker	चोंच पेला
Burner	तापणी
Funnel	गलणी
Test-tube	पारखणी
Burette	मोजनली
Pipette	सोसनली
Retort	हंसपात्र

इनमें से बहुतसे ऐसे अवश्य हैं जिन्हें हम भी अपना सकते हैं। पर तत्वोंको नामावली हमारी नामावलीसे बहुत ही भिन्न हैं, और इनकी भिन्नता के कारण ही हमारी रासायनिक पुस्तकों और इनके ग्रन्थोंमें बहुत अन्तर उपस्थित हो जाता है। उदाहरण के लिये हम कुछ शब्द नीचे देते हैं—

अंग्रेज़ी	मराठी	हिन्दी
Carbon	अर्व	कर्बन
Aluminium	आश्म	स्फटम्
Oxygen	ऊर्व	ओषजन
Nitrogen	नत्र	नोषजन
Potassium	पालाश	पांशुजम्
Strontium	शारद	स्त्रांशम्
Radium	रद	रश्मिम्

इन तत्वोंके लिये आपटे महोदय ने संकेताक्षर (Symbols) नहीं दिये हैं और रासायनिक समीकरणोंको आपने अपनी पुस्तकमें अंग्रेज़ीमें ही दिया है।

यौगिकोंके नाम इस प्रकार दिये हैं—

Sodium sulphate	सामुद्र गंधिक
KNO_3	पालाश नत्रिक
Sulphurous acid	गन्धिताम्ल
$NaHCO_3$	सामुद्रद्विधा अर्विक

अन्य पारिभाषिक शब्दों में भी बड़ा अन्तर है, यद्यपि कुछ शब्द अकस्मात् समान भी होगये हैं। इनका परिचय प्राप्त करनेके लिये आपटेकी रसायन परिभाषा देखनी चाहिये।

गणितके पारिभाषिक शब्द

यामिक-प्रदीप नामक पुस्तक में गणितके बहुत से शब्दोंके पारिभाषिक शब्दोंका संग्रह दिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीसखाराम विनायक आपटे महोदय की यह पुस्तक विषय-विवेचनकी दृष्टिसे बहुत ही महत्व की है। हम यहां कुछ शब्दों का संग्रह दे रहे हैं:—

Mechanics	यामिक
Dynamics	प्रेरकीय
Acceleration	प्रवेग
Normal	स्तम्भ
Medium	वहित्र
Centre of force	प्रेरक-केन्द्र

Gravity	निकृष्टि
Component	पदद्रय
Radius	अरिज

इन पारिभाषिक शब्दों से भी विचित्र बात है, वे संकेत जो आपटे महोदय ने ग्रीक के पलफा, बीटा, गामा आदिके लिये नियुक्त किये हैं। ज्या, कोज्या आदि शब्द जिनका व्यवहार अति प्राचीन कालसे हमारे ज्योतिष-ग्रंथोंमें होता आ रहा था, उनको भी आपने विचित्र टेढ़ी मेढ़ी आकृतियों को लिपियों से सूचित किया है। यदि पाठक यामिक-प्रदीप नामक पुस्तिका को देखें तो उनका मनोरञ्जन अवश्य होगा।

भौतिक शास्त्रके शब्द

'वाहती वीज' नामक पुस्तिकामें श्री सखाराम विनायक आपटे जी ने विद्युत् सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्दोंका व्यवहार इस प्रकार किया है :—

Electricity	वीज
Electric circuit	वीज वाट
" current	वीज वहाल
Battery	विजेर्‌या
Voltage	ऊर्ज
Resistance	रोध
+ and – electrodes	धन-ऋण पक्ष
Flux	स्रोत
Ammeter	ओघमापक

अब हम इस शब्दावली के विषयमें कुछ कहना नहीं चाहते हैं। हमें इस बातका अपार हर्ष है कि हमारी सहयोगिनी भाषाओंमें भी वैज्ञानिक साहित्य उत्पन्न होने लगा है, और हमारी यह आन्तरिक इच्छा है, कि यह साहित्य दिन दूना रात चौगुना विस्तृत हो और पारस्परिक सहयोगसे उपयोगी साहित्यको सृष्टि हो।

समालोचना

वायु पर विजय—ले० श्री जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी भूषण, विशारद। प्रकाशक, राय साहब रामदयाल अग्रवाला, कटरा, प्रयाग, पृ० सं० १६५, मूल्य १)। अनेक चित्रों से सुसज्जित, काग़ज़, छपाई अत्युत्तम।

प्रस्तुत पुस्तकमें योग्य लेखक ने वायुयानोंके विकासका मनोरञ्जक विवरण दिया है। गुब्बारों से लेकर बड़े बड़े ज़ेपलिन तक किस प्रकार इस यन्त्रकलाकी उन्नति हुई, इसका वर्णन बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया गया है। युद्ध और वायुयान और विशेषतः गत महासमरमें वायुयानोंसे किस प्रकार गोलियोंकी वर्षा की गई इसका वर्णन भी इसीमें देखिये। समुद्री वायुयान अथवा उड़ातू नौकाका भी उचित उल्लेख है। समय समय पर तीव्रगति के लिये जितनी मनोरञ्जक प्रतियोगितायें हुई हैं, उनका भी लेखक ने संग्रह देकर पुस्तककी उपयोगिता बढ़ा दी है, तात्पर्य्य यह है कि सभी दृष्टियोंसे यह पुस्तक महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य को ऐसी ही पुस्तकों पर गर्व हो सकता है।

पुस्तककी भाषा ललित और सरल है और लेखन शैली मनोरञ्जक और स्वस्थ है। इस सुन्दर पुस्तकके लिये हम लेखक और प्रकाशक दोनोंको बधाई देते हैं। आशा है कि इस पुस्तकका समुचित मान होगा।

महिला—सम्पादिका, श्री रामप्यारी देवी, 'चन्द्रिका' प्रकाशक, आर्य्य-साहित्य मंडल, अजमेर। वार्षिक मूल्य ३)। पृ० सं० ४८। कागज़, छपाई उत्तम।

महिलाओंकी सचित्र मासिक पत्रिका है जिसमें अधिकतर सामाजिक लेखोंका संग्रह है। लेख, कवितायें, और चित्र सभी अच्छे हैं, सम्पादन योग्यतापूर्वक किया गया है। हम इस पत्रिका की उन्नति हृदयसे चाहते हैं। आशा है कि यह पत्रिका स्त्री जगत्में अवश्य जागृति उत्पन्न करेगी। क्या ही अच्छा हो यदि इस पत्रिकामें स्त्रियोंके ही सब लेख रहें। अब तो स्त्रियोंमें शिक्षा काफी फैल चुकी है, अतः ऐसा करनेमें अधिक कठिनाई न होगी। जूनके प्रस्तुत अंकमें स्त्रियोंकी केवल दो कविता और शेष सब लेख पुरुषोंके होना अवश्य खटकता है।

श्राद्ध-विज्ञान—लेखक पं० मल्लिनाथ जी शर्मा। प्रकाशक—कमलाप्रसाद गोयनका २८ ओल्ड चीना बाजार स्ट्रीट कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १२८, मूल्य ॥=)

इस पुस्तकमें पं० मल्लिनाथ शर्मा ने अपनी बुद्धि के अनुसार मृतक श्राद्धका मंडन किया है। सृष्टिकी उत्पत्ति, द्युलोक, ब्रह्मलोक, चन्द्रलोक, देवयान, पितृयान आदिकी व्याख्या करते हुए इन्होंने जो कई शब्दोंका मन माना अर्थ करके मृतक श्राद्धको विज्ञान (Science) के अनुकूल सिद्ध करनेकी चेष्टा की है वह अयुक्त और असंगत है।

ब्राह्मण-भोजन आदि प्रकरण उपहासास्पद हैं, पिंड आदिकी मीमांसा में कुछ सार नहीं प्रतीत होता है। खेद इस बातका है कि विज्ञानके नाम पर अबोध जनता को इस प्रकार धोखेमें डालनेका प्रयत्न किया जा रहा है। अच्छा होता यदि योग्य लेखक महोदय अपनी शक्ति किसी उपयोगी ग्रंथकी रचनामें लगाते।

—सत्यप्रकाश

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर ब्रजराज,
एम० ए०, बी० ए-सी०, एल० एल० बी०

श्रीयुत सत्यप्रकाश,
एम० एस-सी०, एफ० आई० सी० एस०

श्री युधिष्ठिर भार्गव,
एम० एस-सी०

भाग ३३

कन्या संवत् १९८८

प्रकाशक

विज्ञान परिषत् प्रयाग।

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

औद्योगिक

गणित और ज्योतिष

जीवनचरित्र

जीवविज्ञान

पारिभाषिक शब्द

भूगर्भ शास्त्र

भौतिक शास्त्र

रसायन

वैद्यक शास्त्र

मिश्रित

प्रतिष्ठाता
डाबर
(डाक्टर एस॰ के॰ बर्म्मन)
लिमिटेड
कलकत्ता
डाक्टर एस॰ के॰ बर्म्मन
स्थापित
स्टार
ट्रेड SKB मार्का
रजिष्टर्ड
सन् १८८४ ई॰
५० वर्षोंसे प्रचलित शुद्ध भारतीय पेटेन्ट दवाएँ !
रोग का घर खांसी !
"कफ-कफ" [कफ, खांसी व सर्दी की अचूक दवा] (REGD.)
पीते ही खांसीको दबाती और कफको पतला करती है।
खांसी महा भयंकर रोग है। इसे कभी थोड़ा न समझिये। "कफ-कफ" को पीते ही खांसी दब जाती है। चाहे कैसी भी खांसी या कफकी बीमारी क्यों न हो उसे यह दवा आराम करनेका दावा रखती है। मूल्य—बड़ी शीशी १।=) एक रुपया छै आना। डा॰ म॰ ॥-)
मूल्य—छोटी शीशी ॥।) बारह आना डा॰ म॰ ।=)
"हील एक मरहम" (REGD.)
(कटे, जले, चोट आदि पर लगानेका विख्यात मरहम)
"हील-एक" से दुर्घटना जनित चोट, घाव, जलन, दर्द, खूनका बहना, आगसे जलनेका घाव आदि तत्काल अच्छा होता है। फुटबाल, क्रिकेट, जम्नाष्टिक, कसरत आदिके खिलाड़ियों और कल-कारखानेमें काम करने वालों को इसे सर्वदा अपने पास रखना चाहिये। इसमें चर्बी आदि अपवित्र वस्तु नहीं है। मूल्य—फी डिब्बी दस आना। डा॰ म॰ ३ डिब्बी तक ।=)
※ नमूनेकी डिब्बी =) मात्र।
"हील एक साबुन" (REGD)
(औषधियुक्त सुगन्धित)
आप अच्छेसे अच्छे विलायती सुगंधित साबुन की जगह इसे नित्य व्यवहार कर सकते हैं।
इसे लगाकर स्नान करनेसे चमड़ेकी बीमारी होनेका भय नहीं रहता। और खुजली, खसरा, फुन्सी, मुहांसे, बरें, रूखापन आदि रोग दूर होते हैं। मू॰ एक बट्टी का बक्स ।≈) सात आना। डा॰ म॰ ।=)
※ नमूना =) मात्र।
नोटः—हमारी दवाएँ सब जगह दवाखानोंमें बिकती हैं। डाक खर्च बचानेके लिए अपने स्थानीय हमारे एजेण्ट से खरीदये।
[विभाग नं॰ १२१] पोष्ट बक्स नं॰ ५५४, कलकत्ता।
एजेण्ट—इलाहाबाद (चौक) में श्यामकिशोर दूबे।

वैज्ञानिक पुस्तकें

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

पूर्ण संख्या—
१६६

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३४
VOL. 34.

तुला, संवत् १६८८
अक्टूबर १६३१

संख्या १
No. 1

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३४ } तुला, संवत् १९८८ { संख्या १

प्रकाश रसायन

[ले० श्री वा० वि० भागवत, एम० एस-सी०]

प्रथम परिच्छेद

पूर्व इतिहास

प्रकाशमें पेड़के पत्तोंका हरा रंग तैयार होना और उसका अंधेरे में नष्ट होना अरस्तूको (ई० से पूर्व ३६४-३२१) शायद मालूम था। विट्रु वियसको भी प्रकाशके बारेमें कुछ थोड़ा ज्ञान था। लेकिन प्रकाश रसायनका अध्ययन ठीक तरहसे १७ वीं शताब्दीमें ही शुरू हुआ। पेड़ोंके जीवनमें प्रकाश और हवाकी प्रक्रिया अलग अलग होती है यह वनस्पति शास्त्रज्ञ रेने सर्व प्रथम बतलाया। प्रशिया के चैन्सेलर बेस्टुशेफ ने यह बतलाया कि लोहिक हरिद के मद्यघोलका रंग प्रकाशसे नष्ट होजाता है। यही रंग बादमें अन्धेरेमें रखनेसे फिर वापिस आ जाता है।

वनस्पतिके पोषणके लिये प्रकाशकी अत्यन्त आवश्यकता है; इस बात पर स्टीफन हेलसने (१६७७-१७२१) विचार किया। प्रकाशका परिणाम रजत यौगिकों पर बहुत जल्द होता है इस बातकी खोज अलूडार्फके वैद्यक शास्त्रके आचार्य जे० एच० शुल्ज़ ने की।

प्रिस्टले (१७७७) और शेलेका कार्य भी महत्व-पूर्ण है क्योंकि एकने यह देखा कि प्रकाशमें वनस्पति से ओषजन निकलता है पर वे ही वनस्पति अंधेरेमें ओषजनका सेवन करते हैं।

जितना हम आँखों से देखते हैं, उतना ही प्रकाश कहलाता है, ऐसा सबका विचार था लेकिन सन १८०० में डब्लयू हर्शेल ने परालाल किरणोंकी खोज की। एक ही बरस बाद रीटरने पराकासनी किरणोंकी भी खोज की। इन खोजोंसे यह मालूम हुआ कि प्रकाशके दृश्य, परालाल और पराका-सनी यह तीन भेद होते हैं, और दृश्य प्रकाश सात

रंगों को मिलाकर होता है। यदि दृश्य-प्रकाशका किरणचित्र भी खींचा जाय तो उसमें कासनी नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी, और लाल यह रंग क्रमशः आते हैं।

दृश्य प्रकाशके सब रंगोंकी किरणोंका परिणाम एक ही नहीं होता, यह महत्वकी बात शेलेने देखी। उसने यह बतलाया कि कासनी रंगका परिणाम सबसे अधिक होता है। हरिन् जल प्रकाश से विभाजित होता है, यह बर्थोलेट ने १७७५ में ही मालुम कर लिया था। इस खोजका उपयोग सन १७७६ में डी साउसर ने प्रकाश-क्रिया-मापक यंत्र बनानेमें किया। यही पहिला प्रकाश-क्रिया-मापक यन्त्र अस्तित्वमें आया।

गेलुज़ेक और थेनार्ड (१७०७-१७१०) ने यह बात सबसे पहिले देखी कि उदजन और हरिन्का प्रकाशसे संयुक्तीकरण होता है। आज इस क्रिया को प्रकाश-रसायनमें बहुत महत्व दिया जाता है। डेवी ने यह बतलाया कि हरिन् और कर्बन-एक-ओषिदसे ओषहरीद्रिन प्रकाशकी सहायतासे बनता है, और किरण जितने छोटे होते हैं उनसे उतना ही अधिक अवकरण होता है तथा बड़े किरणों से ओषदीकरण होता है।

जब से सन् १७१७ में ग्रोथसने "शोषण की हुई किरणोंसे प्रकाश क्रिया होती है" यह सिद्धांत जनताके सामने रक्खा तबसे प्रकाश रसायन उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जा रहा है। प्रति दिन प्रकाश परिणामके बारेमें नई नई बातें निकलती आ रही हैं। १७३९ में ड्रेपरने इसी सिद्धान्तको अधिक स्पष्ट किया। उस वक्तसे यह सिद्धान्त प्रकाश रसायनका आधार स्तम्भ समझा जाता है। इसके बाद मलागटी, बेक्वेरल, बुनसन और रास्को, वोगल इत्यादि बहुत महाशयों ने प्रकाशके बारेमें काम किया है।

उपोद्घात

प्रकाश विद्युत्-चुम्बकीय लहरोंसे बना है। लहरोंकी कम ज्यादा लम्बाईके अनुसार, हर एक तरहका प्रकाश होता है।

प्रकाश	लहर लम्बाई
कास्मिक किरण	०·०००१ अ (अङ्गस्ट्राम)
गामा "	०·०१—०·१
रौञ्जन "	०·१—५०
मिलिकन-ओसगुड "	२००
लेमन "	६००
शुमन "	१३००
पराकासनी	१७५०—३६००
कासनी	३६००—४८४०
नीला	४८४०—४६२०
हरा	४६२०—५३५०
पीला	५३५०—५८६०
नारंगी	५८६०—६४७०
लाल	६४७०—७५००
परालाल	
बाकीका परालाल	$७५०० — ३ \times १०^{६}$
विद्युत लहर	$३ \times १०^{६} — १०^{७}$
हर्टज़ियन लहर	$१०^{७} — १०^{१४}$

किरण-सामर्थ्यका नापना

रासायनिक क्रिया में किरण-शक्ति-सामर्थ्यका ज्ञान होना जरूरी होता है। यदि किरण सीधे गिरते हों तो इकाई पृष्ठ पर इकाई समयमें जितनी सामर्थ्य गिरती है, उसको सामर्थ्यकी तीव्रता कहते हैं। प्रकाश रसायनमें कभी कभी सम्पूर्ण प्रकाशकी तीव्रता की जरूरत होती है और कभी दृश्य प्रकाशकी तीव्रता मालूम करनेकी ही आवश्यकता होती है, कभी कभी एक ही रंगकी किरणों की तीव्रता मालूम करनी पड़ती है। इसीलिये किरण-सामर्थ्यके नापने की भिन्न भिन्न तरकीबें व्यवहारमें आई हैं। इन तरकीबोंके तीन विभाग हैं।

(१) प्रकाशमापन
(२) किरण सामर्थ्य मापन
(३) किरण क्रिया मापन

(१) प्रकाश मापनः—प्रकाश उद्गमों की तीव्रता मालूम करनेके लिये यह तरकीब काममें लायी जाती है। इसमें जिस दीपकी तीव्रता जाननी हो उसकी निश्चित-दीप-इकाईसे तुलनाकी जाती है। निश्चित इकाईमें कारसेल दीप और हेफनर-आल्टेनेक-दीप प्रमाणिक समझे जाते हैं। कारसेल-दीपमें कोलज़ाका ४२ ग्राम तेल एक घंटेमें जलता है, और हेफनर दीप जिसमें केलिल सिरकेत जलाया जाता है उसकी तीव्रता कैरसेलके ६/१० होती है। इस प्रकारके मापनसे रासायनिक क्रियाके बारेमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता। यह ठीक तरहसे ध्यानमें रखना चाहिये कि इस प्रकारका मापना दृश्य प्रकाशके बारेमें ही सम्भव है और इतना ही नहीं जिन प्रकाशोंकी तुलनाकी जाय वे भी एक ही रंग के होने चाहिये।

भिन्न भिन्न लहर लम्बाईकी किरणोंकी तीव्रता की तुलना इस तरकीबसे नहीं कर सकते। लेकिन यदि दो प्रकाश एक ही जातिकी भिन्न भिन्न प्रकाश लहरोंके भिन्न भिन्न परिमाण मिलानेसे बने हों तो उनकी लहरोंके प्रकाशको परस्पर-तीव्रता जानी जा सकती है। इसके लिये किरणचित्र-प्रकाश-मापककी सहायतासे प्रथम इन प्रकाशोंका उक्त लहरोंमें पृथक्करण किया जाता है और फिर बादमें हर एक रंगकी तीव्रता दूसरी इकाईमेंके हर एक रङ्ग की तीव्रता से कितनी कम ज्यादा है यह मालूम किया जाता है। कोनीग-मार्टन-किरणचित्र-प्रकाश-मापक इस कामके लिये बहुत उपयुक्त समझा गया है।

(२) किरण सामर्थ्य मापनः—यह एक ही तरह का है, जिससे परालाल किरणोंकी तीव्रता मापी जा सकती है। किरणोंकी तीव्रता किरण-सामर्थ्य की इकाईमें जाननेके लिये भी यह पद्धति उपयुक्त है। इसमें, विकिरण-मापक, तापविद्युत् पुञ्ज और अति-सूक्ष्म-किरण-मापक काममें लाये जाते हैं।

जैसे जैसे तापक्रम बढ़ता है वैसे वैसे विद्युत् बाधा बढ़ती है, इस सिद्धान्तके अनुसार विकिरण-मापक बनाये जाते हैं। इसमें धातुके तार या बहुत पतले पत्तोंकी जरूरत होती है। एक ही से तारके चार टुकड़ोंसे व्हीटस्टनका जाल बनाया जाता है। प्रथम उनकी बाधा इस तरहसे रखी जाती है कि विद्युत्-धारा धारामापकमेंसे न जा सके। यदि अब एक तारको प्रकाशसे गरम किया जाय तो धारामापक विचलित होता है, और इसके विचलित होनेके परिमाणसे दो प्रकाशों की तुलना कर सकते हैं। प्रकाशकी तीव्रता प्रकाश की इकाईमें जानना हो तो जिस वक्त एक तार प्रकाशसे गरम होता है ठीक उसी वक्त दूसरा तार विद्युत्धारासे इस तरकीबसे गरम किया जाता है कि धारामापक विचलित न हो। ऐसी हालतमें दोनों तार सामर्थ्यका एक ही अंश पाते हैं, लेकिन विद्युत् सिद्धान्तसे एक तार कितनी सामर्थ्य पा रही है यह मालूम हो सकता है।

$$ता = ०.२३६\ बा.\ (\ धा\ )^{२}$$

ता=ताप, बा—तारकी बाधा और धा—तारमेंसे जाने वाली धाराका परिमाण।

ताप विद्युत् पुंजः—इसमें दो धातुके तापयुगल होते हैं। जब इन ताप युगलोंके जोड़को गरम किया जाता है तब विद्युत् धारा शुरू होती है। इस नियमका किरण-सामर्थ्यकी तीव्रता नापनेमें उपयोग किया गया है। ताप-विद्युत्-पुंजमें लोहा और कान्स्टनटन या विशदम्—रजतम्के करीब करीब बीस युगल होते हैं। परालाल किरणोंके शोषणके लिये इनके जोड़ काजलसे काले करते हैं। मोलका ताप विद्युत् पुंज और धारामापक तीव्रता-मापनके लिये सुप्रसिद्ध है। प्रथम इनको हेफनरके दीपसे प्रमाणित किया जाता है। यदि हेफनर दीपको एक मीटर दूर रखा जाय और

इससे किरण सीधे गिरते हों तो पृष्ठकी इकाई पर एक सैकंडमें ६०० अर्ग शक्ति गिरती है। इस वक्त यदि धारामापक का विचलन अ हो और जिस प्रकाशकी तीव्रता मालूम करना है उससे आयी हुई विचलन (ब) हो तो इस प्रकाशकी तीव्रता

$$\frac{६०० \times ब}{अ}$$ अर्ग होती है।

अति सूक्ष्म किरण मापकः—इसे प्रथम बोइज़ और पाश्चन काममें लाये। इसमें धारामापक और ताप विद्युत् पुंज एक किये गये हैं। यही इसकी विशेषता है। विशदम्-रजतम् युगलको तांबेके तारसे चुम्बकीय क्षेत्रमें लटकाया जाता है। जब युगल किरणोंसे गरम होता है तब विद्युत् धारा प्रवाहित होकर तार चुम्बकीय क्षेत्रमें घूमता है। इस घूमनेके परिमाणको जाननेके लिये तांबेके तारमें एक दर्पण का छोटा सा टुकड़ा लगाते हैं। पहिले इसके ऊपर दीपसे प्रकाश गिराते हैं और उसका प्रतिबिम्ब एक फुट पटरी पर घूमने देते हैं। जब प्रकाश गिरने से तार घूमता है तब दर्पण भी घूमता है और प्रतिबिंब भी घूम कर पटरी पर दूसरी जगह हट जाता है। प्रतिबिंब पटरी पर कितना हटा यह जान कर प्रकाशकी तीव्रता मालूम होती है। लेकिन यह जाननेके वास्ते हेफनर दीपसे प्रतिबिंब कितना विचलित होता है यह मालूम करना आवश्यक है। क्योंकि हेफनर दीपकी प्रकाश सामर्थ्य ज्ञात है।

(३) किरण-क्रिया-मापनः—इस विधि में प्रकाश रासायनिक क्रियासे फायदा उठाया गया है। सूर्य प्रकाशकी तीव्रता जाननेके लिये प्रथम इस विधिका उपयोग हुआ। यदि हमको एक बार यह मालूम हो जाय कि रासायनिक क्रियाकी गति प्रकाशसे किस तरह बदलती है तो हम दूसरी बार किसी भी प्रकाशको तीव्रता मालूम कर सकते हैं। लेकिन इस विधिमें हम दो प्रकाशोंकी तीव्रताकी तुलना ही कर पाते हैं। हर एककी अलग तीव्रता क्या है इसका ज्ञान नहीं हो सकता। यह तुलना एक ही रंग के प्रकाशोंमें करनी उचित है। उद्जन-हरिन् संयोग-क्रिया प्रकाश-रासायनिक होनेसे ड्रेपर ने इसका तीव्रता-मापनके काममें उपयोग किया। यह क्रिया, जैसा प्रथम सोचा गया, उतनी सुलभ नहीं है, प्रत्युत इसके समान संकीर्ण क्रिया दूसरी कोई नहीं, ऐसा कहना भी अयुक्त न होगा। इतनी बातों पर यह क्रिया निर्भर है कि, हर एक वक्त इन सब बातोंको संभाल कर एक ही अवस्थामें, हर एक प्रकाशकी तीव्रता जानना कठिन है। और जबतक समावस्थामें क्रिया का अध्ययन नहीं होता तब तक दो प्रकाशोंकी तुलना व्यर्थ है। प्रकाश-लेखन-कागजभी इसी काममें लाते हैं। रजत हरिदको विशिष्ट सीमा तक काला होनेके लिये जो वक्त लगता है वह तीव्रताका व्युत्क्रमपाती होता है। इस ज्ञानकी सहायतासे तीव्रताकी तुलना की जा सकती है। लेकिन इस विधिमें यह कठिनाई है कि दो प्रकाशोंसे आया हुआ कालापन बराबर ही है यह मानना ठीक नहीं है। प्रकाश-लेखन-कागजका काला होना हवाकी आर्द्रता पर निर्भर है। इसीलिये इस पद्धतिसे भी तुलना ठीक नहीं होती। और भी बहुत तरहके किरण-क्रिया-मापक हैं। राडरका प्रकाश मापक, बोरडोयरका किरण-क्रिया-मापक, फुरस्टेन हौसका किरण-क्रिया मापक, सब एक ही हैं। मैकेंज़ी और किंग ने यह जान कर कि कर्बन-चतुर-हरिदका विभाजन प्रकाशसे होता है उसको तीव्रता मापनके लिये काम में लिया। गीलाम और मारटनने पांशुज नोषेतकी क्रियाको परासानिक किरणों की तीव्रता नापनेमें उपयोग किया है। और भी बहुत से किरण-क्रिया-मापक प्रचलित हैं। किन्तु यह पद्धति तुलनात्मक ही है। इनसे कुछ अच्छे फल नहीं आते। सबमें ताप-विद्युत-पुञ्ज और धारामापक या अति सूक्ष्म-किरण-मापक ही उपयुक्त हैं।

द्वितीय परिच्छेद

प्रकाश रसायन के सिद्धान्त

प्रकाश-रसायन परिवर्तनोंमें प्रकाश शोषणके परिमाणका महत्व होनेके कारण प्रकाश शोषणके नियमोंका प्रकाश-रसायनमें अत्यन्त महत्व है। किसी भी प्रकाशकी हरेक माध्यमके भीतर जाते समय एक ही तीव्रता नहीं होती। जब प्रकाश एक माध्यमसे दूसरे माध्यमके पृष्ठ पर गिरता है, तब उसी वक्त कुछ तो परावर्तन होता है। यदि किरणों का मार्ग सीधा हो, तब परावर्तित किरणोंकी सामर्थ्य नीचे दिये हुये समीकरणसे निकलती है:—

$$र = \left(\frac{न - १}{न - २}\right)^{२}$$

जहां पर 'न' माध्यम की (प्रथम माध्यमके साथ की) आवर्जन संख्या है। 'र' परावर्तित किरणोंकी शक्ति है।

इस तरहसे भीतर जाने वाली किरणोंकी शक्ति कम होती है। यदि 'ति' प्रकाश की तीव्रता हो, 'ति', प्रकाशकी माध्यमके भीतर जाते वक्तकी तीव्रता हो, और गिरे हुये प्रकाशकी तीव्रताका 'र' हिस्सा परावर्तन पाया हो तो।

$$ति_{१} = ति (१ - र)$$

लेकिन परावर्तन 'र' इतना कम होता है कि उसकी ओर ध्यानकी कुछ आवश्यकता नहीं। इसीलिये माध्यमके ऊपर गिरने वाले प्रकाशकी और माध्यमके भीतर जाने वाले प्रकाशकी तीव्रता एक ही समझनेमें कोई हानि नहीं है।

$$र = ०$$

इसलिये पूर्वोक्त समीकरणसे

$$ति_{१} = ति$$

प्रकाशका शोषण माध्यमके भीतर कितना हुआ यह तीन प्रमुख बातों पर निर्भर है। (१) प्रकाश लहर की लम्बाई (२) शोषण पदार्थका समाहरण और (३) शोषक पदार्थ की मोटाई। पदार्थकी मोटाईका शोषण पर क्या प्रभाव होता है यह लैम्बर्टके सिद्धान्तसे मालूम होता है तथा समाहरण के प्रभावके लिये बीअरका सिद्धान्त सर्व-मान्य है। दोनों सिद्धान्त एक ही रंगके प्रकाशके बारेमें सत्य हैं।

लैंबर्टका सिद्धान्त :—गिरने वाले प्रकाशके शोषणका परिमाण, जब माध्यमकी मोटाई स्थिर रहती है, तब प्रकाशकी तीव्रता पर निर्भर है। इस सिद्धान्तके अनुसार जब मोटाई गणित-श्रेणीमें बढ़ती है, तब शोषणका परिमाण भूमिति श्रेणीमें बढ़ता है। यदि शोषण-माध्यमकी मोटाई 'म' हो और प्रकाशकी तीव्रता माध्यमकी 'य' मोटाई से पार जाकर बादमें 'ति$_{य}$' रही हो, तो अति पतले भाग 'तय' से निकलनेके बाद प्रकाशकी जितनी तीव्रता कम हुई इसका परिमाण नीचे दिये हुये समीकरणसे निकलता है।

$$-त\, ति = स्थ.\, ति_{य}'\, त\, य. \quad \cdots\cdots\cdots (१)$$

जहां पर 'स्थ' यह एक स्थिरांक है, और 'तति' तीव्रताके कम होनेका परिमाण है। 'स्थ' स्थिरांकको शोषण-गुणक कहते हैं। चलन करनेके बाद

$$ति = ति_{०}\, उ^{-स्थम}$$

$$या\ ल \frac{ति}{ति_{०}} = -स्थ.\, म \quad \cdots\cdots\cdots (२)$$

जहां पर 'ति' प्रकाशकी माध्यमसे निकलनेके बाद तीव्रता है। यही समीकरण और तरहसे लिख सकते हैं।

$$ति = ति_{०}\, १०^{-अम}$$

$$या\ ल \frac{ति}{ति_{०}} = = अ\, म \quad \cdots\cdots\cdots (३)$$

जहां पर 'अ' यह 'अदृश्य गुणक' (Extinction coefficient) है, और यह प्रकाशकी तीव्रता पहिले से $\frac{१}{१०}$ हो जानेके वास्ते पदार्थकी जितनी मोटाई लगती है उसके व्युत्क्रमके बराबर होता है।

बीयर का सिद्धान्त :—जब शोषण पदार्थ वायु रूपमें होता है, या कोई पारदर्शक घोलकमें घुला हुआ हो तो उसका शोषण गुणक समाहरणके समानुपाती रहता है।

$$\text{स्थि} = \text{श. स} \quad \cdots\cdots (४)$$

और $\text{अ} = \text{शो. स}$

जहां 'श' और 'शो' यह दोनों नये स्थिरांक हैं और स समाहरण है। यदि जिस घोलके या वायुके एक लिटरके भीतर एक ग्राम अणु घुला हो, उसको समाहरण की इकाई मानलें, तो 'श' अणु-शोषण-स्थिरांक या अणु-शोषण-गुणकके बराबर होगा। तथा 'शो' अणु-अदृश्य-गुणक कहलाता है। बहुधा 'अणु' शब्द को छोड़ देते हैं और इनको शोषण गुणक, या अदृश्य गुणक कहते हैं। लेकिन इन शब्दोंका सत्य मतलब ऊपर दिया ही हुआ है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि मोटाई और समाहरण व्युत्क्रम सम्बन्धमें बदले जांय, तो शोषणका परिमाण उतना ही रहता है क्योंकि यदि 'स्थि' और 'अ' का मान जो समीकरण (४) से निकलते हैं समीकरण (२) और (३) में रख दिये जांय तो,

$$\text{ति} = \text{ति}_० \, \text{उ}^{-\text{शसम}}$$

$$\text{और ति} = \text{ति}_० \, १०^{-\text{शोसम}} \quad \cdots\cdots (५)$$

एक चतुष्कोणीय घनके भीतर कोई घोल रखा है, ऐसा समझिये, और 'क्ष' उस घनके पृष्ठका 'क्षेत्र' (Surface) है। यदि प्रकाश इस पृष्ठ पर गिरता हो तो शोषणका परिमाण 'शा'

$$\text{शा} = \text{क्ष} \, (\text{ति}_० - \text{ति}) \quad \cdots\cdots (६)$$

इस समीकरणसे दिया जाता है। और समीकरण (५) से

$$\text{शा} = \text{क्ष ति}_० \, (१ - \text{उ}^{-\text{शसम}}) \quad \cdots\cdots (७)$$

जब शोषण संपूर्ण होता है और जब बिलकुल ही कम होता है तब इस समीकरणसे महत्व पूर्ण परिणाम निकलते हैं। सिद्धान्त-दृष्टिसे संपूर्ण शोषण के समय 'श स म' अनन्त संख्या हो जानी चाहिये। लेकिन प्रयोगिक दृष्टिसे यदि 'श स म' एक भारी संख्या हो तो भी $\text{उ}^{-\text{शसम}}$ को शून्य के बराबर समझनेमें कोई हानि नहीं है। इसीलिये

$$\text{शा} = \text{क्ष ति}_० \quad \cdots\cdots (८)$$

जब शोषण बहुत कम होता है, तब उ⁻ श्रेणीको बढ़ा सकते हैं।

$$\text{उ}^{-\text{य}} = १ - \text{य} + \frac{\text{य}^२}{१\cdot२} - \frac{\text{य}^३}{१\cdot२\cdot३} + \cdots\cdots$$

यदि 'य' यह अपूर्णांक हो तो हम

$\text{उ}^{-} = १ - \text{य}$ लिख सकते हैं।

इसीलिये सातवें समीकरण से

$$\text{शा} = \text{क्ष ति}_० \, [१ - (१ - \text{श स म})]$$

$$= \text{क्ष ति}_० \, \text{श स म}$$

$$= \text{क्ष ति}_० \, \text{आ' स}$$

जहां पर 'अ' शोषण माध्यमका आयतन है। अतः जब शोषण बहुत कम होता है तब वह समाहरणके समानुपाती रहता है यह सिद्ध हुआ। बीअर और लैंबर्टके सिद्धान्त एक ही रङ्गके प्रकाश के बारेमें सत्य हैं। लेकिन यदि दो या अधिक रङ्ग साथ हों और उनका शोषण गुणक एक ही हो तो भी यह सिद्धान्त करीब करीब बराबर ही फल देते हैं। यह दोनों सिद्धान्त हर एक विषयमें सत्य नहीं हैं। विशेषतः बीअरका सिद्धान्त तो कई घोलोंके बारेमें लगता ही नहीं। ताम्रिक हरिद तो बीअरके सिद्धान्तके अनुसार प्रकाश शोषण नहीं करता है। कदाचित् ताम्रिक हरिदके संकीर्ण यवन बनते हों।

मिश्रणोंका शोषण :—यदि मिश्रणके एक पदार्थ का समाहरण '$\text{स}_१$' और दूसरे का '$\text{स}_२$' और $\text{श}_१$ और $\text{श}_२$ उनके अणु-शोषण-स्थिरांक हों तो

$$\text{ति} = \text{ति}_० \, \text{उ}^{-(\text{स}_१ \text{श}_१ + \text{स}_२ \text{श}_२)\text{म}} \quad \cdots\cdots (९)$$

$$\text{और} \quad \text{शा} = \text{क्ष} \, (\text{ति}_० - \text{ति})$$

$$= \text{क्ष ति}_० [१ - \text{उ}^{-(\text{स}_१\text{श}_१ + \text{स}_२ \text{श}_२) \text{म}}] \quad \cdots (१०)$$

यदि शा, और शा$_2$ पहिले और दूसरे पदार्थ का अलग अलग शोषण हो, तो वह स$_1$ श$_1$ और स$_2$ श$_2$ के समानुपाती होने से

$$शा_1 = शा \frac{स_1 श_1}{स_1 श_2 + स_1 श_1}$$

$$और \quad शा_2 = शा \frac{स_2 श_2}{स_1 श_1 + स_2 श_2}$$

किरण शोषणचित्र पर विचार :—जब श्वेत प्रकाशकी सब किरणोंका शोषण करीब करीब एक ही होता है, और शोषणका परिमाण कम रहता है तब इस शोषणको अविशिष्ट शोषण या निरन्तर शोषण कहतेहैं। जब शोषण लहर-लम्बाईके साथ बदलता जाता है तब उसको विशिष्ट शोषण कहते हैं। यह शोषण-चित्र दो प्रकारका होता है। एक रेखा-किरणशोषणचित्र और दूसरा पट्टीदार किरण-शोषण-चित्र। एक परमाणुक वायु का शोषण-चित्र रेखांकित होता है, पर यौगिकोंका वायु-स्वरूप में शोषण चित्र पट्टीदार होता है। हरिन्, नोषजन, ओषजन आदि वायु तत्वोंका, जिनमें बहुतसे परमाणु रहते हैं, कम दबाव पर शोषणचित्र भी पट्टीदार रहता है। लेकिन उच्च विस्तरण बलके किरण-चित्र लेखकसे उसको रेखाओंमें विभाजित कर सकते हैं। जैसे जैसे दबाव बढ़ता जाता है वैसे ही रेखा पास आती जाती हैं और अन्तमें सब एक होकर हम पट्टीदार किरणोंके शोषण चित्र ही देखते हैं। कुछ दुष्प्राप्य पार्थिव तत्वों के यौगिकोंके शोषण के अतिरिक्त शेष सब यौगिकोंके घोलोंका शोषण चित्र पट्टीदार ही रहता है।

शोषणका मापन दृश्यक्षेत्रमें नटिंगके रेखा-किरण-प्रकाश-मापक की सहायतासे निकलता है। इस प्रकारसे घोलका अदृश्य शोषण गुणक मालूम होता है। पराकासनी क्षेत्रमें का शोषण प्रकाश लेखनकी सहायतासे निकलता है।

शोषण और रासायनिक गठन :—पदार्थका शोषण-चित्र उसके रासायनिक गठनके ऊपर निर्भर है, और बातों पर वह इतना निर्भर नहीं है। बहुधा शोषण पर घोलक का कुछ प्रभाव नहीं होता। यदि पांशुज परमांगनेतको, पानी, दारील मद्य, सिरकोन या सिरकाम्लमें घोला जाए तो सब में उसका शोषण एक ही रहता है।

घोलककी आवर्जन संख्या जैसे बढ़ती जाती है, वैसे शोषणका क्षेत्र लम्बी लहरोंकी तरफ बढ़ने लगता है। इसको कुण्डका सिद्धान्त कहते हैं। नैलिन्का शोषण हर एक घोलकमें अलग अलग रहता है। शायद घोलमें इसके तरह तरहके संकीर्ण यौगिक बनते हों, वही इस अपवादका कारण हो। यदि शोषण तापक्रमके साथ बदलता हो तो भी यही कारण उसके बारेमें सत्य है। जिन पदार्थोंके संकीर्ण यौगिक नहीं बनते उनका शोषण तापक्रमके के साथ बहुत ही कम बदलता है।

रासायनिक रङ्ग और पदार्थोंकी गठन के विषयमें बहुत कुछ कार्य हुआ है। इस कार्यके द्वारा कुछ नियम कल्पित किये गये हैं। इनकी सहायतासे जिनकी गठन मालूम हो ऐसे कार्बनिक यौगिकोंका शोषण हम मालूम कर सकते हैं या यदि शोषणचित्र मालूम हो तो पदार्थकी गठन क्या है इसकी कल्पना कर सकते हैं। अकार्बनिक यौगिकका शोषण और उनकी गठनका परस्पर सम्बन्ध अभी तक ठीक तरहसे मालूम नहीं है।

अन्तर्गत शोषक (Internal filters) **:**— यदि प्रकाश रासायनिक मिश्रणमें का एक पदार्थ मिश्रणके भीतरसे जाने वाले प्रकाशके कुछ भागको शोषण करता हो और खुद प्रकाश रासायनिक न हो तो उसको 'अन्तर्गत शोषक' कहते हैं। ऐसे शोषक से प्रकाश रसायनिक पदार्थका शोषण कम होकर रासायनिक क्रियाकी गति कम होजाती है। अन्तर्गत शोषणके लिये पदार्थको बाहरसे अलग लाकर मिलानेकी जरूरत नहीं है। कभी कभी तो प्रकाश

रासायनिक क्रियासे ही ऐसे पदार्थ निर्मित होते हैं जो प्रकाशका शोषण कर लेते हैं। यदि यह निर्मित पदार्थ ठोस अवस्थाके हों तो उनके द्वारा कुछ प्रकाशका शोषण भी होता है और परिक्षेपण भी होता है। ऐसे समय क्रियाका स्वरूप संकीर्ण होनेके कारण उसके बारेमें कुछ फल निकालना कठिन हो जाता है। कुनिन और रागिक अम्लकी प्रकाश रासायनिक क्रियामें रागिकाम्ल 'अन्तर्गत शोषण' का कार्य करता है।

यदि माध्यममें दो प्रकाश शोषक पदार्थ हों तो हर एकका शोषण कैसे निकालते हैं यह हमने बतला ही दिया है। यदि '$\text{स}_{१}$' प्रकाश रासायनिक पदार्थका समाहरण हो, '$\text{श}_{१}$' उसका अणु-शोषण-गुणक हो, उसका शोषण '$\text{शा}_{१}$' नीचे दिये हुये समीकरणसे निकलता है।

$$\text{शा}_{१} = \frac{\text{स}_{१}\,\text{श}_{१}}{\text{स}_{१}\,\text{श}_{१} + \text{स}_{२}\text{श}_{२}}\,\text{न}\,(\,\text{ति}_{०} - \text{ति}\,)$$

$$= \text{न}\,\text{ति}_{०}\,\frac{\text{स}_{१}\,\text{श}_{१}}{\text{स}_{१}\,\text{श}_{१} + \text{स}_{२}\text{श}_{१}} \times \left[१ - \text{उ}^{-(\text{स}_{१}\text{श}_{१} + \text{स}_{१}\text{श}_{२})\text{म}}\right]$$

प्रकाश रासायनिक क्रियाकी गति इसी पर निर्भर है, क्योंकि 'अन्तर्गत शोषण' से रासायनिक क्रियाको कुछ लाभ नहीं होता इसीलिये प्रकाश रासायनिक क्रियाकी गति

$$-\frac{\text{त य}}{\text{त र}} = \text{स्थि}.\,\frac{\text{ति}_{०} - \text{ति}}{\text{म}}.\ \frac{\text{श}_{१}\,\text{स}_{१}}{\text{स}_{१}\,\text{श}_{१} + \text{स}_{२}\text{श}_{२}}$$

$$= \frac{\text{स्थि}\cdot\,\text{ति}_{०}}{\text{म}}\ \frac{\text{श}_{१}\,\text{स}_{१}}{\text{स}_{१}\,\text{श}_{१} + \text{स}_{२}\,\text{श}_{२}}\cdot \left[१ - \text{उ}^{-(\text{श}_{१}\,\text{स}_{१} + \text{श}_{२}\,\text{स}_{२})\,\text{म}}\right]$$

इससे मालूम होती है। यदि शोषणका परिमाण कम हो तो

$$\left[१ - \text{उ}^{-(\text{श}_{१}\,\text{स}_{१} + \text{श}_{२}\,\text{स}_{२})\,\text{म}}\right] = (\,\text{श}_{१}\,\text{स}_{१} + \text{श}_{२}\,\text{स}_{२}\,)\,\text{म}$$

$$\text{और}\quad -\frac{\text{त य}}{\text{त र}} = \text{स्थि}\,\text{ति}_{०}\,\text{श}_{१}\,\text{स}_{१} \cdots\cdots (\text{अ})$$

यदि शोषण संपूर्ण हो तो

$$\frac{\text{त य}}{\text{त र}} = \frac{\text{स्थि}\,\text{ति}_{०}}{\text{म}}\ \frac{\text{श}_{१}\,\text{स}_{१}}{\text{श}_{१}\,\text{स}_{१} + \text{श}_{२}\,\text{स}_{२}}$$

इन समीकरणोंसे यह देखा जाता है कि जब शोषण बहुत कम होता है तब 'अन्तर्गत शोषण' हुआ हो या न हुआ हो, गति वही रहती है।

ग्रोथस ड्रेपर सिद्धान्त :—सन १८१८ में इस सिद्धान्तको ड्रेपर ने निकाला। लेकिन १८३९ तक शास्त्रज्ञोंका ध्यान उसकी तरफ नहीं गया। इसी वक्त ड्रेपर ने फिरसे इस सिद्धान्तको स्थापित किया। इस सिद्धान्तके अनुसार प्रकाश शक्तिके शोषणसे अणु उत्तेजित होकर रासायनिक क्रिया होती है, और शोषणके बिना कोई भी प्रकाश-रासायनिक-क्रिया नहीं होती। इस सिद्धान्तकी सत्यता बहुत शास्त्रज्ञों ने देखी है। लेकिन प्रकाश-शोषण-परिमाण और रासायनिक क्रियाके परिमाणमें परस्पर सम्बन्ध क्या है इसका ज्ञान इससे कुछ भी नहीं होता। केवल प्रकाश रासायनिक क्रियाके लिये प्रकाश शोषण आवश्यक है इतनी ही बात इससे मालूम होती है। कुछ क्रियाओंमें प्रकाश रासायनिक क्रिया प्रकाश शोषणके साथ समानुपाती रहती है, तो कुछ में और भी बातों पर क्रिया की गति निर्भर रहती है। यह सिद्धान्त बहुत सी रासायनिक क्रियाओं में गलत मालूम होता है। कोई कहते हैं कि, यह सिद्धान्त तो सत्य है, लेकिन प्राथमिक क्रियाके बाद माध्यमिक क्रिया भी शुरू होती है। इसीलिये इसको प्राथमिक क्रियाओंके बारे ही में लगा कर देखना चाहिये। ऐसी हालतमें यह नियम सत्य है।

ताप शोषण और प्रकाश रासायनिक शोषण :—जब प्रकाश-रासायनिक-क्रिया होती है तब शोषण ज़रूर होता है,लेकिन जब प्रकाश शोषण होता है तब प्रकाश रासायनिक क्रिया होनी चाहिये ऐसा कुछ नियम नहीं है। अतः प्रकाश शोषण से कभी रासायनिक क्रिया होती है और कभी नहीं होती यह ध्यानमें रखना चाहिये। जब प्रकाश शोषणसे रासायनिक क्रिया नहीं होती तब उस प्रकाशकी सामर्थ्य ताप-सामर्थ्यमें रूपान्तरित होने के कारण इस क्रिया को प्रकाश-ताप-शोषण कहते हैं। प्रकाश शोषण एक ही रंगका नहीं होता, यह हर एक रंगका और अलग अलग परिमाणमें होता है। शोषण किये हुए सब रंगके प्रकाशसे हर वक्त रासायनिक क्रिया होनी ही है ऐसा नहीं है। कुछ किरणोंसे होती है और कुछ किरणोंसे नहीं होती। अतः प्रकाश शोषणके दोनों अंग हर एक क्रियामें मौजूद रहते हैं। एक ही पदार्थका प्रकाश-शोषण क्रिया की अवस्थानुसार 'ताप शोषणात्मक' या रासायनिक हो सकता है। यदि हरिन् वायुको प्रकाशित किया जाय तो नीले रंगका 'प्रकाश-ताप शोषण' होता है। यदि इसी वायुको उदजनके साथ मिलाया जाय तो इसी शोषणसे रासायनिक क्रिया होती है। विशेष करके छोटे दृश्य किरण और पराकासनी किरण रासायनिक स्वरूपके होते हैं। बड़े दृश्य किरण और परालाल किरणोंसे रासायनिक क्रिया कम होती है।

प्रकाश किरणोंका सामुच्चयिक और विभक्त परिणाम :—यदि प्रकाश किरणोंकी किसी रासायनिक क्रियामें 'ग' सामुच्चयिक गति हो और $\text{ग}_१, \text{ग}_२$ इत्यादि अलग अलग किरणोंसे उसी क्रियाकी गति हो तो लूथर और फोर्बने यह देखा कि

$$\text{ग} = \text{ग}_१ + \text{ग}_२ + \cdots\cdots$$

अर्थात् अलग अलग किरणोंसे जो परिणाम होता है उसको जोड़ा जाय तो वे ही किरण यदि साथ गिरें तो भी उतना ही प्रकाश-रासायनिक-परिणाम होता है।

पैडाआ और मिस विटा कहती हैं कि किरणों का सामुच्चयिक परिणाम, किरणोंके अलग अलग परिणामके जोड़से कम रहता है। धर और अलमंड ने यह सामुच्चयिक परिणाम कुछ क्रियाओंमें अधिक होता हुआ भी देखा है।

प्रक्रियाकी श्रेणी और प्रकाश-शोषणका परिमाण :—जिन क्रियाओंके बारेमें ग्रोथस-ड्रेपर, बीअर और लैंबर्टके सिद्धान्त सत्य हैं उनकी प्रक्रिया की श्रेणी उनके प्रकाश-शोषणसे जान सकते हैं।

यदि 'त य' प्रकाश रासायनिक पदार्थ का समाहरण 'तस' समयमें कम हुआ हो तो समयकी इकाईमें और 'आ' आयतनमें परिवर्तन पाये हुए पदार्थका परिमाण

$$\text{आ}\frac{\text{त य}}{\text{त स}} = \text{स्थि. शा} \cdots\cdots (१)$$

इस समीकरणसे दिया जाता है। लेकिन 'आ' 'त्तम' के बराबर है। और $\text{शा} = \text{त्त}(\text{ति}_\circ - \text{ति})$। अतः रासायनिक क्रियाकी गति या समय की इकाईमें और आयतनकी इकाई में

$$\frac{\text{त य}}{\text{त स}} = \text{स्थ}\frac{(\text{ति}_\circ - \text{ति})}{\text{म}}$$

इतना पदार्थ परिवर्तित होता है।

कुछ समयके बाद शोषक पदार्थका समाहरण (अ−य) होता है। इसलिये

$$\text{ति}_\circ - \text{ति} = \text{ति}\left[१ - \text{उ}^{-\text{श म (अ−य)}}\right] \cdots\cdots (३)$$

यदि समीकरण (२) से $(\text{ति}_\circ - \text{ति})$ का मान समीकरण (३) में रख दिया जाय तो,

$$\frac{\text{त य}}{\text{त ब}} = .$$

$$\text{स्थि.}\frac{\text{ति}_\circ}{\text{म}}\left[१ - \text{उ}^{-\text{श म (अ−य)}}\right] \cdots\cdots (४)$$

इस समीकरण से दो महत्वपूर्ण सिद्धान्त निकलते हैं। एक जब प्रकाश शोषण संपूर्ण होता है तब और बहुत कम होता है तब।

(१) संपूर्ण शोषण :—जब शोषण संपूर्ण होता है तब 'ति'=०. और समीकरण (४) से

$$\frac{\text{त य}}{\text{त र}} = \text{स्थि}.\ \frac{\text{ति}_0}{\text{म}}$$

चलनसे

$$\text{य} = \text{स्थि}\ \frac{\text{ति}_0}{\text{म}}.\text{स}$$

या $$\text{य}_1 - \text{य}_2 = \text{स्थि}.\ \frac{\text{ति}_0}{\text{म}} (\text{ख}_1 - \text{ख}_2)$$

इसीसे $$\text{ग} = \frac{\text{य}}{\text{ख}} = \text{स्थि}.\ \frac{\text{ति}_0}{\text{म}} \cdots\cdots (५)$$

जहाँ पर 'ग' गति दर्शक है।

अतः जब शोषण संपूर्ण होता है तब प्रकाश रासायनिककी क्रिया गति प्रकाश-शोषणके समानुपाती और मोटाई के व्युत्क्रमपाती होती है। ऐसी अवस्थामें गति पदार्थके समाहरण पर बिलकुल निर्भर नहीं रहती है। इसीलिये प्रक्रियाकी श्रेणी शून्य कहलाती है। यदि प्रकाशकी तीव्रता स्थिर हो तो प्रक्रियाकी गति जब तक प्रकाश-शोषण संपूर्ण हो तब तक स्थिर हो जाती है। और परिवर्तन पाये हुये पदार्थका अंश 'आ' आयतनमें

$$\text{आ} = \text{स्थि}.\ \text{द}\ \text{ति}_0\ \text{स} \cdots\cdots (६)$$

इससे दिया जाता है। यह केवल समय पर ही निर्भर है।

(२) कम शोषण :—जब प्रकाश शोषण बहुत कम होता है तब

$$\text{शा} = \text{ति}_0\ \text{श}\ \text{आ}\ \text{स}$$

लेकिन $\text{स} = (\text{अ} - \text{य})$ और $\text{आ} = \text{द}\ \text{म}$

इसलिये $$\frac{\text{त य}}{\text{त स}} = \text{स्थि}.\ \text{ति}_0\ \text{श} (\text{अ} - \text{य})$$

$$= \text{स्थि}_1 (\text{अ} - \text{य})$$

चलनके बाद

$$\text{स्थि}_1 = \text{स्थि}\ \text{ति}_0\ \text{श}$$

$$= \frac{१}{\text{स}}\ \text{लु}\ \frac{\text{अ}}{\text{अ} - \text{य}} \cdots\cdots (७)$$

प्रकाश रासायनिक प्रक्रियाकी गति प्रकाश शोषण पदार्थके समाहरणके समानुपाती होती है यह ऊपरके समीकरणसे मालूम होता है। इसीलिये प्रक्रियाकी श्रेणी एक है।

(३) जब प्रकाश शोषण संपूर्ण या कम होः—

इस वक्त

$$\frac{\text{त य}}{\text{त स}} = \text{स्थि}.\ \frac{\text{ति}_0}{\text{म}} \left[१ - \text{उ}^{-(\text{अ} - \text{य})\ \text{श म}} \right]$$

चलनके बाद

$$\text{स्थि}.\text{शति}_0 = \frac{\text{शम}(\text{य}_1 - \text{य}_2) + \text{लु}\ \dfrac{१ - \text{उ}^{-\text{श म} (\text{अ} - \text{य}_1)}}{१ - \text{उ}^{-\text{शम}(\text{अ} - \text{य}_2)}}}{\text{ब}_2 - \text{ब}_1}$$

यदि प्रकाश शोषण संपूर्ण हो तो यह समीकरण (६) के बराबर और शोषण कम हो तो (७) के बराबर होता है।

ग्रोथस-डे-पर-सिद्धान्तसे चलने वाली बहुत सी प्रकाश रासायनिक प्रक्रियायें हैं, और उनके अध्ययनसे इन सिद्धान्तों की सत्यता स्थापित हुई है।

जीर्ण-फुफ्फुस-यक्ष्मामें रक्तक्षरण

[ले० श्री कमला प्रसाद जी एम० बी०]

प्रथमावस्था*—इस अवस्थामें प्रायः १० प्रतिशत† रोगियोंमें रक्तक्षरण होता है। रोगी क्रमशः आरोग्य-लाभ करते हैं, तथा क्षत-स्थानमें खटिक जम जाता है।

द्वितीयावस्था—इस अवस्थामें प्रायः ६१·७% रोगियोंमें रक्त-क्षरण होता है। इस अवस्थामें भी रक्तक्षरण अधिक भयावह लक्षण नहीं होता, कभी कभी तो इसके प्रादुर्भूत होनेसे ही फुफ्फुस का क्षग्न अंश रोग मुक्त हो जाता है, पर तो भी यह एक भयङ्कर लक्षण है अवश्य और रोगीको मृत्युकी ओर अग्रसर कर सकता है।

तृतीयावस्था—इस अवस्थामें केवल ३८·४% रोगियोंमें रक्तक्षरण होता है। किन्तु इस अवस्थामें यह लक्षण बहुधा मृत्युका कारण होता है।

पुरुषों एवं स्त्रियोंमें रक्तक्षरणकी सम्भावना प्रायः एक ही सी रहती है, क्योंकि पुरुष परिश्रम, मद्यपान, या अन्य व्यवसाय-सम्बन्धी कारणों द्वारा प्रभावान्वित होते हैं, और स्त्रियों पर मासिक-स्राव इत्यादिका गहरा प्रभाव पड़ता है। बच्चोंको रक्तक्षरण नहीं होता, तथा ४० वर्षसे अधिककी आयु वाले रोगियोंमें भी बहुत कम देखा जाता है।

रक्त-क्षरण या अङ्गविकृति-सम्बन्धी कारण।

फुफ्फुस की किसी रक्तनलिकाके फट जानेके कारण रक्तक्षरण होता है। रक्त नलिकाके फटने पर रक्त किसी श्वास-नलिकाके मार्गसे बाहर निकल जाता है। यक्ष्मा गांठोंमें रक्त नलिकायें नहीं होतीं। अस्तु, इनके केन्द्रसे रक्त-निर्गम नहीं होता, वरन इनके चारों ओरके फुफ्फुस तन्तुओं अथवा क्षत की परिधिके निकट रक्तक्षरण होता है। प्रश्न यह है कि सभी रोगियोंमें रक्तक्षरण क्यों नहीं होते। इसका उत्तर यह है कि तन्तुओंके नाशके साथ साथ रक्षयित्री प्रतिक्रियायें भी होती रहती हैं। निकटवर्त्ती तन्तुओंका निर्माण होता है, जिससे रक्तनलिकाओंको एक दृढ़ दीवारका सहारा सा मिलता रहता है। यही कारण है कि यद्यपि तृतीयावस्थामें गर्त्तनिर्माण* भी हो जाता है तथापि रक्त-क्षरण बहुधा नहीं होता।

उत्तेजना-मूलक कारण।

(Exciting cause)

उपर्युक्त कारणोंके अतिरिक्त कुछ उत्तेजना-मूलक बाहरी कारण भी हैं जिनसे रक्तक्षरण हो जाता है। सम्भवतः किसी यक्ष्मा-क्षतमें एक रक्त नलिका चारों ओरके तन्तुओंके नष्ट हो जाने पर भी निराधार रह सकती है तथा साधारण रक्त दबावको तब तक सम्हाल सकती है जब तक रोगी पूर्ण विश्राम एवं उपयुक्त चिकित्सा प्राप्त करता है, किन्तु रोगी द्वारा किये गये अत्याचारोंके कारण जब कभी रक्त-दबाव बढ़ जाता है, तब यह रक्त नलिका फट जाती है और रक्तक्षरण होने लगता है।

---

* इस प्रकरणमें अवस्था भेदका निम्न-लिखित आधार है :—

प्रथमावस्था—इसमें केवल छोटे छोटे संख्यामें बहुत कम फुफ्फुस-क्षत पाये जाते हैं, जिनकी प्रवृत्ति विशेषतः रोग मुक्त हो जानेकी रहती है। इस अवस्थाके रोगियोंके बलगममें यक्ष्माकीटाणु बहुत कम निकलते हैं।

द्वितीयावस्था—रोगीके बलगममें कीटाणु सदैव पाये जाते हैं। क्षत प्रथमावस्थाकी अपेक्षा अधिक विस्तीर्ण होते हैं, किन्तु गर्त्त नहीं रहता और न निरन्तर ज्वर ही बना रहता है।

तृतीयावस्था—इसमें निरन्तर ज्वर, गर्त्त, बढ़ते हुए क्षत इत्यादि वर्त्तमान रहते हैं।

† M. Jaquered.

* रक्षाके निमित्त गर्त्तको घेर कर सौत्रिक तन्तुओंका एक पर्दासे बन जाता है—देखिये अंग विकृति प्रकरण।

रोगीकी ये अधिकतायें निम्न-लिखित हैं—

थकावट, परिश्रमकी चेष्टा, खेल कूद-साइकिल वा घोड़ेकी सवारी, टेनिस, नाचना, क्रोध करना, वाद विवाद करना, गाना, जूआ खेलना, एवं मैथुन-सम्बन्धी अधिकतायें।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित भौतिक कारण भी रक्तक्षरणमें सहायता पहुँचाते हैं।

वायुमण्डलके तापक्रमकी अत्यन्ताधिकता वा अत्यन्तन्यूनता।

निकट-वर्त्ती वायु-मण्डलके तापक्रमका शीघ्र परिवर्त्तन।

बहुत ठंडे वा बहुत गर्म जलसे स्नान।

शरीरमें तेज़ धूप लगना। (अपभ्रष्ट सूर्य-चिकित्सा)

ज़ोरकी हवा, कुहेसा, ज़ोरकी वर्षा इत्यादि

भोजनकी अधिकता।

अधिक भोजन शरीरको तौलमें बढ़ाता है अवश्य किन्तु कभी कभी रक्तक्षरणका कारण भी बन जाता है।

साधारणतः स्वस्थ व्यक्तियों एवं यक्ष्मा रोगियोंके भोजन में निम्नलिखित अन्तर होना चाहिये।

स्वस्थ व्यक्तिका दैनिक भोजन*		यक्ष्मा रोगीका दैनिक भोजन
प्रोटीन	१३० ग्राम	१२० ग्राम
कर्बोदेत	१२० ग्राम	३०० ग्राम
मज्जिक (वसा)	८५ ग्राम	१४० ग्राम
	—वीयो	—ब्रैडस्वेल

* यह तालिका शीत-प्रधान देश वासियोंके आहार-सम्बन्धी नियमोंके आधार पर संकलितकी गयी है। हमारे देशके रहने वालोंके आहारमें मांसीय पदार्थोंकी मात्रा कम तथा कर्बोदेतकी मात्रा अधिक रहती है।

वसा घी, मक्खन, दूध, चर्बी, अंडे इत्यादिके रूपमें दी जा सकती है। इस प्रकार देखा जायगा कि यक्ष्मा रोगीके आहार में स्वस्थ व्यक्तियोंके आहारकी अपेक्षा अधिक वसाकी आवश्यकता होती है, किन्तु अन्य पदार्थोंका कुछ कम रहना ही लाभदायक है।

मद्यपान भयावह है, उसी प्रकार चाय, कहवा, तम्बाकू इत्यादिसे भी हानि होती है।

कुछ ओषधियाँ जो वास्तवमें बहुत लाभदायक सिद्ध हो चुकी हैं कभी कभी रक्तक्षरण उत्पन्न कर देती हैं। ऐसी ओषधियोंमें क्रियोज़ोट (Creosote) लोह प्रस्तुत ओषधियाँ, नैलिन् तथा इससे बने हुए द्रव्य इत्यादि हैं।

भिन्न भिन्न प्रकारके रक्तक्षरण

(१) प्रारम्भिक रक्तक्षरण।

रोगीका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है, उसे कभी संदेह तक नहीं होता कि यक्ष्माका आक्रमण हुआ है। वास्तवमें रोगकी सूचना उसे सर्व प्रथम रक्तक्षरण द्वारा ही मिलती है। रक्तक्षरण कम होता है, कम देर तक ठहरता है तथा स्वयं बन्द भी हो जाता है। अथवा कभी कभी फुफ्फुसमें नये उपद्रव उत्पन्न करता है। यदि शीघ्र ही उचित उपायोंका अवलम्बन किया जाय तो रोगीका भविष्य आशा जनक होता है।

कारण। रोग सम्भवतः पहलेसे भी वर्त्तमान रहता है, किन्तु किसी प्रकारका लक्षण उत्पन्न नहीं करता। जब क्रमशः फुफ्फुस तन्तु कुछ नष्ट हो जाते हैं तब किसी दिन रक्तक्षरण आरम्भ हो जाता है।

इस रक्तमें यक्ष्माकीटाणु नहीं मिलते, किन्तु रक्तमिश्रित बलगममें ये बहुधा पाये जाते हैं।

इस अवस्थामें रोगी को वा उसके अभिभावक को यह बता देना उचित है कि रक्त वास्तवमें फुफ्फुससे ही आ रहा है, क्योंकि स्थिति की

सूचना पाकर रोगी सचेत हो जायगा, अन्यथा वह इस भूलमें पड़ कर कि रक्त कंठ वा अन्य अवयवोंसे आ रहा है, बहुत धोखा खा जायगा। रोगीको यह भी समझा देना चाहिये कि रक्त क्षरण वास्तवमें यक्ष्मा* के कारण ही होता है। साथ ही साथ अन्य लक्षण वा चिह्नोंका अन्वेषण भी आवश्यक है।

(२) साधारण रक्तक्षरण।

यह लक्षण साधारणतः जीर्ण फुफ्फुस-यक्ष्मा में प्रगट होता है। तथा रोगकी सभी अवस्थाओं में—द्वितीयावस्थामें विशेष कर—मिल सकता है।

उत्तेजना मूलक कारण कभी कभी वर्त्तमान नहीं रहता। बहुधा खांसनेकी चेष्टा करते समय रक्त निकल आता है। कभी कभी रक्त-वमन तक होता है। कुछ कालोपरान्त (कभी कभी कुछ ही क्षणों में) यह बन्द हो जाता है किन्तु उसी दिन बादको पुनः प्रगट होता है और कभी कभी लगातार १५ दिनों तक होता रहता है। रोगी रह रह कर खांसता है और बलगमके साथ साथ ताज़ा वा जमा हुआ रक्त निकालता है। रक्तका परिमाण निश्चित नहीं होता है।

रोगीका भविष्य भी अनिश्चित रहता है। कभी तो वह रोग मुक्त हो जाता है, उसका स्वास्थ्य सुधरने लगता है, ज्वरका आना बन्द हो जाता है, तथा अन्य लक्षण घटने लगते हैं, और कभी रोग उग्ररूप धारण कर लेता है। इसमें सन्देह नहीं कि ज्वरकी उपस्थितिसे भविष्य कुछ भयावह बन जाता है।

(३) श्वासावरोधक रक्तक्षरण (Asphxiating Hemoptysis)। यह बहुधा द्वितीयावस्था के रोगियोंमें देखा जाता है। इन रोगियोंके फुफ्फुसमें गर्त्तका होना अथवा उन्हें ज्वर आना कुछ आवश्यक नहीं है। अत्यधिक मात्रामें रक्त आता है। श्वास कष्ट इतना बढ़ जाता है कि रातको नींद नहीं आती। नाड़ीकी गति अनियमित एवं तीव्र होती है। तापक्रम साधारण वा कुछ अधिक रहता है।

श्वासकष्ट दिन दिन बढ़ता जाता है, रोगीकी अवस्था बुरी होती जाती है, और वह तीन चार दिनोंमें कालकवलित हो जाता है। किसी प्रकारकी चिकित्सा लाभदायक नहीं होगी।

इस प्रकारका रक्तक्षरण बहुत कम देखा जाता है।

(४) अन्य रोगोंके साथ साथ रक्तक्षरण।

रक्त विकृतिके साथ २ रक्तक्षरण भयावह होता है।

मूत्रकृच्छ्र संकुचित गर्त्तको पुनः उजाड़ देता है।

गठियावात, गोटी, ओषधियों द्वारा शरीरका विषाक्त होना इत्यादि रक्तक्षरण उपस्थित कर देते हैं।

(५) रजस्वला स्त्रियोंका रक्तक्षरण।

ऋतु-समाप्तिके साथ साथ यह लक्षण भी बहुधा लुप्त हो जाता है।

(६) फुफ्फुस पत्थरों (अंगविकृति-निर्मित पत्थर—Calculi) के कारण रक्तक्षरण।

इस अवस्थामें निदान कठिन है। यदि वास्तविक स्थितिका पता लग जाय और सभी तरहकी चिकित्सायें असफल हों तो टुवर्कुलिन द्वारा चिकित्साकी चेष्टा की जा सकती है।

(७) उन्माद जनित (Hysterical) रक्तक्षरण।

रोगी बहुधा स्त्रियां ही होती हैं। उनमें पहलेसे भी हिस्टीरियाका आक्रमण होता रहता है। रक्तक्षरण अधिक होता है, किन्तु अन्य लक्षण उसी मात्रामें नहीं रहते। रोगी बहुधा लापरवाही दिखाते हैं तथा इस दुर्घटनाका वर्णन करते हुए शाबासी लूटना चाहते हैं।

निदान कठिन होता है, किन्तु इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि रोग वास्तवमें यक्ष्मा हो सकता है।

---

* यदि इसके विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण नहीं हो तब।

चिकित्सा

रक्तक्षरण बन्द होनेकी प्राकृतिक रीतियां।

ज्योंही कोई रक्तनलिका फटती है त्योंही उससे निर्गत रक्त जम कर छिछड़ा बन जाता है। फाइब्रिन फटे हुए अंश पर परत का सा जम जाता है। अन्तमें रक्तनलिका अवरुद्ध हो जाती है और रक्तका छिछड़ा उससे चिपका रह जाता है।

किन्तु फुफ्फुसके रक्तक्षरणमें ये घटनायें नहीं घटने पातीं। रक्त जम जाता है अवश्य किन्तु इसका कुछ अंश किसी श्वासनलिकामें पड़कर जमता है। इस नलिकामें जमा हुआ रक्त इसके उत्तेजकका काम करता है, जिससे खांसी होती है और खांसनेके साथ साथ सारा छिछड़ा बाहर निकल जाता है तथा पुनः रक्तक्षरण होने लगता है। अस्तु, यदि रक्तक्षरण कुछ कालके लिए बन्द हो गया हो, तो यह अधिक सम्भव है कि यह उपस्थित होगा। यदि लगातार चार पाँच दिनों तक रक्तक्षरण बन्द रह जाय तो अनुमानतः यह बन्द रह जायगा।

एक और कारण है। जिस स्थानमें रक्तक्षरण होता है, फुफ्फुसका वह अंश बहुधा रोगग्रस्त रहता है तथा उसके आसपासकी नलिकाओंमें अधिक रक्त-सञ्चार होता रहता है, जिससे प्रकृत रूपमें रक्तक्षरण बन्द होनेमें असुविधा होती है।

अस्तु, चिकित्साका उद्देश्य यह होना चाहिए कि रक्तक्षरण तुरन्त बन्द हो जाय तथा इसके पुनः प्रादुर्भूत होनेकी सम्भावना बहुत कम हो जाय।

पूर्ण विश्राम (Absolute Rest)

रोगीको शय्या पर निश्चेष्ट पड़े रहना चाहिए। बातचीत करना भी अनुचित है। वक्षस्थल शिर इत्यादि तकियेके सहारे कुछ उठे रहें तो अच्छा होगा।

खांसी।

बार बार खांसी होनेसे रक्तक्षरण होता है, किन्तु खांसीको बहुत शीघ्र बन्द करना अनुचित है, क्योंकि ओषधियोंके प्रयोगसे खांसी यद्यपि एकदम बन्द कर दी जा सकती है, तथापि फुफ्फुसमें रक्तक्षरण एवं श्वासनलिकाओंमें रक्तके छिछड़ा बननेकी चेष्टायें होती ही रहती हैं। यह छिछड़ा इतना बड़ा हो जा सकता है, अथवा इतनी तीव्र उत्तेजना उत्पन्न कर सकता है कि सारी ओषधियां व्यर्थ हो जाती हैं, तथा पुनरपि ज़ोरकी खांसी होती है, जिससे रक्तक्षरण होने लगता है, अथवा श्वासावरोध होता है, अथवा फुफ्फुस-प्रदाहकी सम्भावना हो जाती है। तथापि खाँसीको कुछ कम कर देना ही उचित है। इसके लिए क्षुद्रमात्राओंमें कोडेन दिया जा सकता है, इससे खांसी कुछ कम हो जायगी।

फुफ्फुसस्थ रक्तनलिकाओंका संकोचन

(क) शीत रक्तनलिकाओंको संकुचित करता है। अस्तु, बर्फके टुकड़ोंको रबरकी थैलीमें बन्द कर वक्षस्थल पर रक्खा जा सकता है। थैलीको लगातार दो तीन घण्टों तक रख कर कुछ क्षणके लिए हटा दिया जाता है, तथा पुनः उसी प्रकार रक्खा जाता है। बर्फसे हृदयको भी कुछ शान्ति मिलती है, जिससे फुफ्फुसकी रक्तनलिकाओंमें रक्त दबाव कुछ कम हो जाता है। किन्तु इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि बर्फ छिछड़ा जमनेमें बाधा देती है। अस्तु, यदि इससे अधिक लाभ न होता हो— रक्तक्षरणके बाद होनेकी सम्भावना नहीं दीख पड़े, अथवा यदि वक्षस्थलकी दीवारें बहुत पतली हों, अथवा यक्ष्माक्षत वक्षकी दीवारसे बहुत सटा हुआ हो तो बर्फका व्यवहार करना अनुचित होगा।

(ख) बर्फके टुकड़े निगलनेसे भी खांसी कुछ कम हो जाती है। किन्तु अधिक देर तक बर्फ निगलनेसे कंठमें प्रदाह होता है। अतएव यदि बर्फ के बिना भी काम चल सके तो इसका व्यवहार करना उचित नहीं है।

फुफ्फुसके अतिरिक्त शरीरके अन्य भागोंमें रक्तनलिकाओं का स्फालनः—

इससे फुफ्फुसका रक्त-दबाव कम हो जाता है, तथा प्रथमावस्थाका रक्तक्षरण बन्द हो जाता है। इसके लिए राई (सरसों)* का लेप दोनों तलवों में लगाना उचित है।

ओषधियोंका प्रयोग।

रक्त-क्षरणके लिए जो ओषधियां दी जाती हैं, वे तीन प्रकारकी हैं।

(क) एक वे, जो रक्तनलिकाओंको संकुचित कर रक्तक्षरण बन्द करनेमें सहायता करती हैं, किन्तु इनके बहुतसे दोष हैं, यथा इनकी क्रियायें स्थायी नहीं होतीं, तथा प्रतिक्रियायें भीषण हो सकती हैं। इनका कभी कभी विषाक्त प्रभाव भी पड़ता है। अस्तु, इनका प्रयोग नहीं करना ही उचित है।

(ख) वे ओषधियाँ जो रक्तके छिछड़ा बननेमें सहायता करती हैं, इनके लिए अनेकों ओषधियां दी जाती हैं, किन्तु खटिक हरिद सर्वश्रेष्ठ है।

७½ ग्रेन खटिक हरिद १० शतांशमीटर स्रवित कीटाणु विहीन जलमें घोल कर सुई द्वारा शिरामें (Intravenous) प्रवेश कराया जाता है, आवश्यकतानुसार इसी चिकित्साको दुहराया जाता है। साथ साथ निम्नलिखित खटिकका घोल मुख द्वारा खिलाया जा सकता है—

* राईको जलके साथ पीस कर उसका लेप किया जाता है। जिस स्थानमें यह लेप चढ़ाया जाता है, उस स्थानकी रक्तनलिकायें स्फालित हो जाती हैं। किन्तु एक साथ ५ मिनट से अधिक इसको एक ही स्थानमें लगाये रखना हानिकर होता है।

खटिक हरिद	...	१५ ग्रेन
खटिक दुग्धेत	...	३० ग्रेन
जल	...	१ आउंस तक

एक मात्राके लिए।

इनकी तीन मात्रायें दिनमें दी जा सकती हैं। अथवा यदि मानसिक उत्तेजना अधिक हो तो खटिक इस प्रकार दिया जा सकता है—

खटिक दुग्धेत	...	३० ग्रेन
कोडेन	...	¼ ग्रेन

चूर्ण कर मात्राके लिए

सारे दिनमें इस प्रकारकी तीन मात्रायें दी जा सकती हैं।

(ग) तीसरे प्रकारकी वे ओषधियां हैं जो केवल अन्दाज़ से दी जाती हैं, और जिनका फलाफल विश्वसनीय नहीं होता। ऐसी ओषधियां भी बहुधा त्याज्य हैं।

अन्य साधनोंमें फुफ्फुसावरण गर्त्तमें वायु-प्रवेश करानेका एक विशेष स्थान है (चिकित्सा प्रकरण देखिये)। कभी कभी वक्षस्थलको कस कर बांध देनेसे भी रक्तक्षरण बन्द हो जाता है।

रक्तक्षरणके समय आहार

रोगीके आहारका विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। केवल तरल पदार्थ ही भोजनके लिए दिए जा सकते हैं। जब तक रक्तक्षरण बन्द होनेकी सम्भावना न हो, केवल फलोंके रस (नारंगियां, अनार इत्यादि बहुत उपादेय हैं) और दूध दिया जा सकता है। क्रमशः आहारमें कुछ परिवर्तन किया जा सकता है। पावरोटीका एक टुकड़ा दूधमें मिला कर अथवा खूब सिझा हुआ भात (थोड़ा सा) दूध केसाथ वा तरकारियों अथवा मांसके झोलके के साथ दिया जा सकता है।

सर्वोपरि रक्तक्षरणकी चिकित्सा करनेके बदले रक्तक्षरणसे बचानेकी ही अधिक चेष्टा होनी चाहिए। अथच इसकी चिकित्साके लिए यथासम्भव कम ओषधियोंका प्रयोग करना श्रेयस्कर है।

किरण-चित्र-दर्शताके निर्माता

Makers of Spectr o Scopy

[ले० श्री आत्माराम एस० एस-सी०]

यह प्रायः सभी वैज्ञानिक जानते होंगे कि किरण चित्र (Spectrum) क्या है। यदि साधारण प्रकाशकी कोई किरण किसी त्रिपार्श्व पर डाली जाय तो सफेद बिम्ब होनेके बजाय रङ्ग बिरङ्गा बिम्ब दिखाई पड़ता है। इस बातको जताने वाला विश्व विख्यात भौतिकाचार्य्य सर आइजक न्यूटन था। उसने इस बिम्बका नाम किरण-चित्र रक्खा। इसमें सात रङ्ग होते हैं। त्रिपार्श्वके इस स्वभाव ने हमारे ज्ञान की पूंजीमें एक बड़ा ही महत्वपूर्ण भाग लिया है। इस गुणके रसायन विद्यामें प्रयोग करने वाले जर्मनीके दो महापुरुष थे, राबर्ट विलयम बुनसन और प्रो० करशाफ। रसायन और भौतिक शास्त्र सर्वदा इस सदुप्रयोगके लिये इन दोनों महर्षियोंके ऋणी रहेंगे। बुनसन और करशाफ ने बतलाया कि यदि किसी धातुके लवणको ज्वालामें रक्खा जाये और इस ज्वालाकी किरण त्रिपार्श्व पर डाली जाय तो वैसा बिम्ब नहीं मिलता जैसा कि साधारण प्रकाशकी किरणसे मिलता है। इसमें सात रङ्ग पास पास नहीं होते बल्कि मुख्य मुख्य रङ्गोंकी रेखायें और उनके बीच बीचमें अंधेरा मण्डल होता है। यह रेखायें तत्त्वका स्वभाविक गुण है; अर्थात् प्रत्येक तत्त्व अपनी रेखायें पृथक् पृथक् देता है दो तत्त्वोंकी रेखा एक नहीं हो सकती। इसी गुणके आधार पर बुनसन और करशाफ ने खनिज जलमें दो नये तत्व निकाले जिनका नाम लालम् और व्योमम् है, बस यहींसे किरण-चित्र-दर्शता की नींव पड़ी। बुनसन और करशाफके इस जगत् प्रसिद्ध अनुसन्धानके उपरान्त सर विलयम क्रुक्स ने थैलम्को इसी प्रकार ज्ञात किया। सर हेनरी रास्को ने इसी को प्रयोग बलदम्के साथ किया, क्योंकि यह सब महानुभाव एक ही समयमें हुये हैं, इसलिये इनको किरण-चित्र-दर्शताका निर्माणकर्त्ता कहा जा सकता है। अब तो यह विज्ञान इतना बढ़ गया है कि भौतिक शास्त्रका एक मुख्य भाग ही हो गया है। आधेसे अधिक तत्व इसकी ही सहायतासे निकाले गये हैं। पाठक अब समझ गये होंगे कि किरण-चित्र-दर्शता ने किस प्रकार और किस सीमा तक हमारे ज्ञान को बढ़ाया है। यहाँ पर इन लोगोंके अनुसन्धानों का वर्णन करनेकी चेष्टाकी जायगी जिससे यह विदित होगा कि हम इन व्यक्तियों के कितने ऋणी हैं।

राबर्ट विलयम बुनसन

[सन् १८११—१८९९ ई०]

इस संसारमें प्रत्येक व्यक्ति ने जिसको रसायन और भौतिकसे कुछ भी परिचय है, बुनसनका नाम अवश्य सुना होगा। उसके आविष्कार ऐसे गूढ़ और सर्वप्रिय हैं—कि किसी की आंखोंसे बच कर नहीं जा सकते। इस महान आत्मा ने ३१ मार्च सन् १८११ को गोटिंजनमें जन्म लिया। इनका पिता क्रिशचियन बुनसन गोटिंजन विश्वविद्यालय में प्रधान पुस्तकाध्यक्ष था और साथ साथ वर्तमान भाषा-विज्ञानका अध्यापक भी था। हनोवरमें प्रारम्भिक शिक्षा पानेके पश्चात् १८२८ में बुनसन विश्वविद्यालय में भेजा गया वहां बुनसन को स्ट्रोमेयरकी अध्यक्षतामें कार्य्य करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसने सन्दस्तम्को ज्ञात किया था, और १८३० में उपाधि पाई। इसके पश्चात् बुनसन ने पेरिसकी यात्राकी और वहां पर रेनो पेलूज और डेसप्रेज जैसे वैज्ञानिकोंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त किया। इसी प्रकार वाइना और बर्लिन के विश्वविद्यालयों में घूम कर बुनसन १८३४ में गोटिंजन लौट आया और यहीं पर विश्वविद्यालय ने उसे रसायन विभागमें सहायककर्त्ता (Privat dozent) के पद पर नियुक्त किया। स्ट्रोमेयरकी मृत्युके उपरान्त बुनसन कुछ दिनों तक उसके

स्थान पर काम करता रहा। जनवरी १८३६ में बुनसन कासेलके पालीटेकनीक स्कूलमें वोलरके पद पर नियुक्त हुआ और १८३९ में विशेष अध्यापक हो कर मारवर्ग विश्वविद्यालयमें गया। १८४२ में विश्वविद्यालय ने उसे प्रधान अध्यापक बना दिया, इस पदको बुनसन ने १८५१ तक सम्मानित किया। सन् १८५२में हाइडेलवर्ग विश्वविद्यालयमें मुख्य अध्यापक के पदको स्वीकार किया और जीवन पर्यन्त इसी गद्दीको सुशोभित किया। इस प्रकार बुनसन ने ५६ वर्ष तक विज्ञानकी पूर्णरूपसे सेवाकी, जिसके कारण उसका नाम जब तक यह विज्ञान इस संसारमें जीवित है जीवित रहेगा। १९ वीं शताब्दीके सबसे बड़े रसायनज्ञोंमें उसका नाम गिना जाता है।

बुनसनके अनुसन्धान इतने विस्तृत हैं कि इस स्थान पर केवल मुख्य मुख्य बातोंका वर्णन करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता।

सर्व प्रथम कार्य्य जिससे बुनसन को रासायनिक जगतमें मान मिला ताजे अवक्षेपित लोह—ओषिद पर था, जो संक्षीणम् विषके लिये विषनाशक सिद्ध हुई। इसके मिल जानेसे संक्षीणम् विष पानीमें नहीं घुलता। इस अनुसन्धानसे रसायनको और विशेष कर जनताको जो लाभ पहुँचा है उसका अनुभव पाठक स्वयं हो लगा सकते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि बुनसनसे पहिले संक्षीणम् विषके लिये कोई विषनाशक विदित न था।

इसके पश्चात् बुनसनकी मनोवृत्ति भूगर्भ शास्त्र की ओर प्रेरित हुई, जिसमें यह अपने जीवन काल में अधिक निपुण हो गया था। बोनके पास लिगनाइट (Lignite) तलमें से जो पेलोफेन निकलती है, बुनसन ने उसका विश्लेषण किया, जिससे भूगर्भ शास्त्रमें बड़ी सहायता मिली है।

बुनसनने एक बड़े रसायनिक महत्वका कार्य्य द्विश्यामिद पर किया। उसने केवल इनके संगठन को ही नहीं बतलाया बल्कि इनका सम्बन्ध दूसरे और ऐसे यौगिकोंके साथमें विस्तार पूर्वक समझाया। उसने इनके रवे भी बनाये और इनके स्वभावको भी देखा। इन सब प्रयोगोंसे बुनसन ने अमोनियम लोहीश्यामिद और पांशुज लोही श्यामिद में समपरिवर्तनता स्थापित की।

पहला अनुसन्धान जिससे कि बुनसन की वैज्ञानिक कुशलता विदित हुई केकोडील यौगिकों पर था; जो उसने १८३७ में कासेलमें आरम्भ किये थे और जिनको वह मारवर्ग विश्वविद्यालयमें भी करता रहा। इन अनुसन्धानोंका महत्व जनानेके लिये उस समयके बड़े रसायनज्ञोंको सम्मति यहां दी जाती है। उस समयके रसायनिक नेता बरजीलियस की सम्मति का अनुवाद जो उन्होंने अपनी पत्रिका (Jahresbericht) में प्रकाशित की थी, नीचे दिया जाता है। पाठकों को जानना चाहिये कि बरजीलियस वैज्ञानिक तर्क वितर्कमें प्रथम स्थान रखते थे। छोटे वैज्ञानिक तो उनके नामसे ही घबरा जाते थे। रसायनिक क्षेत्रका उनको परशुराम कहा जा सकता है। उनका कथन था :—

"बुनसन ने एक बड़ा ही महत्व पूर्ण कार्य्य केकोडील यौगिकों पर किया है, जो कि अनार्द्र पांशुज सिरकेत को संक्षीणसाम्लके साथ गरम करनेसे बनता है। इससे बुनसन ने बहुतसे यौगिक बनाये हैं, जिनका स्वभाव कार्बनिक यौगिकोंसे अधिक समानता रखता है। साथ ही साथ इन यौगिकोंमें संक्षीणम् एक तत्वके समान रहता है। इस अनुसन्धानसे बुनसन ने वैज्ञानिक जगत्में अपना नाम सर्वदाके लिये अमर कर दिया है। रसायन शास्त्र उसका बड़ा ऋणी हो गया है। यह विषय इतना महत्वपूर्ण और भयानक था कि साधारण मनुष्यकी तो इसे छूनेकी भी सामर्थ्य नहीं हो सकती। यौगिक मूलके सिद्धान्तकी यह अनुसन्धान एक नींव है।"

बुनसनको केकोडील पर कार्य्य करने में बड़ी बड़ी मुसीबतोंका सामना करना पड़ा। एक बार उसकी आंख तो बिल्कुल ही बेकार हो चुकी थी और दूसरी बार उसको विषका असर हो ही चुका था। इस दुःखके कारण वह बहुत दिनों तक जीवन और मृत्युके बीचमें ही पड़ा रहा। इसके पश्चात् जैसा कि पाठक जानते होंगे फ्रैंकलैंड और ग्रिगनार्ड ने धात्विक कार्बनिक यौगिक बना कर रसायन यौगिकोंका विस्तार किया।

बुनसन ने लोहेकी भट्टियोंसे जो गैसें निकलती हैं, उनकी बड़ी ही चतुरतासे परीक्षा की। उस समय गैसोंका घनत्व तथा आयतन नापनेकी प्रणालियां बड़ी भद्दी थीं। परन्तु बुनसन ने १८४४ तक केवल अपने गैसोमेट्रिक प्रयोग ही ठीक नहीं किये बल्कि साथ साथ उसने इनका प्रयोग और भी कई व्यापारिक विधियोंमें किया, जैसे लोहेका वात भट्टीसे उत्पन्न करना। इस अनुसन्धानसे संसार ने जो लाभ उठाया है, अकथनीय है। बुनसनको गैसों पर प्रयोग करनेकी बड़ी चाह रहती थी। इस अनुसन्धानमें जो चतुरता और दृढ़ता बुनसन ने दिखाई वह कदापि प्रत्येक मनुष्यके भागमें नहीं आ सकती। चिमनियोंसे जो गैस निकलती थीं वह अधिकतर खराब हो जाती थीं। बुनसन ने अपने प्रयोगों के आधार पर इसके लिये भी एक विधि बतलाई जिससे बहुत लाभ हुआ। इससे जो ताप बेकार जाता था काममें लाया गया और इस प्रकार कला कौशलको अधिक लाभ पहुँचा।

बुनसनके जगत विख्यात अनुसन्धानोंमें कर्बनदस्तम् बाटरीका आविष्कार भी है, जोकि उसने कम व्यय पर विद्युत् प्राप्त करनेके लिये १८४१ में किया। इससे केवल व्यय ही नहीं घट गया बल्कि विद्युत् धाराके प्रवाहका समय भी बढ़ गया। विद्युत् धारा द्वारा प्रकाशके लिये प्रयोग बताने वाला पहिला व्यक्ति बुनसन ही था। उसने ही विद्युत् बत्तीकी नींव डाली थी, कि किस प्रकार दो कर्बनके छड़ एक कांचके बल्बमें बन्द करके प्रकाशका काम दे सकते हैं। बुनसन ने अपनी बाटरीकी सहायतासे दस्तम् और जल का विद्युत् रसायनिक भार निकाला। इन प्रयोगोंसे फैरेडेके नियमोंका प्रमाण मिलता है। बुनसन ने अपनी बाटरीसे धातु तैय्यार करनेकी भी चेष्टा की थी, जैसे मगनीसम्। जिसके लिये डेवी ने बहुतसे प्रयोग किये थे परन्तु कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। इस प्रकार धातुको प्राप्त करके बुनसन ने इसके रसायनिक व भौतिक स्वभावोंकी परीक्षा की। केवल उसने यह बाटरी ही नहीं बनाई बल्कि उसने ताम्र पाइराइट और ताम्रम् से ताप-युगल-समूह भी बनाया, जिसका बहुत प्रयोग हुआ है।

१८४४ में बुनसन ने तैल बिन्दु प्रकाश-मापक का आविष्कार किया, इस यंत्र में एक कागजके बीचमें एक तैल-बिन्दु लगा दिया जाता है, और एक ओर जाने हुये बत्ती-बलका लैम्प रक्खा जाता है, दूसरी ओर जिसका बल निकालना हो उसे रखते हैं। इस यन्त्रके विषयमें जर्मनीके राजकुमार फ्रेड्रिक ने कहा था कि आज मुझे तैल बिन्दुका मोल ज्ञात हुआ है। अब तक मैं इसे बेकार ही जानता था।

भौतिक विज्ञानके क्षेत्रमें सबसे बड़ा कार्य्य हिम और भापकलारी-मापकका बनाना बुनसन का ही काम है। जो चतुरता और निपुणता इस कार्य्यमें दिखाई वह तो सबके मनको मोह लेती है। इनके बनानेका अभिप्राय चीजोंका आपेक्षिक ताप निकालना था, जो कि कम संख्यामें मिलती थीं, और जिनके लिये साधारण कलारी मापक बेकार थे। उस समय नीलम्, सूजकम्, लीनम् इत्यादि का विशिष्टताप निकालना अधिक कठिन समझा जाता था। इस कार्य्यको पूरा करनेके लिये बुनसन ने अपना कलारीमापक बनाया। इन यन्त्रोंका वर्णन यहां देना विशेष आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति उनको भली भांति जानता है। वे बुनसन हिम कलारी मापक और भाप कलारी मापक के नामसे विख्यात हैं। यह कार्य्य १८७० में हुआ।

पाठकोंको विदित होगा कि किस प्रकार डूलांग और पेटिट नियमके प्रयोगसे आपेक्षिक ताप जानकर किसी तत्त्वका परमाणु भार निकाला जा सकता है। जब इन तत्वोंका जिनके नाम ऊपर दिये हुये हैं, आपेक्षिक ताप बुनसन कलारी मापक द्वारा विदित हो गया, तो उनका परमाणु भार निकाल लिया गया। साथ ही साथ बहुतसे यौगिकोंके सूत्र भी ठीक किये गये। यह बुनसनके एक मुख्य अनुसन्धानोंमें से है।

बुनसनकी यान्त्रिक निपुणता तो जगत्को भले प्रकारसे विदित है। बुनसन-दग्धक भी जो हम रात दिन काममें लाते हैं और संसारकी कोई प्रयोगशाला ऐसी नहीं है जिसमें कि यह यन्त्र न पहुँच गया हो, उसीके हाथोंकी करामात है। देखने में कितना साधारण परन्तु काममें सबसे ज्यादा जैसा उर्दूमें कहा है (कम खर्च वाला नशीं)।

सन १८५५ ई० भौतिक रसायन अथवा प्रकाश रसायनमें बुनसन ने रास्कोके साथ जो कार्य्य किया वह एक प्रकारसे नींवके समान है, जैसा कि महापुरुषों ने कहा है। यह कार्य्य उद्जन और हरिन्का प्रकाशकी उपस्थितिमें मिलना है। यद्यपि यह कार्य्य गैलुसाक, थेनार्ड, ड्रेपर इत्यादि वैज्ञानिकों ने किया था, परन्तु बुनसन ने इसको बड़ा महत्व पूर्ण बतलाया है। किरण-शक्ति-मापक (Actinometer) जो कि ड्रेपर ने इस प्रक्रियाको करनेके लिये बनाया था, बुनसन व रास्कोके हाथों ही पूर्णताको प्राप्त हुआ। इस यन्त्रके द्वारा प्रकाश रसायनिक कियाओंके नियम बड़ी बड़ी कठिनाइयों पर विजय पाकर इन दोनों व्यक्तियों ने बनाये।

एक बड़ी महत्व की बात इस प्रक्रियामें इन्होंने "प्रकाश रासायनिक आवेश", बताई। इसका अर्थ यह है कि जिस समय प्रकाश इन दोनों गैसों पर पड़ता है, उसी समय से प्रक्रिया पूरे रूपसे आरम्भ नहीं होती परन्तु उसे कुछ समय लगता है। इसका नाम प्रकाश-रासायनिक आवेशका समय रक्खा गया। लहर लम्बाई और रासायनिक प्रक्रियाका सम्बन्ध भी समझाया गया है। यह बुनसनका सबसे बड़ा कार्य्य कहा जा सकता है।

प्रकाश-चित्र-विश्लेषण पर बुनसन का कार्य्य पहिले ही कहा जा चुका है; यह एक वह अनुसन्धान है जिसके लिये भौतिक और रसायन शास्त्र बुनसन और करशाफके ऋणी रहेंगे। इस विषय पर पहिले ही कहा जा चुका है, इसलिये यहां पर और कुछ न कहेंगे। पाठक स्वयं ही इसका पता लगा सकते हैं। १८७५ में बुनसन ने दुष्प्राप्य पार्थिव धातुओंके तड़ित्-किरण-चित्रों पर कई लेख प्रकाशित किये। एक बड़ी विचित्र घटना बुनसनके साथ इन अनुसंधानोंके प्रकाशित करनेमें हुई, जैसी न्यूटनके साथ हुई थी। एक रोज वह अपने लेख मेज़ पर रक्खे छोड़ गया। वहां पानीसे भरी बोतल रखी हुई थी। जो प्रकाश खिड़कीके द्वारा पानीसे भरी हुई बोतल पर पड़ा उसकी सब किरणें एक बिन्दु पर इकट्ठा हो गईं, क्योंकि बोतल ने तालका काम किया। इन किरणोंसे इतना ताप उत्पन्न हो गया कि सब कागज जल गये। इससे बुनसनको बड़ी कठिनाई पड़ी।

अब कुछ बुनसनके उन अनुसन्धानोंका वर्णन किया जायगा जो कि उसने भूगर्भ शास्त्रके क्षेत्रमें किये। आइसलैण्डमें ज्वाला मुखीके फटने पर उसने महत्व पूर्ण कार्य्य किया। डेनमार्क सरकार ने वैज्ञानिकोंकी एक टोली इस कार्य्यके लिये भेजी थी। उसमें बुनसनको भी आइसलैंड भेजा गया। बुनसन ने जो काम इस टोलीमें किया उसका पूरा वर्णन देना कठिन है। उसने जलके ताप पर भी काम किया था। उसका कहना था कि किसी भी दशामें पानीका ताप उबलने वाले शतांश तक नहीं पहुँचता।

तत्वोंके ऊपर बुनसनके एक और कार्य्यको ओर भी दृष्टि डालनी चाहिये। यहां पर उसने तत्वों

के पृथक् करनेमें जो वैज्ञानिक निपुणता दिखाई उसका तो अनुमान करना भी अत्यन्त कठिन जान पड़ता है। उसने इस प्रक्रियाका वर्णन अपनी पुस्तकमें किया है। उसमें बतलाया है कि किस प्रकार (१) परोप्यम् और पैलादम् (२) रुथेनम् का पृथक् करना (३) इन्द्रम् और ओड्म् का विभाजन (४) ओड्मके यौगिकोंका बनाना। क्या इस कामको करने वाला आदमी एक बड़ा पुरुष न होगा। लिखनेमें तो यह बातें छोटी ही सी विदित होती हैं परन्तु यदि वास्तवमें देखा जाय तो इनके करनेमें बड़ी ही चतुरता और धैर्य्यकी आवश्यकता है, जो बुनसनमें जन्म ही से थी।

एक और कार्य्य यहां कहा जायगा। बुनसन ने बारूद के ऊपर भी एक मुख्य कार्य्य किया है। बहुत समयसे रसायनज्ञ उन प्रक्रियाओंको, जो बारूद फटने पर होती हैं, समझानेकी चेष्टा कर रहे थे, परन्तु इसका श्रेय बुनसन को ही है। इसका समर्थन विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक नोबेल ने किया था। बुनसन कांचके यन्त्र बनानेकी क्रियामें एक ही था। उसके समान कांच फूकने वाला उसके समयमें कोई नहीं था। वह गरम कांचको हाथसे पकड़ लेता था।

दूसरी सेवा बुनसन ने गैसोमेट्रिक क्रियाओं पर एक पुस्तक लिख कर की। उसको पुस्तकें लिखनेका अधिक शौक नहीं था परन्तु यह पुस्तक बड़े ही महत्व की है, जिससे उसका नाम सर्वदाके लिये जीवित है।

बुनसन अपनी सारी अवस्था क्वांरा रहा। वह तो अपने शिष्योंको ही अपना बेटा और पोता समझता था। उसके शिष्य उसको बाबा बुनसन कहते थे उसका व्योहार वह ही जान सकते हैं, जिन्होंने कि उसका स्वाद चखा है। वास्तवमें उसको अपने समय का सबसे बड़ा रसायनज्ञ कह सकते हैं। वह १८४२ में केमिकल सोसाइटीका सदस्य हुआ। १८५८ में रायल सोसाइटी ने अपना सदस्य चुन कर सम्मानित किया। १८६० में रायल सोसाइटी ने अपना सबसे बड़ा पदक 'कापले-पदक' प्रदान किया। १८६० में बुनसन और करशाफ को डेवी-पदक मिला। यह डेवी-पदकका पहिला ही प्रदान था। १८९८ में मृत्यु के १ वर्ष पहिले रायल सोसाइटी आफ आर्ट्स ने एेलबर्ट पदक प्रदान करके बुनसनके अनुसन्धानोंकी प्रशंसा का परिचय दिया। १८८९ में बुनसन अपनी गद्दीसे अलग हुआ। मृत्यु तक बुनसन अपने कार्य्यमें लगा रहा, यद्यपि उसकी कान और आंखों ने जवाब दे दिया था, तो भी उसे हार्दिक आनन्द तो विज्ञानके कार्य्यमें ही होता था। बुनसन किसी देशके लोगों से द्वेष नहीं रखता था, जैसा कि ज्ञात होगा कि उसके बड़े मित्र ब्रिटिश ही थे जैसे रासको इत्यादि। अन्तमें १६ अगस्त १८९९ को काल चक्र में पड़ कर इस संसारसे सर्वदाके लिये गमन किया। उसकी मृत्युसे वैज्ञानिक जगत् में जो कमी हुई है वह कभी पूरी नहीं हो सकती। वह सचमुच एक वैज्ञानिक था।

सर विलियम क्रूक्स
[१८३२—१९१९]

भौतिक व रसायन शास्त्रके पढ़ने वालोंमें ऐसे बिरले ही मिलेंगे जो क्रुकसके नामसे परिचित न हों। विज्ञान क्षेत्रमें ऐसे बहुत हुये हैं जिन्होंने इतने अधिक समय तक वैज्ञानिक सेवायेंकी। क्रुक्स ने ने ६७ वर्ष तक वैज्ञानिक अनुसन्धानों पर लेख लिखे। पाठक इस ही बातसे अनुमान लगा सकते हैं, कि इस कार्य्यका करने वाला कितना बड़ा व्यक्ति होगा। क्रुक्सकी जीवनीको इतनी सी जगह में लिखना बड़ा ही कठिन होगा। यहां पर केवल वही मुख्य बातें जिनसे कि क्रुकसका नाम सर्वदा वैज्ञानिक संसारमें जीवित रहेगा लिखी जांयगी।

इस महापुरुषका जन्म १७ जून सन् १८३२ ई० को हुआ। इसके पिताका नाम जासेफ क्रुक्स था

जिनका जन्म १७६२ में हुआ था। इसकी माता का नाम मेरी स्काट था। क्रुक्स अधिकतर अपनी मातासे मिलता था, और उसके स्वभावमें माताका ही प्रभाव अधिक पड़ा था। अपने बचपनमें क्रुक्स ने कोई मुख्य शिक्षा नहीं पाई थी। उसके पिता ने चाहा कि वह शिल्पका कार्य्य करे, परन्तु क्रुक्सको प्रयोग करना अधिक मनोरञ्जक प्रतीत होता था। इसी विचारसे वह प्रो० हाफमैनकी अध्यक्षतामें काम करनेके लिये रायल कालेज लन्दनमें चला गया। यहां पर १८५१ में क्रुक्स का पहिला लेख प्रकाशित हुआ। इस लेखका हाफमैन पर बड़ा असर पड़ा यहां तक कि उसने इसको जर्मनमें भी छपवाया। यहां पर वह हाफमैनका सहकारी नियत किया गया और १८५० ई० तक इस पद पर बड़े उत्साहके साथ कार्य्य करता रहा, और १८५५ में चेस्टर ट्रेनिंग कालेजमें अध्यापक नियुक्त हुआ।

सन् १८५६ में क्रुक्स ने अपना विवाह एलन हम्फरी नामकी एक नवयुवती स्त्री से किया जिसको वह पहिलेसे जानता था, पहिले ही से क्रुक्सको प्रकाश विज्ञानसे स्नेह था। उसने इस पर कुछ लेख भी लिखे थे। इसके कुछ दिनों पश्चात् बुनसन और करशाफ ने त्रिपार्श्व का महत्व तत्वों को पहचाननेमें जताया। यदि किसी धातुका लवण ज्वालामें रक्खा जाये और इस ज्वालासे जो प्रकाश होता है उसको त्रिपार्श्व पर फेंका जाय, तो बिम्ब में एक मुख्य रेखायें आती हैं जो कि केवल उसी तत्वसे सम्बन्ध रखती हैं। इस आदेशको ध्यानमें रखते हुये बुनसन और करशाफ ने डरकीम चश्मेके पानीमें लालम् तत्व निकाला था। क्रुक्स ने भी इस किरण-चित्र-दर्शकका प्रयोग किया। शशिम् धातु का एक खनिज जो कि क्रुक्सको हाफमैन ने दिया था क्रुक्सके पास था। उसने इसके साथ नये यन्त्र पर प्रयोग किये। क्रुक्स ने बिम्बमें एक हरी रेखा देखी और कहा कि यह नई रेखा किसी दूसरे तत्वकी है, जो अभी तक नहीं खोजा गया है। यह लेख "केमीकल न्यूज़" में ३० मार्च १८६१ में प्रकाशित हुआ, और इस तत्वका नाम थैलियम् रक्खा गया जिसको हिन्दीमें थैलम् कहते हैं। पहिले पहिल यह कहा गया कि यह नया तत्व गन्धकसे सम्बन्ध रखता है, परन्तु क्रुक्स इस बात को अधिक नहीं मानता था, इस तत्वको निकालने पर सर्वजातीय प्रदर्शिनी पर क्रुक्स को एक पदक मिला था।

इस नये तत्वके स्वभाव बड़े अनोखे थे, क्योंकि इसकी सूरत बिलकुल सीसम् जैसी होती है, और घनत्व भी इसीसे मिलता जुलता है। यही नहीं, बहुत सी बातों में इसके यौगिक क्षार धातुओंसे भी मिलते हैं। इस तत्वके निकालने से क्रुक्स वैज्ञानिक जगतमें विख्यात हो गया और १८६३ में जब वह ३१ वर्षका का था रायल सोसाइटीका का फेलो (F. R. S.) चुन लिया गया। इस तत्वको निकालनेके पश्चात् दूसरा कार्य्य इसका भौतिक व रसायनिक स्वभावोंको ज्ञात करना था। क्रुक्स ने इसका परमाणु-भार निकाला जिसमें उसको बड़ी ही सावधानतासे कार्य्य करना पड़ा। यह कार्य्य उसने थैल-नोषेत का संश्लेषण करके किया। तुला और तौल इत्यादि सब यन्त्र अधिक सावधानीसे ठीक किये गये। पाठकोंको यह विदित होना चाहिये कि क्रुक्स को ठीक से ठीक बात निकालनेमें ही हर्ष प्राप्त होता था। यही उसकी सबसे बड़ी जीत थी।

शून्यमें तोल का प्रयोग करने में एक और अद्भुत बात पर ध्यान पड़ा जिसमें कि क्रुक्स कई वर्ष तक लगा रहा और विकिरणमापक (Radiometer) के आविष्कार का कारण हुआ। इस आविष्कारकी सूचनाका लेख रायल सोसाइटी को २० मार्च १८७५ ई० को दिये गये। उसी वर्ष वार्षिक उत्सव पर क्रुक्सको रायल पदक प्रदान किया गया। पदक देते समय प्रधान ने क्रुक्सकी बहुत प्रशंसा की और इस यन्त्र की महिमाको बताया। इस यंत्रमें चार पतली पतली

पट्टियां एक सुईके आधार पर लगी रहती हैं; जो एक ओर काली और एक ओर सफेद होती हैं। इस यन्त्रके कार्य्यक्रमको समझानेके लिये बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने चेष्टा की। अन्तमें डा० जान्सटोन स्टोनी ने इस उलझनको हल किया और बताया, कि इन पट्टियोंका घूमना भीतर वाली गैसके अणुओं के कारण है, जो कि दोनों पट्टियों पर भिन्न भिन्न असर रखते हैं। गैसोंके स्वभावसे क्रुकसका पक्का विचार हो गया था कि यह प्रकृतिकी चौथी दशा है और बताया कि यह साधारण गैससे उतना ही अन्तर रखती है जैसा कि साधारण गैस द्रवसे रखती है।

गैसोंमें विद्युत् विसर्जनकी घटनाने क्रुकसको अधिक आकर्षित किया। यह एक बिलकुल साधारण बात थी जिस पर क्रुकसकी दृष्टि पड़नी आवश्यक थी। उसने प्रकृतिकी चौथी दशा पर फिर एक लेख लिखा। साथ साथ ऋणोदके पास अंधेरे मण्डल पर भी अपने विचार प्रगट किये, यह अंधेरा मण्डल ज्यों ज्यों शून्य बढ़ता जाये, बढ़ता है, और शीशोंकी दीवारों परकी दमक कम होती जाती है, और अन्तमें समाप्त हो जाती है। बिजलोदके पासका अंधेरा मंडल क्रुकसके नाम पर क्रुकस-अंधेरा-मंडल याश्यामपुट कहलाता है।

इसके पश्चात् क्रुकस ने शून्यित गैसोंके स्वभाव पर अधिक वेगसे कार्य्य आरम्भ कर दिया क्योंकि उसकी इच्छा तो प्रकृतिकी चौथी दशा पर इतनी प्रबल हो गई थी कि उसको हर समय यह दशा ही दिखाई देती थी, और साथ साथ में ऐसी गैसों की ताप-चालकता और स्निग्धता पर भी प्रयोग किये और उनका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। उसका यहभी कहना था कि ऋणोदसे जो कण निकलते हैं, वह आणविक दशामें होते हैं।

इसके बाद फिर उसने किरण-चित्र-दर्शकको उठाया और कुछ खनिजों पर कार्य्य आरम्भ किया जैसे 'इट्रिया'। इन सब अनुसन्धानोंसे क्रुकस ने तत्वोंके स्वभाव पर विचार प्रकट किये और "अर्ध तत्वों" का विचार किया, इससे यह बात निकली कि एक तत्वके सब परमाणु एक से नहीं होते। बल्कि उनका परमाणु-भार एक दूसरेसे कुछ ही अन्तर रखता है। उस समय यह विचार बड़ा ही अद्भुत और अवैज्ञानिक विदित होता था, परन्तु समय ने बता दिया, कि उसके विचार कहां तक ठीक थे। प्रो० ऐस्टनके समस्थानिक अर्ध-तत्वोंके विचारका पूरा प्रमाण दे रहे हैं। उस समय तक रश्मिशक्तिक विज्ञानका जन्म भी नहीं हुआ, जब कि क्रुकस ने ऐसे बड़े विचार की आलोचना की थी। धन्य है, उस मस्तिष्कको जिससे वैज्ञानिक विषय बिना किसी प्रमाणके ठीक ठीक रूपमें प्रगट होते थे। शून्यित गैसोंके प्रयोगों पर रायल सोसाइटी ने क्रुकस को डेवी पदक प्रदान किया।

१८८४ और १८९५ में आलसीम् और हिमजन के ज्ञात होनेसे एक नये क्षेत्रकी स्थापना हुई। यह दोनों गैसें क्रुकस को दी गई थीं क्योंकि वह तो उस समय इंगलिस्तान में किरण-चित्रणमें सर्वोपरि था, और उसके प्रयोगोंसे वायुमण्डल और बनाये हुये हिमजन की समानता पूर्णरूपसे मानली गई।

सर जासेफ जान टामसन ने ऋणोद किरणोंके स्वभावको भली प्रकार समझाया, और बतलाया कि इसके कण परमाणुओंसे भी छोटे होते हैं, और जिनको अब हम ऋणाणु कहते हैं। इस अनुसन्धानके पश्चात क्रुकस ने यह समझाया कि जिसको मैं विकिरण प्रकृति कहता था वास्तवमें ऋणाणु हैं।

रश्मि-शक्ति-विज्ञान के आविष्कार होने पर क्रुकस को अपने अनुसन्धानोंका एक बड़ा अच्छा अवसर मिला। उसने पिनाकम्के यौगिकों पर बड़ा महत्व पूर्ण कार्य्य किया और रश्मिम् के उत्पत्ति-पदार्थ पर क्रुकसने अपना कार्य्य आरम्भ कर दिया

और एक यंत्र निकाला जिसका नाम स्पिनथेरीस्कोप (Spinthariscope) रक्खा जिसके द्वारा सिनटीलेशन गिने जा सकते, हैं क्योंकि प्रत्येक एलफा कण एक तड़ित् उत्पन्न करता है। इस प्रकारके अनुसन्धानों में वह लग-भग बीस वर्ष लगा रहा। दुष्प्राप्य-पार्थिवों पर क्रुक्स ने अच्छे अनुसन्धान किये, विशेष कर स्कन्दम् पर जो कार्य्य किया वह अति-श्रेष्ठ है, जिसके कारण इस तत्व को ठीक स्थान मिला है। १९०८ में क्रुक्स ने इन्द्रम् और ओड्म् धातुके शीत्र स्वभाव को दर्शाया और १९१२ में परौप्यम् जातिकी धातुओंको आपेक्षिक-उड्नशीलता पर लेख प्रकाशित किये।

सन् १९०९ में क्रुक्स ने काँचके बनाने वाली सभा (Glass works Cataract Committee) के साथमें कार्य्य आरम्भ किया। इसके सम्मुख प्रस्तुत समया यह थी कि एक ऐसा कांच बनाया जावे जिसमें से गरम पिघले हुये कांचकी किरणें न निकल सकें क्योंकि इनसे कार्य्यकर्ताओंको बड़ी हानि होती थी। इस कारण बहुतसे औषिदों के स्वभाव पर कार्य्य किया गया क्योंकि कांच ऐसा होना चाहिये जिससे कि तापकिरण भी न जा सकें और न पराकासनी किरणें ही जा पायें। साथ ही साथ उसका रंग इतना कम होना चाहिये कि वह चश्मेके प्रयोगमें लाया जा सके। इस समस्या पर क्रुक्स ने बहुत कुछ प्रशंसनीय कार्य्य किया जिससे अधिक लाभ पहुंचा। उसकी विधि से बनाये गये कांच अब तक 'क्रुक्स ग्लास' कहलाते हैं।

वैज्ञानिक अनुसन्धानोंके अतिरिक्त क्रुक्स ने और भी बहुतसे कार्य्य किये, जिनसे उसकी कार्य्य करनेकी रुचि स्पष्ट है। जब वह नवयुवक ही था तो सरकार ने उसे कीटाणु-नाशक वस्तुओं पर रिपोर्ट लिखनेके लिये नियत किया, और किस प्रकार ऐसी वस्तुएँ पशुओंमें महामारीको रोक सकती हैं; उसने दिव्योलको कीटाणुनाशक वस्तु बतलाया और इसके प्रयोगको लिये समर्थन किया। क्रुक्सको हीरेके बनानेमें भी बड़ी रुचि थी, प्रो० मोआयसां के हीरा बनानेके पश्चात् क्रुक्स ने भी हीरा बनाया। यदि कारडाइटकी बची हुई वस्तु जो धमाका लगानेके पश्चात् रह जाती है, देखी जाये तो उसमें छोटे छोटे कण मिलते हैं? यह वास्तवमें हीरे होते हैं, यह क्रिया क्रुक्स ने ही निकाली है।

दूसरा कार्य्य जो कि इस महापुरुषके हाथोंसे हुआ जिसके लिये संसार उसका सदा ऋणी रहेगा, कृषिरसायन के सबन्धमें है। उसने बताया कि यदि पृथ्वीमें नोषेत इत्यादि नोषजनीय पदार्थ डाले जायें तो पृथ्वी उपजाऊ रह सकती है। ब्रिटिश ऐसोसियेशनकी सभामें जो ब्रिस्टलमें हुई थी, सभापति—भाषण देते समय "गेहूँ समस्या" पर अधिक ज़ोर दिया था, यद्यपि इसका कुछ विरोध हुआ परन्तु तब भी यह एक बिलकुल नई और गूढ़ बात थी।

क्रुक्सका जीवन चरित्र बिना उसके स्वभाव और व्यवहार पर कुछ कहे हुए पूरा नहीं हो सकता। वह अपने विचारों में बड़ा स्वतन्त्र तथा दृढ़ था। अपने जीवनमें क्रुक्स ने आत्मा के विषय पर भी अपने विचार प्रगट किये थे, वह स्वभावसे केवल उनहीं बातों को मानता था जो प्रयोगों द्वारा सिद्ध की जा सकती हैं। सद्व्यवहारों की तो मानो एक पूर्ण मूर्ति था। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं। जो उसके द्वारसे निराश होकर आया हो। इन बातोंके होते हुये भी यह न समझना चाहिये कि जनता उसे बिना विरोध किये छोड़ देती थी। उस पर कभी कभी बड़े बड़े आक्रमण होते थे परन्तु जिस बातका उसको पूर्ण विश्वास होता था वह कभी कभी किसी के कहने सुननेसे नहीं बदलता था। अब यह विदित होता जाता है कि बहुत सी बातें जिन पर उसका विरोध किया जाता था ठीक सिद्ध हो रही हैं, अर्थात् विरोध केवल विरोधके लिये ही किया जाता था।

जो जो पुरस्कार या प्रतिष्ठायें क्रुक्स को प्राप्त हुईं उनका वर्णन यहां पर करना बड़ा ही कठिन होगा परन्तु कुछ थोड़ा सा कहना आवश्यक है।

सन् १८९७ में सरकार ने उसके अनुसन्धानों की प्रशंसा करते हुये उसको सरकी उपाधि प्रदान की। यहाँ यह भी याद रखना चाहिये कि क्रुक्स जल-परीक्षामें बड़ा ही चतुर था, और इस विषय पर सरकार सर्वदा उसकी सहायता लिया करती थी। पिछले युद्धमें क्रुक्स ने सरकारको वैज्ञानिक विषयों पर बड़ी सहायताकी। वह कई सभाओंका सभापति रहा, जैसे केमिकल सोसाइटी लन्दन(१८८७-१८८९) विद्युत इञ्जिनयरों का इन्सटीट्यूशन, (१८९०-१८९४) ब्रिटिशऐसोसियेशन (१८९८) केमीकल इण्डस्ट्री (१९१३) रायल सोसाइटी (१९१३-१९१५)। १९०० से १९१३ तक क्रुक्स रायल इन्सटीट्यूशनका अवैतनिक मन्त्री भी रहा, और रायल सोसाइटीका विदेशी मंत्री १९०८-१९१२ तक रहा। इसके अतिरिक्त वह कई विदेशी विश्वविद्यालयों और वैज्ञानिक संस्थाओंका सदस्य था जिनका वर्णन यहां नहीं किया जा सकता। रायल सोसाइटी ने उसको डेवी पदक, रायल पदक और कापले पदक समय समय पर प्रदान करके उसकी और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ायी। रायल सोसाइटी आफ आर्ट्सने उसे ऐलबर्ट पदक प्रदान किया था और १९१० में सरकारसे सब बड़ी उपाधि जो किसी वैज्ञानिकको मिल सकती है। पाई अर्थात् आर्डर आफ मेरिट (O. M.) की उपाधिसे सम्मानित किया गया। यह तो मुख्य बातें उसकी प्रशंसाके विषयमें लिखी गई हैं। यदि यही विषय लिखा जाये तो एक पूरा लेख बन सकता है।

क्रुक्स की मृत्युसे संसारका एक सबसे बड़ा वैज्ञानिक उठ गया। यह एक शिक्षा ग्रहण करने की बात है कि क्रुक्स अपनी मृत्युसे कुछ मास पहिले भी जो कि ८७ वर्षकी अवस्थामें हुई विज्ञान की पूर्णरूपसे सेवा करता रहा। यदि उस ८७ वर्ष के बूढ़ेमें इतनी शक्ति थी तो क्या हम लोग जो युवक कहलानेका श्रेय रहते हैं, कुछ घंटे भी विज्ञान की पूरे रूपसे सेवा नहीं कर सकते। अन्तर यही है कि वह विज्ञान देवी पर मोहित था। यह ही उसको जायदाद और पूँजी थी। यदि हम लोगोंमें भी यह वृत्ति उत्पन्न हो जाये तो इसमें बिलकुल भी सन्देह नहीं कि हम लोग भी विज्ञानकी कुछ न कुछ सेवा कर सकते हैं। यद्यपि क्रुक्स की अवस्था काफी हो चुकी थी। परन्तु उसके मरनेका शोक किस वैज्ञानिक को न हुआ होगा। उसके विरुद्ध पक्षके मनुष्योंको भी आंसू बहाने पड़े हैं। उसकी मृत्युका सबसे बड़ा कारण उसकी पत्नीकी मृत्यु थी जो कि १९१६ में हुई। बस इसके पश्चात् ही उसको अपनी मृत्यु दिखाई देने लगी। अन्तमें उसने १९१९ को सर्वदाके लिये इस संसारसे बिदा मांग कर वैज्ञानिक क्षेत्रकी रंगभूमिमें प्राण न्योछावर कर दिये।

"संयुक्त प्रान्तमें तिल की खेती"

[लेखक—ठाकुर दूधनाथ सिंह, एल० एजी० रिसर्च असिस्टैण्ट तथा लेक्चरार कृषि कालेज, कानपुर]

तिलको संस्कृतमें तिला कहते हैं। तैल शब्द भी तिला धातुसे निकला हुआ है। ज्ञात होता है कि तेल वाली फसलोंमें सर्व प्रथम तिलका ही आर्य्योंको ज्ञान हुआ। पितरोंकी पूजा सामग्रीमें भी तिलका बहुत ही ऊँचा स्थान है। दानके हेतु भी तिला दानका बड़ा महत्व है। उपर्युक्त बातोंसे इतना तो अवश्य निश्चय है कि तिलकी जानकारी भारत निवासियों को बहुत प्राचीन कालसे ही है। अर्वाचीन वनस्पति शास्त्र वेत्ताओंका कथन है कि तिल १०, १२ जङ्गली हालतोंमें पाया जाता है। इनमेंसे भारतवर्षमें एक का भी पता नहीं चलता। हाँ, इनमेंसे ८ किस्में अफ्रिकामें अवश्य पाई जाती हैं और सम्भव है कि तिलका जन्मदाता वही देश हो। कुछ लोगोंका ख्याल है कि आर्य्य जातिके आनेके पहले ही तिल सुण्डा द्वीप (Sunda islands) से यहाँ लाया गया था।

उपयोगिता

साधारणतया तिलमें तेलका अंश ४८-५२ °/₀ होता है। तेलकी मात्रा घटिया किस्मोंमें ४५ °/₀ तक हो जाती है और अच्छे बीजमें ५६ °/₀ तक बढ़ जाती है। जितने भी सुगन्धित तैल आज कल बाज़ारमें दिखाई पड़ते हैं बहुधा तिल ही के तैल पर बनाये जाते हैं। तिलका तेल जिसको साधारण बोल चालकी भाषामें मीठा तेल भी कहते हैं खाने के काममें भी आता है। लैम्पमें जलाने तथा साबुन बनानेके लिए भी इस तेलकी बहुत माँग है। इस में किसी प्रकारकी भी गन्ध नहीं होती है, इसी कारण यूरोपमें, मुख्यतः फ्रान्स और इटलीमें, जहाँ इसकी बड़ी मांग है इस तेलकी जैतूनके तेल (Olive oil) के स्थानमें भली भाँति खपतकी जाती है। इसके गन्ध रहित होनेसे व्यवसायियों ने इसको घी और मूंगफली तथा बादामके तेलमें मिलाना आरम्भ कर दिया है। काला तिल दवा के भी काममें बहुत लाया जाता है।

आधुनिक समयमें भी जब कि गेहूँ इत्यादि और नाजोंका भाव बहुत ही गिर गया है तेलहनका भाव बहुत अच्छा है।

तेल पिलनेके बाद जो खली निकलती है वह भी बड़े कामकी वस्तु है। भारतीय किसान जानवरों को मोटा करनेके लिए तिलकी खली खिलाते हैं। पञ्जाबमें गरीब लोग इस खलीको आटेमें मिला कर खाते हैं।

आजकल भारतके प्रत्येक प्रदेशमें तिलकी खेती होती है। निम्नाङ्कित कोष्ठक सारिणी १ से जिसमें गत ५ वर्षोंका तिलफसलका क्षेत्रफल दिया गया है साफ प्रकट है कि संयुक्त प्रदेश आगरा व अवधमें और प्रान्तों से कहीं अधिक इसकी खेती की जाती है।

संयुक्त प्रदेश आगरा व अवधके भिन्न भिन्न स्थानों में तिल की खेती (%)

१—पहाड़ी भाग	...	०·६
२—पश्चिमी तराई भाग	...	०·४
३—ऊपरी द्वाब	...	०·१
४—मध्य द्वाब	...	१·३
५—बुन्देलखण्ड	...	७०·७
६—उत्तरी मध्य भाग	...	०·८
७—मध्य तराई भाग	...	३·५
८—दक्षिणी अवध	...	०·३
९—पूर्वी तराई भाग	...	६·९
१०—दक्षिणी पूर्वी भाग	...	११·२
११—लोअर द्वाब	...	०·६

सारिणी नं० १

भारतवर्षके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें तिल फस्ल का क्षेत्रफल

प्रान्त	क्षेत्रफल (एकड़में)					
	१९१९-२०	१९२०-२१	१९२१-२२	१९२२-२३	१९२३-२४	
मद्रास	८८१,०००	७५३,०००	७७८,०००	७३३,०००	६९६,०००	
बंबई (सिंध और देशी रियासतें सहित)	५५२,०००	६७३,०००	६८१,०००	५८१,०००	५६४,००१	
बङ्गाल	२१०,०००	१९९,०००	२०८,०००	१५६,०००	१५७,०००	
संयुक्त प्रदेश	१६८,००० ९७५,०००	२७६,००० ८७५,०००	२५०,००० ९७५,०००	१९८,००० ८७५,०००	२०१,००० ९२०,०००	मिलवा फस्ल
पञ्जाब	११०,०००	१०८,०००	१५६,०००	१५६,०००	११०,०००	
बर्मा	...	...	१,०३४,०००	८६५,०००	९८२,०००	
बिहार उड़ीसा	१९२,०००	१६७,०००	१९३,०००	१९२,०००	१९३,०००	
मध्यप्रदेश और बरार	४८९,०००	७०९,०००	७७३,०००	५६६,०००	५४९,०००	
अजमेर मेरवाड़ा	१७,०००	१९,०००	१५,०००	१६,०००	२१,०००	
हैदराबाद	५३८,०००	५२०,०००	५५४,०००	५३०,०००	५५२,०००	
बरौदा	७३,०००	७७,०००	७५,०००	७६,०००	७४,०००	
राजपूताना (कोटा)	४९,०००	५६,०००	५४,०००	५६,०००	४३,०००	

दूसरा कोष्ठक (सारिणी २) जिसमें संयुक्त प्रान्तके गत ६ सालमें होने वाली तेल वाली फस्लों का व्यौरा दिया गया है इस बातका प्रमाण है कि इस प्रान्तमें अलसीके अतिरिक्त तिलसे अधिक क्षेत्रफलमें और कोई तेलहन नहीं बोया जाता। पिछले दो सालोंमें तो क्षेत्रफलके ख्यालसे सब तेल वाली फस्लोंमें तिलका ही सर्व प्रथम स्थान रहा।

सारिणी नं० २

संयुक्त प्रदेश आगरा व अवधमें तेल वाली फसलों (तेलहन) की काश्त

सन्	क्षेत्रफल (एकड़में)				
	अलसी (तीसी)	तिल	※ राई (Rapeseed)	† अन्य तेल वाली फसलें	
१९२४-२५	४३२,४६६	२७५,१५७	१४२,९९९	४६९६२	※ तारा मिरा
१९२५-२६	३८१,२१७	२५४,७४८	१४३,९४१	५२२५१	और तोरिया
१९२६-२७	३९३,४५६	१८६,४८६	१४८,०६१	३८९३७	शामिल है
१९२७-२८	४२२,५२८	२४२,६६७	१७१,३४४	३८९५३	† मूंगफली
१९२८-२९	२०९,८६६	३९१,५०६	३३९,४६९	१३२५५२	और अंडी
१९२९-३०	२२९,०३४	२९१,०७२	२१५,४०१	९३००४	शामिल है

नीचे दिये हुए कोष्ठक नं० ३ से यह मालुम किया जा सकता है कि संयुक्त प्रान्तके भिन्न भिन्न नगरोंमें गत ५ वर्षोंमें कितनी तिलकी खेती की गई थी।

सारिणी नं० ३

संयुक्तप्रान्तमें भिन्न भिन्न नगरोंमें तिलकी खेतीका ब्यौरा

ज़िला	क्षेत्रफल (एकड़ में)				
	१९२५—२६	१९२६—२७	१९२७—२८	१९२८—२९	१९२९—३०
देहरादून	२,५८१	१,८४५	२०६२	१९९०	३१७९
सहारनपुर	४३५	४२८	७४१	१२७१	१३२४
मुज़फ़्फ़रनगर	७६	३५	७४	१११	७०
मेरठ	४५	१२	११	२७	१५

सारिणी नं० ३ (क्रमागत)

ज़िला	क्षेत्रफल (एकड़ में)				
	१९२५—२६	१९२६—२७	१९२७—२८	१९२८—२९	१९२९—३०
बुलन्दशहर	१३४	५१	५९	९८	१२०
अलीगढ़	१३२	७६	६४	१३५	१००
मथुरा	१२६३	५७४	५४८	६९५	५४३
आगरा	२००५	१९४२	२२६६	२३७०	३२५७
मैनपुरी	८	१९	१७	२३३	६६
एटा	१९	४	७	७१	२२
बरेली	५	६	९	४८	२३
बिजनौर	४२२	३१८	६७७	६७८	८३१
बदायूं	४६	८	१६	३७	३५
मुरादाबाद	२८	४४	६१	१६७	२०३
शाहजहांपुर	४१२	५६१	६७९	७४३	६९२
पीलीभीत	१२५	१११	५०८	३७७	१७४
फरुखाबाद	२०	७	२०	२०५	६५
इटावा	१८	१६	१४	४१	४७
कानपुर	२००	१७२	२३४	७०४	९७७
फतेहपुर	६८४	४४६	७६४	२१७५	२९८९
इलाहाबाद	१७२७	१०३५	११४१	२४४९	१९९२
झांसी	८१६४४	५४२१७	८३९७६	१२१७६३	१०१२५२
जालौन	३७९२	२४७१	४१५२	८६३४	५४१७
हमीरपुर	७२४०१	४९७९९	७२००१	१४०९०३	८१५८४

सारिणी ३ (क्रमागत)

ज़िला	क्षेत्रफल (एकड़ में)				
	१९२५—२६	१९२६—२७	१९२७—२८	१९२८—२९	१९२९—३०
बांदा	३८१९४	२५४०९	२७६२७	४७८४५	३२२२७
बनारस	२३	२८	३२	६५	११३
मिर्ज़ापुर	२५८६५	२०८९९	२१६१३	२२२१२	२२३५९
जौनपुर	२२	१५	१७	२४	७८
गाज़ीपुर	२१	२३	१५	१४	१४
बलिया	१	१	३	७	१०
गोरखपुर	१२३७२	१३०२३	१३५१२	१५८६३	१२२०६
बस्ती	१४४३	१८६४	२३७७	२६६५	२६३२
आज़मगढ़	२	१०	९	३४	६०
नैनीताल	७	६	२१	२३	५७
लखनऊ	१८	१८	१८	८१	७७
उन्नाव	३१७	२४६	२९२	१५५१	२३१५
रायबरेली	१९०	१८७	१६६	८३४	१३३०
सीतापुर	९०३	१०३६	१९०९	२४०५	१९०६
हरदोई	१८	२१	४८	१६१	१८५
खेरी	१०६२	१०३१	१७८१	२५३४	१७४०
फैज़ाबाद	२	१	८	१३	१३
गोंडा	२०२६	३५८२	३६९५	४१६७	४१२१
बहराइच	३८१८	४५७२	३२२३	५१४५	४७४८
सुलतानपुर	७	३	४	१६	१०
प्रतापगढ़	२१२	१६३	१९२	४९७	[illegible]
बाराबंकी	३	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

यों तो थोड़ी बहुत तिलकी खेती सारे संयुक्त प्रान्तमें होती है जैसा कि उपर्युक्त कोष्टक देखनेसे विदित हो जायगा परन्तु बुन्देलखण्ड प्रदेश व मिर्जापुर और गोरखपुर नगरोंमें इसकी खेती बहुत ही अधिकतासे की जाती है।

क़िस्में

बीजकी रङ्गतको ध्यानमें रखते हुए तिल तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता हैः—

(१) सफेद तिल—यह जाति बहुत ही कम समयमें पक कर तैयार होती है परन्तु इसमें अवगुण यह है कि इस पर बीमारियाँ अपना प्रभुत्व अति शीघ्र जमा लेती हैं और इसी कारण वश बहुधा इसकी पैदावार बहुत ही थोड़ी होती है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि विपरीत-जलवायुके दिनोंमें इसका एक दाना भी मिलना असम्भव हो जाता है। मिठाई बनानेमें अधिकतर सफेद तिलका ही प्रयोग किया जाता है।

(२) काला तिल—बीमारियोंके प्रकोपसे यह जाति बहुत अंश तक वञ्चित रहती है। यह तिल सब तिलोंमें अधिक गुणदायक समझा जाता है और इसी कारण वश औषधियोंमें काले तिलको ही सर्वोपरि महत्व दिया गया है। तेलकी मात्रा भी काले तिलोंमें कुछ अधिक होती है।

(३) लाल तिल—इसके पौदे और जातिकी अपेक्षा अधिक हृष्टपुष्ट तथा फैलने वाले होते हैं। इन पौदोंकी पत्तियाँ भी कुछ अधिक चौड़ी होती हैं। यह तिल यद्यपि बीमारियोंसे बहुत कुछ बचा रहता है तथापि देरमें पकनेके कारण संयुक्त प्रान्त में नहीं बोया जाता।

तीनों जातिके फूलोंकी रङ्गत तथा बनावटमें विभिन्नता बहुत ही थोड़ी होती है। इन जातियों की असलियत (Purity) स्थिर रखनेके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक जातिको दूसरी जातिसे काफी दूरी पर बोया जाय क्योंकि बाहरी पराग-केशरकी पहुँच गर्भकेशरमें (Cross fertilization) पर्याप्त मात्रामें होती रहती है।

बीमारीकी अधिकता और अधिक मात्रामें परसांकरिकता (Cross fertiliztion) होनेके कारणसे वनस्पति शास्त्रवेत्ताओंको इस फसलके उन्नत करनेमें बहुत ही कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं। जहाँ तक लेखक को पता है कृषि विभाग ने अभी तक इस फसलमें कोई ऐसी उन्नति नहीं की है जिससे किसानोंको कोई विशेष लाभ हो। भारतीय कृषि-वैज्ञानिकोंका ध्यान तिल की उन्नति करने की ओर आकर्षित किया जाता है और आशाकी जाती है कि वे लोग शीघ्र एक अच्छी जातिका तिल पैदा करके यहाँके किसानोंकी सहायता करेंगे।

खेती

(१) भूमि—ऊँची भूड़ या दोमट जमीनमें जहां पानी न भरता हो इसकी पैदावार अच्छी होती है। अधिक उपजाऊ भूमिमें तिलके पौदोंमें पत्तियों और डंठलकी बाढ़ बहुत होती है और बीजकी पैदावार कम हो जाती है इसलिए साधारण उपज वाली भूमिमें ही इसकी खेती करना लाभदायक है।

(२) बीज—इस प्रान्तमें यह फसल खालिस तथा मिलवा दोनों तरहसे बोई जाती है। खालिस फसलके वास्ते लगभग ८ सेर बीज (फी एकड़) की आवश्यता होती है। मिलवा फसलके वास्ते कम बीज डाला जाता है।

(३) बुवाई—जुलाईके अन्तिम सप्ताहमें २, ३ जुताई करनेके बाद बीज छिटकवाँ बो दिया जाता है। बोनेके समय यदि बीजमें मट्टी मिला ली जावे तो बीज बोना सरल हो जाता है। बुवाईके पश्चात् खेतमें बहुधा कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं होती। हाँ, यदि कहीं कहीं बुवाईकी खराबी के कारण एक जगह बहुतसे पौदे उग आये हों तो कुछको छोड़ सब पौदोंको निकाल देना चाहिए। मिलवा फसलमें तिलके अतिरिक्त और पौदोंके लिये

निराई, गुड़ाईकी जाती है इससे तिलको भी लाभ पहुँचता है। तिलकी पत्तियों तथा फूलोंमें भी एक प्रकारकी दुर्गन्ध होती है और इससे इस फस्लके चर जानेकी कुछ भी सम्भावना नहीं रहती और इसी कारण रखवालीके लिए किसानको कोई कठिनाई नहीं सहन करनी पड़ती।

(४) कटाई—अक्टूबर के अन्त में अथवा नवम्बरके आरम्भमें ढेंढ़ी (Pod) पौदेमें सूखने लग जाती है। उस वक्त पौदोंको काट कर खलिहानमें स्वच्छ जगह इकट्ठा कर लेते हैं। इसके काटने में देर बिलकुल नहीं करनी चाहिये अन्यथा ज्योंही ढेंढ़ी सूखती है अपने आप फट जाती है और बीज भूमि पर बिखर जाता है।

जब खलिहानमें ढेंढ़ियां भली भांति सूख जांय उनको डंडेसे कूट कर दाना निकाल लेना चाहिये।

(५) पैदावार—खालिस तिलकी एक एकड़ फस्लसे लगभग ६ मन बीजकी पैदावार मिल जाती है। मिलवां फस्लकी पैदावार कम होती है। तिल-सोटा भी (तिलका डंठल), जो जलानेके काम आता है, लगभग ५० मन एक एकड़में निकल आता है।

बीमारियाँ तथा अन्य हानिकारक वस्तुएँ

(अ) तिलके खेतमें बहुधा ऐसे पौदे मिलते हैं जिनमें फूल पत्तियों के रूपमें परिवर्तन हो जाता है। ऐसे पौदोंसे बीजकी कुछ भी प्राप्ति नहीं होती। ऐसे पौदे यदि अधिक संख्यामें उग आयें तो किसानकी बड़ी ही हानि होती है। कृषि-वैज्ञानिकों का ध्यान कुछ दिनोंसे इस रोगकी ओर आकर्षित हुआ है और सम्भव है कि इसके कारण और निदानका पता चल जाय।

(ब) फूलके समय यदि बारिश हो जाय तो फस्लकी बहुत ही हानि होती है। लेखकको कुछ दिनों तिल पर काम करनेका अवसर मिला है और इस बीच उसने देखा है कि जिस साल फूल के समय बारिश हुई, बोनेके लिये बीज तकका मिलना दुर्लभ हो जाता है। इसी कारणसे किसान बहुधा इस फस्लको मिलवां बोते हैं जिससे तिल के न पैदा होने वाले सालमें उनकी खेती एकदम न मारी जाय।

(स) ईलवर्म (Eel worm)—यह एक प्रकारका कीटाणु है इसका असर पहले जड़ोंसे प्रारम्भ होता है और अन्तमें पौदा कोढ़ी हो कर मर जाता है। क्रूड आयल इमलशन (Crude oil emulsion) मिश्रित जलसे खेतको सींचनेसे इस रोगका असर बहुत कुछ कम हो जाता है।

(द) पेरनास्पोरा (Peronospora) भी एक प्रकारका कीटाणु है। इसके कारण तिलके पौदों की पत्तियोंके सिरे पहले सड़ कर काले होने शुरू होते हैं और कुछ ही दिनोंमें पौदोंकी सारी पत्तियाँ काली दृष्टिगोचार होने लगती हैं। दूरसे कभी कभी ऐसा प्रतीत होता है कि मानों खेतमें आग लग गई हो और सारा खेत झुलस गया हो। इस बीमारीसे फस्ल एकदम तो नहीं मारी जाती परन्तु पैदावारमें कमी पर्य्याप्त मात्रामें हो जाती है।

इस बीमारीके आरम्भमें ही काली पत्तियोंको तोड़ कर जमा देना चाहिए जिससे बीमारी फैलने न पावे। यदि हो सके तो आरोग्य पौदोंका बीज दूसरे साल बोया जाना चाहिये।

उद्भिज का आहार

[लेखक—श्री एन० के० चटरजी एम० एस-सी०]

एक छोटेसे बीजसे एक बड़ा भारी पेड़ भली भांति उगता दिखाई पड़ता है लेकिन उस छोटेसे बीजके भीतरकी सामग्री एक बड़े पौधे के भोजन की आवश्यकता को कब तक दूर कर सकती है। इस छोटेसे बीजकी सामग्री केवल अंकुर उत्पन्न होने तक ही काम आ सकती है और जैसे ही अंकुरमें जड़ और पत्रांकुर (Colydens उत्पन्न होने आरम्भ हो जाते हैं त्योंही पौधे अपना खाद्य अपने आप बनानेमें समर्थ हो जाते हैं, और तब उनको छोटेसे बीज पर भोजनके लिये निर्भर नहीं रहना पड़ता।

इसलिये यह स्पष्ट है कि पौधोंको समस्त खाद्य बाहर हीसे मिलता है। यदि किसी पौधेकी वस्तु-गठन (Composition) पर दृष्टि दी जाय तो उसके भोजनके भिन्न भिन्न तत्त्व मालूम पड़ जावेंगे। पौधोंके भीतर जलका परिमाण बहुत अधिक होता है और यह जलका परिमाण भिन्न भिन्न पौधोंमें भिन्न भिन्न होता है। केवल इतना ही नहीं, यहां तक कि एक ही पौधेके भिन्न भिन्न भागोंमें और एक ही पौधेकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें जलका परिमाण बदलता रहता है। उदाहरण स्वरूप यह देखा गया है कि एक पके हुए बीजमें उसके कुछ वज़नका १/६ हिस्सा पानी होता है। उसी बीजके छोटे अंकुर हो जाने पर प्रतिशत ६० भाग पानी होता है और बड़े पौधेमें प्रतिशत ७० भाग जल पाया जाता है।

इसके पश्चात् यदि पौधोंके कार्बनिक पदार्थों (Organic Substances) पर ध्यान दिया जाय तो उसमें निम्न लिखित वस्तुयें पाई जाती हैं।

१. कुछ तेल और चर्बी (Oil and fat) इत्यादि जो कि केवल कर्बन और उद्जन (Hydrogen) द्वारा बनती हैं।

२. सेलूलोज (cellulose) नशास्ता (Starch) और शर्करा (Sugars) जिसमें कर्बन, उद्जन और ओषजन रहता है।

३. अण्डसित पदार्थों (Albuminous Substances) और कललरस (Protoplasm) इत्यादि जिसमें कर्बन, उद्जन ओषजन, नोषजन, और गंधक पाया जाता है।

पौधोंको भली भाँति जलाने से अन्तमें कुछ राख रह जाती है; अब इस राखके तत्व पर ध्यान देना चाहिये। इसमें निम्न लिखी वस्तुयें पाई जाती हैं।

४. पांशुजम् (Potassium)
५. खटिकम् (Calcium)
६. मगनीसम् (Magnesium)
७. लोहा (Iron)
८. स्फुर (Phosphorous)

प्रत्येक मामूली पौधोंमें ये धातुयें अधिकता से पाई जाती हैं, इसके अलावा कुछ पौधोंमें निम्न लिखित धातुयें पाई गई हैं।

९. सैन्धकम् (Sodium)
१०. मांगनीज (Manganese)
११. शैलम् (Silicon)
१२. हरिन् (Chlorine)

यह स्पष्ट है कि पूर्व लिखित भिन्न भिन्न तत्त्व जो कि पौधोंके शरीरमें पाये जाते हैं पौधोंको उनके उगते हुए स्थानोंके आस पास ही मिलने आवश्यक हैं क्योंकि पौधे अचर-जीवी हैं और जिस जगह पर उगते हैं वहांसे हिलडुल नहीं सकते। प्रत्येक तत्वों पर अब थोड़ा सा विचार करना आवश्यक है कि यह भिन्न भिन्न तत्व पौधोंको कहांसे मिलते हैं।

कर्बन—यह पौधेके लिये एक मुख्य तत्व है और उसके कुल वजनका आधा हिस्सा कर्बनसे ही भरा होता है। कर्बन पौधोंको वायु मंडलसे कर्बन द्विओषिदके रूपमें मिलता है। जिन पौधोंमें

पर्णहरिन् वर्त्तमान रहता है वे सूर्य्यके प्रकाश द्वारा वायु मंडलसे कर्बन द्विओषिद्का उपयोग कर लेते हैं जिसका वर्णन प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis में भली भांति दे दिया गया है। स्थलीय पौधोंके लिये यह बात तो सच है लेकिन जलीय पौधे पानी में घुले हुए कर्बन द्विओषिद्का उपयोग करते हैं। जिन पौधोंमें पर्णहरिन् नहीं होता उनको दूसरे पौधों के ऊपर या दूसरी वस्तुयें जिनसे उनको सुगमता से खाद्य मिल जाता है, निर्भर करना पड़ता है, जैसे कि फफूंदी और परोपजीवी (Parasites)

२ उद्जन—पौधोंमें बहुत अल्प परिमाणमें रहता है। यह मुख्य तौरसे पौधोंके जलसे या दूसरे लवणोंसे जिनमें उद्जनका भाग अधिक होता है, मिल जाता है। ये लवण पानीमें घुले रहते हैं।

३ ओषजन—कर्बनके बाद ही पौधोंमें इसकी गिनती है। ओषजन या तो पानी या वायु मंडलके कर्बन द्विओषिद्से मिलता है। इसके अतिरिक्त श्वास क्रियामें जब कि वायु मंडलके ओषजनका उपयोग करना पड़ता है उससे भी थोड़ा बहुत मिल जाता है।

४ नोषजन—(Nitrogen) पौधोंमें हरित-पिण्ड और अण्डसित (Albuminous) पदार्थोंमें पाया जाता है। पौधोंमें इसका परिमाण बहुत अल्प होता है। नोषजन वायुमंडलमें अधिकता से पाया जाता है लेकिन परीक्षा द्वारा यह ज्ञात किया गया है कि लेग्यूमिनोसी (Leguminosae) जातिके पौधोंके सिवाय दूसरे मामूली पौधे वायु मंडलका नोषजन उपयोग नहीं कर सकते। दूसरे मामूली पौधोंको नोषजन जलमें घुले हुए नोषेत (Nitrates) द्वारा ही जो कि भूमिमें वर्त्तमान रहते हैं, मिलता है। नोषजन संश्लेषण क्रिया (Assimilation of Nitrogen) के परिच्छेदमें इसका वर्णन सुचारुरूपसे किया गया गया है। कुछ पौधे जिनको मांसाहारी (Carnivorous) कहा गया है वे यह नोषजन छोटे छोटे कीड़ों मकोड़ों को हजम करके पाते हैं इसलिये इन माँसाहारी पौधोंका वृत्तान्त अलग दिया गया है।

५ अकार्बनिक वस्तुयें (Inorganic Substances) पौधोंको भूमिसे मिल जाती हैं। पौधों में जलका प्रवाह बराबर बहता रहता है। मिट्टीके अकार्बनिक—द्रव्य इस पानीमें घुले हुए रहते हैं। पौधोंको पानीके द्वारा ये द्रव्य सुगमतासे मिल जाते हैं। इसलिये जलके प्रवाह (Ascent of sap) का वर्णन एक दूसरे परिच्छेदमें किया गया है।

उपर्युक्त वर्णन द्वारा ये पौधे जिनमें पर्णहरिन वर्त्तमान रहता है मुख्यतया निम्न लिखित रूपसे अपना भोजन बाहरसे पा जाते हैं; यथा :—

जल; कर्बन द्विओषिद्, नोषेत, गन्धेत (Sulphate) स्फुरेत (Phosphate) और दूसरे धातु लवण (Mineral salts) जो कि अल्प परिमाणमें होते हैं। पर्णहरिन् वाले पौधे प्रकाशके प्रभावसे भली भाँति उग सकते हैं और प्रकाश और पर्णहरिन्की सहायतासे यह इन सब तत्वोंको अपने आहरीय द्रव्योंमें यथा माँड़, शर्करा, तेल और प्रोटीडमें परिवर्त्तन कर लेनेमें समर्थ होते हैं।

इस कारण उद्भिजके आहारका वर्णन निम्न लिखित परिच्छेदोंमें करना अच्छा समझा गया है। यहाँ कह देना अच्छा होगा कि फफूंदी (Fungi) और परोपजीवी पौधोंके आहार का उल्लेख नहीं किया गया है।

पहला परिच्छेद :—प्रकाश संश्लेषण
(Photo synthesis)

द्वितीय परिच्छेद :—जलका प्रवाह
(Movement of water)

तृतीय परिच्छेद :—नोषजन संस्थापन क्रिया
(Assimlation of Nitrogen)

चतुर्थ परिच्छेद :—माँसाहारी पौधे
(Carnivorous plants)

प्रकाश संश्लेषण

जल का परिमाण

उद्भिजको अपने शर्करामय पदार्थों के बनानेमें कर्बन द्विओषिद्के समान जल को भी उतनी ही आवश्तकता है; लेकिन पत्तियोंके भीतर जलका परिमाण बदलनेसे प्रकाश-संश्लेषण की गति पर बहुत कम प्रभाव पड़ना चाहिये। क्रेसुलर ने सन् १८८५ में अपनी परीक्षायों द्वारा यह सिद्धान्त निकाला है कि पत्तियोंके भीतरके जल का परिमाण घटानेसे प्रकाश संश्लेषणकी गति भी घट जाती है। इनके पश्चात् अन्य वैज्ञानिकोंने भी इसी बातको निश्चित किया है कि प्रकाश संश्लेषण की गति पत्तियोंके जलसे फुलाव (Turgility) के साथ बहुत कुछ सम्बन्ध रखती है। गतिके कम हो जानेका कारण बहुतों ने यह मान लिया है कि पत्तियोंमें जलका परिमाण घटनेके साथ ही साथ पत्तियोंके त्वचारन्ध्र (Stomata) भी बन्द हो जाते हैं। थोडे ने इसी कारणको इस तरह सिद्ध किया है कि जिन पौधों में त्वचारन्ध्र नहीं होते उनमें जलका परिमाण प्रकाश संश्लेषणकी गति पर बहुत कम प्रभाव डालता है परन्तु बड़े बड़े पौधोंमें जिनमें त्वचारन्ध्र रहते हैं उनमें यह प्रभाव बहुत पड़ता है।

दस्तूर ने सन् १९२४ में यह दिखाया है कि पत्तियोंकी उम्रके साथ ही साथ प्रकाश संश्लेषणकी गति घटती जाती है। यह गति पहले पहल जल बहने वाले नखोंसे दूर स्थानों पर होती है लेकिन बादको पत्तियोंके भीतरी भागोंमें नसोंके आस पास भी गति कम होती जाती है। कुछ दिनों बाद इन्होंने फिर अपनी परीक्षायों द्वारा यह दिखाया कि पत्तियाँ ज्यों ज्यों पुरानी होती जाती है उनमें प्रकाश संश्लेषणके साथ ही साथ जलका परिमाण घटता जाता है।

पौधों पर पड़नेवाली सूर्य्यकी किरणोंकी लहर लम्बाई (Wave length)—इस लेखके पहिले हिस्सेमें प्रकाशकी तेजीका प्रभाव दिखाया गया था। यह प्रकाश सूर्य्य द्वाराही पौधों को मिलता है। इस सूर्य्य प्रकाशमें भिन्न भिन्न किरणें होती हैं; और इन किरणोंकी भिन्न २ लहर लम्बाई भी होती है जो कि ७७०$\eta\eta$ से लेकर ३६०$\eta\eta$ के भीतर होती है। यह किरणें साधारण दृष्टि द्वारा दिखाई पड़ती हैं लेकिन और ऐसी किरणों भी हैं जो कि दिखाई नहीं पड़ती और जिनकी लहर लम्बाई भी ७७० से ज्यादा और ३६० से कम होती है। इसलिये यह उचित है कि यह निश्चित किया जाय कि सफेद प्रकाश की सब किरणें दृष्टिगोचर (Visible) या अदृष्टिगोचर (Invisible) प्रकाश-संश्लेषणकी क्रियामें काम आती है या कुछ निर्दिष्ट लहर लम्बाईके अतिरिक्त और किरणें बिलकुल बेकार हैं।

अनेक वैज्ञानिकों ने इस विषय पर बहुत दिनों से ध्यान दिया है कि श्वेत प्रकाशकी भिन्न भिन्न किरणें प्रकाश संश्लेषणको गति पर क्या प्रभाव डालती हैं।

ड्यूमा, वोसिंगोल्ट और सिनिबियर ने यह सोचा था कि श्वेत प्रकाशके नीलेसे लेकर बैंगनी वाले हिस्सोंमें प्रकाश संश्लेषण अधिक होता है। लोमेल ने सन् (१८७१) में यह बताया कि पर्णहरिन्में जो किरणें सबसे ज्यादा शोषित हो जाती हैं, यानी (बी) और (सी) लकीरके मध्यवाली, वही किरणें प्रकाश संश्लेषणमें सबसे ज्यादा काममें आती हैं।

यूरस्प्रगं ने सन् १९१२ में परालाल (Infrared) किरणोंमें भी कुछ नशास्ता (Starch) बनते पाया है।

ऊपर लिखे हुए वर्णन द्वारा यद्यपि भिन्न भिन्न किरणोंकी लहर लम्बाईका प्रभाव प्रकाश संश्लेषण पर थोड़ा सा दीख पड़ता है; परन्तु यह सब प्रयोग

ठीक नहीं मालूम पड़ते क्योंकि उपर्युक्त वैज्ञानिकोंने भिन्न भिन्न किरणोंकी तीव्रता पर ध्यान नहीं दिया और किरणोंकी तीव्रताके सिवाय और किसी हेतु (Factor) पर भी ध्यान नहीं दिया।

नीप और मीनडर (Kniep और Mindcr) ने सन् १६०६ में इन सब बातों पर ध्यान देते हुए यह निकाला कि नील और लाल किरणोंमें करीब करीब एक सा प्रकाश-संश्लेषण होता है परन्तु हरी किरणोंमें प्रकाश संश्लेषण कुछ भी नहीं होता। इसमें भी कुछ दोष पाये जाते हैं क्योंकि यदि पौधों पर लाल या नीले कांचके टुकड़ेके भीतर से होकर प्रकाश फेंका जाय तो पौधों पर गिरती हुई रोशनीका गठन (Composition) बिलकुल बदल जानेकी सम्भावना है।

इसके बाद यूरस्प्रंग (Ursprung) ने सन १६१८ में भिन्न भिन्न किरणोंकी लहर लम्बाई और नशास्ता गठन (Starch formation) के सम्बन्ध पर दृष्टि डाली। इन्होंने लाल सिरे पर बिलकुल नशास्ताकी उत्पत्ति नहीं पायी लेकिन उसके पश्चात् लहर लम्बाईके कम होनेके साथ ही साथ नशास्ता की उत्पत्ति भी बढ़ती है (सी) लकीर पर जिसकी लहर लम्बाई ६५६$\mu\mu$ है नशास्ता उत्पत्तिकी पहली अधिकतम (Primary maximum) संख्या पाई जाती है। उसके बाद लहर लम्बाईके कम होनेके साथ ही साथ नशास्ताकी उत्पत्ति भी कम होती जाती है। इन किरणों के किसी किसी भागमें दूसरी अधिकतम संख्या (Second maximum) भी पाई गई है। ये अधिकतम संख्यायें (डी) लकीर पर यानी ६२०$\mu\mu$ और ५८६$\mu\mu$ के बीच और (एफ) और (जी) लकीर पर जिनकी लहर लम्बाई ४८८$\mu\mu$ और ४३१$\mu\mu$ है होती हैं।

यह स्पष्ट है कि प्रकाश संश्लेषण पत्तियों पर गिरते हुए किरणोंकी लम्बाईसे बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है। कुछ निर्दिष्ट किरणें पत्तियोंमें भली भाँति लीन हो जाती हैं परन्तु कुछ किरणें पत्तियों के लिये बिलकुल बेकार हैं। इस कारण पत्तियों पर उन किरणोंकी तीव्रताका जिनकी लहर लम्बाई पत्तियों में शोषित हो जाती हैं, प्रभाव प्रकाश-संश्लेषणकी क्रिया पर अवश्य पड़ेगा। यह प्रभाव केवल निम्न लिखी हुई किरणों द्वारा ही संभव है।

१. (बी) और (सी) लकीरके बीच वाली लाल किरणोंका प्रभाव सबसे ज्यादा पड़ता है।

२. और नीले और बैजनी किरणों द्वारा सबसे कम प्रभाव पड़ता है।

इन सब प्रमाणोंके होते हुए भी फेफर (Pfeffer) ने सन् १६०० में यह कहा कि पत्तियोंके ऊपर भागमें स्थित कोष्ठयुत हरित पिंड (Chlroplasts) प्रमाणित निर्दिष्ट लहर लम्बाई वाली किरणें पाते हैं लेकिन अन्दर स्थित कोष्ठ के हरित पिंड पर बिलकुल भिन्न गठनकी किरणें पड़ती हैं। इस कारण ऊपर लिखी हुई परीक्षायें केवल ऊपरी भागमें स्थित हरितपिंड द्वारा ही प्राप्त हुई हैं। कुछ पत्तियाँ अधिक मोटी होती हैं और उनमें यह बात बिलकुल सच है कि भीतरी हरितपिंडको भिन्न प्रकारकी किरणोंसे अपना काम चलना पड़ता है।

पौष्टिक धातु मिश्रण या लवण (Salts)—इस विषय पर ब्रिग्स (Briggs) ने सबसे ज्यादा ध्यान दिया है।

सन् १६२२ में इन्होंने पौधोंके उपयोगी बहुत सी धातुयें निकालीं जिनका पौधोंमें वर्त्तमान रहना बहुत आवश्यक है। इन धातुओंके नाम पांशुजम्, मगनीसम्, लोहा और स्फुर हैं। इन धातुओंमेंसे किसी एकको निकाल लेनेसे प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया घट जाती है। ब्रिग्स ने यह सिद्धान्त इस तरह समझाया है कि उक्त लिखी हुई किसी धातुको कम कर देने या निकाल देनेसे हरितपिंडकी क्रिया करणी (Reactive) तह (Surface) घट जाती है। इसका मतलब यह है कि जिस स्थान पर रासायनिक प्रक्रिया होती है उस हिस्सेका पसार घट जाता है। ताप या प्रकाशकी तेजीको सीमा-बद्ध करनेसे कुछ अधिक प्रभाव नहीं पड़ता

क्योंकि जब क्रिया-करणीकी मात्रा कम हो जाती है तो प्रकाश या तापकी तेजीका प्रभाव रसायनिक क्रियाकी मात्रा पर भी कम हो जाता है।

स्टोकलासा (Stoklasa) और उनके साथियों का कहना है कि पांशुजम् प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया के लिये एक मुख्य हेतुओंमेंसे है लेकिन ब्रिग्स ने मगनीसम्के लिये भी यही बात कही थी और ब्रिग्सका कहना इसलिये सच माना जाता है क्योंकि पर्णहरिन्में मगनीसम् पाया जाता है और इसको निकाल देनेसे या कम कर देनेसे पर्णहरिन् का गठन ठीक तरहसे नहीं होता।

आसपासके स्थानके निःसरण दबावका प्रभाव—(Osmotic Pressure)—अपनी परीक्षाओं द्वारा लेगेन्ड्री (Legendre) में सन १९२१ में यह बतलाया कि यदि समुद्रके पानीका घनत्व घटा दिया जाय तो उसमें उगते हुए पौधोंकी प्रकाश संश्लेषणकी गति बढ़ जाती है। १.०१ घनत्व तक प्रकाश संश्लेषण बढ़ता जाता है और इसी संख्या पर प्रकाश संश्लेषणकी अधिकतम गति पाई जाती है लेकिन इसके बाद और घनत्व घटानेसे गति भी घटती जाती है। लेगेन्ड्री ने इसको मुख्य तौरसे निःसरण दबावका प्रभाव नहीं माना है। उनका कहना है कि पानीका घनत्व घटानेसे उसमें घुले हुये कर्बनेत और अर्ध कर्बनेत का परिमाण भी साथ ही साथ घट जाता है।

फ्रोमेगियट (Fromageot) ने सन् १९२३ में समुद्रमें उगते हुए पौधों पर परीक्षाकी। इन्होंने समुद्रके पानीका घनत्व ४·३० से लेकर ०·०३ तक घटाया। १·९४ घनत्व पर इन्होंने प्रकाश संश्लेषण की महत्तम संख्या (Optimum) पाई और उसके बाद प्रकाश संश्लेषणकी गति घटती गई है।

ओषजन (Oxygen)—इस विषय पर विल्सटेटर और स्टोल (Willtsatter and Stoll) का काम उल्लेखनीय है। इन्होंने यह कहा है कि प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया आरम्भ करनेके लिये पहले पहल ओषजनकी बहुत आवश्यकता है। इन्होंने ओषजन घटित वायु मण्डल में प्रकाश संश्लेषणकी गति घटती पाई है। यदि दो घण्टे तक पौधे या पत्तियाँ ओषजन-घटित वायु मंडलमें रक्खी जांय—तो उसके बाद उनको ओषजनमें रखने पर भी उनमें प्रकाश संश्लेषण क्रियाकी सामर्थ्य नहीं रह जाती। इसका कारण ये लोग यह बताते हैं कि यहाँ पर दो क्रियायें एकके बाद एक आरम्भ होती हैं। पहले तो आसपासका ओषजन निकल आता है लेकिन उसके बाद पत्तियोंके कोष्ठके बीच का ओषजन भी निकल जाता है। जब तक यह द्वितीय क्रिया आरम्भ नहीं होती पत्तियोंमें प्रकाश संश्लेषणकी शक्ति वर्त्तमान रहती है, लेकिन पत्तियों के कोष्ठके बीचके ओषजन निकल जानेके बाद उनमें से यह शक्ति तिरोहित हो जाती है।

स्पोर और मेकूगी (Spoehr and Mc Gee) ने सन १९२३ में यह बतलाया कि जो पत्तियाँ अंधेरेमें रक्खी जाती हैं और जिससे उनके कर्बोदेत (Carbohydrate) का परिमाण घट जाता है वे ओषजन घटित वायु मंडलको बहुत देर तक बरदाश्त नहीं कर सकतीं, लेकिन जिनमें कर्बोदेत का परिमाण अधिक होता है उनमें प्रकाश संश्लेषण क्रियाकी शक्ति बहुत देर तक रहती है।

१—दूसरी छोटी छोटी वस्तुयें—नशा कराने वाली औषधियाँ (Anaesthetics)—यथा ईथर (Ether) और क्लोरोफाम (Chloroform) से प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया घट जाती है लेकिन यदि परिमाण अधिक हो जाय तो पौधे मर जाते हैं। पर यदि परिमाण बहुत कम हो तो कुछ देरके लिये प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया रुक जाती है लेकिन उसके बाद धीरे धीरे फिर उनमें शक्ति आ जाती है।

२. अम्ल (Acids)—यदि अम्ल बहुत अल्प परिमाणमें दिया जाय तो प्रकाश-संश्लेषणकी गति बढ़ जाती है लेकिन एडोल्फ मेयर (Adolph Mayer) का यह कहना है कि काष्ठिकाम्ल (Oxalic) देने से पौधों या पत्तियोंमें श्वासलेनेकी गति बढ़ जाती

है और जिससे कर्बन द्विओषिदका परिमाण भी बढ़ जाता है और इसी कारण इस कर्बन द्विओषिद द्वारा पौधे या पत्तियां अपने प्रकाश संश्लेषणको गति भी बढ़ा लेते हैं क्योंकि ईवर्ट (Ewart) ने स्फुरिकाम्ल (Phoshoric) में कुछ बढ़ाव नहीं पाया।

बेनेकी (Benecke) सन १९२१ में इस सिद्धान्त पर आये कि अम्ल पर्णहरिन् पर उत्तेजना (Stimulant) का प्रभाव डालते हैं या दूसरी बात यह हो सकती है कि जलीय पौधेके आसपास के जलकी बनावटको अम्ल बदल देते हैं और जलमें घुले हुये कर्बन द्विओषिद अम्ल द्वारा निकलना शुरू होते हैं और तीसरी बात यह भी हो सकती है कि पौधोंके भीतर कुछ कार्बनिक अम्ल (Carbonic acid) वर्त्तमान रहता है और बाहरसे दूसरा कोई अम्ल देनेसे ये कर्बन द्विओषिद के स्वरूपमें निकलना आरम्भ करते हैं। इन उपर्युक्त तीन कारणोंसे अम्ल प्रकाश संश्लेषणकी गतिको बढ़ा देते हैं। जगदीश बोस ने सन् १९२३ में पौधोंमें प्रकाश संश्लेषणकी नोषिकाम्ल देनेसे बढ़ती हुई पाई है।

घावका प्रभाव (Wounding):—कोष्टिच्यू (Kostychew) सन् १९२१ में इस सिद्धान्त पर आये कि घावका प्रभाव प्रकाश संश्लेषण की गति पर अति अल्प पड़ता है। उनका कहना यह है कि हरितपिंड पर ही प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया स्थापित होती है और बिछुड़े (isolated) हरितपिंडमें प्रकाश संश्लेषण करनेकी शक्ति रहती है इस कारण घावका प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

बिजलीका प्रभाव (Electricty)—थोविनिन (Thowinin) ने सन् १८९६ में बहुतसे जलीय और स्थलीय पौधों पर बिजलीका प्रभाव देखा। ये अपनी परीक्षा द्वारा इस सिद्धान्त पर आये कि यदि पत्तो या शाखोंके तलेसे ऊपरकी ओर बिजली दी जाय तो प्रकाश संश्लेषण की गति बढ़ जाती है पोलेसाई (Polacei) भी इसी सिद्धान्त पर आये। इसके अलावा इन्होंने यह भी देखा है कि यदि बिजली गति उलटी कर दी जाय यानी बिजली ऊपरसे तलेकीकी ओर आये तो प्रकाश संश्लेषण की गति घट जाती है।

प्रेरक जीव (Enzyme) और दूसरे कललात्मक (Protoplasmic) हेतु :—

विलस्टेटर (Willstatetr) और स्टोल (Stoll) ने प्रकाश संश्लेषण की पर्णहरिन् के परिमाण पर परीक्षा करते समय यह देखा था कि यदि दो भिन्न प्रकारकी पत्तियाँ ली जाँय जिनके पर्णहरिन् का परिमाण एकसा हो, और यदि दूसरे हेतुओं (factors) को अधिक परिमाणमें रक्खा जाय तो उन दोनों पत्तियोंमें प्रकाश संश्लेषणकी गति कम बेशी होती है। इसका कारण उन्होंने भीतरी दूसरी हेतुओंके ऊपर छोड़ दिया था। ये हेतु कललात्मक या प्रेरकजीव समझे जाते हैं। इन दोनों वैज्ञानिकों ने हरी और पीली पत्तियोंके ऊपर भी काम किया है। इन्होंने यह देखा कि उत्तापकी प्रखरताका असर हरी पत्तियोंके ऊपर अधिक पड़ता है; लेकिन प्रकाशकी तेजीका पीली पत्तियों पर अधिक होता है। कारण यह है कि पर्णहरिन् वाली पत्तियोंमें कललात्मक या प्रेरकजीव हेतु गति को सीमाबद्ध करते हैं या उसमें ये हेतु बहुत कम परिमाणमें होते हैं जिससे केवल वही प्रकाश संश्लेषण की गति पर प्रभाव डालता है और पर्णहरिन अधिक परिमाणमें होते हुए भी क्रिया पूरी तरहसे करनेमें समर्थ नहीं होता। पीली पत्तियों या कम पर्णहरिन वाली पत्तियोंमें कललात्मक हेतु अधिक परिमाणमें होता है और इसमें पर्णहरिन गतिको सीमाबद्ध करती है, जिससे थोड़े ही तापमें कुल पर्णहरिन काममें आ जाती है; किन्तु प्रकाशकी तेज़ी गति पर काफी प्रभाव डालेगी क्योंकि यह प्रकाशकी रसायनिक अवस्था को बढ़ा देती है और जिससे थोड़ी सी पर्णहरिन् ज्यादा प्रकाशकी तेज़ी को सहायता से गति को बढ़ा देगी।

ऊपर दी हुई परीक्षासे यह भली भाँति मालूम होता है कि पर्णहरिन के सिवाय और दूसरे हेतु भी प्रकाश संश्लेषणकी गतिसे सम्बन्ध रखते हैं और ये दूसरे हेतु कललात्मक या प्रेरकजीवी हैं।

भीतरी गठन (Anatomical structures)—

धूप और छायामें उगने वाले पौधोंका भीतरी गठन भिन्न भिन्न प्रकारका होता है और इस भेदके कारण उनमें प्रकाश संश्लेषणकी गतिमें भी भेद हो जाता है। जिन पत्तियामें पर्णहरिन् वाले कोष्ठों (cells) में दो या तीन तहें होती हैं वे एक तहकी पर्णहरिन वाले कोष्ठों को पत्तियोंसे अधिक तेज़ीके साथ प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया कर लेती हैं। मोटाईके अतिरिक्त और दूसरे गठनात्मक हेतु भी हैं जोकि कर्बनद्विओषिद्के भीतर घुसनेके मार्गको मुश्किल या आसान कर देते हैं या कोष्ठोंके कर्बन द्विओषिद्की शोषण क्रियामें अन्तर डाल देते हैं। इन पत्तियोंमें प्रकाश संश्लेषण कम होता है।

आहारीय पदार्थका पौधोंके भीतर संग्रहित हो जानेका प्रभाव (Accumulation of Products)

यह आशा की जाती है कि यदि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बराबर होतो रहे और यदि क्रियाका फल कोष्ठोंसे न हटकर बराबर संग्रह होते रहे तो एक ऐसी अवस्था आयेगी जबकि प्रकाश संश्लेषण बन्द हो जायगा।

शेपोसचिनिकोफ़ (Saposchnikoff) ने सन् १८८६ में पौधेसे एक पत्ती अलग कर धूपमें रक्खो। इसका मतलब यह है कि पत्तीके प्रकाश संश्लेषण क्रियाका फल कहीं और न हट सके। वे इस परीक्षा द्वारा इस सिद्धान्तपर आये कि कुल वज़नके १० से लेकर २५ फी सदी तक कर्बोदेत (Carbohybrate) हो जानेके बाद उस पत्तीमें प्रकाश संश्लेषणकी शक्ति नष्ट हो जाती है।

इनके अलावा और दूसरे वैज्ञानिकों ने भी इस बातको अपनी परीक्षा द्वारा सिद्ध किया है लेकिन उनकी संख्यायें भिन्न भिन्न हैं।

ए० मूलर (A. Muller) ने सन् १८०४ में यह सिद्ध किया कि आहारीय पदार्थका भीतर संग्रह हो जाने से प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया रुक जाती है। उन्होंने यह देखा कि जो पौधे अपने आहरीय द्रव्य शर्कराके रूपमें जमा करते हैं वे उनकी तुलनामें जो कि अपने आहरीय मांड या नशास्ता के आकारमें संग्रह करते हैं कहीं कम प्रकाश संश्लेषण क्रियाका अन्त फल उत्पन्न करते हैं। मांड या नशास्ता बहुत सी शर्कराके अणुओंके प्रभाव से बनता है और यह ठोस अवस्थामें पर्ण-हरित रहित कोष्ठोंमें जाकर जमा हो जाता है जिससे कि प्रकाश संस्थापनकी जगह खाली कर दी जाती है, लेकिन शर्कराओंमें यह बात नहीं पाई जाती और इसलिये ये कम द्रव्य उत्पन्न करनेमें समर्थ होती हैं।

समालोचना

प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान—ले० डा० निहाल-करण सेठी, डी० एस-सी०, प्रकाशक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पृ० सं० ५१० + २६। कागज, छपाई और जिल्द अत्युत्तम। मूल्य ४) (पुस्तक पर कहीं लिखा नहीं है)। चित्र सं० ३१२

अप्रेल सन् १९२७ में श्री घनश्यामदास जी बिड़ला ने काशी विश्वविद्यालय को ५००००) इस उद्देश्यसे दिया था कि इस धनसे उच्चकोटिकी विद्यालयोपयोगी पुस्तकें हिन्दीमें प्रकाशित की जायँ। इस कार्य्यके लिये विश्वविद्यालय ने एक समिति बना दी जिसने इण्टरमोडियेट कक्षाके विद्यार्थियों की आवश्यकता को दृष्टिमें रखते हुये, एक आयोजना प्रस्तुत की। इसी प्रयास के फलस्वरूप इस प्रारम्भिक भौतिक रसायनकी रचना की गई है।

डा० निहालकरण सेठी जी हिन्दी वैज्ञानिक साहित्यके बहुत ही पुराने प्रेमी हैं, और आपको अध्यापन कार्य्यका भी विशद अनुभव है, उनकी लेखनीसे लिखी गई यह पुस्तक सर्वथा स्तुत्य है। इसमें सन्देह नहीं कि इस पुस्तक को सेठीजी ने सुन्दर, ललित एवं सरल भाषामें लिखा है, विषय की विवेचना स्पष्ट शब्दोंमें की गई है, और जो गुण किसी भी अच्छी 'टेक्स्टबुक' में हो सकते हैं वे सभी इसमें वर्त्तमान हैं। भौतिक विज्ञान पर बहुत दिनोंसे एक सुन्दर पुस्तककी आवश्यकता थी। मनोरञ्जक पुस्तकमालामें प्रकाशित श्रीसम्पूर्णानन्दजीका भौतिक विज्ञान बहुत पुराना हो चला था और उसका क्षेत्र केवल स्कूली कक्षाओं तक ही सीमित था। महेशचरण सिंह जी की विद्युत् पुस्तकें तो सर्वथा अप्राप्य और अगोचर हो चुकी थीं। विज्ञान परिषद् प्रयागकी दो पुस्तिकायें ताप और चुम्बक ही हमारी रही सही सम्पत्ति थीं। 'ताप' का परिवर्धित संस्करण अभी विज्ञान परिषद् ने प्रकाशित किया है जिसमें इण्टर मीडियेट के योग्य सामग्री है। ऐसी अवस्थामें इस भौतिक विज्ञानका प्रकाशित होना एक बड़े हर्षकी बात है।

पुस्तककी उपयोगितामें कोई सन्देह नहीं है, और जब वह सुन्दर कागज पर चित्रित छपी हुई है, तब तो उसकी शोभा और भी अधिक बढ़ जाती है। इस पुस्तकमें (१) द्रव्यके सामान्य गुण, तथा गति स्थिति विज्ञान, (२) ताप, (३) प्रकाश (४) शब्द और (५) चुम्बक और विद्युत् नामक ५ भाग हैं। अन्तमें रोञ्जन किरणों और बेतारका तारका भी मनोरञ्जक उल्लेख दिया गया है। कुल ४० परिच्छेद हैं।

इस पुस्तकके पहले भागमें समुचित सामग्री है पर ताप नामक दूसरे भागमें कुछ और विषयोंके समावेशकी आवश्यकता थी। द्रव्यों और गैसोंके आपेक्षिकताप, तापका यन्त्रिक तुल्याङ्क गैसोंके प्रसार, बुन्सनजौली आदिके कलारीमापकाके वृत्तान्त आदि और दिये जाते तो इंटरमीडियेटकी कक्षा वालोंकी आवश्यकता पूर्ण होती। प्रकाश नामक प्रकरणमें भी उतनी ही सामग्री दी गई है जो स्कूली कक्षाओंके लिये तो सुमुचित है पर इंटरमीडियेट वालोंको इससे सन्तोष नहीं हो सकता है। वर्तनांकका प्रकरण अधूरा है। त्रिपार्श्वके कोण आदि निकालने की विधि और उपयोगिता भी देनी चाहिये थी। प्रकाशके वेग निकालने पर भी कुछ और विस्तारकी आवश्यकता थी। अनुनाद, सोनोमीटर, आदिके प्रयोग जो प्रयोगशालाओंमें किये जाते हैं उनका समावेश होना चाहिये था। विद्युत् और चुम्बकका प्रकरण साधारणतया समुचित है, पर चुम्बकत्वमापकों (Magnetometers) के प्रयोगोंके विषयमें कुछ और होना चाहिये था।

सारांश यह कि इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक मनोरञ्जक और उपयोगी दोनों है पर यदि यह कहा जाय कि इस पुस्तकसे इंटरमीडियेटकी कक्षा वाले विद्यार्थियों की सन्तुष्टि हो जायगी, तो हमें सन्देह है।

अस्तु, हम इस सुन्दर पुस्तक के लिये डा० निहालकरण सेठीको बधाई देते हैं, और हमें आशा है कि इस पुस्तकका जनता आदर करेगी। विद्यार्थियोंके अतिरिक्त विज्ञानके अन्य प्रेमियोंके लिये भी यह पुस्तक बहुत लाभ दायक होगी।

पारिभाषिक शब्दों के विषय में हमारा और सेठीजी का कुछ मतभेद है ही, अतः इसके विषयमें कहना व्यर्थ है।

सत्यप्रकाश

प्रतिष्ठाता
डाबर
(डाक्टर एस० के० बर्म्मन)
लिमिटेड
कलकत्ता
डाक्टर एस.के.बर्म्मन
स्थापित
SKB
ट्रेड मार्क
रजिष्टर्ड
सन् १८८४ ई०
५० वर्षोंसे भारतीय पेटेन्ट दवाओंके अतुलय आविष्कारक !
स्त्री रोग में !
"अबलारी" (REGD.)
(स्वप्न दोषकी दवा)
यह सब प्रकारके स्त्री रोगकी परीक्षित दवा है । मासिक धर्म व ऋतुके विकारसे अधिक व कम दिनोंमें महीना होना, खून पतला व जमा हुआ कम या अधिक दर्दके साथ जाना, सिर, कमर, पेडू और जाँघमें दर्द तथा प्रदर दोष मिटकर स्त्री का दुर्बल शरीर पुष्ट हो जाता है। मूल्य—प्रति शीशी २।) डा० म० ॥-)
"स्वप्न-हरी" (REGD.)
(स्वप्न-दोषकी गोली)
ब्रह्मचर्य्यकी शिक्षाके अभावसे यह रोग विशेष कर नवयुवकों और छात्रोंमें पाया जाता है। मूत्रके साथ शुक्रका निकलना, स्वप्नमें वीर्य्यका पतन, सिर चक्कर आना, स्मरण शक्तिकी कमी आदि इसके लक्षण हैं। स्वप्न-हरीमें कोई भी उत्तेजक पदार्थ न रहनेके कारण यह तुरन्त अपना गुण दिखलाती है।
मूल्य—प्रति शीशी १) एक रुपया। डा० म० तीन शीशी तक ।=) छै आना।
नोटः—हमारी दवाएँ सब जगह दवाखानोंमें बिकती हैं। डाक ख़र्च बहुत बढ़ गया है अतः उसकी बचतके लिए अपनेस्थानीय हमारे एजेण्ट से खरीदये।
[विभाग नं० १२१] पोष्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता ।
एजेण्ट—इलाहाबाद (चौक) में बाबू श्यामकिशोर दूबे ।

अमूल्य अवसर

मूल्यमें कमी

केवल चार मास के लिये

जो व्यक्ति चार मासके अन्दर जनवरी तक हमारे यहाँसे निम्न पुस्तकें मँगावेंगे उनके साथ रियायती दाम पर पुस्तकें भेजी जावेंगी—

	पुस्तक	असली मूल्य	रियायती मूल्य
१.	मनोरञ्जक रसायन—प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव लिखित ...	१॥)	॥।)
२.	सूर्यसिद्धान्त—श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव रचित पूरा सेट ...	४।=)	३॥)
३.	पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य	-)	)॥
४.	गुरुदेव के साथ यात्रा	।=)	।)
५.	शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम	।)	≡)
६.	केदार बद्री यात्रा	।)	=)
७.	चुम्बक	।=)	।)
८.	कृत्रिम काष्ठ	=)	-)॥
९.	ज्वर निदान सुश्रूषा	।)	=)
१०.	मनुष्यका आहार	१)	॥।)
११.	सुन्दरी मनोरमाकी कथा	-)॥	-)
१२.	सर चन्द्रशेखर वैंकटरमन	=)	-)
१३.	समीकरण मीमांसा दोनों भाग	२=)	१॥।)
१४.	مبادی الطب رہنمائے کمپونڈران	१।)	॥।)
१५.	مفتاح الفنون حصہ اول پہلا اڈیشن	।)	≡)
१६.	حرارت	।)	≡)
१७.	زینت وحش وطیر	-)	)॥

मंत्री—

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग ।

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

पूर्ण संख्या—२००

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 703.

भाग ३४ VOL. 34.

वृश्चिक, संवत् १९८८

नवम्बर १९३१

संख्या २ No. 2

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

व्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३४ } वृश्चिक, संवत् १९८८ { संख्या २

प्रकाशत्पादक

(Light-Sources)

[ले० श्री वा० वि० भागवत एम० एस-सी०]

कोई भी प्रकाश रासायनिक क्रिया किस तरह होती है यह मालूम करनेके लिये प्रकाश दीपकोंकी जरूरत होती है। प्रकाश एक ही तरहका नहीं होता, उसमें भी भेद है यह प्रथम-परिच्छेदमें आपने देखा होगा। प्रकाश भिन्न भिन्न तरहका होनेके कारण उसका रासायनिक प्रकाश परिणाम भी भिन्न भिन्न होता है। इसीलिये किस का क्या परिणाम है यह जाननेके लिये, हमको यह मालूम होना चाहिये कि किसी विशिष्ठ प्रकाशको सम्पूर्ण प्रकाशसे कैसे अलग कर सकते हैं, या इसको हम कैसे पैदा कर सकते हैं। यदि भिन्न भिन्न प्रकाशका पैदा करना मालूम हो जाय तो किस प्रकाश की प्रकाश रासायनिक-क्रिया किस तरहकी होती है, यह मालूम करना सुलभ हो जायगा।

सूर्य प्रकाश तो हमको बिना पैसेके मिल सकता है, और उसकी सहायतासे प्रकाशके परिणामका अध्ययन भी हो सकता है। लेकिन इसमें बहुत सी कठिनाई पैदा होती हैं। एक तो प्रकाशकी तीव्रता सब जगह एक सी नहीं रहती। हमारे यहां जितनी तीव्रता होती है उतनी यूरोपमें नहीं होती। फिर प्रकाश ऋतुकालके अनुसार बदलता रहता है। सबेरे प्रकाश कम होता है, तो दुपहरको अधिक रहता है। इसीलिये सूर्य प्रकाशका उपयोग हम चाहे जिस वक्त नहीं कर सकते। उसकी तीव्रता पर भी हमारा कुछ बस नहीं चल सकता। इसी लिये इस प्रकाशकी प्रयोगिक उपयोगिता बहुत कम है। जबसे पराकासनी किरणोंकी उपयोगिता मालूम हुई उसी समयसे इस प्रकाशका पैदा करनेके लिये बहुतसे वैज्ञानिकों ने यत्न किये। सूर्य प्रकाशमें ये पराकासनी किरणें बहुत ही कम होती हैं। इसी

लिये कृत्रिम प्रकाश-दीपकोंकी या प्रकाशोत्पादकों की जरूरत पड़ती है।

विद्युत् दीप

दृश्य प्रकाशको कृत्रिम तरहसे पैदा करनेके लिये 'वुल्फ्राम वेष्ठन ज्वलित-दीप' बहुत ही उपयुक्त है। इसका प्रकाश करीब करीब सूर्य प्रकाश के समान रहता है। अर्थात् इन दोनोंके किरण-चित्र एक ही प्रकारके होते हैं। इसमें भी पराकासनी किरण बहुत ही कम होती हैं। जब दृश्य प्रकाशकी रासायनिक क्रियाका अध्ययन करना हो तो यह दीप कार्यमें लाते हैं। यदि वुल्फ्रामकी जगह कर्बन का वेष्ठन हो तो प्रकाशकी तीव्रता कम होगी। ऐसे दीपका तापक्रम २०००° शतांशसे कभी बढ़ नहीं सकता। इसी कारण वेष्ठन तन्तालम् या वुल्फ्रामम् धातुका होना चाहिये।

जब प्रकाशोत्पादक बिन्दु स्वरूप होने की आवश्यकता होती है, तब 'पाइण्टोलिट दीप' काम में लाते हैं। इससे दृश्य प्रकाशका अविच्छिन्न किरण-चित्र मिलता है। इस दीपमें धनोदके वास्ते वुल्फ्रामम् धातुका एक गोला रखा जाता है। जब इस धनोद पर वुल्फ्रामम् धातुकी पट्टीके ऋणोदसे ऋणाणु प्रत्याघात करते हैं तब दीप जलने लगता है। वायु पदार्थोंके जलनेसे जो प्रकाश मिलता है उसका प्रकाश रासायनिक क्रियामें बहुतही कम काममें लाते हैं। सिरकिलिन जब ओषजनमें ठीक तरहसे जलाया जाता है तब उससे काफी प्रकाश मिलता है, और उसमें पराकासनी किरण भी काफी होते हैं। नन्स्र्ट-दीप दृश्य प्रकाशके लिये अच्छा है लेकिन उसमें पराकासनी किरण कम होनेके कारण आजकल उसको कार्यमें नहीं लाते। द्रव पदार्थ जब ओषजनमें जलते हैं तब भी प्रकाशकी उत्पत्ति होती है। ऐसे दीप कार्यमें बहुत कम लाये जाते हैं। पराकासनी किरणके वास्ते कर्बन-द्वि-गन्धिद दीप वुल्फने निकाला। कर्बन द्विगन्धिद ज्वलनशील तथा स्फोटक होनेके कारण ऐसे दीपसे दुर्घटना होनेकी आशंका रहती है।

कभी कभी धातुओंके बिजलोदों से अधिक तनाव पर वेधित तड़ित् विसर्ग पैदा करनेसे जो प्रकाश निकलता है उसका भी उपयोग होता है। बिजलोद के वास्ते स्फटम्, सन्दस्तम्, ताम्रम्, कोबल्टम्, लोहम्, नकलम्, मगनीसम्, वंगम्, सीसम्, वुल्फ्रामम्, दस्तम्, आदि धातुको काम में ला सकते हैं। यदि यह तड़ित् विसर्ग पानीमें निकलने दिया जाय तो पराकासनी प्रकाश का अविच्छिन्न किरण-चित्र पाया जाता है। इसीलिये जब किसी पदार्थका किरण-शोषण-चित्र जानना हो तो यह प्रकाश बहुत उपयुक्त है। प्रकाश रासायनिक क्रिया के वास्ते इसकी उपयोगिता कम है।

कर्बन या धातुके खुले चापसे भी उपयुक्त प्रकाश पैदा होता है। इसके बिजलोद एक या भिन्न धातुओंके रहते हैं। यह चाप सीधी-धारासे पैदा करते हैं, और धारा २२० वोल्ट और ६ अम्पीयर पर चलायी जाती है। यदि कर्बन चापमें और भी कुछ पदार्थ जलाये जायँ तो प्रकाश बढ़ता है। नीचे दिये पदार्थोंको उसमें जलाया जाता है।

(१) खटिक प्लविदसे पीले रङ्गका प्रकाश पाते हैं। इसमें नीले रङ्गका प्रकाश कम होता है।

(२) स्त्रंश प्लविद लाल रंगके प्रकाशके लिये।

(३) ताम्रलवणसे नीला रंग निकलता है।

(४) लोह या शैलम्के लवण, लाल जांबून रङ्ग पैदा करते हैं।

(५) लीन-ओषिद सफेद प्रकाश देता है।

(६) टिटेनम् लवण नीले रंग के वास्ते ठीक हैं।

(७) डायडोमियम् ओषिदसे नीला ही रङ्ग मिलता है।

(८) थोर-ओषिद का प्रकाश लाल रङ्ग का होता है।

(९) सृजक ओषिद से शुद्ध नीला रङ्ग निकलता है।

बिजलोदके लिये चापमें ताम्रम्, सन्दस्तम्, लोहम् और वुल्फ्रामम के। ही बहुधा चुना जाता है। यदि बहुत कम लहर लम्बाईका पराकासनी किरणों की जरूरत हो तो धातुके बिजलोदका तड़ित् ही कार्यमें लाना पड़ता है।

पारद वाष्प दीप

सन् १६०१ में कूपर-हिविट दोनों ने मिल कर सर्व प्रथम एक पारद-वाष्प-दीप बनाया। इसके लिये पारद वाष्पकी बाधा मालूमकी गयी थी। वाष्परूप होने वाले पारदकी इस रूपमें जानेकी गति तथा सलिलीकरण की गति इस दीपमें एक ही रखनी आवश्यक है। १६०२ में आरनाज ने यह देखा कि यदि जिस शून्य नलीके अंदर पारद वाष्प भरी हो उसमेंसे सीधी धारा जाने दी जाय तो पारद चाप मिलता है, लेकिन ऐसे दीपसे पराकासनी किरण मिलना कठिन था क्योंकि नली कांचकी होनेसे और कांचसे पराकासनी किरण बाहर न जा सकनेके कारण, यह किरण वहां ही रुक जाते थे। इसके लिये क्वार्ट्ज़ या बिल्लोर की नलीकी योजना हुई। ऐसे पारद वाष्प दीपका ऋणोद पारदका ही रहता है, और धनोद पारद का या वुल्फ्राममका हो सकता है। यदि इन दीपों को अधिक तापक्रम पर चलाया जाय तो उनसे कार्य लेना कठिन हो जाता है। इस वास्ते उनको ठंडा किया जाय तो प्रकाश पानीके अन्दरसे आता है। इसीलिये उसमें बहुतसे अंशका शोषण हो जाता है। इस तरहसे उसकी तीव्रता कम हो जाती है। यदि दीपका धनोद भी पारदका हो तो वह अधिक दिन चलता है और जल्द दुरुस्त भी हो सकता है। दीपका धनोद वुल्फ्राममका होनेसे उसके तैयार करनेमें सुलभता रहती है।

फाउकेने इस दीपकी एक नई तरकीब निकाली है। भीतर निष्क्रिय वायु थोड़े अंशमें भरा जाता है और बिजलोद की जगह पारद वाष्पको जल्द बदलने वाले विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र से उत्तेजित करते हैं। क्वार्ट्ज़ पारद वाष्प दीपसे मिलनेवाला प्रकाश स्थिर रहता है। अधिकतर पराकासनी किरणोंके लिये यह उपयुक्त है। यदि नलीकी लम्बाई वोल्ट और अम्पीयरका परिमाण स्थित हो तो निकलने वाला प्रकाश भी हर वक्त वही रहता है। इस दीपका प्रकाश किरण चित्र १८५० से १४००० अ तक होता है। तब भी ५७६४, ५७८१ और ५४६१ अ° रेखायें दृश्य प्रकाशमें अधिक तीव्र रहती हैं। उसके पराकासनी प्रकाशमें ३६५० से ३६५४ तक और ३६८४ तथा ४०४६-४०७८ अ तक का प्रकाश अधिक तीव्र होता है। ४८०० अ लहर लम्बाईसे कम होने वाले प्रकाशकी शक्ति इस दीपसे मिलने वाली शक्तिकी ⅓ होती है। इन दीपोंकी शक्ति समयके साथ कम होती जाती है। पहिले ५०० घंटे में कुछ परिवर्तन नहीं होता, फिर १००० से १५०० घंटोंमें तीव्रता आधी हो जाती है। अधिक से अधिक यह दीप २५०० घंटे तक २२० वोल्ट पर चल सकता है।

पारद धातुके अतिरिक्त सन्दस्तम्, दस्तम्, सीसम्, विशदम्, आंजनम्, थलम्, तथा शशिम् के बिजलोदसे क्वार्ट्ज़ दीप बन सकते हैं। लेकिन इन धातुओंका प्रसार गुणक क्वार्ट्ज़से भिन्न होता है, अतः चलाते वक्त और बन्द करनेके वक्त ऐसे दीपोंके टूटनेका डर रहता है। जब इन दीपोंसे निकलने वाले पराकासानी किरणोंसे कार्य करना हो तो आंखोंको बचानेके लिये रङ्गीन कांचका चश्मा लगाना चाहिये।

भिन्न भिन्न पदार्थोंकी पारदर्शकता तथा प्रकाश छन्ने (Filters)

ऊपर बताये हुये दीपकोंसे जो प्रकाश पाया जाता है वह एक ही रङ्ग का नहीं होता। और प्रकाश रासायनिक क्रियाके वास्ते तो किस प्रकाश का क्या परिणाम होता है यह मालूम होना जरूरी है। इसलिए दीप प्रकाशको भिन्न भिन्न एक-रङ्गीय प्रकाशमें विभाजित करना पड़ता है। यह कार्य

'किरण चित्र मापक' का होता है। इसकी सहायता से संघटित प्रकाशको उसके अवयवोंमें विभाजित कर सकते हैं। लेकिन यह 'किरण-चित्र-मापक' हर समय उपयुक्त नहीं होता। ऐसे समय 'प्रकाश छन्ने जिनको प्रकाशके सामने रखनेसे उसके पार एकही रङ्गका प्रकाश आता हो और शेष प्रकाशका शोषण हो जाता हो, यानी जिनमेंसे प्रकाश छाना जाता है— कार्यमें लाते हैं। जिस प्रकारका प्रकाश चाहिये उसके अनुरूप भिन्न भिन्न छन्नेसे कार्य लेते हैं। प्रकाश रासायनिक कार्यमें पराकासनी और दृश्य प्रकाशका महत्व अधिक है। छन्ने ठोस पदार्थ भी होते हैं, द्रव पदार्थ भी और वायव्य पदार्थ भी हो सकते हैं। कुछ थोड़ेसे उपयुक्त छन्ने नीचे दिये जाते हैं।

वही प्रकाश उपयुक्त है जो एक ही रङ्गका हो जैसे ऐसी बुनसनकी बत्ती, जिसमें सैन्धकका लवण डाला गया है। इससे ५८९६ का पीला प्रकाश मिलता है। फिर भी यह एक-रंग-प्रकाश तीव्र और निरन्तर स्थिर होना चाहिये। तभी उसको एक रङ्ग का उत्कृष्ट प्रकाश कहा जा सकता है। इसीलिये जिन छन्नोंसे ऐसा प्रकाश मिल सकता है वही सबसे अच्छे छन्ने कहलाते हैं।

छन्ने जैसे रंगीन कांचके होते हैं वैसे जिलेटिन रंगीन फिल्मके भी रहते हैं। ऐसे प्रकाश छन्ने कोडक कंपनी बनाती है। राटनके तथा वैलके छन्ने प्रसिद्ध हैं। जिस पदार्थका छन्नेके लिये कार्यमें लाते हैं वह प्रकाशमें रखनेसे खराब नहीं होने चाहिये। अर्थात् उससे मिलने वाला प्रकाश हर समय वही

काँचके छन्ने

नाम	पारदर्शक प्रकाशकी कमसे कम लहर लम्बाई
फ्लिट कांच २ सहस्त्रांशमीटर मोटाई	२७५० अ°
” १ ”	३१५० अ°
क्राऊन कांच	२९५० अ°
अभ्रक ०·५ ” मोटाई	२८०० अ°
युविओल १·३ ” ”	२५३० अ°
विटा १·३ ” ”	२७५० अ°
पानी	२००० अ°
कार्ट्ज़ (बिल्लोर) ५०–१०० ” ”	१८०० अ°
फ्लोरस्पार १ ” ”	१२००-१३०० अ°।
खिड़कीकांच २ ” ”	३२०० अ°
सेल्युलाईडकी फिलम	३००० अ°
क्रुक्सका कांच (८३°/० पिघला हुआ कांच और १७°/० सूजक नोषेत)	३६५० अ°
क्रुक्सका कांच (सोडा कांच ९६·८°/० लोहओषिद २·८५ °/० कर्बन और इमलेत ०·३५°/०)	९६°/० परालालकिरण को शोखता है।
क्रुक्सका कांच (दुष्प्राप्य पार्थिवके ओषिद)	सब दृश्य प्रकाश और ३६५० अ°
रजत फिलमका कार्ट्ज़ चान्सका पराकासनी कांच	पराकासनीके वास्ते ३९००-३३०० अ°

और उतना ही होना चाहिये । यदि यह पदार्थ कलोद (Colloid) हो तो उसका शोषणगुणक विरलताके साथ तथा तापक्रम के साथ बदलना न चाहिये ।

परालाल किरणोंके शोषणके लिये २°/० ताम्रिक हरिद या कार्निंगका छन्ना 'जी ३६२' ठीक है। चमकदार प्रकाश के शोषण के वास्ते रोदामिन, फ्लोरेसिनके घोल या कार्निङ्गका छन्ना 'जी ३७१ आर' उपयुक्त है। कार्निङ्गके छन्ने और भिन्न भिन्न रङ्गके घोल भिन्न भिन्न प्रकाशके लिये छन्नोंका कार्य करते हैं। यदि दृश्य प्रकाशकी जरूरत हो तो कांचके प्यालेमें घोल को रखते हैं। पराकासनी किरणोंके लिये क्वार्ट्ज़का प्याला होना चाहिये।

वायव्य छन्नोंमें 'अरुणिन्' तथा 'हरिन्' उपयुक्त हैं। हरिन् यदि क्वार्ट्ज़के प्यालेमें रखा जाय तो २५४० अ° तकका प्रकाश पा सकते हैं। ३४००-३००० अ° भागमें उसकी शोषण शक्ति बहुत है। अरुणिन् गैस ३४०० अ° के ऊपरका सब प्रकाश शोषण कर लेता है। इन गैसोंके घोलका शोषण अणुके सलिलीकरणके कारण बदलता है यदि क्वार्ट्ज़के दो प्यालों में इन दोनों गैसोंको अलग अलग भरा जाय और प्यालेकी मोटाई ७ शम हो तो २३००-२८०० अ°का प्रकाश ही पार आ सकता है। ओषजन १८६० अ° तक और नोषजन १२५० अ° तक प्रकाश लहरोंका शोषण करते हैं। इनसे अधिक लहर लम्बाईके किरणों का शोषण नहीं होता। जब पारद वाष्पदीप चलाया जाता है तब हवामेंके ओषजनसे ओषोन वायव्य तैयार होता है और इसको हवाके प्रवाहसे न निकाला तो वह २३००-२८०० अ° तकके किरणों का शोषण कर लेता है। छन्नोंके ऊपर इतना कार्य होनेके बाद भी एक रङ्गका यानी एक ही लहर लम्बाईका प्रकाश हम किसी तरहसे भी नहीं पा सकते। हर समय हमको किरण पुंज ही मिलता है और वह जितना हो उतना छोटा वह एक-रङ्ग प्रकाशके करीब करीब बराबर समझा जाता है। और इसीलिये जिस दीपका किरण चित्र 'रेखा-किरण-चित्र' नहीं होता उनसे एक लहर लम्बाईका प्रकाश नहीं मिलता।

द्रव छन्ने

छन्ने	रङ्ग	मोटाई	बाहर आनेवाला प्रकाश
बैंगनी रवे, (क्रुस्टलवायलट) ०·००५ ग्राम १०० घ. शम. में पांशुज रागेत १० ग्राम १०० "	लाल	२० स. म.	६६५६ अ°
पांशुज रागेत ६ ग्राम १०० "	पीला	७० स. म.	५८६० अ
द्विनील ०·०२ ग्राम १०० घ. सम. में ताम्र गन्धेत ५ उ$_2$ ओ, १५ ग्राम १००	नीला	२ स. म.	४८८५ अ°
बैंगनी रवे ०·००५ ग्राम १०० " ताम्र गन्धेत ५ उ$_2$ ओ १५ ग्राम १०० "	बैंगनी	२ स. म.	४४८२ अ°
बैंगनी पोला ०·२५ ग्राम १०० " ताम्र हरिद ६० ग्राम १०० "	हरा	२ स म.	५३३२ अ०
बैंगनी रवे ०.००२५ ग्राम १०० " ताम्र हरिद २५ ग्राम १०० "	नीला	२ स. म.	४६५५ अ०

प्रकाश परिणाम देखनेकी प्रयोगिक-पद्धति

जब प्रकाशके परिमाणात्मक कार्यका अध्ययन करते हैं तब प्रकाश शोषण कितना हुआ यह जानना तो अत्यन्त महत्वकी बात है। इसीलिये जिस प्यालेमें पदार्थको रखकर इसके ऊपर प्रकाशका क्या परिणाम होता है यह देखना हो तो उस प्यालेके आमने सामनेके पृष्ठ सीधे होने चाहिये। इन सीधे पृष्ठों पर ही प्रकाशको गिराना होगा। गिरनेवाले प्रकाशकी तीव्रता स्थिर होनी आवश्यक है। उष्ण कटिबन्धके प्रदेशमें कुछ घण्टोंके लिये सूर्य प्रकाशको काममें ला सकते हैं। वुल्फ्रामम् दीप, पांइन्टोलीट दीप और कार्ट्ज़ पारद वाष्प दीपका प्रचार स्थिर दीपकताके लिये अधिक है। वुल्फ्रामम् दीप और पाइन्टोलीट दीपसे दृश्य प्रकाशका अविच्छिन्न किरणचित्र पाते हैं। यह प्रकाश पराकासनी किरणोंके लिये अनुपयुक्त है। इस वास्ते कार्ट्ज़ पारद वाष्प दीप ठीक समझा गया है। इससे रेखाकिरणचित्र मिलता है और वह नीचे दिया गया है।

दृश्य विभागः—६१५२, ५७६०, ५७००, ५४६१, ४६३६, ४५८, ४०७८, ४०४७, अ°

पराकासनी विभागः—३६५०, ३१३१, ३१२६, २६६७, २६५२, २५३७ अ°

कार्ट्ज़ पारद वाष्प दीपसे १८५० अ° तक का प्रकाश पाते हैं। जब पराकासनी किरणका परिणाम देखा जाता है तब क्रियापात्र कार्ट्ज़का होना चाहिये। कांच और युविओल कांचसे ३००० अ° और २५०० अ° लहर लम्बाईसे कम लम्बाईके किरण सोख लिये जाते हैं।

विद्युत् दीपोंकी तीव्रता वोल्टनके साथ बढ़ती है। कर्बन वेष्ठन द्वीपकी तीव्रता वोल्टनके छठवें वर्गमें बढ़ती है। इसीलिये कार्यके समय दीपका वोल्टन वही रहना चाहिये। इस तरहसे तीव्रता स्थिर रहती है। एक-रंग-प्रकाशके परिणामके लिये इस प्रकाशको प्रकाश-किरण-चित्र मापकसे विभाजित करते हैं। यदि किरणपुंजसे काम करना हो तो छन्ने भी उपयुक्त हैं।

यदि यह देखना हो कि तीव्रता कम अधिक करनेसे क्या परिणाम होता है तो दीपको पास या लम्बे रखनेसे तीव्रता इसकी दूरीके वर्गमें व्युत्क्रम-पातमें बदलती है। घूमता हुआ चक्र लिया जाय तो इसका छेद कम ज्यादा करनेसे तीव्रता छेदके देशके समानुपाती रहती है।

क्रियाकी गति तापक्रम पर निर्भर है। इसीलिये प्रकाशका परिणाम मालूम करते वक्त तापक्रम स्थिर रहना चाहिये। ताप-स्थित-पात्र (Thermostat) यह कार्य करता है। क्रिया कितनी हुई यह क्रियाके प्रकारके अनुसार भिन्न भिन्न तरकीबोंसे मालूम होता है। क्रियाके बारेमें चार बातोंका ज्ञान किया जाता है।

(१) भिन्न भिन्न तापक्रम पर अंधेरेमें तथा भिन्न भिन्न प्रकाशोंमें रासायनिक गति मालूम करना।

(२) भिन्न भिन्न तापक्रम और प्रकाश परकी सामर्थ्य गणना करना।

(३) तीव्रताके बदलनेसे क्या परिणाम होता है यह देखना।

और (४) प्रकाश शोषण कितना हुआ यह मापना।

ये चारों बातें कैसे मालूम होती हैं यह ऊपर और पूर्व परिच्छेदमें बतलाया ही है। कितना शोषण हुआ और कितनी क्रिया हुई यह जाननेसे प्रकाशके एक तन्मात्रा या क्वाण्टमसे कितने अणु तैयार हुए या विभाजित हुए यह जान सकते हैं। इसीको 'तन्मात्रा परिणाम' (Quantum yield) कहते हैं। प्रकाशकी क्रिया कितनी हुई यह देखनेके वास्ते उसमेंसे अंधेरेमें जितनी क्रिया होती है उतनी घटाई जाती है।

कुछ प्रकाश छन्ने

राटन छन्ने	कार्निङ्ग छन्ने	द्रव छन्ने	पारदर्शक प्रकाश अ°
१८ पराकासनी	जी. ५८६ रा. डब्ल्यू. ८—१० स.म.	दारील बैंगनीं और नोषोसोद्वि-दारील नीतिन्	३६५० ३६५६ ३६६३
३६ पा. बैंगनी	जी. ५८६ अ. ३—५ स. म. और नोविअोल ०.४ स. म.	दारील बैंगनी और कुनिन गंधेत या डायमंड फुक्सिन और कुनिन उदहरिद्	४०४७ ४०७८
५० पा० (Hg) नीला	नोविअोल अ. ३'० स. म, और जी. ५८५, ३—५ स.म.	कोबल्टका कांच और पस-कुलिन या कुनिन गन्धेत	४३५८
६२ पा. हरा या ७७ पा. विशिष्ट ७७ अ. पा. विशिष्ट व्यतिकरण मापकता के लिये	जी, ५५५ क्यू. ६—१० स.म. और जी. ३४ बाय ३. ४ स. म.	पांशुज द्विरागेत और नौलिनम् अमोनियम नोषेत	५४६१
२२ पा. पीला	जी. ३४ आर ३—४ स.म.	क्रायसोडीन और इओसिन या संपृक्त पांशुज द्विरागेत, ताम्रगन्धेत ५ उ₂ ओ. और गन्धकाम्ल	५७६६—६०
८८ या ८६ अ०	जी. ५५४ इ. के. ६—८ स.म.	कोबल्टका नीला कांच और संपृक्त पांशुज द्विरागेत	परालाल ८५००

फुफ्फुस-यक्ष्मा-रोगियों का भविष्य

Prognosis of Tubercular cases

[ले० श्री कमला प्रसाद जी वर्मा, एम० बी०]

यक्ष्माक्रान्त ५ प्रकार के रोगी मिलते हैं :—

(१) ऐसे रोगी जो रोगाक्रान्त हो कर स्वयं रोग-मुक्त भी हो जाते हैं, उन्हें भी नहीं मालूम होता कि उन्हें कभी यह रोग हुआ था वा नहीं।

(२) ऐसे रोगी जिन के शरीर में क्षुद्र आक्रमण के लक्षण तो अवश्य पाये जाते हैं पर जो कुछ महीने तक अनुकूल जलवायु सेवन करने से अथवा किसी प्रकार की साधारण चिकित्सा से रोग मुक्त हो जाते हैं।

(३) ऐसे रोगी जिनके फुफ्फुसमें यक्ष्मा के विस्तृत चिह्न प्रस्फुटित होते हैं, किन्तु जो अच्छी चिकित्सा के प्रभाव से सदैव के लिए रोगमुक्त हो जाते हैं।

(४) ऐसे रोगी जिन के फुफ्फुस मे गर्त निर्माण हो जाता है किन्तु जो उत्तम चिकित्सा के कारण कुछ वर्ष तक स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

(५) ऐसे रोगी जिन का मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों २ दवा की।

निम्न लिखित बातें रोगियोंके लिए आशाजनक हैं:—

(क) रोग का बहुत आरम्भ में ही पहिचान जाना।

(ख) पारिवारिक इतिहास में यक्ष्मा का नामोनिशान न मिलना।

(ग) पहले का उत्तम स्वास्थ्य।

(घ) रोगी की अच्छी पाचन-शक्ति।

(ङ) अनुकूल परस्थिति।

(च) रोग का धीरे २ आक्रमण।

(छ) अधिक ज्वर वा अधिक फुफ्फुस प्रदाह का न वर्त्तमान रहना।

यदि रोगने फुफ्फुसावरण प्रदाह (Plurisy) का रूप धारण किया तो यह बहुत दिनों तक वर्त्तमान रहेगा, किन्तु रोगी की अवस्था आशाजनक होगी। बारम्बार रक्तस्राव होना भयङ्कर लक्षण है। जब रोग जड़ पकड़ लेता है तब वह चाहे किसी अंग में क्यों न हो, बीच २ में ऐसा जान पड़ता है ऐसी अवस्था सप्ताहों वा महीनों तक रह सकती है, मानों, रोगी रोगमुक्त हो गया, ज्वरका प्रकोप सदैव के लिए बन्द होगया, बुरे लक्षण विलीन होगये और साधारण स्वास्थ्य सुधर गया। किन्तु यह अवस्था अस्थायी होती है।

फुफ्फुस-यक्ष्मा के रोगियों की जीवन-अवधि निर्धारित नहीं की जा सकती। प्रायः २ वर्ष से ले कर १००० दिनों के भीतर ही उनकी मृत्यु हो जाती है।

यक्ष्मा-रोगियों के विवाह का प्रश्न।

इस सम्बन्ध में निम्न लिखित विषयों पर ध्यान देना उचित है।

(क) जिन रोगियों को ग्रन्थि-यक्ष्मा हुआ हो और वे उस से पूर्णतः रोगमुक्त हो गये हो तो वे दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर सकते है किन्तु उनकी सन्तानकी यक्ष्माक्रान्त होनेका परम्परागत प्रवृत्ति होगी।

(ख) ऐसे रोगी का जिसको एकबार फुफ्फुस यक्ष्मा हुआ हो और वह उससे मुक्त हो गया हो दाम्पत्य-जीवन सम्बन्धी प्रश्न बड़ा जटिल है। पुरुष रोगियों को तो अधिक बाधा नहीं होगी क्योंकि यदि उनका स्वास्थ्य और शक्ति अच्छी हुई, बाहरी परिस्थिति संतोष-जनक हुई और पारिवारिक इतिहास इतना दूषित नहीं हुआ तो इनके उस प्रकार के जीवन व्यतीत करने में अधिक कठिनाई नहीं है। यह भी सम्भव है कि उनकी सन्तान निरोग हो। किन्तु स्त्रियों को प्रसव समस्या के कारण स्त्री रोगियों (उसी दशाका) का दाम्पत्य जीवन-निर्वाह सम्बन्धी प्रश्न बहुत ही कठिन हो जाता है।

बहुधा देखा गया है कि उनके इस प्रकार विलास मय जीवनसे शारीरिक शक्तियां बहुत जल्द क्षीण भी हो जाती हैं। शरीर निरापद नहीं रह सकता और प्रसवके साथ साथ यक्ष्माका पुनराक्रमण भी होजाता है। अस्तु, स्त्री-रोगियोंके क्षत यदि परिमित हो जायं, स्वास्थ्य पूर्णतः सुधर जाय तथा उनका पारिवारिक इतिहास यक्ष्मा-दूषित न हो एवं उनकी परिस्थिति अनुकूल हो तो दाम्पत्य जीवन बिता सकती हैं किन्तु अवस्थायें यदि विपरीत हुई तो उनके लिए विवाह करना वा इस प्रकारका विलासमय जीवन बिताना कदापि उचित नहीं है।

(ग) यदि रोग वर्त्तमान हो—ज्वर आता हो शरीर में यक्ष्मा कीटाणु पाये जाते हों—तो विवाह अथवा दाम्पत्य-जीवन एकदम अनुमित नहीं हो सकता, स्त्री-रोगियों में प्रसव के उपरान्त रोग और भी ज़ोर पकड़ता है। यक्ष्माक्रान्त स्त्री प्रथम बार सरलतापूर्वक प्रसव कर सकती है, दूसरी बार कुछ कठिनता के साथ और तीसरी बार करेगी ही नहीं। रोगके बहुत उग्ररूप धारण करने परभी गर्भाधान सम्भव है।

५ स्वर-नल-यक्ष्मा।

(Laryngeal Tuberculosis)

कारण इत्यादि।

फुपफुस-यक्ष्माके रोगियोंमें प्रायः २८.३ प्रतिशत इस रोग द्वारा आक्रान्त होते हैं। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को ही यह अधिक होता है (स्त्रियां—१ : पुरुष—१.५ से २.७ तक) इसका कारण पुरुषों की व्यवसाय-जनित बुरी परिस्थितियां हो सकती हैं, किन्तु यह भी देखा गया है कि धूल धूसरित वातावरण में कार्य करने वाले व्यक्ति अधिक आक्रान्त नहीं होते। अस्तु, इसका कोई निश्चित कारण निर्धारित करना कठिन है।

आयु के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि रोग अवस्थापन्न व्यक्तियोंको ही अधिक होता है। बहुधा ३० से ६० वर्ष की आयु वाले व्यक्तियों में फुफ्फुस-यक्ष्मा जीर्ण रूप धारण करता है। अस्तु, उन रोगियों के बलगम में वर्त्तमान रहनेवाले यक्ष्मा-कीटाणुओं का स्वरनल के साथ अधिक समय तक सम्पर्क रहता है, और सम्भवतः यही कारण है कि इन रोगियोंके स्वरनलके आक्रान्त होने की अधिक सम्भावना रहती है।

आक्रमण की रीतियां

एक मार्ग से—बहुत कम।

सर्वाङ्ग बहुसंख्यक यक्ष्मा के अंश स्वरूप स्वरनल यक्ष्माका प्रादुर्भाव।

फुफ्फुस-यक्ष्मा द्वारा वा तंतुओं के साथ सम्पर्क जनित आक्रमण। यद्यपि फुपफुस तथा स्वरनल के बीच एक ही लसीकाधारा वा रक्तधारा प्रवाहित नहीं होती तथापि उन मार्गों से आक्रमण असम्भव नहीं है किन्तु कीटाणु-मिश्रित बलगम के सम्पर्क से ही यह रोग उत्पन्न होता है। यही कारण है कि स्वरनल का पश्चाद् भाग (जहां के तंतुओं का बलगम से अधिक काल तक सम्पर्क होता है) अधिकतर क्षत-ग्रस्त होता है।

लक्षण और निदान।

यदि रोगी फुपफुस-यक्ष्मा-क्रान्त न हो तो निदान कठिन हो जाता है, क्योंकि स्वरनल बहुधा अन्य कारणोंसे भी क्षतग्रस्त रहता है।

स्वरभंग (Hoarseness)—एक साधारण लक्षण है, किन्तु यह फुफ्फुस-यक्ष्मामें भी पाया जाता है।

पीड़ा। कंठकी पीड़ा भी एक साधारण लक्षण है। बहुधा भोजन निगलनेके समय अथवा कभी कभी विश्रामके समय भी पीड़ा होती ही रहती है। यह पीड़ा कभी २ कानोंकी ओर अग्रसर होती है। किन्तु यह लक्षण भी फुपफुस-यक्ष्मा में, स्वरनलके पूर्णतः रोगमुक्त रहने पर भी, कभी कभी पाया जाता है।

भोजन निगलनेमें कष्ट—यह लक्षण विशेष कर तब प्रगट होता है, जब स्वरनलमें व्रण होजाता है।

खांसी। बहुधा वर्त्तमान रहती है।

सांस लेनेमें कभी कभी बाधा होती है।

श्लेष्मा (Secretion) का अभाव हो जाता है, अस्तु, रोगी कंठ सूखनेकी शिकायत करते हैं। किन्तु कभी कभी यह अधिक मात्रामें प्रादुर्भूत होती है, जिससे रोगी सदैव थूकनेकी अथवा निगलनेकी चेष्टा करते रहते हैं।

क्षतकी परीक्षा करने पर उसमें क्षुद्र दानेसे लेकर बड़े आकारके व्रण तक पाये जा सकते हैं।

स्वरनलके अन्य व्रणोंसे, जैसे, उपदंश-जनित व्रण, वा जीर्ण साधारण (यक्ष्माके अतिरिक्त) स्वरनल प्रदाह, अथवा गुल्मसे इसे पृथक् करना कठिन है। किन्तु इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि यह बहुधा फुफ्फुस-यक्ष्माके उपरान्त प्रादुर्भूत होता है।

निदानके लिए टुवर्कुलिनकी सहायता ली जा सकती है। कैन्द्रिक प्रतिक्रियायें हो सकती हैं, किन्तु कभी कभी इस रीतिसे बार बार परीक्षा करनेकी आवश्यकता होती है।

भविष्य।

इन रोगियोंका भविष्य निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है—

(१) स्वरनल-यक्ष्माके साथ साथ वर्त्तमान रहने वाले फुफ्फुस क्षतोंके विस्तार एवं प्रवृत्ति।

(२) क्षतकी सीमा। क्षत जितना ही छोटा होगा, भविष्य उतना ही आशाजनक हो सकता है।

(३) क्षतकी स्थिति। यदि क्षत स्वरनलके उन अंशोंमें हो, जहाँ रक्त एवं लसीकाकी प्रचुर धारा बहती रहती है तो क्षतके रोगमुक्त हो जानेकी अधिक सम्भावना रहती है। कागमुख (Epiglottis) का क्षत विशेष कर भयावह होता है, क्योंकि इस अवस्थामें भोजन निगलनेमें बहुत कष्ट होता है, तथा रोगीको पुष्टिकारक सामग्रियाँ उपलब्ध नहीं होतीं।

(४) रोगीकी अवरोधिनी शक्ति।

(५) अन्य उपद्रव-जैसे मूक हो जाना, तीक्ष्ण पीड़ा, इत्यादि-भविष्यको अन्धकारमय बना देते हैं।

चिकित्सा।

इसके सम्बन्धमें यह ध्यान रखना चाहिए कि स्वर-नल-यक्ष्मा, किसी अवयवके यक्ष्माक्रान्त होने पर माध्यमिक रूपसे होता है। अस्तु, चिकित्सा किसी विशेष अङ्गकी न होकर साधारण-यक्ष्माकी होनी चाहिए। क्षत भागको स्वच्छ रखनेके लिए तथा रोगके कष्टप्रद लक्षणों को शांत करनेके लिए स्थानीय (स्वरनलको) चिकित्साकी आवश्यकता होती है।

साधारण चिकित्सामें, स्वास्थ्यकर जीवन, स्वच्छन्द-वायु-सेवन, उपयुक्त आहार, यथोचित विश्राम तथा व्यायाम, इत्यादि आते हैं। (चिकित्सा प्रकरण देखिये)

स्थानीय चिकित्सा—

(१) कीटाणु-नाशक ओषधियों द्वारा क्षतको धो देना चाहिए।

इसके लिए निम्नलिखित घोल उपयुक्त है—

कार्बोलिकाम्ल	२० ग्रेन
मधुरिन	½ आउंस
सैन्धक द्विकर्बनेत	१५ ग्रेन
जल	४ आउंस

पिचकारी द्वारा फौआरेके रूपमें यह घोल क्षत अंश पर डाला जा सकता है। यदि व्रण हो गया हो तो पिपरमिंट (Menthol) किसी उपयुक्त तरल पदार्थमें घोलकर लगाया जा सकता है जैसे—

पिपरमिंट	३० ग्रेन
जैतूनका तेल (Olive oil)	३ आउंस

इन्हें मिलाकर कुछ गर्म करने पर पिपरमिण्ट घुल जायगा।

इस घोल के लगानेसे पीड़ा कम हो जायगी। अस्तु, भोजनके पूर्व इसको क्षतांशमें लगाना अथवा इसे मुखमें कुछ देर तक रक्खे रहना अधिक लाभदायक होगा।

निम्नलिखित घोलके दो चार बून्द सदैव सूँघते रहना अच्छा होगा।

सम्मूर्छनिन (Anaesthesin)	½	आउंस
पिपरमिंट	"	"
मद्यसार	१½	"
जल	२	"

यदि पीड़ा असह्य हो तो निम्नलिखित ओषधियोंका प्रयोग होगा—

पिपरमिंट	१० अंश
बादामका तैल	३० अंश
अंडेका पीला अंश	२५ अंश
पूर्वपिपील (Orthoform)	१२ अंश
जल	१०० अंश तक

इनको मिला कर क्षत अंश पर लगा देना होगा।

(२) क्षत अंश को काट कर निकाल देने अथवा दाहक पदार्थों (Caustic substances) द्वारा जला देनेकी चेष्टा व्यर्थ होती है।

(३) उचित मात्रामें ट्युबर्कुलिनका प्रयोग किया जा सकता है।

जलका प्रवाह

(Movement of Water)

[ले० श्री एन० के० चटर्जी, एम० एस-सी०]

यदि एक छोटा सा पौधा या किसी पेड़की कुछ पत्तियां किसी कांचके वर्तनमें थोड़ी देरके लिये बन्द करके रक्खी जाँय, तो उस काँचके वर्तनके भीतरी हिस्सोंमें पानीके बून्द लग जाते दिखाई पड़ते हैं, इससे यह ज्ञात होता है कि पत्तियोंसे सर्वदा पानी बाहर निकलता रहता है और इस क्रिया को वाष्पी-भवन क्रिया (Transpiration) कहा जाता है और यह वाष्प पत्तियों की बाह्य झिल्ली (Epidermis) से निकलती है। वाष्पी-भवन-क्रिया को भली भाँति समझनेके लिये पत्तियोंके कार्य्य और उनके गठन पर ध्यान देना उचित होगा। भिन्न भिन्न पौधोंमें तरह तरह की पत्तियाँ होती हैं और पत्तियोंके लिये किसी विशेष शकल या सूरत का वर्णन नहीं किया जा सकता। ये पौधोंमें उसके आसपासके स्थान के अनुसार बदलते रहते हैं और इसी कारण पौधे अपनी जगहके अनुसार अपने को बना लेनेमें समर्थ होते हैं क्योंकि उनको उसी जगहसे सन्तुष्ट रहना पड़ता है। यदि पत्तियोंके भीतरी भागों पर ध्यान दिया जाय तो उसमें चार मुख्य बातें पाई जाती हैं। (१) पत्तियों के ऊपरी और नीचेके हिस्सोंमें एक झिल्लीसा परदा (Epidermis, upper and lower) (२) दोनों परदों के बीचका हिस्सा जिसको मध्य पेशि (Mesophyll) का नाम दिया जाता है।

(३) पत्तियोंके कोष्ठोंके अलावा बीचमें कुछ खाली जगह दिखाई पड़ती है (Inter cellular Space) जिनको कोष्ठ-मध्य-स्थान जा सकता है।

(४) नीचेकी बाह्य झिल्लीमें जो कि चपटे कोष्ठों की बनी हुई होती हैं इधर उधर फैले हुए छिद्र दिखाई पड़ते हैं, और प्रत्येक छिद्रके दोनों ओर अर्ध चन्द्रके आकारमें दो कोष्ठ दिखाई पड़ते हैं, और इनको त्वचा-रन्ध्र (Stomata) का नाम दिया गया है।

त्वचा-रन्ध्र बाहरकी तरफ हवामें खुले हुये रहते हैं और कोष्ठ-मध्य-स्थानोंकी ओर भी खुले हुये रहते हैं। वाष्पी-भवन-क्रिया को भली भाँति समझनेके लिये पत्तियोंकी अवस्था पर ध्यान देना उचित होगा। पत्तियों की मध्य पेशियां वाष्पसे भरी रहती हैं और यह वाष्प पहले पहल वहांसे निकल कर कोष्ठ-मध्य-स्थानोंमें भर जाती है। और इन कोष्ठ-मध्य-स्थानोंसे त्वचा-रन्ध्रके द्वारा वाष्प बाहरकी हवामें निकल पड़ती है। इस कारण रन्ध्रोंको भापके लिये दरवाजे समझना चाहिये। लेकिन यह भाप केवल रन्ध्रों द्वारा ही नहीं निकलती। कुछ पौधोंमें रन्ध्रोंके अलावा बाह्य झिल्लीसे भी जहाँ पर रन्ध्र नहीं होते भाप निकलती पायी गयी है।

वाष्पी-भवन-क्रिया की गति कुछ बाहरी और भीतरी हेतुओंसे सम्बन्ध रखती है। वायुमण्डलमें यदि भापका परिमाण अधिक हो तो इस क्रियाकी गति घट जाती है। यदि हवा ज़ोरसे चले तो इस क्रियाकी गति बढ़ जायगी क्योंकि पत्तियोंको ऊपरी हवा भापसे भरी रहेगी और हवाके चलनेसे नई हवा उसके आसपास आवेगी जो कि वाष्पको फिर धारण करनेमें समर्थ होगी। तापक्रमसे भी यह क्रिया बढ़ जाती है क्योंकि गरम हवा अधिक भाप रखनेमें समर्थ होती है। इसके अलावा कुछ पत्तियों की गठन ऐसी होती है जिससे यह क्रिया घट जाती है। कुछ पत्तियोंके ऊपरी भागोंमें बहुत छोटे छोटे बाल (Hair) दिखाई देते हैं और यह बाल वाष्प-भरित-हवा को अपने आस-पास रोक रखते हैं जिससे गति कम हो जाती है। कुछ पत्तियां आकारमें बहुत छोटी होती हैं जिससे भी यह गति कम हो जाती है। कुछ पत्तियोंके ऊपर मोमका एक पतला सा परदा चढ़ा रहता है जिससे पत्तीसे जल वाष्पके रूपमें सुगमतासे नहीं निकल सकता।

यदि पत्तियोंसे बराबर पानी वाष्पके रूपमें निकलता रहे तो पौधेके लिये असर हानिकारक होता लेकिन यह पानी पौधोंकी जड़ोंसे मिल जाता है। पत्तियाँ जिस गतिसे पानीको बाहर निकाल देती हैं उसी गतिसे जड़ भी पानीको भूमिसे खींच कर ऊपर पहुँचानेमें समर्थ होती हैं। वाष्पी-भवन किया द्वारा ही पानीका एक प्रवाह कुल पौधोंमें बहता रहता है जिससे कि पौधोंके प्रत्येक भाग ताजा पानी पा जाते हैं। इसके अतिरिक्त पानीमें मिट्टीके बहुत सी धातुओंके लवण घुले रहते हैं और वाष्पके रूपमें यह पानी उड़ जानेसे धातुओंके लवण पौधोंके भीतर रह जाते हैं जिससे पौधे अपना प्रयोजन पूरा करते हैं।

इसलिये देखा जाता है कि पौधोंके लिये जल का यह प्रवाह बहुत उपयोगी है। जल पौधोंमें धातुओंके लवण पहुँचानेके अतिरिक्त एक और क्रिया भी करता है। प्रकाश संश्लेषण का फल इस जल द्वारा पत्तियोंसे दूर हटा दिया जाता है और नये उगते हुये स्थानमें यही जल द्वारा जिसमें कि शक्करें घुली रहती हैं खाद्य पहुँचाया जाता है।

अब यह देखना उचित होगा कि पौधोंकी जड़ें भूमिसे किस प्रकार पानी खींचती हैं। यदि एक छोटा सा अंकुर (Seedling) मिट्टीमें जड़ सहित उखाड़ा जाय तो जलमें बारीक बाल (root hairs) दिखाई पड़ते हैं। इन बालोंमें मिट्टी के छोटे छोटे कण लगे हुये होते हैं, और इन्हीं बालोंके द्वारा ज़मीनसे पानी खींचा जाता है। यह जड़के सिरे भागोंमें पाये जाते और ज़मीनके बहुत अन्दरी भागोंमें घुस जाते हैं। ये जड़के क्षेत्र-फल को बढ़ा देते हैं जिससे कि ज़मीनमें काफी दूर तक फैल कर उसका पानी उपयोग कर लेते हैं मिट्टीके कणोंके पानीको यह जड़ोंके बाल खींच लेते हैं और मूल जड़ द्वारा यह पौधों को पहुँचा दिया जाता है।

जड़ोंके बालों पर ध्यान देनेसे यह देखा जाता है कि यह जड़के ऊपरी परदोंके केवल बढ़ाव हैं। इन बालोंमें ऊपरी भागोंमें खटिक पेक्टेत (Calcium Pectate) का एक परदा रहता है जो कि मिट्टीके पानीको बड़ी सुगमतासे खींच लेता है। मिट्टीके छोटे छोटे कण इन बालों के एक प्रकार चिपकते रसों (mucilaage) से लिपटे हुये रहते हैं जो कि पेक्टिन (Pectin) के नामसे कहा जाता है। मिट्टीके कण इस पेक्टिनसे मिल कर खटिक पेक्टेत बनाते हैं।

जड़के बाल और मिट्टी के कणोंके अलावा ज़मीनमें पानी और कुछ हवा भरी हुई खाली जगह भी पाई जाती है। जीवित अवस्थामें जड़ोंको हवा की बहुत ज़रूरत होती है और यह ज़मीनकी खाली जगहसे जड़ोंको मिल जाती है।

मिट्टीके कणोंके चारों तरफके तलका पानी जड़के बालोंमें कैसे आ जाता है? इस क्रियाको समझनेके लिये निस्सारण (Osmosis) पर ध्यान देना आवश्यक है। यदि किसी कमरेमें एक धूप की बत्ती जलाई जाय तो थोड़ी देरमें सारा कमरा उसकी सुगंधसे भर जाता है। इसी तरह यदि एक गिलास में सावधानी के साथ एक मिश्री का डेला छोड़ दिया जाय तो पहले पहल गिलासके नीचे तहका पानी मीठा होना आरम्भ होता है लेकिन थोड़ी देरके बाद समस्त पानी मीठा हो जाता है। इन उपर्युक्त दो दृष्टान्तोंसे यह प्रत्यक्ष मालूम होता है कि सुगंध या मिश्रीकी मिठाई हवा या पानीमें फैल कर समस्त जगहमें एक सी फैल जाती है। इसी प्रकार यदि एक कांचके ग्लास में सिर्फ सादा पानी लिया जाय और एक कांचके चोंगाका मुँह एक झिरझिरे (Porous) परदे (membrane) से बन्द कर उसमें थोड़ा सा नमक का पानी रक्खा जाय, तो इस चोंगेको पानीसे भरे हुये कांचके गिलासमें रखनेसे थोड़ी देरमें गिलास का पानी इस कांचके चोंगे आने लगता है—क्योंकि चोंगेका पानी गिलासके पानीसे अधिक गाढ़ा है।

इसी प्रकार जड़के बालोंके कोष्ठों (Cells) में अधिक गाढ़ा तरल पदार्थ रहनेसे ये क्षार घुले हुये जमीनके पानीको सुगमतासे खींच लेते हैं। इस बात को प्रत्यक्ष रूपमें समझनेके लिये नीचे एक प्रमाण दिया जाता है।

यदि मिट्टीके गमलेमें उगते हुए एक छोटेसे पौधेके तनेको जमीनसे कुछ ऊँचाई तक काट डाला जाय और उस कटे हुये तनेमें एक पानीसे भरी कांचकी नली (Tube) लगा दी जाय तो कुछ देरमें उस कांचकी नलीमें पानीका परिमाण अधिक हो जाता है। और यह पानी पौधेकी जड़से ही आता है जिससे यह बात साबित होती है कि वाष्पी-भवनक्रिया के अलावा मूल-जनित शक्ति (Root pressure) भी जल के प्रवाहमें काम आती है।

नोषजन संस्थापन क्रिया

(Assimilation of Nitrogen)

प्रत्येक पौधे के लिये नोषजन एक आवश्यकीय वस्तु है क्योंकि यह देखा गया है कि प्रोटीडके सिवाय जो कि हर एक पौधे में कसरत से पाया जाता है दूसरी कार्बनिक नोषजनीय वस्तुयें भी पाई जाती हैं। कर्बन तो पौधों के लिये उपयोगी वस्तु है ही लेकिन नोषजन पौधों की राख के भागों में अधिकता से पाया जाता है। लेग्यूमिनोसी (Leguminosae) पौधों के बीज में कुल वज़न का ४ से लेकर ६ भाग प्रति शत नोषजन का होता है।

पौधों को यह नोषजन कहां से मिलता है? वायु मंडल में ४/५ भाग नोषजन का होता है; इसके अतिरिक्त वायु में अमोनियां के रूप में भी कुछ नोषजन वर्त्तमान रहता है। स्वतंत्र नोषजन हर पौधों के लिये लाभ दायक नहीं है। कुछ पौधे यानी लेग्यूमिनोसी तो वायु मंडल के स्वतंत्र नोषजन का व्यवहार कर सकते हैं लेकिन मामूली पौधों के लिये यह कदापि नहीं कहा जा सकता। स्वाभाविक अवस्था में बड़ी जाति के पौधे अमोनिया के रूप में स्थित नोषजन का प्रयोग कर सकते हैं लेकिन उस नोषजन का परिमाण इतना अल्प होता है कि उसको ध्यान में लाना उचित न होगा। लेग्यूमिनोसी जाति के पौधे, जोकि स्वतंत्र नोषजन का व्यवहार कर लेते हैं, उनका थोड़ा सा वर्णन यहाँ दे देना आवश्यक है। इस जाति के पौधों में यह देखा गया है कि नोषजनीय कोई पदार्थ मिट्टीमें न मिलाने पर भी ये अपनी फसल में नोषजनका पूरा भाग भली भांति उत्पन्न कर लेते हैं।

पी० वेगनर (P. Wagner) ने सन् १८६१ में मटर और जई (Pea and oat) के पौधे अलग अलग उगाये (मटर लेग्यूमिनोसी जाति का पौधा है और जई अन्य जाति का है) इस परीक्षा में तीन भिन्न भिन्न मिट्टी के गमले लिये गये। (क) बर्त्तन में कुछभी पुष्टिकारक (Nutritious) वस्तु नहीं दी गयी। (ख) बर्त्तन में पांशुजम् और स्फुरिकाम्ल मिट्टी के साथ मिलाया गया। (ग) बर्त्तन में पांशुजम् और स्फुरिकाम्ल के अलावा नोषेतके रूप में कुछ नोषजन मिलाया गया। कुछ दिनों के बाद यह देखा गया कि (ग) बर्त्तन में जई के पौधे सबसे उत्तम रूप से उगे, लेकिन मटर के के पौधे (ख) और (ग) बर्त्तन से समान तेज़ी के साथ उगे। इस परीक्षा द्वारा यह स्पष्ट मालूम होता है कि लेग्यूमिनोसी जाति के पौधों के लिये बाहरी नोषजन की आवश्यकता नहीं है। वे वायु मंडल के स्वतंत्र नोषजनका व्यवहार कर लेते हैं।

बहुत दिनों तक यह पता नहीं चला कि वायु-मंडल के स्वतंत्र नोषजन का व्यवहार पौधे कैसे कर लेते हैं। बोसिंगोल्ट (Bousingault) ने सन् १८५७ में सौंधी हुई (Sterilised) मिट्टी पर यही परीक्षा फिर की। उक्त वैज्ञानिक ने यह नहीं किया था। सौंधी हुई मिट्टी पर इन्होंने बिना बाहरी नोषजन के दिये पौधों में बढ़ाव नहीं पाया। इससे यह साफ मालूम पड़ता है कि लेग्यूमिनोसी

के पौधों में खुद स्वतंत्र नोषजन व्यवहार करने की शक्ति नहीं है, दूसरे अन्य किसी हेतु ही के द्वारा वे ऐसा करने में समर्थ होते हैं।

उसके बाद दूसरे वैज्ञानिकों ने लेग्यूमिनोसीका जड़ों पर दृष्टि डाली। स्वाभाविक अवस्थामें इन पौधोंको जड़ोंमें एक प्रकार की छोटी छोटी गाठें (Tubercules) पायी जाती हैं। और यह गांठें सौंधी हुई मिट्टी में नहीं पैदा होतीं। इन्हीं गाठों के द्वारा ये पौधे स्वतंत्र नोषजन का उपयोग करते हैं। इन्हीं छोटी छोटी गाठों में एक प्रकार के कीटाणु पाये जाते हैं। ये कीटाणु लेग्यूमिनोसी की जड़ों से मिलजुल कर रहते हैं। ये इन पौधों से अपना खाद्य लेते हैं और उसके स्थानमें इनको नोषजन संस्थापनकी क्रिया में सहायता देते हैं। पौधों की फसल समाप्त हो जाने पर जब कि पौधे काट डाले जाते हैं तो साथ ही ये कीटाणु जड़ों की मिट्टीमें रह जाते हैं और फिर जब दुबारा फसल उगायी जाती है तो उनकी जड़ों में घुस जाते हैं।

कोसोविचने (Kssoowitch) सन् १८६२ में यह देखा था कि लेग्यूमिनोसी पौधों का कौनसा हिस्सा नोषजन का व्यवहार करता है। वे इस सिद्धान्त पर आये कि पौधों में जड़ का हिस्सा ही केवल नोषजन का संस्थापन करता है।

लेग्यूमिनोसी के अलावा और भी कुछ पौधे वायुमंडल का नोषजन काम में लाते हैं। ये पौधे कीटाणुओं से मिलजुल कर रहते हैं और उनके पत्तों में इस प्रकार की गाठें पायी जाती हैं। इन पत्तियों की गाठों के द्वारा स्वतंत्र नोषजन पौधों में घुसता है।

विनोग्रेडिसकी (Vinogradskii) और बीजिरिंक (Beijerinck) ने सन् १८६४ में मिट्टी में और एक प्रकार का कीटाणु पाया जो कि स्वतंत्र नोषजन का व्यवहार कर लेते हैं। ये कीटाणु वायुमंडल के नोषजन को दूसरी नोषजनीय वस्तुओं या नोषेत में परिवर्त्तन करने में समर्थ होते हैं। और यह परिवर्तित नोषेत बाद को पौधों के काम आता है। ये कीटाणु केवल मिट्टी में ही पाये जाते हैं।

वायुमंडल के नोषजन के अलावा भूमि में भी नोषजन पाया जाता है। भूमि में नोषजन बहुत रूप में यथा स्वतंत्र नोषजन, अमोनिया, अमोनिया के लवण, नोषेत, नोषित (Nitrite) और दूसरे कार्बनिक नोषजनीय वस्तुओं के रूपमें वर्त्तमान रहता है। स्वतंत्र नोषजन का व्यवहार मामूली पौधे नहीं कर सकते, और भूमि का नोषेत ही मामूली पौधे के लिये प्रधान भंडार है यद्यपि कुछ पौधे नोषित और अमोनिया या अमोनिया के लवण का उपयोग कर लेते हैं। नोषजनीय कार्बनिक वस्तुयें और अमोनिया या अमोनिया के लवण जो कि पौधों और दूसरे जीव जन्तुओं के क्षय और मल मूत्र से भूमि पर अधिकता से रहते हैं ये नोषजनीय कार्बनिक वस्तुयें (Organic nitrogenous compounds) पहले पहल भूमि के कीटाणु द्वारा नोषेतमें परिवर्तित किये जाते हैं और यह नोषेत मामूली पौधे अपने उपयोगमें लाते हैं इसी प्रकार नोषित और अमोनिया के लवण भी नोषेत में परिवर्त्तित किये जाते हैं। ये परिवर्त्तित नोषेत वर्षा के पानी में घुल कर दूसरी जगह बहा लिये जाते हैं और क्रिया का क्षेत्र (field) इस प्रकार खाली हो जाने के बाद और नोषेत बनने में सुगमता होती है। पानीमें ये घुले हुए नोषेत पानी ही से पौधों को मिलते हैं।

अब यह देखना उचित होगा कि पौधे नोषजन को पाकर किस द्रव्य में परिवर्तित करते हैं। नोषजन संस्थापन क्रिया का शेषफल (End product) प्रोटीड मान लिया गया है। प्रोटीड में पाँच तत्त्व रहते हैं; यथाः—उद्जन, ओषजन, नोषजन, कर्बन गंधक और स्फुर। नोषजन संस्थापन क्रियाके प्रथम फल (First Product) पर वैज्ञानिकोंका मतभेद है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि उदश्यामिकाम्ल (Hydrocyanic acid) प्रथम फल है लेकिन दूसू

(Trueb) ने अपनी परीक्षा द्वारा यह सिद्ध किया है कि उद्श्याविकाम्ल प्रथम फलके बजाय विभाजन (decomposition) का फल है। इन्होंने और दूसरे वैज्ञानिकों ने अमिनो अम्ल (Amino acid) को प्रोटीड बनानेकी प्रथम अवस्था मान ली है।

प्रथम फल पर मतभेद होते हुये भी इस युगमें यह मान लिया गया है कि अमोनिया या नोषेत शर्कराओं से संयोग होकर पहले पहल अमिनो अम्ल बनते हैं। फिर बादको अमिनो अम्लसे बहु पेप्टिद (Polypeptides) और उससे पेप्टोन (Peptone) और पेप्टोन से अण्डसितोज (Albuminose) और अण्डसितोजसे शेषफल प्रोटीड बनता है।

यह देखा गया है कि नोषजन संस्थापन क्रिया पौधोंके प्रत्येक कोष्ठमें हो सकती है और इसके लिये प्रकाश और पर्णहरिनकी आवश्यकता नहीं है। यह क्रिया अंधेरेमें भली भांति हो सकती है लेकिन इस क्रियाकी सम्पूर्णताके लिये कर्बोदित की अत्यन्त आवश्यकता है; और कर्बोदित जो कि कर्बन संस्थापन क्रिया का शेषफल समझा जाता है प्रकाशकी तेज़ी और पर्णहरिनके परिमाणसे काफी सम्बन्ध रखता है। सूर्यकी प्रकाश कर्बोदित बनने की क्रिया के लिये अति आवश्यक है लेकिन प्रोटीड इन कर्बोदितोंके जलने पर जो रासायनिक सामर्थ्य (Chemical energy) उत्पन्न होती है उसीके द्वारा बनता है। इसलिये यह कहना उचित होगा कि नोषजन-संस्थापन-क्रिया प्रकाश और पर्णहरिन्से सीधी सीधी सम्बन्ध न रख कर फेरफार कर सम्बन्ध अवश्य रखती है।

पृथ्वी का इतिहास

[ले० श्रीजगपति चतुर्वेदी]

१—पृथ्वी का जन्म

एक दिन ऐसा था जब इस आकाशमें पृथ्वी, सूर्य चन्द्र आदि पिंडों का अस्तित्व न था। इनके स्थान पर एक दहकती हुई वायव्य वस्तु बड़ी तीव्र गतिसे नाच रही थी। इसी श्वेत उत्तप्त वस्तुसे हमारी पृथ्वी और सूर्य आदि ग्रहोंका जन्म हुआ। यह श्वेत उत्तप्त वस्तु नीहारिकाके नामसे प्रसिद्ध है।

यह बात सुनकर कुछ विस्मय हो सकता है कि किस प्रकार ऐसी उत्तप्त वायव्य श्वेत वस्तुसे हमारी इस शस्य-श्यामला-पृथ्वीका जन्म हुआ परन्तु कितनी वस्तुएँ साधारण पदार्थोंसे जब तैयार कर ली जाती हैं तो उनको तैयार देखकर यह नहीं प्रतीत होता है कि वे किसी समय मूल पदार्थके भद्दे रूपमें रही होंगी। लिखनेका सुन्दर कागज़ देख कर यह किसको विश्वास हो सकता है कि उसकी उत्पत्ति रद्दी चिथड़ों, लकड़ी के विरूप टुकड़ों वा बांससे हुई है? बढ़िया मिष्टान्न देख कर किसको स्मरण आता है कि उसका जनक भद्दे आकार का गेहूं और गुड़ है? इसी प्रकार पृथ्वीको भी आजके रूपमें देख कर हमें सहसा विश्वास नहीं होता कि कभी सभी पदार्थोंके साथ वह दहकती हुई वायुके रूपमें रही होगी। इसका वायव्य रूपमें होना किस प्रकार सम्भव है उसे हम यहां समझाने का प्रयत्न करते हैं।

हम इस बातको जानते हैं कि पदार्थ ठोस, द्रव और वायव्य तीन रूपोंमें से किसी एकमें होते हैं। पानी इन तीनों रूपोंमें परिवर्त्तित हो सकता है। जब यह साधारण तापक्रम पर रहता है तो बहता हुआ या द्रव रूपमें होता है जिसे हम जल कहते हैं। जब यही नीचे तापक्रम पर होता है तो सर्दीके कारण जम जाता है जिसे हम हिम या बर्फ कहते हैं। ओला और पाला हिमके रूप हैं। जब ऊँचे तापक्रम पर होता है तो अधिक तापके कारण वाष्प बन कर वायव्य रूप धारण कर लेता है। हिमको पानी रूपमें करनेके लिए बहुत थोड़ी गर्मी की आवश्यकता होती है। फिर पानीमें २१२ फैरनहीट की गर्मी पहुँचाने से वह वाष्परूपमें परिवर्तित होने लगता है। इसी प्रकार ठोस धातु भिन्न भिन्न तापक्रम पर पिघलने लगते हैं। इनमें से अधिकांश पानीको वाष्प बनाने वाले तापक्रमसे अधिक ऊँचे तापक्रम पर पिघलते हैं। सोना, चाँदी, सीसा और अन्य धातु गर्मी पहुँचा कर पानीकी तरह द्रवरूपमें किए जा सकते हैं। यदि इनमें और भी अधिक गर्मी पहुँचाई तो वाष्परूपमें भी परिवर्तित हो सकते हैं। नीहारिकाओंका तापक्रम इतना अधिक ऊँचा होता है कि उनमें कठोर धातु वाष्प रूपमें ही रह सकता है। इस कारण हम अनुमान कर सकते हैं कि किस प्रकार नीहारिकामें पृथ्वी को आजका रूप देने वाले समस्त पदार्थ वाष्प रूपमें ही थे।

आकाशमें हम जिस सूर्यको देखते हैं उसके चारों ओर पृथ्वी, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, वरुण और इन्द्र सात ग्रह परिक्रमा करते हैं। इन ग्रहों के कुछ उपग्रह भी हैं जो उन ग्रहोंकी परिक्रमा करते हैं। इन समस्त पिंडोंको सौर मण्डल कहते हैं। इस सौर मंडलके ग्रहों और उपग्रहोंको छोड़ कर आकाशमें जो तारे दिखाई पड़ते हैं वे यथार्थमें सूर्य हैं। उनमेंसे कुछ सूर्यसे बहुत अधिक बड़े और प्रदीप्त हैं। ये बहुत दूरी पर होनेके कारण इतने छोटे रूपमें दिखाई पड़ते हैं। यदि हम लोगों का सूर्य भी अधिक दूरके स्थानसे देखा जाय तो ताराकी भाँति ही दिखाई पड़ेगा। दूसरे सूर्यों वा तारोंकी परिक्रमा करने वाले भी ग्रह हैं वा नहीं इसका अभी तक पता नहीं चल सका है, प्रबलसे प्रबल दूर दर्शक यन्त्रसे भी उन तारों का भली भांति निरीक्षण नहीं हो सका है।

जिस प्रकार समस्त पदार्थोंके जीवनकी एक अवधि है उसी प्रकार आकाशी पिंडोंकी भी आयु होती है। निरीक्षणसे यह पता चला है कि तारों का रङ्ग भिन्न भिन्न है । उनमें कुछ पीले हैं, कुछ श्वेत हैं, कुछ नीले हैं, कुछ नारंगीके रंगके हैं और कुछ लाल है। इन रंगोंसे उनकी आयु जानी जाती है, जिस प्रकार भट्टी प्रज्वलित होने पर पहले श्वेत हो जाती है, फिर जलते जाने पर रङ्ग बदलते जाकर धुँधले लाल रङ्गकी रह जाती है, फिर शान्त हो जाती है, उसी प्रकार श्वेत रङ्गके तारे थोड़ी आयु के हैं, पीले रङ्ग के तारोंकी आयु उनसे अधिक है, नारङ्गीके रंगके तारोंकी आयु उनसे भी अधिक है और लाल रङ्गके तारोंकी आयु सबसे अधिक है। नीहारिकाको तारोंसे कम आयुका कहा जा सकता है जिससे कि तारोंकी उत्पत्ति हुई है।

हमारे सौर मंडलकी उत्पत्ति भी एक नीहारिकासे ही हुई है। आजसे करोड़ों वर्ष पूर्व इस सौर मण्डलके सभी ग्रह, उपग्रह, सूर्य और उल्का तथा धूमकेतु आदि एक श्वेत उत्तप्त वायव्य पदार्थ के गोले वा नीहारिकाके रूपमें थे। यह गोला बहुत ही अधिक उत्तप्त था और तीव्रतासे गगनमण्डलमें नाच रहा था। इस वृहद्काय अग्निमय पिंडका ताप शनैः शनैः कुछ कम होता गया। उसके कुछ ठंडे होने पर किसी समय उसका एक भाग टूट कर अलग हो गया और वह भी छल्लेके रूपमें उसके चारों ओर नाचने लगा। धीरे धीरे वही छल्ला संकुचित हो कर एक गोल पिण्डके रूपमें हो गया और सूर्य परिक्रमा करने लगा। इसी तरह दूसरे ग्रह भी धीरे धीरे मातृपिण्डसे पृथक् होकार ग्रह का रूप धारण करते रहे और बीचमें अवशिष्ट उत्तप्त पदार्थ सूर्यके रूपमें रह गया।

जो ग्रह नीहारिकासे पृथक् हुए वे प्रारम्भमें बहुत उत्तप्त थे और और उनमेंसे भी फिर कुछ अंशके पृथक् होनेसे उपग्रह बनते गए जो उन्हींकी परिक्रमा करने लगे। पृथ्वीसे चन्द्रमाकी भी इसी प्रकार उत्पत्ति हुई। जब पृथ्वी अन्य ग्रहोंकी भाँति नीहारिकासे पृथक हुई तो वह भी एक दहकते हुए गोलेके रूपमें थी और अपनी धुरी पर बड़ी तीव्रता से नाच रही थी, साथ ही सूर्यकी भी परिक्रमा कर रही थी, जब बहुत दिनों तक इसी अवस्थामें रहने के पश्चात् वह कुछ ठंडी हुई तो वायव्य रूपसे धीरे धीरे द्रव रूपमें होने लगी। कुछ दिनों तक इस अवस्थामें रहनेके बाद उसके ऊपरी भागके ठंढे होनेसे एक पतली पपड़ी पड़ गई परन्तु उस समय भी उसका नीचेका भाग बहुत उत्तप्त द्रव रूपमें था। उस द्रव पदार्थके उबालको रोक सकना पृथ्वीकी पपड़ीके लिए कठिन था, उस समय उस पिघले द्रव्यमें ज्वार उठ रहे थे और भीषण धड़ाके होरहे थे, इस कारण पपड़ी जहाँ पर अधिक पतली और कमज़ोर थी वहां फट गई अतएव नीचे के उबलते हुए पदार्थ पपड़ीके ऊपर पहुंच सके।

इसी समय चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई। हमारे कवि लोग चन्द्रमाको समुद्रका पुत्र कहते हैं। चन्द्रमा समुद्रका पुत्र है वा नहीं यह तो निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता परन्तु वह पृथ्वीका पुत्र अवश्य है। कुछ वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि चन्द्रमा पृथ्वीके जिस स्थानसे पृथक् हुआ वहाँ आज प्रशान्त महासागर विद्यमान है। यह अनुमान सत्य है वा नहीं, इसको निश्चित रूपसे तो कहना कठिन है परन्तु यदि हम किसी मानचित्र पर चन्द्रमाकी आकृति बनाएँ तो हम देखेंगे कि यह प्रशान्त महासागरके स्थानमें ठीक बैठता है। जिस समय पृथ्वीसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई उसके लाखों वर्ष पश्चात् तक इस भूतल पर जीवोंकी सृष्टि नहीं हुई थी। इस कारण चन्द्रमाकी उत्पत्ति को कोई देखने वाला न था। इस घटनाके कुछ समय पश्चात् पृथ्वीका तापमान इस सीमा तक पहुँचा कि वायुमंडलके जल के वाष्प द्रवीभूत हुई जिससे एक बड़ा महासागर बन गया और उसमेंसे कुछ समय बाद द्वीप और महाद्वीप आविर्भूत हुए। इस समय आकाशमें इतनी आर्द्रता प्रविष्ट होगई कि अधिक काल तक निरन्तर

वृष्टि होती रही। इसीके बाद समुद्रमें फिर स्थल पर जीवोंका प्रादुर्भाव हुआ।

२—पृथ्वी की शिलाएं

पृथ्वी का इतिहास जानने में उसकी शिलाओं से बहुत अधिक सहायता मिलती है। यदि पृथ्वी को एक पुस्तक माना जाय तो शिलायें उसके पृष्ठ की भांति हैं। उन पृष्ठों को वैज्ञानिकों ने पढ़ने में सफलता प्राप्त कर ली है और उनमें अंकित पृथ्वी की कथा को ज्ञात किया है। जिस समय पृथ्वी द्रव से दृढ़ रूप धारण कर रही थी उस समय से अब तक का क्रम बद्ध इतिहास शिलाएं प्रकट करती हैं। शिलाओं का अभिप्राय केवल पत्थर के बड़े बड़े ढोकों से नहीं है प्रत्युत पृथ्वीकी पपड़ी में जो कुछ भी द्रव्य हैं उन सब को भूगर्भ शास्त्र में शिला कहा जाता है।

पृथ्वी की शिलाएं कई प्रकार की हैं। उनके मुख्य तीन भेद किये जा सकते हैं। (१) आग्नेय (२) जलीय वा तलछटीय (३) रूप विकृत।

यदि सच पूछा जाय तो सभी शिलाएं आग्नेय वा अग्नि से उत्पन्न हुई हैं क्यों कि वे सभी पिघली हुई अवस्था में थीं परन्तु इस समय जिन शिलाओं के उत्तप्त द्रवावस्था से ठोस होने के प्रत्यक्ष लक्षण दिखाई पड़ते हैं उन्हीं को आग्नेय कहते हैं। आग्नेय शिलाएं जिन पदार्थों से बनी हैं वे जब प्रचंड ताप से द्रवावस्था में रहने के पश्चात् जब ताप कम होने से जमकर ठोस हुए तो इन शिलाओं का जन्म हुआ। आग्नेय शिलाओं के भी दो उत्तम भेद हैं। इन में से एक द्रव पदार्थ के पृथ्वी के धरातल के बहुत नीचे जमने से बनी थीं इस कारण इनको पातालीय कहते हैं, ग्रेनाइट इसी प्रकारकी शिला है। दूसरी द्रव पदार्थ के धरातल पर जमने से बनी थीं, उन्हें ज्वालामुखीय या ऊर्ध्वतलीय कहा जा सकता है।

पातालीय शिलायें जितनी गहराई पर बनीं वहां उत्तप्तद्रव पदार्थ धीरे धीरे जमा हुए जिससे उसमें रवे बनते गए इस कारण समस्त पातालीय शिलाएं रवों के एकत्रित होने से ही बनीं हैं। ज्वालामुखीय शिलाएं जिन उत्तप्त द्रव पदार्थों से बनी वे धरातल के ऊपर होने के कारण अधिक शीघ्रता से जमे इस लिए उनमें रवे बनने के लिए समय न रहा इसलिए उनमें रूप में ही रवे मिलते हैं। इन चट्टानों में से कुछ तो ऐसी मिलती हैं कि उनमें बिलकुल रवे नहीं पाए जाते।

तलछटीय शिलाएं वे हैं जो वर्षा और नदियों द्वारा बहा कर लायी हुई मिट्टी, रेत आदि चीजों के के पानीके अंदर जमने से बनी हैं। जो वस्तुयें नीचे बैठ जाती हैं उन्हें तलछट कहते हैं इस लिए पानी के नीचे इन वस्तुओं से जमी शिलाओं को तलछटीय कहते हैं। उन शिलाओं को बनाने वाली तलछट पानी में धीरे धीरे बैठती जाती है इस लिए उसमें तहें पड़ती जाती हैं। इस कारण तलछटीय शिलाओं में तहें पाई जाती हैं। जब तलछट की एक तहके ऊपर दूसरी तीसरी तहें बैठती जाती हैं तो ऊपर की तहों और पृथ्वी की चेष्टाओं का दबाव पड़ने से वे तहें दृढ़ हो कर ठोस बनती जाती हैं। समुद्र के पानी से कुछ रासायनिक वस्तुएं भी मसालाके काम में योग देती हैं जिससे तलछट जम कर ठोस बन जाती है।

कुछ तलछटीय शिलाएँ पशुओं और वनस्पतियों के अवशेषसे निर्मित हुई हैं। उदाहरणके तौर पर पत्थर कोयला उन भीषण जङ्गलोंके अवशेषसे बना है जो किसी समय भूतल पर विद्यमान थे। चूनेका पत्थर अधिकांश ऐसे जीवोंके देहावशेषसे बना है जो कभी समुद्रमें रहते थे, खड़िया उसी प्रकारके एक जीवोंके देहावशेषसे बनी है। एक प्रकारका चूनेका पत्थर मूँगोंके देहावशेषसे बना है। इस तरहके जीव आज भी उष्ण समुद्रोंमें काम करते देखे जा सकते हैं। इन जीवोंके बड़े बड़े समूह समुद्रकी तहमें स्थित टीलोंसे चिपक जाते हैं और समुद्रके पानीमें घुले हुये खनिज पदार्थ चूस कर अपने लिए कड़ी खोल बना लेते हैं। जब ये जीव

मर जाते हैं तो इनकी खोल वहीं रह जाती है और नींवका काम देती है। इसके ऊपर दूसरे मूँगे रह कर फिर अपनी खोल छोड़ जाते हैं। इसी तरह टीला ऊँचा होता जाता है और एक दिन मूँगेकी चट्टान तैयार हो जाती है।

तीसरे प्रकारकी शिलाएँ रूपविकृत कही जाती हैं। वास्तवमें यह प्रारम्भमें आग्नेय या तलछटीय होती हैं परन्तु इन पर प्रचण्ड भार वा दबाव पड़ने के कारण इनका रूप ऐसा परिवर्तित हो जाता है कि इनका प्रारम्भिक रूप पहचाना नहीं जा सकता इसलिए इन्हें रूपान्तरित आग्नेय वा तलछटीय शिलाओंको रूप विकृत नामसे पुकारा जाता है।

शिलाओंको देख कर यह पहचाना जा सकता है कि वे किस प्रकारकी हैं और किस समय, किस अवस्थामें तथा किस क्रमसे वे बनी थीं परन्तु उनकी बनावट को छोड़ कर पृथ्वीका इतिहास जानने के लिये एक बड़ी हो विचित्र सामग्री शिलाओंके गर्भमें मिलती है, यह सामग्री तलछटीय शिलाओंमें ही विशेषतः मिलती है। हम लोग जानते हैं कि तलछटीय शिलाओं का निर्माण तलछटकी तहें जमनेसे हुआ था इसलिये उनकी सबसे निचली तहें प्राचीनतम और ऊपरकी उससे कम प्राचीन होंगी। इन सब तहोंमें जीव जन्तुओं वा वनस्पतियों के अवशेष उनके वास्तविक रूपमें पाए जाते हैं। प्रत्येक तहमें फासिल भिन्न २ प्रकारके होते हैं। शिलाओंकी तह और उन तहोंके फासिल एक ही क्रममें सर्वत्र पाए जाते हैं इसलिये उनको देख कर यह सहज ही जाना जा सकता है कि वनस्पति और पशु-वर्गोंमें प्राचीनकाल से अब तक कैसा परिवर्तन हुआ है और किस कालमें किस प्रकारके वनस्पति वा जीव-जन्तु थे। फासिलको देख कर यह भी ज्ञात हो सकता है कि शिलाकी अमुक तह किस कालकी हो सकती है।

चट्टानोंके गर्भमें इतिहासकी इन सामग्रियोंको प्रकृति द्वारा रक्षित देख कर बड़ा ही विस्मय होता है। फासिल हमारे ज्ञानकी वृद्धिमें कितनी सहायक होती हैं इसका ध्यान कर हमें प्रतीत होता है कि प्रकृति ने अपने चमत्कार का एक अंश दिखानेके लिये इन्हें जान कर अपने अद्भुतालयमें रख छोड़ा है। आजसे सहस्त्रों वर्ष पूर्व जो विचित्र प्रकारके जीव-जन्तु और वृक्ष इस पृथ्वी पर उत्पन्न होकर अनन्त कालके गालमें सदाके लिए विलुप्त हो गए उनका किसी प्रकार स्वप्नमें भी ज्ञान न होता परन्तु इतने दिनोंके पश्चात् भी हम आज प्रकृतिके अद्भुतालयमें उनके आकार-प्रकार रङ्गरूपका इन चर्म चक्षुओंसे ही अवलोकन कर सकते हैं। इस वृहद् समाधिमें हम एक यो ही जीवों वा वनस्पतियों का ही अवशेष नहीं पाते प्रत्युत पशु, पक्षी, मत्स्य सभी प्रकारके जन्तु लाखोंकी संख्यामें दिखाई पड़ते हैं। बड़े जीव-जन्तुओं से लेकर छोटेसे छोटे जन्तु के अवशेष भी इन समाधिमें अविकृत रूपमें पाया जाता है। वनस्पतियोंके पत्ते, उनकी नसें, फूल, बीज, और कहीं पर पँखड़ियाँ तजा पुष्परज भी रक्षित पाए जाते हैं। इन पदार्थों के अतिरिक्त शिलाओं की तहें जमते समय उन पर चले हुये जन्तुओंके पदचिह्न और पानीके हिलकोरेके चिह्न तक भी कहीं कहीं उनमें देखे जाते हैं।

प्राचीन कालसे अब तक शिलाओंकी तहें जिस क्रमसे जमती गईं वे यदि उसी प्रकार क्रमबद्ध पड़ी रहतीं तो हम केवल उसकी सबसे ऊपरी तह ही देख पाते और नीचेकी सभी तहें हमारी दृष्टिसे बाहर रहतीं। इस प्रकार प्रकृति का यह बड़ा अद्भुतालय तालेके अन्दर बन्द सा रहता और हम उसके रहस्यसे आज भी अनभिज्ञ ही रहते परन्तु पृथ्वीकी रचनाके वैचित्र्यसे उसकी पपड़ियों में समय समय पर क्षोभ होनेसे शिलाओं की तहें कई स्थानों पर टूट टूट कर इस तरह उभड़ी हुई पाई जाती हैं मानों प्रकृति ने स्वयं ही अपने अद्भुतालयकी कुँजी मनुष्य को सौंप दी हो।

इन परिवर्तनोंको उपस्थित करने वाली पृथ्वी की गतियां हैं जो उसमें होती रही हैं। ज्वालामुखी

पर्वतोंका उद्‌गार और भूचाल इस कार्यमें विशेष योग देते रहे हैं। प्रकृति इन गतियोंके कारण शिलाओंकी तहें कहीं तो टूट कर बगलकी ओर उलट पलट गई हैं और कहीं कहीं उनकी तहें बीच में टूट कर शेष तहोंसे ऊँची हो गई हैं। खदान खोदने वाले कभी कभी लोहे, कोयले वा किसी अन्य खनिज वस्तुकी तह खोदते हुये तहको टूटा फूटा पाते हैं। वहाँ पर उन्हें विश्वास हो जाता है कि अब उसी सीधमें उस पदार्थकी तह नहीं मिल सकेगी, वह या तो कुछ ऊपर खोदनेसे मिल सकती है वा नीचे। बात यह होती है कि पृथ्वीके अन्दर क्षोभ पैदा होनेसे उसके वेगसे कहीं पर शिलाकी तहें टूटकर ऊपर उठ जाती हैं और इसके इधर उधर की तहें उसी स्थितिमें रह जाती हैं वा नीचे धँस जाती हैं। तहोंके इस व्यतिक्रमको त्रुटियां कहते हैं।

३—धरातल पर परिवर्तन

इस पृथ्वी के धरातल पर सदासे परिवर्तन होता है और वह आज भी ज़ारी है। इस परिवर्तन को उपस्थित करनेमें पृथ्वीकी आंतरिक शक्तियों की गतिके साथ धरातलसे ऊपर भी कुछ शक्तियां योग दे रही हैं। ये वर्षा, हवा, ताप और शीत हैं। जब वर्षा होती है तो हम देखते हैं कि धरातल पर मोरियों और नालोंमें गँदला पानी बहता दिखाई पड़ता है। जब पानीकी बूँदें आकाशसे उतरती हैं तो वे गँदली नहीं रहतीं किन्तु धरातल पर पहुँचते ही गँदली हो जाती हैं। इसका कारण है कि उनमें मिट्टीके कण मिल जाते हैं। और उनके साथ नीचे स्थानोंको पहुँचते हैं। हमें यह सुन कर कुछ आश्चर्य होगा कि वर्षाकी यही नन्हीं बूँदें पत्थर की विशाल चट्टानों को धीरे धीरे हड़प जानेमें समर्थ होती हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने खलोंके बचनसे बूँदोंकी उपमा देकर बूँदोंकी तुच्छता इस चौपाईमें प्रकट की है।

> बूँद अघात सहैं गिरि कैसे।
> खलके बचन संत सहैं जैसे॥

परन्तु यदि गोस्वामी जी को बूँदोंकी वह शक्ति ज्ञात रहती जो आजका विज्ञान हमें बतलाता है तो वे यह चौपाई न लिखते। बूँद स्वयं तो इतनी कुछ प्रभावशाली नहीं हैं, जो पत्थरको उदरस्थ करनेका साहस करें, परन्तु उसे एक बड़ा प्रबल सहायक मिल कर उसे साहसी बना देता है। वह सहायक है एक प्रकारकी गैस जो बूँदमें सम्मिलित रहती है। इस वायुमंडल में कर्बन द्विओषिद (कार्बन डायक्साइड) गैस सदा विद्यमान रहती है। जब पानीकी बूँद पृथ्वी पर गिरने लगती है तो यह गैस उसमें मिल जाती है। इस गैससे पत्थरका मसाला गल जाता है जो कणों को एकत्र रख कर पत्थरको ठोस बनाये रखता है। इस प्रकार जोड़ने वाले मसालेके पृथक् होनेसे पत्थरके कण अलग अलग असहाय हो टूट टूट कर गिरने लगते हैं और बूँदें इतने बड़े शत्रुका मान-मर्दन कर बिजयोल्लासमें कणोंको नीचे लुढ़का कर कणों और उस मसालेको लिये आगेका मार्ग लेती हैं। यह क्रम लाखों करोड़ों वर्षसे जारी है और बूँदें विजय दुन्दुभी बजा बजा कर सदा पत्थरको चूर्ण चूर्ण कर उनका अस्तित्व मिटाने का उद्योग करती आ रही हैं। इस प्रकार अधिक दिनोंके संघर्षसे कालान्तरमें बहुत कुछ परिवर्तन उपस्थित हो जाता है।

जो शिलाएँ नर्म होती हैं उन पर बूँदोंका शीघ्र प्रभाव पड़ता है और उनके कट कर नष्ट हो जाने में कम ही समय लगता है परन्तु जो अधिक दृढ़ होती हैं उन पर विलम्बसे प्रभाव पड़ता है परन्तु वे भी बूँदों द्वारा कटनी अवश्य हैं। और एक लम्बी अवधिके पश्चात् उनका भी वही हाल होता है जो नर्म शिलाओंका।

नगरोंसे दूर मैदानोंमें बूँदोंमें केवल कर्बन द्विओषिद का ही संयोग होता है परन्तु नगरोंमें अन्य गैसें भी उसमें मिल जाती हैं। बड़े बड़े कारखानों की चिमनियोंसे नाना प्रकार की गैसें निकलती हैं, वे सब पानीकी बूँदोंसे मिल कर

पानीकी खंडन शक्ति अधिक प्रबल कर देती हैं इस कारण नगरोंके अन्दर मकानोंमें लगे पत्थर मैदानके पत्थर की अपेक्षा जल्द घिसते हैं, सभी गैसें मिल कर उसके कणोंको शीघ्र काट कर गिराने में बूँदोंकी मदद करती हैं।

वर्षा को छोड़ कर आँधी और पाला भी शिलाओंका खंडन कर पृथ्वीका धरातल परिवर्तन करनेमें योग देते हैं। आंधी नोकीले सिकता कणों की कुछ नर्म चट्टानोंसे टकराती है जिससे चट्टान घिसती जाती है। ताप और शीत भी खंडन कार्य में योग देनेसे वंचित नहीं रहते। हम लोगोंको ज्ञात है कि गर्म होने पर सभी वस्तुएँ फैलती हैं और ठंडे होने पर सिकुड़ती हैं। इस कारण जब दिनमें सूर्यकी गर्मी पड़ती है तो चट्टान फैलती है परन्तु रातको ठंडक पड़ने पर सिकुड़ने लगती है जिससे वे चटक कर टूटने लगती हैं। ग्रेनाइट जो बहुत दृढ़ पत्थर है इसी तरह खंडित होता है।

शिलाओंको खंडित करनेमें बर्फ बड़ी सहायक होती है। जब पानी बरसता है तो शिलाओंमें कहीं भी दरार वा छेद मिलने पर उसमें घुस जाता है। फिर जब अधिक ठंडक पड़ती है तो वह भीतर ही जम जाता है परन्तु पानीका यह गुण है कि जमने पर अधिक फैल जाता है। जब उसको फैलनेकी जगह नहीं मिलती तो उसके जोर पड़नेसे शिलाएँ फट जाती हैं। बर्फमें शिलाएँ तोड़नेका इतना बल होता है कि इसके कई बार फैलने पर पत्थरकी बड़ी से बड़ी चट्टान टुकड़े टुकड़े हो सकती है।

नदियां धरातलका रूप बदलनेमें भाग लेती हैं उनको हम लोग कुछ अपनी आंखोंसे देख सकते हैं परन्तु थोड़ी थोड़ी कटान से ही में कालान्तरमें कितना घोर परिवर्तन कर देती हैं इसका हम लोग अनुमान नहीं कर सकते। धरातल पर हम जिन ऊँचे ऊँचे पर्वतोंको देखते हैं उनमेंसे कुछ तो पृथ्वी की पपड़ीके ऊपर उठ जानेसे इस रूपमें हैं परन्तु बहुतसे ऐसे हैं जो पपड़ीके उठनेसे नहीं हैं प्रत्युत उनकी ऊँचीसे ऊँची चोटी किसी समय पृथ्वीके साधारण धरातलकी ऊँचाईके बराबर थी वा घाटी थी, परन्तु उसके आसपास वा अगल बगल की शिलाओं को नदियों ने आजसे लाखओं वर्ष पूर्व से खंडित करना जारी रक्खा। उनकी इस धीरे २ किन्तु निरन्त कियाका फल यह हुआ कि आज वे पर्वत धरातलसे बहुत ऊँचे उठे दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि नदियां किस प्रकार निरन्तर धरातलको गहरा करनेका कार्य करती रहती हैं।

हम यह सोच सकते हैं कि जो नदियां प्रचंड धार वाली होंगी वे ही धरातलको खंडित करती होंगी परन्तु यह बात नहीं है। पर्वतकी घाटीसे नीचेकी ओर बहुत शान्तिपूर्वक प्रवाहित होने वाली सरिता भी धरातलको भग्न करनेमें बराबर लगी हुई है। धाराकी प्रत्येक मोड़ पर तटसे टकरा कर नदीका जल नीचे नीचे मिट्टीको काटता रहता है, कुछ दिन वा महीनेमें तटके नीचेकी इतनी मिट्टी निकल गई होती है कि ऊपरकी मिट्टीके ठहरनेका कोई आधार नहीं रह जाता और वह नीचे गिर पड़ती है। उसे नदी धीरे धीरे गला कर अपने प्रवाहके साथ बहा ले जाती है। इस तरह नदी सदा मार्ग टेढ़ा मेढ़ा कर तट काटने और धरातल गहरा करनेका कार्य जारी रखती है।

नदियोंमें कहीं कहीं प्रपात भी होते हैं। जहां धारा ऊँचाईसे एक गहरे गर्त्तमें गिरती है, वहां सम्भवतः प्रपातके ऊपर नदीका पेंदा किसी दृढ़ शिलाका होता है जिसको पानी नहीं काट सकता परन्तु दृढ़ शिलाके नीचे नर्म मिट्टी वा बालूका पत्थर हो सकता है। जब पानी नीचे गिरता है तो पीछेकी ओर शिलाके खड़े किनारेकी ओर लौट कर टकराता है जिससे वह धीरे धीरे कटने लगता है। पहले एक छोटी कंदरा बनती है जो पानीके टकराने से धीरे धीरे बड़ी होने लगती है। इसके बड़े होजाने पर ऊपरकी दृढ़ शिला निराधार होनेके कारण

टूट कर नीचे गिर जाती है। इस प्रकार धीरे धीरे कोमल जलकी क्रियासे प्रपात नदीके उद्गमकी ओर खिसकता जाता है। इसी प्रकार कनाडामें स्थित संसारका प्रसिद्ध नियाग्रा प्रपात प्रत्येक वर्ष ५ फ़ीट उद्गमकी ओर खिसकता है और एक समय आयगा जब कि वह नदीके उद्गम स्थल इरी झीलके समीप पहुँच जाय परन्तु इसमें सहस्रों वर्ष लग जायेंगे।

धरातलके इन परिवर्तनोंको उपस्थित करनेमें समुद्र भी शान्त नहीं रहता, वह तटको काट काट कर स्थल खंडमें घुसनेका उद्योग करता रहता है। इन सब साधनोंसे धरातलके कटने और गहरे होने का काम जारी रहता है परन्तु इस प्रकारकी खंडित वस्तुएँ दूसरे साधनों द्वारा फिर दूसरे स्थान पर गर्त्तोको भरने वा समुद्रके तलको ऊँचा कर शिला बनाने वा अन्य स्थानोंमें पहुंचती हैं। इस प्रकार एक स्थान पर कणोंको वियोजक साधन पृथक् करता है तो उन्हींको कोई वियोजक साधन एक स्थान पर जुटाता है। इस प्रकार धरातल पर एक ऊँचे स्थानके नीचे जाने और नीचे स्थानके भरनेका कार्य वियोजक और नियोजक साधनों द्वारा जारी रहता है। यदि कहीं पर समुद्र तट काट रहा है तो वहीं कहीं गहरे भागको पाट भी रहा है जिससे जलखंडको जगह स्थल खंड बनता रहता है। नदियाँ पर्वतों और मैदानोंसे कणोंकी जो राशि बहा लाती हैं उन्हें कुछ अपने पेटेमें और कुछ मुहाने पर तथा कुछ समुद्रके गर्भमें धरातल ऊँचा करनेके लिए छोड़ देती हैं। चट्टानोंके टूटने और चूर्ण होने पर वायु कणोंको उड़ाकर किसी गहरी घाटी वा गर्त्तमें पहुँचा कर उसे भरने लगती है जिससे कालान्तरमें उस गर्त्तका कहीं पता भी नहीं होता।

धरातलके परिवर्तनका अनुमान करनेके लिए यदि हम प्राचीन कालके भौगर्भिक मानचित्रकी आज मानचित्रसे तुलना करें तो हमें घोर परिवर्तन दिखाई पड़ेंगे। जहाँ पर किसी समय समुद्रके मध्य एक नन्हीं चोटी दिखाई पड़ती थी वहाँ विशाल महाद्वीप दिखाई पड़ेगा और जहाँ कभी विस्तृत भूमि थी वहाँ भीषण समुद्र कल्लोल कर रहा होगा।

हम इस बातको जानते हैं कि पातालीय आग्नेय शिलाएँ पृथ्वीकी बहुत गहरी तहमें द्रव-उत्तप्त पदार्थके ठंडे होनेसे बनी थीं परन्तु उन्हीं शिलाओं में से ग्रेनाइट शिला आज कहीं कहीं धरातलके ऊपर दिखाई पड़ती है। उसका कारण यह है कि आजसे लाखों वर्ष पूर्व ग्रेनाइट जिस स्थान पर बनी थी वह पृथ्वीकी बहुत गहरी तह थी परन्तु कहीं पर उसके ऊपरकी सभी तहें धीरे धीरे कट कर अन्यत्र आ पहुँची जिससे वह शिला धरातल पर दिखाई पड़ने लगी। एक स्थान पर यह देखा गया है कि ग्रेनाइट शिलाके दिखाई पड़नेके लिए उसके ऊपरकी बारह मील ऊँची शिलाएँ कट कर पृथक हुई हैं। इतनी अधिक मोटी पपड़ी को आँधी, वर्षा और पाले ने कितने दिनोंमें काटा होगा इसका अनुमान कर हम समझ सकते हैं कि पृथ्वी पर कितने कालसे परिवर्तन उपस्थित हो रहा है।

३—ज्वालामुखी और भूचाल

पृथ्वीके धरातलमें परिवर्तन उपस्थित करनेके साधनोंमें ज्वालामुखी और भूचाल बहुत प्रबल हैं। पृथ्वीके जन्मकी कहानी पढ़कर हम यह जानते हैं कि पृथ्वी उत्तप्त द्रव पदार्थके ठंढे होनेसे बनी थी। वह द्रव पदार्थ ऊपरी सतह पर पहले ठंढा हुआ। धरातलके ठंढा होते हुए भी पृथ्वीके नीचे की तहें अधिक उष्ण हैं। इस उष्णताके प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते है। स्थान स्थान पर धरातल पर गर्म पानीके सोते ऊपर उठते दिखाई पड़ते हैं जिनको गीसर कहते हैं उन्हें देखकर सहज ही अनुमान हो सकता है कि पृथ्वी का भीतरी भाग उष्ण है। पृथ्वीके खोदने पर यह उष्णता मिलती है।

इंजिनियरोंने इनका अनुभव किया है कि ज्यों ज्यों अधिक गहराई तक खुदाई होती है त्यों त्यों अधिक उष्णता मिलती है। इसका हिसाब

लगाकर पता लगाया गया है कि प्रत्येक ५० फीटकी गहराई पर १° गर्मी बढ़ जाती है। इस तरह ८ मील की गहराई पर पहुंचने पर इतनी गर्मी मिलेगी कि पानी उबलने लगे इस हिसाबसे २० मीलकी गहराई पर इतना ऊंचा तापक्रम होगा कि वहां कोई भी वस्तु बिना गले नहीं रह सकती। लोगोंका अनुमान है कि पृथ्वी की पपड़ी २० मील मोटी है यदि यह बात ठीक हो तो पृथ्वी का व्यास ८००० मील होनेके कारण पृथ्वी अपनी पपड़ी से २०० गुना मोटी होगी।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या पपड़ीके नीचे पृथ्वी की समस्त वस्तुएं उसके केन्द्र तक उत्तप्त द्रव रूप में ही हैं। पहले कुछ लोगों का विश्वास था कि वे द्रव रूपमें ही होगीं परन्तु यदि ऐसा होता तो उस द्रव पदार्थ में समुद्र की भांति प्रचंड ज्वार उठा करते परन्तु खोजों द्वारा इस प्रकारके ज्वार का पता नहीं चलता अब लोगों का यह विश्वास है कि यद्यपि पृथ्वीके आंतरिक भागों में समस्त वस्तुओं को पिघलाने के लिए पर्याप्त गर्मी है तथापि ऊपरसे शिलाओंका अत्यधिक दबाव उन वस्तुओंको दृढ़ या ठोस कर देता है। सच पूछिए तो पृथ्वीके अभ्यंतर को ठीक ठीक स्थिति बता सकना बड़ा कठिन है और यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वहां द्रव पदार्थ हैं या ठोस क्योंकि इतने अधिक दबाव के पड़ने पर वस्तुओं का क्या रूप रह सकता है इसे हम लोग नहीं जान सकते।

पृथ्वी के केन्द्रके समीप वस्तुओं की चाहे जो अवस्था हो परन्तु पपड़ी के नीचे उत्तप्त द्रव पदार्थों की एक तह वा उनके नाले अवश्य हैं। कभी कभी इन्हीं से ज्वालामुखीके मुख द्वारा पिघलती हुई वस्तुएं लावाके रूप में ऊपर पहुंच जाती हैं, इसको ज्वालामुखीका उद्गार होना कहते हैं। इस उद्गार से बड़े बड़े नगर ध्वंस हो जाते हैं। इटलीके पाम्पियाई और हरकुलेनियम नगर विस्यूवियसके उद्गारके कारण लावा के नीचे पड़कर विनष्ट हो गए थे।

कुछ लोग यह समझते हैं कि ज्वालामुखी जलते हुए पर्वत हैं परन्तु ऐसी बात नहीं हैं उनमें जलन क्रिया होती ही नहीं। वे तो पृथ्वी के गर्भस्थ उत्तप्त द्रव पदार्थों के धरातल तक पहुँचनेके लिये द्वार मात्र हैं। ज्वालामुखी पर्वतों को जन्म देने वाली पृथ्वी की गतियां हैं। जब पृथ्वी की पपड़ी ठंडी हुई तो कहीं वह मोटी थी और कहीं पतली। जब मोटी पपड़ी बोझके कारण नीचे दबने लगी तो उसके नीचे के उत्तप्त द्रव पदार्थ पतली पपड़ी की ओर ढकेल दिए गए। जब किसी प्रकार पपड़ी से छन कर उनतक पानी पहुँच सका तो वह गर्मीके कारण वाष्परूप में परिणत हो गया। वाष्प बनने पर वह ऊपर आने का प्रयत्न करने लगा जिससे पपड़ी में कहीं छेद बन गया। उस छेदके मार्गसे वाष्प के साथ साथ नीचे की पिघली हुई वस्तुएँ भी लावा रूपमें ऊपर आकर फैल गई। ऊपर आने पर अब लावा में ठंडक पहुँची तो वह जम गया जिससे समतल धरातल पर ज्वालामुखीका मुख बनने पर भी वहां चारों ओर से ढालू और उठी हुई शंकुके आकारकी पहाड़ी बन गई। अन्य उद्गारों में यह पहाड़ी और ऊंची होती गई और उसके बीच में एक छिद्र बना रहा। यही आजका ज्वालामुखी पर्वत है।

ज्वालामुखी पर्वतोंके तीन भेद पाये जाते हैं (१) जागृत (२) शान्त (३) सुषुप्त। जागृत ज्वालामुखी वे हैं जिनमें आजकल उद्गार हुआ करते हैं वा किसी भी समय हो सकते हैं। शान्त ज्वालामुखी वे हैं जिनमें पहले कभी उद्गार हुआ था परन्तु अब ठंढे पड़ गए हैं और उसमें उद्गार होनेकी आशा नहीं। सुषुप्त ज्वालामुखी वे हैं जो इस समय शान्त मालूम होते हैं परन्तु वास्तव में उनमें उद्गार होनेकी तैयारी होती रहती है और किसी समय उभड़ सकते हैं।

जब ज्वालामुखीका उद्गार होता है तो उसके मुखसे लावा वा दहकती हुई जो वस्तुएँ निकलती हैं वे बड़ी ऊँची लहरके रूपमें बह निकलती हैं।

उनके नीचे जो वस्तु पड़ती है वह भस्मीभूत हो जाती है। इसके साथ ही भूचाल भी आ सकता है जिससे पृथ्वी स्थान स्थान पर फट जाती है, समतलभूमिकी जगह गहरे नाले वा खड्ड बन जाते हैं, नदी नालोंकी जगह ऊँची जमीन उभर आ सकती है। धरातलके हिलनेसे बड़े बड़े भवन और वृक्ष आदि धराशायी हो जाते हैं।

भूचालको उत्पन्न करनेवाला ज्वालाका उद्गार है परन्तु वह दूसरे कारणोंसे भी उत्पन्न होता है। भीषण भूचाल उत्पन्न करने वाला कारण पृथ्वीका सिकुड़ना है। भीतरकी गर्मी कम होते जानेसे पृथ्वी धीरे धीरे सिकुड़ती है इस कारण उसके ऊपरकी तह फट जाती है। जब नीचेकी भारी चट्टानें फट जाती हैं तो उनके टूटे भाग एक दूसरेसे टकराते हैं। इस कारण उसके ऊपर पृथ्वीकी पपड़ी में कम्पन पैदा हो जाता है। समुद्रकी तरेटीसे पृथ्वीकी निचली तहमें पानी पहुँचनेसे बहुधा भूडोल उत्पन्न हो जाया करते हैं।

भूचालका समय कुछ सेकंडों ही होता है परन्तु उतनेमें ही बहुत अनर्थ हो जाता है और इतने थोड़े समयमें ही घोर परिवर्तन हो सकते हैं। कुछ भूचाल अधिक देर तक भी रहते हैं। लिस्बन नगरका भूचाल पाँच मिनट तक और जमैकाका कई घंटों तक रहा। कभी कभी भूचाल कुछ देर आते हैं और कई दिन महीने, वा सालों तक जारी रहते हैं।

भूचाल या भूकम्पका वैज्ञानिकों ने विशेष अध्ययन कर लिया है और यह एक पृथक विद्या ही हो गई है। ऐसे यंत्र बनाए गए हैं कि पृथ्वी भरमें कहीं भी छोटा बड़ा कैसा ही भूचाल हो उसका पता चल जाता है। इस प्रकार ज्ञात किया जा सका है कि कुछ भूचाल तो अधिक भयङ्कर होते हैं और कुछ बहुत ही साधारण जिन्हें क्षुद्र भूचाल कहा जा सकता है। छोटे मोटे भूचाल नित्य ही आया करते हैं। एक वैज्ञानिक ने ज्ञात किया है कि प्रत्येक घंटेमें चार बार छोटे भूचाल आते हैं और प्रत्येक चौथे घंटे पर कुछ उससे बड़ा भूचाल आता है। इस तरह रात दिन भूचालों का ताँता लगा रहता है परन्तु किसी को उनका पता नहीं होता। उनमें से अधिकांश नगरों और बस्तियोंसे दूर मैदानों और जंगलोंमें आते हैं इस कारण उनकी चर्चा नहीं होती। जब वे नगर वा बस्तीके समीप आते हैं लोगोंको अपना प्रत्यक्ष अनुभव कराते हैं तो उनकी सर्वत्र चर्चा होती है।

फ्रांसकी सरकारी रेल गाड़ियोंमें बेतार के तार यन्त्र लगाया जाना

[ले० श्री हरिकुमार प्रसाद वर्मा एम० एस-सी०]

पिछले कुछ बरसोंमें बेतारके तार में इतनी उन्नति हो गयी है कि अब रेलवे कम्पनियाँ चलती हुई रेल गाड़ियोंमें बेतारके तार द्वारा खबरें पाने और भेजनेके यन्त्र लगानेकी बात सोचने लगी हैं। सन् १९२२ ई० में केनेडियन नेशनल रेलवे के बेतारमें तार द्वारा गाना सुननेके यन्त्र चलती ट्रेनों में लगाये गये थे। इसके बाद उनमें चलने वाले मुसाफिरों के पास बेतार के तार द्वारा खबरें भेजी जाने लगीं। अब तो ट्रेनमें बैठे बैठे ही यात्री कुछ बड़े बड़े स्टेशनोंसे तार बाणी द्वारा बातचीत कर सकता है। अमरीकामें यात्रियोंको ऐसे सुभीतेकी कितनी जरूरत है इसका अनुमान इस बातसे लगाया जा सकता है कि क्यूबेकसे वैनकोवर या न्यूयार्कसे सेनफ्रान्सेसको पहुँचनेमें पूरे पाँच दिन लगते हैं।

इस मुश्किल काममें शुरू शुरूमें आविष्कर्त्ताओं को बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। रेल-गाड़ियोंसे जहाजोंमें बेतारका तार लगाना बहुत आसान है क्योंकि समुद्रमें वह बाधाजनक कारण नहीं हैं जो जमीन पर होते हैं और दूसरे, जहाज पर जगहकी कोई कमी नहीं। चलती हुई रेल गाड़ियों में जब पहले पहल बेतार का तार लगाया गया था तो गाड़ियोंके ढाँचोंमें लगे हुए धातोंके टुकड़ों, रेलकी पटरीके किनारे तारके खम्भोंके तारों और रोशनीके वास्ते लगे हुए डायनमो इत्यादिके कारण बेतारके तार द्वारा खबरें ठीक ठीक नहीं आ सकती थीं। यह नामुमकिन था कि गाड़ियोंमें धातु बिल्कुल ही न लगायी जाय और धातुके रहते हुए बड़ी गड़बड़ी पड़ती थी। कभी कभी तो ऐसा होता था कि ठीक काम करते करते यन्त्र एक दम चुप हो जाता था।

हाल ही में फ्रान्स की एक नई कम्पनी ने जिसका नाम रेडियोफर कम्पनी है ऊपर लिखी बातोंकी जाँच पूरी की है। इस कम्पनीके प्रेसीडेण्ट जेक्स बमपार्ड साहब (Bompard) और मैनेजर राबर्ट टूसेण्ट महोदय (Toussaint) हैं। बड़ी छान बीनके पश्चात् यह उत्साही कम्पनी इस कार्य्यमें सफल हुई है और उसकी कोशिशोंका नतीजा है जो पेरिस और हेवर (Havre) के बीचमें चलने वाली रेल गाड़ियोंमें बेतारके तार द्वारा खबरें भेजने और पाने वाले यन्त्र सफलता पूर्वक लगाए जा सके हैं।

जैसा कि लोगोंका ख्याल है कि खबरें भेजने वाले स्टेशन (Transmitting station) की ताकत (Power) बड़े महत्वकी बात है वैसा नहीं है। यह इस नई विधि से भली प्रकार प्रमाणित है। नई विधिमें वातावरणिक बाधा इतनी कम कर दी गई है कि फ्रान्सके अतिरिक्त अन्य देशोंसे बखेरकी हुई बातें भली प्रकार सुनी जा सकती हैं।

रेडियोफर कम्पनी ने चलती हुई रेलगाड़ियों में बेतारकी तारबाणीके यन्त्र तो लगाए ही हैं मगर इसके अलावा उसने रेलगाड़ी और बड़े बड़े जङ्क्शनोंमें बेतार बर्क़ी करनेकी भी कोशिश की है। कनाडा और जर्मनीके वैज्ञानिकों ने भी ऐसे यन्त्र बनाए हैं, मगर उनमें लागत बहुत पड़ती है। इस कम्पनी ने जो तरीका निकाला है वह बहुत सरल है। इससे अब यह आशा हो चली है कि जलदी ही चलती हुई गाड़ीके यात्री जहाँ चाहें वहाँ तार भेज सकेंगे और तार द्वारा ही उन्हें उत्तर भी मिल सकेगा।

बोनल महोदय (Mr. Bonnal) ही वह व्यक्ति हैं जो सबसे पहले फ्रान्स और स्यामके बीच बेतारबर्क़ी स्थापित करनेमें सफल हुए हैं। इन्हींके बनाये हुये प्रेषक यन्त्र (Transmitting set) से जो छोटी लहरों पर चालू है रेडियोफर

कम्पनी ने काम लिया है। टूसेन्ट महोदयके निकाले हुए तरीके से बत्तियाँ जलाने वाली बाटरी से आवश्यक बल लिया जाता है। इस तरीके से २० वोल्ट वाली बाटरीसे तन्तालम्के विद्युत् कपाट द्वारा शोधन (Rectifying) में बिना बरबादी के साधी धारा मिल जाती है, क्योंकि विद्युत् धारा २००० वोल्टकी परिवर्त्तीय बाटरीसे मिलती है। यही कारण है कि ५० वाट बल होते हुए भी तेजी से चलती हुई रेल गाड़ियोंमें खबरें सुनाई पड़ जाती हैं।

तारोंके भेजने और पानेका सारा काम लहर पर होता है जिनकी लहर लम्बाई लगभग ४७ मीटर होता है। ट्रेनके बिलकुल बीचमें एक ऐसा डिब्बा रहता है जो बेतारके तारके स्टेशनका काम देता है। इसकी छत पर एक आकाशी लगा रहता है जिसके द्वारा खबरें भेजी जाती हैं। तार भेजनेमें प्रायः मोर्सिपद्धति ही काममें लाई जाती है। पहले तो बुआए-कोलम्बे (Boiscolombes) एक छोटा स्टेशन बनाया गया था जिसको चलती रेलगाड़ियोंसे खबरे भेजी जाती थीं मगर अब विलजुएफ (Villejuif) के बड़े डाकखानेके द्वारा ही खबरें आती और जाती हैं।

यात्रियोंके मन बहलावके लिए गाने वगैरः भी सुने जाते हैं मगर इस कार्य्य के लिए फ्रेम एरियल काममें लाया जाता है। एक विशेष प्रकारकी आयोजनासे वातावरणिक बाधायें बिलकुल कम कर दी जाती हैं। रेलगाड़ी में चलने वाले मुसाफिरों को फ्रान्स या अन्य देशका बेतारके तार द्वारा भेजा हुआ गाना वगैरः सुनाया जाता है। मगर कभी कभी वह ठीक ठीक नहीं सुनाई देता तो ग्रामोफोनके रेकार्ड सुनाए जाते हैं। बेतारका संचालक उन्हें संक्षेपसे उस देशका हाल भी बताता जाता है जिसमें होकर रेलगाड़ी जा रही है। वह यह है कि आगे किस स्टेशन पर और कितनी देर गाड़ी ठहरेगी। उस जगह के मुख्य होटल या और कोई विशेष बात हो तो वह भी बताती जाती है। गाड़ी छूटनेके बाद पिछले स्टेशन पर भी अगर कोई नवीन समाचार हो तो उससे यात्रियोंको सूचित किया जाता है। यह सुविधाएँ दूरके यात्रियोंको यात्राके कष्टका अनुभव नहीं होने देतीं।

पेरिस और हैवर (Havre) के बीचमें सफर करने वाले यात्रियोंको पाँच फ्रैङ्क किराया देने पर एक जोड़ा (Disinfected headphone) का मिल जाता है। उसको सिर्फ अपनी सीट पर लगे हुए साकटमें लगा देनेसे बस गाना वगैरः भली प्रकार सुनाई पड़ने लगता है। गाड़ीकी घड़घड़ाहट बिलकुल नहीं मालूम पड़ती। दूसरे यात्री अगर आपसमें बातचीत करना चाहें तो किया करें उससे श्रोताको बिलकुल विघ्न नहीं होता।

चलती गाड़ियोंमें बेतार वर्की यात्रियोंको सदा रुचिकर प्रतीत होगी। डाट्री महोदय (Mr. Dautry) ने जो फ्रांसकी सरकारी रेल कम्पनीके मैनेजर हैं, उद्योग करके यात्रियोंकी सुविधा और मन बहलावके लिए ऐसा किया है। क्या हिन्दोस्तानमें भी कभी ऐसा दिन आएगा जब रेलकी कम्पनियाँ यात्रियोंकी सुविधाका इतना ख्याल करने लगेंगी !!

वायुयानों की दौड़

[ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी०]

श्नीदर नामके एक सज्जन ने वायुयानोंकी दौड़ करानेका सूत्रपात किया। उनके नाम पर एक पुरस्कार हर साल वायुयानोंकी दौड़ में प्रथम आने वालेको दिया जाता है। यह श्नीदर-स्पर्धा एक प्रकारसे अन्तरराष्ट्रीय है और यूरोपके अग्रगण्य वायुयान बनाने वाले इसके लिये वायुयान बनाते हैं और उड़ाकोंको शिक्षा देते हैं। पुरस्कार रखते समय श्नीदरका यही विचार था कि अच्छी अच्छी और सुरक्षित समुद्री वायुयानोंके बनानेमें उत्तेजना मिले। परन्तु आजकल वह विचार पीछे पड़ गया है क्योंकि दौड़ केवल अत्यधिक गतिसे चल सकने वाले वायुयानोंको बनवा सकी है, वह न सुरक्षित हैं और न टिकाऊ।

यह दौड़ इङ्गलैंडके पास एक छोटासा द्वीप है उसीके आसपास होती है। रास्ता एक त्रिभुज रूप है और कुल लम्बाई २१७·५ मील है।

इस साल १२ सितम्बरको १२½ बजे दिनके यह दौड़ हुई। प्रारम्भमें ३ राष्ट्र इस प्रतियोगितामें भाग ले रहे थे, इङ्गलैंड, फ्रांस और इटली। आखिरी समय फ्रांस और इटली इससे अलग हो गये। कदाचित् यह सोच कर कि उनकी हार निश्चित थी। अब तो एक अंग्रेज उड़ाकेको रास्तेका चक्कर लगाना भर रह गया।

लेफ्टिनेन्ट बूथमन ने रोलसरायस इञ्जिन द्वारा संचालित एक वायुयान पर ३४०·०८ मील प्रति घंटेकी गति पर इस दौड़को पूरा किया। संसारमें उस समय यही सबसे अधिक गति थी। इस प्रकार तीन साल तक इङ्गलैंडके पास यह पुरस्कार आ जानेके कारण यह उनका हो गया और अब जब तक और कोई उदार सज्जन पुरस्कार देनेकी घोषणा न करें यह दौड़ बन्द हो जायगी।

इसीके पश्चात् लेफ्टिनेन्ट स्टेनफोर्थ ने दौड़ लगाई और इनकी गति लगभग ३७६·०५ मील प्रति घंटा थी। फिर कदाचित् ३० सितम्बरको इनही ने दूसरे वायुयान पर जिसमें २६०० अश्वबलका एञ्जिन लगा था दौड़ लगाई और उनकी औसत गति उस समय ४०८ मील प्रति घंटा थी। सबसे अधिक गति जिस पर वायुयान चला ४१५ मी० प्र० घं० थी।

इन गतियोंको सुन कर विश्वास नहीं होता। साधारण रीतिसे बढ़ते बढ़ते वायुयान आज उन्नति के शिखर पर पहुँच रहे हैं। एक मिनिटमें लगभग ७ मील! भारतमें रेलकी सबसे अधिक गति शायद १ मील प्रति मिनट होगी। विश्व विख्यात भागने वाला नुर्मी केवल १३ मील प्रति घंटा भागता है।

वायुयानकी गतिका विकास भी मनोरञ्जक है। नीचेके कोष्ठकमें हर सालकी गति और श्नीदर प्रतियोगितामें जीतने वाले देशका नाम दिया है।

सन	देश	औसत गति मील प्रति घंटा
१९१३	फ्रांस	४५·७५
१९१४	इङ्गलैंड	८६·७५
१९२०	इटली	१०७·१२
१९२१	इटली	११०·८४
१९२२	इङ्गलैंड	१४६·६२
१९२३	अमेरिका	१७७·३८
१९२५	"	२३२·५७
१९२६	इटली	२४६·४९
१९२७	इङ्गलैंड	२८१·६५
१९२९	"	३२८·६३
१९३१	"	३४०·०८

१९१३ की गति अर्थात् ४५·७५ ठीक नहीं है। उड़ाके की भूलसे एक चक्कर अधिक लगाना पड़ा। वैसे गति ७० मी० प्र० घ० के लगभग थी। १९१३-१४में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। इञ्जिन वैसे ही

रहे पर वायुयान चलाने की आदत हो जानेसे अधिक गति मिली। १६१४-२० तक महायुद्धके कारण समुद्री वायुयानोंमें अधिक वृद्धि नहीं हुई क्योंकि लड़ाईके दिनों स्थलसे उड़ने वाले यानों पर अधिक ध्यान दिया गया। १६२०-२१ में वायु-यानोंके उड़ानसे संबंधित गणितके अध्ययनसे उन्नति की गई और वैज्ञानिकों ने प्रयोगशालाओंमें बैठ सिद्धान्तोंका अध्ययन कर वायुयान बनवाये। इस समय एञ्जिन का अश्वबल केवल २०० था। सन् १६२२ में एञ्जिन ५०० अश्वबल का था। केवल वैज्ञानिक अध्ययनके प्रभावसे वायुयानोंके गठनमें अन्तर पड़ा। वह अधिक नुकीले और कम बाधाके बने। अब एञ्जिन अधिक शक्ति वाले लगने लगे। १६२५ से १६३१ तक शक्ति निम्नलिखित थी—६००, ८००, ८७५, १६००, २०००, २६००, एञ्जिन गरम हो जाता है इसलिये उसे ठंडा करने पर अधिक ध्यान दिया गया।

यह वायुयान और किसी काम नहीं आ सकते। यह केवल दौड़के ही कामके हैं। पाठकों को सुन कर आश्चर्य होगा कि जिस २६०० अश्व-बलके राक्षससे यह ४१५ मील प्रति घंटा की गति आई वह १ घंटेसे अधिक काम नहीं कर सका। लाखों रुपये इस १ घंटेके लिये ही व्यय हुये। मुसाफिर या बोझ ले जाना तो इस गति पर प्रायः असम्भव ही है। पर आज जो खेल है कल विज्ञान की करामातसे वही हमारे दैनिक जीवनमें होगा। जब रेल चली थी उनके लिये भी यही कहा जाता था, कि इस गति पर मनुष्योंको ले जाना उनके लिये सम्भव न होगा।

इनसे लाभ तो होता ही है क्योंकि एञ्जिन बनानेमें अनुभव होता है और वैज्ञानिक ज्ञान भी होता है।

यह सब होते हुये भी प्रकृति की प्रयोगशाला की उपजोंसे हम कहीं पीछे हैं। प्रकाशकी गति १८६००० मील प्रति सेकिण्ड है। पृथ्वी १८ मील प्रति सेकिण्ड चलती है। और तो और ऋणाणु १ लाख मील प्रति सेकिण्डसे अधिक की गति पर चलते पाये गये हैं।

इञ्जीनियर कान्फ्रेन्स

२६,३० अगस्त को नासिक में मेकेनिकल इञ्जीनियरोंके असोसियेशनकी कान्फ्रेन्स हुई थी। उसके सभापति पेटिट मिल बम्बई के मुख्य इञ्जीनियर, श्री के० एम० मेहेता, एल० एम० ई० थे। आपने अपने संभाषण में टरबाइन और विद्युत् इञ्जनोंके विषयमें विशेष वक्तव्य दिया जिसका भाव यहां दिया जाता है :—

"न्यूकोमेनके वायु-इञ्जिन और वाटके वाष्प इञ्जिनके आविष्कारके समयसे इञ्जिनोंमें बराबर विकास होता आ रहा है, और आज कलकी वाष्प-टरबाइन भी इन्हींका परिवर्धित रूप है। जहाँ तक वाष्प शक्तिका सम्बन्ध है गत पन्द्रह वर्षोंमें जितनी उन्नति हुई है उतनी गत दो या तीन शताब्दियोंमें भी नहीं हुई थी। हमारे देशमें, रुईके कारखानोंमें ६०० आई० एच० पी० से लेकर ४००० आई० एच० पी० बल तक वाष्प-इञ्जिन और १६० से २०० पौंड दबावके लङ्काशायर वाले बायलरकी बाटरियोंका उपयोग किया जाता है। इनमेंसे कहीं कहीं अति-तप्तक यंत्रोंका भी उपयोग किया जाता है जिनसे भाप ४५०° से ५५०° फैरनहीट तक गरमकी जाती है। किसी किसीमें २२०° से २७०° फ तक ही तापक्रम पहुँचता है। इन इञ्जिनोंका प्रयोग पुरानी मिलोंमें भी हो रहा है और उनमें भी जो नई खुल रही हैं। यह ठीक है कि इन इञ्जिनोंकी मरम्मत आदि सुगमतासे हो सकती है। पर यदि हमें अपने यहांका व्यापार बढ़ाना है, तो इनसे बहुत दिनों काम नहीं चल सकता है। हमें इन्हें अवश्य बदलना पड़ेगा। यह कहना कठिन है कि इसके स्थान पर कैसे इञ्जिनोंका प्रयोग किया जायगा क्योंकि यह सब आर्थिक अवस्था पर निर्भर होगा। इस समय तो किसी कारखानेकी आर्थिक परिस्थिति ऐसी नहीं है कि वह पुराने इञ्जिनोंको निकाल सके और उनके स्थानमें नये लगा सके।

"आजकल दो विधियोंका उपयोग किया जाता है, एक तो वाष्पटरबाइन और दूसरी विद्युत् बल। टरबाइनके अन्वेषणका इतिहास अति प्राचीन ईसा से १५० वर्ष पूर्व हीरो नामक कलाकारका स्मरण दिलाता है। उसके उपरान्त १८८३ में पार्सनने दूसरी तरह का टरबाइन बनाया। इसी अन्वेषकने १८६१ में अपने यन्त्रमें कुछ सुधार और किया जिससे आजकल के संग्राहक टरबाइनों की नींव पड़ी। इस यंत्रकला में कुर्टिस, रेट्यू, लिंग्सट्रम आदि ने भी इतिहासोपयोगी कार्य्य किया। इस यंत्रका बड़ा ही महत्व है, और इससे बहुतसे काम निकाले जाते हैं। इसका कारण यह है कि यह छोटा होता है और वज़नमें भी कम। इसके द्वारा जनित ताप बहुत ही उत्कृष्ट होता है, इसे चला भी आसानीसे सकते हैं और खर्च भी कम पड़ता है। अहमदाबादके ११ नये कारखानोंमें से जो गत पांच वर्षोंमें खुले हैं, सातमें वाष्प टरबाइन यंत्रों का उपयोग किया जाता है। इन दो मिलों ने तो ३००० बी० एच० पी० (अश्वबल) के वाष्पटरबाइन आयोजनाओं के लिये लिख दिया है जिनसे प्रति घंटे ६० पौंडके स्थिर दबाव पर १५००० पौंड भाप मिल सकेगी। तीन और मिलोंने भी ऐसा प्रबन्ध कर लेनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है।

"बहुतसे सूती कारखाने विद्युत्से चलाये जाते हैं विद्युत्की उपयोगिताके विषयमें कहना कठिन है क्योंकि परिस्थितियोंके अनुसार इसका महत्व है। या तो बिजली अपने यहाँ कारखानेमें ही तैयार करनी पड़ती है, या निकटके बिजलीघरसे बिजली मिल सकती है। दोनों ही अवस्थाओंमें कुछ न कुछ लाभ और कुछ न कुछ हानि है। गत कुछ वर्षोंमें फ्रांस, अमरीका और जर्मनीमें इस विषयमें बहुत कुछ उन्नति हो चुकी है। अमरीकाके कोलम्बियाका विद्युत्-पावर-स्टेशन इस काममें सब से बढ़ा चढ़ा है। सन् १९२७ में इसका आरम्भ किया गया था और इसकी समाई ६००००

किलोवाट है । इसकी तापउत्कृष्टता ३० °/॰ से अधिक कही जाती है। साधारणतया अन्य स्थानों में यह उत्कृष्टता १६-१७ °/॰ भी कठिनता से पहुँचती है।

"अच्छे बायलरके मिलने पर भी इञ्जिनोंकी शक्ति निर्भर रहती है। लङ्काशायरके बायलर २५० पौंडसे अधिक का दबाव नहीं संभाल सकते। साधारणतया रुईके अच्छे कारखानोंके लिये २६० पौंड दबावके बायलर और बड़े पावर स्टेशनोंके लिये ३५०-३६० पौंड दबाव सहने वाले बायलरोंकी जरूरत पड़ती है। जर्मनीमें १००० से १५०० पौंड दबावके बायलर बनाये जाते हैं। ये ३-४ इंच मोटे निकल-इस्पातके बने होते हैं जिनके ढोलोंमें ३० से १०० टनका बोझ होता है। जर्मनी ने अब तक ८०० अति दृढ़ बायलरके ढोल तैयार किये हैं और ४०० तो इतने दृढ़ हैं कि ये २००० पौंड दबाव सह सकते हैं। कुछ दिन हुए उन्होंने विद्युत्-शोधित् इस्पातकी ३½" मोटी तहके ऐसे ढोल बनाये थे जो ५००० पौं० प्रतिवर्ग इंच दबाव सह सकते थे। अमरीका में १२०० पौं० दबाव सहने वाले बहुत से बायलर बनाये गये हैं। स्विटजरलैंडकी एक कम्पनी १५०० पौं० दबावके बायलर बेचती है।

"भाप बनानेको नई विधियोंका भी आविष्कार हो रहा है। अमरीकाके एक अन्वेषक ने एक इस्पातका कुंडली-रूपका बायलर तैयार किया है जिसमें भापका दबाव ३२०० पौं० प्रतिवर्ग इंच होता है और तापक्रम ७०६° फैरनहीट रहता है। इस यंत्रमें बिना गुप्त तापके शोषित किये हुए ही पानी आयतन में बिना परिवर्तित हुये ही भाप बन जाता है। इसमें ऐसी आयोजना भी रहती है कि भाप बिना पिघले ही कम दबाव (१५००-२००० पौं०) पर की जा सकती है। १००० किलोवाटकी एक आयोजना इसी सिद्धान्त पर बर्लिन में भी की जा रही है जिसकी तापोत्कृष्टता ३५-४० °/॰ होगी। वीयनाके एक प्रोफेसर ने भी इस विधिमें उपयोगी सुधार किया है।

"अमरीकाके संयुक्त राज्यमें एक और महत्व-पूर्ण विधि निकाली गई है। इसमें पारे-के बायलर का उपयोग किया जाता है पारेको वाष्पमें परिणत करते हैं और इसकी भापसे टरबाइन चलाते हैं। पारेकी भापको ठंडी करनेके लिये पानीकी भापका उपयोग किया जाता है। पारे और पानीकी भाप दोनों एक ही भट्टी पर तैयारकी जाती हैं। पानी का क्थनांक केवल २१२° फ ही है, और पारेका ८००° फ है, अतः पानीकी भाप पारेकी भापको द्रवीभूत कर सकती है। पारेकी भाप बड़ी विषैली होती है अतः यंत्रके जोड़ोंको विद्युत् विधिसे बहुत सावधानीसे बन्द किया जाता है।

"संयुक्त राज्य अमरीकाके एच० ए० डाऊ ने पारेके स्थानमें डिफिन्याल ओषिद (diphenyloxide) का प्रयोग बताया है। यह द्रव वायुमंडलके दबाव में ४९६° फ पर उबलता है। इसका अर्थ यह है कि ६८० पौं० दबावकी ऐसी सम्पृक्त भापके तुल्य है जिसकी भाप ४६५ पौं० दबाव और १०००° फ तापक्रम पर पानीकी भापसे ९४ गुणा अधिक भारी होगी। पारद की अपेक्षा यह कहीं अधिक सस्ता पदार्थ है और यह विषैला भी नहीं है। इसकी भाप भी पानीकी भापसे ठंडीकी जा सकेगी अतः इसमें भी वे सब सुविधायें हैं जो पारे में।

"जर्मनीमें गैस टरबाइनके उपयोगका भी प्रयत्न किया जा रहा है। गैस टरबाइनमें सबसे बड़ी असुविधा यह है कि यह स्थान अधिक घेरता है, और भारी भी अधिक होता है। इससे इंजिन नियमपूर्वक भी एकसा नहीं चलता। इस विधिमें विस्फोटक गुणक उपयोग किया जाता है। गैसमें जब विस्फुटन होता है तब इसमें बल उत्पन्न होता है गैस के और इस बल का उपयोग टरबाइन चलानेमें किया जाता है। यह कहना कठिन है कि इस विधिको कभी व्यापारिक सफलता प्राप्त भी होगी या नहीं।

"जर्मनीमें एक दूसरी विधि पर विचार किया जा रहा है। एक ठोस ईंधनका डीसल-इंजिन

बनाया गया है। इसमें ठोस ईंधनसे बल प्राप्त करनेकी बात सोची जा रही है। यदि यह विधि सफल हो गई तो उत्कृष्टता बहुत अधिक बढ़ जायगी। साधारणतया पहले ईंधनसे पानी गरम करके भाप बनाया जाता है और फिर इस भापके बलसे टरबाइन यंत्र चलाया जाता है। यदि ईंधन से एक साथ सीधा टरबाइन चलाया जा सके तो लगभग ६०°/॰ उत्कृष्टताकी बचत हो सके। इसी कल्पनाके आधार पर ठोस ईंधन का व्यवहार किया जा रहा है। साधारणतया १ अश्वबल शक्ति उत्पन्न करनेके लिये ०·४ पौंड भारीतैलकी आवश्यकता होती है। पर यदि इस तैलसे पहले पानीकी भाप तैयारकी जाय और फिर उस भापसे शक्ति उत्पन्नकी जाय तो एक अश्वबल शक्तिके लिये १·२५ पौंड तैलकी ज़रूरत होगी। इस प्रकार तिगुना ईंधन लगेगा। इससे स्पष्ट है कि ईंधनसे यदि टरबाइन चलानेके लिये एक दम सीधी शक्ति प्राप्त कर ली जाय तो कितना लाभ होगा। डीसल-इंजिनका यही उपयोग है।

"हवा-चक्कीसे शक्ति प्राप्त कर लेनेका यत्न सब से अधिक कौतूहलजनक है। जर्मनीकी 'ऐयरो डायनेमिकल लेबोरेटरी' में हवासे बिजली उत्पन्नकी जाती है। हवा-चक्कियोंकी उपयोगिता अति प्राचीन समयसे चली आ रही है। पर उससे जो बल प्राप्त होता था वह अनियमित अस्थायी और कम होता था। पर इस विषयमें आएटन फ्लैटनर ने बहुत उन्नति की। उसके अन्वेषणों ने इस कार्यमें विप्लवकारी परिवर्तन कर दिये। फ्लैटनरके जर्मनी के कारखानोंमें कई सहस्र अश्वबल तैयार किया जाता है।"

मैकेनिकल एञ्जिनिअर्स असोसियेशन जिसका दफ्तर अकोलामें है, बहुत अच्छा काम कर रहा है। इसकी २४ के लगभग शाखायें हैं जो सब बम्बई और मध्यप्रान्तमें ही सीमित हैं। यदि हमारे संयुक्त प्रान्तके एञ्जिनयर भी इसी प्रकारकी कोई संस्था आरम्भ कर लें अथवा इस संस्था के सहयोग में कार्य करें तो बहुत कुछ भला होगा।

—सत्यप्रकाश

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

पूर्ण संख्या—२०१ Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३४ VOL. 34. धन, संवत् १९८८ दिसम्बर १९३१ संख्या ३ No. 3

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३४ } धन, संवत् १९८८ { संख्या ३

प्रकाश-रासायनिक क्रियाओंकी गठन और गत्यात्मक विवेचन तथा प्रकाश-रासायनिक तुल्यता का सिद्धान्त

[लेखक :—श्री वा० वि० भागवत एम० एस-सी०]

प्रकाश रासायनिक क्रियाओंकी गति एवं उनके समाहरण और प्रकाशकी तीव्रता का परस्पर सम्बन्ध जिन सूत्रोंसे बतलाया जाता है वे हर एक क्रियाके लिये भिन्न भिन्न होते हैं। यदि प्रकाश शोषण और प्रकाश रासायनिक गति समानुपाती समझी जाय तो हरएक क्रियाका सूत्र उसकी गठनके ऊपर निर्भर रहता है। पर हर एक क्रियाकी प्रकाश-रासायनिक गठन अलग होनेसे इन सूत्रोंमें कुछ भी साम्यता नहीं दिखाई देती। इसीलिये ऐसा 'सिद्धान्त रूप सम्बन्ध' जो हरएक क्रियाके बारेमें सत्य हो, हम नहीं निकाल सकते।

अंधेरेमें समाहरणका जो क्रिया पर परिणाम होता है वही प्रकाशमें भी हो ऐसा नहीं है। लेकिन क्रिया की श्रेणी अनेक क्रियाओंमें अंधेरेमें तथा प्रकाशमें एक ही रहती है। यदि गति दर्शक समीकरणका रूप बदल जाय तो उससे प्रकाश रासायनिक क्रियाकी गठन भी बदलनी ही चाहिये ऐसा भी कुछ नहीं है, किन्तु सम्भव जरूर है। उदनैलिकाम्लकी ताप-विश्लेषण-क्रियाकी श्रेणी दो है। इसीलिये एक ही वक्त उसके दो अणु विश्लेषित होते हैं ऐसा समझना चाहिये।

$$२ उ नै = उ_२ + नै_२$$

प्रकाशमें विश्लेषणिक गति प्रकाश शोषणके समानुपाती है। जब प्रकाश शोषण बहुत कम होगा तब उसकी श्रेणी गति-परिच्छेदमें बतलाये अनुरूप एक रहेगी और सम्पूर्ण शोषणमें शून्य रहेगी। पर ऐसी बात नहीं है कि अब दो अणु साथ विश्लेषित हो ही नहीं सकते। स्टर्न और वोल्मर तो ऐसा समझते हैं कि एक उत्तेजित अणु दूसरे

अनुत्तेजित अणुके साथ मिल कर क्रिया करते हैं। इसीलिये 'क्वाण्टम संख्या' दो रहती है। अतः यद्यपि गति समीकरण अंधेरे और प्रकाशमें भिन्न भिन्न है तो भी दोनों अवस्थाओं की गठन एक ही हो सकती है।

प्रकाश रासायनिक परिवर्तन की कुछ विशेष श्रेणी नहीं रहती जैसी कि ताप क्रियाकी होती है। श्रेणी का समीकरण

$$ग = स्थि\ स_1^{न_1}\ स_2^{न_2}$$

इस प्रकारका होता है। जहां पर 'ग' यह गति है, 'स्थि' स्थिरांक है और $स_1$, $स_2$ यह क्रियात्मक पदार्थोंके समाहरण हैं। $न_1$ और $न_2$ समाहरणके जिन वर्गके समानुपाती गति है वह संख्यायें हैं। जब शोषण बहुत कम या अपूर्ण होता है तब यह समीकरण प्रकाश-रसायन-क्रिया के बारेमें नहीं लगता।

प्रकाश उत्तेजक पदार्थों का प्राथमिक विश्लेषण :—कुछ प्रकाश रासायनिक क्रियाओं में अणु प्रकाश शोषणसे उत्तेजित होकर दूसरे अणु पर गिरते हैं। और इस तरहसे क्रिया शुरू होती है। कभी यह अणु ही विश्लेषण पाते हैं। कभी कभी यह उत्तेजित अणु परमाणुमें विभाजित होकर फिर दूसरे पदार्थके अणुओंके साथ मिल कर क्रिया उत्पन्न करते हैं। यदि क्रियाके बारेमें ग्रोथर डेपर सिद्धान्त भी सत्य हो तब भी अणु का परमाणुमें विश्लेषण हो सकता है। कभी कभी रासायनिक परिवर्तन प्रकाश-शोषण के समानुपाती होता है। लेकिन कभी २ वह समाहरण पर भी निर्भर रहता है। रासायनिक क्रिया तीव्रता के समानुपाती ही नहीं होती। कभी वह तीव्रता के वर्गमूलके समानुपाती रहती है, या और भी कुछ वर्गानुसार चलती है।

प्रकाश रासायनिक क्रियाओंका वर्गीकरणः— (Classification) प्रकाश द्वारा रासायनिक क्रिया होनेके लिये अणुमें रासायन-क्रिया-शक्ति तथा प्रकाश-शोषण-शक्ति होनी आवश्यक है। प्रकाशसे विभाजन, संश्लेषण, ओषदीकरण, अवकरण, स्थापन, संघट्टभवन, आंतरअणुपरिवर्तन, बहुरूपीवर्तन आदि क्रियाएँ होती हैं। इन सब क्रियाओं का वर्गीकरण करना कठिन है। सन् १८४७ में हेलमोज़ ने इन क्रियाओंके दो प्रमुख भेद मान लिये। एकमें प्रकाशमें अणुके परिवर्तनका वेग बढ़ता है। अर्थात् प्रकाश उत्प्रेरकका कार्य करता है। ऐसी क्रिया की मुक्त-सामर्थ्य (Free nergy) कम हो जाती है। दूसरे प्रकारमें क्रिया प्रकाशके बिना नहीं चलती। इसीलिये उसकी मुक्त-सामर्थ्य अधिक होती है। पहिले प्रकारकी क्रियाओंको बाह्य शक्तिक और दूसरे प्रकारको 'अन्तर शक्तिक' कहते हैं। बाह्य शक्तिक क्रियाएँ दृश्य प्रकाशमें होती हैं तथा अन्तर शक्तिक क्रियाएँ पराकासनी किरणों में बहुधा होती हैं। उदहरिकाम्ल-उद-अरुणिकाम्ल, कर्बन द्वि ओषिद आदि विभाजन-क्रियायें अन्तर-शक्तिक हैं। प्रकाश रासायनिक क्रियाओंके परिवर्तनात्मक और अपरिवर्तनात्मक भी भेद किये जा सकते हैं। प्रथम प्रकारमें क्रिया समावस्थामें आ जाती है। दूसरे प्रकारमें जब तक सब पदार्थ नष्ट न हो जाय तब तक क्रिया चलती रहती है। अधिकतर अपरिवर्तनात्मक क्रियाएँ अन्तर शक्तिक होती हैं। लेकिन प्रयोगके अवस्थानुसार एक ही क्रिया अपरिवर्तनात्मक या परिवर्तनात्मक हो सकती है। उदहरिकाम्लका संश्लेषण नीले प्रकाश में अपरिवर्तनात्मक, तथा पराकासनी किरणों में परिवर्तनात्मक है। जब प्रकाश रासायनिक क्रिया बाह्य पदार्थके मिलानेसे प्रकाश शोषण करके प्रकाश रासायनिक हो जाती है, तब उसको प्रकाश उत्तेजित क्रिया कहते हैं।

प्रकाश रासायनिक क्रियाके तीन भेद भी कर सकते हैं :—

(१) इसमें क्रिया तथा प्रतिक्रियामें एक ही प्रकाश रासायनिक है। दूसरी अंधेरेमें होती है और उस पर प्रकाशका कुछ परिणाम नहीं होता।
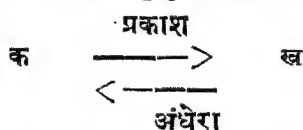
प्रकाश
क ———> ख
<———
अंधेरा

(२) इस श्रेणी में दोनों क्रियायें प्रकाश-रासायनिक हैं। लेकिन वह एक ही जाति की किरणोंमें प्रकाश रासायनिक नहीं हैं।

प्रकाश का किरण
क ————> ख
<————
प्रकाश खा किरण
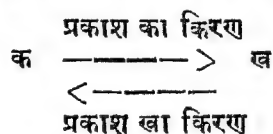
(३) दोनों क्रियायें एक ही प्रकाशसे उत्तेजित होती हैं। लेकिन उत्तेजनका परिमाण भिन्न भिन्न होता है।

प्रकाश का किरण
क ————> ख
<————
प्रकाश का किरण
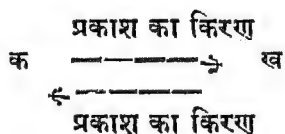
प्रकाश रासायनिक समावस्था और परिमाण क्रियामें की समावस्था एक ही प्रकारकी नहीं होती। इसमें मुक्त सामर्थ्यका परिमाण न्यूनतम नहीं रहता।

प्रकाश रासायनिक तुल्यताका सिद्धान्त

जबसे स्टार्क और आइन्स्टाइन ने प्लाङ्कके क्वाण्टम सिद्धान्तका प्रकाशमें उपयोग किया उसी समयसे इस शास्त्रमें बहुत उत्साहसे कार्य आरम्भ हो गया। स्टार्क ने परमाणु तथा अणु रचना के अध्ययन से यह निश्चय किया कि प्रकाश रासायनिक परिवर्तन कदाचित् शोषित किये हुए प्रकाश की क्वाण्टम संख्या पर निर्भर हो। इसके लेखसे ऐसा दिखाई देता है कि प्राथमिक तथा माध्यमिक क्रियाकी गठनका भेद उसको ठीक तरहसे मालूम था। लेकिन स्टार्कके कार्यकी ओर किसी ने विशेष ध्यान न दिया।

जब सन १९१३ में आइन्स्टाइन ने इसी क्वाण्टम सिद्धान्तको प्रकाश रसायनमें लगा कर 'प्रकाश रासायनिक तुल्यता' का सिद्धान्त निकाला, सब वैज्ञानिक चारों ओरसे उसके ऊपर टूट पड़े। उसकी सत्यता देखनेके लिये अनेक प्रकाश रासायनिक क्रियाओंका अध्ययन शुरू हो गया। इस सिद्धान्तके अनुसार हर एक अणुके विभाजनके लिये प्रकाशके एक क्वाण्टमके शोषणकी आवश्यकता होती है। इस सिद्धान्तको उसने ताप-गति-शास्त्रकी सहायतासे प्रथम स्थापित किया। बादमें बोरके परमाणु रचना सिद्धान्तसे भी उसको स्पष्ट किया। इस सिद्धान्तसे

$$\text{क्वा} = \text{स्थि}\ \text{भ्र}$$

इसो को आइन्स्टाइन का सिद्धान्त कहते हैं। यहाँ पर क्वा—क्वाण्टम सामर्थ्य, स्थि प्लांकका स्थिरांक, भ्र-प्रकाशकी झूलन संख्या है। हर एक क्वाण्टमकी सामर्थ्य एक नहीं रहती। वह प्रकाश की झूलन संख्याके समानुपाती होती है। यदि प्रकाश-उत्तेजक-पदार्थके एक ग्राम अणुका परिवर्तन होना हो तो इसके लिये

$$\text{सा} = \text{अ}\cdot\text{स्थि}\ \text{भ्र}\ (\text{अर्ग})$$

इतनी सामर्थ्य आवश्यक है। जहाँ पर सासामर्थ्य, अ-एवेगैड्रोका स्थिरांक=ग्राम अणुमेंकी अणुओंकी संख्या। लेकिन $४\cdot१८६ \times १०^{७} = १$ कलारी, इसीलिये

$$\text{सा} = \frac{\text{अ}\ \text{स्थि}\ \text{भ्र}}{४\cdot१८६ \times १०^{७}}\ \text{ग्राम कलारी}$$

और अ तथा स्थि के मान को समीकरणमें रखनेके बाद

$$\text{सा} = \frac{६०\cdot७ \times १०^{२२} \times ६\cdot५५ \times १०^{२७}}{४\cdot१८६ \times १०} \times \text{भ्र}$$

और $\text{भ्र} = \frac{\text{प्र}}{\text{ल}}$ [प्र=प्रकाशकी गति ल=लहर लम्बाई] तब

सा = अ सिथ भ

$$= ९५ \times १०^{-१२} \times \frac{३ \times १०^{-१०} \times १००००}{ल}$$

$$= \frac{२८५००}{ल} \text{ ग्राम कलारी}$$

ग्रोथस-ड्रेपरके सिद्धान्त के अनुसार प्रकाश रासायनिक क्रिया और प्रकाश शोषण समानुपाती है, इतना ही पता चलता है। उससे कितना प्रकाश-शोषण होता है इसका पता नहीं चलता। कितना प्रकाश गिरा और उसमें से कितना शोषण होकर उससे रासायनिक क्रिया हुई इस सम्बन्ध को वारबुर्गने प्रकाश रासायनिक अंश नाम दिया तथा यह संम्बन्ध निकालने का कार्य भी उसने किया। बोडेन्स्टाइनने क्वाण्टम परिणाम निकालने के लिये कई प्रकाश रासायनिक क्रियाओं का अध्ययन किया। बहुत सी क्रियाओं में आइन्स्टाइन का सिद्धान्त सत्य प्रमाणित हुआ। इन प्रकाश रासायनिक क्रियाओं की गठन समझाने के लिये उसने ऐसी कल्पना की कि अणु प्रकाश शोषणसे प्रथम यापित होता है लेकिन यह बात गलत मानी गयी है। इसके कार्य से प्रकाश-रासायनिक तुल्यता का सिद्धान्त प्रस्थापित हुआ, यही उसके कार्य का महत्व है। जिन क्रियाओं में आइन्स्टाइन का सिद्धान्त ठीक तरह से वैठा उसका कारण भी देने का उसने यत्न किया।

प्रकाश रासायनिक प्राथमिक क्रियाओंकी गठन

जब प्रकाश प्रकाश-रासायनिक पदार्थ पर गिरता है तब जो प्राथमिक क्रिया शुरू होती है, उसके बारेमें भिन्न भिन्न राय हैं। यह समझने के लिये एक बात समझनी ज़रूरी है कि यह सब कोशिश यह बतलाने के लिये की गयी है कि आइन्स्टाइन का प्रकाश-रासायनिक तुल्यता सिद्धान्त सत्य है। वैज्ञानिकोंने यह देखा कि बहुत सी क्रियाओं में इस सिद्धान्त का पालन नहीं होता। एक क्वाण्टमसे एक अणुके विभाजित होनेकी जगह कई अणु विभाजित होते हैं तथा कभी कई क्वाण्टमों से एक अणु विभाजित होता है। जब यह देखा गया तब उन्होंने इसका कारण देना शुरू किया। प्रथम उन्होंने यह कहा कि जो प्रकाश रासायनिक-क्रिया हम देखते हैं, उसके होते समय उसमें कई क्रियाएं होती हैं और आइन्स्टाइन का सिद्धान्त प्राथमिक क्रिया के बारेमें ही सत्य है। लेकिन प्राथमिक क्रिया होने के बाद उसके साथ माध्यमिक क्रियाएं भी होने के कारण सिद्धान्त का पालन नहीं होता। बाद में यह प्राथमिक क्रिया किस तरह से होती है इसके विषय में भी विवाद उपस्थित हुआ। प्रकाशके शोषण के बाद अणु परमाणु में विभाजित होता है और फिर यह परमाणु शेष अनुत्तेजित अणुके साथ मिलकर क्रिया शुरू करता है, कुछ वैज्ञानिकों ऐसीकी राय है। लेकिन इसमें एक बातकी आवश्यकता है। वह यह कि जितनी प्रकाश-सामर्थ शोषण की जाती है उतनी अणुको परमाणुमें विभाजित कर सकती है या नहीं। बहुत सी क्रियाओंमें यह असंभव है। इसीलिये स्टर्न और वोलमरने कहा कि अणुका परमाणुमें विभाजन नहीं होता किन्तु उत्तेजित अणु तैयार होकर फिर अनुत्तेजित अणु पर गिरने के पूर्व उस उत्तेजित अणु की सामर्थ्य बाहर हवामें जानेसे कम हो जा सकती है। ऐसा जब जब होता है तब तब उस अणुसे क्रिया नहीं हो सकती। इस सिद्धान्त के अनुसार यह स्पष्ट हुआ कि कभी कभी एक अणु के विभाजन के लिये एक क्वाण्टम से अधिक सामर्थ्य क्यों लगती है। यदि उत्तेजित अणुके अनुत्तेजित अणु पर गिरने से जो क्रिया होती है उसमें सामर्थ्य पैदा हो तो उसको लेकर दूसरा अणु उत्तेजित होकर फिर क्रिया आरम्भ कर सकता है अर्थात् प्रकाश शोषण से यदि एक बार क्रिया शुरू होगयी तो जबतक क्रिया से पैदा होने वाली सामर्थ्य हवामें मिल जानेसे या किसी अन्य प्रकारसे नष्ट न हो तबतक क्रिया के संचालनके लिये प्रकाश शोषणकी आवश्यकता नहीं

है। इस तरहसे एक क्वाण्टमसे कई अणु विभाजित होते हैं। उद्जन और हरिन्‌वायु की प्रकाश-रासायनिक क्रिया में जो एक क्वाण्टम से कई अणु विभाजित होते हुये दिखाई देते हैं उसका समाधान इसतरह से किया गया है। इसको प्रकाश-रासायनिक क्रियाकी शृंखलित गठन (Chain mechanism) कहते हैं। इन शृङ्खलित गठनात्मक क्रियाओं का अस्तित्व सर्वव्यापी है और प्रकाश रासायनिक क्रिया के लिये ही कुछ विशेष नहीं है, ऐसा क्रुश्चियनसन और क्रेमरके प्रयोगोंसे पता चलता है। फ्रैङ्कने सन् १९२५ में उसी प्राथमिक प्रक्रिया के स्वरूप के विषय में महत्व पूर्ण विचार प्रगट किये। उन्होंने यह कहा कि जब अणु प्रकाश शोषण कर लेता है तब वह विभाजित हो सकता है और इस तरह से प्राथमिक क्रिया शुरू होती है। अपने विचार को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने यह कहा कि जब सामर्थ्यका शोषण होता है तब अणुमें एक प्रकार का तनाव निर्माण हो जाने से उसमें कमज़ोरी आ जाती है। बड़ी मुश्किल के साथ वह इस सामर्थ्य को अपने पास रखने की कोशिश करता है और जैसे फुटबाल की नली में हवा अधिक होने से और दबाव बढ़ने से तनाव बढ़कर नली फट जाती है, उसी तरह जब सामर्थ्य का शोषण अधिक होता है तब अणुओं के स्वयं फट जाने से क्रिया चलने लगती है इस विचार की प्रयोगिक सत्यता के लिये फ्रैङ्कने यह मालूम किया कि अणुके प्रकाश-शोषण-चित्रसे अणु को विभाजित करने के लिये कितनी प्रकाश-सामर्थ के शोषण की आवश्यकता है। इससे यह सिद्ध हो गया कि जिन क्रियाओंमें इस शोषण-प्रकाश की सामर्थ्य इससे अधिक हो उसमें अणु स्वयं विभाजित होते हैं। लवणजन अणु इस प्रकार का व्यवहार करते हुए दिखाई दिये। इसी विषय पर वाइगर्ट ने भी कुछ विचार प्रगट किये हैं। उसने कहा है कि प्रथम हमको प्राथमिक प्रकाश रासायनिक क्रिया और दृश्य प्रकाश रासायनिक क्रिया को परस्पर बिलकुल अलग करना चाहिये। प्रकाश-रासायनिक क्रिया तो प्राथमिक और माध्यमिक क्रियाओं से बनी रहती है। आइन्स्टाइन का सिद्धान्त प्राथमिक क्रियामें ही लगाना आवश्यक है। जब प्रकाश पदार्थ गिरता है तो पदार्थ में के कुछ अणु तो अलग अलग इकट्ठे हो जाते हैं और प्रकाश का कुछ भाग ले लेते हैं इसलिये प्रकाश रासायनिक क्रियाके लिये आवश्यक प्रकाश कम हो जाता है और एक क्वाण्टम से एक अणु विभाजित नहीं होता। प्रकाश से इन इकट्ठे हुये अणुसंयुगों में 'यवन' पैदा होते हैं और क्रिया शुरू होती है। बेली के भी इस बारे में कुछ विचार हैं। अणु और उससे पैदा होने वाले परमाणु दोनों से निकलने वाले और शोषण किये हुए प्रकाशको एक ही भूयन संख्या होती है। इसलिये अणु जिस प्रकाशके शोषण करके परमाणुमें विभाजित होता है वही प्रकाश परमाणुके दूसरे अनुत्तेजित अणु पर गिरनेसे फिर निकलता है। फिर यह प्रकाश अणु शोषित करता है। इस तरह से इसने यह स्पष्ट किया कि एक क्वाण्टम से कई अणु कैसे विभाजित होते हैं।

वारबुर्ग का कार्य

सन् १९१२ के पहिले ही वारबुर्ग इसका अभ्यास कर रहा था कि प्रकाश रासायनिक परिवर्तन में सामर्थ्य किस तरहसे बदलती है इसीलिये जब आइन्स्टाइन ने अपना सिद्धान्त प्रगट किया उसी समय उसने उसकी सत्यता जांच करनी आरम्भ की। ये क्रियाएँ और भी वैज्ञानिकों ने वारबुर्गके पहिले अध्ययन की थीं।

(१) उद नैलिकाम्लका विभाजन :—यह क्रिया पराकासनी किरणोंमें होती है। २०७० अ° २५३० अ° और २८२० अ° लहर लम्बाईमें इस क्रियाका 'क्वाण्टम परिणाम' कितना होता है यह वारबुर्ग ने निकाला।

लहर लम्बाई २०७० अ° २५३०अ°२८२०अ°
क्वाएटम परिणाम (मिला) १·४४ १·८५ २·०८
" (मिलना चाहिये) ०·७२ ०·८६ ०·९९

$$\frac{\text{मिला}}{\text{मिलना चाहिये}} = \text{दोनों की निष्पत्ति} = २$$

इससे कि क्वाएटम परिणाम दो है, या प्रकाशके एक क्वाएटमसे उदनैलिकाम्लके दो अणु विभाजित होते हैं ऐसा मालूम होता है। इसका कारण वारबुर्ग यह देता है कि प्रकाश शोषणसे अणु प्रथम परमाणुमें विभाजित होते हैं। फिर क्रिया शुरू होती है। इस क्रियाकी गठन वारबुर्ग के अनुसार नीचे दी है।

क्वा—प्रकाश का क्वाएटम
उ नै+क्वा—>उ+नै

फिर (१) उ+उनै—>$उ_2$+नै
(२) नै+उ नै—>$नै_2$+उ
(३) उ+उ—>$उ_2$
(४) नै+उ—>उ नै
(५) नै+नै—>$नै_2$

इन क्रियाओं मेंसे (१) और (५) की ही सम्भावना है इसी लिये उदनैलिकाम्ल का विभाजन

उ नै+क्वा—> उ+नै
उ+उ नै—>नै+$उ_2$
नै+नै—>$नै_2$

इस तरहसे होता है या एक क्वाएटमसे दो अणु विभाजित होते हैं।

स्टर्न और वोलमरके विचार से प्रथम उत्तेजित अणु तैयार होते हैं।

उ नै+क्वा—>उ नै' (उत्तेजित)
उ नै'+उ नै—>$उ_2$+$नै_2$

(२) उद-अरुणिकाम्ल का विभाजन :— इसका परिणाम नीचे दिया है।

लहर लम्बाई २०९० अ° २५३० अ°
क्वाएटम परिणाम २·०८ २·०१

यानी एक क्वाएटमसे दो अणु विभाजित होते हैं। इसीलिये इस क्रियाकी गठन इस प्रकार है :—

उ रु+क्वा—>उ+रु
उ+उ रु—>$उ_2$+रु
रु+रु—> $रु_2$

(३) क्षारलवणिदोंका विभाजन :—कान्डे दूजूने इन क्रियाओंका अध्ययन करके यह निकाला कि प्रकाश शोषणके बाद क्षारलवणिद अणु, क्षार परमाणु और उत्तेजित लवणिद परमाणु में विभाजित होता है।

(४) ओषोन का तैयार होना :—लेनार्ड ने १९०० में यह बतलाया कि २००० अ° से नीचे की पराकासनी किरणोंसे ओषोन तैयार होता है। यदि किरणोंकी लहर लम्बाई २००० अ° से ज्यादा हो तो ओषोनका फिर ओषजन बनता है। वारबुर्ग ने यह बतलाया कि ओषजन परका दबाव बढ़ाकर उससे ओषोन २००० अ° से अधिक लहर लम्बाईके किरणोंसे बन सकता है उसने यह भी देखा कि क्वाएटम परिणाम दबावके साथ कैसे बदलता है। इस क्रियाका अध्ययन उसने २०७० अ° और २५३०अ° में किया है। यदि क्वाएटम परिणाम एक हो तो ओषोनके दो अणु तैयार होने चाहिये

$ओ_2$+क्वा+2$ओ_2$—>2 $ओ_3$

२०७० अ° लहर लम्बाईमें जब दबाव ७०० के नीचे होता है तब यह परिणाम एक है। जैसे २ दबाव बढ़ता है वैसे २ यह परिणाम कम होता जाता है। इसी प्रकार लहर लम्बाईके बढ़नेके साथ वह कम होता है। इनका कारण वारबुर्ग यह देता है कि लहर लम्बाई बढ़नेसे क्वाएटम सामर्थ्य कम होती है, तथा दबाव बढ़नेसे अणु पास आ जाते हैं और उत्तेजित अणु की सामर्थ्य वे लेकर कम कर देते हैं। ऐसी हालतमें क्रिया अणुसे पैदा होने वाले परमाणु से नहीं होती किन्तु उत्तेजित अणुसे होती है। वारबुर्ग ने पांशुज नोषेत क्रियाके विभाजनका भी

अध्ययन किया है। इसमें भी क्वाण्टम परिणाम लहर लम्बाईके साथ कम होता है।

(५) उदाजोविन और अमोनियाका विभाजनः-- यह क्रिया २०२५ और २१४० अ° में होती है, यह वारबुर्ग ने देखा। इसका क्वाण्टम परिणाम ०.२५ है अर्थात् चार क्वाण्टमसे एक अणु विभाजित होता है। इस क्रियाकी गठनके बारेमें बहुत मतभेद है। बेटस् और टेलरके विचारसे यह क्रिया इस तरह से होती है :—

$$नो\,उ_3 क्वा \rightarrow नो\,उ_3' \quad (१)$$

$$नो\,उ_3' + नो\,उ_3 \rightarrow नो_2 उ_4 + उ_2 \quad (२)$$

या

$$नो\,उ_3' \rightarrow नो\,उ_2 + उ \quad (३)$$

$$नो\,उ_2 + नो\,उ_3 \rightarrow नो_2 उ_4 + उ \quad (४)$$

$$नो\,उ_2 + उ_2 \rightarrow नो\,उ_3 + उ \quad (५)$$
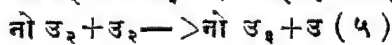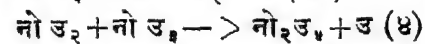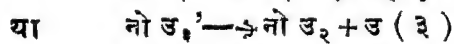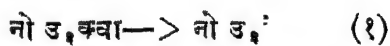
नर्न्स्ट और उसके छात्रोंका कार्य

नर्न्स्ट ने अपने छात्रोंके साथ टोलवीन, ससेन, षष्ठेन, षष्ठ उदबानजावीन आदिके प्रकाश अरुणी-करण (Bromination) का अध्ययन किया है। अन्तिमकी क्रियाका क्वाण्टम परिणाम २० है। नोडेकने अह$_3$ अ की प्रकाश हरिद क्रिया कैसी होती है यह देखा। इसमें एक क्वाण्टमसे एक अणु विभाजित होता है। इस क्रियाकी गठन नोडेकके विचारसे नीचे दी है।

(१) $ह_2 + क्वा \rightarrow ह_2'$

(२) $अह_3\,अ + ह_2' \rightarrow अह_4 + अ + ह$

(३) $अह_3\,अ + ह \rightarrow अह_4 + अ$

(४) $अ + अ + \rightarrow अ_2$.
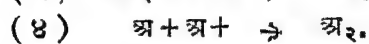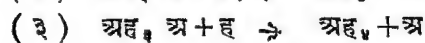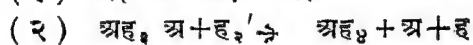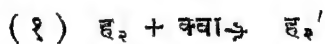
आइन्स्टाइनके प्रकाश-तुल्यता-सिद्धान्तकी विफलताका कारणः—

प्रकाश तुल्यताके सिद्धान्तसे एक प्रकाश-क्वाण्टमसे एक अणु विभाजित होना ज़रूरी है। दो तरहसे इस सिद्धान्तकी विफलता मालूम हुई है। एक तो कभी एक अणुके विभाजनके लिये एकसे अधिक क्वाण्टमोंकी जरूरत होती है। और दूसरे, एक क्वाण्टम प्रकाशसे कई अणु विभाजित होते हैं।

क्वाण्टम परिणाम कम होनेका कारणः—जब प्रकाश का शोषण होता है तब अणुके उत्तेजित होकर दूसरे अनुत्तेजित अणु पर गिर करनेसे क्रिया शुरू होती है। यदि प्रकाश रासायनिक क्रिया दो पदार्थ मिल कर होती हो जैसे क+ख=क ख तो एक पदार्थ अणु प्रकाश-शोषण करके दूसरे पदार्थके अनुत्तेजित अणु पर गिरता है। ऐसी क्रियाओंमें एक ही पदार्थ प्रकाश शोषण करता है। यदि क्रियामें स्वयं एक ही प्रकारका अणु विभाजित होता हो तो वह प्रकाश शोषणके बाद अनुत्तेजित अणुसे मिलता है। अनुत्तेजित अणु पर गिरनेके पहिले उत्तेजित अणु का परमाणु में स्थित्यन्तर होना या और कुछ बातें जो हो सकती हैं और जिनका अस्तित्व प्रकाश रासायनिक गठनके स्पष्टीकरण करनेके लिये मानना पड़ता है, उनसे कुछ मतलब नहीं। महत्व की बात यह है कि प्रकाशका शोषण होनेके बाद क्रिया होनेमें कुछ वक्त लगता है। अर्थात् एक उत्तेजित अणुके दूसरे अणुसे मिलनेके बीचमें कुछ वक्त अवश्य लग जाता है। इतने वक्तमें यदि कभी शोषित प्रकाश-सामर्थ्य ताप रूपमें नष्ट हो गयी या विकिरण स्वरूपमें कम हुई तो क्रिया कम होती है। इसीलिये प्रकाशके एक क्वाण्टमसे एकसे कम अणु विभाजित होता है। जिस घोलक में पदार्थ घोला हो उसके अणु पर गिरनेसे भी सामर्थ्य कम हो जाती है। लेकिन घोलकका क्वाण्टम परिणाम पर कदाचित ही कभी असर होता है। ऐसा भी हो सकता है कि जिस अणु पर यह उत्तेजित परमाणु गिरता है यदि उसकी सामर्थ्य कुछ विशिष्ट परिमाणसे अधिक न हो तो क्रिया नहीं होती। यह तो बात सच है कि एक ही पदार्थ के सब अणुओंकी सामर्थ्य एक ही नहीं रहती।

क्वाण्टम परिणाम बढ़ने का कारणः—बहुत सी क्रियायें जो अंधेरेमें चलती हैं उनको प्रकाशमें रखनेसे क्रियाकी गति बढ़ जाती है। उनमें ऐसी

भी कुछ होती हैं जिनको बादमें अंधेरेमें लानेसे भी उनकी गति अंधेरे वाली गतिसे ज्यादा रहती है। इससे ऐसा मालूम होता है कि उनमें प्रकाशसे उत्तेजित पदार्थ पैदा होता होगा। ऐसी क्रिया प्रकाशमें चलनेसे उत्तेजित पदार्थका परिमाण बढ़ता जाता है और इसीलिये बिना प्रकाशके शोषण किये हुये क्रिया जल्द २ चलती है, और एक काएटमसे एकसे अधिक अणु विभाजित होते हैं। काएटम परिणाम बढ़ने का कारण क्रियाओंकी शृङ्खलित गठन भी हो सकता है। ऐसी शृंखलित गठनोंमें उत्तेजित अणु या परमाणु क्रियाके बाद फिर पैदा होता है और अधिक प्रकाश शोषण की जरूरत नहीं रहती। कभी कभी प्रकाश रासायनिक क्रियासे इतनी उष्णता पैदा होती है कि जिसके शोषणसे दूसरा अणु उत्तेजित हो सकता है। और वह काएटम परिणामको बढ़ाता है। इन सब बातों पर काएटम परिणाम निर्भर होनेसे यह कहना कठिन है कि किस क्रियामें प्रकाश तुल्यताके सिद्धान्त का पालन होगा और किसमें नहीं।

भूमि की सफ़ाई

[ले० श्री जगपति चतुर्वेदी]

यदि बहुतसे लोगोंसे यह पूछा जाय कि आज इस संसारमें किस श्रेणीके लोग सबसे आवश्यक हैं तो सम्भवतः भिन्न भिन्न लोग इसका भिन्न भिन्न उत्तर देंगे। कुछ लोग कहेंगे कि पुरोहित बहुत अच्छे क्योंकि ये धार्मिक कार्य्य कराते हैं, कुछ लोग कहेंगे कि अध्यापक अच्छे हैं क्योंकि वे शिक्षा देते हैं, कुछ लोग कहेंगे कि देश के नेता ही सबसे अच्छे हैं जो देश को सुमार्ग पर चलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे लोग वैद्य, डाक्टर इञ्जिनियर आदिको भी सबसे अच्छा बतलायेंगे। परन्तु इन सब श्रेणियोंके जो लोग हैं वे बिना भोजन किये जीवित नहीं रह सकते और यदि वे इसे प्राप्त करनेके लिये बहुत सा समय लगावें तो उन्हें अपने व्यवसायके लिये कम समय मिलेगा। आज कल जीवनक्रम ऐसा पेचीदा हो गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को एक संकुचित व्यवसायमें लगा रहना पड़ता है जिसमें वह केवल अपने लिये ही नहीं दूसरों के लिये काम करता है और जिस कार्य्यमें वह विशेष रूपसे लगा रहता है उसको अन्य व्यवसायोंसे अधिक उपयोगी समझना उसके लिये स्वाभाविक है।

जो लोग खेत जोत बो कर अन्न तय्यार करते हैं जिससे राष्ट्र कला-कौशल, और वाणिज्य में अधिक उन्नति कर सके वे अवश्य ही धन्यवाद के पात्र हैं। हां, यह अवश्य है कि कृषक भी बदलेमें कुछ पाता है, वह नगरके आमोद प्रमोद मय जीवन से दूर रहता है और उसके आनन्दको कभी कभी निकट पहुँचने पर ही प्राप्त करता है परन्तु उसे पढ़नेके लिये पुस्तकें मिल सकतीं हैं और श्रम कम करने वाले यन्त्र प्राप्त हो सकते हैं। भूमिसे अधिक उपज प्राप्त करनेके लिये उसे वैज्ञानिक ज्ञान भी प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार संसार में सब से अधिक आवश्यक वे मनुष्य हैं जो किसी एककामको बहुत अच्छे ढंगसे करते हैं जिसके लिये वे विशेषतया उपयुक्त होते हैं।

किन्तु यदि अन्न उपजाने वाला व्यक्ति संसार में सबसे आवश्यक नहीं है तो वह कमसे कम सबसे अधिक अपरित्याज्य अवश्य है क्योंकि हम लोगोंमें से कोई व्यक्ति भी भोजनकी चिन्ताके लिये वनचरावस्थामें रहनेवाले मनुष्योंकी अवस्थामें जाना पसन्द न करेगा। एक समय था जब मनुष्य भूख लगने पर जन्तुओंका आखेट कर वा जंगल अथवा मैदान से खाने में अच्छी लगने वाली वनस्पतियों को चुन लाता था। जब मनुष्य ने वनस्पतियोंका मूल वा फल खाना प्रारम्भ किया तो वे पहिले जहाँ पर अपने आप पैदा हुई होतीं वहींसे प्राप्त करता, परन्तु उसने शीघ्र ही देखा कि इसमें अधिक समय लगता है। भद्दा झोपड़ा तय्यार करने, आखेट करने और आखेट किये हुये जन्तुओंके चमड़ेसे अपना अपना पहनावा तय्यार करनेके भी लिये समयकी आवश्यकता प्रतीत हुई। इसके साथ ही उसने यह देखा कि उसके भोजन उत्पन्न करने वाले पौधे दूसरे पौधों की बढ़तीसे दब जाते हैं इसलिये उसने उनको बढ़ने का अच्छा अवसर देनेके लिये उन निरर्थक पौधोंको उखाड़ना आरम्भ किया, जो आसपास जमे होते हैं। इस तरह पौधेको प्रकाश और वायु मिलती जो पौधेकी अच्छी उपजके लिये आवश्यक है।

इसके बाद दूसरा आवश्यक कार्य्य भूमिको स्वच्छ करना, बीज बोना और खेतमें से घास पात अलग करना था। कहीं पर भूमि बहुत अधिक शुष्क होती और कहीं पर बहुत अधिक आर्द्र। इस लिये यह आवश्यक होता कि खेतमें नालों द्वारा पानी पहुँचाया जाय वा बांध बांध कर उसमें बाढ़ न होने दी जाय। इन कार्य्योंके लिये मनुष्यके पास जो सहायक हथियार थे वे बहुत ही भद्दे थे। ये हथियार रगड़ कर बनाये हुये तेज किनारे वा नोकदार पत्थरके टुकड़े और जला कर नोकीले और सख्त बनाये हुये लकड़ोके टुकड़े थे। कुछ

दिनोंके बाद तांबा, कांसा और लोहा काममें आने लगे और मनुष्यका काम शीघ्रतासे होने लगा।

हमें इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि इस बातका पता लगानेके लिये भूतकालके गर्भमें प्रवेश किया जाय कि भूमि किस प्रकार स्वच्छकी जाती है और कृषिके योग बनाई जाती है। अन्वेषकों द्वारा बराबर ऐसी जातियोंका पता मिलता है जो लगभग उतने ही साधारण हथियार और साधारण बुद्धिसे खेती करती हैं जैसे हमारे पूर्वज सहस्रों वर्ष पूर्व करते थे। इसके विपरीत कनाडा, दक्षिणी अमेरिका और न्यूजीलैंड में अनेक साधनों द्वारा जंगल काटकर बड़े बड़े विस्तृत भूखंड बिलकुल स्वच्छ कर दिये जाते हैं। प्राचीनकालमें ऐसे साधन कहां सुलभ थे।

जंगलोंको काट कर मैदान बनानेके लिए यन्त्रों की सहायता लिए बिना कृषकोंको कितनी कठिनाई पड़ी होगी इसका हम लोग अनुमान नहीं कर सकते। जंगलमें उगे हुये पेड़ोंको एक एक कर काटना बड़ा ही कष्टप्रद और बहुत अधिक समय का काम था। पेड़ोंके काट लेने पर भी एक एक पेड़की जड़ खोद कर निकाले बिना खेती करनेकी आशा नहीं की जा सकती थी, इन सब कठिनाइयों के कारण थोड़ी सी भूमि स्वच्छ करनेमें बहुत अधिक श्रम पड़ता था। आजकल वैज्ञानिक यन्त्र कनाडा, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदिके कृषकोंकी भरपूर सहायता करते हैं, उसके पास बड़ेसे बड़े पेड़ोंको सहज ही गिरानेके यन्त्र हैं। उनके कट जाने पर वह उनकी जड़ोंको डाइनामाइटसे उसके नीचे धड़ाका पैदा कर उखाड़ कर फेंक सकता है परन्तु एक एक पेड़को इस तरह काटने और उनकी जड़ उखाड़नेके स्थान पर उसे ऐसे साधन सुलभ हैं जिनसे पेड़ोंका समूह मोटी मोटी जञ्जीरोंसे बाँध कर एक साथ ही जड़ मूलके साथ उखाड़ कर फेंका जा सकता है। इसके लिए वह दो जगहों पर स्थिर इञ्जिनोंको लगाता है, और बीचके वृक्ष समूहोंको चारों ओर से मोटी जञ्जीरों से बांध देता है। इञ्जिन उस जञ्जीरको खींच कर बड़े से बड़े पेड़ोंको जड़से उखाड़ फेंकते हैं। ये पेड़ घसीट कर अन्यत्र पहुँचा दिए जाते हैं जहाँ उपयुक्त नापके लट्ठे काट कर शेष भागको जला दिया जाता है।

यदि मैदानमें पेड़ न हों तो भी यह नहीं हो सकता कि भूमि खेतीके लिए बिलकुल तैयार ही मिले। उसके लिए उसे जोतना होगा, और उसमें उगी हुई जङ्गली वनस्पतियों और कंकड़ पत्थरोंको निकालना होगा। यदि भूमि सूखी हो तो उसको घास पात रहित करनेके लिए आगसे काम लिया जा सकता है परन्तु इस तरह घास पातों की जड़ें नष्ट न होने पर हलका ही आश्रय लेना पड़ सकता है। जड़ोंको निकाल फेंकनेके लिये घोड़ों वा बैलोंसे चलनेवाले साधारण यन्त्रोंसे भी सफलता नहीं मिल सकती। उसके लिये इञ्जिन वाले हल ही काम दे सकते हैं। इञ्जिन वाले हलोंमें कभी तो इञ्जिनको घोड़ोंकी तरह चला कर काम लेते हैं परन्तु कभी कभी मैदानके दो सिरों पर एक एक स्थिर इञ्जिन रख कर उनसे हलको लोहेके तारोंसे आगे और पीछे खिंचवा कर जुताई करते हैं। इस प्रकार बहुत गहरी जुताई कर बहुत सी मिट्टी उलटी जाती है।

भूमि की तैयारी और प्रबंध

सफल खेती इतने अधिक कार्यों पर निर्भर है और इसके लिए इतने अधिक ज्ञानकी आवश्यकता है कि उनमेंसे कुछ अधिक रोचक बातोंको छोड़ कर सबकी चर्चा नहीं की जा सकती। संसारके बहुतसे भागोंमें ऊसर और बंजरसे लेकर दलदली और रेतीली तक सब तरहकी भूमिमें मनुष्य कुछ न कुछ पौधे उगाता है जिसके लिए वहां का ऋतु अनुकूल होती है परन्तु सफलता का मिलना उस भूमिमें कोई नई शक्ति पैदा करनेकी अपेक्षा वनस्पति-जीवनके रहस्यका पूर्ण ज्ञान, उनके भोजन और उनके लिए आवश्यक आर्द्रताकी

मात्राकी जानकारी उन अवस्थाओंके जानने पर अधिक निर्भर है जिनमें बीज वा फल पकते हैं।

अधिकांश मनुष्यों का भोजन गेहूँ है। इसकी फसल भारतवर्ष, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रिका और दक्षिणी रूस में अधिक तैयार होती है। इस अन्न की अधिक उपज करने के लिए जिन साधनों का उपयोग होता है उनके वर्णन से यह ज्ञात हो जायगा कि आजकल कृषि का कौन ढंग है जिसे मनुष्य ने सहस्रों वर्ष के अनुभव और एक शताब्दी के वैज्ञानिक अनुसन्धान के पश्चात् ज्ञात किया है।

गेहूं के लिये कड़ी मिट्टी की आवश्यकता होती है जिससे उसका लंबा डंठल खड़ा रह सके। इस लिए भुरभुरी और रेतीली मिट्टी की अपेक्षा कड़ी मिट्टीमें इसकी अच्छी फसल होती है। उगते समय यह पर्याप्त नमी चाहता है और शुष्क ऊष्ण ग्रीष्म ऋतु में बहुत अच्छी तरह पकता है। यदि पकने के समय ग्रीष्म ऋतु में पानी पड़ जाय और आर्द्र तथा ठंडी ऋतु हो जाय तो गेहूँ की फसल नहीं पक सकती और उसमें एक रोग पैदा हो जाता है जिसे हरदा लगना कहते हैं। इस रोगके कारण गेहूँ की बहुत अधिक फसल प्रत्येक वर्ष नष्ट हो जाती है।

सभी पौधे धरातलके नीचे और ऊपर दोनों ओर फैलनेके लिये पर्याप्त स्थान चाहते हैं। यदि बीज बहुत घने बोये हों तो पौधे दुबले पतले होंगे यदि पौधोंकी जड़के लिये पर्याप्त स्थान देना हो तो उसके लिये अधिक जुताई करनी आवश्यक है। इस सम्बन्धमें आजकलके कृषकोंको आजसे २ शताब्दी पूर्वके कृषकों से बहुत सुभीता है। मनुष्य अपने हाथ से किसी हथियार द्वारा उतनी गहराई तक किसी भी प्रकारसे जमीन नहीं खोद सकता है जितनी वाष्प इंजिनसे चलने वाला आधुनिक शक्तिशाली यंत्र आधुनिक साधनोंसे १½ फीट गहरी मिट्टी खोदकर पलटदी जाती है

प्राचीन कालमें परिश्रम करने वाले मनुष्योंकी कमी नहीं थी इसलिये किसी भी कामके करनेके लिये श्रम बचानेवाले यंत्रोंका आविष्कार करनेकी आवश्यता नहीं प्रतीत हुई थी परन्तु आधुनिक युगमें जब कुछ देशोंमें काम की अधिकता और मनुष्यकी कमी हुई तो मनुष्यों ने भिन्न भिन्न यंत्रोंका आविष्कार किया क्योंकि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि केवल यंत्रों पर ही सब कुछ भरोसा रक्खा जा सकता है। विशेष रूपसे कृषक जानते हैं कि बहुतसी ऐसी प्रकृति की शक्तियां हैं जो भूमिकी उर्वरताको बढ़ाती हैं और वह अपने यंत्रको इस ढंगसे और ऐसे समय पर उपयोगमें लाता है जिससे उन शक्तियों को उसकी सहायता करनेका पूर्ण अवसर मिले। यही कारण है कि शीतोष्ण जल-वायु के देशोंमें भूमि शरद ऋतुमें जोती जाती हैं। इस ऋतुके बाद जब पानी बरसता है और पृथ्वीके दरारों और छेदोंमें जाकर ठहर जाता है। वह वहां जम जाता है, पानी जमने पर फैलता है जिससे दरार अधिक बड़ा होजाता है इस कारण जब बोनेका समय आता है तो मिट्टीके ढेले सुगमतया तोड़े जा सकते हैं। यह पूछा जा सकता है कि मिट्टीको भुरभुरी करनेकी क्या आवश्यकता है। इसका उत्तर यह है कि मिट्टीमें हवा पहुँचाने के लिये, धरातल पर उगने वाले पौधेको संभालनेके लिये उसकी जड़को पर्य्याप्त जगह देनेके लिये। पौधेके बढ़नेके लिये आवश्यक भोजन मिट्टीमें बराबर पैदा किया जाता है। यदि वहाँ पर हवा न पहुँचे तो भोजन उत्पन्न करनेको क्रियायें नहीं हो सकतीं। इसी प्रकार यदि मिट्टी बहुत कड़ी और भीगी हो तो उसमें ऐसे पदार्थ पाये जा सकते हैं जो पौधेके लिये हानिकारक हैं।

मिट्टी के अन्दर वायु पहुँचानेका कार्य्य कुछ अंशों में मिट्टीमें रहनेवाले कीड़ों द्वारा होता है। ये कीड़े अपने खानेके लिये सड़ते हुये वानस्पतिक पदार्थ पानेके लिये मिट्टीकी अधिक मात्रा अपने

शरीरके द्वारा धरातलके ऊपर फेंक देते हैं, इन कीड़ोंका कार्य्य क्षुद्र नहीं समझा जा सकता ऐसे कंकड़ीले पथरीले खेत जिनमें कुछ भी नहीं उग सकता कुछ दिनों में इन कीड़े द्वारा उपजाऊ बन जाते हैं।

पौधा जमीनके अन्दर पर्य्याप्त जगह चाहता है जिससे उनकी जड़ें भोजनकी खोजमें क्षुद्र रन्ध्रोंमें प्रवेश होजांय। आस-पाससे कुछ पदार्थ ग्रहण किये बिना कोई अंकुर बढ़कर बड़ा पौधा नहीं हो सकता है। मनुष्यने जिस समय पहले पहले पौधों को उगाना प्रारम्भ किया उसके बाद सहस्रों वर्ष तक उसे यह ज्ञात न था कि पौधेके भोजनमें कौन पदार्थ होता है और वह उन्हें किस प्रकार ग्रहण कर अपने डण्ठल पत्ते फूल तथा फल बनाता है उसने कडुवे अनुभवों द्वारा जान लिया था कि बीजोंको बोनेका कौनसा ठीक समय है और प्रत्येक प्रकारका पौधा किस स्थितिमें पैदा हो सकता है, उसने यह भी जान लिया था कि खाद डालनेसे फसल बहुत अच्छी हो सकती है परन्तु उसे इसका कुछ भी पता न था कि इन सब बातोंका कारण क्या है। वह यह भी नहीं कह सकता था कि एक विशेष ढंगसे की हुई खेती सफल ही होगी और न फसलको प्रत्येक वर्ष अच्छा ही कर सकता था।

प्राचीन कालके कृषकोंने इसबात का अनुभव किया था कि यदि एक ही खेतमें प्रत्येक वर्ष गेहूँ बोया जाय तो प्रत्येक वर्ष उपज बहुत कम होती जायगी। इसका परिणाम यह होता था कि प्राचीन कालमें जब किसी स्थानके खेतोंमें प्रति वर्ष एक ही प्रकारके अन्नको उपजाते रहने पर खतोंकी उपजाऊ शक्ति बहुत कम होती तो कृषक उस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले जाते और वहां जंगल को साफ कर खेती करने लगते। वहां भी कुछ दिनोंके बाद खेतोंके अनुर्वर हो जाने पर फिर दूसरी जगह चले जाते इसतरह घूम घूम कर खेती करनेवाली जातियां अब तक पाई जाती हैं। खेतके अनुर्वर होने की इस कठिनाई को एक साधन द्वारा दूर करनेमें मनुष्य ने सफलता की जिसे फसलों का हेर फेर कहते हैं। जिस खेतमें एक साल गेहूँ बोया गया है उसीमें दूसरे वर्ष गेहूँ की फसल अच्छी नहीं हो सकती लेकिन उसीमें यदि जौ, चना आदि अन्न बोये जांय तो इनकी फसल खूब होगी। इस प्रकार भिन्न भिन्न फसलोंको बदल बदल कर उनकी उपजाऊ शक्ति रक्षित रखी जा सकती है। आधुनिक वैज्ञानिक खोजों ने तो एक पग आगे बढ़ाया है और खेतोंमें वैज्ञानिक खाद डाल कर प्रत्येक वर्ष खेतकी उपजाऊ शक्ति तनिक भी कम न होने देकर एक ही अनाज की फसल बहुत अच्छी तय्यार करनेमें पूर्ण सफलता प्राप्त करली है।

पौधोंके भोजनके सम्बंधमें वैज्ञानिक अनुसंधान करने वाला जर्मनी का जस्टस वान लीबिग नामका रसायन-शास्त्री था। इसने पौधों का विश्लेषण कर पता लगाया कि उन की उपजके लिए चूना, पोटाश और स्फुर (फासफेट्स) आवश्यक हैं और इन पदार्थोंको भूमिमें मिलाकर उसकी उर्वरता बढ़ाई जा सकती है। पदार्थोंकी उपजके संबंधकी बातें नई नहीं थीं। बहुत दिनोंसे लोग यह जानते थे कि जली हुई लकड़ी की राख, जिसे पोटाश कहा जा सकता है, पौधोंकी बढ़ती अधिक करती है और चूना मिट्टी को नर्म कर देता है परन्तु लीबिग की खोजसे यह ज्ञात हुआ कि किसी मिट्टी की किस प्रकार परीक्षा कर यह पता लगाया जा सकता है कि पौधेके लिए आवश्यक पदार्थों में कौन वस्तु उसमें कम है और वह कभी कैसे दूर की सकती है।

ऊपर पौधेके जिन भोजनोंकी चर्चा कीगई है उन सबको पौधा मूल रोम वा जड़के रोओं द्वारा चूसता है। वे मूलरोम मिट्टीसे पानी चूसते हैं। जब पानी धरातलमें प्रवेश करता है तो वह मिट्टीसे संयोग होनेके कारण उसका कुछ अंश घुला कर वह अपने साथ नीचे ले जाता है। इस प्रकार पौधों के भोजन पानी द्वारा उसे प्राप्त होते हैं।

भेद लक्षण निदान इत्यादि

[ले० श्री डा० कमला प्रसाद जी, एम० बी०]

अस्थि-यक्ष्मा

अस्थि।

[अस्थियां तीन प्रकारकी होती हैं—छोटी चिपटी और लम्बी। प्रत्येक अस्थि दो प्रकारके तन्तुओंकी बनी रहती है। ये तन्तु घनीभूत (Compact) और क्षीण (Cancellous) तन्तु कहाते हैं। छोटी अस्थियों का भीतरी भाग क्षीण तन्तुओंका बना रहता है, जिसके अन्तर्गत जालोंमें वसामय मज्जा (Medullary) और कुछ संयोजक तन्तु (Connective tissue) भरे रहते हैं। क्षीण तन्तुओंके चारोंओर घनीभूत तन्तुओंकी एक पतली झिल्ली सी चढ़ी रहती है। चिपटी अस्थियोंमें दोनों ओर घनीभूत तन्तुओंके बने दो तख्ते (Plates) लगे रहते हैं जिनके बीचमें कुछ क्षीण तन्तु रहते हैं। लम्बी अस्थियोंका अधिकांश घनीभूत तन्तुओंके एक मोटे नलका बना रहता है, जिसके बीचमें अस्थि-मज्जा पाई जाती है। दोनों छोरों पर यह नल बहुतसे छिद्रयुक्त (lose) क्षीण तन्तुओंसे मिला रहता है।

रक्त संचारः—अस्थियोंमें रक्त-संचार दो प्रकार से होता है। एक पौष्टिक धमनी (Nutrient artery) द्वारा, दूसरे पर्यस्थि (Periosterum) नामक एक पतली झिल्ली द्वारा। यह झिल्ली प्रत्येक अस्थिको भली भांति आच्छादित करती है।]

अस्थियाँ यक्ष्माकीटाणुओं द्वारा दो प्रकारसे आक्रान्त होती हैं—पर्यस्थिके भीतर ही भीतर आक्रमण होता है अथवा अस्थ्यान्तरगत क्षीण तन्तुओंमें इसका श्रीगणेश होता है। आक्रमण माध्यमिक होता है और कहीं न कहीं अवश्य ही प्राथमिक यक्ष्माकेन्द्र वर्त्तमान रहता है। रोग बहुधा धीरे धीरे आरम्भ होता है और जीर्ण रूप धारण करता है। निकटस्थ सन्धियोंके आक्रान्त होनेकी बहुत सम्भावना रहती है।

रोगके दो रूप होते हैं।

(१) यक्ष्माजनित पर्यस्थि प्रदाह—(Tuberculous Periostitis); पर्यस्थि तथा उसके अन्तः भागमें दानेदार तन्तु (grannular tissue) इकट्ठे हो जाते हैं। ये तन्तु वास्तवमें बहुसंख्यक यक्ष्मा गांठें हैं, जो पर्यस्थिकी रक्तनलिकाओं को चारों ओर से घेर लेते हैं। अन्य स्थानोंमें यक्ष्माजनित परिवर्तनकी भाँति इसमें भी अधःक्षेपण क्रिया तथा पीब बनना सम्भव है। अन्तमें पर्यस्थिके भीतर व्रण हो जाता है जिसमें दही का सा पीब जम जाता है। तदुपरान्त व्रण बाहरकी ओर मार्ग ढूँढ़ लेता है—यह मार्ग सीधा त्वचा तक पहुँच जाता है वा टेढ़ा मेढ़ा होकर त्वचा को छेद कर निकलता है। यदि अस्थि का घनीभूत तन्तुओं वाला अंश खूब मोटा नहीं हुआ तो रोग भीतर ही भीतर क्षीण तन्तुओं में भी प्रवेश करता जाता है और निकटस्थ सन्धियों पर भी आक्रमण करता है।

रोग निदर्शन (Clinical History):—अस्थिके आक्रान्त अंशमें गूथे हुए आटेके समान कुछ सूजन दिखाई पड़ती है इसे दबाने पर कुछ पीड़ा होती है। इसको वृद्धिमें कई सप्ताह वा महीनों लग जाते हैं। रौञ्जन किरण द्वारा कुछ भी असाधारण छाया नहीं लक्षित होती। रोग की अन्तिम अवस्थाओंमें यह सूजन स्पष्ट हो जाती है और एक साधारण गांठ की सी जान पड़ती है किन्तु इसका आकार अनियमित (Irregular) हो जाता है। ज़ोरसे दबाने पर ऐसा जान पड़ता है मानों वहा का कुछ अंश टूट रहा हो। व्रण हो जाने पर उस स्थान की त्वचा लाल हो जाती है, और दबाने पर सूजा हुआ अंश लचदार (Elastic) जान पड़ता है। पीड़ा अधिक होती है किन्तु पीबके निकल जाने पर यह भी कम होजाती है। व्रण रंध्रमें सलाई (Probe) डालने पर वह घुली हुई एवं घिसी हुई अस्थि तक पहुँच जाती है। यक्ष्मा कीटाणुओंके साथ २ अन्य कीटाणुओंके प्रवेश करने पर दशा और भी खराब हो जाती है।

चिकित्साः—(यक्ष्मा की सूर्य-चिकित्सा शीर्षक अध्याय भी देखिये)

यदि रोग आरम्भमें ही पहचाना गया तो स्वास्थ्य सम्बन्धी साधारण उपयोग का अवलम्बन कर तथा क्षतस्थान पर कुछ दबाव डाल कर चिकित्सा की जा सकती है। दबाव स्कौट्स की पट्टी द्वारा वा बायरकी रीतिसे डाला जा सकता है। यदि पीव तैय्यार हो गया हो अथवा निकटस्थ संधियोंके आक्रान्त होने की सम्भावना हो तो क्षत-चिकित्सा (Surgery) की सहायता लेना उचित है। उक्त स्थान को काट कर वहांके सभी दानेदार तंतुओं तथा घुली हुई अस्थियों को निकाल देना होगा। तदनन्तर गर्त्त को शुद्ध कार्बोलिक अम्ल द्वारा धोकर उसमें और हरीद्रिन (१०°/० मिश्रित) गौज़ (Gauze-कपड़ोंके छोटे २ टुकड़े) भर देना होगा और इस बात की चेष्टा करनी होगी कि घाव भीतरसे भरता जाय। यदि किसी पशुका पर आक्रमण हुआ हो तो उसे काट कर एकदम निकाल ही देना उचित है।

(२) यक्ष्मा-जनित अस्थि-प्रदाह। (Tuberculous osteitis) इस रूपमें क्षीण तंतुओं, अस्थियोंके अन्तमें लगे हुए कारटिलेजों वा मज्जा गर्त्तों (Medullary Cavity) पर आक्रमण होता है।

विकृति (Pathology)

यक्ष्मा कीटाणु ऐसे स्थानों में बैठ जाते हैं जिनमें पहले किसी प्रकार का आघात पहुँच चुका हो। इसका फल यह होता है कि साधारण मज्जा दानेदार तंतुओं में परिवर्तित हो जाती है। क्षीण अस्थि तंतु घिसने एवं और भी क्षीणतर होने लगते हैं। अस्थि-कोषों (Bony cells)का वसा विगलन (Fatty degeneration)* होता जाता है। अस्थिके भीतर किसी किसी अंश में रक्त-संचार बन्द हो जाता है। अस्तु, ये अंश प्राण विहीन हो जाते। इन्हें मृतास्थि खंड (Sequestra) कहते हैं। ये मुलायम शीघ्र चूर हो जाने वाले (Friable) कुछ उजले तथा पीले रंगके होते हैं। ये जीवित अस्थिसे एक दम पृथक नहीं हो जाते।

बहुधा देखा जाता है कि आक्रमण अस्थिके भीतरसे संधियोंकी ओर, पर्यस्थि की ओर अथवा मांस पेशियोंकी ओर बढ़ता जाता है और अन्तमें व्रण तैयार हो जाता है।

चिकित्साः—उसी रीतिसे होती है जैसी कि ऊपर कही जा चुकी है।

७ सन्धि-यक्ष्मा।

(Tuberculosis of the joints)

अंगव्यवच्छेद (Anatomy)

दो अस्थियाँ जहाँ पर एक दूसरेसे जुड़ी हुई रहती हैं उस स्थलको संधि कहते हैं। सन्धिकी बनावट इस प्रकार की होती है। दो अस्थियां अस्थि-बन्धनों (रज्जुओं-ligaments) द्वारा चारों ओर से खूब जकड़ी रहती हैं। ये अस्थि-बन्धन आवश्यकतानुसार चौड़े वा पतले (रस्सियों के आकार के) होते हैं, और भिन्न भिन्न स्थितिमें भिन्न भिन्न नाम धारण करते हैं। अस्थि बन्धनोंके अतिरिक्त अस्थियोंको जोड़ने वाली एक और वस्तु होती है, वह है स्नैहिक-कला (Synuovial membrane) ये एक मोटी झिल्ली होती है जो अस्थि-बन्धनोंके भीतर ही दो अस्थियोंको खूब कस कर पकड़े रहती है। इसके अन्तस्तलसे तैलका सा एक प्रकारका रस निकलता है, जिससे सन्धि-बन्धनोंमें भी चिकनाहट बनी रहती है तथा अस्थियां भी घर्षणसे बचती हैं। अस्थि बन्धनों और स्नैहिक कलाके बीच कभी कभी वसाके कुछ गद्दे पाये जाते हैं। संधिस्थलोंमें जहां अस्थियां समाप्त हो जाती हैं वहां पर कारटिलेजके कुछ अंश

* साधारण तंतु नष्ट हो जाते हैं। कोषोंके भीतरके जितने पदार्थ रहते हैं वे घुल कर वसा (चर्बी) का रूप धारण कर लेते हैं।

रहते हैं जिन्हें यौगिक या अन्तस्थ कारटिलेज कहते हैं। ये कारटिलेज सन्धि बन्धनोंकी बनी स्टोरीके भीतर ही रह जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ छोटी छोटी थैलियां (Bursa) रहती हैं । ये एक प्रकारके रससे भरी रहती हैं तथा गद्देका काम करती हैं। मांस पेशियोंके कंडरा इनके ऊपर रहते हैं और इसी कारण अस्थियोंके घर्षणसे बचते हैं।

यक्ष्मा जनित संधि-प्रदाहः—सन्धि-यक्ष्मा इनमेंसे किसी एक स्थानसे आरम्भ हो सकती है—

स्नैहिक कला
अस्थिके वे अंश जो सन्धिके निकटतम हों
पर्यस्थि
निकटस्थ छोटी थैलियां (Bursa)
अन्तस्थ कारटिलेज।

कारणः—

सम्भवतः रोगी को कभी उक्त स्थानमें कुछ चोट लग गई हो जिसका उसे ध्यान तक न हुआ हो, किन्तु उसका साधारण स्वास्थ्य कुछ दिनोंसे भ्रष्ट हो गया हो । अथवा किसी दूसरे स्थानमें यक्ष्मा ने अपना केन्द्र स्थापित कर लिया हो—इन अवस्थाओंमें यक्ष्मा कीटाणु उस स्थानमें जहाँ चोट लग गई हो अधिकार जमा लेते हैं। किन्तु सन्धिमें यदि खूब ज़ोरसे चोट लग जाय तो यक्ष्मा-कीटाणुओंके प्रवेश करनेकी सम्भावना कम रहती है क्योंकि एक तो रोगी उसकी शीघ्र ही चिकित्सा करा लेंगे, दूसरे क्षतिपूर्तिके लिए उद्योग करने वाले तंतु इतना ज़ोर लगायेंगे कि यदि यक्ष्मा कीटाणुओं ने वहाँ प्रवेश कर भी पाया हो तो वे अधिक उत्पात नहीं मचा सकेंगे एवं स्वयं नष्ट हो जायँगे।

विकृति।

स्नैहिक कला मोटी, सूजी हुई और गुद्दे (Pulpy) के समान हो जाती है। यह आरम्भिक अवस्थाओं में) छोटी छोटी चमकीली यक्ष्मा गांठों द्वारा भरी रहती है। ये गांठे आरम्भमें आलपीनके शिरके आकारकी होती हैं किन्तु धीरे धीरे बढ़ती जाती हैं और अन्तमें सब एक साथ मिल जाती हैं, अथच सन्धिस्थलमें फूट पड़ती हैं। स्नैहिक कलामें छोटे छोटे व्रण लक्षित होने लगते हैं और अन्तमें यह कला पीवसे भरी हुई एक झिल्ली सी रह जाती है जिस पर यहाँ वहाँ यक्ष्माके दाने (Granules) बिछे रहते हैं। इसका बाहरी अंश अन्य तन्तुओं (Structures) से सट जाता है, सूज जाता है और जहाँ तहाँ प्राण-रहित भी हो जाता है। यौगिक कारटिलेज के चारों ओर ऐसी विगलित झिल्ली का एक झालर सा पड़ जाता है और जैसे जैसे यह झालर बढ़ता जाता है इस कारटिलेजके साथ साथ चिपकता जाता है "मानो कोई लता एक दीवारके सहारे ऊपर चढ़ती जाती हो।" इन झालरोंको उठाने पर देखा जाता है कि यह कारटिलेज खोखला हो गया है एवं घिस गया है। ज्योंही यह कारटिलेज किसी स्थान पर बिलकुल घिस जाता है, यक्ष्मा कीटाणु निकटस्थ क्षीण अस्थि तन्तुओं पर भी आक्रमण कर बैठते हैं। यक्ष्मा गांठोंके कारण इस अन्तस्थ कारटिलेजका रक्त-संचार बन्द हो जाता है जिससे वह भी विगलित हो जाता है। कभी कभी पर्यस्थिके कुछ अंश नष्ट हो जाते हैं। सन्धिमें कभी कभी बहुत जल भर जाता है और तब इस अवस्था को यक्ष्मा कृत जलोन्नत सन्धि (Tuberculous Hydrops) कहते हैं । इस तरलमें फाइब्रिनके बहुतसे गुच्छे मिलते हैं जो एक दूसरेसे चिपट कर तरबूजके बीजकेसे हो जाते हैं। इस तरलमें बहुतसे लसीकाणु (lymphocyte) भी मिलते हैं।

स्नैहिक कलाके पार्श्ववर्त्ती तंतु बहुधा आक्रान्त होते हैं और उस अवस्थामें सन्धि बन्धन, उनके निकटवर्त्ती बसा, मांस पेशियां, कण्डरा इत्यादि अक्षत नहीं रह जाते ।

रोगका अन्त दो प्रकारसे होता है।

(एक) क्षत स्थान प्रकृत रोग मुक्त हो जाता है, यक्ष्मा तन्तु घुल कर विलीन हो जाते हैं। और

इनके स्थान में स्वस्थ क्षत-चिह्न (Healthy cicatrical tissues) प्रकट होते हैं। फल यह होता है कि स्नैहिक कला, सन्धि बन्धन इत्यादि एक दूसरेसे भली भांति सट जाते हैं और सन्धि सदाके लिए अचलायमान (Ankylosed) रह जाती है—अर्थात् उसकी मुड़ने इत्यादिकी शक्ति लुप्त हो जाती है।

अथवा

(दो)। रोग बढ़ता जाता है और अन्तमें एक गहरा घाव तैयार हो जाता है। सन्धि-बन्धन इत्यादि विलीन हो जाते हैं और यदि रोगी किसी प्रकार रोगमुक्त हो भी सका तो वह अंग सदैवके लिए नष्ट हो जाता है।

रोगनिदर्शन।

रोग बहुत धीरे धीरे बढ़ता है। बहुत खोज करने पर यहां पता लगेगा कि कुछ दिन पहले रोगीकी उस सन्धिमें एक बार कुछ चोट लग गई थी—किन्तु सभी रोगियोंमें इस घटनाका होना आवश्यक नहीं है। सन्धि की सञ्चार-शक्ति (चलायमानता—Movements) कम होजाती है, कुछ पीड़ा होती है विशेष कर उस समय जब उस अंग पर किसी प्रकार का दबाव डाला जाता है अथवा उसे कुछ पेंठा जाता है। आरम्भमें ये ही लक्षण देखे जाते हैं। यदि पांवकी किसी सन्धिमें आक्रमण हुआ तो रोगी लंगड़ाने लगता है। सन्धि की सञ्चार-शक्ति सभी दिशाओंमें* एक समान कम हो जाती है—सन्धि कम वा अधिक स्थिर होजाती है। यदि केवल स्नैहिक कला ही आक्रान्त हो तो यद्यपि सारा सन्धिस्थल फूल उठता है पीड़ा शायद ही होती है तथा इसकी सञ्चार-शक्ति भी बहुत कम ही नष्ट होती है। किन्तु यदि प्राथमिक वा माध्यमिक रूपसे सन्धि-स्थलों की अस्थियां आक्रान्त हुईं तो सन्धिकी चलायमानता एक दम नष्ट हो जाती है। रोगी क्षत अंगको ऐसी दशामें रखना चाहता है जिसमें उसे अधिक आराम मिल सके। देखनेमें क्षत संधि श्वेत* चिकनी और गोलाकार—विशेष कर वे संधियां जो बाहरसे देखी जा सकें—मालूम होती हैं। संधि के चारो ओरके अन्य तंतु (Structures) प्रायः नष्ट हो जाते हैं, अस्तु, इसका यह फूलना और भी विशेष रूपसे लक्षित होता है। स्पर्श करने पर क्षत संधि दूसरी ओर को उसी संधि की अपेक्षा कुछ अधिक गर्म मालूम होती है यद्यपि आक्रान्त अंश लचदार (Elastic) और जलसिक्तसे जान पड़ते हैं, संधिमें किसी प्रकारके द्रवके वर्त्तमान रहने का आभास नहीं पाया जाता किन्तु जिस रोगी को यक्ष्माकृति-तरलोन्नत-संधि (Tuberculous) Hydrops) हो जाती हैं उस की संधि में द्रव का आभास (Fluctuation) मिलता है। यदि क्षतस्थानमें फाइब्रिनके गुच्छ वर्त्तमान हों तो दबाने पर एक प्रकार की कुकुराहट (Crepitus) का शब्द निकलता है।

समय २ पर पीड़ा बढ़ जाती है, उस समय संधि कुछ अधिक फूली हुई जान पड़ती है। ये लक्षण कुछ समय तक रह कर पुनः कुछ दब जाते हैं किन्तु संधि को पहले की अपेक्षा प्रत्येक बार कुछ अधिक नष्ट करते जाते हैं। जब कारटिलेज घिसने लगता है तब रात को बहुत पीड़ा होती है। कुछ ज्वर और सुस्ती भी होती हैं कुछ समयके उपरान्त जब व्रण तैयार हो जाता है तो स्थानीय एवं सर्वाङ्ग कष्ट और भी बढ़ जाते हैं किन्तु व्रण के फूट जाने पर कुछ चैन मिलता है। पुनः दूसरे व्रण भी शीघ्र प्रस्तुत हो जाते हैं और यदि अन्य पीब तैयार करने वाले

* साधारण स्नैहिक-कला प्रदाह (Simple Symiovitis) में सन्धिकी संचार शक्ति किसी एक ओर—जिस ओर स्नैहिक-कला प्रदाह के कारण यह झिल्ली अन्य तंतुओंके साथ सट जाती है—कम हो जाती है।

* काले शरीरमें सन्धि के वास्तविक रङ्गका पता चलना कठिन होता है।

कीटाणुओं ने क्षत स्थानमें प्रवेश किया तो रोगीकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय होजाती है। अनियमित ज्वर हो आता है। मुलायम अंशोंका श्वेतसार (Amyloid degeneration) होने लगता है। क्षत अङ्ग और भी वक्र हो जाता है और अन्तमें रोगी थकावट, निरन्तर पीड़ा और अनिद्रा द्वारा क्षीण-बल होकर पंचतत्वको प्राप्त होता है।

परिणाम :—

(क) यदि रोग आरम्भिक अवस्थाओंमें पहिचाना जाय तथा इसकी उपयुक्त चिकित्सा की जाय तो सम्भव है कि रोगी पूर्णतः रोगमुक्त हो जायगा तथा क्षत संधि चलायमान बनी रहेगी।

(ख) रोग यदि कुछ बढ़ गया हो तो इससे मुक्ति सम्भव है किन्तु सन्धि सदैवके लिए अचलायमान हो जाती है और यह भय सदैव बना रहता है कि रोग समय पाकर फिर न आक्रमण कर बैठे क्योंकि यक्ष्माकीटाणु सौत्रिक तन्तुओं में छिपे रह जाते हैं।

(ग) यदि पीव बनाने वाले कीटाणुओंने प्रवेश किया तो चिकित्सा असम्भव हो जाती है। रोगी यदि किसी प्रकार जीवन-यात्रा समाप्त न कर सका तो कमसे कम आमरण रोगकी यन्त्रणा भोग करता रहेगा।

(घ) नूतन बहुसंख्यक यक्ष्माका प्रादुर्भाव हो सकता है। अथच फुफ्फुस मस्तिष्क वा वृक्क इत्यादि का सुप्त-यक्ष्मा पुनः जाग्रत हो सकता है।

निदान।

सभी रोगियोंका रोग सरलतापूर्वक पहिचाना नहीं जाता। निदानके लिए दोनों ओरको संधियों की तुलना करना आवश्यक है। रोगग्रस्त सन्धि के आकार प्रकार, रंग तापक्रम और चलायमानता पर विशेष ध्यान देना उचित है। रोगी का पूर्व वृत्तान्त (रोगका इतिहास) जानना ज़रूरी है। क्षत सन्धि में वर्तमान द्रव का परिमाण एवं उसकी अन्य विशेषतायें अच्छी तरह नोट करनी चाहिए। इस बातकी परीक्षा करनी चाहिए कि उस द्रवमें लसीकाणुओं की अधिकता है वा नहीं। यह भी देखना चाहिए कि आक्रान्त सन्धि केवल एक ही ओर अचलायमान है वा सभी ओर। रोगीके रक्तकी परीक्षा आवश्यक है। वैशेषिक प्रतिक्रियायें एवं एकीकरण की भी सहायता ली जा सकती है।

रोगकी भावी अवस्था :—

यह रोगीकी आर्थिक अवस्था एवं परिस्थिति पर निर्भर है। यदि परम्परागत प्रवृत्ति बहुत प्रबल नहीं हुई तो धनिकोंकी सन्तान बहुधा रोगमुक्त हो जाती है। आयुके दोनों छोर भयके स्थान हैं—छोटे बच्चे एवं वृद्ध इसके आक्रमण को नहीं सम्हाल सकते।

चिकित्सा (सूर्य-चिकित्सा भी देखिये)

यह अधिकतर तीन बातों पर निर्भर करती है—कौन सन्धि आक्रान्त हुई है, किस प्रकार (आर्थिक अवस्था) का रोगी है, और रोग कहाँ तक बढ़ गया है।

साधारण स्वास्थ्य चिकित्सा :—जिस अङ्गमें आक्रमण हुआ हो उसे एकदम निश्चेष्ट कर देना उचित है। उसे तख्तियों (Spines) से लगा बाँध देना चाहिए किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि क्षत अंश पर किसी प्रकारका दबाव न पड़े। क्षत अंशके लिये किसी प्रकार की पट्टी (Scott's Dressing) बहुत लाभदायक होती है। अनुकूल जलवायु और यथेष्ट पौष्टिक आहार आवश्यक हैं। ओषधियोंमें कौडके यकृतका तैल और लोहनैलिदका शर्बत (Syr. of Iodide of Iron) दिये जाते हैं। इस प्रकार बहुत दिनों तक चिकित्सा करनी होगी—इस बातकी सूचना रोगीके इष्ट मित्रोंको दे देनी चाहिए।

इस स्वास्थ्य-चिकित्साके अतिरिक्त अन्य चिकित्सायें भी की जा सकती हैं—

(क) निम्नलिखित दवा सूई द्वारा दी जा सकती है—

नैलोपिपील १० भाग

जल (कीटाणु विहीन) Sterilized २० भाग
मधुरिन (Glycerine) कीटाणु विहीन
शेष १०० भाग तक

इस घोलकी एक उपयुक्त मात्रा क्षत-सन्धि-गर्त्त में एक ही स्थान पर वा कई स्थानों पर सूई द्वारा प्रवेश कराई जा सकती है। क्षत सन्धि में एक प्रकारका प्रदाह उत्पन्न हो जाता है जो धीरे धीरे (सम्भवतः एक पक्षमें) स्वयं शान्त हो जाता है, और तब दवाकी दूसरी (कुछ बड़ी मात्रा) मात्रा दुहराई जा सकती है। इस प्रकारकी चिकित्सासे बहुत लाभ होता है और यह उस अवस्थामें विशेष फलप्रद होती है जिसमें सन्धिमें कुछ द्रव एकत्रित हो जाता है।

(ख) बायरकी अधिक रक्त-संचार द्वारा चिकित्साकी रीति (Bier's induced hyperaemia)। यह रीति बहुत सरल है। क्षत सन्धि के कुछ ऊपर रबरको एक पट्टी बांध दी जाती है और वह उतनी देर तक—प्रायः २ य ३ घण्टे तक बंधी हुई छोड़ दी जाती है जब तक रोगी इसको सह सके। इससे क्षत-स्थानसे हृत्पिण्डकी ओर जाने वाली शिरायें दब जाती हैं, अतएव क्षत-स्थान में रक्त अत्यधिक परिमाणमें संचरण करता रहता है तथा रोगकी नाशकारी क्रियाको रोकनेमें सन्धिके तन्तुओंकी सहायता करता है। यह उपाय उस अवस्थाके लिए उपयुक्त नहीं है जहाँ व्रण या पीब हो गया हो।

यदि व्रण हो गया हो तो उस सन्धिकी क्षत-चिकित्सा (Surgical treatment) की जा सकती है। सन्धिको कुछ खोल कर उसमें से पीब निकाल देना चाहिए और उसमें नैलोपिपील (आयडोफार्म) और मधुरिन लगा देना चाहिए।

यदि स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी प्रकारके उपायों का अवलम्बन करने पर भी रोग बढ़ता ही जाता हो अथच उपर्युक्त साधन यथेष्ट प्राप्त हों तो सन्धि को चीर डालना चाहिए। ऐसी अवस्थामें सन्धिको काटकर हटा देना होगा (Excision of the Joint)। किन्तु चीरनेके पूर्व निम्नलिखित बातों पर विचार कर लेना होगा।

(क) रोगीकी आयु—बच्चोंकी सन्धि काटकर निकाल देना अच्छा नहीं है।

(ख) साधारण स्वास्थ्य और शक्तियाँ यदि अच्छी नहीं हुईं तो चीर फाड़ करना कभी उचित नहीं है।

(ग) अस्थियाँ कितनी दूर तक आक्रान्त हुई हैं—यदि बहुत विस्तीर्ण आक्रमण हुआ हो तो उस अङ्ग (limb) को ही काट देना उचित है।

(घ) यदि मुलायम तन्तुओंमें भी विस्तीर्ण आक्रमण हुआ हो उपर्युक्त रीति (ग) से ही चिकित्सा करनी उचित है।

(ङ) यदि व्रण हो गया हो और पीब बहुत दूर दूर तक पहुँच गया हो तो बचा बचा कर चीरने (Conservative operation) की आवश्यकता नहीं होती, अर्थात् जहाँ तक हो सके क्षत अंशों को काट कर निकाल देना ही उचित है।

अन्तिम उपाय है अङ्ग काट कर हटा देना (Amputation)। यह निम्नलिखित अवस्थाओं में किया जा सकता है।

(क) अन्य सभी उपायोंके अवलम्बन करने पर भी रोग बढ़ता जाता है और रोगीकी अवस्था दिन दिन खराब होती जाती हो।

(ख) वृद्ध रोगियोंमें जिनमें रोग बहुत विस्तृत रहता है।

(ग) उन अवस्थाओं में जिनमें सन्धि को काट कर निकाल दिया गया हो पर तौ भी कुछ लाभ नहीं हुआ हो।

(घ) जिन रोगियोंकी दो सन्धियां एक साथ आक्रान्त हुई हों अथवा एक सन्धि और एक अङ्ग आक्रान्त हुए हों, उनके (सन्धिके ऊपर से) एक अङ्गको काटकर हटा देने पर दूसरा क्षत अङ्ग (वा सन्धि) आसानीसे रोगमुक्त हो जाता है।

पदार्थ विज्ञान और विश्व जगत्

[ले० श्री० ज्योतिन्द्र भूषण मुकर्जी एम० एस-सी०]

प्राचीन कालके मनुष्य यह विश्वास करते थे कि यह विश्व जगत् मानव जीवन की रंगभूमि है और मनुष्य ही उसका केन्द्र है। यह धारणा पृथ्वीकी अनेक प्राचीन जातियोंमें थी परन्तु यह बात अभिमान पूर्वक कही जा सकती है कि आर्य्यावर्तमें इतना संकीर्ण मत नहीं था।

इस रंग मंचमें आकाश, पहाड़ और नदियां दृश्य पट थे और मनुष्य और उनके बनाये हुए उन्हीं के स्वरूप देवता (Anthropomorphic deity) जन्म लेते थे और अपनी सुख दुख भोग कर छोटी छोटी लड़ाइयां लड़ कर मर जाते थे। कुछ विद्वानों ने जगत् की उत्पत्ति या ध्वसंके ऊपर विचार किया था, परन्तु यह किसी को नहीं सूझा कि यह भी एक जीवित वस्तु है और जन्मावस्था और मृत्युके बीचके अनुभवों को ऐसेही प्राप्त कर रही है जैसे कि किसी एक पशु या वनस्पति को करना पड़ता है।

आधुनिक कालमें ही वैज्ञानिकों ने जगत् की परिवर्त्तन शीलताको पहिचाना है। भूतत्ववेत्ताओं ने सिद्ध किया कि पृथ्वी का यह स्वरूप जो कि आजकल हम लोग देख रहे हैं चिरकाल से ऐसा नहीं था। जहां पर हिमाचल जैसी गिरिमालायें हैं और जहां पर सहारा जैसे मरु स्थल हैं वहां पहले अथाह समुद्र थे। जहां इंगलैंड और जापानके टापू हैं, कुछ लाख वर्ष पूर्व वहां पर सागर की उत्ताल तरंगों की कल्लोलें सुनाई देती थी। इङ्गलैंडके खटिक स्तर (Chalk cliffs) और जापानके भूचाल उनकी आधुनिक उत्पत्तिके प्रमाण हैं।

ज्योतिषियों ने बहुत गवेषणा द्वारा यह सिद्ध किया कि आकाशके तारों का जीवन वृत्तान्त भी मनुष्य की ही भांति है। ये भी पैदा होते, परिवर्तित होते रहते हैं और फिर मर जाते हैं। आकाशमें बहुतसे तारे अभी बच्चे ही हैं। कुछ सूर्य्य की भांति अभी युवावस्थामें हैं और बहुतसे मर गये हैं क्यों कि उनमें कोई प्रकाश नहीं है (Dark stars) इतना ही अन्तर है कि मनुष्य की आयु वर्षोंमें गिनी जाती है पर सितारों की आयु अरब वर्षोंमें गिनी जाती है।

गत शताब्दिके शेष भागमें यह सब सिद्धान्त दृढ़ हो गये थे, और उसका आधार यह था कि विश्व चराचर कुल ६२ परमाणुओंसे बना हुआ है। उस समय का मत यह था कि ये परमाणु चिरस्थायी, अपरिवर्त्तनशील और अविभाजनीय हैं। जगत चाहे वृद्ध हो परन्तु यह परमाणु चिरकाल एक से रहेंगे। जगत् के परिवर्त्तन होने का अर्थ यह माना जाता था कि ये परमाणु भिन्न भिन्न प्रकारसे बंटे होते हैं पर स्वयं परिवर्त्तित नहीं होते। गत इकत्तीस वर्षोंमें विज्ञान ने नये नये आविष्कारों द्वारा इस मत को बदल दिया है।

परमाणु का परिवर्त्तन :—क्रुक्कस (Crookes) लेनार्ड (Lenard) और सर. जे. जे. टामसन (J. J. Thomson) ने परमाणुओं को तोड़नेके लिये एक खोज आरम्भ की। उनकी गवेषणाओं का फल बहुत ही क्रान्तिकारी निकला। परमाणु जो कि ब्रह्माण्ड की ईंट माने जाते थे, खण्डनीय प्रमाणित किये गये और उनके खण्डों के गुणों का भी अध्ययन किया गया। सन १८६५ में जे. जे. टामसन बतलाया कि जितने परमाणु (उद्जन से पिनाकम् तक) हैं चाहे वह हलके हों या भारी उनके खण्डों का गुरुत्व और विद्युत गुरुत्व एक सा होता है इन खण्डों का नाम ऋणाणु (Electron) रखा गया। १८६२ में ज़ीमान (Zeeman) ने यह आविष्कार किया था, एक कांच की बन्द नलीमें कम दबाव में भरी हुई गैसमें विद्युत प्रेरणा करनेसे जो प्रकाश निकलता है उस प्रकाश की किसी एक तरङ्ग लम्बान की किरणें प्रखर चौम्बकीय क्षेत्रके प्रभावसे दो भिन्न भिन्न लम्बाई की तरङ्ग किरणें बन जाती हैं। अध्यापक लारेञ्ज (Lorentz) ने यह मत

पुष्ट किया कि उपर्युक्त गैसमें जो विद्युताणु हैं वे ही विद्युत प्रवाहसे प्रकाशित होते हैं और शक्तिके प्रभावसे एक तरह की तरङ्ग मालायें दो तरह की हो जाती हैं। लारेञ्ज के प्रत्यक्ष प्रमाण ने ॠणाणु (Electron) में वैज्ञानिकों का विश्वास सुदृढ़ कर दिया।

इसके बाद लार्ड रदरफोर्ड ने परमाणुके भीतर की बनावट पर बहुत खोज की और उससे जो फल निकला उसीको, आधुनिक वैज्ञानिक गवेषणाओं की नीव मानते हैं। परमाणुओंके भार आदि गुणों को परमाणुओंके केन्द्रीय भाग (Nucleus) में स्थित बताया गया। केन्द्र धन विद्युत् गुण युक्त माना जाता है और इसके चारो ओर ॠणाणु अत्यन्त वेगसे परिक्रमा दे रहे हैं। ये परमाणुके वही टुकड़े हैं जिनको टामसन, लेनार्ड आदि ने अलग किया था और जिनको लारेञ्ज ने गणित द्वारा ज़ीमान असर का कारण बताया था। परमाणु का सारा गुरुत्व परमाणुके केन्द्रीय भागमें स्थित है। विद्यताणु अंडाकार पथ में परमाणु के केन्द्रीय भाग के (orbit) चारों ओर परिक्रमा लगा रहे हैं। ॠणाणु की कक्षा का अर्धव्यास २ × १०$^{-८}$ श. मी. स्थिर किया गया और विद्युताणु का अर्धव्यास २ × १०$^{-१३}$ श. मी. इससे यह प्रतीत होता है कि परमाणुमें जो ॠणाणु हैं वे एक दूसरेसे बहुत दूर दूर पर हैं और उनके बीचमें शून्य है। परमाणु का अर्धव्यास उसके केन्द्रीय भागसे सबसे दूर पर घूमने वाले ॠणाणु की दूरी मानी गई। परमाणु का केन्द्रीय भाग सबसे जटिल है और इसके बारेमें ज्ञान अभी थोड़ा ही है। ऐसा हो सकता है कि यह विद्युताणुसे भी छोटा हो। एक परमाणुमें जितने घूमने वालों कि संख्या होती है उसको परमाणुसंख्या (Atomic number) कहते हैं सबसे हलके उद्जनमें एक विद्युताणु है इस लिये इसकी परमाणु संख्या एक मानी जाती है। सबसे भारी पिनाकम् (Uranium) में ९२ ॠणाणु हैं।

वैज्ञानिकों ने यह भी पता चलाया कि परमाणु का केन्द्रीय भाग (Nucleus) भी खण्डित किया जा सकता है। १८९६ में अध्यापक बेकरेल (Becquerel) ने यह आविष्कार किया कि पिनाकम् धातुके लवणोंमें एक ऐसा गुण है कि फोटोग्राफिक प्लेटको काला कर देता है और इस गुण को रश्मि शक्तित्व का नाम दिया गया। रदरफोर्ड और साडी ने इस मतका समर्थन किया कि परमाणु के केन्द्रीय भागके अपने आप टूट जानेसे ये रश्मियां निकलती हैं।

यह सब लिखने का उद्देश्य यह बताना है कि पहले यह मत था कि परमाणु अटूट हैं पर वह भी तोड़ दिया गया अब उनके टूटे टुकड़ों को तोड़ कर छोटे छोटे टुकड़े बना दिये गये। एक पिनाकम् का परमाणु कुछ समय के बाद अपने आप टूट कर सीसेका परमाणु बन जायगा क्योंकि उसमें से आठ कण निकल गये हैं हिमजन के परमाणु का केन्द्र एक अणुसे बना हुआ है। इस टूटने की क्रियामें जो रश्मियां बाहर निकल जा रही हैं उन ही ने बेक्वरेल के प्लेट को काला कर दिया था। पांशुजम् और लालम् को छोड़ कर रश्मि शक्तित्व का गुण भारी परमाणुओंमें ही पाया जाता है। परमाणु संख्या ८३ से ९२ तक सब तत्वोंमें रश्मि शक्ति का अस्तित्व पाया गया है। हलके परमाणु अपने आप नहीं टूटते हैं परन्तु कुछ प्रक्रिया द्वारा उनको तोड़ा जा सकता है। १९२० में रदरफोर्ड ने रश्मिम्से निकले एलफा कण द्वारा ओषजन और नोषजनके परमाणुओं को तोड़ा था, इससे यह सिद्धान्त हुआ कि पदार्थ मात्र दो तरह की इटोंसे बना हुआ है—ॠणाणु और धनाणु (Electron and proton) हरेक धनाणुमें जितना धन विद्युत है उतना ही एक ॠणाणुमें ॠण विद्युत है। उद्जन का केन्द्र धनाणुसे बना हुआ है और जितने परमाणुओंके केन्द्र हैं वे सब इन धनाणु और ॠणाणुओंसे बने हुए हैं।

परमाणुमें ऋणाणु और धनाणु ही नहीं होते हैं परन्तु एक तीसरी वस्तु भी होती है जिसको विद्युत् चौम्बकीय शक्ति कहते हैं (Electromagnetic Energy) प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइनके सापेक्षवाद शास्त्र ने यह सिद्ध किया कि विद्युत् चौम्बकीय शक्ति में भी गुरुत्व है, और उसका परिमाण १ ग्राम गुरुत्व=९×१०^{२०} अर्ग या २·१५×१०^{११} कलारी।

इससे यह प्रतीत होता है कि जो पदार्थ किसी तरह की रश्मि निकाल रहा है वह धीरे धीरे गुरुत्व में कम हो जा रहा है अर्थात् क्षयको प्राप्त हो रहा है। १ ग्राम पिनाकम्की क्या दशा अपने आप हो जाती है नीचे लिखे हुए समीकरणमें देखिये

१ ग्राम पिनाकम्= {
·८६५३ ग्राम सीसम्
·१३४५—हिमजन (αकण)
·०००२ ग्राम अन्य रश्मियां

रश्मिशक्तिक परिवर्तन से पदार्थ रश्मि में परिणत हो जाता है। अर्थात् पदार्थ नष्ट हो कर और कुछ बन जाता है। ४००० ग्राम पिनाकम् पदार्थ कुछ समय पश्चात् ३९९९ ग्राम पदार्थ रह जायगा, १ ग्राम रश्मि होकर निकल जायगा। परन्तु ३९९९ ग्राम सीसम् और हिमजनमें जितने विद्युताणु और धनाणु हैं उतने ही ४००० ग्राम पिनाकम् में थे। उनकी संख्या कम नहीं हुई। पर ४००० ग्राम पिनाकम् में से १ ग्राम रश्मि शक्ति चली गई।

पदार्थ टूट कर रश्मि बन जा रहे हैं पर रश्मि से पदार्थ नहीं बन रहा है या वैज्ञानिकोंको इसका कोई प्रमाण नहीं मिला है। पृथ्वीके गर्भमें दबे हुये पत्थरोंका विश्लेषण कर यह सिद्ध किया गया है कि उसमें जो पिनाकम् था वह धीरे धीरे टूट कर सीसम्, हिमजन, और रश्मि शक्तिमें परिवर्तित हो गया है जितना पिनाकम् आज पृथ्वीमें है उतना कल नहीं रहेगा। पृथ्वीमें जितनी गरमी (Heat) बाहर से आती है उससे ज्यादा पृथ्वीसे बाहर निकल जा रही है और उसका गुरुत्व क्रमशः कम हो जा रहा है। अध्यापक जेफरीज ने अपनी पुस्तक (the Earth) में प्रमाणित किया है कि १·९×१०$^{-९}$ कलारी वर्ग. श. मी पृथ्वीसे प्रत्येक सेकण्डमें बाहर जा रही। इसमें से १३% रश्मि शक्तिक परिवर्तनके कारण निकलती है। रश्मि शक्तिक परिवर्त्तनसे पृथ्वीका गुरुत्व मिनटमें एक आउन्स कम होता है। इस तरह पृथ्वीके परमाणु टूट कर रश्मियाँ आकाश (Space) में भेज रहे हैं। यह रश्मि धारा एक ही तरफ बह रही है, और इस परिवर्तनसे जटिल परामाणु क्रमशः सहल हो जा रहे हैं।

वैज्ञानिकोंका ज्ञान इस विषय में बहुत थोड़ा है। वह यह नहीं कह सकता कि वह एक चक्रवत परिवर्त्तन का एक ही भाग देख रहा है। क्या यह पदार्थ का टूटना हमेशासे होता रहा है अथवा कहीं पदार्थ बन भी रहा है। अभी हाल में एक व्याख्यानमें अध्यापक सर जेम्स जोन्स ने यह बात एक उदाहरणमें बतायी है। मान लीजिए कि आप एक नदीके किनारे खड़े हुए हैं। आप समझ रहे हैं कि इतना पानी नष्ट हो कर बहा जा रहा है। पर आप जानते हैं कि यह नष्ट नहीं हो रहा है। यह पानी समुद्र में मिल जायगा और फिर बादल बन कर बरसेगा। आपको ज्ञान है कि यह नदी का बहना एक चक्रवत् परिवर्तन का एक टुकड़ा मात्र है। इसी तरह ऐसा हो सकता है कि यह रश्मि रूपी नदी जो हम देख रहे हैं, पदार्थ का नष्ट हो जाना नहीं है यह और किसी प्रक्रिया से पदार्थ रश्मि पैदा होती हैं। उस चक्रका स्वरूप हमको मालूम नहीं है। यह विश्व क्रमशः रश्मि शक्तिसे भरता जा रहा है। सापेक्षवादके अनुसार यह जगत् अनन्त नहीं है परन्तु सीमित है।

श्री गोवर्धन संस्था वांई--बम्बई, पूना

स्थापना शके १८२५ संस्थापक श्रीचौंडेमहाराज

अब तक इस संस्थाकी स्थापना को लगभग २५ वर्ष हो गये। इतनी मुद्दतमें संस्था ने क्या कार्य किया, उसकी जानकारी यहां देते हैं। इसके पहले एक बात यहां पर कहना चाहिये कि आज देशमें जो सैकड़ों गोरक्षण संस्थाएं सर्वत्र देख पड़ती हैं, उनकी अपेक्षा इस संस्थाका कार्य अनेक प्रकार जुदा ही है। देशमें होने वाला गोवध कैसे बंद होगा, और देशमें गोधन—समृद्धि क्यों कर उन्नत होगी, इस एक ही ध्येयसे प्रेरित होकर संस्थाने आज तक कार्य सम्पन्न किया है और आगे भी करती रहेगी। हुआ और हो रहा है, उस कार्य का स्वरूप और उसके फल आगे दिये गये हैं।

(१) धनवान सज्जनों ने दिये हुए छोटे बड़े दान, बम्बई और पूना शहरमें प्रति रविवार और फुरसतके समय स्वयंसेवकों द्वारा घुमाई गई संदूकोंमेंसे मिली हुई सहायता, और प्रचार द्वारा प्राप्त हुई सहायता, इनसे कुल रु. ५, ५३,००० जमा हुआ।

(२) उसमेंसे कसाईयोंके हाथमें जानेके पहले देहातके गावोंमें बाजारोंसे गायें खरीदकर उन्हें प्राणदान देनेमें, उनके चारा पानीके प्रबंधमें, नौकर चाकर और प्रचारकों की आजीविका के काम में साहित्य प्रसिद्धि में और अन्यान्य कार्योंमें सब मिलाकर कुल व्यय रु. ३,१७,००० हुआ। शेष रकम गोचरभूमि, संस्थाकी इमारतें जायदाद खरीद करने के काम आई।

(३) जो व्यय हुवा उसमें ४४६१ गायें कसाइयों के हाथ पड़ जानेके पहिले ही किसानोंसे खरीद की। ३०६२ गायें पशु प्रचारकोंके उपदेश को मानकर मुफ्त ही किसानों ने गोशालामें ला पहुंचायीं। जन्म, परिवर्त्तन आदि तरीकोंसे १४२३ गायें पशु बढ़े कुल ७६७६ गायें पशुओंकी परवरिश हुई।

(४) उनमेंसे ८१०२ गाय-बैल किसानोंको दूध गोरसके और खेतीके उपयोगके लिये मुफ्त ही सम्हालनेके लिये दिये।

(५) सम्हालनेके लिये दिये हुए गायें-पशुओंकी हालतका प्रत्यक्ष अवलोकन करनेके लिये इ० स० १९२७ में परमपूज्य १०८ श्रीगोकुलनाथजी महाराज बम्बईकी अध्यक्षतामें वांईमें एक प्रदर्शिनी की गई थी। उसमें एक ही गायकी पुत्रपौत्रादि संतति मिलाकर १७ पशु बढे हुए देख पड़े। उनमेंके चार बैल, फी बैल देढ दो सौ रुपये मूल्य का था।

(६) इस परसे और प्रचारकोंकी जानकारी परसे निश्चित अनुमान निकलता है कि किसानोंको पालन करनेके लिये दी हुई गायें और उनकी संतति मिलाकर आज लगभग २५ हजार पशु किसानोंके पास इस संस्थाके हैं और उनसे किसानोंका खेतीबाड़ीका कार्य होकर दूध गोरसकी पूर्ति किसानोंको हो रही है।

(७) किसानोंके पंगु पशु संस्थाकी गोशालामें दाखिल करनेकी कोई फीस संस्था नहीं लेती। उपयुक्त पशु मुफ्त ही किसानोंको सम्हालनेके लिये देकर उनकी अड़चन संस्था दूर करती है। और जहांतक सुभीता हो संस्था किसानोंको आर्थिक सहायता भी देती रहती है।

(८) खेतीको बढ़िया गोबर-मूतके खाद की पूर्ति हो, इस लिए गोशालाके गाय पशुओंकी टोलियां खेतोंमें बैठाने की पद्धित संस्थाने निकाली है। और उसका उपयोगीपन सर्वमान्य हो गया है। सैकड़ों किसानोंने उसका उपयोग कर लिया है और कर रहे हैं।

(९) प्रचार कार्य, गोरक्षण का सारा सर्वस्व है। यह जानकर संस्थाने व्यापक प्रचार कार्य शुरू किया है। हालमें नाशिक, अहमदनगर, सोलापुर, खान्देश. बिजापुर आदि जिलोंमें, तथा कर्नाटक और गोवा प्रान्तमें, प्रचारकों और स्वयंसेविकाओंके द्वारा प्रचार कार्य हो रहा है संस्थाकी ओरसे अनेक

स्त्री कथावाचक स्थान स्थानके महिला समाजमें गोरक्षणके विषयकी, जागृति कर रहीं हैं। प्रवासी 'गोवर्धन मेले' की योजना होकर उसके नाट्यसंवादादिसे देहातोंकी सामान्य जनताके हृदय पर गोरक्षाकी उत्तम छाप पड़ रही है। उपदेशकोंके कार्यसे गांव गांवके हजारों लोग गो न बेंचनेकी शपथ लेते हैं और उससे कत्लखानोंमें गाय पशु कम जाते हैं।

(१०) संस्थाका मुखपत्र "गोरक्षण" साप्ताहिक (हाल पाक्षिक है) मराठी भाषामें गत १४ वर्षोंसे प्रकाशित होकर उसमें पाश्चात्योंके गोपालनकी सुंदर जानकारी करा दी जाती है। गोरक्षण विषयके गद्य और पद्य साहित्य द्वारा यह संस्था जनतामें जागृति कर रही है जूदे जूदे ११ प्रकारकी गोरक्षण विषयकी पुस्तकें ८ प्रकारकी गोरक्षणी सुशोभित कहावतें, संस्थाके पास बिक्रीके लिये तैयार हैं। अब तक साहित्यकी १ लाख प्रतियां संस्थाकी ओरसे जनतामें प्रस्तुतकीं गईं।

(११) उपरोक्त प्रकारके प्रचारकीय जागृति कार्य से महाराष्ट्रके बांदराके मुख्य कत्लखानोंमें हर साल पशुओंके संहार का प्रमाण प्रतिवर्ष कम कमही होता जाता रहा हैं। यह निम्नांकोंसे दिखाई पड़ेगा। महाराष्ट्र भर व्यापक जागृति का कार्य करने वाली गोवर्धन संस्थाको इस प्राणदानका बहुतसा पुण्यांश प्राप्त हो गया है, ऐसाकहना अतिशयोक्तिका नहीं होगा।

गोवधके वार्षिक अंक १६१६ : ६४६६८ १६२१; ६१२—६८;१६२३; :६०४६, १६२५, ३४५४५; १६२८ : १३७८१

(१२) संस्थाके प्रयत्नसे कोल्हापुर सांगली फलटन, औंध आदि कुछ रियासतोंमें गोवध बन्दीके और गायें कसाईयोंको बेचनेकी मना करनेके जाहिरनामें निकले हैं। हैं इससे कितनाही गोधन आज हत्यारोंकी छुरीसे बच गया है। संस्थापकको के प्रयत्नसे भारतबर्षमें जूदे जूदे ३० स्थानोंपर गोशालाएं स्थापित हुईं व वे स्थानिक पंचोंके सुपुर्द कर दी गईं।

(१३) संस्था की गायोंके नित्योपयोगके लिये, विशेषकर आपत्तिके कालमें गायोंकी रक्षाके लिये, संस्था ने ४० हजार रु० खर्च करके ५०० एकड गोचरभूमि सम्पादन की है उसका ब्यौरा इस प्रकार है :—

(श्री) वांईके पास का गोवर्धन पर्वत— ३०० एकड़ भूमि, मूल्य रु० १७००० । (रा) माहूर के पासकी लीलाधर गोचर भूमि—७५ एकड़ भूमि, मू० रु० ६००० । (म) वांईके पासका बेलनकर बाग— १२ एकड़ खेतीकी भूमि'मू० रु० ५००० । (स) थानाके पासका धरमसी बन— ६० एकड़ भूनि, मू० रु० ३००० । माहूरके पास शेठ रामचंद्र लालजोने दिये हुये और दो प्लांट— ७५ एकड़ भूनि मू० रु० ४००० । (म) सताराके पासका दास पर्वत— मू० रु० २५०० ।

इनके सिवा स्व० श्रीमच्छत्रपति शाहू महाराज रियासत करवीर ने अपने राधानगरी परगनेमें २००० गायें चरनेके लिये पर्याप्त जंगल दिया है।

(१४) संस्थाके रजिष्टर किये हुए "ट्रस्टी मंडल" में शेर मोतीलाल माणकचंद उर्फ प्रातप शेठ अमलनेर, श्रीमान् शेठ वल्लभदास मुरलीधर येवला, शेठ कृष्णदास गोवर्धनदास माड़ीवाले पूना और डां० भास्कर श्रीपत भिड़ेक, जैसे धनवान सज्जन और सुशिक्षित गृहस्थ होनेसे कितनी भी बड़ी रकम की सहायताके पात्र यह संस्था है।

(१५) विशेषतः अब कमसे कम साढ़े तीन लाख रुपयों का 'स्थायी कोष' जमाकरके उसकी आयसे बृहन्महाराष्ट्र भरमें प्रचारकोंके द्वारा जागृति का कार्य करना, ऐसा संकल्प है साढ़े तीन लाख रु०मूल्यकी, बम्बईमें खेतवाडी मैन रोड पर "मार्कर बिल्डींग" मोल ली है, और उससे प्रति मास आनेवाला लगभग १॥ २ हजार रु० किरायेमें

से खर्च बाद हो कर, योग्य वेतन देकर योग्य प्रचार नियुक्त करना है। प्रस्तुत कोष जुटाने का प्रारंभ हो गया है। उधार और दान मिला कर कुल रु० १,४६,००० जमा हुआ;अभी भी २,०६,००० रु० कर्जा चुकाना शेष है। इस लिये संस्था को सहायता की विशेष आवश्यकता है। ये प्रचारक देहातोंमें जाकर किसान वर्गको, गायें कसाईको न बेचनेका, उपदेश करके उनके मन झुकालेंगे। और गोपालन शास्त्रीय रीतिसे किस प्रकार करना, यह भी सिखलावेंगे; ऐसी अपेक्षा है। उनके द्वारा किसानोंका प्रचंड संगठन करके सरकारके पास गोवध बन्दीकी मांग अधिक जोरशोरसे चालू रखना' ऐसा उद्देय है। हम समझते है कि बिना प्रचारके गोरक्षण कार्य रुका हुआ है।

(१६) इस स्थायीकोष अथवा तो संस्थाके अन्यान्य कार्योंके लिये जिसे सहायता करना हो, वह संस्थाका ही मनुष्य है यह ठीक तौर पर जांच कर ही उसे सहायता देनाश्री चौंडेमहाराजका नाम बता कर अथवा तो गोवर्धन संस्थासे संबंध बता कर कई बदमाश लोग सहायता मिलानेका प्रयत्न करते हैं। इस विषयमें साधधानी रखना। बम्बई और पूना शहरमें संस्थाके स्वयंसेवक जागृति भिक्षा का कार्य करते रहते हैं उनकी पोशाक इस प्रकार होती है—भगवे रंगकी टोपी और खद्दरका कुर्त्ता, गलेमें हरा पट्टा, उस पर गायका तमगा, और कंधे पर संस्थाके नामके दो और तमगे होते हैं। प्रचारकके पास संस्थाका आज्ञा-पत्र और रसीदबुक होती है गोरक्षण पत्रमें हमेशा प्रचारकके नाम, उनके कार्य का अहवाल, प्रसिद्ध होते रहते हैं। प्रचारकके बारेमें इस प्रकार भरोसा न आता हो तब और प्रचारकके अभावमें, नीचे लिखे पतेपर सहायता भेजना अथवा तो ज्यादा जानकारी मंगा लेना चाहिये।

(१) श्रीगोवर्धन संस्था—वांई—जि. सतारा.

(२) श्रीगोवर्धन संस्था—सदाशिव पेठ—
पूना शहर,

(३) श्रीगोवर्धन संस्था—कार्यालय—
गोवर्धनभवन खेतवाड़ी
बम्बई नं, ४

रसायनका क्रान्तकारी युग और ओषजनका अन्वेषण

[ले० श्री आत्माराम एम० एस-सी०]

रसायन विद्याके पढ़ने वालोंमें कोई विरला ही ऐसा होगा जो इस अद्भुत विद्याके प्रारम्भिक इतिहासके विषयमें थोड़ा सा न जानता हो। यह बात सब लोग जानते हैं कि रासायनिक समय से पहिले वैज्ञानिकोंका मुख्य उद्देश्य नीची श्रेणी की धातुओं (लोहा, तांबा)से सोना बनानेका था, इस समय को कीमिया-काल (Alchemical period) कहते हैं । इस समयके पश्चात् एक दूसरा काल आया जिसको चिकित्सारसायनकाल (Iatro-chemical Period) का नाम दिया जाता है। इस समयके रसायनज्ञोंका मुख्य उद्देश्य रसायन को वैद्यकके रूपमें पढ़ना था। इस समयमें वान हेलमण्ट और वैसिल वैलेण्टिन जैसे महा पुरुष हुये। इनके पश्चात् एक बड़ा ही अद्भुत समय आया जो फ्लोजिस्टन काल (Phlogiston Period) के नामसे विख्यात है। इस समयके व्यक्तियोंमें बेकर और स्टालके नाम सर्वोपरि हैं। इन लोगों का कथन था कि जब कोई वस्तु जलती है उसमेंसे फ्लोजिस्टन निकल जाता है, और कैल्कूस (Calx) रह जाता है जिसको हम लोग अब ओषिद (Oxide) कहते हैं। इसी प्रकार और बहुत सी रसायनिक प्रक्रियायें समझाई गई थीं। किस प्रकार फ्लोजिस्टन सिद्धान्त को ग़लत सिद्ध किया गया इस लेखमें बताया जायगा। साथ ही साथ उस समयके कुछ महान् व्यक्तियों का वर्णन भी दिया जायगा।

इस समयमें रसायन संसारमें पांच मनुष्य सर्व प्रधान रहे हैं; ब्लैक, कैवेण्डिश, प्रिस्टले, शीले और लैवाशिये। इनके जीवन चरित्र और अनुसन्धानोंको ठीक ठीक बतानेके लिये इन लोगों का वृत्तान्त पृथक् पृथक् लिखना उचित समझा गया है।

जोसेफ ब्लैक (१७२८-१७९९)

ब्लैक का जन्म १७२८ में स्काटलैण्डमें हुआ था। वह पहिले एक डाक्टरके रूपमें कार्य्य करता रहा परन्तु फिर ग्लासगो विश्वविद्यालयमें आचार्य्य नियुक्त हुआ। ब्लैक का मुख्य कार्य्य मगनीस कर्बनेत पर हुआ। पहिले वह फ्लोजिस्टन सिद्धान्त का मानने वाला था परन्तु लैवासियेके नये सिद्धान्तके पश्चात् वह लैवासिये का अनुगामी हो गया और उसको अधिक सहायता पहुँचाई। यह बहुत दिनोंसे विदित था कि खटिक कर्बनेत को गरम करनेसे दाहक क्षार बन जाता है। उस समय इन बातोंको इस प्रकार समझाया जाता था। गरम करनेसे आगके कण खटिक कर्बनेतमें मिल गये हैं और इस कारण वह दाहक बन गया है। परन्तु १७५५ में ब्लैकके लेखसे सर्व जगत को इन बातोंका मुख्य कारण विदित हुआ। उसने मगनीस कर्बनेत (मेगनीसिया ऐलबा) को गरम करके मगनीस ओषिद (मेगनीसिया आस्टा) बनाया। कर्बनेतों को साधारणतया उस समय मध्यम (Mild) क्षार कहते थे और ओषिदोंके घोलको दाहक क्षार। इस योगसे ब्लैकने दिखाया कि किस प्रकार कर्बनेत से ओषिद बन जाता है। साथ ही साथ मगनीस कर्बनेत का भार गरम करने पर आधा रह जाता है।

२. गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे मगनीसिया ऐलबासे मगनीस गन्धेत (ऐप्सम लवण) बनता है और एक गैस निकल जाती है।

३. परन्तु मगनीस ओषिद गन्धकाम्लके साथ बिना किसी गैसके निकले ऐप्सम लवण देता है।

४. ऐप्सम लवणके घोलमें जब पांशुज कर्बनेत डाला जाता है, तो मेगनीसिया ऐलबा अवक्षेपित हो जाती है।

इन प्रयोगों को देख कर पाठकों को पता लग जायगा कि किस प्रकार ब्लैक ने इन सब बातों को ठीक और नये रूपमें समझाया। दूसरे और तीसरे

से यह जताया कि मेगनीसिया ऐल्बा और मगनीस ओषिदमें केवल यही भेद है कि ऐल्बासे अम्लोंके साथ कर्बन द्विओषिद जिसे संयुक्त वायु (Fixed air) कहते थे निकली है परन्तु मगनीसिया अस्टा से कोई गैस नहीं निकलती। इस लिये ऐल्बामें संयुक्त वायु होनी चाहिये जो कि गरम करने पर निकल जाती है।

ब्लैक ने इन प्रयोगों को फिरसे दोहराया और बिल्लोर पत्थरके साथ भी करके देखा। उसे प्रत्येक दशामें यही फल मिले। यहीं से फ्लोजिस्टन सिद्धान्तके विरुद्ध नींव पड़ती है। जब एक बार लेवासियेने इसको सिद्ध कर दिया ब्लैक ने तुरन्त ही उसको अपना लिया और साथ २ उसकी सहायता भी की। अब हम एक दूसरे व्यक्ति का वृत्तान्त देंगे जिसके अनुसन्धानसे फ्लोजिस्टन सिद्धान्त को बड़ा भारी धक्का पहुँचा।

जोसेफ् प्रिस्टले (१७३३-१८४०)

प्रिस्टले का जन्म १३ मार्च १७३३ को यार्कशायरके पास फ़ीलडहेडमें हुआ। उसका स्वास्थ बहुधा अच्छा नहीं रहता था। इसी कारण उसको किसी स्कूलमें पढ़ने नहीं भेजा गया परन्तु घर पर ही पढ़ानेके लिये उसके पिताने एक अच्छे आचार्य्य को नियुक्त किया। यद्यपि उसकी पढ़ाई में बहुत सी बधायें रहीं तो भी उसको पुस्तकें पढ़ने का बड़ा ही चाव था। इसी समय उसने कुछ पुस्तकें प्राकृतिक विषयों पर भी पढ़ीं। १७५५ में वह नीड्हेम मारकेट में पादरी हो गया। इस कार्य्य में उसे अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई क्योंकि स्वभावतः उसमें वक्तृता देने की शक्ति नहीं थी। रासायनिक विषयोंमें अधिक प्रेम होनेके कारण प्रिस्टलेने पादरी का कार्य्य छोड़ दिया और रसायन क्षेत्रमें कूद पड़ा जिसको कि उस जैसे प्रयोगिक की आवश्यकता थी। १७६६ में रायल सोसाइटीने उसे अपना सदस्य चुन कर सम्मानित किया और १७७२ में फ्रांस की वैज्ञानिक सभा ने अपना सदस्य बनाया। इसके एक वर्ष पश्चात् प्रिस्टले लार्ड शेलबर्नका साहित्य-सहायक हो गया।

प्रिस्टले अनेक प्रकार के विषयों पर कार्य्य करता था। उसने बहुत सी पुस्तकें वेदान्तिक विषयों पर लिखीं परन्तु रसायन के लिये उसकी पुस्तक "भिन्न भिन्न प्रकार को वायुओं पर प्रयोग" ही अधिक लाभदायक है। प्रिस्टले का मत था कि सब अनुसन्धान भाग्य और अवसर पर निर्भर हैं।

सबसे बड़े महत्वका कार्य्य जो प्रिस्टले ने किया वह न्यूमेटिक थालीमें पानी के बजाय पारदम् का रखना है। इससे वह बहुत गैसें जो पानीमें घुल जाती थीं बना सका जैसे उदहरिकाम्ल, गन्धक द्विओषिद और अमोनिया इत्यादि। उसने उदहरि-काम्ल का नाम अम्ल वायु और अमोनियाका नाम क्षार वायु रक्खा। उसका ख़्याल था कि दोनोंके मिलानेसे शिथिल वायु बन जावेगी और इस प्रकार अमोनियम हरिद बनाया।

उसने अमोनिया में विद्युत तड़ित् चलाया जिससे कि उदजन निकला। इस प्रयोगसे उसने अमोनियाकी बनावट जनाने की चेष्टा की थी परन्तु कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई।

उसने श्वासोच्छ्वास (Respiration) और जलने (Combustion) में समानता दर्शाई और १७७२ में जब कि उसने ओषजनको विदित भी नहीं किया था, वृक्ष जीवन और प्राणि जीवनका व्युत्क्रम सम्बन्ध जताया। क्योंकि उसने बतलाया कि जिस हवामें एक मोमबत्ती अपने आप जलते जलते बुझ गई हो यदि एक पौधा रक्खा जाय तो फिर यह प्राणि जीवनके योग्य हो जाती है। इस प्रकार प्रिस्टले ने "प्रकाश संश्लेषण" की नींव डाली।

१७७४ में प्रिस्टले को एक बड़ा भारी ताल (Lens) मिला। उसके मिलते ही उसने इसकी सहायतासे जो कोई वस्तु उसे मिल सकी गरम

करनी आरम्भ की। इस प्रकार जो गैसें उनसे निकलीं उनको इकट्ठा करना उसकी मुख्य मनोकामना थी। जैसा कि कहा जा चुका है, वह पानीके बजाय न्यूमेटिक थालीमें पारदम् का प्रयोग करता था, इस प्रकार उसने ओषजन तैयार किया।

उसने अपनी पुस्तकमें इस प्रकार वर्णन किया है—"इन यन्त्रकी सहायतासे मैंने बहुतसे प्रयोग किये जिनका वर्णन दूसरी जगह पर मिलेगा। १ अगस्त सन् १७७४ को मैंने पारद-ओषिद से एक गैस निकाली, जो कि इस तालकी सहायता से बड़ी सुगमतासे निकलती है, अपनी वस्तुओं से तीन या चार गुनी बना कर मैंने इसमें पानी जाने दिया परन्तु क्या देखा कि यह पानीमें नहीं घुलती है, परन्तु मुझे एक बात देख कर बड़ा विस्मय हुआ जिसका वर्णन करना अति कठिन है कि एक मोमबत्ती इसमें बड़े प्रकाशसे और वेगसे जलने लगी। इन सब बातोंको समझानेमें मैं भौचक्का रह गया।"

प्रिस्टले ने नई गैसका नाम फ्लोजिस्टन रहित वायु रक्खा। उसका विचार था कि इस वस्तु से ही फ्लोजिस्टन मिल जाता है जब कि वह किसी वस्तुके गरम करनेसे निकलता है। उसने नोषजन का नाम "फ्लोजिस्टन सहित वायु" रक्खा। यदि यह ठीक है तो नोषजन वस्तुओंके जलनेके पश्चात् प्रगट होना चाहिये, परन्तु इस बातका उसे ख्याल नहीं था। शीले के समान प्रिस्टले भी अपने अनुसन्धानके महत्व को ठीक न समझ सका। उसको इतना विश्वास था कि कभी उसके विचार में इस बात ने स्थान नहीं पाया कि जब कोई वस्तु जलती है तो बजाय इसके कि कोई वस्तु इससे निकले, वायुमण्डल की एक वस्तु इससे मिल जाती है। यही नहीं परन्तु प्रिस्टले अन्त समय तक लैवासियेके सिद्धान्तके विरुद्ध रहा और फ्लोजिस्टन सिद्धान्त का समर्थन करता रहा।

प्रिस्टले को फ्रान्स क्रान्तिकारी दलके झगड़ों में पड़ कर इङ्गलैंडसे अमेरिका चला जाना पड़ा क्योंकि यहाँ पर लोगों ने मत-विरोध होनेके कारण उसका घर इत्यादि सब जला दिया था। बेचारा प्रिस्टले नारदम्बरलैंडमें जाकर रहा और वहीं पर उसने १४ फरवरी सन् १८०४ को सर्वदाके लिये इस संसारसे बिदा माँगी। प्रिस्टले के इस अनुसन्धान के पश्चात् ही रसायन विद्या ने अपना मुख्य रूप धारण किया, इसलिये उसको रसायन शास्त्रका निर्माता भी कहा जा सकता है।

हेनरी कैवैण्डिश (१७३१—१८१०)

कैवेण्डिश का जन्म १७३१ में नीसमें हुआ; यह डेवेनशायर के तीसरे ड्यूक का भतीजा था। विज्ञानके क्षेत्रमें बहुतसे ऐसे व्यक्तियों ने कार्य्य किया है, जो बड़े धनवान थे जैसे राबर्ट बायल। कैवेण्डिश अपने समय में इङ्गलैंड के सबसे बड़े धनवानों में से था परन्तु उसका प्रेम वैज्ञानिक विषयों के लिये इतना था कि उसने अपनी सारी आयु सर्व ऐश्वर्य्य को त्याग कर वैज्ञानिक देवी की पूजा की।

कैवेण्डिश का महत्व पूर्ण अनुसन्धान उद्जन की खोज करना है। यद्यपि उद्जनके विषयमें पैरेसेलसस, वानहेलमएट इत्यादि भी कुछ जानते थे परन्तु इस वस्तु की पूरी खोज करने वाला यही महापुरुष था। उसने इसका नाम "जलने वाली वायु" रक्खा और बतलाया कि यही वस्तु शायद फ्लोजिस्टन हो, क्योंकि यदि एक धातुके साथ फ्लोजिस्टन मिली हुई है तो इस धातुसे अम्लके प्रभाव से फ्लोजिस्टन अवश्य निकलनी चाहिये।

प्रिस्टलेके ओषजन बनानेके पश्चात कैवेण्डिश ने १७८३ में ओषजन और उद्जनको मिलाया। इस क्रियामें उसे विद्युत् तड़ित् का प्रयोग करना पड़ा। इस प्रकार जलकी बनावट सिद्ध की गई। इसी प्रकार १७८५ में इस प्रकारके प्रयोग करते हुए उसने देखा कि नोषजन व ओषजन जब इसी प्रकार

विद्युत तड़ित्के प्रभाव पर रक्खे जाते हैं तो जल से मिल कर नोषिकाम्ल उत्पन्न होता है। यह एक बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि जब कभी कैवेण्डिश ने वायुमण्डल के नोषजन से प्रयोग किया तब कुछ न कुछ थोड़ी सी गैस अवश्य रह जाती थी जो कि लगभग कुल घन फल की १/१२० थी परन्तु तब भी कैवेण्डिश आलसीम् इत्यादि बहुत सी गैसें जो विलयम रैमज़े ने १०० वर्ष पश्चात् निकालीं, न निकाल सका।

यद्यपि कैवेण्डिश ने उद्जन निकाला था परन्तु खेद की बात है कि वह भी प्रिस्टलेके समान फ्लोजिस्टन सिद्धान्तका उपासक बना रहा। इस सिद्धान्त को मिटा देनेके लिए उसके पास काफी सामग्री थी। यह कुछ अंग्रेज़ोंका स्वाभाविक गुण भी है कि जिस बात पर चिपट जाते हैं, उसे दुराग्रहवश नहीं छोड़ते। प्रिस्टले ने ओषजनका नाम फ्लोजिस्टन रहित वायु रख दिया था और यह उद्जनसे मिल जाती थी। कैवेण्डिशको पूरा पूरा विश्वास हो गया था कि यह फ्लोजिस्टन है। वह लैवासियेके कार्य्य के विरुद्ध नहीं था पर तो भी अपनी सम्मति फ्लोजिस्टन सिद्धान्तके ही पक्षमें रखता था।

कैवेण्डिश ने वायु का विश्लेषण किया। उसने बताया कि वायुमें नोषजन व ओषजनमें ७९'१६ : २०'८६ का सम्बन्ध है। पाठकोंको यह जान कर हर्ष होगा कि अभी तक इन अंकोंमें कुछ अधिक परिवर्त्तन नहीं हुआ है। वर्तमान अंक यह हैं ७९'०४ : २०'९६।

कैवेण्डिश ने भौतिक शास्त्रमें बड़े उच्चकोटिके अनुसन्धान किये। उसका मुख्य कार्य्य पृथ्वीका घनत्व निकालना है। उसका यह प्रयोग और उसके फल अभी तक ठीक माने जाते हैं। कैवेण्डिश बड़ा ही अद्भुत व्यक्ति था। वह किसीसे मिलना नहीं चाहता था। वह इतना लज्जावान था कि कभी किसी सभामें नहीं बोला। रायल सोसाइटीकी बैठकोंमें यदि कोई उससे भाषण देनेको प्रार्थना करता तो वह तुरन्त वहांसे घर भाग आता। उसको अपने कार्य्यके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं भाती थी इतना अमीर होने पर भी साधारणसे साधारण रूपमें जीवन व्यतीत करता था। संसारमें ऐसे उच्च विचारोंके मनुष्य सर्वदा जन्म नहीं लेते। सन् १८१० में कैवेण्डिश ने सर्वदाके लिए इस संसार को छोड़ दिया। पाठकों को जानना चाहिये कि इस महान् व्यक्ति की स्मृतिमें केमब्रिजमें एक बड़ी भारी भौतिक प्रयोगशाला खुली हुई है, जो संसार में सबसे उच्च भौतिक प्रयोगशाला है। उसके आचार्य्य क्लार्क मेक्सवेल, लार्ड रेले, सर जोसेफ जान टामसन और लार्ड रदरफोर्ड जैसे महाऋषि हुये हैं, जिनके अनुसन्धानों ने जगत्को परिवर्तित कर दिया है। आजकल लार्ड रदरफोर्ड इस कैवेण्डिश प्रयोगशाला के मुख्य आचार्य्य हैं।

कार्ल विलयम शीले (१७४२–१७८६)

संसारमें शीलेके समान बहुत ही कम वैज्ञानिक हुये हैं, जिनमें प्रयोग और अनुभव की इतनी बड़ी शक्ति विद्यमान थी। वह अपनी शताब्दी का सब से बड़ा आविष्कारक हुआ है। यह और खेद की बात है कि वह इतनी अल्प आयुमें ही संसारसे बिछुड़ गया। उसका जन्म १९ दिसम्बर १७४२ में स्ट्रालसण्ड में हुआ।

यह एक बड़े निर्धन घरका मनुष्य था। १४ वर्षकी अवस्थामें एक डाक्टरके पास नौकर हो गया। यहां ८ वर्ष रह कर १७७० से १७७५ तक मेलमोअलके पास रह कर १७६५ में स्टाकहोलम चला गया। सन् १७७० से १७७५ तक अपसालामें रहा, फिर वहाँसे कोपनिग जाकर उसने एक छोटा सा घर मोल ले लिया। यहां पर अपनी मृत्यु तक वह प्रयोगमें लगा रहा।

शीलेके अनुसन्धान

सबसे पहिले शीले ने मेगनीसया म्यागरा पर प्रयोग किये। उसने सबसे पहिले भारम् और

मांगनीज़का उत्पत्तिको दर्शाया और हरिन् व ओषजनकी खोज की। मांगनीज़ द्विओषिदसे बहुतसे यौगिक बनाये जो अब तक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। शीले ने वास्तवमें ओषजन प्रिस्टलेसे दो वर्ष पहिले तीन चार प्रकारसे बनाया था परन्तु उसके अनुसन्धान छप नहीं सके थे, इस कारण ओषजनके आविष्कारके प्राथमिक श्रेयके विषयमें झगड़ा उठा करता है।

शीले ने वुलफ्रामम् और सुनागम् धातुयों को विदित किया। जिस खनिजसे शीले ने सुनागम् निकाला, वह उस समय ग्रेफाइट समझी जाती थी। शीले ने इन दोनों का भेद बताया और दिखलाया कि ग्रेफाइट कर्बनका ही एक रूप है। शीले ने ही सबसे पहिले उदगन्धिदके पूरे पूरे ज्ञान पर कार्य्य किया और संक्षीणम्के यौगिकों पर कार्य्य करते समय एक नया रंग निकाला जो कि 'शीलेका हरा रङ्ग' अथवा ताम्रम् संक्षाणितके नामसे प्रसिद्ध है। संक्षीणम् को थोड़ी सी संख्यामें जाननेके लिये संक्षीणिन् विदित की।

कार्बनिक क्षेत्रमें उसके अनुसन्धान कुछ कम नहीं हैं। उसने सबसे पहिले मूत्रिकाम्ल और मधुरिन्को विदित किया और कार्बनिक अम्लोंके के साफ करने और निकालनेकी एक क्रिया बतलाई जो कि अब तक भी काममें लाई जाती है। वह यह है कि पहिले इन अम्लोंके खटिकम् क्षार बनाये जायें और इन क्षारों को गन्धकाम्लसे विभाजित किया जाय। इस प्रकार उसने काष्ठिकाम्ल, इमलिकाम्ल, सेविकाम्ल, माजूफलिकाम्ल, और नीबूइकाम्ल बनानेमें इस क्रिया का प्रयोग किया। उसने खट्टे दूधसे दुग्धिकाम्ल बनाया और साथ ही साथ विर्गौदिकाम्ल बनाया।

उसके अनुसन्धानोंमें से एक मुख्य कार्य्य प्रशिशन नील का है क्योंकि इसके कारण उदश्यामिकाम्लकी उत्पत्ति विदित हुई जिसका कि उसने पूरा वर्णन दिया है, उसकी गन्ध, स्वाद इत्यादि। परन्तु वह इसके विषैले स्वभाव को नहीं जानता था। यह पढ़कर पाठकों को विदित हो जायगा कि शीले ने कितने थोड़े समयमें कितना अधिक कार्य्य किया।

१७७७ में शीले ने एक पुस्तक "वायु तथा अग्नि" पर लिखी जिसमें उसने अपने विचारोंका पूरा वर्णन दिया है। शीले ने बहुतसे प्रयोग किये जिनसे विदित होता है कि वायु दो वस्तुओंसे बनी है जिनमेंसे एक जलनेमें सहायता करती है जिसका नाम "अग्नि वायु" रक्खा। दूसरीका नाम "अशुद्ध वायु" रक्खा। वायुके एक विदित आयतनमें किसी वस्तु को जलाकर और बची हुई वायु का आयतन नाप करके उसने दोनोंका अनुपात निकाला। इसके पश्चात् जलनेकी क्रिया समझाई। अग्निवायुका क्या हो जाता है? जिस समय कोई वस्तु जलती है तो प्रकाश और ताप उत्पन्न होता है। उसका कहना है कि अग्निवायु फ्लोजिस्टनसे मिल कर प्रकाश और तापके रूपमें निकल जाती है, क्योंकि अग्निवायु जलमें भी नहीं घुलती। फ्लोजिस्टन सिद्धान्तको ठीक सिद्ध करनेके लिये उसने एक प्रयोग और दिखाया। जब ताम्र-ओषिद को (जिसमें फ्लोजिस्टन नहीं है) नोषिकाम्ल से मिलाते हैं, तो कोई गैस नहीं निकलती परन्तु जब ताम्रम् धातु (जिसमें फ्लोजिस्टन है) से मिलाते हैं तो फ्लोजिस्टन निकलती है, क्योंकि इस प्रक्रियामें लाल लाल धुआँ निकलता है। उसने रजत-हरिद पर प्रकाशका प्रभाव भी जताया और इस क्रियाको भी फ्लोजिस्टन सिद्धान्त से सिद्ध किया।

शीलेके अनुसन्धानोंका इतनी थोड़ी जगहमें वर्णन करना अति कठिन है। यह तो एक प्रकारकी सूची दी गई है। इसको ही देख कर पाठक अवश्य जान जायँगे कि वह क्या ही अद्भुत प्राणी था जिसके मस्तिष्कसे इतनी बातें जब कि रसायन महा अन्धकार में पड़ा था निकलीं। यदि कोई रसायनिक उसके जोड़ का कहा जा सकता

है, तो केवल एमिल फिशर, जिसका वृत्तान्त आगे दिया जायगा। १७८६ में ४४ वर्ष की युवा अवस्था में शीले का देहान्त हुआ।

ऐन्तोयें लोरें लैवासिये (१७४३–९४)

इस महा पुरुषका जन्म २६ अगस्त १७४३ को पेरिसमें हुआ। यह मेज़ारिन कालेजमें पढ़ने भेजा गया था। यहां पर केवल लैवासियेके अनुसन्धानों का ही वर्णन किया जायेगा। फ्लोजिस्टन सिद्धान्त को जड़से मिटा देनेकी सफलता का मुख्य कारण उसका तराजूका प्रयोग है। यदि लैवासिये ने तराजूका प्रयोग न किया होता तो कदापि इस दशाको न पहुँच सकता।

ऐलकेमीया समयके लोग यह समझते थे कि जलसे मिट्टी बन जाती है। लैवासिये ने इसके विरुद्ध स्वर उठाया। उसने कोई तीन मास लगभग कांचके एक बर्तनमें पानी गरम किया। गरम करने के पहिले सबको तोला और ऐसा गरम किया कि पानी उड़ न जाये। प्रयोगके पश्चात् तोलनेसे विदित हुआ कि सबका सब वज़न उतना ही है। न कम न अधिक,फिर सब जलको जला कर जो बचा उसको तोला और पानीकी तौल विदित ही थी। इनसे विदित हुआ कि पानी और सफेद वस्तु का बोझ केवल पहिले पानीसे अधिक था अथवा नई चीज़में कोई न कोई चीज़ बर्त्तनमेंसे आई फिर बर्तनको तोला उसका बोझ उतना ही कम था जितना कि पानी और उस वस्तुका बढ़ गया था। इसलिये सिद्ध हुआ कि नई वस्तु जलसे नहीं बनी बल्कि पानी और कांचके योगसे बनी है। इसी प्रकार शीले ने भी इस बातको दर्शाया था, परन्तु उसने तराजूसे काम नहीं लिया।

जलन क्रिया पर लैवासियेका कार्य्य

इस कार्य्यमें भी उसने तराजूका प्रयोग किया। सर्वदा वह प्रत्येक वस्तुको तोला करता था और तब उनके आधार अपने विचार दर्शाता था। जैसा कहा जा चुका है, यही उसकी सफलताका कारण था। १७७२ ई० में उसने फ्रांसकी वैज्ञानिक परिषत् को एक लेख भेजा जिसमें जलन क्रियाके प्रयोगोंका वर्णन दिया है।

"जलनेके पश्चात् गन्धकका बोझ कम होनेके बजाय बढ़ जाता है अथवा गन्धक के एक पौंडसे एक पौंडसे अधिक गन्धकाम्ल मिल सकता है। ऐसा ही स्फुरम्के साथ होता है। यह बोझ इस कारण बढ़ जाता है क्योंकि जलते समय कुछ वायु गन्धकमें मिल जाती है"। पाठक देखेंगे कि बस यहींसे फ्लोजिस्टन सिद्धान्तकी जड़ उखड़नी आरम्भ होजाती है। लैवासिये लिखता है—"मैं समझता हूँ कि जिस प्रकार गन्धक और स्फुरमें होता है उसी प्रकार सब वस्तुएँ जब जलती हैं भारमें बढ़ जाती हैं। धातु भस्मका भी बोझ बढ़नेका यही कारण हो सकता है, बन्द बर्तनमें मैंने सीसम्के लाल ओषिद (Litharge) को खूब गरम किया उसमेंसे एक वायु निकली जिसका आयतन इस वस्तुसे हजारों गुना अधिक था और सीसम् धातु उत्पन्न हो जाती है।

ऊपरके वृत्तान्तसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि लैवासिये ने इन प्रयोगोंको कितनी बुद्धिमानीके साथ अनुभव किया। अब एकके पश्चात् दूसरा प्रयोग शीघ्र ही होने लगा। १७७४ में उसने वंगम् के जलने पर किये हुये प्रयोगोंका वृत्तान्त छपवाया। उसने धातु तुली हुई मात्रामें ली और एक बड़े भारी कांचके बर्त्तनमें बन्द कर दी। अब सबको मिला कर तौला। फिर इसको ख़ूब गरम किया, फिर तौला, तौलमें कोई अन्तर न विदित हुआ, जब मुँह (Seal) को तोड़ा तो वायु एक दम बर्तनमें घुस गई। इससे विदित हुआ कि वंग—ओषिद बननेमें बर्तनके भीतरकी हवा काममें आई है। उसने यह भी दिखाया कि यदि बहुत सा वंगम् बर्तनमें रक्खा जाये और चाहे कितना ही गरम किया जाये, कुछ न कुछ धातु रह जाती है,

और साथ साथ सब वायु भी काममें नहीं आती। इससे यह सिद्ध हुआ कि वायुमण्डल का कुछ भाग ही जलन क्रियामें काम आता है। उसने फिर पारदम्के साथ प्रयोग किये और दिखाया कि जितना बोझ पारदम्को वायुमें खूब गरम करनेसे बढ़ता है, उतना ही लाल पारद-ओषिदके गरम करनेसे घट जाता है, अथवा पारद-ओषिद पारदम्के वायु के साथ मिलनेसे बनती है। सन् १७७७ में उसने अपने जलन-क्रिया सिद्धान्तको इस प्रकार रक्खा।

१—प्रत्येक जलन क्रियामें प्रकाश तथा ताप उत्पन्न होता है।

२—वस्तुयें केवल विशिष्ट वायु (Air eminement pur) में ही जलती हैं। यह ओषजनका पहिला नाम है।

३—यह वायु जलनक्रियामें काममें आती है और जलने वाली वस्तुका बोझ उतना ही बढ़ता है, जितना कि वायुका घट जाता है।

४—जलन क्रियासे अधिकतर जलनेवाली वस्तुयें भस्म हो जाती हैं।

यद्यपि लैवासिये इतने प्रयोगोंसे यह सब बातें सिद्ध कर चुका था परन्तु तो भी उसके विचारोंको कम लोग मानते थे। उसने जलका संगठन भी निकाला। १७८९ में उसने एक पुस्तक लिखी जिसमें फ्लोजिस्टन सिद्धान्तका पूरा विरोध किया। और अपना नया सिद्धान्त समझाया। इस पुस्तक का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इसको रसायनिक विप्लव कहते हैं क्योंकि इसने रसायनिक विचारोंको बिलकुल परिवर्तित कर दिया।

उसने, "परिमाण विनाशता नियम" निकाला जिसके आधार पर उसने रासायनिक समीकरण की रीति निकाली, जिससे रासायनिक विज्ञानका अत्यन्त लाभ हुआ है। कार्बनिक वस्तुओंके विश्लेषणमें वह बड़ा ही निपुण था। उसने ही वह विधि निकाली थी, जो आजकल कर्बन और उद्जन निकालनेके काममें लायी जाती है, अर्थात् वस्तुओं पर ओषजनके प्रभावसे। इस प्रकार जो कर्बन द्विओषिद तथा जल प्राप्त होता है, उसे तोल कर गणितकी सहायता से उस वस्तुका संगठन निकाला जा सकता है।

उसके चौथे विचारसे जो ऊपर दिया हुआ है, यह विदित होगा कि लैवासियेकी सम्मति थी कि सब अम्लोंमें ओषजन अवश्य होता है। इसको "अम्लों का ओषजन सिद्धान्त" कहते हैं। इसी कारण इस वायुका नाम पहले अम्लजन पड़ा था, यद्यपि यह अब ठीक नहीं है क्योंकि अब उद्जन अम्लों का मुख्य तत्व माना जाता है, जैसा कि डेवी ने बताया। तब भी उसके समयमें यह बिलकुल ठीक था।

लैवासिये ने जीवनके सिद्धान्त पर भी दृष्टि डाली। उसका मत था कि प्रत्येक वस्तुका जीवन एक "ओषदीकरण क्रिया" है। इससे जो ताप उत्पन्न होता है उसी सामर्थ्य से मनुष्यका जीवन चलता है। जितने पदार्थ हम खाते हैं, वह पेटमें जाकर ओषदीकृत (Oxidise) होते हैं।

लैवासिये ने राज्यके कार्य्यों में भी बड़ा भाग लिया। वह बहुत सी सभाओंका सदस्य चुना गया था। जब कि फ्रांसमें राज्यक्रांति हुई तो वहांके लोग उसके विरुद्ध हो गये और उसकी प्रयोगशाला जो सारबोनमें थी जला डाली। उस पर प्रजातन्त्र राज्य की ओर से मुक़दमा चलाया गया। जजों ने उसको गला कटवाये जानेका दंड प्रदान किया। तदनुसार ८ मई १७९४ में उसका शिरोच्छेदन कर दिया गया। वह महान पुरुष जिसका कि यह संसार और विशेष कर रासायनिक जगत् वर्षों क्या, कभी ऋण नहीं चुका सकता, इस निर्दयताके साथ इस संसारसे विदा कर दिया। लैवासियेको सर्व

संसार रसायन विद्याका जन्मदाता मानता है और वास्तवमें इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने ही वर्तमान रसायन को जन्म दिया। इस घोर निर्दयताका विरोध करते हुये लैगरेञ्ज ने लिखा है, कि "यद्यपि उसका गला काटनेमें एक पल भी नहीं लगा परन्तु उसके समान उत्पन्न करनेमें सहस्रों वर्ष लगेंगे।"

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

पूर्ण संख्या—
२०२

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३४
VOL. 34.

मकर, संवत् १९८८
जनवरी १९३२

संख्या ४,
No. 4

प्रयागकी विज्ञान परिषत्का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३४ } मकर, संवत् १९८८ { संख्या ४

डा० मेघनाद साहा और उनके वैज्ञानिक अनुसन्धान

[ले० श्री० युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी०]

प्राचीन कालमें भारतकी वैज्ञानिक संसार में क्या स्थिति थी यह निश्चय रूपसे तो नहीं कहा जा सकता पर इसमें सन्देह नहीं कि सूर्यसिद्धान्तके निर्माता, दशमलवके आविष्कारक और त्रिकोणमितिसे परिचित आर्यों का वैज्ञानिक ज्ञान उस समयको ध्यानमें रखते हुए असाधारण रहा होगा। यह तो कहा ही जा सकता है कि गणित, ज्योतिष या रसायन शास्त्रमें जो कुछ उन्नति प्राचीन हिन्दुओं ने की वह इन विषयोंको स्वतन्त्र रूपसे अध्ययन करके नहीं। धार्मिक कृत्योंमें जैसे जैसे उन्हें इस ज्ञानकी आवश्यकता होती गई वैसे वैसे उनकी जिज्ञासा भी बढ़ी। स्वतन्त्र रूपसे अध्ययन न होनेके कारण सम्भवतः विशेष उन्नति न हो पायी।

बौद्ध कालमें चिकित्सा शास्त्र और रसायन की ओर विशेष ध्यान गया। इस सम्बन्धमें नागार्जुनका नाम प्रसिद्ध ही है। प्रयोगोंका भी विकास हुआ। कुछ विद्वानोंको भ्रम है कि प्राचीन भारतमें केवल शास्त्रीय तर्क वितर्क हो थे और प्रयोगोंका नाम भी न था पर नवीं शताब्दिके एक लेखक ढुंढुकनाथ ने रसेन्द्र चिन्तामणि नामकी पुस्तकमें लिखा है:—

"अश्रौषं बहु विदुषां मुखादपश्यम्
शास्त्रेषु स्थितमकृतं न तल्लिखामि।
यत् कर्म व्यरचयमग्रतो गुरूणां
प्रौढ़ाणां तदिह वदामि वीतशङ्कः॥
अध्यापयन्ति यदि दर्शयितुं न जानन्ते
सूतेन्द्र कर्म गुरवे। गुरवस्त एव।
शिष्यास्त एव वचयन्ति गुरोः पुरे ये।
शेषाः पुनस्तदुभयाभिनयं भजन्ते॥"

इस लेखमें माडर्न रिव्यू में प्रकाशित डा० साहा की जीवनीसे कुछ सहायता ली गई है।

भावार्थ यह है कि मैंने विद्वानोंसे भी सुना और शास्त्रमें भी लिखा देखा पर मैं जो कुछ मैंने प्रयोग द्वारा नहीं किया है न लिखूँगा।

मैंने गुरुओंके सम्मुख जो किया है वही निशंक लिख रहा हूँ। वही सच्चे अध्यापक हैं जो प्रयोग द्वारा जो पढ़ा रहे हैं बता सकें। वही सच्चे शिष्य हैं जो गुरुओं द्वारा बतायी हुई बातें कर सकें, शेष केवल अभिनय करते हैं।

पर भारतमें जो भयङ्कर अशान्ति यवन आक्रमण से आरम्भ हुई और रही उसके कारण प्राचीन वैज्ञानिक ज्ञानका तो पूर्णतया लोप हुआ ही पर संसारके वैज्ञानिक युगके आरम्भमें हमारा भाग कुछ भी न रहा। अँग्रेजी शिक्षा प्रारम्भ होने के कुछ काल पश्चात् कुछ महापुरुष ऐसे हुए जिनके कारण संसारको ज्ञात हो गया कि भारतमें भी प्रतिभाका प्रादुर्भाव सम्भव है। आधुनिक कालमें ऐसे विद्वान कम हुए हैं पर जो कुछ इने गिने नाम हमारे सम्मुख हैं और जो कुछ उन्होंने संसारको दिया है उससे आशा होती है कि भविष्य अन्धकार पूर्ण नहीं है और सम्भव है कि अन्तर राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रतियोगितामें भारत एक उच्च स्थान प्राप्त कर सके। गणितमें श्रीनिवास रामानुजम हो चुके हैं। भौतिक विज्ञानमें आचार्य रमन, साहा, सत्येन्द्र नाथ बोस इत्यादि, रसायनमें आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय, डा० नीलरतन धर, प्राणिशास्त्रमें बीरबल साहनी, सर जगदीश चन्द्र बोस इत्यादि के नाम संसार प्रसिद्ध हैं। आचार्य रमनका परिचय हम विज्ञानके पाठकोंको पहले दे चुके हैं, आज हम उन्हींके जोड़के आचार्य डा० मेघनाद साहाके जीवन और वैज्ञानिक अनुसन्धानोंकी चर्चा करेंगे। आप उन चार भारतीय वैज्ञानिकोंमें से हैं जिन्हें लन्दन रायल सोसाइटीके सदस्य होनेका सम्मान प्राप्त है। पहले सज्जन श्रीनिवास रामानुजम थे—दूसरे सर जगदीशचन्द्र बोस, तीसरे सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन।

डा० मेघनाद साहाका जन्म सन् १८९३ में ढाका ज़िलेके अन्तर्गत सिओरातालो नामके गांवमें हुआ। आपके पिता श्रीयुत जगन्नाथ साहा साधारण व्यापारी थे। इनका कुटुम्ब बड़ा था और पालन पोषणमें बड़ी कठिनाई रहती थी। श्री० मेघनाद साहाकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने गांवमें ही हुई पर १० वर्ष की आयुमें आपको अपने गांवसे ६ मील दूर सिमुलियामें जाना पड़ा। यहाँ कासिमपुरके ज़मीदारोंके वैद्य डा० अनन्त कुमारदासके यहाँ आपको आश्रय मिला। यहाँसे आपने मिडिल परीक्षा पासकी और ढाका ज़िलेमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त करनेके कारण आपको एक छात्रवृत्ति भी मिली। इस सहायताके कारण आप ढाका जा सके और १९०९ में कलकत्ता विश्व विद्यालयकी प्रवेशिका परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। आप पूर्वीय बङ्गालमें प्रथम थे और गणितमें तो विश्व विद्यालय भरमें आपका सर्वोच्च स्थान था।

१९११ में आपने इन्टरमीडियेट परीक्षा पास की। कलकत्ता विश्व विद्यालयमें इनका तीसरा स्थान था और गणित और रसायनमें प्रथम। इसके पश्चात् आप प्रेसीडेन्सी कालेजमें चले आये और यहांसे बी० एस-सी० (आनर्स) और एम० एस-सी० परीक्षायें गणितमें पास कीं। दोनोंमें आप प्रथम श्रेणीमें तो उत्तीर्ण हुए पर स्थान दूसरा था। दोनों बार आपके एक सहपाठी सत्येन्द्रनाथ बोस प्रथम आये। बोस महाशय भी आजकल अच्छे वैज्ञानिक माने जाते हैं। आपकी 'बोस स्टेटिस्टिक्स' आधुनिक भौतिक विज्ञानमें प्रसिद्ध ही है। आपके शिक्षकोंमें आचार्य जगदीश चन्द्र बोस और प्रफुल्लचन्द्र राय जैसे महापुरुष थे।

एम० एस-सी० परीक्षा पास करनेके पश्चात् कुछ दिन तक तो आप स्वतन्त्र रूपसे खोजमें लगे रहे पर १९१६ में आपको एक जगह वहीं साइन्स कालेजमें मिल गई। यह उनही दिनों सर तारकनाथ पालित और डाक्टर सर रास बिहारी घोषके

अतुलदानसे स्थापित हो गया था। यहां अन्वेषण विषयक सुविधा प्राप्त होनेसे शीघ्र ही १९१८ में डी० एस-सी० (डाक्टर आफ साइन्स) अर्थात् विज्ञानकी सर्वोच्च उपाधिके लिये आपने अपनी खोजोंके विषयमें एक निबन्ध लिखा। विलायतके तीन प्रसिद्ध विद्वान परीक्षक नियत हुए* और आप का काम बहुत उच्च कोटिका होनेके कारण आपको उपाधि मिल गई।

इसी साल आपने (Selective Radiation Pressure and its application to astrophysics) पर एक निबन्ध लिखा जिस कारण आपको प्रेमचन्द्र रायचन्द्र पुरस्कार मिला। यह पुरस्कार लगभग १००००) का होता है और बहुत उच्चकोटि के निबन्ध पर दिया जाता है। इसी समय विदेशके लिये एक छात्रवृत्ति आपको मिली और १९ सितम्बर १९२१ में यह इग्लैंड जा सके। यहाँ अक्टूबर १९२१ से जनवरी १९२२ तक आपने प्रो० फाउलरकी प्रयोगशाला, इम्पीरियल कालेज आव् सायन्स, लन्दन में प्रयोग किये। यहींसे आपकी सबसे प्रसिद्ध खोज "तारोंके रश्मि चित्रका भौतिक सिद्धान्त" (Physical Theory of Stellar Spectra) प्रकाशित हुई। इस समय तक आपकी बहुत ही उच्चकोटिकी ज्योतिषीय खोजोंके कारण वैज्ञानिक संसारमें हलचल मच गयी थी—खोजके लिये एक बिलकुल नया रास्ता खुल गया था, इसलिये बर्लिनके आचार्य नर्न्स्ट (Nernst) ने—जो अपनी रसायन और ताप सम्बन्धी गवेषणाओंके लिये विश्वविख्यात हैं और जिन्हें नोबेलपुरस्कार भी मिल चुका है—आपको अपनी प्रयोगशालामें निमन्त्रित किया और वहीं पर आपने कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग भी किये। फिर म्यूनिक (जरमनी) के प्रो० सोमरफेल्ड ने भौतिक वैज्ञानिकोंके एक सम्मेलनके सामने अपनी खोजों पर एक व्याख्यान देनेके लिये आपको बुलाया। केम्ब्रिज इत्यादि स्थानों पर सर० जे० जे० टामसन और लार्ड रदरफोर्ड जैसे प्रकाण्ड विद्वानों ने आपकी नयी खोजों पर आपसे बातचीत की और उनकी भरपूर प्रशंसा की।

इसी समय सर आशुतोष मुखर्जीके प्रयत्नसे आपके लिये एक विशेष प्रोफेसरी बनाई गई और यूरोपसे लौट आने पर इस पद पर नियुक्ति हुई। इन दिनों कलकत्ता विश्व विद्यालय और बंगाल सरकारमें अनबन थी और फलस्वरूप डा० साहा को प्रयत्न करने पर भी प्रयागशाला न मिल सकी। उनही दिनों प्रयाग विश्व विद्यालयमें भौतिक विभागके आचार्य की जगह खाली हुई और सौभाग्यसे आप यहां आ सके।

विलायतके इन्स्टीट्यूट आफ फिज़िक्स ने आपको अपना सदस्य (Fellow) चुना और अन्तर-राष्ट्रीय ज्योतिषीय सभा ने भी। सबसे बड़ा सम्मान था आपका रायल सोसाइटीका फेलो चुना जाना। इस पदके लिये बड़े २ वैज्ञानिक ही चुने जाते हैं, विशेष कर जबकि वैज्ञानिक इङ्गलैंडके बाहर हो। जैसा पहले कहा जा चुका है भारतमें यह सम्मान केवल ४ सज्जनोंको प्राप्त है।

इसीके पश्चात् सन् १९३० में एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल ने भी आपको फेलो चुना। संयुक्त प्रान्तमें कदाचित आपको छोड़ कर केवल लखनऊके बीरबल साहनी इसके फेलो हैं।

प्रयाग विश्वविद्यालयका भौतिक-विज्ञान विभाग आपके आनेके पश्चात् दिन पर दिन उन्नति कर रहा है। आपका नाम सुन कर दूर दूर से और इस प्रान्तके भी अच्छेसे अच्छे विद्यार्थी यहाँ आते हैं। प्रतिवर्ष जगहकी कमीके कारण एम० एस-सी० के लिये ३०-४० विद्यार्थियोंके प्रार्थनापत्र अस्वीकार करने पड़ते हैं। बहुतसे विद्यार्थी अन्वेषण विभाग

---

* The doctorate Theisis was On The Fundamental law of Electric Action deduced from the Theory of Relativity" and "On the measurement of pressure of Radiation."

में काम करते हैं और महत्वपूर्ण परिणाम प्रकाशित होते रहते हैं। आपके निरीक्षण में ४ सज्जनोंको डी० एस-सी० की उपाधि नयी खोजों पर मिल चुकी है।

आचार्य साहा शिक्षक भी बड़े ही अच्छे हैं। प्रायः यह होता है कि अच्छे वैज्ञानिक अच्छे शिक्षक नहीं होते। आप इस नियमके अपवाद हैं। आपके तथा विभागके अन्य शिक्षकोंके लिये यह अभिमान की बात है कि यहाँके विद्यार्थी विलायतकी आई० सी० एस० परीक्षामें भौतिक विज्ञान विषय लेकर इंग्लैण्डके विद्यार्थियोंके मुक़ाबलेमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते हैं।

स्वभाव और रहन सहनकी दृष्टिसे आचार्य साहा पूरे वैज्ञानिक हैं। कहा जाता है कि वैज्ञानिक अधिकतर सीधे साधे और अपनी धुनमें मस्त होते हैं। लेखकको ४ वर्ष तक आपके शिष्य और कुछ समयसे आपके नीचे विश्वविद्यालयमें शिक्षक रहने का सौभाग्य प्राप्त है। इन दिनों प्रयोगशालामें पढ़ने पढ़ानेमें, वाद विवादोंमें और अवैज्ञानिक विषयों पर बातचीत में डा० साहासे घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। आप सिद्धान्तोंमें ही खोज करते हैं पर प्रयोग स्वयं न करते हुए भी आपकी सूझ अमूल्य है—जर्मन फ्रेञ्च इत्यादि अन्य भाषाओं से परिचय होनेके कारण आपको भौतिक विज्ञान के प्रत्येक पहलू पर और गणित और रसायनके कुछ भागों पर संसार भरमें क्या क्या हो रहा है और नवीन खोजोंके लिये कहां स्थान है ज्ञान रहता है और इन सब पर आप बहुमूल्य परामर्श देते हैं। आपकी स्मरण शक्ति भी गज़बकी है। पढ़ाते समय या व्याख्यान देते समय देखा गया है कि संख्यायें और अंक एकके बाद एक आप उद्धृत कर डालते है। बरसों पहले वैज्ञानिक साहित्यमें कोई बात निकली हो पर समय आने पर वह आपको ऐसे ही स्मरण रहती है जैसे कल ही पढ़ा हो। आपमें एक ऐसा गुण है जो बड़ेसे बड़े और उदारसे उदार मनुष्यमें भी कठिनतासे मिलता है। वह है नये विचारोंका स्वागत करनेके लिये आपका सदैव उद्यत रहना। वाद विवादमें या और किसी समय यदि आप कोई भूल कर रहे हों और कोई विद्यार्थी भी यदि आपको विश्वास दिला दे कि यह बात ठीक नहीं है तो उसी समय आप उसे स्वीकार कर उसका श्रेय उसे देते हैं। यही आपकी प्रवृत्ति प्रत्येक सफल वैज्ञानिककी होती है। विज्ञान में तो प्रतिक्षण नये नये क्रान्तिकारी विचार आते रहते हैं और विकास होता रहता है। यदि मनुष्य पंडिताऊ ढङ्गसे पुराने विचारोंसे घिर कर और अन्ध विश्वासोंसे अपने विचार स्वातन्त्र्यको जकड़ कर बैठ जाय तो प्रगति असम्भव है। अस्तु।

आपके अत्यधिक स्पष्टवक्ता होने और खरी खरी कहनेके कारण कुछ लोग आपको रूखा समझते हैं पर जिन लोगोंका आपसे कुछ भी सम्पर्क रहा है उन्हें अच्छी तरह मालूम है कि आप कितने सहिष्णु हैं और आपमें कितनी सहानुभूति है। यदि आपके मनमें यह बात बैठ जाय कि इस बातको करनेसे सार्वजनिक लाभ होगा या कमसे कम अमूल्य समय बिलकुल नष्ट न होगा फिर तो उसमें आप पूरा सहयोग देते ही हैं। उदाहरणार्थ, आजकल इलाहाबाद, लखनऊ इत्यादि नगरोंको विद्युत् देनेके ठेकेदार संयुक्त प्रान्तीय मार्टिन कम्पनीके ऊँचे दरोंके विरुद्ध आपने आन्दोलन मचा रक्खा है। बङ्गालके बाढ़ पीड़ितों की सहायताके लिये जो यहाँ हलचल हुई थी उसमें आपका महत्वपूर्ण भाग था। अनवरत परिश्रम करके आपने संयुक्त प्रान्तमें एक अर्ध सरकारी विज्ञान परिषद्‌को स्थापना की है। सरकारसे ४०००) सालकी सहायता भी ले ली। सौभाग्य से लेजिसलेटिव काउन्सिलके कुछ सदस्यों की सहायतासे आपको अपनी विशेष खोजके लिये ५०००) वार्षिककी सहायता मिलती है। आपके आडम्बर रहित स्वभावके फल स्वरूप प्रयोग शालामें आपको अस्त व्यस्त वस्त्रोंसे भूषित देखना आये दिनकी बात है।

वैज्ञानिक खोज

साहा महोदय की खोजों का प्रारम्भ १९१७ से होता है जब आपने विद्युत् सिद्धान्तों पर गवेषणायें प्रारम्भ कीं। १९१८ में आपने श्रीयुत चक्रवर्ती के साथ 'प्रकाश के दबाव' पर एक प्रयोग किया। यहां कह देना उचित होगा कि जब प्रकाश किसी वस्तु पर पड़ता है तो मेक्सवेल के सिद्धान्त से यह प्रमाणित किया जा सकता है कि उस वस्तु पर दबाव पड़ेगा पर यह इतना सूक्ष्म है कि उसे नापना बहुत ही कठिन है। प्रोफेसर लैबड्य ने यह प्रयोग पहले पहल किया। श्री० साहा और चक्रवर्ती ने उसीको अधिक सूक्ष्म और प्रामाणिक रीतिसे करा। १९२० में आपने इसी दबाव का उपयोग सूर्य की भौतिक विज्ञानसे सम्बन्ध रखने वाली समस्याओंको सुलझानेमें किया। आपने कहा कि प्रकाशका दबाव सब पदार्थों पर एकसा नहीं पड़ता। कुछ तत्वोंके अणुओं पर अधिक और कुछ पर कम। सूर्यके तापक्रमके कारण सूर्यके प्रकाशमें कुछ रंग विशेष तीव्र होते हैं और यदि किसी विशेष तत्वके परमाणु उन्हींके आसपास शोषण करने लगें तो फिर वही परमाणु इतनी शक्ति ले लेनेके कारण ऊपर उठ जांयगे। यह निबन्ध विशेष महत्व पूर्ण था।

आपकी मुख्य खोजको समझनेके लिये प्रकाशकी उत्पत्ति और तत्वोंके परमाणुओं की रचनाके विषयमें जानना आवश्यक है।

आधुनिक वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध कर दिया है कि सब तत्व केवल दो वस्तुओंके बने हैं—ऋणाणु और धनाणु। सरलताके लिये उदजनका परमाणु लीजिये यह एक छोटा सा सूर्य मंडल है—इतना
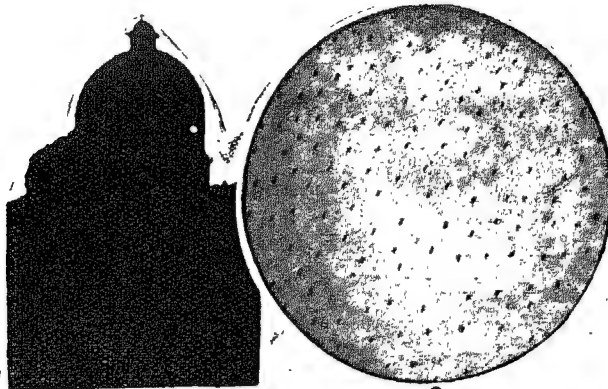
(१) "यदि परमाणु स्वयं इतने बड़े पैमाने पर अङ्कित किया जाय कि उसका व्यास प्रयाग विश्वविद्यालयके विजयानगरम हालके समान हो जाय तो ऋणाणु केवल छोटे छर्रे के समान होगा"।

छोटा कि इसकी चौड़ाई $\frac{१}{१००००००००}$ इंचके लगभग है।

बीचमें धनाणु अर्थात धन विद्युत का एक केन्द्र है और इसके चारों ओर तीव्र गतिसे ऋणाणु जो ऋण विद्युत का बना है चक्कर लगाता है। सारा बोझ धनाणु में है यहां तककि ऋणाणु उसका $\frac{१}{१८४६}$ वां भाग है। (देखिये चित्र १)

इस ऋणाणुकी दूरी धनाणुसे साधारणतः निश्चित है पर यदि विशेष अवस्थाओं में ऋणाणु कुछ दूर जाये तो यह नहीं हो सकता कि वह चाहे जहा चला जाय—कुछ निश्चित घेरे ही ऐसे हैं जहां वह ऋणाणु जा सकता है।

यह भी माना जाता है कि जब ऋणाणु एक घेरे से दूसरे पर कूदता है तभी प्रकाश निकलता

है। यह तो हुई सीधे साधे उदजन की बात। जहां केवल एक ऋणाणु और एक धनाणु होता है। और भारी भारी परमाणुओंमें तो कई धनाणुओं का एक केन्द्र और उसके चारों ओर सौर संसार के गोरख-
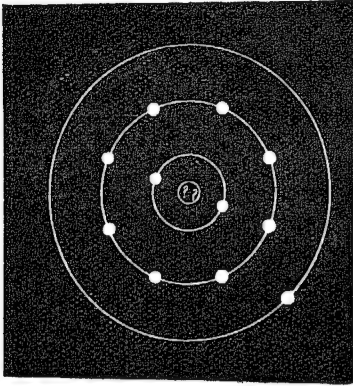
(२) सैन्धकम् परमाणुमें ऋणाणुओं का जमाव

केन्द्रमें धनाणु है और निश्चित घेरोंमें परमाणु। पहले में दो हैं, दूसरे में ८ और तीसरे में १। यही ऋणाणु उछल कूद कर प्रकाश देता है।

धन्धेमें ऋणाणु चक्कर लगाते रहते हैं। इनमें जो प्रकाश निकलता है वह एक रंगका नहीं होता। हजारों रंग उसमें होते हैं और उसके विश्लेषणसे परमाणुके गठन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। कांचके एक त्रिपाश्व से यह कार्य किया जाता है उदाहरणार्थ श्वेत प्रकाश (साधारण) को यदि विश्लेषित किया जाय तो उसमें मोटी रीतिसे, सात रंग दिखाई देते हैं। अब मान लीजिये कि सूर्यके प्रकाशकी एक रश्मिको हमने त्रिपाश्व से देखा-उस में सात रंग तो दीख ही जांयगे पर साथ ही साथ उस सतरंगी पट्टी पर काली रेखायें दीखतीं हैं। इन की संख्या लगभग २०००० है। इन रेखाओं की भाषामें सूर्य देवता ने अपनी सारी कहानी मानव जातिके बुद्धिका लोहा मान सामने रख दी है। इस कहानी को पढ़ना और समझना वैज्ञानिक की सब-से बड़ी प्रकृति पर विजय है। इन काली रेखाओं का क्या अर्थ है और उनको कैसे समझा जाता है इसका वर्णन हम आगे करेंगे क्योंकि यही जानने के पश्चात् साहा महोदय का सिद्धान्त समझना सम्भव होगा।
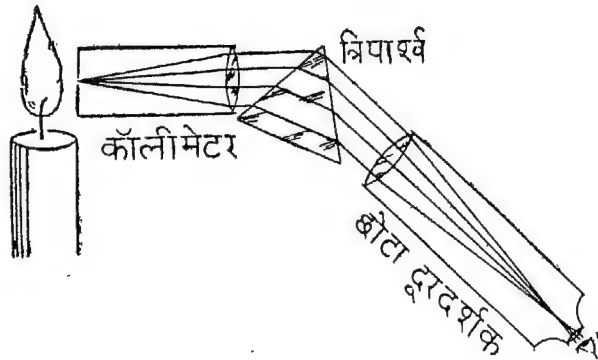
(३) प्रकाशका विश्लेषण

मोमबत्तीका श्वेत प्रकाश कॉलीमेटर से समानान्तर रश्मियोंसे निकल त्रिपार्श्व पर पड़ता और विश्लेषित होता है। दूरदर्शकसे देखते हैं।

यह प्रयोग द्वारा ठीक प्रकार अध्ययन किया जा चुका है कि किसी एक प्रकारके परमाणु एक ही प्रकार का प्रकाश देते हैं अर्थात् उनके रश्मि चित्र में कुछ रेखायें आती हैं जो उनको छोड़ कर और कहीं न आंयगी—पारद का रश्मि चित्र लीजिये। अब यदि और किसी तत्वका रश्मिचित्र लिया जाय तो ऐसा चित्र कभी नहीं आयगा जबतक कि उसमें पारा न हो। साधारण नमक को यदि एक लौ पर रख दिया जाय तो पीली रंग की रोशनी निकलेगी जिसको विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि तरंग लम्बान ५८९० और ५८९६ आँ हैं (·००००५८९० श० मी० और ००००५८९० श० मी०)

यह दो रेखायें सैन्धकम् (Sodium) के कारण आती हैं। अब यदि इस लवणमय लौ के पीछे एक तीव्रश्वेत प्रकाशका उद्गम स्थान कोई चाप (Are) रख दिया जाय और लवण मयलौको पार करके आने वाले श्वेत प्रकाशकी जाँच की जाय तो यह मालूम होगा कि श्वेत प्रकाश विश्लेषित होकर सतरंगी पट्टी के रूप में तो होगया है पर जिस स्थान पर सैन्धकम् की दो रेखायें आती थीं (पीली) ठीक उसी स्थान पर दो काली रेखायें हैं। सूर्य की भट्टी में ६०००° के तापक्रम पर जो खेल हो रहा है वह हमारी प्रयोगशाला में उद्धृत होगया। इसी प्रयोग से हम उन काली रेखाओं का जिनका नाम आविष्कर्ताके सम्मानार्थ फ्रानहोफर रेखायें हैं—रहस्य निकाल सकते हैं।
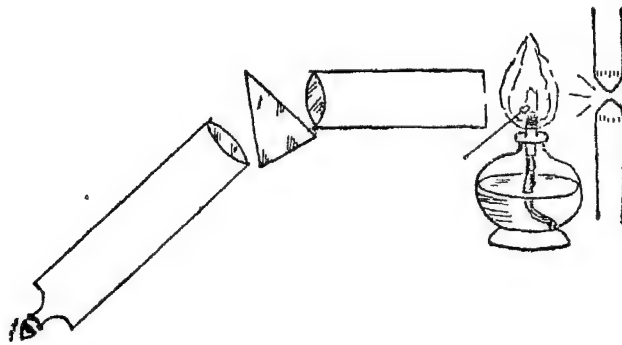
(४) प्रयोगशालामें फ्रानहोफर रेखाओंकी उत्पत्ति

तीव्रश्वेत प्रकाश लवणमय लौ में से निकलता है। रश्मि विश्लेषकमें देखनेसे विशेष स्थानों पर काली रेखायें दीखेंगी।

प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक किरचफ ने उसका भेद बताया। यदि एक अटूट रश्मिपट, जो कि एक अधिक तापक्रमवाले स्थानसे उत्पन्न हुवा है, कुछ कम गरम वायव्य या किसी तत्व की भापमें से निकले तो साधारणतः जो प्रकाश वह परमाणु देता वही वह शोषण कर लेगा और उस स्थान पर एक काली रेखा आ जायगी। अर्थात् यदि एक सैन्धकम् का परमाणु स्वयं लौमें रखे जाने पर पीला प्रकाश देता है तो यदि उस पर श्वेत प्रकाश डाला जाय तो वह वही पीला प्रकाश जो वह देता ले लेगा और उस स्थान पर काली रेखायें दीखेंगी। पृथ्वी पर भिन्न भिन्न तत्वों से प्रयोग कर हम लोग यह पता लगा सकते हैं कि कौनसा परमाणु किस दशामें कौन कौन सी रेखायें देता है। जब इसी स्थान पर सूर्यके प्रकाश में काली रेखायें मिलती हैं तो हमें यह ज्ञान होता है कि सूर्य में कौन कौन से तत्व हैं।
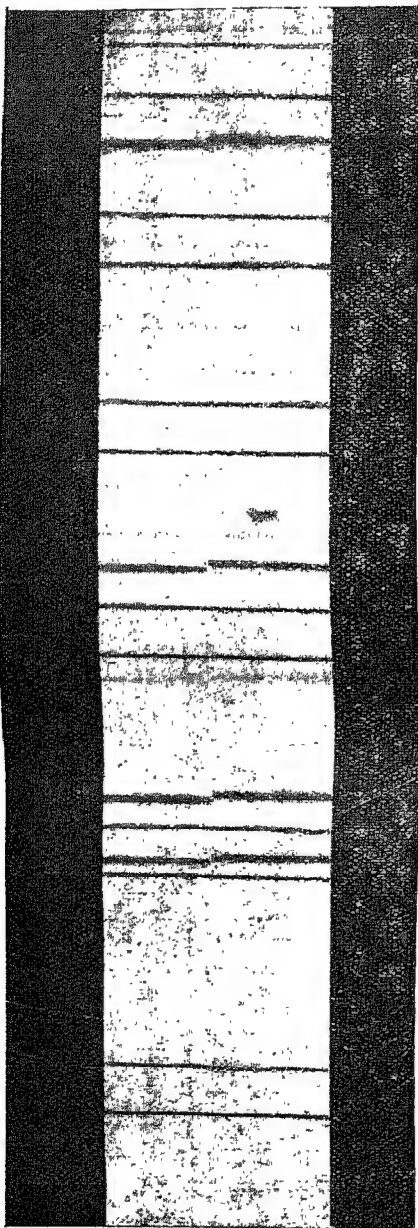
(५) सूर्यका रश्मि चित्र

काली रेखायें फ्रानहोफर रेखायें हैं जिनके सहारे सूर्य की कहानी लिखी गई है।

यह "बात उदाहरण द्वारा समझाई जा सकती जैसे यदि सितारके दो तार यदि एक ही सुर देते हों तो एकके बजाने से दूसरा भी बजने लगता है। पहले तार की कुछ शक्ति को दूसरा तार ले लेता है और बजने लगता है।"

(डा० गोरख प्रसाद—सौर परिवार)

यही इस प्रयोगमें होता हैं। विद्युत चाप के प्रकाशमें से अपने सुरमें सुर मिलाने वाली प्रकाश रश्मियों को परमाणु ले लेता है।

ऊपर हमने कहा है कि 'परमाणु किस दशामें है"। यह दशा शब्द विशेष महत्वपूर्ण है। ऐसा भी होता है कि किसी कारण से परमाणुके मंडलमें से एक या एकसे अधिक ऋणाणु भाग जांय। इस दशा में कहते हैं कि परमाणु "यापित" (Ionised) होगया। इस दशामें उसकी अवस्था साधारण अवस्थासे सर्वथा भिन्न होती है, उसका रश्मि चित्र भिन्न होगा और उसके कारण जो काली रेखायें रश्मि चित्र पर आयगी वह भी भिन्न होंगी।

इन सिद्धान्तों से सूर्यके रासायनिक गठन के विषय में हमें ज्ञान होगया है। हम यह तो नहीं बतलाना चाहते कि किस प्रकार यह पता लगा। पर इतना ही बता देना यथेष्ट होगा कि रश्मिचित्र की परीक्षासे सूर्य की सारी कहानी लिखी गई है।

सूर्यके कई भाग हो सकते हैं। इसकी उपरी सतह का तो तापक्रम ६०००° श के लगभग है पर अन्दर चलकर तापक्रम लाखों डिग्रियों पर पहुँचता है। इसी भीतर भागसे अटूट प्रकाश आता है। इस भागके पश्चात् एक 'पलटाऊतह' (reversing layer) है जो नीचेके भागों की अपेक्षा ठंडी है। इसकी उँचाई ५००-१००० मील है और पृथ्वी पर पाये जाने वाले सब तत्वों के परमाणु इसमें होने चाहियें। अन्दरसे जो अटूट प्रकाश उच्च तापक्रमके कारण आता है वह इस कम गरम 'पलटाऊतह' में आकर विशेष परमाणुओं द्वारा शोषित होता है

और इस प्रकार इसी स्थान पर फ्रानहोफर रेखायें बनती हैं। जैसा ऊपर कहाजा चुका है सूर्य रश्मिपट पर २००२७ काली रेखायें हैं पर इनमें से केवल १२५०२ का ठीक पता ठिकाना लग सका है और इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि सूर्य में पृथ्वी पर पाये जाने वाले ५७ तत्व हैं पर पृथ्वी पर कुल मिला कर ९२ तत्व हैं—शेष क्या हुए ? कहा जाता है कि पृथ्वी किसी समय सूर्यका ही भाग थी इसलिये जो पृथ्वी पर मिलते हैं वह सूर्य पर भी मिलने चाहियें ? यह समस्या कैसी सुन्दर रीतिसे साहाके सिद्धान्त ने समझाई यह हम आगे लिखेंगे।

'पलटाऊतह' के बाद वर्ण मंडल है यह खग्रास सूर्यग्रहणके समय चटक लाल रंगका दिखता है इस लिये इसको यह नाम दिया गया। गहराई इसकी ८—९ हज़ार मील है। इसके ऊपर लाल ज्वालायें हैं और फिर मुकुट मंडल। इनसे हमें विशेष मतलब नहीं। यहां यह कह देना अनुचित न होगा कि इन सब बातोंका ज्ञान वैज्ञानिकोंको खग्रास सूर्य ग्रहणके समय होता है। पुरानी भाषामें कहिये तो सर्व सूर्यग्रहण भौतिक शास्त्रज्ञके लिये पुत्रोत्पत्ति से बढ़कर आनन्ददायक होता है। ज़रा सोचिये सूर्यग्रहणमें क्या होता है। धीरे २ चन्द्रमाको छाया
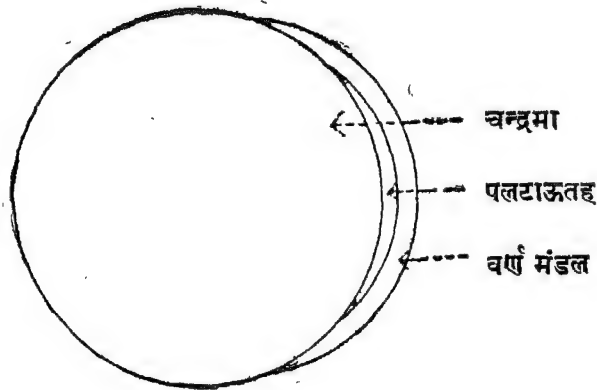
(६) ग्रहणके समय सूर्यकी स्थिति

इसी समय झलक रश्मिचित्र दिखाई पड़ता है।

सूर्य पर खिसकती है। जब किनारा सा रह जाता है तो इस 'द्वितीयाके चन्द्रमा' के समान सूर्यकी पतली सी तहमें एक बड़ी विचित्र बात होती है। रश्मि चित्रमें सारी काली रेखायें एकबारगी चमक कर चमकीली हो जाती हैं। कारण स्पष्ट है। इसी पलटाऊतहमें वह सब तत्व हैं जिन्होंने सूर्यमंडल के अन्दरसे आनेवाले काले प्रकाशको शोषित किया था। अब ग्रहणके कारण अन्दरका अटूट प्रकाश तो हमारे पास आता नहीं। अब तो यही पलटाऊतहके कम गरम (फिर भी ६०००° श पर) तत्व अपना जौहर बताते हैं। इस किरणचित्रका नाम 'झलक रश्मिचित्र' (Flash spectrum) है। इसमें रेखायें कुछ छोटी होती हैं कुछ बड़ी और इनकी जाँच करनेसे यह पता चलता है कि कौनसे पदार्थ केवल नीचेवाले भागोंमें हैं और कौनसे ऊपरवालों में, यह बात याद रखनी चाहिये।

सब तारे बड़े बड़े सूर्य हैं और अमेरिकाके हार्वर्ड कालेजकी वेधशालामें प्रोफेसर पिकरिङ्ग और मिस केनन ने २ लाख तारोंका अध्ययन किया और उनके रश्मिचित्रोंके हिसाबसे उन्हें अलग २

समूहोंमें बांट दिया। कुछ तारोंमें उद्‌जनकी रश्मियाँ अधिक थीं, कुछमें हिमजनकी। क्या यह तारे सचमुच केवल इन्हीं वस्तुओंके बने थे? क्या तारोंका विकास हो रहा है? सर नारमन लोकयर ने ऐसा ही एक सिद्धान्त प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने कहा कि भिन्न भिन्न तारोंमें भिन्न २ विकासकी स्थिति है अर्थात् नये नये तत्व बनते जा रहे हैं।
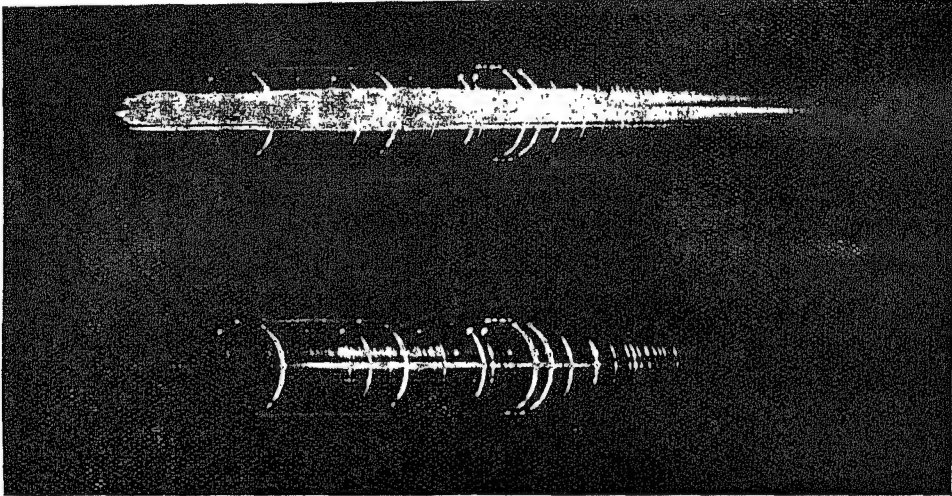
(७) झलक रश्मि चित्र

" जब किनारा सा रह जाता है तो द्वितीयाके चन्द्रमा के समान सूर्यकी पतली सी तहमें एक बड़ी विचित्र बात होती है। रश्मि चित्रकी सारी काली रेखा" एक बारगी चमक कर चमकीली हो जाती है।"

'साहाका तापयापन सिद्धान्त'
(Saha's Theory of Thermal Ionisation)

किसी पदार्थको यदि गरम करना आरम्भ किया जाय तो क्या होगा। ठोससे वह द्रव हो जायगा द्रवसे भाप बनेगा जबकि अणु दूर२ भागेंगे फिर हो सकता है कि अणु टूट कर परमाणु हो जांय पर फिर?

साहा ने कहा कि परमाणु पुराने समयकी भांति ठोस गोलीके समान तो है नहीं पर इस पिञ्जरेसे परमाणुमें यही होगा कि बाहरके ऋणाणु एक घेरेसे दूसरे ऊंचे घेरेपर जांयगे। धीरे २ वह ऋणाणु अधिक तापक्रम होने पर परमाणुसे अलग होगा और यापन होगा। परमाणु एक ऋणाणु कम हो जानेके कारण भिन्न प्रकारका रश्मि चित्र देगा। यदि और भी तापक्रम बढ़ाया जाय तो और भी ऋणाणु परमाणु को छोड़कर भाग जांयगे। दिल्लीमें गरमी पड़ने पर जिस प्रकार भारतकी राजधानीके वासी गौराङ्ग महाप्रभु शिमला शैलकी तुषार मंडित चोटी पर जाते हैं और बिचारी राजधानी सूनी हो जाती है वह हाल ऋणाणु रहित परमाणु का होगा। यही नहीं कुछ ऋणाणु परमाणुमें आकर उसे पूरा भी करते रहेंगे इस प्रकार ऐसी अवस्था हो जायगी कि जितने ऋणाणु टूटेंगे उतने ही जुड़ जायंगे। मान लीजिये हमारे पास खटिकम (Calcium) है। इसके प्रतिशत कितने परमाणु टूट जांयगे यह कई बातों पर निर्भर है (१) तापक्रम (२) दबाव (३) परमाणुकी यापन शक्ति अर्थात् ऋणाणु को भगानेके लिये कितनी शक्ति चाहिये।

इस सिद्धान्तसे पता लगता है कि हारवर्डमें देखे गये तारोंके रश्मि चित्रमें क्यों भेद है ? तारे एक ही वस्तुके नहीं बने पर उनमें भिन्न भिन्न रश्मि चित्र और ख़ास ख़ास तत्वोंके परमाणुओं को रेखायें इसलिये बनती हैं कि उनका तापक्रम अलग अलग है। एक तापक्रम पर मान लीजिये ४०००°श पर सिवाय उदजन और हिमजनके सब परमाणु टूट जाते हैं इसलिये उनकी रेखायें कहांसे आयें ? जिन तारोंमें खटिकम्, ख+, मगनीसम्, सैन्धकम्, रूशम् आदिकी रेखायें आतीं हैं उनका तापक्रम कम होता है इसलिये यही परमाणु प्रकाश देते हैं। इसका यह अर्थ लगाना कि उस तारेमें जिस परमाणुकी रेखा नहीं आती वह उसमें है ही नहीं भूल है। यह फल 'यापन सिद्धान्त' की उपयोगिता सिद्ध करता है।

अब तारोंके रश्मिचित्रका अध्ययन करके और दबाव कुछ मान कर उनका तापक्रम भी निकाला जा सकता है। केवल रश्मिचित्रके अध्ययनसे प्रयोगशाला में इतना उच्च तापक्रम निकालना सचमुच आश्चर्यजनक बात है।

एक और पहेली थी जिसको सुलझानेमें ज्योतिषी और भौतिक शास्त्रज्ञ असफल थे। यह हम बता चुके हैं कि सर्व ग्रहणके समय झलक रश्मिचित्रके अनुसन्धान से यह पता चल सकता है कि कौनसे परमाणु सूर्यमें कितने ऊंचे हैं। एक बड़ी आश्चर्यजनक बात पाई गई। आशा यह थी कि उदजन इतना हलका होनेके कारण बहुत ऊपर पाया जायगा पर देखा गया कि खटिकम् (Calcium) का परमाणु जिसमें एक ऋणाणु कम था, सबसे ऊपर था और उससे नीचे उदजन। इस पहेलीको आचार्य साहा ने सुलझाया। यदि किसी वस्तुको मान लीजिये लोहेके टुकड़ेको गरम करें तो पहले वह धीमा लाल प्रकाश देगा पर जैसे जैसे उसका तापक्रम बढ़ेगा वह श्वेत प्रकाश देता चलेगा। कौनसे रंग का प्रकाश सबसे तीव्र है यह तापक्रम पर निर्भर है। अब खटिकम् (Calcium) इस अवस्थामें कासनी रंगका प्रकाश शोषण करता है और दैवयोगसे सूर्यका प्रकाश उच्च तापक्रमके कारण यहीं सबसे तीव्र है फलतः यह परमाणु औरोंसे अधिक शोषण कर लेता है। और प्रकाश के कण बराबर पड़नेके कारण यह आकर्षण शक्ति के विरुद्ध ऊपर उठ सकता है। बेचारे इस परमाणु की दशा देखकर रामचन्द्रिकाके एक स्थलकी याद आ जाती है। जब रामाश्वमेध में लव और कुश ने सब योद्धाओं को हरा दिया तो स्वयं श्रीरामचन्द्र युद्धक्षेत्रमें आये। लव कुश को पहिचान उन्होंने अङ्गदको उनसे लड़नेको प्रोत्साहित किया। यह भी मदमें भरे पहुँचे पर बुरा हाल हुआ।

"बानन बेध रही सब देही।
बानर ते जु भये अब सेही॥
भूतल ते शर मार उड़ायो।
खेल के कन्दुक को फल पायो॥
सोहत है अध ऊरध ऐसे।
होत बटा नट को नभ जैसे॥
जान कहूँ न इते उत पावे।
गोबल चित्त दशों दिश धावे॥

यही हाल प्रकाश कणों द्वारा ताड़ित बेचारे खटिकम् (Calcium) परमाणुका होता है, इसी कारण यह सूर्यके आकाशमें ऊपर टंगे रहते हैं।

इस सिद्धान्तके पहिले यह भी भ्रम था कि 'वर्णमंडल' में तापक्रम अधिक है क्योंकि झलक रश्मिचित्रके अध्ययनसे ऐसा ही प्रतीत होता था। इस हिसाबसे तो सूर्य अन्दर तक जाते जाते ठण्डा हो जायगा। अब यह पता चला कि रश्मिचित्र तापक्रम पर ही निर्भर नहीं है पर उसमें दबावका भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। वर्णमंडलका तापक्रम बहुत कम है पर वहां दबाव कम है इसलिये बात वही हो जाती है कि मानो तापक्रम अधिक हो—६०००° और दबाव साधारण या इससे अधिक।

इस छोटेसे लेखमें 'यापन सिद्धान्त' का पूरा वर्णन तो सम्भव न होगा पर एक आध और महत्व पूर्ण फलका वर्णन करना आवश्यक है। पहले लिखा जा चुका है कि सूर्यमें केवल ५७ तत्वोंका पता चला, शेष क्या हुए? इस प्रश्नका सन्तोषजनक उत्तर पहले पहल यापन सिद्धान्त ने ही दिया।

उदाहरणार्थ लालम् और व्योमम् (Rubidium and Cesium) को ही लीजिये। यह दो धातु ऐसी हैं कि सूर्यमें इनका पता नहीं चलता। इनकी यापन शक्ति बहुत थोड़ी है अर्थात् जरा सी उत्तेजना में ही यह अपने ऋणाणु खोकर यापित हो जाते हैं। अब इनकी साधारण अवस्थाकी जो रेखायें थीं वह फ्रानहोफर रश्मि चित्रमें नहीं आतीं और उत्तेजित अवस्थामें जो प्रकाश यह देते हैं वह रश्मिपटके पराकासनी भागमें इतनी दूर होता है कि हमारी पृथ्वीका वायुमंडल उसे शोषित कर लेता है और उन रेखाओंके विषयमें हम कुछ नहीं जान पाते। अब यदि सूर्यकी सतह पर ऐसा कोई भाग है जो ठण्डा होगया हो (लगभग ४०००°श) तो वहाँ यह धातुएँ अपनी साधारण अवस्थामें होंगी इसलिये यदि उस भागका अलग रश्मिचित्र लिया जाय तो इन धातुओंकी रेखायें मिलनी चाहिये। डा० साहा ने अपने सिद्धान्तसे यह भविष्यवाणी की और इसके प्रकाशित होते ही अमेरिकाके प्रोफेसर हेनरी नोरिस रसेल ने डा० ब्रेकेटके लिये हुए कुछ छायाचित्र देखे जिनमें कुछ रेखायें इन धातुओंकी मिलीं। साहा सिद्धान्त ने अपने शैशव कालकी इस सफलतासे वैज्ञानिक संसार पर अपना सिक्का जमा दिया।

ओषजन, नोषजन इत्यादि वायव्योंकी रेखायें क्यों नहीं आतीं इसका भी पूरा उत्तर सिद्धान्तमें दिया। काली रेखाओंमें किसी धातुकी रेखायें न होनेसे यह न समझना चाहिये कि सूर्यमें वह हैं नहीं। या तो वह तत्व टूट फूट गया है या बहुत ऋणाणु खो बैठा है इसलिये वह और ही ज्योतिसे दीप्त है।

प्रयोग

इस सिद्धान्तकी सत्यता जांचनेके लिये ब्रह्माण्ड की प्रयोगशालाओंको छोड़ पृथ्वी पर भी प्रयोग करने आवश्यक थे। इसलिये डा० साहा ने डा० सूर और डा० मजूमदारके सहयोगसे प्रयाग विश्वविद्यालयमें प्रयोग किये। बिजलीकी एक भट्टी बना कर उसमें तत्वोंकी भाप बनाई गई और कुछ नाप लिये गये जिनसे साधारण रूपसे यापन सिद्धान्तकी सत्यता प्रकट हुई। उधर अमेरिकामें किङ्ग ने भी एक बड़ी भारी विद्युतकी भट्टी बनाकर कुछ प्रयोग किये जिससे इस सिद्धान्तको सहारा मिला। खेदकी बात तो यह है कि बेचारा मनुष्य २०००–४०००°श से अधिक तापक्रम पानेमें असमर्थ है और प्रकृतिके इन जलते गोलोंमें ६०००°—४००००° श तकका तापक्रम साधारण बात है। इसलिये हमारी पार्थिव प्रयोगशालाओंमें पूरे रूपसे प्रयोग होना सम्भव नहीं।

इस सिद्धान्त को फाउलर और मिलने नामके दो अङ्गरेज़ वैज्ञानिकों ने बढ़ाया और नये नये फल निकाले। इस समय भी नयी नयी रीतियोंसे काम करके डा० साहाके शिष्य श्रीयुत कोठारी और मजूमदार ने और खोजें की हैं। एक मद्रासी सज्जन चन्द्रशेखर भी इस विषय पर खोज कर रहे हैं। यह कहना उचित होगा कि आजकल ज्योतिष सम्बन्धी भौतिक विज्ञानमें अधिक काम साहा। सिद्धान्त के सहारे ही हो रहा है।

डा० साहा ने इसके पश्चात् परमाणुकी रचना और रश्मि विश्लेषणकी ओर ध्यान दिया। परमाणु रचना पर भी आपकी खोज विशेष महत्वपूर्ण रही हैं। इस विषय पर एक निबन्ध आपने वोल्टा शताब्दिके अवसर पर इटलीमें भारतके प्रतिनिधिकी हैसियतसे पढ़ा था।

आजकल आपने साधारण लवणोंके रङ्गके विषयमें एक गूढ़ सिद्धान्त प्रकाशित किया है। इस विषय पर आजकल विश्वविद्यालयकी प्रयोग

शालाओंमें खूब काम हो रहा है। पूर्ण आशा है कि महत्वपूर्ण फल निकलेंगे।

जगहकी की कमी और धनाभावके कारण आप उतना काम नहीं कर सकते जितना कि करना चाहते हैं। संसारकी प्रयोगशालाओं ने इनके सिद्धान्तसे सहायता ले महत्वपूर्ण खोजें की पर सामान न होनेके कारण प्रयोग रूपमें यहाँ कुछ काम न हो सका। सिद्धान्तकी महत्ता नीचे उद्धृत की हुई संसारके अग्रगण्य वैज्ञानिकोंकी सम्मतिसे प्रकट होगी।

विश्वविख्यात आइन्स्टाइन कहते हैं—

डाक्टर मेघनाद साहा ने सारे वैज्ञानिक संसारमें अपनी 'उच्च तापक्रमों पर तत्वोंके बरताव' इस विषयकी खोज कर माननीय स्थान प्राप्त कर लिया है। इन अनुसन्धानोंसे तारोंमें क्या भौतिक स्थिति है यह जाननेका नया मार्ग खुल गया है। विज्ञानके लाभके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि डा० साहा को अपने वैज्ञानिक खोजोंमें पूरी सुविधा मिले।

अमेरिकाके प्रिंसटन विद्यालयमें ज्योतिषीय भौतिक विज्ञानके आचार्य डा० रसेल ने डा० साहा को एक पत्र में लिखा है :—

मेरी रायमें आपने भौतिक विज्ञानमें ऐसी खोज की है कि जो अमूल्य और बहुत महत्वपूर्ण होते हुए भविष्यमें उन्नतिके लिये मार्ग खोल देगी। जबमैं माउन्ट विलसन वेधशालामें खोजके लिये नियत हुआ तो मैंने तुरन्त ही आपके परामर्शके अनुसार काम करनेका प्रोग्राम बनाया। आपने देखा होगा कि आपने सूर्यमें क्षार-तत्वोंके (Alkali metals) होनेकी जो भविष्यवाणी की थी वह पूर्ण रूपसे सच निकली। यहां हम सब लोग आपकी खोजको बहुत सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं।

जर्मनीसे प्रो० एमडेन ने एक व्याख्यानमें कहा था :—

एडिङ्गटनका तारामण्डलोंकी रचनाके विषयमें सिद्धान्त हमें बाहरी तहोंमेंसे जो प्रकाश निकलता है उसके बारेमें कुछ नहीं बताता। इस विषयमें हमें एक भारतीय नवयुवक मेघनाद साहासे सीखना है जिसके अनुसन्धान निस्सन्देह ज्योतिषीय भौतिक विज्ञानमें सब से प्रमुख और सबसे महत्वपूर्ण खोजोंमें से हैं।

ऊपरके अवतरणों से प्रकट है कि डा० साहा की खोज कितनी महत्व पूर्ण हैं। हमें पूर्ण आशा है कि भविष्यमें और अधिक उपयोगी काम आपको यशस्वी करेगा।

इस लेखमें चित्र डा० गोरख प्रसाद के सौर परिवार से लिये गये हैं। ब्लाक देनेके लिये हम डा० ताराचन्द मन्त्री हिन्दुस्तानी एकेडमी के कृतज्ञ हैं।

हरिन्, अरुणिन् और नैलिन्के साथ की तथा कुछ अन्य प्रकियाएं

[ले० श्री वा० वि० भागवत एम० एस-सी०]

उदहरिकाम्लका प्रकाश संश्लेषण

उदजन और हरिन् वायव्योंसे प्रकाशमें उदहरिकाम्ल तैयार होता है, यह बात सन् १८०१ में क्रुकशँक ने देखी थी। ड्रेपर, बुनसन और रास्को ने यह बतलाया कि यह क्रिया प्रकाश शोषण के समानुपाती रहती है। यह संश्लेषण अद्भुत है, क्योंकि इसके बारेमें कई वैज्ञानिकों ने प्रयोग किये, लेकिन इसकी गठनका अभी तक कुछ पता न चला। इस प्रक्रियाके बारेमें निम्नलिखित बातें मालूम हैं।

(१) यह क्रिया प्रकाश शोषणसे होती है, और यह शोषण हरिन् वायव्य करता है :—

(२) इस क्रियाका कुछ आवेशकाल (Induction-period) होता है। संमिश्रित गैसोंमें अशुद्धता होनेके कारण यह 'आवेशकाल' रहता है। यह अशुद्धता प्रकाशसे प्रथम नष्ट की जाती है और फिर बादमें क्रिया शुरु होती है। यदि शुद्ध गैस कार्यमें लाये जायँ तो यह 'आवेशकाल' दिखाई नहीं देता।

(३) आइन्स्टाइन के प्रकाश-रसायन-सम-सिद्धान्तका पालन इसमें नहीं होता। एक क्वाण्टम से हजारों अणु तैयार होते हैं।

(४) ओषजनसे इस क्रियाकी गति कम हो जाती है। जिन अशुद्धियोंके कारण 'आवेशकाल' रहता है, उनका यहाँ कुछ तात्पर्य्य नहीं है।

(५) इस क्रियाका गत्यात्मक विवेचन निम्न समीकरणसे बतलाया जाता है:—

$$\frac{\text{तय}}{\text{तत}} = \frac{\text{स्थि.}[\text{ह}_2]^2[\text{उ}_2]}{\text{स्थि}_1.[\text{उ}_2][\text{ओ}_2]+\text{स्थि}_2[\text{ह}_2]}$$

(६) दबाव कम होनेसे क्वाण्टम् की संख्या (Quantum yield) कम होती है।

(७) प्रकाश की तीव्रताके परिणाम के बारेमें मत-भिन्नता है। बुनसन और रास्को, एवं मिसेस चैपमैनके प्रयोगसे यह क्रिया तीव्रताके समानुपाती मालूम होती है। बेली और बार्करकी सम्मतिमें यह क्रिया तीव्रताके वर्गके अनुपाती रहती है। लेकिन मार्शलने यही क्रिया प्रकाशकी तीव्रताके वर्गमूलके साथ बदलती हुई पायी है।

(७) यह क्रिया ५४०० अ° परिमाणसे अधिक लहर लम्बाईको किरणोंसे नहीं होती।

(८) इस क्रिया की गठनके बारेमें बहुतसे समीकरण निकले हैं लेकिन नन्र्स्टकी बताई हुई गठन सबमें सीधी तथा सुलभ है। इस गठनको शृङ्खलित गठन (Chain mechanism) कहते हैं। इसमें हरिन् अणुके प्रकाश-शोषणसे परमाणु बन क्रिया शुरू होती है। अर्थात् प्रकाशसे हरिन् अणु प्रथम परमाणुमें विभाजित होता है और फिर यह परमाणु उदजन अणुसे मिल कर रासायनिक प्रक्रिया करने लगता है।

(१) $\text{ह}_2 + \text{क्वा} \longrightarrow + \text{ह} + \text{ह}$

(२) $\text{ह} + \text{उ}_2 \longrightarrow \text{उह} + \text{उ}$

(३) $\text{उ} + \text{ह}_2 \longrightarrow \text{उह} + \text{ह}$

(४) $\text{ह} + \text{ह} \longrightarrow \text{ह}_2$

(५) $\text{ह} + \text{उ} \longrightarrow \text{उह}$

(६) $\text{उ} + \text{उ} \longrightarrow \text{उ}_2$
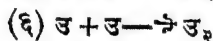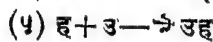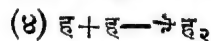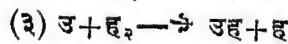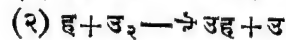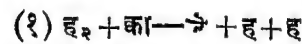
हरिन् वायुके साथकी प्रक्रियाओंमें उदजन-हरिन् प्रक्रिया ही महत्वपूर्ण है। प्रकाशसे हरिन् और कर्बन-एक ओषिद्से ओषहरीद्रिन बनता है। इस क्रियाकी घटना भी उदजन-हरिन सरीखी ही संकीर्ण है। बहुतसे वैज्ञानिकों ने अलग अलग समीकरण दिये हैं।

बोडेन्स्टाइन, लेनहर और वैगनर ने इसकी घटना निम्न तरहसे बतलाई है :—

$\text{ह}_2 + \text{क्वा} \longrightarrow 2\,\text{ह}$

$\text{कओ} + \text{ह} + \text{ह}_2 \longrightarrow \text{कओह} + \text{ह}_2'$ (उत्तेजित)

$\text{क ओ ह} + \text{ह} \longrightarrow \text{क ओ ह} + \text{ह}$

क ओ ह + ह —→ क ओ + $ह_2$

क ओ ह + $ओ_2$ —→ क $ओ_2$ + ह ओ
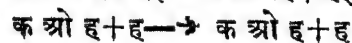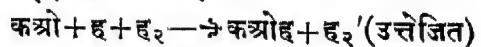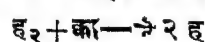
ह ओ + क ओ —→ क $ओ_2$ + ह

यह प्रकाश रासायनिक क्रिया ओषजन की विद्यमानतामें कम होती जाती है। शुल्ज़के मतसे यह क्रिया चाहें मिश्रित गैस आर्द्र या शुष्क हो दोनों ही अवस्थाओंमें एकही गतिसे होती है।

दालचीनिकाम्ल और हरिन् से भी प्रकाश रासायनिक क्रिया होती है। हरिन्जल भी प्रकाशसे विभाजित होता है। बानजावीन, टोल्वीन और मद्य-मज्जिक यौगिकोंका हरिनीकरण भी प्रकाशसे होता है।

उद्अरुणिकाम्लका प्रकाश संश्लेषण

यह क्रिया अंधेरेमें बिलकुल नहीं होती है। इसका प्रकाश संश्लेषण कैस्टल और बेटी ने थम देखा। सूर्य प्रकाशमें १८६° श तापक्रम पर यह दोनों गैसें परस्पर संपूर्ण संयोग पाती हैं। सर्व साधारण तापक्रम पर सूर्य प्रकाशसे यह क्रिया बहुत कम होती है। कोह और स्टुकर्डने इस क्रियाका २७०° श तापक्रम पर अध्ययन किया और यह भी देखा कि क्रिया अरुणिन् वायुके प्रकाश शोषणसे होती है। मिस पुशने यह बतलाया कि इसकी काण्टम संख्या या तन्मात्रा ०·००१ है यानी प्रति प्रकाश मात्रासे ०·००१ अणु बनता है। बोडेन्स्टाइनने यह क्रिया १६०° से लेकर २१८° तक किस तरहसे होती है यह जाननेकी कोशिशकी। इसने उसकी गठन नीचे दिये हुए समीकरणसे बतलायी।

$$\frac{त\ (उ\ रु)}{त\ व} = स्थि.\ \sqrt{ति}\ \frac{[उ_2]}{1 + \frac{[उ\ रु]}{10\ [र_2]}}$$

ति = तीव्रता (शोषणकी हुई) व = वक्त.

इस समीकरणसे यह मालूम होता है कि यह क्रिया प्रकाश शोषणके वर्गमूलके अनुपाती है। तथा उदजन अणुके समानुपाती रहती है और उदअरुणिकाल मिलानेसे उसकी गति कम होजाती है।

इस क्रियाकी गठन ठीक तरहसे प्रथम क्रुश्चिनसनने बतलायी। हर्ज़फेल्ड और पोलनी ने भी यह गठन बतलायी।

(१) $रु_2$ —→ २ रु ······ $स्थि_1$

(२) रु + $उ_2$ —→ रु उ + उ ··· $स्थि_2$

(३) उ + $रु_2$ —→ रु उ + रु ··· $स्थि_3$

(४) उ + रु उ —→ $उ_2$ + रु ··· $स्थि_4$

(५) रु + रु —→ $रु_2$ ··· $स्थि_5$

इससे इस क्रियाका गत्यात्मक समीकरण

$$\frac{त\ [रु\ उ]}{त\ व} = 2\ स्थि_2 \sqrt{\frac{स्थि_1\ [रु_2]}{स्थि_5}}\ \frac{[उ_2]}{1 + \frac{स्थि_4\ [रु\ उ]}{स्थि_3\ [रु_2]}}$$

इस क्रिया पर तीव्रताका क्या परिणाम होता है यह ब्राअर्स और चैपमेन ने देखा है। उनके मतसे यह क्रिया तीव्रताके समानुपातीसे लेकर तीव्रताके वर्गमूलपाती तक बदलती है। जितनी तीव्रता ज्यादा होती है, उतनी ही गति और तीव्रता की परस्पर निष्पत्ति कम होती जाती है।

अरुणिनके साथ होने वाली बहुत सी प्रकाश रासायनिक प्रक्रियाएँ हैं। लेकिन उनका विवेचन इतना महत्वपूर्ण नहीं है। अरुणिनके साथ होने वाली कुछ क्रियाएँ भिन्न दी हैं।

१ बानजावीन तथा टोल्वीन क—दिव्यील दालचिनोनोषिल (α Phenyl cinnamonitrile) दालचीनिकाम्ल, स्टिलबीन—इनका अरुणीकरण।

२ इमलिकाम्ल और अरुणिन, निंबूइकाम्ल और अरुणिन्, मद्य और अरुणिन् तथा इसी तरह की बहुत सी क्रियाएँ।

दालचीनिकाम्ल तथा स्टिलबीन का अरुणीकरण :—

यह क्रिया बर्थुड और वेरेनेकने प्रथम अध्ययन की। यह क्रिया निम्न समीकरणसे होती है :—

(१) $\text{क}_{\text{६}}\ \text{उ}_{\text{५}}\ \text{क उ} = \text{क उ क ओ ओ उ} + \text{रु}_{\text{२}} \longrightarrow \text{क}_{\text{६}}\ \text{उ}_{\text{५}}\ \text{क उ रु} - \text{क उ रु क ओ ओ उ}$

(२) $\text{क}_{\text{६}}\ \text{उ}_{\text{५}}\ \text{क उ} = \text{क उ क}_{\text{६}}\ \text{उ}_{\text{५}} + \text{रु}_{\text{२}} \longrightarrow \text{क}_{\text{६}}\ \text{उ}_{\text{५}}\ \text{क उ रु} - \text{क उ रु क}_{\text{६}}\ \text{उ}_{\text{५}}$

बथुंड और वेरेनेक ने यह देखा है कि यह क्रियाएं नीले प्रकाशमें और कर्बनचतुर् हरिद्के घोलमें किस तरहसे होती हैं। उन्होंने यह भी देखा कि ये दोनों प्रक्रियायें एक ही समीकरण से बतलायी जा सकती हैं। जब शोषण संपूर्ण होता है तब क्रिया अरुणिन्के समाहरणके समानुपाती रहती है और दालचीनिकाम्ल तथा स्टिलबिनके समाहरण पर बिलकुल निर्भर नहीं रहती। दोनों क्रियाएं तीव्रताके वर्गमूलके समानुपाती रहती हैं। इसीलिये सम्पूर्ण शोषणके वक्त क्रिया की गति

$\frac{\text{त} (\text{रु}_{\text{२}})}{\text{त व}} = \text{स्थि ति}_{\text{०}}^{\frac{\text{१}}{\text{२}}} [\text{रु}_{\text{२}}]$ से बतलायी जाती है। जब प्रकाश शोषण कम होता है जब

$-\frac{\text{त} [\text{रु}_{\text{२}}]}{\text{त व}} = \text{स्थि ति}_{\text{०}}^{\frac{\text{१}}{\text{२}}} [\text{रु}_{\text{२}}]$ समीकरणसे गति मालूम होती है और चलन करनेके बाद

$$\text{स्थि} = \frac{\text{१}}{\text{२}(\text{व}_{\text{२}} - \text{व}_{\text{१}})} \left[(\text{स} - \text{य}_{\text{२}})^{-\frac{\text{१}}{\text{२}}} - (\text{स} - \text{य}_{\text{१}})^{-\frac{\text{१}}{\text{२}}} \right]$$

स = समाहरण (प्राथमिक या आरम्भका)

इस क्रियामें (१) प्रकाशसे अरुणिन् अणु विभाजित होता है।

(२) अरुणिन्का परमाणु दालचीनिकाम्ल या स्टिलबिनके एक अणुसे मिलकर अस्थिर एकारुणिन् यौगिक बनता है।

(३) यह एकारुणिन् अस्थिर यौगिक अरुणिन् अणुसे मिलकर द्वि अरुणिन यौगिक तथा अरुणिन् परमाणु तैयार करता है।

(४) तन्मात्राकी संख्या ३० है।

नैलिन् के साथ की प्रकाशरासायनिक क्रियाएँ

नैलिन् के साथ भी बहुत सी प्रकाशरासायनिक क्रियाएँ होती हैं, लेकिन वे इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं। नैलिन् के साथ होने वाली कुछ प्रक्रियाएँ निम्न दी हैं।

पांशुज काष्ठेत और नैलिन्, सैंधक पिपीलेत और नैलिन्, सैन्धक निम्बूएत और नैलिन्, सैन्धक सेबिकेत और नैलिन, सैन्धक इमलेत और नैलिन्, सैन्धक दुग्धेत और नैलिन्, सैन्धक सेबोनिकेत और नैलिन् , सिरकोन और नैलिन, लोहगन्धेत और और नैलिन; सैन्धक नोषित और नैलिन, उदौषिल अमिन उदहरिद् और नैलिन, उदाजीविन उदहरिद् और नैलिन, और अन्य प्रक्रियाएँ।

प्रकाशरासायनिक ओषदीकरण

उदनैलेतका ओषदीकरणः—इस क्रियाका अध्ययन प्लैटनीकौफ ने सबसे पहिले ठीक तरहसे किया। उसने यह देखा कि यह ओषदीकरण प्रकाशसामर्थ्य के समानुपाती है। इस ओषदीकरण पर नैलिनका क्या परिणाम होता है यह जाननेकी कोशिश स्ट्राशाफ़ ने की। इससे यह मालूम हुआ कि 'नै₂' यवनोंकी सहायतासे इस क्रियाकी गति बढ़ती है। बथुंड और निकोलेटके अनुसार यह ओषदीकरण दो प्रक्रियाओंसे सम्मिश्रित है और यह दोनों प्रक्रियाएँ साथ चलती हैं। उदनैलेतका ओषजन द्वारा ओषदीकरण और नैलिन्से इस क्रियाकी गति बढ़ना यह वह दो प्रक्रियाएँ हैं। इस क्रियाकी गठन समझनेके लिये उन्होंने ऐसा मान लिया कि नैलिन् अणु प्रकाश शोषणसे परमाणुमें विभाजित होता है।

(१) $\text{नै}_{\text{२}} + \text{क} = \text{२ नै}$

(२) $\text{नै} + \text{ओ}_{\text{२}} = \text{नै ओ}_{\text{२}}$

(३) $\text{नैओ}_{\text{२}} + \text{४नै}' + \text{२ उ}_{\text{२}}\text{ओ} = \text{२ नै}_{\text{२}} + \text{नै} + \text{४ उओ}$

(४) $\text{नै ओ}_{\text{२}} = \text{नै} + \text{ओ}_{\text{२}}$

(५) $\text{२ नै} = \text{नै}_{\text{२}}$

ओषजनसे, आयडोफार्म, कुनीन, सैंधक गंधित मद्यानाद्रं, द्विश्यामिन (Dicyanine) और नवश्यामिन (Neocyanine) का भी प्रकाशरासायनिक ओषदीकरण होता है।

प्रकाश रासायनिक अवकरण

पारदिक हरिद और अमोनियम काष्ठेतः—यह क्रिया अवकरणिक कहलाती है। प्रकाशरसायन शास्त्रका जिन क्रियाओंके अध्ययनसे आरम्भ हुआ उनमें यह एक है। इसका अवकरण प्राँशे ने सन् १८१५ में सबसे प्रथम देखा। अवकरणमें पारदिक हरिद का पारदस हरिद बनता है। पारदिक हरिद पानीमें घुलता है लेकिन पारदस हरिद पानीसे नहीं मिलता। इसीलिये पारदिक घोल और अमोनियमकाष्ठेत घोलको मिला कर प्रकाशमें रखते हैं, तो एक दमसे घोलमें गंदलापन आकर पारदस हरिद नीचे बैठ जाता है। इस क्रियाका उपयोग एडरने प्रकाश-क्रिया-मापक-यंत्र बनानेमें किया। यह अवकरण लोह यौगिक जैसे लोहिक हरिदकी विद्यमानता में जल्दी होता है। ओषजन की उपस्थितिमें इस क्रियाका आवेग कम हो जाता है, लेकिन जैसे जैसे लोहिक हरिदका समाहरण बढ़ता है वैसे वैसे ओषजनका परिणाम कम होते हुए मालुम होता है।

प्रकाश शोषणसे लोहिक यौगिकोंका भी अवकरण होता है। विशेष करके जब कार्बनिकाम्लके साथ यह प्रक्रिया जल्द और सुलभतासे होती हो। इसी प्रकारकी प्रकाशरासायनिक अवकरणिक तथा ओषदीकरणिक अन्य बहुत प्रक्रियाएँ हैं।

प्रकाश रासायनिक संघट्टभवन

लूथर और वीयगर्ट ने पराकासनी किरणोंमें अंगारिन (एन्थ्रसीन) का द्विअंगारिनमें संघट्ट भवन होते देखा। अंधेरेमें द्वि अंगारिन अंगारिनमें परिवर्तित हो जाता है। इस क्रियाकी गति घोलक पर निर्भर है। बानाजावीनमें यह प्रक्रिया सबसे जल्द होती है। इस क्रियाकी तन्मात्रा एक है यह बोडेंस्टाइन ने बतलाया, लेकिन वायगर्टके कार्यसे ऐसा मालूम हुआ कि यह तन्मात्रा इससे कम है जब यह संघट्टभवन पराकासनी किरणोंमें होना है तब अंगारिन से चमक प्रकाश निकलता है। कदाचित् इसीलिये तन्मात्रा घटती है। अङ्गारिनके समान ख—दारील अङ्गारिनका भी प्रकाशसे संघट्टभवन होता है। इसकी तन्मात्रा अङ्गारिन प्रक्रियासे अधिक है।

प्रकाश रासायनिक समरूपता

समदिश रूपका विपरीत रूपमें जो परिवर्तन होता है, वह प्रकाशसे और भी जल्द होता है। सेविकाम्ल वासिकाम्ल में होनेवाला समरूपिक परिवर्तन आइंस्टाइन के प्रकाशरासायनिक समसिद्धान्तका पालन नहीं करता। यह कार्य वारबुर्ग ने किया है।

उ—क—कओओउ → क—क—क ओ ओउ
‖ ‖
कओओउ—क—उ ← उ—क—क ओ ओउ

प्रकाशको एक तन्मात्रासे एकसे कम अणु विभाजित होते हैं।

इसी तरहसे पूर्व नोषोबानजाव-मद्यानाद्रं का पूर्वनोषोसो बानाजाविकाम्लमें समरूपिक परिवर्तन होता है।

गन्धकका बहुरूपिक परिवर्तन :—घुलनशील गन्धक $ग_{अ}$ का प्रकाशसे अघुलनशील गब गन्धक में परिवर्तन होता है। $ग_{अ}$ गन्धक पराकासनी किरणोंका शोषण कर लेता है। यह क्रिया अंधेरेमें उलटी दिशामें $ग^{ब} \rightarrow ग_{अ}$ होती है। इस क्रियाकी श्रेणी एकसे कम है, तथा तन्मात्रा की संख्या ०.०७ है। इस क्रियाकी गति घोलक पर निर्भर है।

प्रकाशरूपकता (Phototropy)

कुछ रवोंका रंग प्रकाशसे बदलता है। बादमें उनको अंधेरेमें रखनेसे वही रंग वापिस आ जाता है। इस क्रियाको प्रकाशरूपकता कहते हैं और यह

रवेकी स्थितिका ही वैशिष्ठ्य है। इसको रासायनिक परिवर्तन कह सकते हैं या नहीं इस बारेमें शंका है। कभी कभी इसी प्रकारकी क्रिया कुछ घोल भी बताते हैं और उनको भी इसी प्रकाशरूपकताके शीर्षक में लिया जाता है। कार्बनिक यौगिकों में यह प्रकाशरूपकता सब से अधिक पायी जाती है। फुलजिड (Fulgides) भी प्रकाश रूपकता बतलाते हैं। स्टिलबिनके यौगिकोंमें भी यह प्रक्रिया देखी गई है। समरूपकतामें शायद यौगिक की गठनमें कुछ भेद अवश्य हो जाता है। स्टाबने यह देखा कि दमकके वारेमें जो बातें सत्य हैं वही प्रकाश रूपकतामें भी लगती हैं। दमक छोटी लहरों से उत्तेजित होती है और दमक-यौगिक अपने ही आप अपना रूप परिवर्तित करते रहते हैं। तापक्रम के साथ दमक प्रकाश कम होता है और इस प्रकाश के नष्ट होनेकी गति लम्बी लहरोंसे बढ़ती है। लेकिन प्रकाश रूपकता तथा दमक एक ही यौगिकमें साथ साथ नहीं पायी जातीं, यह आश्चर्यकी बात है।

उलटी प्रकाशरूपकता:—हिलब्रान और विलसन ने ऐसा बतलाया कि दालचीनिक मद्यानार्द्रके द्विव्यील-अर्धकर्बाज़ोवोन (Phenyl semi carbazone of cinnamic aldehyde) जो प्रथम श्वेत होता है, बादमें थोड़ी देरमें प्रकाशमें रख कर अन्धेरेमें रखनेसे पीला और फिर प्रकाशमें रखनेसे श्वेत हो जाता है, इस उलटी प्रकाशरूपकताको 'तापरूपकता' कहते हैं।

प्रथम अनुत्तेजित रंगरहित अणु 'अ' पराकासनी किरणोंका शोषण करके उत्तेजित होता है। यह उत्तेजित अणु भी रंगरहित होता है। जब उसको अन्धेरेमें लाते हैं और तापक्रम बढ़ाते हैं तब उनका रंगीन 'ब' अणुमें परिवर्तन हो जाता है। प्रकाशसे वह फिर 'अ' रूपमें आ जाता है। इस तरहसे प्रकाश रासायनिक समस्थिरता स्थापित होती है।

संकीर्ण कार्बनिक यौगिकों में पायी जाने वाली प्रकाशरूपकता अकार्बनिक यौगिकोंमें जैसे खटिक और कांश गन्धिदमें भी दिखाई देती है। इनका रङ्ग प्रकाश और अन्धेरेमें भिन्न भिन्न रहता है। इस क्रियाके लिये ये यौगिक धातु यौगिक तथा गन्धक मिश्रित होना चाहिये। इन्हीं यौगिकोंसे दमक पैदा होनेके लिये भी यही बातें सत्य हैं। कार्बनिक प्रकाशरूपकता शायद रासायनिक नहीं होती लेकिन अकार्बनिक प्रकाश रूपकता अवश्य रासायनिक है।

निम्न दी हुई प्रक्रियाएँ करीब करीब ठीक तरहसे मालूम हो गयी हैं। बहुत सी प्रकाश रासायनिक प्रक्रियाएं ऐसी हैं कि जिनका अध्ययन अभी तक ठीक तरहसे नहीं हुआ है। ऐसी प्रक्रिया कर्बन तथा अकर्बन यौगिकोंमें भी पायी जाती हैं। इनका वर्णन संक्षेपतः बादमें दिया गया है।

$$२\,\text{र ह} \rightleftharpoons \text{ह}_{२} + २\,\text{र}$$

$$२\,\text{र रु} \rightleftharpoons \text{रु}_{२} + २\,\text{र}$$

$$\text{उ}_{२} + \text{ह}_{२} \rightleftharpoons २\,\text{उ ह}$$

$$\text{उ}_{२} + \text{रु}_{२} \rightleftharpoons २\,\text{उ रु}$$

$$\text{उ}_{२} + \text{नै}_{२} \rightleftharpoons २\,\text{उ नै}$$

$$२\,\text{ग ओ} + \text{ओ}_{२} \rightleftharpoons २\,\text{ग ओ}_{२}$$

$$२\,\text{ओ}_{३} \rightleftharpoons ३\,\text{ओ}_{२}$$

$$२\,\text{क ओ} + \text{ओ}_{२} \rightleftharpoons २\,\text{क ओ}_{२}$$

$$\text{ग ओ}_{२} + \text{ह}_{२} \rightleftharpoons \text{ग ओ}_{४}\,\text{ह}_{२}$$
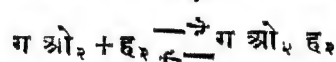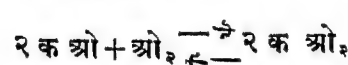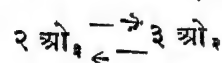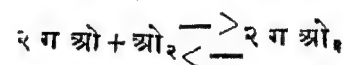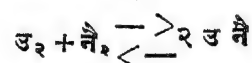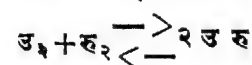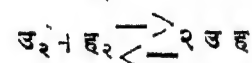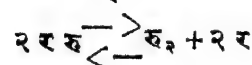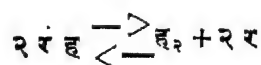
यह सब प्रक्रियाएँ दोनों दिशामें चलती हैं। लेकिन हर एक दिशामें यह प्रक्रिया होनेके वास्ते भिन्न भिन्न प्रकाश लहरोंकी ज़रूरत होती है।

ऊपर दी हुई सब प्रक्रियाएँ विपर्ययी हैं। दृश्य प्रकाशमें उ$_{२}$ और ह$_{२}$ से उदहरिकाम्ल बनता है, लेकिन पराकासनी किरणोंमें प्रक्रिया पूरी नहीं होती किन्तु समावस्था स्थापित होती है। उत्तेजक

लहरकी लम्बाई अणुको विभाजित करनेकी सामर्थ्य तथा शोषण पर भी निर्भर है। उदहरिकाम्ल या उद्अरुणिकाम्लके प्रकाश संश्लेषणके वक्त हरिन् और अरुणिन् वायु दृश्य प्रकाशका शोषण कर सकते हैं। इसीलिए दोनों प्रक्रियाएँ दृश्य प्रकाश में हो सकती हैं। लेकिन उदहरिकाम्ल तथा उद्-अरुणिकाम्लके विभाजन समय पर दोनों अम्ल दृश्य प्रकाशका शोषण नहीं करते। इसीलिये यह विश्लेषणिक प्रक्रियाएँ पराकासनी किरणोंसे होती हैं। जैसे जैसे लवणजन परमाणुका वज़न बढ़ता जाता है वैसे वैसे उसका उद्जन यौगिक अधिक विश्लेषणिक होता जाता है। उदहरिकाम्ल का पराकासनी किरणोंसे ही विश्लेषण होता है, किन्तु उद्अरुणिकाम्ल दृश्य प्रकाश में भी विभाजित होता है।

गन्धक त्रिओषिद पराकासनी किरणोंसे विश्लेषित होती है। इसका गति-स्थिरांक तापक्रम के साथ नहीं बढ़ता। तीव्रताके साथ गति बढ़ती है। इस विपर्ययी प्रक्रियाके लिये दोनों दिशामें विपर्यय होनेके वास्ते लगने वाली प्रकाश लहरें एक होती हैं या भिन्न, यह ठीक ठीक नहीं मालूम है।

त्रिओषिदका विपर्यय :—इस क्रियाकी विश्लेषक किरण वही होती हैं जिनका शोषण त्रिओषिद करता है। यह विश्लेषक किरण २६०० अ° और ६४००अ° हैं। इस क्रियाका संश्लेषण जिन लहरोंके द्वारा होता है वह दबाव पर निर्भर हैं। कम दबाव पर १९५०अ° और और अधिक दबाव पर २८०० अ° से इसका संश्लेषण होता है। यह क्रिया हर वक्त समस्थिर है। क्योंकि जिन किरणों से इसका संश्लेषण होता है उन्हींसे विश्लेषण भी होता है। किन्तु लम्बी लहरोंमें विश्लेषण सम्पूर्ण होता है। वुलफ कहता है कि जब त्रिओषिदका संश्लेषण होता है, तब 'ओ₄' तैयार होता है और यह प्रकाश का शोषण करके प्रक्रियाको शुरू कर देता है। यह तो सब ने देखा होगा कि जब पारद-दीप चलाया जाता है तो उसके पास को हवा में त्रिओषिदकी गन्ध आती है। इस क्रियाकी समस्थिरता नीचे बतलायी है :—

प्रकाश < २००० अ°

——>

३ ओ₂   २ ओ₃

<——

प्रकाश < ३१६० अ°
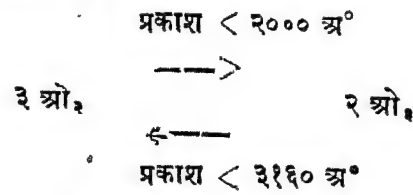
सूर्य प्रकाशसे भी त्रिओषिद तैयार होता है और हवाके १००० घन श. म. में ०·६ घ. श. म. त्रिओषिद रहता है। ओषजनसे जब त्रिओषिद बनता है तब तन्मात्रा की संख्या दो रहती है। इसका तापगुणक एकसे कम है।

गन्धकील हरिद ३०००अ° प्रकाश लहरको, गन्धकद्विओषद ३४००अ° प्रकाश लहर को और हरिन् ३४००अ° लहरको शोष लेती है। इसीलिये ३०००अ° लहरसे उसका विश्लेषण तथा ३४००अ° से संश्लेषण होता है। लेकिन २४००अ° से कुछ संश्लेषण नहीं होता। इस प्रक्रियाकी श्रेणी दो है।

गन्धक द्विओषिदका ३१३०अ° लहरसे विभाजन होता है। तथा गन्धक द्विओषिद और ओषजन से पराकासनी किरणोंमें गन्धकओषिद बनता है। उद्जनगन्धिद का उद्जन और गन्धकमें प्रकाश विश्लेषण होता है। इसकी तन्मात्राकी संख्या एक है। बहुतसे कांचके रंग प्रकाशमें रखने से बदल जाते हैं। जिन कांचोंमें मांगनीज़ रहता है उनका रङ्ग जांमुनके रंगकी तरह हो जाता है। दस्तगन्धिद प्रकाशमें काले पड़ जाते हैं। पांशुज नोषेत सूर्य प्रकाश में विश्लेषण पाता है और पांशुज हरेतके घोलसे हरिन और ओषजन वायु मिलते हैं। पराकासनी किरणोंमें पांशुज नैलेतसे नैलिन् निकलता है। लोहिक यौगिक पराकासनी किरणोंसे लोहस अवस्थामें परिवर्तित हो जाते हैं। मेजण्टा तथा हरे-नोलिन के घोल पारद दीपसे विश्लेषित हो जाते हैं। अमोनिया भी पराकासनी किरणोंसे विभाजित होता है। पांशुज

ताम्रकाष्टेत सूर्य प्रकाशमें विभाजित हो जाता है। अम्लिक अजीव अमिद् (एज़ोमाइड) विश्लेषणका अध्ययन ग्ल्यूने किया है। यह क्रिया छोटी लहरोंसे से होती है। ऊपर दी हुई प्रक्रियाके अलावा भी और अन्य बहुत प्रकाश रासायनिक अकार्बनिक प्रक्रियाएँ हैं।

प्रकाशकी अन्य कार्बनिक यौगिकों पर प्रक्रियाएं

ये सब प्रक्रियाएँ प्रकाशकी लहर लम्बाई पर निर्भर रहती हैं—जितनी लहर लम्बाई कम, उतनी ही विभाजन क्रियाकी गति तीव्र। यदि लहर लम्बाई २५०० अ° से बड़ी हो तो ओषजनके बिना प्रक्रिया नहीं होती। नीचे कुछ थोड़ी प्रकियाएँ दी जाती हैं।

प्रकाश रासायनिक क्रियाएँ

यौगिक	विभाजनसे पैदा होनेवाले पदार्थ	°/₀
सिरकाम्ल (ओषजन के बिना) पराकासनी किरणोंमें	उदजन	१३
	कर्बन द्वि ओषिद	४१
	कर्बन एकोषिद	१४
	दारेन	१३
	ज्वलेन	१९
सिरकमद्यानाद्र	उदजन	३३
	कर्बन द्वि ओषिद	५
	कर्बन एक ओषिद	३९
	ज्वलेन	२३
मद्य	उदजन	६३
	कर्बन एकओषिद	३२
	ज्वलिन	१८
सिरकोन	कर्बन एक ओषिद	४९
	दारेन	५
	ज्वलेन	४६
मधुरोल १०°/₀ जलीय घोल	पिपीलमद्यनाद्र, अम्ल (यह प्रक्रिया उदजन परौषिदसे जल्द होती है)	

यौगिक	विभाजनसे पैदा होनेवाले पदार्थ
मैलाकाइट हरा (सूर्य प्रकाशमें)	पिपीलमद्यानाद्र और अमिन
संपृक्त द्रव उदकर्बन	उदजन, सिरकीलीन, और ज्वलिन,
खटिक दुग्धेत	कर्बन एक ओषिद, उदजन, दारेन और ज्वलेन
द्विसिरकिल	ज्वलेन, कर्बन एक ओषिद
कर्बन द्वि गन्धिद	सिरकमद्यानाद्र, सिरकाम्ल गंधक
मूत्रिया, अमीन	अमोनिया और अमोनियम नोषित
अम्रिल मद्यानाद्र	उदजन ३७°/₀, कर्बन द्विओषिद ६°/₀, कर्बन एक ओषिद ३७°/₀, नवर्नातेन २०°/₀

शर्कराओंका विश्लेषण :—यदि द्राक्षोजके जलीय-घोलको ३०००अ° तककी किरणोंसे प्रकाशित किया जाय तो उसका कर्बन एक ओषिद और उद्जनमें विभाजन होता है। यदि प्रकाश लहर २५०० अ° से छोटी हो तो दारेन और कर्बन द्विओषिद मिलता है। सब मद्यनार्द्र शर्कराओंका विश्लेषण ३०००अ°-२५००अ° तककी प्रकाश किरणों से होता है। कीतोनिक शर्कराएँ सूर्य प्रकाश तथा पराकासनी विकिरणोंसे कर्बन एक ओषिदमें विभाजित हो जाती हैं। शुद्धमद्यानार्द्र शर्कराएँ इतनी जल्द नहीं विभाजित होतीं। ३००० से २५०० अ° तककी प्रकाश लहरोंका उन पर कुछ असर नहीं होता।

कर्बनिक नैलिदके प्रकाश विश्लेषण के लिये ओषजनका अस्तित्व ज़रूरी है ऐसा स्टॉब और श्मिटका कहना है। लेकिन जाँब और इम्शविलर ने तो ओषजन के बिना ज्वलील नैलिदको नैलिन्, ज्वलेन, ज्वलिलिन और उद्जनमें विभाजित होता देखा है।

प्रकाशोत्तेजन :—यदि कोई प्रक्रिया प्रकाशसे उत्तेजित न होती हो तो उसमें अन्य पदार्थ मिला कर हम उत्तेजित कर सकते हैं। इसमें यह पदार्थ आप प्रकाशका शोषण करके वह सामर्थ्य प्रक्रिया को देता है और इस तरहसे वह प्रक्रिया प्रकाशसे शुरू हो जाती है। इस तरहकी उत्तेजनाको प्रकाशोत्तेजन और जिससे उत्तेजना होती है उस पदार्थको प्रकाशोत्तेजक कहते हैं। कभी कभी प्रकाशोत्तेजन अन्य प्रकार भी होता है। इसमें प्रक्रिया प्रकाश रासायनिक ज़रूर होती है लेकिन वह एक विशिष्ट लहर-लम्बाईके प्रकाशसे। अन्य प्रकाशसे वह नहीं होती। यदि इसमें ऐसा पदार्थ मिलाया जाय, जो अन्य प्रकाशका शोषण करता हो तो वही प्रक्रिया अब इस प्रकाशसे भी शुरु होती है। इस प्रकारकी प्रकाशोत्तेजक प्रक्रियाओंके बारेमें दो बातें जानना ज़रूरी है। एक तो प्रक्रियाकी गठन, जिसके कारण प्रकाशोत्तेजन होता है और दूसरी, उस क्रियाका गत्यात्मक विवेचन। पेड़ों का प्रकाश संश्लेषण क्लोरोफिल (पर्णहरिन्) उत्तेजक की सहायतासे होता है। प्रकाश लेखन प्लेट यदि हरे या लाल रङ्ग से उत्तेजित करने हों तो उनमें रंगीन पदार्थ मिला कर यह हो सकता है।

हरिन् वायुसे प्रकाशोत्तेजन :—

त्रिओषिदकी विश्लेषणिक गति हरिन् वायुके अस्तित्वसे बढ़ती है, तथा यह गति हरिन् वायुके प्रकाश शोषण पर निर्भर है। जितना प्रकाश शोषण अधिक होता है उतनी गति बढ़ती है। इस प्रक्रिया की तन्मात्रा दो हैं। इस क्रियाकी गठन बोनहोफर के मतानुसार निम्न है :—

(१) $ह_२' + ओ_३ \longrightarrow ह_२ + ओ_२ + ओ$

$ओ + ओ_३ \longrightarrow २\ ओ_२$

(२) $ह_२' + ओ_३ \longrightarrow ह_२ ओ' + ओ_२$

$ह_२ ओ' + ओ_३ \longrightarrow ह_२ + २\ ओ_२$
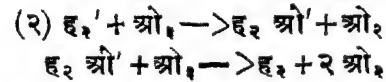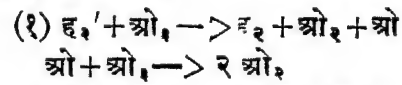
यदि प्रक्रिया उसी प्रकाश शोषणसे हो जो त्रिओषिदसे होता है तो गठन नीचे दिये अनुसार होती है।

(१) $ओ_३ + का = ओ_३'$ (उत्तेजित)

(२) $ओ_३' + ह_२ = ह\ ओ + ह\ ओ_२$

(३) $ह\ ओ_२ + ओ_३ = ह\ ओ_३ + ओ_२$

(४) $ह\ ओ_३ + ओ_३ = ह\ ओ + २\ ओ_२$

(क) (५) $ह\ ओ_३ + ह\ ओ_३ = ह_२ + ३\ ओ_२$

(ख) (५) $ह\ ओ_३ + ह\ ओ_३ = ह_२\ ओ_६$

(६) $ह\ ओ + ह\ ओ = ह_२ + ओ_२$
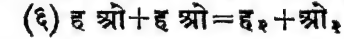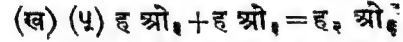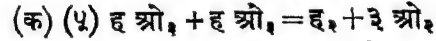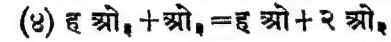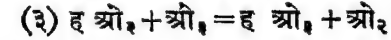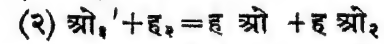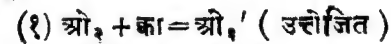
इस गठनके अनुसार प्रति दो तन्मात्रासे एक हरिन षष्ठोषिद अणु बनता है। प्रयोगसे भी यह बात ठीक मालूम होती है।

जलका प्रकाश संश्लेषण :—पानी ओषजन और उद्जन के संयोग से बनता है। यह प्रक्रिया पराकासनी किरणोंसे ही होती है। अधिक लम्बी लहरोंसे यह नहीं हो सकती। यदि हरिन् वायुको ओषजन और उद्जनके मिश्रणमें मिलाया जाय तो यही क्रिया दृश्य प्रकाशमें होने लगती है। क्योंकि हरिन् वायु दृश्य प्रकाशका शोषण कर लेती है,

और इकट्ठीकी हुई प्रकाश सामर्थ्य ओषजन अणुको देकर उसको उत्तेजित करती है। यह उत्तेजित अणु उदजन से मिल कर दृश्य प्रकाश में भी जल बनाता है। इससे यह मालूम होता है कि जब ओषजन उत्तेजित होता है तब उदजन उससे संयुक्त हो जाता है। इसीलिये जब उदजन और हरिन्से उदहरिकाम्ल का संश्लेषण किया जाता है तब ओषजन मिलाने से उदहरिकाम्ल बननेकी गति कम हो जाती है। क्योंकि अब मिलाया हुआ ओषजन हरिन् से प्रकाश सामर्थ्य पाकर उत्तेजित होता हुआ उदजनसे मिलता है और इसी तरह हरिनसे मिलनेवाले उदजनका समाहरण घटता है। प्रक्रिया इसी कारण कम होती है।

हरिन् एकोषिदका विश्लेषण :—यह विश्लेषण भी हरिन् वायुसे बढ़ता है। इसमें एक बात महत्व की है और वह यह कि हरिन् एकोषिदका शोषण किरण चित्र तथा हरिनका शोषण किरण चित्र करीब करीब एक ही है। हरिन तथा हरिन एक-ओषिद् ने अलग अलग कितना प्रकाश शोषण किया यह मालूम करके इस प्रक्रिया की गति निकाली गयी, तब यह देखा गया कि प्रक्रियाकी गति हरिन एक-ओषिदके समाहरण पर कुछ भी निर्भर नहीं है। इस प्रक्रियाकी तन्मात्राकी संख्या दो है। इस क्रियाको प्रकाशित करनेसे हरिन द्वि-ओषिद पैदा होता है और इसका समाहरण स्थिरत्व पाता है। इससे ऐसा मालूम होता है कि प्रक्रियामें उत्तेजित अणु कार्यमें लाये जाते हैं। बागनरके अनुसार प्रकाश शोषणसे हरिनके परमाणु बनते हैं और प्रक्रियामें हरिन द्वि ओषिद तैयार होता है। गठनमें भी तन्मात्रा की संख्या दो होती है। यह गठन नीचे दी है।

(१) $\text{ह}_२ + \text{का} = २\ \text{ह}$ (२) $\text{ह} + \text{ह}_२\ \text{ओ} = \text{ह}_२ + \text{ह ओ}$ (३) $\text{ह ओ} + \text{ह ओ} = \text{ह}_२ + \text{ओ}_२$

वायगर्ट कहता है कि हरिन वायु प्रकाश शोषण करनेके बाद समवार्णिक विकिरण बाहर फेंक सकता है फिर अन्य हरिन अणु यह बाहर फेंका हुआ प्रकाश सोख लेता है और फिर उससे भी यही प्रक्रिया होती है इस तरहसे समवार्णिक विकिरण बाहर फेंकनेका कार्य तब तक चलता है जब तक इस विकिरणका शोषण त्रिओषिद नहीं करता।

नोषजन पञ्चोषिदका विश्लेषण :—यह प्रक्रिया नोषजन द्विओषद मिलाये बिना दृश्य प्रकाशमें नहीं होती। यहां पर नोषजन द्विओषिद प्रकाशोत्तेजक है। इसका शोषण नीले विभागमें होता है। इसका विश्लेषण ४६०० अ° लहर लम्बाईसे होता है और तन्मात्राकी संख्या १८ है। शायद प्रथम नोषजन द्विओषिदके अणु प्रकाश शोषणसे उत्तेजित होकर नोषजन पंचोषिदके अणु पर गिर पड़ते हैं और इसी तरह नोषजन पंचोषिद का विश्लेषण होता है। नारिशके अनुसार प्रक्रियाकी गठन कुछ भिन्न है। इस गठनसे नोषजन द्विओषिद पहिले ओषजन और नोषिकोषिदमें विभाजित होता है। यह क्रिया प्रकाश शोषणसे होती है। बादमें नोषिकोषिद नोषजन पंचोषिदसे मिल कर उसका विश्लेषण होता है। यह क्रिया केवल तापक्रिया है।

(१) $२\ \text{नो ओ}_२ + \text{का} = २\ \text{नो ओ} + \text{ओ}_२$

(प्रकाशरासायनिक प्रक्रिया)

(२) $\text{नो ओ} + \text{नो}_२\ \text{ओ}_५ = ३\ \text{नो ओ}_२$

(ताप रासायनिक प्रक्रिया)

यदि यह गठन ठीक हो तो अंधेरेमें नोषिक ओषिद और नोषजन पंचोषिद मिलानेसे प्रक्रिया काफ़ी जल्द होनी चाहिये। इसकी खोज बुसीनेकी और देखा कि यह बात सत्य है। यही विश्लेषण नोषजन परोषिदके साथ भी होता है। इस प्रक्रिया की गठन भी ऊपर बताये अनुसार ही है। इस प्रक्रियामें आइन्स्टाइन के प्रकाश रासायनिक सम सिद्धान्तका पालन नहीं होता। एक प्रकाशमात्रासे कई अणुका विश्लेषण होता है। ऐसा देखा गया है कि इस विश्लेषणमें यवन भी पैदा होते हैं।

कर्बनत्रिहरो अरुणिदका ओषदीकरण :—यह प्रक्रिया अरुणिन्से उत्तेजित होती है। जब कर्बनत्रिहरो अरुणिद्को ओषजन और अरुणिन्के साथ प्रकाशित करते हैं, तब इसका ओषदीकरण नीचे दिये हुये समीकरणसे बतलाया जाता है।

२ क ह$_{३}$ रु+ओ$_{२}$ —> २ क ओ ह$_{२}$ + ह$_{२}$ + रु$_{२}$
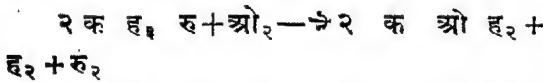
इस प्रक्रियाकी गति अरुणिन् द्वारा शोषित प्रकाशकी सामर्थ्य पर निर्भर है। प्रक्रियाकी तन्मात्रा एक है। इस प्रक्रियामें प्रकाश शोषणसे उत्तेजित अरुणिन् अणु तैयार होकर ओषजन अणु पर गिरते हैं और उसको उत्तेजित करके क्रिया शुरू होती है।

सेविकाम्ल-वासिकाम्ल विपर्यय :—सेविकाम्लका जलीय घोल थोड़ेसे वासिकाम्लमें विपर्यय पाता है। यह प्रकाशोत्तेजक प्रक्रिया अलग तथा द्विज्वलील सम्मेलोंके साथ भी अध्ययनकी गयी है। एगर्टने द्विज्वलील सेविक सम्मेल के द्विबन्ध के अरुणाकरणका अध्ययन किया है। जब उसका वासिक सम्मेलमें विपर्यय होता है तब ७००० कलारी ताप निकलता है। उसकी तन्मात्राकी संख्या २८५ है। यह तन्मात्रा तीव्रता पर निर्भर नहीं है। एगर्ट कहता है, कि इस प्रक्रियामें प्रकाशसे उत्तेजित अणु तैयार होते हैं। लेकिन हर्जफेल्ड तथा बथुंड ने यह बतलाया है कि, प्रक्रियाकी गठन समझनेके लिये प्रकाशसे परमाणु बनते हैं ऐसा समझना ज़रूरी है।

प्रकाशोत्तेजक पिनाकील लवण :—(uranyl salts)

काष्ठिकाम्ल का विश्लेषण :—पिनाकील लवण बहुत सी प्रक्रियाओंमें प्रकाशोत्तेजकका कार्य करते हैं। पिनाकील लवण (पि ओ$_{२}$) पीले होते हैं। उनमें दमक रहती है, और नीली तथा पराकासनी किरणोंसे ओषदीकरणीय (oxidisable) पदार्थोंके साथ अवकृत होते हैं। पिनाकील गन्धिदका अवकरण पराकासनी किरणोंसे तथा मद्य और दुग्धिकाम्लसे होता है। कभी कभी प्रकाशोत्तेजन क्रियामें खुद (पि ओ$_{२}$") पिनाकील यवन का अवकरण होकर वह पिनाकस अवस्थामें (uranous) बदल जाता है। काष्ठिकाम्लके विश्लेषणमें पिनाकील लवण कार्यमें लाये जाते हैं। इस विभाजनमें काष्ठिकाम्लसे कर्बन द्विओषिद तथा कर्बन एक ओषिद और पिपीलिकाम्ल तैयार होते हैं। प्रक्रियामें पिनाकिल का पिनाकस अवस्था में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन जरूर होता है। इस प्रक्रिया की गति सूर्यप्रकाश में पिपीलिकाम्लके समाहरण पर निर्भर नहीं है, तथा तापक्रम बढ़ानेसे भी कुछ अधिक फरक नहीं पड़ता। यदि अम्ल या क्षार पदार्थ पिपीलिकाम्लमें मिलाये जायँ तब भी जब तक घोल अम्ल है, गतिमें कुछ फरक नहीं होता। यदि प्रकाशोत्तेजक पिनाकील लवणका समाहरण बढ़ाया जाया तो क्रियाकी गति समाहरणके साथ बढ़ती चली जाती है। यदि प्रकाशोत्तेजक पिनाकील गन्धेत (sulphate) हो तो गति तापक्रमके साथ नहीं बढ़ती किन्तु स्थिर रहती है। दुग्धिकाम्लका भी विश्लेषण पिनाकील लवणोंसे होता है और इस प्रक्रियाका बर्ताव भी ऊपरके पिपीलिकाम्लके विश्लेषणके समान है। इसकी गति तापक्रम तथा दुग्धिकाम्लके समाहरण पर निर्भर नहीं है, किन्तु पिनाकील लवणके समाहरणके साथ बढ़ती है।

पिपीलिकाम्ल का भी विश्लेषण पिनाकील लवणोंसे होता है। और भी कार्बनिकाम्लोंका विभाजन इन लवणोंसे होता है। इन सब प्रक्रियाओंमें कर्बन द्विओषिद निकलता है।

क उ$_{३}$ क ओ ओ उ —> क उ$_{४}$ + क ओ$_{२}$

क$_{२}$ उ$_{५}$ क ओ ओ उ —> क$_{२}$ उ$_{६}$ + क ओ$_{२}$

क$_{३}$ उ$_{७}$ क ओ ओ उ —> क$_{३}$ उ$_{८}$ + क ओ$_{२}$

क ओ ओ उ क उ$_{२}$ क उ$_{२}$ क ओ ओ उ —> क$_{२}$ उ$_{५}$ क ओ ओ उ + क ओ$_{२}$
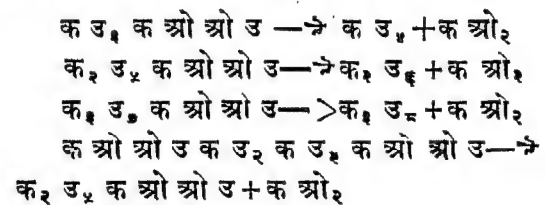
बाउरके विचारसे विद्युत विश्लेषणिक प्रक्रिया और इस प्रकारकी प्रक्रिया एक ही तरहकी है।

लोहिक यवनका लोहसमें परिवर्तन होता है। यह प्रक्रिया प्रकाश रासायनिक भी है। इसीलिये लोहिक लवण प्रकाशोत्तेजकके कार्यमें लाये जाते हैं पारदिक हरिद और अमोनियम काष्ठेतकी प्रक्रियाकी गति लोहिक हरिदसे बढ़ती है। दस्त ओषद भी प्रकाशोत्तेजक है। रंगीन पदार्थ भी प्रकाशोत्तेजक हो सकते हैं। पारद वायु भी यह कार्य करता है। उदजन पारद वायुसे उत्तेजित होता है। इस तरह से बहुत से प्रकाशोत्तेजक प्रकाशरसायनमें कार्य में लाये जाते हैं। इन सबमें यह बात महत्वकी है कि वे प्रकाशसे स्वयं अवकरण पाते हैं और फिर पूर्वरूपमें पानेके लिये उनका ओषदीकरण होता है। इस वक्त जिसके साथ वह मिलाये गये थे उसका अवकरण या विश्लेषण होता है और तद्वारा प्रकाशोत्तेजक पूर्वरूपमें आकर फिर इसी तरह क्रिया शुरू होती है।

परमाणुवाद और उसका विस्तार

[ले० श्रीआत्माराम एम० एस-सी०]

पिछले पृष्ठोंमें यह बताया जा चुका है कि किस प्रकार लैवाशियेके नये सिद्धान्तों से रासायनिक जगतमें क्रान्ति उत्पन्न हुई। यद्यपि पूर्णरूपसे देखा जाय तो उस समयको गैसोंका काल कहा जा सकता है, क्योंकि मुख्य मुख्य गैसें उसी समयमें बनाई गईं। इसके पश्चात् वह समय आया जब कि वैज्ञानिकों की दृष्टि प्रकृति रचना पर आकर्षित हुई। साथ ही साथ तत्वोंके मिलनेके और यौगिकोंके संगठनके सम्बन्ध निकाले गये। इन सब अनुसन्धानों ने रसायन विद्याको जो कि अभी अधेड़ दशामें थी एक विशेष रूप दिया। इस समयमें रासायनिक विषयोंमें गणित और भौतिकके पूरे पूरे प्रयोग करनेकी चेष्टाकी गई और अनेकानेक परिणामात्मक योग किये गये। इस कालके मुख्य व्यक्तियों का जीवन यहां पर संक्षिप्त रूपमें दिया जायेगा; जैसे जान डाल्टन, लुई गेलुसेक, लुई थेनार्ड, अनेडे अवेगाड्रो, और लुई प्राउट।

जान डाल्टन

(१७६६—१८४४)

रसायनके इतिहासमें डाल्टनका नाम उच्चकोटि के सिद्धान्तियोंमें लिया जा सकता है। यह अपने समयका एक मुख्य सैद्धान्तिक पुरुष हुआ है। डाल्टनका जन्म ६ सितम्बर १७६६ में कम्बरलैंडके पास ईग्लफ़ोल्ड नामक ग्राममें हुआ। डाल्टन ने किसी कालेज या बड़े विश्व विद्यालयमें शिक्षा नहीं पाई। केवल ११ वर्षकी अवस्था ही में डाल्टन ने स्कूल छोड़ दिया। इसके एक वर्ष पश्चात् उसी स्कूलमें अध्यापक का कार्य्य करने लगा। यहां दो वर्ष रह कर केण्डलके स्कूलमें चला गया। इस समय उसने अपने बचे हुये समयका पूरा पूरा लाभ उठाया। अर्थात् लेटिन, यूनानी इत्यादि भाषाओंका बोध किया। इसके पश्चात् डाल्टन मानचेस्टरमें रहा और कभी कभी उसने ग्लासगो और लन्दन इत्यादिमें भी व्याख्यान दिये।

डाल्टनका नाम रसायनका प्रत्येक विद्यार्थी जानता है, और जब तक रसायन विद्या जीवित है, उसके नाम की धूम मची रहेगी। प्रकृति को बनावट पर सबसे पहिले दृष्टि डालने वाला डाल्टन ही था। यद्यपि डाल्टनसे पहिले महर्षि कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शनमें प्रकृतिकी बनावट परमाणुओं से दिखाई है तो भी वर्तमान रासायनिक जगत्को परमाणुका ज्ञान देने वाला डाल्टन ही है। उसने अपना एक नया सिद्धान्त बनाया जिसको उसके नाम पर "डाल्टन का परमाणुवाद" कहते हैं। उसकी मुख्य बातें यह हैं:—

१ प्रकृति उन छोटे छोटे कणोंकी बनी हुई है, जो किसी भी रासायनिक क्रियासे विभाजित नहीं किये जा सकते। इनका नाम "परमाणु" है।

२ प्रत्येक तत्वके सब परमाणुओंका स्वभाव, भार, आकार इत्यादि एक ही होता है, किन्हीं भी दो तत्वोंके परमाणु एकसे नहीं हो सकते।

३ जब कभी दो तत्व मिलते हैं, तब प्रत्येक तत्वके परमाणु इस क्रियामें भाग लेते हैं।

इन मुख्य बातोंको आधार मान कर डाल्टन ने अपना सिद्धान्त रचा और इसको सहायता से प्रत्येक रासायनिक क्रियाको समझानेकी चेष्टा की। इस सिद्धान्तमें कोई मुख्य प्रयोगिक अनुसन्धान नहीं किये थे; केवल दिमाग़से ही सब बातें उत्पन्न हुईं। रासायनिक क्रियाके नियमोंमें परमाणुवादके प्रयोग आगे दिखाये जायेंगे।

दूसरा मुख्य कार्य्य जो डाल्टन ने किया वह परमाणु-भार पर था। जिस समय डाल्टन ने यह सिद्धान्त रक्खा था, वैज्ञानिक केवल जलका ही ज्ञान रखते थे। उनको यह ज्ञात था कि जलके भीतर ओषजनका भार उद्जनसे आठ गुणा है। उस समय यह कोई नहीं कह सकता था कि जल

का सूत्र क्या होगा डाल्टन ने सीधा साधा ओ उ मान लिया और उदजनको आधार मान कर अथवा उदजनका परमाणु-भार १ मान कर ओजषनका परमाणु भार ८ रक्खा। इसी प्रकार अमोनिया को नो उ का सूत्र देकर नोषजनको ४·५ का परमाणु-भार दिया। इसी प्रकार और बहुतसे यौगिकोंको लेकर तत्वोंके परमाणु-भार निकाले। पाठक देखेंगे कि डाल्टनके और इस समयके परमाणु-भारोंमें केवल गुणक का ही भेद है। उसका कारण सूत्रोंका ठीक विदित न होना है। कुछ ही क्यों न हो, यह अनुसन्धान रसायन के लिये अति ही लाभदायक सिद्ध हुआ।

डाल्टन ने रसायन-प्रक्रियाके नियम निकालने में भी मुख्य भाग लिया। यदि नोषजनके ओषिदों पर दृष्टि डाली जाय, तो एक अद्भुत बात मालूम होती है। यदि उनके सूत्र लिखें जैसे कि नो$_2$ओ, नो ओ, नो$_2$ ओ$_3$, नो$_2$ ओ$_4$, नो$_2$ ओ$_5$ तो पता लगेगा कि प्रत्येक नये यौगिकमें ओषजनका एक परमाणु बढ़ता जाता है। डाल्टन ने बताया कि यदि नोषजनको मुख्य तत्व मान कर इन सब यौगिकोंमें ओषजनकी संख्या निकाली जाय जो नोषजनकी दी हुई संख्यासे मिलती हो, तो ओषजन की संख्याओंमें एक अद्भुत समानुपाती सम्बन्ध मिलेगा अथवा यह समानुपात सर्वदा पूरी पूरी संख्या होगी, भिन्न नहीं हो सकती। यह बात प्रत्येक तत्वके यौगिकोंके साथ देखी जा सकती है, जैसे कर्बनके दोनों ओषिद। यदि कर्बन एक भार लिया जाय तो कर्बन एकओषिद और द्विओषिदमें ओषजनका अनुपात १:२ का मिलेगा, १:१$\frac{1}{3}$, १:१$\frac{3}{4}$ का नहीं मिल सकता। इसी कारण यह बात एक नियमके रूपमें आ गई है। पाठक देख सकते हैं। कि यह नियम परमाणुवादके आधार पर कितनी सरलता से सिद्ध होता है। ऊपर दिये तीसरे नियमके अनुसार रासायनिक क्रिया सर्वदा परमाणु में होती है। पहिले नियमके अनुसार एक परमाणु दो भागोंमें तोड़ा नहीं जा सकता। इसलिये जब कभी कोई दूसरा यौगिक बनेगा तो कमसे कम एक परमाणु अवश्य उसमें बढ़ना चाहिये। इसी कारण जब उनमें एकसे अधिक यौगिक बनता है तो बढ़ने वाले तत्वकी संख्यामें पूरा पूरा समानुपात होना चाहिये। इस प्रकार जान डाल्टन अपनी आयु भर विज्ञानके विस्तारकी भरसक चेष्टा करता रहा। अन्त तक वह अपने वैज्ञानिक विचारोंसे ओत प्रोत रहा। डाल्टनको अन्तरिक्ष विज्ञान या मिट्रीयालोजी का बड़ा शौक था। वह प्रत्येक वर्ष इस विषयकी रिपोर्ट दिया करता था। मानचेस्टरमें २७ जुलाई १८४४ को डाल्टनकी मृत्यु हुई।

अमेडे अवेगाड्रो
(१७७६—१८५६)

अवेगाड्रो का जन्म १७७६ में इटलीके एक छोटेसे नगरमें हुआ था। यद्यपि बहुतसे लोगों ने अवेगाड्रोका बाल जीवन मालूम करनेकी चेष्टा की है परन्तु इस विषयमें कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। वह बहुत दिनों तक ट्यूरिनके विश्वविद्यालयमें भौतिक शास्त्रका मुख्य अध्यापक रहा। १८११ में अवेगाड्रो ने अपना सिद्धान्त स्थानीय पत्रिकामें छपवाया। वह सिद्धान्त यह है कि "यदि दो भिन्न गैसोंको बराबर आयतनमें लिया जाय, और उनका तापक्रम और दबाव भी समान रक्खा जाय, तो उनमें बराबर बराबर अणु होंगे।" पाठकोंको विदित होगा कि केवल इस सिद्धान्त के ही कारण उसका नाम विख्यात नहीं है परन्तु अवेगाड्रो ने ही पहिली बार अणु और परमाणुकी परिभाषा की और उनका अन्तर बतलाया। उसने बतलाया कि डाल्टनके परमाणु भी सबसे छोटे छोटे कण नहीं है बल्कि यह भी किसी और छोटी वस्तुसे बने हैं। मान लीजिये, आप बिल्लौर पत्थर लें। इसका भी सबसे छोटा कण (डाल्टन की भाषा में) अविभाजित नहीं है। यह भी तीन प्रकारके कणों ने बना है। इस प्रकार अवेगाड्रो ने परमाणु और अणुओंकी ठीक ठीक व्याख्या दी। उसने डाल्टनके परमाणुओं

का अणु नाम रक्खा। यदि यह मान लिया जाये तो गेलुसाक का नियम जो आगे बताया जायगा ठीक सिद्ध हो जाता है। डाल्टन ने मरते समय तक भी इस सिद्धान्त को नहीं माना और इसके विरुद्ध ही रहा। परन्तु सन् १८६० में इटलीके प्रो० कैनीज़ारो ने इस सिद्धान्तको जो ५० वर्ष तक बेसुध पड़ा रहा था जगानेका उद्योग किया, और बताया कि किस प्रकार इसके आधार पर रसायनको ठीक रूप दिया जा सकता है और परमाणु भार इत्यादि निकाले जा सकते हैं। जब जनेवामें बड़े बड़े रसायनज्ञोंकी प्रो० डूमाके सभापतित्वमें सभा हुई, तब कैनीज़ारो ने इस सिद्धान्त पर विज्ञापन छपवा कर बटवाये। विश्व विख्यात रसायनज्ञ लोथर मेयरको भी एक पर्चा मिला। उसने पढ़ा तो उसके महत्वको जाना और इस सिद्धान्तका भरपूर समर्थन किया। आजकल यह रसायन की एक कुंजी है। यदि यह खो जाती, तो रसायन एक कोठरीसीमें पड़ा रहता। सब परमाणु भार व अणु भार इसीके आधार पर निकाले गये हैं। यों तो प्रत्येक रसायनज्ञ रसायनको अपना ऋणी बना जाता है, पर अवेगाड्रो ने तो इसकी जड़ ही को जमाया है। उसका ऋण तो एक अद्भुत ही प्रकारका है।

जासेफ लुई गेलुसाक

(१७७८—१८५०)

गेलुसाकका जन्म १७७८ में सेण्ट लेनार्ड में हुआ। उसका पिता फ्रांस सरकार में न्यायाधीश था। गेलुसाक अपने पिताके कार्यकी अपेक्षा विज्ञानमें अधिक रुचि प्रगट करता था। इस कारण वह फ्रांसके ही पोलीटेकनीक स्कूल में भर्ती होगया। अपनी बुद्धिके कारण २२ वर्ष की आयु में ही विख्यात रसायनज्ञ बरथोले ने उसे अपना सहकारी बना लिया। उसके कार्यकी बुद्धिमत्ता को देखकर बरथोले स्वामीसे उसका परम मित्र बन गया।

प्रारम्भसे ही गेलुसाक की रुचि भौतिककी ओर अधिक रही। इस कारण उसने गैसोंके भौतिक स्वभाव पर खोज आरम्भ कर दी। एक बार वह गुब्बारेमें बैठकर २०,००० फुट ऊंचा गया और वहाँके वायुमंडलको परीक्षा की, वहाँको गैसें इकट्ठा करके लाया। इन सबके उसने भौतिक स्वभाव विदित किये।

जिस समय डाल्टन ने अपना परमाणुवाद रक्खा, उसी समय १८०८ में गेलुसाक ने परमाणु-भार के विषयमें अपने विचार छपवाये। सन १८०२ उसने एक नई बात निकाली जिसमें उसने दिखलाया कि "यदि किसी गैसका तापक्रम १° शतांश बढ़ाया जाये तो इस प्रकार आयतन उस आयतनसे जो कि वह ०°शतांश पर रखती है $\frac{१}{२७३}$ गुना बढ़ जाता है"। इस नियमको गेलुसाक नियम कहते हैं परन्तु गेलुसाक ने इसका श्रेय चार्ल्स को भी दिया। इसलिये यह नियम दोनों व्यक्तियोंके नाम पर कहलाता है।

गेलुसाक ने अपने सहकारी हमबोल्टके साथ गैसोंके स्वभाव पर बहुत कार्य्य किया। १८०५ में इन दोनों ने ओषजन और उद्जनके यौगिक अनुपात निकालनेकी चेष्टाकी, और बहुत कुछ कार्य्य करने के पश्चात् यह बताया कि चाहे कितनी ही ओषजन और उद्जन ली जावे इन दोनोंका आयतन १:२ के अनुपातमें मिलता है, अर्थात् ओषजनकी एक घन शतांशमीटर उद्जनको २ घन शतांशमीटरसे मिलती है। ऐसे साधारण सम्बन्ध के होनेसे गेलुसाककी रुचिमें कुछ और उत्तेजना उत्पन्न हुई। उसने और कई गैसों की छानबीन की। १८०८ में उसने बतलाया कि उदहरिकाम्ल गैस का १०० घ. श. म. अमोनियाके १०० घ. श. म. से ही मिल सकता है। इसी प्रकार नोषजन के ओषिदोंमें भी सम्बन्ध निकाला गया। अमोनिया नोषजनके १ घ. श. म. उद्जनके तीन घ. श. म. मिलनेसे ही बन सकती है। इस प्रकार इन सब प्रयोगोंके आधार

पर गेलुसाक ने अपना नियम रक्खा, "गैसोंमें रासायनिक प्रक्रिया साधारण और पूर्ण अनुपातमें होती है, और जब कभी आयतन घटता है तो वह भी पूर्ण अनुपातमें ही घटता है," जैसे उदहरिकाम्ल गैसके १०० घ. श. म. अमोनियाके १०० घ. श. म. से मिल कर अमोनियम हरिद्के १०० घ. श. म. पैदा करते हैं।

जिस समय गेलुसाक ने यह नियम रक्खा था, परमाणु भारका केवल नाम ही नाम सुना जाता था। जब एक बार रासायनिक प्रक्रियामें काम आने वाले आयतनों का अनुपात विदित हो गया तो उनकी सहायतासे "संयोग भार" की समस्या भी सरल हो गई। गेलुसाकके नियमसे यह फल निकलता है कि गैसोंके बराबर आयतनका भार संयोग भारसे सरल अनुपात रखता है, क्योंकि गैसोंमें दो परमाणुओं के बीचमें काफ़ी जगह होती है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक गैसके परमाणु बराबर जगह घेरते हैं। इस प्रकार दो गैसोंके बराबर आयतनके भार उनके परमाणु भारसे पूर्ण समानुपात देखते हैं। इस प्रकार गेलुसाक ने अपने हो आप परमाणु भार निकाल डाले। यद्यपि यह अनुसन्धान डाल्टनके सिद्धान्तके लिये उपयोगी है परन्तु डाल्टन ने इसको नहीं माना क्योंकि वह समझता था कि प्रत्येक गैसके परमाणु भिन्न भिन्न होते हैं।

इन सब अनुसन्धानोंसे गेलुसाककी भौतिक गणितिक रुचिका पता चलता है। पाठक जान गये होंगे कि उस समयमें ऐसे अनुसन्धान करना कैसा कठिन कार्य्य था। गेलुसाकका नाम इन नियमोंसे संसार भरमें जीवित है। गेलुसाक ने बहुत कुछ कार्य अपने मित्र थेनार्ड के साथ किया जिसका वर्णन आगे दिया जायगा। स्वभाव से गेलुसाक कुछ कम बोलने वाला व्यक्ति था परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह रूखा था। कदापि नहीं, वह प्रत्येक मनुष्यके लिये जो कुछ भी सहायता कर सकता करता था। अपनी चतुरता और बुद्धिके कारण गेलुसाक बड़े बड़े पदों पर सुशोभित रहा। सन १८०६ में फ्रांसकी एकेडमीका सदस्य चुना गया और कुछ दिनों पालीटेकनीक स्कूल में आचार्य रहकर १८२८ ई० में सारबोनमें प्रोफेसर नियुक्त हुआ इसके पश्चात् १८३२ में रसायनका प्रोफेसर होकर "जार्डिन डे प्लान्स" (Jardine des Plantes) को भेजा गया। सन १८३९ में फ्रांस सरकार ने उसको लार्डकी पदवी दी। सन १८५० में सर्वदाके लिये इस संसारको छोड़ कर परलोक सिधारा।

लुई जैक्स थेनार्ड
(१७७७—१८५७)

थेनार्डका जन्म १७७७ ई० में फ्रांसमें हुआ। उनके माता पिता निर्धन थे, परन्तु उनके पास इतना धन अवश्य था जिसमें कि वह अपने पुत्र को पढ़ा सकें। छोटी ही अवस्थामें थेनार्ड पेरिस में चिकित्सा पढ़ने गया। वहाँ पर उसने अपने गुरु वॅकेलिन से सहकारी नियुक्त करनेकी प्रार्थना की, वॅकेलिन ने थेनार्डको अपने पास रख लिया। यहां पर थेनार्ड ने अपनी चतुरताका पूरा पूरा प्रमाण दिया। यहां तक कि अपने गुरुकी अनुपस्थितिमें उसको लेक्चर देनेकी आज्ञा मिल गई। सन १७९८ में पालीटेकनीक स्कूलमें प्रोफेसर नियुक्त हुआ और १८०४ में कालेज डे फ्रांस में प्रोफेसर नियुक्त हुआ।

थेनार्ड के अधिकतर अनुसन्धान गेलुसाकके साथ हुए हैं। सन् १८११ में दोनों ने मिलकर एक पुस्तक (Researches Physico-chimiques) लिखी जिसमें उन्होंने कार्बनिक यौगिकोंके विश्लेषण की रीतियां बतलाई हैं। कार्बनिक यौगिक पांशुजहरेतके साथ गलाया जाता है। (पहले उस वस्तु को अच्छी तरह सुखाया जाता है ताकि उसमें जल न रह जाये।) उसमें इतना हरेत डाला जाता है कि

सब वस्तु भली प्रकार जल जाये। इसी प्रकार और कई रीतियां बतलाई हैं। इन दोनों ने दुग्धशर्करा-अरेबिक गोंद इत्यादिका संगठन बतलाया।

इस कार्यके पश्चात् थेनार्ड ने काष्ठिकाम्ल इमलिकाम्ल विगोंदिकाम्ल और सिरकाम्ल के संगठन निकाले। साथ ही साथ बहुत से तैलों और चिपकदार वस्तुओं को विश्लेषित किया। इस प्रकार पाठक देखेंगे कि कार्बनिक रसायनका बहुत कुछ भाग थेनार्डके ही परिश्रमसे हुआ।

थेनार्ड ने गेलुसाकके साथ क्षारों पर भी कार्य किया। जिस समय डेवी ने विद्युत् विश्लेषण से पांशुजम् और सैन्धकम् को प्राप्त किया उसी समय इन दोनों ने पांशुज-क्षारसे पांशुजम् लोहेसे अवकरण करके बनाया।

गेलुसाक और थेनार्ड में हरिनकी तत्वताको सिद्ध करनेमें भी बहुत कुछ कार्य किया। पहिले तो इन्होंने लैवासियेके सिद्धान्त के अनुसार डेवी के कथनको नहीं माना कि प्रत्येक अम्लमें ओषजन नहीं होता, परन्तु जब इन लोगों ने उदहरिकाम्ल में समानता स्थापित की और क्योंकि उदश्मा-काम्लमें ओषजन नहीं होता, इसलिये उदहरिकाम्ल में भी ओषजन नहीं होना चाहिये। इसी प्रकार थेनार्ड ने और बहुत सी सेवायें रसायन जगत्के लिये कीं। उसका सबसे बड़ा कार्य कार्बनिक रसायनमें ही था और कुछ कार्य गैसोंमें भी किया।

प्रारम्भमें थेनार्ड पालीटेकनिक स्कूल में ही प्रोफेसर रहा। सन् १८१० में फोरकाकी जगह प्रोफेसर नियुक्त हुआ और इसी साल फ्रांस अकेडमी का सदस्य चुना गया। सन् १८३२ ई० में फ्रांस सरकार ने थेनार्डको लार्ड बनाकर सम्मानित किया। थेनार्डको सरकारमें भी बहुत पदों पर कार्य करना पड़ा था। वह एक उदारचित्त और सर्वप्रिय व्यक्ति था और अपने सहकारियोंके लिये तन मन धनसे सहायता करने पर उद्यत रहता था। सन १८५७ ई० में जब भारतवर्षमें क्रान्ति फैली हुई थी थेनार्डकी मृत्यु हुई।

क्लाड लुई बरथोले
(१७४८—१८२२)

बरथोलेका जन्म १७४८ में टैलोर (फ्रान्स) में हुआ। सन् १७७८ में वह पेरिसमें डाक्टरी करने लगा। सन् १७८० में फ्रांसकी अकेडेमी ने उसे अपना सदस्य चुना। बरथोले नेपोलियनको जानता था और उसके साथ पेरिस इत्यादि भी घूमा था।

बरथोले का मुख्य कार्य्य रासायनिक स्नेह (Chemical-affinity) पर हुआ है उससे पहिले ज्यांफ़रीने इस विषय पर विचार प्रगट किये थे परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई यद्यपि लैवासिये और बर्गमेन इत्यादि इसके मानने वाले थे, परन्तु बरथोले ने इसका विरोध किया। उसने कहा, यदि यह बात ठीक है तो रसायनिक स्नेह एक निरपेक्ष चीज होनी चाहिये और इस प्रकार एक अम्ल दूसरे अम्लके लवणसे इस अम्लको पूर्ण रूपसे हटा सकता है; परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। इसके अतिरिक्त प्रक्रिया-गत वस्तुओंकी संख्या भी इन प्रक्रियाओं में एक महत्व पूर्ण स्थान रखती है, और एक वस्तु बहुत ज्यादा मिला देनेसे प्रक्रिया बिलकुल बदल दी जा सकती है। लोहे पर भापका प्रभाव और लोह-ओषिद पर उदजनका प्रभाव एक दूसरेके विरुद्ध क्रियायें हैं अर्थात् रासायनिक स्नेहके पहिले विचारों के अनुसार केवल एक ही क्रिया होनी चाहिये परन्तु भिन्न भिन्न दशामें दोनों होती हैं। केवल यह ही नहीं, ऐसे बहुतसे उदाहरण उसने दिये। उसने बतलाया कि यदि अम्ल और क्षारका घोल मिलाया जावे तो दोनों सामान्यावस्थामें रहते हैं। पाठक देखेंगे कि यहींसे विपर्यय प्रक्रियाओं (Reversible Reactions) की नींव पड़ती है, परन्तु खेद की बात है कि बरथोले परिमाण-क्रिया-सिद्धान्त (Law of mass-action) न बना सका। उसने यह अवश्य बतलाया कि रासायनिक प्रक्रिया

प्रक्रिया-गत वस्तुओं की संख्या पर निर्भर है। यदि गन्धकाम्ल कर्बनेतसे कर्बनिकाम्ल निकालता है। तो इसका यह कारण नहीं कि गन्धकाम्ल क्षारके साथ अधिक स्नेह रखता है बल्कि कर्बनिकाम्ल निकलते ही कर्बनद्विओषिदके रूपमें निकल जाता है। यदि इन विचारोंको और पक्का कर लेता तो सम्भव है कि वही परिमाण-क्रिया सिद्धान्तका बनाने वाला होता, परन्तु वह तो और ही ओर झुका हुआ था। उसने कहा कि तत्व किसी भी अनुपातमें मिल सकते हैं, बस एक ही बात ध्यान रखनी है कि कौन सा तत्व अधिक संख्यामें है। इन विचारोंके कारण उसने प्राउस्टके स्थिर संगठन नियमका घोर विरोध किया। अन्तमें प्राउस्टकी ही विजय हुई।

बरथोले सरकारके कार्य्योंमें लैवासियेकी भांति बहुत कुछ भाग लेता था। उसने कलाके लिये एक बड़ी ही अच्छी बात निकाली। वह यह कि हरिन् के प्रभावसे रङ्ग बिलकुल जाता रहता है। बरथोले को सरकारकी ओरसे बहुत सी उपाधियाँ मिलीं। अन्त समयमें वह फ्रांसका लार्ड हुआ। सन १८२२ में आरशूलमें उसका देहान्त हुआ।

लुई प्राउस्ट

(१७५५—१८२६)

अब एक उस महापुरुका वृत्तान्त दिया जाता है, जिसनें बरथोलेके इस सिद्धान्तको कि प्रक्रिया-गत वस्तुओंकी संख्याके अनुसार बने हुये यौगिकों का संगठन भी बदलता जाता है गलत सिद्ध किया। प्राउस्टका जन्म १७५५ में हुआ। यद्यपि वह भी फ्रांसीसी था परन्तु स्पेन राज्यमें मेड्रिड विश्व विद्यालयमें प्रोफ़ेसर था।

मुखपत्रोंमें इन दोनों व्यक्तियोंका वाद विवाद आठ वर्ष तक रहा और बड़े घोर प्रहार किये जाते थे परन्तु अन्तमें प्राउस्टकी जीत हुई क्योंकि जहां भी बरथोले ने दिखाया कि यह नया यौगिक बन गया प्राउस्ट ने उसी समय दिखा दिया कि यह नई वस्तु यौगिक नहीं है बल्कि दो स्थिर संगठन वाले यौगिकों का मिश्रण है। इस कारण "स्थिर संगठन नियम" का जन्मदाता प्राउस्ट ही है।

नियम यह है "यदि कोई रासायनिक यौगिक किसी भी रीतिसे बनाया जाये तो उसका संगठन प्रत्येक दशामें वही रहेगा अर्थात् रासायनिक यौगिक का संगठन एक ही होता है। यह ध्यान रहे कि यौगिक शुद्ध दशामें होना चाहिये"। प्राउस्टके सम्बन्धमें और कुछ न कह कर कुछ ऐसी बातों का वर्णन किया जायेगा, जो उस समय परमाणुवाद की सहायता और उसके सम्बन्धमें निकलीं।

विलियम प्राउट

(१७८५—१८५०)

यह एक अंगरेज़ जीव-रसायनज्ञ था। १८१८ में उसने एक नई बात छपवाई जिसमें यह दिखलाया गया कि इस समय तक जो तत्व विदित हैं, उनका परमाणु भार पूर्ण संख्या है। केवल यह ही नहीं, उसने बताया कि उदजन सब तत्वोंका मुख्य तत्व है और सब तत्व इसीसे मिल कर बने हैं परन्तु ज्योंही हरिन्का परमाणु भार ३५.५ निकाला गया, वैज्ञानिकोंको इस सिद्धान्त पर सन्देह होने लगा। यद्यपि उस समय यह बिलकुल जड़से उड़ा दिया गया परन्तु २० वीं शताब्दीमें आकर इस सिद्धान्त के भाग खुल गये। पाठक शायद जानते हों कि जगत् विख्यात वैज्ञानिक एफ. डब्लू-ऐस्टन ने इस सिद्धान्तका फिरसे समर्थन किया है और प्रयोगिक उदाहरणोंसे दिखा दिया है कि यह बात बिलकुल ठीक है कि प्रत्येक तत्वका परमाणु भार पूर्ण संख्या होता है। इस अनुसन्धानका वर्णन आगे पूर्णरूपमें दिया जायगा।

इसी समयमें डूलांग और पेटिट ने एक और नियम बनाया जो परमाणुवाद सिद्धान्त ही के सम्बन्धमें है इसका वर्णन आगे दिया जायगा।

टामस एलवा एडीसन

[ले० श्री रामगोपाल गुप्त, एम० एस-सी०]

संसारमें मनुष्य उत्पन्न होता है और कुछ समय संसारकी वायुका सेवन करके इस असार संसारसे कूँच कर देता है। संसारका यह एक खेल चला आता है कि मनुष्य आता है और चला जाता है। यहाँ तो केवल विश्राम लेनेके लिये आता है। यहाँसे न वह कोई वस्तु ले जाता है और न कुछ साथ लाता है। किसी कवि ने कहा है:—

चुन चुन कङ्कड़ महल बनाया लोग कहें घर मेरा।
ना घर मेरा ना घर तेरा, चिड़िया रैन बसेरा॥

मनुष्य बहुत सी वस्तुओंको अपनी कहते हैं परन्तु मृत्युके समय सब यहीं रक्खी रह जाती हैं। कुछ समय पश्चात् संसारसे उन मनुष्योंका चिह्न तक मिट जाता है। परन्तु यदि वह कोई ऐसा कार्य कर जाते हैं जिसको संसार ने अपनाया हो तो उनका नाम सदाके लिये अमर हो जाता है।

वैज्ञानिक संसारमें ऐसी बहुत सी महान् आत्मायें उत्पन्न हुई हैं। फैरेडे, क्लार्क मैक्सवेल इत्यादिका नाम किसीसे छिपा नहीं है। यद्यपि यह लोग अब संसारमें नहीं हैं परन्तु उनके कार्य संसारको सदा इनका स्मरण कराते रहते हैं।

१८ अक्टूबर १९३१ रविवारका दिन विज्ञानके लिये महान शोकका दिन हुआ। प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता एडीसन प्रातःकाल ३ बजकर २४ मिनट पर अपनी देहको संसारमें छोड़ कर बिदा होगये। आपकी मृत्युसे विज्ञानको बहुत बड़ा धक्का पहुँचा। आप ८४ वर्षकी आयु भोगकर मरे हैं। आपके आविष्कार संसार भरमें प्रसिद्ध हैं।

आपका जन्म ओहियो प्रान्तके मिलान नगरमें १० फरवरी सन १८४७ को हुआ। आपका बाल्य-काल मिशिगनमें पोर्ट ह्युरनमें व्यतीत हुआ। आपकी शिक्षा केवल आपकी माता द्वारा ही हुई। उसने इनको लिखना पढ़ना तथा अङ्कगणित सिखलायी। शेष शिक्षा उन्होंने बिना किसीकी सहायता के स्वयं ग्रहण की। आपके कुटुम्बकी तङ्ग दशा होनेके कारण आपको १२ वर्षकी ही आयुमें एक रेल पर नौकरी करके अपनी जीविका उपार्जन करनी पड़ी। उस समय कौन जानता था कि ऐसा गरीब तथा अशिक्षित बालक इतनी उन्नति करेगा कि सर्वसाधारण तक उसका सम्मान करेगा। परन्तु वही होता है जो भाग्यमें लिखा होता है। जैसा कि तुलसीदास ने भी कहा है कि "होईहै सोई जो राम रचि राखा।"

अपने कार्यसे जिस समय अवकाश पाते उस समय आप पुस्तकोंका अध्ययन करते थे। यह पुस्तकें आप अपनी जीविकामें से जो कुछ भी बचा लेते थे उनसे खरीदते थे और पुस्तकोंके अतिरिक्त आपने फ्रेसेनिअस (R. Fresenius) की गुणात्मक विश्लेषण (Qualitative Analysis) नामक पुस्तकका भी अध्ययन किया। थोड़े ही समयमें आप इस पुस्तकके प्रत्येक शब्दसे परिचित होगये। आपने शीघ्र ही अपने डिब्बे में एक छोटी सी प्रयोगशाला स्थापित की। यहां पर आप जिस समय गाड़ी चलती होती थी बैठे २ प्रयोग किया करते थे।

एक समय एडीसन किसी कार्यवश डेटरोयट फ्री प्रेसमें गया। वहां पर उसने देखा कि छपाईका कुछ सामान नीलाम हो रहा है। वहां पर एडीसन ने अपनी आवश्यकतानुसार सामान मोल लेलिया। कुछ दिनों पश्चात् उसने अपने सम्पादकत्व में 'ग्रांड ट्रङ्क हेरालड' नामक पत्र प्रकाशित किया। इसकी अधिकांश बिक्री इस रेलमें यात्रा करने वाले यात्रियोंमें ही होती थी। परन्तु इस पत्रका अन्त दुर्घटनावश शीघ्र ही होगया। एक दिन एडीसनकी प्रयोगशालामें एक स्फुर की बोतल गिर पड़ी जिससे कि उस डब्बेमें आग लग गई। जैसे तैसे करके एडीसन ने तथा गार्ड ने उस आगको बुझा दिया। परन्तु गार्ड ने भविष्यमें ऐसी दुर्घटनाओं

से बचनेके लिये उसका तमाम सामान खिड़की द्वारा बाहर फेंक दिया। आपने कुछ दिनों बाद एक और पत्र 'प्रौल पाई' नामका प्रकाशित किया परन्तु इसका भी दुर्घटना-वश शीघ्र ही अंत होगया।

समय सर्वदा उसके लिये अमूल्य वस्तु थी। उसको स्टेशनसे घर तक जानेमें २० मिनट लगते थे। आपने इतने समयको बचानेके लिये अपने घरके पीछे एक बालूका ढेर बनाया। जिस समय गाड़ी वहाँको होकर जाती थी वह उस पर कूद पड़ता था। भाग्यवश उसने तार-विद्या भी अच्छी तरह सीख ली थी। एक दिन मृत्युके मुखसे एक बालककी जान बचानेसे उसको तार-विद्या सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

वह एक दिन पोर्ट एलमौएटके प्लेटफार्म पर खड़ा हुआ था। उसने क्या देखा कि एक बच्चा पटरियोंके बीचमें जिस समय कि गाड़ी बहुत ही निकट आ गई थी, स्वच्छन्दता पूर्वक खेल रहा है। वह तुरन्त ही बिना आगा पीछा सोचे प्लेटफार्म परसे कूद पड़ा और बच्चेको उठा लिया। परन्तु गाड़ी इतनी निकट आ गई थी कि वह गाड़ीके धक्केसे अपनेको बचा न सका। गाड़ी ने एक बहुत ज़ोरका धक्का दिया जिससे वह बच्चे सहित पटरीके दूसरी ओर जा गिरा। उसके चोट अधिक नहीं आई और बच्चेके तनिक भी चोट नहीं आई। उस बच्चेके पिता ने जो कि उस स्टेशन पर स्टेशन-मास्टर थे उसको इस कार्यके उपहार स्वरूप तार-विद्या सिखलाई। यही घटना इसके तार-विद्या सीखनेकी है। तब एडीसन ने रेलकी नौकरी छोड़ दी और अपना सारा समय तार-विद्यामें व्यतीत करने लगा। कुछ समयमें वह अपने सब साथियों से बढ़ गया। उसने न केवल उन्नति ही की वरन् बहुतसे आविष्कार भी किये।

मोर्स यन्त्रमें केवल कुछ परिवर्तन करनेके कारण सन १८८१ में उसने ३६ पेटेण्ट प्राप्त किये। कुछ दिनों पश्चात् आपने तारका कार्य छोड़ दिया दिया और न्यूयार्कके निकट मेनलो पार्कमें एक प्रयोगशाला स्थापित की। यहीं पर आपने अधिकांश आविष्कार किये।

आपका फोनोग्राफके यन्त्रका आविष्कार एक बहुत ही बड़ा आविष्कार हुआ है। इसके चमत्कार किसको विदित नहीं है। सुन्दर सुन्दर गाने पशु पक्षियोंकी बोलियाँ किस मनुष्य ने फोनोग्राफ द्वारा नहीं सुनी। रेलकी सीटीका बजना, भीड़का हुल्लड़ करना, रंग भङ्गका लोटा, इत्यादि सब केवल एक प्रकारके काले तवोंमें ही भरे रहते हैं। यह सब कार्य पहले मनुष्योंको आश्चर्यमें डाल देते थे परन्तु अब तो यह केवल आमोद करते हैं। ऐसे यन्त्रके अविष्कार करनेका श्रेय जो मनुष्य नित्य आमोद-प्रमोदमें प्रयोग करता है एडीसनको ही है।

आपके प्रयोग केवल ध्वनि उत्पन्न करने वाले प्रयोगों तक सीमित न रहे। वरन् इसने और बहुत से आविष्कार किये। विशेष आविष्कार उसके कार्बन टेलीफोन, विद्युद्दीप, बिजलीका कलम, उठाने का लैम्प, काइनेटेस्कापिक कैमरा, गैसके लैम्प, डाइनमो इत्यादि कितने ही किये जिनके पूर्णतया उल्लेख करने पर एक बहुत बड़ी पोथी तैयार हो सकती है।

आपको अपने अविष्कारोंके पेटेण्ट लेनेमें कोई भी कठिनाई न पड़ती थी, कारण कि आपके आविष्कार अपूर्व प्रकारके होते थे। जिस समय आपने अपनी फोनोग्राफ़की मशीन पेटेण्ट करानेके लिये भेजी उस समय तक उनके पास कोई ऐसी और मशीन न पहुँची थी। आपने एक हज़ारसे अधिक पेटेण्ट प्राप्त किये हैं।

सन १८८४ में आपने एक मनोहर घटनाका आविष्कार किया जो आजकल एडीसन प्रभाव (Edison effect) के नामसे प्रसिद्ध है।

आपकी आत्मा अब इस संसारमें नहीं है परन्तु आपके कार्यों ने आपका नाम सदाके लिये अमर कर दिया है।

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

पूर्ण संख्या—२०३

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३४ VOL. 34.

कुम्भ, संवत् १९८८

फरवरी १९३२

संख्या ५ No. 5

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३४ } कुम्भ, संवत् १९८८ { संख्या ५

यक्ष्मा भेद लक्षण निदान इत्यादि

[ले० श्री डा० कमला प्रसाद जी, एम-बी०]

८ मेरुदण्ड का यक्ष्मा

(Tuberculous Disease of the Spine)
(Syn.—Pott's Disease)

इतिहास ।

इस रोगको सर्व प्रथम परसिवल पौट्ट (Percival Pott) ने १७७९ में पूर्णतः पहिचाना था अतः उन्हींके नाम पर इसे (Pott's Disease) "पौट्ट साहब का रोग" कहते हैं।

कारण ।

इसके कारण प्रायः वही हैं जो अन्यत्र यक्ष्माके कारण होते हैं। रोग बहुधा १० वर्ष से कम आयु के बच्चोंमें ही देखा जाता है किन्तु किसी आयुके व्यक्तिमें इसका पाया जाना असम्भव नहीं है। स्त्री एवं पुरुष दोनों ही को एक सा होता है। कशेरु (Spinal Column) मेरुदण्ड वा रीढ़का कोई अंश क्षतग्रस्त हो सकता है किन्तु अधः वक्ष की कशेरुकाओं (Vertebrae) पर बहुधा आक्रमण होता है।

अंगविकृति ।

रोग पर्यस्थि प्रदाह वा अस्थि मज्जा प्रदाह (Periostitis or Osteomyelitis) के रूपमें आरम्भ होता है। प्रथम—पर्यस्थि प्रदाह—रूपमें यह वयस्क रोगियोंमें देखा जाता है। अस्तु, इस प्रकारके रोगियोंकी संख्या कम होती है। कशेरुका के सम्मुख तल (anterior surface of the Vertebra) पर सर्व प्रथम आक्रमण होता है और रोग एक अस्थिसे दूसरी अस्थि तक अस्थि बन्धन (ligaments) के सहारे बढ़ता जाता है। दो कशेरुकाओं के बीच के अन्तर-काशेरुक-चक्र (Interveretebral disc) भी आक्रान्त होते तथा घिसते जाते हैं।

दूसरे—अस्थि मज्जा प्रदाह—रूप में रोग बहुधा बच्चोंमें देखा जाता है और इस प्रकारके रोगी बहुत मिलते हैं। यक्ष्मा-कीटाणु क्षीण अस्थि तंतुओं (Cancellcus tissues) में प्रवेश कर जाते हैं और अस्थिका सर्वनाश करने लगते हैं। कशेरुकाओंके पृष्ठतल की अपेक्षा सम्मुख तल अधिक क्षत-ग्रस्त होता है, इसके साथ ही क्षत अंश पर शरीरका (ऊपरका) भार पड़ता है जिससे क्षत कशेरुकायें एक दूसरीसे सट जाती हैं। फल यह होता है कि शरीर आगे की ओर धनुषाकार हो कर झुक पड़ता है और पृष्ठ देशमें एक कूब सा निकल पड़ता है। रोग एक कशेरुकासे दूसरी तक अन्तर-काशेरुक-चक्रों के सहारे अथवा सम्मुख अस्थि बन्धनोंके सहारे बढ़ता जाता है। ये चक्र कशेरुकाओंका अपेक्षा अधिक घिस जाते हैं। जब बहुत सी कशेरुकायें नष्ट हो जाती हैं तब शरीर एक दम धन्वाकार हो जाता है। कभी कभी यह भी देखा गया है कि रोग कई केन्द्रों (कशेरुकाओं) में एक साथ आरम्भ हो जाता है, और कभी केवल दो ही कशेरुकाओं पर आक्रमण हो कर रह जाता है, एवं इनकी पर्यस्थि नष्ट नहीं होने पाती। कभी कभी क्षत-स्थानोंमें मृतास्थियां (Sequestra) पाई जाती हैं।

स्वतः रोग मुक्त होनेका केवल एक ही उपाय है—यह तभी सम्भव है जब क्षत कशेरुकायें एक दूसरीसे सट कर अचल हो जाती हैं। तो यह घटना घट जाती है पर बहुधा इसके विपरीत पीव की उत्पत्ति हो जाती है, व्रण हो जाता है और रोग और भी भयङ्कर रूप धारण करता है।

मेरुदण्डके पश्चाद्भगमें आक्रमण होनेसे वात नाड़ियों (veins) पर दबाव पड़ता है जिससे पीड़ा इत्यादि वात लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसे रोगी भी मिलते हैं जिनके केवल पार्श्वतल (कशेरुकाओंके पार्श्वतल) में आक्रमण हो कर रह जाता है, और जिनका शरीर केवल एक पार्श्वमें झुक जाता है। किन्तु ऐसे रोगी बहुत कम मिलते हैं।

लक्षण और चिह्न

(क) पीड़ा। यह सदैव बनी रहती है, यद्यपि आरम्भमें इसका पता नहीं चलता। पीड़ायें दो प्रकारकी होती हैं—स्थानीय और उत्क्षिप्त (Local and Referred) स्थानीय पीड़ा अधिक कष्ट प्रद नहीं होती, अथच दबाव डालने वा ठोकने पर अनुभूत होती है। मेरुदण्डके संचालनसे अथवा शिर या गर्दन पर ठोकनेसे भी यह जान पड़ती है। उत्क्षिप्त पीड़ाका कारण है, उन नाड़ी-मूलों (Nerve roots) का प्रदाह जो क्षत कशेरुकाओंके निकट ही सुषुम्नासे निर्गत होती हैं। अतएव इस प्रकार की पीड़ा उन्हीं स्थानोंमें अनुभूत होती है जिनमें इन नाड़ियोंका वितरण होता है। उदाहरण स्वरूप यदि कटि देशकी कशेरुकायें (lumbar Vertebrae) क्षत-ग्रस्त हो गई हों तो पीड़ा पावोंमें जान पड़ेगी।

(ख) पृष्ठ वंश (मेरु दण्ड) की स्थिरता। आरम्भमें इसका कारण है मांस पेशियोंका खिंचाव जो इस बातकी चेष्टा करती हैं कि क्षतअंशको किसी प्रकार हिलना डुलना न पड़े। यदि मेरुदण्डके निम्न भागमें आक्रमण हुआ हो तो पीठ एक दम कड़ी हो जाती है और सीधी तनी रहती है तथा रोगी ऐसी हरकतोंसे सदैव बचनेकी कोशिश करता है जिनमें उसे पीठको किसी ओर झुकाना वा खींचना पड़े। जैसे उसे कोई वस्तु पृथ्वी तलसे उठानी हो तो वह झुकना नहीं चाहेगा प्रत्युत अपने घुटनों एवं नितम्बों को मोड़ेगा और तब बहुत चेष्टा कर मल त्याग करनेकी स्थितिमें बैठ कर उस वस्तुको उठा सकेगा। पुनः उठते समय भी अपने नितम्बों पर दोनों हाथों का भार देकर उठने की चेष्टा करेगा।

अन्त अवस्थाओंमें यह स्थिरता दो कशेरुकाओंके आपसमें संयुक्त हो जानेके कारण होती है। जब रोग छूट जाता है तब इस स्थिरताके बदले अन्य अंगों की अधिक चलायमानता देखी जाती है।

(ग) अंगवक्रता (deformity)। यह प्रायः प्रत्येक रोगीमें वर्त्तमान रहती है। इसका परिमाण बहुत सी बातों (विशेष कर क्षत कशेरुकाओंकी की संख्या) पर निर्भर रहता है। जिस रोगीके के केवल दो ही कशेरुकायें आक्रान्त होती हैं उसके मेरुदण्डमें एक कोणकी सी वक्रता उत्पन्न होती है, किन्तु जब कई कशेरुकायें आक्रान्त होती हैं तब मेरुदण्ड प्रायः धन्वाकार हो जाता है। स्वस्थ व्यक्तियों की रीढ़ कटि-देशमें आगेकी ओर कुछ निकली रहती है—उन्नतोदर (Convex) रहती है। इस भागमें यक्ष्माका आक्रमण होने पर रीढ़की यह साधारण आकृति (Convexity) लुप्त हो जाती है कशेरुकायें एक दूसरीके ऊपर स्तंभाकार होकर बैठ जाती हैं।

(घ) व्रण। यक्ष्माक्रमण के फल स्वरूप व्रण बहुधा प्रकट होते हैं और इसके पूर्व कि ये पहिचाने जायँ वा इनकी चिकित्सा हो सके ये आकारमें बहुत बड़े हो जाते हैं। एक तो ऐसे भी यक्ष्मा कीटाणुओं को शरीर से निकाल बाहर करना असम्भव है, पुनः यदि इन गर्त्तोंमें पीव तैयार करने वाले कीटाणु प्रवेश कर जायँ तो अवस्था बहुत ही भयङ्कर हो उठती है और आसन्न मृत्यु की आशंकाकी जाती है। वयस्कोंकी अपेक्षा बच्चों की यह अवस्था बहुधा देखी जाती है। पीव क्षत स्थान पर ही बनता है किन्तु मुलायम तंतुओं के भीतर बहुत दूर दूर तक चला जाता है तथा क्षत स्थानसे दूर हट कर त्वचा को छेद कर निकलता है।

(ङ) वात लक्षण। ये ऐसे रोगीमें देखे जाते हैं जिसकी अवस्था बहुत बुरी हो गई हो एवं जिसकी चिकित्साका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया हो। इस अवस्थामें धीरे धीरे यक्ष्मा कीटाणु कशेरुकाओंके पश्चाद्भग पर भी आक्रमण करते हैं और वहां पर छोटी छोटी यक्ष्मा गांठें उत्पन्न करते हैं जिनसे उन स्थानोंसे निकलने वाली नाड़ियों पर पड़ता है। पुनरपि इन नाड़ी मूलोंमें यक्ष्मा जनित-प्रदाह भी होने लगता है। अस्तु, दो प्रकार के वात लक्षण उपस्थित होते हैं। जिन जिन स्थानों में क्षत नाड़ियोंका विस्तार होता है उन स्थानोंमें (नाड़ी प्रदाहके कारण) पीड़ा उत्पन्न होती है एवं नाड़ी मूलों पर अधिक दबाव पड़नेके कारण कुछ अंगोंमें यक्ष्मामें पक्षाघात (Paralysis) भी दृष्टिगोचर होता है। यदि सुषुम्ना पर अधिक दबाव पड़ता हो तो पूर्ण पक्षाघात की सम्भावना रहती है।

रोगकी गति और भविष्य।

यदि रोगीको चिकित्साके छोड़ दिया जाय, तो रोग कम अधिक वेगसे बढ़ता ही जायगा, अस्थि-क्षत और भी प्रत्यक्ष होता जायगा तथा व्रण होनेकी सम्भावना होगी। यदि आरम्भसे ही चिकित्साकी जाय तो इस बात की आशाकी जा सकती है कि अस्थियां अचलायमान (ankylorsed) रह जायँगी और रोग हट जायगा। व्रण होने भी यदि रोगीको पूर्णतः निश्चेष्ट रहनेका प्रबन्ध कर दिया जाय तो यह सूख जा सकता है। किन्तु जब व्रण फूट कर बाहर निकल पड़ता है तथा क्षतमें पीव उत्पन्न करने वाले अन्य कीटाणु प्रवेश कर पाते हैं तब जीर्ण विषाक्त ज्वर (Chronic-septicoemia) के लक्षण उपस्थित हो जाते हैं और रोगी कुछ कालोपरान्त शक्ति हीन हो कर काल कवलित होता है। यदि व्रणको पूर्ण चिकित्सा की जाय तथा रोगीके पूर्ण विश्राम (Complete rest) का प्रबन्ध कर दिया जाय तो रोगी मुक्त भी हो सकता है। पक्षाघात हो जानेसे ही रोगी को हताश कर देना उचित नहीं है। अच्छी चिकित्सासे यह भी दूर किया जा सकता है। कभी कभी नूतन बहुसंख्यक यक्ष्मा का होना असम्भव नहीं है जैसा कि अन्यत्र यक्ष्मामें हो सकता है।

इन बातोंके अतिरिक्त इस बातका ध्यान रखना उचित है कि यदि अन्य उपद्रव न हो तथा उचित चिकित्साका प्रबन्ध हो सकता हो तभी रोगीका भविष्य अच्छा माना जा सकता है।

निदान।

इसमें बहुधा भूल कम होती है। उपर्युक्त लक्षणोंके वर्त्तमान रहते हुये रोगको पहिचानना कठिन नहीं है किन्तु तो भी रोगके आरम्भमें कभी कभी भूल हो सकती है। जिन रोगियों को पीड़ा अधिक होती है उनके निदानमें कभी कभी धोखा हो जाता है। चिकित्सकका ध्यान वास्तविक रोग की ओर न जा कर उस स्थानकी ओर आकृष्ट हो जाता है जहां पीड़ा होती है। इस प्रकारकी भूलसे यह वात-रोग वा वृक्क-रोग निर्धारित किया जा सकता है। कभी कभी वयस्क रोगियोंमें गुल्म (Tumour) उपदंश (Syphilis) इत्यादिसे इसे पृथक् करना कठिन हो जाता है। यदि रोगीके पूर्व वृत्तान्त, रोगारम्भ एवं क्षत स्थानके रौञ्जन किरण छाया चित्र (Radiograph) पर ध्यान दिया जाय तो यह कठिनाई दूर हो सकती है। कभी कभी कुछ दिन तक चिकित्सा करनेके उपरान्त उसके फलाफल पर निदान निर्भर करता है।

चिकित्सा। (सूर्य-चिकित्सा भी देखिये)

सर्व प्रथम क्षत स्थानको एक दम निश्चेष्ट कर देना उचित है तथा उस पर किसी प्रकारका दबाव डालना अनुचित है। इसके साथ साथ इस बात की चेष्टा करनी चाहिये कि अंग-वक्रता पराकाष्ठा तक न पहुँच जाय—जितनी ही कम रह सके उतनी ही अच्छा बात है। इन कामोंके लिए निम्नलिखित उपाय है।

(क) रोगीको अहर्निश सुलाये रखना। रोगी को दिन रात पीठके बल सुलाये रहना चाहिए। उसके शिरके नीचे तकिया नहीं देना चाहिए तथा उसके सारे शरीर को एक मोटी चादरसे इस ढांक देना चाहिये कि धड़ और जंघायें एक दम छिप जायँ। इस चादर पर शरीरके दोनों ओर बालू के बोरे (छोटी छोटी तकिये के आकारकी थैलियां बालूसे भर दी जा सकती हैं) इस प्रकार रख दिये जायँ कि शरीर एक दम निश्चेष्ट हो जाय—तनिक भी हिल डुल न सके। दोनों पैर फैले हुये हों और उसके बीचमें भी उसी प्रकार बालूके बोरे रक्खे हुए हों। आवश्यकता हो तो शरीरके दोनों छोर (शिर और पैर) पर रस्सियाँ बाँध कर उसे (शरीर को) घिरनीके सहारे तान भी सकते हैं। यह इस प्रकार हो सकता है कि पाँवोंमें रूई बांध कर कपड़ेकी पट्टी बांधी जाती है। पट्टीके मुक्त छोर (Free end) पर रस्सी वा दूसरी पट्टी बांधी जाती है जो चारपाईके पायताने लगी हुए एक घिरनी पर होती हुई नीचेको ओर झूलती है। इस रस्सी के अन्तिम छोर पर कुछ बटखरे (weights) बंधे रहते हैं जिनके भारसे पाँव खिंचे रहते हैं। इसी प्रकार शिर भी खिंचा रह सकता है। शिरमें पट्टी बांधी जाती है वह ठुड्ढीसे लेकर दोनों कानोंके ऊपर और पीछे को चली जाती है तथा इसी स्थान पर इसमें रस्सी वा दूसरी पट्टी बांधी जाती है। यह रस्सी पांवकी रस्सी की भांति बटखरोंके सहारे तनी रहती है। बच्चे रोगियोंके लिये १ सेर से १½ सेर तकके बटखरे इन रस्सियों में बांधे जा सकते हैं, और इसी अवस्थामें रोगी को कमसे कम छः महीने वा इससे भी अधिक जब तक पीड़ा बन्द न हो जाय—छोड़ देना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि क्षत अंश एक दम निश्चेष्ट रहेगा, मेरुदण्ड अधिक वक्र नहीं हो सकेगा और रोगीको पूर्ण विश्राम मिलेगा। रोगीको जब इससे मुक्त किया जाय तो उसे कोई चुस्त जैकेट पहना देना होगा जो क्षत अंशको कसे रहे, उसे एक दम निश्चेष्ट कर दे तथा उसकी रक्षा करता रहे। (आगे देखिये)

(ख) फेलप बक्स। (Phelp Box) यह बहुत छोटे बच्चेकी चिकित्सा करनेके लिए उपयुक्त होता है। यह काठका एक ६ इञ्च गहरा बक्स है जिसकी लम्बाई करीब करीब रोगीके शरीरकी लम्बाईकी सी होती है, जिसके ऊपर कोई ढक्कन नहीं रहता और जिसका निम्न भाग दो भागोंमें इस प्रकार विभक्त रहता है कि रोगी के दोनों पैर उसमें

आसानीसे रह सकें। इस विभक्त अंगोंके संधिस्थल पर मलमूत्र त्याग करनेके लिए एक छेद भी बना रहता है। इस बकसके भीतर यथेष्ट गद्दे भरे जाते हैं और तब इसमें रोगीको सुला कर उसे पट्टियोंसे कस देते हैं। इस अवस्थामें रोगीको ६ महीनेसे लेकर एक वर्ष तक छोड़ देते हैं। इस रीतिसे उसका सारा धड़ निश्चेष्ट बना दिया जाता है और शुद्ध वायुके लिये उसे उठा कर एक स्थान से दूसरे स्थानमें ले जा सकते हैं।

(ग) प्लास्टर जैकेट। इसका व्यवहार रोगकी कुछ जीर्ण अवस्थाओंमें करना उचित है, आरम्भ में नहीं करना चाहिये। रोगीको एक सटी हुई सूती गञ्जी पहना देते हैं। पेट पर (स्त्रियोंके स्तनों के निकट भी) एक गद्दा (रूईका) दे देते हैं। तदुपरान्त प्लास्टर आव् पेरिस से तर की हुई पट्टियाँ धड़के चारों ओर आवश्यकतानुसार ५/५ बार कस कर भली भांति बांध दी जाती हैं। इनके ऊपर और भी प्लास्टर जमा दिया जाता है जिससे प्लास्टर जैकेट (एक प्रकारका कसा हुआ खोल सा) तैयार हो जाता है। कुछ महीनों तक रोगी को इसी खोलके भीतर छोड़ दिया जाता है।

(घ) फेल्प बकसके बदले काठ की पटरियों (splints) से भी काम ले सकते हैं।

व्रण। इस अवस्थामें व्रण हो जाना बहुत भयावह है और इसकी चिकित्सा खूब सावधानी से करनी चाहिये।

पक्षाघात। यह उपर्युक्त चिकित्साओंसे ही चला जाता है, किन्तु इससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य उपद्रवों (जैसे अनिच्छित मलमूत्र त्याग इत्यादि) की चिकित्सा पर ध्यान देना उचित है। मूत्रको समय समय पर मूत्र वहिष्कारक जल (Catheter) द्वारा निकाल देना उचित है।

९ पाचक संस्थानका यक्ष्मा

(१) ओष्ठ। इनमें यक्ष्माका आक्रमण प्रायः नहींके बराबर होता है। कभी कभी फुपफुस-यक्ष्मा व स्वरनल-यक्ष्माके रोगियोंके ओष्ठ भी आक्रान्त हो जाते हैं किन्तु इसका निदान कठिन होता है। यक्ष्मा जनित व्रण को उपदंश जनित व्रण वा एक प्रकारका अधर गुल्म (Epithelioma) मान लिया जाता है। इन व्रणोंमें यक्ष्मा-कीटाणुओंका पाया जाना इस रोगके वर्त्तमान रहनेका एक मात्र प्रमाण है।

(२) जिह्वा। इसके अग्र भाग वा निम्न भागमें छोटे छोटे दाने निकल आते हैं। ये दाने यक्ष्मा-व्रण में परिणत हो जाते हैं जिसकी परिधि निर्धारित (definite) किन्तु अनियमित रहती है और आधार (Bse) रुखड़ा एवं छनाकरण क्रिया युक्त रहता है। रोग धीरे धीरे बढ़ता है और व्रण का आकार क्रमशः बहुत बड़ा हो जाता है। यह भूलसे उपर्युक्त गुल्म (Epithelioma) समझ लिया जाता है। हनुकोण (angle of the jaw) की लसीका ग्रन्थियाँ बड़ी नहीं होतीं एवं पांशुज-नैलिद (Potassium iodide) जो उपदंशकी निश्चित दवा है—इसमें कुछ भी लाभकारी नहीं होता। इन्हीं दो बातोंसे यह उपदंशसे पृथक् किया जा सकता है। अन्ततः यक्ष्मा कीटाणुओं की उपस्थिति पर ही इस रोगका निदान निर्भर करता है। रोग प्राथमिक नहीं होता।

(३) लालाग्रन्थियाँ। इन पर यक्ष्माका आक्रमण नहीं होता।

(४) तालु। निकटवर्त्ती तंतुओं पर आक्रमण होने पर भी आक्रमण होना सम्भव है।

(५) घंटी। (Tonsil) बच्चों की घंटी बहुधा यक्ष्मा द्वारा आक्रान्त होती है। इनसे छन छन कर यक्ष्मा कीटाणु गलेकी लसीका ग्रन्थियोंमें पहुँच जाते हैं। घंटीमें कभी कभी तो घाव हो जाता है और कभी कभी यक्ष्मा गांठें प्रादुर्भूत होती हैं।

(६) कंठ (Pharynx) स्वर-नल-यक्ष्मा की अन्तिमावस्थामें कंठ बहुधा आक्रान्त हो जाता है जिससे कष्टकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है।

(७) अन्नप्रनाली और (८) पाकस्थली। इन अवयवों पर यक्ष्माका शायद ही आक्रमण होता है।

(९) अन्त्र।

(क) प्राथमिक अंत्र-यक्ष्मा। इस प्रकार का यक्ष्मा अन्त्र की श्लैष्मिक कला (mucous-membrane) में आरम्भ होता है। इसके रोगी बहुधा बच्चे ही होते हैं। अन्त्र धारक कलामें स्थित लसीका-ग्रन्थियां भी आक्रान्त हो जाती हैं। वा परिविस्तृतकला प्रदाह (Peritositis) प्रादुर्भूत होता है। वयस्कोंमें प्राथमिक अन्त्र यक्ष्मा बहुत कम देखा जाता है। पर कभी अतिसार, उदर में पीड़ा और कुछ ज्वरके साथ यक्ष्माका प्रादुर्भाव होता है। कभी कभी रोगीके मलके साथ कुछ रक्त निकलता है, और बहुधा इस बातका धोखा हो जाता है कि अन्त्रमें अन्य कारणों द्वारा भयङ्कर प्रदाह उत्पन्न हो गया है जब तक शरीर बहुत क्षीण नहीं हो जाता तथा फुपफुस इत्यादिमें इस रोगके चिह्न नहीं पाये जाते, वास्तवमें अन्त्र-यक्ष्मा का संदेह नहीं होता। इससे अधिक धोखा उन रोगियोंके सम्बन्धमें होता है जिनमें यह रोग पहले पहल अपेंडिसाइटिस (Appendicitis) के रूपमें प्रकट होता है। ऐसी अवस्थामें दाहिनी कुक्षीमें भयानक पीड़ा होती है, कभी अतिसार होता है और कभी कोष्ठ बद्धता। ये लक्षण कुछ समयके लिए लुप्त हो जाते हैं किन्तु पुनः एकाध सप्ताहके उपरान्त प्रकट हो जाते हैं। अस्तु रोग को पहिचानना बहुत कठिन हो जाता है। कभी कभी इतना रक्त क्षरण होता है कि मृत्यु हो जाती है। कभी परिविस्तृत कलामें छेद हो जाता है और कभी अन्त्रके चारों ओर व्रण हो जाता है।

(ख) माध्यमिक अन्त्र-यक्ष्मा। फुपफुस-यक्ष्मा के उपरान्त अन्त्र पर आक्रमण होता है। इसका आरम्भ होता है अन्त्रकी एकान्त ग्रन्थियोंमें (Solitary glands) जो अन्त्रमें पाई जाती हैं। वा इसकी श्लैष्मिक कलाके तल वा भीतरसे। अधःक्षेपण क्रिया एवं सड़नेके कारण धीरे धीरे अन्त्रमें व्रण हो जाता है। यक्ष्मा जनित क्षतकी निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं—

यह अन्त्रके भीतर अंगूठी का सा किन्तु अनियमित होता है।

इसके किनारे एवं आधार द्रव अधःक्षेपित पदार्थ से परिस्रावित रहते हैं।

अन्त्रके श्लैष्मिकान्तर्भागस्थ तंतु और मांस तंतु। (Submucous & muscular coats) भी क्षत ग्रस्त होते हैं।

अन्त्रके बाहर बहुत सी यक्ष्मा गांठें मिल सकती हैं अथवा यक्ष्मा जनित लसीका नल प्रदाह (Lymphangitis) देखा जा सकता है।

माध्यमिक अन्त्र-यक्ष्मामें अन्त्रमें छेद हो जाना अथवा परिविस्तृत कला प्रदाह होना साधारण क्रियायें हैं। कभी कभी क्षतके रोग मुक्त हो जानेके कारण अन्त्रमें एक प्रकारकी सिकुड़न पड़ जाती है जिससे अन्त्रावरोध हो सकता है।

बृहदंत्रके जीर्ण यक्ष्मामें दक्षिण कुक्षिमें एक बड़ा गुल्म सा मालूम पड़ता है, जो स्पर्शमें कठोर, जरा जरा हिलने डुलने वाला वा एक दम स्थिर और अत्यन्त कष्टप्रद (छूने पर) होता है। इसको वास्तविक गुल्मसे पृथक् करना बहुत कठिन है। अन्त्र धीरे धीरे अवरुद्ध होता जाता है। कभी कभी वहां पर तीक्ष्ण वेदना होती है और अतिसार एवं कोष्ठबद्धता, एकके बाद दूसरे होते रहते हैं। गुल्म का नितान्त स्थानीय बना रहना निदानके लिए उदर खोल कर देखने की ओर संकेत करता है। बहुधा अन्त्रके उस अंश को काट कर निकाल देने पर तथा अन्त्रके कटे छोरोंको आपसमें मिला कर सी देने पर रोगी रोगमुक्त हो जाते हैं। इसी रोगके एक दूसरे रूपमें यह गुल्म इतना स्पष्ट नहीं रहता,

बल्कि दक्षिण कुक्षिमें एक कड़ा लम्बा सूतका सा जान पड़ता है। अन्त्रमें व्रण होनेके कारण मलावरोध (stenosis) हो जाता है अस्तु अंत्रका एक अंश इस प्रकार लक्षित होता है।

निदान।

मलमें अंत्र-निर्गत यक्ष्मा कीटाणुओंके पाये जाने पर अथवा उदर खोल कर अन्त्रकी वास्तविक अवस्था देखने पर ही अन्त्र-यक्ष्मा पहिचाना जा सकता है।

(ग) मलाशय (Rectum) वा अन्त्रका अन्तिम अंश) के यक्ष्माग्रस्त होने पर बहुधा भगन्दर (Fistula-in-ano) हो जाता है। यह अवस्था प्रायः माध्यमिक ही होती है क्योंकि इसके साथ साथ फुफ्फुस भी आक्रान्त रहता है।

(घ) कभी कभी यक्ष्मा परिविस्तृतकलासे अग्रसर होकर अन्त्रको पकड़ता है। इस कलामें रोग प्राथमिक होता है अथवा डिम्ब प्रनाली (Fallopian tubes)—केवल स्त्रियोंमें एवं अन्त्र धारक कलाकी लसीका ग्रन्थियों (mesenteric gland) द्वारा माध्यमिक रीतिसे होता है। अन्त्र की ऐंठने (Coils) एक दूसरोसे सट जाती हैं, और उनके बीच बीचमें पीव भर जाता है। अन्त्रमें कभी कभी छेद हो जाता है।

विद्युत् रसायनका विस्तार और सर हम्फ्री डेवीके अनुसन्धान

[ले० श्रीआत्माराम एम० एस-सी०]

विद्युत् रसायनको छोड़ कर और कोई अनुसन्धान रसायनमें ऐसा नहीं है जिससे कि कलाकौशलको इतना लाभ हुआ हो। आजकल अधिकतर रासायनिक वस्तुएँ इसी के आधार पर बनाई जाती हैं और धातुमें तो लगभग ५० फ़ी सदी इसी रीतिसे बनती हैं। किस प्रकार इस रसायनका जन्म हुआ और किन किन व्यक्तियों ने इसमें मुख्य काम किया, इन सब बातोंका वर्णन देनेका यहाँ पर उद्योग किया जायगा।

यह देखा गया है कि जब कोई अच्छा यन्त्र तैयार हो जाता है तो सब वैज्ञानिक उसकी सहायतासे नये नये प्रकारके प्रयोग करने आरम्भ कर देते हैं। इसी प्रकार जब १८०० ई० में वोल्टा ने प्रबल विद्युतधारा देने वाली वोल्टा बाटरी तैयार की तो सब वैज्ञानिक इसकी सहायतासे लवणके घोलों पर विद्युत् धाराका प्रभाव देखनेका प्रयोग करने लगे। इस कार्यमें सबसे अधिक सफलता निकोलसन और कारलायलको हुई। उन्होंने विद्युत द्वारा जल और कई घोलोंका विद्युत् विश्लेषण किया। सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह थी कि जलके विभाजनमें ओषजन और उदजन भिन्न भिन्न बिजलोदों पर निकलती थी। क्या जल धनात्मक बिजलोद पर विभाजित होता है और उदजन किसी रीतिसे ऋणात्मक बिजलोद पर चला जाता है? इसी प्रकारको बहुतसी उलझने इन प्रयोगोंमें पड़ीं। इन सब बातोंको समझानेके लिये निम्नलिखित रीतिसे प्रयोग किये गये।

बाटरीके ऋणात्मक बिजलोदके चारों ओर पांशुज-गन्धेतका घोल रक्खा गया और धनात्मक बिजलोदके पास केवल जल। इन दोनोंको मिलाते हुए एक ज्ञात घोलसे भरा हुआ बर्तन रक्खा गया। विद्युत् के चलाते ही धनात्मक बिजलोद पर गन्धकाम्ल उत्पन्न हो गया। इस प्रकारके प्रयोगोंसे बहुतसे नये नये विचार प्रगट किये गये परन्तु कोई ठीक नहीं हुआ। किस प्रकार इन विषयोंका विस्तार आज तक हुआ है इसका वर्णन कहीं आगे किया जायगा। अब और कुछ यहाँ पर भूमिकाके रूपमें न कहकर सर हम्फ्री डेवीके अनुसन्धानोंका वर्णन किया जायगा जिसके कार्यों ने रासायनिक जगत् को केवल जगा ही नहीं दिया वरन् उसमें एक प्रकारकी जान डाल दी।

सर हम्फ्री डेवी

(१७७८—१८२९)

अधिकतर संसार में बड़े बड़े पुरुष सर्वदा अपना श्रेष्ठ कार्य बाल्यावस्थामें ही करके शीघ्र मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। ठीक ऐसा ही डेवीके विषयमें कहा जा सकता है। वह केवल २२ वर्ष की आयुमें ही रायल इन्स्टीट्यूशनका मुख्य आचार्य नियुक्त कर दिया गया था।

डेवीका जन्म १७ दिसम्बर १७७८ को एक प्रसिद्ध बढ़ईके घर पेनजेन्स में हुआ। यद्यपि अपने बचपनमें उसने पढ़ने लिखनेमें अधिक मन नहीं लगाया, परन्तु बादमें उसे पढ़ने लिखनेके सिवा कोई काम ही नहीं था। पिताके मर जाने पर डेवी एक डाक्टरके पास नौकर हो गया परन्तु इनको नये प्रयोग करनेकी ऐसी चाह थी कि कुछ प्रयोगोंमें झगड़ा होजानेके कारण उस डाक्टर ने डेवीको अपने यहांसे हटा दिया। दैवयोगसे डेवीका परिचय डाक्टर बेडोज़से हुआ जो उस समय एक विख्यात व्यक्ति था। बेडोज़ ने एक न्यूमेटिक इन्स्टीट्यट खोल रक्खा था। जहां पर मनुष्यों पर गैसोंका (Physiological) प्रभाव देखा करता था। यहाँ पर डेवी ने आकर गैसोंका प्रभाव अपने ऊपर देखना आरम्भ कर दिया। इससे उसे हानि भी हुई परन्तु इसीके कारण

एक उच्चकोटिका अनुसन्धान यहाँ हुआ अर्थात् नौषस ओषिदका प्रभाव ज्ञात किया। इसके सूँघने से मनुष्यको हँसी आने लगती है। इसी कारण इसे "हास्यकर गैस" कहते हैं।

इस कार्यसे डेवी इतना प्रसिद्ध होगया कि रायल इन्स्टीट्यूशन खुलने पर जबकि वह केवल बाईस वर्ष का था, प्रोफेसर नियुक्त किया गया।

यह विद्यालय काउण्ट रमफोर्ड ने बड़े बड़े धनाढ्यों की सहायतासे स्थापित किया था। उस समयसे अब तक बड़े बड़े उच्चकोटिके वैज्ञानिकों को ही इसके प्रोफेसर होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है जैसे डेवी, फैरेडे, सरजेम्स डेवार इत्यादि। आजकल इस पद पर जगत् विख्यात् नोबेलपुरस्कारके विजेता सर विलियम ब्रैग सुशोभित हैं। जगह थोड़ी होनेके कारण डेवीके मुख्य मुख्य अनुसन्धानोंका ही वर्णन किया जायेगा क्योंकि उनको पूरे रूपमें देना बड़ा ही कठिन कार्य है।

डेवीके अनुसन्धान

सर्वप्रथम कार्य जिसके लिये डेवीका नाम सर्वदाके लिये जीवित है रसायन जगतको तत्वोंका ज्ञान देना है। डेवी ही ने सबसे पहिले इस विषय पर वैज्ञानिक रीतिसे प्रकाश डाला, यद्यपि लैवासिये ने भी इस विषय पर कुछ विचार प्रगट किये थे परन्तु उनमें अधिक सत्यता नहीं थी। उदाहरणतः चूना और स्फुरओषिदको भी लैवासिये तत्त्व ख्याल करता था। डेवी ने अपने और दूसरोंके कार्यसे इस विषयका बहुत कुछ उद्धार किया। हरिन्को डेवीके समय तक सब लोग यौगिक बतलाते थे परन्तु कई वर्ष लगातार कार्य करके अन्तमें हरिन् को तत्त्व सिद्ध करना डेवीके अद्भुत प्रयोगिक होनेको एक झलक है। डेवीको अपने समयके सबसे बड़े प्रयोगिकोंमें कहा जाता है और वास्तव में वह था भी।

विद्युत्के विषयमें डेवी ने विद्युत् विश्लेषण पर बहुत कुछ कार्य किया और बहुत सी वस्तुओं पर विद्युत् धाराका प्रभाव देखा, साथ ही साथ वह धातुओंके ऐसे जोड़े विदृत करनेमें लगा रहा जिनसे कि धारा उत्पन्न होवे। उसने एक सचेष्ट बाटरी बनाई (Active cell) जिसमें केवल एक ही धातु काममें लाई जाती थी परन्तु दो घोल प्रयोग किये जाते थे।

डेवीके समयमें जलका विद्युत् विभाजन किया जा चुका था। परन्तु उसने बतलाया कि यदि बिलकुल शुद्ध जल लिया जाये जिसमें लवण क्षार इत्यादि न मिले हों तो जलमें विद्युत् धाराको चालकता अधिक कम हो जाता है। डेवी ने पहिले ही लवणके घोलका विद्युत् विश्लेषित करके उनसे क्षार और अम्ल प्राप्त कर लिये थे। अब उसने इसका प्रयोग क्षार और अम्लोंके घोलों पर भी आरम्भ कर दिया परन्तु इसमें कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई, केवल ओषजन और उद्जन ही निकल कर रह जाती थीं।

फिर उसने गलाये हुए क्षारोंको जल रहित दशामें विश्लेषित किया, उसने अपने फलोंके एक लेक्चरमें इस भांति कहा है, "पांशुज-क्षारका छोटा सा टुकड़ा जो कि पहिले दो चार मिनटके के लिये बाहर रक्खा रहा था, ताकि उसके सतह पर चालन शक्ति आ जाये, एक रोधक घेरे पर रक्खा गया और इसको बड़ी बाटरीके ऋणात्मक बिजलोद से जोड़ दिया गया। इस टुकड़ेका ऊपरका सतह एक परोप्यम् तारसे धनात्मक बिजलोदसे जोड़ दी गई। इस प्रकार एक प्रबल क्रिया आरम्भ हो गई। जिन जगहों पर यह टुकड़ा दोनों बिजलोदोंसे जुड़ा था, वह गलने लगा। ऊपरको सतह पर कोई गैस निकलने लगी। और ऋणात्मक बिजलोदके चारों ओर चाँदी की तरह चमकते हुए छोटे छोटे कण उत्पन्न होगये। उनमेंसे कुछ तो जलने भी लगे और उनकी सतह एक सफेद वस्तुसे पुत गयी।

डेवी ने इस कार्यमें अपनी प्रयोगिक चतुरता की एक झलक वैज्ञानिक संसारको दिखा दी थी। इसके उपरान्त हो उसने इसी रीतिसे सैन्धकम्-क्षार से विद्युत् द्वारा सैन्धकम् धातुको तात्विक दशामें प्राप्त किया। डेवी इन क्षारोंको ओषिद समझता था। इसी कारण वह अमोनियाको भी ओषिद कहा करता था।

डेवी ने बरज़ेल्यूस की सम्मति के अनुसार पार्थिव-क्षारोंके कार्यको हाथमें लिया, उसने इनको पारद-ओषिदसे मिला कर विद्युत् विश्लेषित करना चाहा और इस प्रकार करनेसे पारदम् के साथ मिश्रण प्राप्त हुये। इन मिश्रणोंसे कुछ परिश्रमके पश्चात् डेवी ने भारम्, खटिकम्, स्त्रंशम् प्राप्त किये। पाठक देखेंगे कि किस प्रकार डेवी ने एक के पश्चात् दूसरे तत्त्वको प्राप्त किया, यह कार्य एक साधारण मनुष्य का नहीं हो सकता। डेवी ने टंकिकाम्लको विश्लेषित करनेका भी उद्योग किया परन्तु इसमें पूरी सफलता गेलुसाक और थेनार्डको ही हुई।

डेवीके समयसे पहिले लैवासियेका ओषजन-अम्ल सिद्धान्त प्रसिद्ध था क्योंकि उस समय गन्धकाम्ल स्फुरिकाम्ल इत्यादि ही विदित थे। इस सिद्धान्तको गलत सिद्ध करने वाला डेवी ही था। उस समय हरिन्‌को यौगिक खयाल किया जाता था। शीले ने इसको सबसे पहिले उदहरिकाम्ल और मांगनीज़ द्विओषिदसे प्राप्त किया था और इसका नाम फ्लोजिस्टनरहित मेरिनाम्ल रक्खा। बरज़ेल्यूसके समय तक सब यह समझते थे कि हरिनमें ओषजन मिली हुई है। डेवी इस बातको मानता तो था कि हरिन् और मूरियाटिकाम्ल (उदहरिकाम्ल) में ओषजन होता है परन्तु उसके मनमें कुछ शङ्का होने लगी क्योंकि जितनी बार उसने हरिन् से ओषजन प्राप्त करनेका उद्योग किया उतनी ही बार असफलता प्राप्त हुई।

डेवी ने बहुतसे प्रयोग किये परन्तु सब बेकार। उसने हरिन्‌के साथ स्फुरको ज़ोरसे गर्म किया। जिससे दो यौगिक बने, एक ठोस और दूसरा द्रव। उस द्रवकी बहुत कुछ मात्रा इकट्ठी की और उसको अमोनियाके साथ जलाया परन्तु ऐसा करनेसे जल इत्यादि या कोई ऐसी वस्तु नहीं बनी जिससे यह ज्ञात होता कि हरिन् में ओषजन था। इसलिये यदि हरिन्‌में ओषजन नहीं तो मेरिनकाम्ल में ही कहांसे हो सकता था। इस कारण डेवी ने बतलाया कि हरिन् एक तत्त्व है और उदहरिकाम्ल में ओषजन नहीं होता। इस बातको पहिले तो वैज्ञानिकों ने नहीं माना क्योंकि यह बात लैवासियेके विरुद्ध थी, विशेष कर गेलुसाक और थेनार्ड लैवासियेके सिद्धान्त पर अटल रहे पर बाद में हो इन दोनों ने इस सिद्धान्तके विरुद्ध एक बड़ा महत्त्व पूर्ण कार्य किया अर्थात् उदहरिकाम्ल और उदश्यामिकाम्लमें समानता दर्शाई। क्योंकि उदश्यामिकाम्ल में ओषजन नहीं होता इसलिये डेवीकी बात मान ली गई।

डेवी ने केवल यह ही नहीं किन्तु मनुष्योंके लिये भी अधिक सेवा की। उसने एक नये प्रकार का लैम्प बनाया जिसको "डेवी लैम्प" कहते हैं। यह खान खोदनेवालों के लिये अति लाभदायक है। इसको लेकर वह खानमें खोद सकते हैं और देख भी सकते हैं परन्तु आग नहीं लग सकती।

डेवी ने अपने विचार रासायनिक स्नेह की ओर भी प्रेरित किये थे। पहिले तो वह इसमें कुछ श्रद्धा नहीं रखता था परन्तु वोल्टाके कुछ प्रयोग दोहराने पर "मेल सिद्धान्त" का मानने वाला हो गया। डेवी ने रासायनिक स्नेहका विद्युत् से सम्बन्ध बताया। उसका कहना था कि जब दो तत्त्व मिलते हैं जैसे ताम्रम् और गन्धक तो तांबे और गन्धकके संचार आपसमें शिथिल होजाते हैं। बस डेवी वहीं तक रहा। पाठक देखेंगे कि इन्हीं विचारोंका बरज़ीलियस ने समर्थन किया और उनको विस्तार भी दिया।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि इतना लिखने पर भी डेवी का सबसे बड़ा अनुसन्धान रहा जाता है। यह अनुसन्धान फेरेडे जैसे हीरेको कीचड़मेंसे निकाल कर लालके रूपमें रासायनिक जगत्‌को देना था। यह उसकी विज्ञानके लिये सबसे बड़ी सेवा कही जा सकती है। इसका वृत्तान्त संक्षेप रूपमें आगे दिया जायगा।

डेवी अन्तिम समयसे एक वर्ष पहिले अपनी जगह छोड़ चुका था। उसका स्वास्थ्य लगातार परिश्रमके कारण बिगड़ चला था। इस कारण वह भिन्न भिन्न देशोंमें स्वास्थ्य वृद्धिके कारण जाया करता था। पर साथ साथ वैज्ञानिक कार्य नहीं छोड़ता था। डेवी लगभग उस समयकी प्रत्येक वैज्ञानिक सभाका सदस्य था और कुछ दिनों तक रायल सोसाइटीका प्रधान भी रहा। इस सोसाइटी ने डेवीकी स्मृतिमें "डेवी पदक" स्थापित किया है जो संसारमें बड़े बड़े वैज्ञानिकोंके भाग्य पड़ा है। १८१२ ई० में सरकार ने डेवीको थोड़ी ही अवस्था में "सर" की उपाधिसे सम्मानित किया और १८१८ में बैरन बनाया गया। डेवीके भाषण बड़े मधुर और गूढ़ होते थे। हृदयसे डेवी बड़ा दयालु और उत्साहित विद्यार्थियों का सहायक था, जिसका उदाहरण फैरेडे है। अपने स्वास्थ्यके कारण डेवी ने ५१ वर्ष की ही अवस्थामें २९ मई सन् १८२९ को जनेवा में संसारसे बिदा मांगी। प्रयोगिक वैज्ञानिकोंमें उसे सम्राट कहा जा सकता है और वास्तवमें वह था भी।

परमाणु भारका निकालना

बरजेल्यूस, स्टास, रिचार्ड्‌श इत्यादि के अनुसन्धान

[ले० श्रीआत्माराम एम० एस-सी०]

पहिले ही यह बतलाया जा चुका है कि जान डाल्टन ने किस प्रकार परमाणु सिद्धान्त की नींव डाली। इसके साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि इस सिद्धान्त को किस प्रकार वैज्ञानिकों ने रासायनिक प्रक्रियाओंको समझानेके लिये कितने नये नये रूपोंमें दर्शाया है। परमाणु भार डाल्टन के समय से वर्तमान काल तक रसायनज्ञों की रुचि को आकर्षित करता रहा है। यहां पर परमाणुभारका ठीक ठीक महत्व भी बता देना परम उपयोगी होगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम किसी तत्वके परमाणुका भार निकाल सकते हैं और भारको ही परमाणु भार कहते हैं। नहीं नहीं, इससे कहीं भिन्न इसका अर्थ है। परमाणु भार केवल उदजन और दूसरे तत्वके परमाणुके भारोंका अनुपात है। यह केवल यह बताता है कि किसी तत्वका परमाणु उदजन परमाणु से कितना गुणा भारी है। ओषजन का परमाणु भार १६ है, इसका यह अर्थ है कि ओषजनका परमाणु उदजनके परमाणुसे १६ गुणा भारी है। खैर, यह तो परिभाषा रही। अब यह प्रश्न उठता है कि किस प्रकार इस संख्याको निकाला जाये, क्योंकि न तो किसी ने परमाणु देखा ही है या किसी भांति कभी देखा जा सकता है। भला फिर उनके भारका अनुपात निकालना तो एक स्वप्नको सी बात होगी। इस समस्याको हल करने वाला बरज़ेल्यूस था जो कि अपने समयका सबसे बड़ा रसायनज्ञ था। उसकी प्रयोगशालामें वोलर, मिटशरलिच इत्यादि जैसे उच्चकोटिके वैज्ञानिकोंने शिक्षा पाई। उसका कहना उस समय एक नियम माना जाता था। बरज़ेल्यूस के पश्चात् डूमा इत्यादि ने अपनी अपनी सुविधाके अनुसार परमाणु-भार निकाले। इन सबोंके पश्चात् मुख्य कार्य्य स्टासका आता है जिसने अधिक परिश्रमके साथ परमाणु-भार निकाल कर पहिली कुछ संख्याओं को ठीक किया। वर्तमान कालमें रिचार्ड्‌स ने इस विषय पर अद्भुत परिश्रम और चतुरताके साथ कार्य्य किया। आजकल उसकी दी हुई संख्याएं ठीक मानी जाती हैं। रिचार्ड्‌सके

शिष्यों ने इस कार्य्यको उसकी मृत्युके पश्चात् भी उतने ही परिश्रमसे जारी रक्खा है जैसे प्रो० हारनशिमड, बेक्सटर इत्यादि।

क्योंकि इस सम्बन्धमें बरज़ेल्यूस, स्टास और और रिचार्ड्स का ही कार्य्य अधिक प्रसिद्ध है इसलिये यहाँ पर इन तीनों व्यक्तियोंका ही वृत्तान्त संक्षिप्त रूपमें देनेकी चेष्टाकी जायगी।

जां जेकोब बरज़ेल्यूस

(१७७६—१८४८)

बरज़ेल्यूस का जन्म २० अगस्त सन् १७७६ को स्वीडनके वेफ़रसण्डा नामक स्थान पर हुआ। उसका पिता एक छोटेसे स्कूलमें अध्यापक था जो बरज़ेल्यूसको चार वर्षका ही छोड़ कर मर गया। साथ साथ कुछ दिनों उपरान्त उसकी माता भी संसारसे चल बसी। इस प्रकार बेचारे बरजेल्यूस को अपने बचपनमें दूसरे सम्बन्धियोंकी शरण लेनी पड़ी।

बरज़ेल्यूसकी प्रारम्भिक कथा बड़ी ही विचित्र है। जब वह एक विद्यार्थी के रूप में पाठशाला में पढ़ता था तो उसके अध्यापक उससे प्रसन्न नहीं रहते थे क्योंकि वह अपना काम भले प्रकार नहीं करता था, विशेष कर रसायनमें तो वह बहुत ही कम जानता था। जब १८०२ में सब कामोंसे निवृत्त हो गया तब स्टाकहोल्म जा करके अस्पताल में काम आरम्भ कर दिया। इसके अनुसन्धानों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वहांके बड़े बड़े आचार्य्यों से इसकी मित्रता हो गई।

उसका सबसे प्रसिद्ध कार्य्य परमाणु-भार पर हुआ। सन् १८१० के पश्चात् उसने कई लेख इस विषय पर लिखे। यद्यपि वह डाल्टनके परमाणु सिद्धान्त को मानता अवश्य था परन्तु उसकी वर्तमान दशासे संतुष्ट न था और जानता था कि केवल इसीके आधार पर कोई रासायनिक क्रिया ठीक ठीक नहीं समझाई जा सकती है कि जब तक कोई ठीक २ सम्बन्ध उनमें स्थापित न किया जाये। इस कारण उसने तत्वोंका तुल्यांक भार निकालना आरम्भ कर दिया। इस कार्य्यमें जितना परिश्रम उसने किया वह वर्णन करना कठिन बात है। जैसा कि कुछ लोगोंका कथन है, इस कार्य्यके लिये उसने कमसे कम दो सहस्र यौगिकोंका विश्लेषण किया। साथ साथ पाठक यह भी ध्यानमें रक्खें कि उस समयकी प्रयोगशाला एक भोजनशालासे अधिक अच्छी न थीं। परन्तु तब भी उसने बड़ी ही चतुरतासे कार्य्य किया। नीचे कुछ उसके निकाले हुये परमाणु भार और अखिल जातीय सभाके माने हुये भार दिये जाते हैं।

	बरजेल्यूस	अखिल जातीय सभा
सीसम्	२०७'१२	२०७'२०
हरिन्	३५'४१	३५'४६
पांशुजम्	३६'१६	३६'१०
गन्धक	३२'१८	३२'०६

पाठक देखेंगे कि उसकी दी हुई और अबकी संख्यामें अधिक भेद नहीं है। साथ ही साथ उस समय और वर्तमान कालकी सुविधाको देखिये। इससे अधिक प्रमाण उसकी चतुरताका न दिया जा सकता है और न आवश्यक है।

जिस समय बरज़ेल्यूस ने रसायन क्षेत्र में अपना पैर रक्खा तो सब कांटोंसे भरा हुआ था। जिधर दृष्टि पड़ती उधर ही अन्धकार था। उस समय बड़े वैज्ञानिकोंके दिमाग टक्कर खा रहे थे और थककर रह जाते थे, उदाहरणतः किस प्रकार रसायनिक वस्तुओं को सूत्रों में लिखा जाय, कैसे परमाणु भार निकाले जायें, विद्युत् धाराका क्या आधार है और सबसे बड़ा जो अभी तक जादूगर का हास्य है, अर्थात् रासायनिक स्नेह। इन सब विषयों पर ध्यानपूर्वक उसने कार्य्य किया और वह प्रत्येकके विषय कुछ न कुछ ठीक सम्मति रखता था।

परमाणु भारोंके निकालनेमें उसने बड़ी चतुरता से कार्य्य किया। कभी कभी एक उदाहरण इस विषयमें दिया जाता है जैसे सीसम्का परमाणु भार। उसने सीस-गन्धिद्को ओषिदीकृत किया और फिर देखा कि बचे हुये द्रवमें कोई सीसम् या गन्धकाम्ल नहीं है अर्थात् सीसे और गन्धकाम्ल का वही अनुपात सीस गन्धेतमें है जो गन्धिदमें परन्तु सीस ओषिदमें ओषिदके चार भागोंमेंसे एक भाग पहिले ही मिला है इसलिये तीन भाग गन्धकसे मिले हैं। इस प्रकार उसने गन्धक और सीसम्के परमाणु भार निकाले। इसके पश्चात् ही दो बड़े अच्छे नियम निकले जिनकी सहायतासे बरज़ेल्यूस ने अपनी दी हुई संख्याओंको फिरसे दोहराया और उसमेंसे कुछको ठीक भी किया। वह नियम यह थे डूलांग और पेटिट का परमाणु-ताप नियम और मिटशरलिकका समरूपक नियम।

बरज़ेल्यूस का दूसरा बड़ा कार्य्य हरिन् पर हुआ। पाठकों को याद होगा कि पिछले भागमें हरिन्की तत्वताके विषयमें पहिले ही बताया जा चुका है कि डेवी के समय से पहिले हरिन् उदहरिकाम्ल की ओषिद मानी जाती थी। यद्यपि इस पर उसने कोई प्रयोगिक कार्य्य नहीं किया परन्तु तब भी इस पर कई लेख लिखे। शुरूमें वह इसमें कुछ विश्वास नहीं रखता था परन्तु बादमें जब डेवी ने भली प्रकार यह दिखला दिया कि हरिन् तत्व है, इसमें ओषजन इत्यादि कुछ नहीं तब वह इसको मानने लगा था। उसने अरुणिन् भी निकाला था परन्तु इसका यश उसको नहीं मिला। उसने एक कांचकी नली भर कर अपने पास रक्खी थी और अपने शिष्योंको दिखाया करता था, देखो, यह मेरी मूर्खता है। यदि मैंने कुछ ध्यान दिया होता तो अरुणिन्को अन्वेषण करने वाला कहलाता।

बरज़ेल्यूसको यौगिकोंके बनानेकी क्रिया समझाने की बड़ी धुन लगी हुई थी। उसने युगल सिद्धान्त (Dualistic System) निकाला इसमें भी लैवाशिये के विचारोंकी झलक प्रतीत होती है। उसका कथन था कि यौगिक युगल स्नेहसे बनते हैं। अर्थात् लवण अम्ल और क्षारके मेलसे बनते हैं। इसी प्रकार कई प्रकारके उदाहरणोंसे उसने इसका समर्थन किया।

बरज़ेल्यूस ने रासायनिक प्रक्रियाओंको समझाने के लिये विद्युत् विचारोंसे भी दृष्टि डाली और बहुत से लवणोंके घोलोंको विद्युत् विश्लेषित किया, अर्थात् लवणोंसे क्षार और अम्ल उत्पन्न किये। इस घटनाका बरज़ेल्यूस पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने तुरन्त ही इसको और ओषजनको लेकर रसायनको एक नया रूप देना चाहा जो डेवीके विचारोंसे कहीं बढ़कर था। डेवी ने तो केवल यह ही कहा था कि जब दो तत्व परस्पर मिलते हैं तो उनके परमाणु भिन्न भिन्न संचार ग्रहण कर लेते हैं परन्तु उसका कथन इससे बढ़कर था। उसने बतलाया कि प्रत्येक परमाणु दो प्रकारके होते हैं अर्थात् परमाणुमें चुम्बक की तरह दो ध्रुव होते हैं। एकमें ऋणात्मक विद्युत् और दूसरेमें धनात्मक। पाठक को याद रखना चाहिये कि वास्तवमें यहींसे परमाणु संगठनकी नींव पड़ती है, अब तो यह एक मानी हुई बात है कि प्रत्येक परमाणुमें दो प्रकारके संचार होते हैं। तत्त्वोंका ऋणात्मक या धनात्मक होना उनके संचार पर निर्भर था अर्थात् जो भी अधिक हो। इस प्रकार हरिन् में अधिक संचार ऋणात्मक तरहका माना गया क्योंकि वह ऋणात्मक है।

इस विद्युत् विचारको लेकर उसने अपने युगल-सिद्धान्तको और भी दृढ़ आधार पर रक्खा जैसे ओषजन ऋणात्मक था और गन्धक धनात्मक। इसी प्रकार यह दोनों मिल करके गन्धकाम्ल बनाते हैं।

इसी विचारसे विद्युत् विश्लेषणको भी भले प्रकार समझाया क्योंकि प्रत्येक विद्युत् चालकमें ऋणात्मक और धनात्मक संचार होते हैं। विद्युत्

धारा केवल उन दोनोंको पृथक् पृथक् कर देती है। तभी वह दोनों ध्रुवों पर निकलते हैं। यों तो बरज़ेल्यूसके कामों पर ही एक बड़ी पुस्तक लिखी जा सकती है, यह केवल एक उसकी भूमिका है।

इसके साथ ही साथ बरज़ेल्यूस ने साहित्यमें भी कम काम नहीं किया। उसने एक पुस्तक लिखी जो ६ भागोंमें छपी और अपने समय में यह अद्वितीय थी। वह प्रत्येक वर्ष स्टाकहोलम अकेडेमी को रसायन की उन्नति की एक वार्षिक रिपोर्ट भी दिया करता था, यह ही नहीं कि बरज़ेल्यूस एक अनुसन्धानक ही था। वह एक बड़ा आचार्य्य भी था। प्रत्येक वर्ष वह अपनी प्रयोगशाला में अच्छे अच्छे रसायन विद्यार्थियों को बुलाया करता था। वोलर, मिटशरलिक, रोज़, मैगनस इत्यादि इसी प्रयोगशालामें कार्य्य करके प्रसिद्ध हुये थे। यों तो बरज़ेल्यूस जब किसी अनुसन्धान पर धावा बोल देता था, बस उसको उड़ा ही देता था परन्तु यह नहीं कि किसी शत्रुतासे ऐसा करता था, नहीं उसके विचार ही इतने गूढ़ थे। उस समयमें वह रसायन का नेता था, उसका कथन एक नियम समझा जाता था। बरज़ेल्यूसका सरकारमें भी अधिक मान था। इसी कारण सरकार ने उसे बैरनकी उपाधि दी थी। वह अपने विद्यार्थियों को अधिक प्यारकी दृष्टिसे देखता था। वोलरके एक लेखसे इसका पता चलता है। जगह न होनेके कारण यहां उसका अनुवाद नहीं दिया जा सकता। उसके कुछ कड़े शब्दोंके कारण लोग उसके शत्रु हो जाते थे। प्रकृति ने उसको इतना हृष्ट पुष्ट बनाया था कि १५ या १६ रोज़ वह प्रयोगशालामें कार्य्य करने पर भी नहीं थक पाता था। उसके आकर्षण ने किस पर प्रभाव नहीं डाला। वास्तव में वह एक बड़ा गुरु था। अन्तमें उसका कुछ समय बड़े झगड़ोंमें बीता क्योंकि लोग उसके सिद्धान्तोंके विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे परन्तु अब तक भी उसके से चतुर और ठीक कार्य्य करने वाले बहुत कम रसायनज्ञ हुये हैं। परमाणु भारका कार्य्य उसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। अन्त समय तक उसने तन मन धनसे रसायनकी सेवा की। अन्तमें ७ अगस्त १८४८ को सर्वदा के लिये परलोक सिधारा।

कंदरासे गगनस्पर्शी भवन

[ले० श्रीजगतपति चतुर्वेदी]

प्रारम्भिक आवास

इस भूतल पर मनुष्य ने जिस समय पहले पहल जन्म धारण किया, उस समय वह प्रत्येक प्रकारके आवास स्थानसे रहित था। उस समय मनुष्य ने कितने दिन व्यतीत किए, परन्तु शान्त ऋतुमें भी रात और दिनमें सर्दी गर्मीका परिवर्तन शीघ्रचेतन और बुद्धिमान मनुष्य को किसी प्रकार का आवास स्थान बनाने की आवश्यकता जतलाने के लिये पर्याप्त था। आँधी और वर्षाको देख कर तो किसी प्रकार इस काममें वह आलस्य ही नहीं कर सकता था।

मनुष्य ने आवास स्थान बनानेमें क्रमशः किस प्रकार उन्नति की, इसका ज्ञान आधुनिक युगमें विद्यमान कतिपय असभ्य जातियोंकी दशा, आचार व्यवहार और रीतिका निरीक्षण करनेसे हो सकता है। मध्य अफ्रिका, अमेरिकाके धुर दक्षिणी भाग, आस्ट्रेलिया और प्रशान्त महासागरके कतिपय द्वीपोंके मूलनिवासी आजसे सहस्रों वर्ष पूर्व आदिम युगके मनुष्योंसे कुछ ही अधिक कुशल हैं। यदि उनकी रीतियोंका निरीक्षण किया जाय और योरोप एशिया तथा अमेरिकामें पाए गए प्राचीन कालके अवशेषोंकी उनसे तुलनाकी जाय तो आवास-स्थान निर्माणमें उन्नतिका अच्छा परिचय मिल सकेगा।

प्रत्येक दशामें मनुष्य ने पृथ्वी और पड़ोसमें उसकी उपजका उपयोग किया और उसने जिस प्रकारका निवास स्थान बनाया, वह मुख्यतया दो बातों पर निर्भर था—एक तो यह कि एक स्थान पर उसे कितने समय तक रहना था; दूसरी यह कि भोजन प्राप्त करनेके लिए आवश्यक परिश्रम के अतिरिक्त कितना समय वह आवास निर्माणमें लगा सकता था। ये दोनों बातें वास्तवमें भोजन-सामग्रीकी प्राप्ति पर अवलम्बित थीं। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि अत्यधिक खाद्यपदार्थ उपलब्ध होनेकी अवस्थामें बहुत कम खाद्यपदार्थ मिलनेकी अपेक्षा मनुष्य अपने आवासके लिए बहुत अधिक समय लगा सका होगा क्योंकि यदि भोजन बहुत आसानीसे प्राप्त हो तो मनुष्यको परिश्रम करनेके लिए कोई प्रलोभन नहीं रहता और वह आलसी हो जाता है। जब भोजन साधारण मात्रामें कुछ परिश्रम करने पर मिल सकता है तो मनुष्य परिश्रमी हो जाता है। इस कारण जब भोजन-प्राप्ति के लिए आवश्यक परिश्रमसे उसे अवकाश मिलता है तो वह उसे दूसरे उपयोगी कार्योंमें लगाता है।

पहले पहल मनुष्य ने पर्वतों की कन्दराओंमें शरण ली और बहुधा उस पर अधिकार जमानेके लिए उसे वन्य पशुओंसे युद्ध भी करना पड़ा। जब इन दोनोंमें से एक पराजित होकर प्राण त्याग कर सका तो उसकी अस्थियाँ किसी भविष्यके अन्वेषक को इस युद्ध की कथा बतलानेके लिए धरातल पर फैली हुई रह गईं। जिन स्थानों पर पर्वत थे वहाँ तो मनुष्य को शरण देनेके लिए कंदराएँ थीं परन्तु जंगलोंमें किसी दूसरे आश्रय को ढूँढ़ना पड़ सकता था। वहाँ पर मनुष्य ने पहले कुछ पत्तादार डालियोंको ज़मीनमें गाड़ कर आवास बना साधारण हवासे रोक की परन्तु किसी आँधी के अनुभवने उसे सुझाया कि डालोंको गोलाईमें गाड़ कर उनके सिरे झुका कर ऊपर एक स्थान पर बाँध देनेसे शंकुके आकार की झोपड़ी बन सकती है। इस आकारकी झोपड़ियाँ अफ्रिकाके ग्रामोंमें अधिक संख्यामें देखी जा सकती हैं। वर्षा से बचावके लिए उन झोपड़ियोंमें ताड़ पत्रकी भाँति बड़ी पत्तियाँ लगाई गईं और बीचके छेदों या साँसोंको मिट्टीसे भर दिया गया। जब मनुष्य कुछ अधिक उन्नति कर हथियारोंका उपयोग सीख सका, पत्तोंका स्थान पेड़की बड़ी छालों ने लिया। कुछ जातियाँ जो भेड़ बकरियाँ पालती थीं, इनके चमड़ोंसे पत्तोंकी जगह काम ले सकीं। इस प्रकार शंकाकार झोपड़ियों का जन्म हुआ।

शंकाकार झोंपड़ी कोई विशेष अच्छा आवास नहीं हैं। इसके ऊपरसे वर्षाका पानी तो सुगमतया बह जाता है लेकिन बीचकी ऊँचाईसे चारों ओर बहुत सीधी ढाल होनेसे खड़े होनेको जगह नहीं मिल सकती। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए नीचेकी ओर भूमि खोदनी पड़ी। इस प्रयत्नसे मनुष्यके ध्यानमें मिट्टीकी पृथक् दीवार बना उसके ऊपर शंकाकार छप्पर डालनेकी बात सूझी।

जब मनुष्य ने दीवार और उसकी छाजनको पृथक् पृथक् रूपमें बनाना ज्ञात किया तो उसके ध्यानमें अधिक बड़ा और कई कमरों वाला मकान बनानेका विचार आया। इसे आयताकार (चौखूंटा) रूपमें बना उसके ऊपर बीचमें एक बंडेरो या ऊँचा भाग उसके दोनों ओर ढालू छाजन बना देने पर मनुष्य जितना बड़ा चाहता उतना बड़ा मकान बना सकता था जिसमें कई परिवार निर्वाह कर सकते थे।

जब मनुष्य ने हथियारोंके प्रयोगमें कुछ उन्नति की तो इस प्रकारके मकान अधिक दृढ़ बनाये जाने लगे। मकानके बनानेमें परिस्थितियोंके अनुसार मिट्टी, पत्थर वा लट्ठोंका प्रयोग किया जाता है। पत्थरके मकानोंका वर्णन करनेके पूर्व यहाँ पर लट्ठों के मकानोंकी चर्चा कर लेना उचित होगा। प्राचीन कालमें शत्रुओंसे रक्षाका कोई विशेष साधन न होनेके लिए मनुष्योंको सुरक्षित आवास स्थान बनानेकी बड़ी चिन्ता हुई होगी। वन्य पशु वा दूसरे मनुष्योंका आक्रमण बचानेके लिये साधारण भूमि पर मकान होने पर उसने चारों ओर लकड़ीका बाड़ा वा चहार दीवारी बनाई परन्तु जहाँ कोई झील दिखाई पड़ी वहाँ किनारेसे दूर पानीके बीचमें घर बनानेका विचार किया। इसके लिए उसने पानीमें एक ऊँचाई तक लट्ठे गाड़ कर उन पर लकड़ीका मंच बनाया और उसके ऊपर लकड़ीका टट्टर मिट्टीसे पोत कर दीवाल की भाँति तैयार किया। फिर उसे छप्परसे छाकर उसने मकान तैयार कर लिया।

इस प्रकारके घर बनानेके लिये झीलके किनारे जंगल काटने पर लकड़ी प्राप्त हुई। किनारेका जंगल कटने पर कृषिके लिये भी भूमि निकल आई और मनुष्य अपना निर्वाह सुगमतया कर सका।

झीलके अंदर बने मकानसे किनारे आनेके लिए लकड़ीका पुल बनाया गया जिसको रातको उठा लेने पर घरमें शत्रुके आनेकी आशंका नहीं रहती। इस प्रकारके मकान योरोपमें स्विटज़रलैंडमें बहुत थे जहाँ झीलोंकी बहुतायत है। इन झीलोंमें किसी समय ऐसे सैकड़ों गांव बसे हुये थे। स्विटज़रलैंड को छोड़ कर मध्य योरोप, रूस और अन्य देशोंमें भी ऐसे मकानोंका प्रचार था। लट्ठोंके मकान आज कल भी मध्य अफ्रिका, दक्षिणी अमेरिका, और अन्य देशोंमें देखे जा सकते हैं। सिंगापुरमें तो चीन निवासियों की एक पूरी बस्ती ही पानीके ऊपर बने मकानोंमें है जिनमें अधिकांश मल्लाह हैं। इसी प्रकार बोर्नियोमें बुनी और इटलीके वेनिस नगरमें लट्ठोंके मकान हैं।

स्विटज़रलैंडकी झीलोंके अन्दरके मकान उजड़ चुके हैं परन्तु एक बार सन् १८५४ ई० में बहुत सूखा पड़ने पर वहांकी झीलोंका पानी बहुत नीचे चले जानेसे लट्ठोंकी सहस्रों पंक्तियां पहले पहल पानीके ऊपर दिखाई पड़ीं। इन लट्ठोंके बीच जो आजसे ५००० वर्ष पूर्व गाड़े गए थे बहुत सी मनोरञ्जक और विचित्र वस्तुएँ मिलीं जिनसे ज्ञात हुआ कि झीलोंके निवासी विशेष आनन्ददायक जीवन व्यतीत करते थे।

पत्थर और ईंटके मकान

इस बातकी सम्भावना हो सकती है कि मनुष्य ने आवास बनानेके लिए अन्य सब पदार्थों के पूर्व पत्थरका ही उपयोग किया। भूमि पर कहीं कहीं पत्थर के विरूप ढोंके मिल सकते थे, इसलिए उनको किसी तरह एक के ऊपर एक रख भद्दा आवास बन सकता था। उत्तरी अफ्रिका की मरुभूमिको नील नदीकी घाटीसे पृथक् करने

वाली पहाड़ी भूमि पर आजसे १०००० वर्ष पूर्व रहनेवाले मनुष्यों ने पत्थरके ढोंकोंसे अपने आवास बनाए थे। जो वहाँ पड़े हुए थे। आज भी आस्ट्रेलियाके मूलनिवासी अपनी झोपड़ियोंके लिए पत्थरके विरूप ढोकोंसे दीवार बनाते हैं जिसके ऊपर पेड़की डालें छाजनका काम देती हैं। किन्तु जबतक पत्थरके ढोंके अधिक चपटे और अच्छे आकारमें न मिलें तब तक बहुत ऊँची टिकाऊ दीवार नहीं बनाई जा सकती। किसी अंश तक ढोकोंकी यह कठिनाई उनके बीचमें मिट्टी डाल कर दूर की जा सकती थी।

पाषाणनिर्मित भवन बनानेके लिए पाषाणके टुकड़ोंको गढ़कर सुडौल और चपटा बनानेको आवश्यकता थी, इस कारण पत्थर साज या संगतराशोंके जन्म बिना पाषाणके भवन नहीं बन सकते थे परन्तु संगतराश भी पत्थर गढ़नेके औज़ारोंके बनने पर ही पैदा हो सकते थे। जब ये दोनों बातें सुलभ हुईं तो पत्थरके विरूप ढोकोंको किसी प्रकार मिट्टी से भद्दे ढंगसे जोड़नेके स्थान पर इस प्रकारके टुकड़े गढ़े जाने लगे जो एक दूसरेके ऊपर ठीक बैठ सकें।

प्रारम्भमें ये ढोंके बिलकुल चौपहल नहीं गढ़े जाते थे। एक ढोंकके ऊपर दूसरा ढोका रखनेके लिए दूसरेको इस प्रकार गढ़ लेते कि किसी तरह पहले के ऊपर बैठ जाय। इस तरह भिन्न भिन्न आकार के टुकड़ोंको बैठा कर बनी हुई दीवार बड़ी भद्दी मालूम होती था।

प्राचीन मिस्रवासियों ने पत्थरके टुकड़ोंको एक आकारके चपटे पत्थरके टुकड़े गढ़कर दीवार बनायी जो सीधी खड़ी होती थी। उन्होंने केवल नर्म और आसानीसे गढ़े जाने वाले पत्थरों तक ही अपना कार्य सीमित नहीं रक्खा, प्रत्युत दृढ़से दृढ़ पत्थरों को बड़े कौशलसे सुन्दर आकारमें गढ़ने और उसके ऊपर पालिश कर चिकना बनानेमें सफलता प्राप्त की कि उसे देख आजके पत्थरसाज चकित हो जाते हैं।

प्राचीन मिस्र और यूनानमें दीवार बनानेके लिए पत्थरके टुकड़ोंके मध्य किसी प्रकारका जोड़ने वाला मसाला या सीमेंटका प्रयोग नहीं किया जाता था। उनका धरातल ही इतना चिकना और समतल बनाया जाता था कि पत्थर इतनी सफाई से जुट जाते थे कि उनका जोड़ जान सकना कठिन हो जाता था। रोम वाले मसाला और सीमेंट दोनोंका ही प्रयोग करते थे। वे चूनेका मसाला बनाना जानते थे और उन्हें यह भी ज्ञात था कि यदि ज्वालामुखीकी राख मिला दी जाय तो ऐसा सीमेंट तैयार हो सकता है जिस पर पानीका प्रभाव न पड़े।

प्राचीन मिस्रवासियोंकी भवन-निर्माण विद्यामें पत्थरके बहुत बड़े बड़े टुकड़ोंका उपयोग विशेष उल्लेखनीय बात है। गिर्ज़ नामक स्थान पर उनका बनाया महान पिरामिड का अधोतल एक वर्गाकार पत्थर है जिसको लम्बाई प्रत्येक आर ७५५ फोट है। इस नापमें किसी ओर जौ भर का भी अन्तर नहीं प्रसिद्ध यूनानी इतिहासवेत्ता हिरोडाटस के कथनानुसार इसके निर्माण में एक लाख आदमी निरन्तर तीस वर्षों तक लगे रहे।

मिस्रवाले अपने पिरामिड और मन्दिरों में लगानेके लिए इतने बड़े बड़े पत्थरके टुकड़ों को उसके उत्पत्ति स्थानसे किस प्रकार ले जाते थे और कैसे उसे ठीक स्थान पर उठा कर रखते थे, यह बड़ो रहस्यपूर्ण बात है। उन दिनोंके संगतराशों और इञ्जिनियरों के लिए हजार दो हजार मन भारी चट्टान साधारण वस्तु थी। किसी किसी मूर्त्ति वा स्तम्भमें प्रयुक्त होने वाली चट्टान २५, ३० हजार मन तक भारी होती थी।

अधिकांश लोगोंकी धारणा यह है कि जिस स्थान पर पत्थरको रखना होता वहां तक धीरे धीरे ऊँची होती हुई भूमि बना ली जाती और इस पर बेलनोंके ऊपर रस्सोंकी सहायतासे उसे घसीटा जाता। जब भवन बन जाता तो भूमि बराबर कर दी जाती।

भवन निर्माणकी आधुनिक सामग्री

सहस्रों वर्ष तक भवन-निर्माणमें ईंट और पत्थर का उपयोग होते आकर आधुनिक युगमें परिवर्तन उपस्थित होरहा है और मनुष्य आज नए उपादानों से बड़े २ विशाल भवन सहज ही खड़े कर रहा है। इन उपादानों में एकका नाम कांकरीट है। विशेष कर अमेरिकामें गत बीस पच्चीस वर्षोंमें इसी पदार्थसे गगनस्पर्शी अट्टालिकाएँ खड़ी हुई हैं।

कांकरीट सीमेंट, बालू और कङ्कड़ वा ईंट और पत्थरके टुकड़ोंके संयोगसे बनता है। सीमेंट एक प्रकारका चूर्ण होता है जो खरिया या चूनेका पत्थर और मिट्टीके मिलानेसे बनता है। जब यह चूर्ण भिगोया जाता है तो इसके कणोंमें एक प्रकारका रासायनिक परिवर्तन होता है जिससे वे परस्पर संयुक्त होने लगते हैं और कुछ समय तक भीगे रहने पर दृढ़ रूपमें हो जाते हैं। जब सीमेंटमें बालू, कङ्कड़ और ईंट वा पत्थरके टुकड़े मिला दिए दिए जाते हैं तो वह भीगने पर इन सब पदार्थोंके साथ जम कर दृढ़ हो जाता है। इस प्रकार पत्थर की तरह दृढ़ बनी वस्तुको ही कांकरीट कहते हैं।

कांकरीटसे भवन-निर्माणके कई ढङ्ग हैं। एक ढंग कांकरीटको पट्टियां वा टुकड़े ढालकर उनसे दीवार बनाना है, दूसरा ढंग भवनकी सम्पूर्ण दीवालको ही धरातल पर ढाल कर खड़ा करना है और तीसरा ढंग दीवार खड़ी करनेकी जगह पर दोनों ओर पटरे खड़े कर उनके बीचमें द्रव कांकरीट डाल कर दीवार बनाना है। तीसरे ढंगमें दीवार की एक तह सूख कर कड़ी हो जाने पर फिर उसके ऊपर इसी तरह पटरोंके बीच द्रव कांकरीट डालकर दीवार बनाते हैं। मकानके अन्दरकी दीवारें भी इसी ढंगसे तैयार की जा सकती हैं। इस तरह दीवार बनानेमें उन्हें ढालते समय ही इतना चिकना बनाया जा सकता है कि फिर चिकनानेकी आवश्यकता न पड़े।

कांकरीटमें कुछ गुण और दोष दोनों हैं। सस्ते होने और सुगमतया बनाए जानेके अतिरिक्त यह दृढ़ भी पर्याप्त होता है। इसमें दबाव सहने की बहुत अधिक शक्ति होती है परन्तु यदि इसकी लम्बी कड़ी बनाई जाय तो वह बहुत कम बोझ सँभाल सकती है, थोड़े बोझसे ही बीचमें टूट सकती है। इस कमीको दूर करनेके लिए लोहेको इसका सहायक बनाया जाता है और इसके बीचमें लोहे की छड़ वा तार डाल कर इसे जमाया जाता है। इस प्रकारकी बनी काँकरीट बहुत अधिक पुष्ट हो जाती है और लचकावसे भी नहीं टूट सकती। लोहेकी सहायता से दृढ़ की हुई कांकरीट को पुनर्दृढ़ीकृत कांकरीट कहते हैं। पुनर्दृढ़ीकृत करने के लिए विशेषकर लोहेका ही प्रयोग करते हैं इसलिए इसे लौहकांकरीट (फेरो कांकरीट) भी कहा जाता है। इस तरह दृढ़की हुई कांकरीटसे बड़े बड़े विशाल भवन और पुल आदि बहुत अधिक पुष्ट तैयार किए जा सकते हैं।

बड़े २ भवनोंके बनानेके लिए मुख्यतया फौलाद का भी उपयोग होता है। फौलादकी कड़ियोंसे पूरी ठटरी तैयार कर बाहरसे ईंट, पत्थर वा कांकरीट जोड़ देते हैं। इस तरह मुख्यतः फौलाद पर ही सब भार रहने पर भी ईंट, पत्थर वा कांकरीटके उपयोगसे फौलाद मुर्चा लगने वा घिसनेसे रक्षित रहता है। फौलादके खम्भोंको जमीनमें नीचे धसने न देनेके लिए उनका निचला सिरा एक कांकरीटकी पटरीमें जमा देते हैं। इस प्रकार खम्भे धसनेसे बचाए जाते हैं।

लौह कांकरीट वा लौह निर्मित भवन एक ही ऊँचाईके बने ईंटे वा पत्थरके भवनोंसे अधिक हलके होते हैं और न्यूयार्कके गगनस्पर्शी भवन, जो संसारमें अपना प्रतिद्वन्द्वी भवन नहीं रखते, इन्हीं उपादानोंसे बनाए जा सके हैं। यदि उनके निर्माणमें प्राचीन उपादान प्रयुक्त होते तो उन भवनोंको आजका रूप कदापि नहीं मिल सकता था। न्यूयार्क नगरमें सैकड़ों फीट ऊँचे गगनस्पर्शी

भवनोंमें वूलवर्थ नामका भवन एक आश्चर्यकी वस्तु है। उसमें कुल ५७ मंजिलें या तहें हैं और कुल ऊँचाई ७८५ फीट है।

इस प्रकारके विशाल भवनोंके निर्माणमें जो सबसे आश्चर्यजनक बात है वह निर्माणकी शीघ्रता है। जब दीवारको बोझ सम्भालना होता है तो ईंट वा पत्थर जोड़ने वाले मसालेको बैठनेके लिए कुछ समय देना पड़ता है, इस कारण दीवारकी जुड़ाई बहुत शीघ्र नहीं की जा सकती परन्तु कांकरीट इसके विपरीत ही कार्य करता है। वह बहुत थोड़े समयमें जमता तो है ही, समय बीतते जाने पर अधिक पुष्ट होता जाता है। जहाँ पर एक विशाल भवन बनानेके लिए पहले वर्षों की आवश्यकता होती थी वहाँ अब उसके लिए महीने ही पर्याप्त होते हैं। यदि प्राचीन और आधुनिक कालके भवन-निर्माणमें तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि पहलेके एक लाख मनुष्योंका ३० वर्ष का कार्य आजकल दो या तीन सौ मनुष्योंके बारह मासके कार्यके बराबर है।

प्रकाश संश्लेषण

[लेखक :—श्री वा० वि० भागवत, एम० एस-सी०]

यह बहुधा बहुतसे लेखकोंका विचार है कि प्राचीन कालमें आर्य्य लोग सूर्य्यको देवता समझ कर पूजते थे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वह ऐसा करते थे, परन्तु वह सूर्यके उन लाभोंको भी अवश्य जानते थे, जिससे सूर्यको एक देवता कहा जा सकता है। प्रकाश किरणोंके द्वारा भी रासायनिक क्रिया होती है, यह बात अब नई नहीं रही, और यह भी सिद्ध है कि वनस्पतिओंका विकाश प्रकाश किरणों पर निर्भर है। ऐसा देखा गया है कि यदि किसी भी वनस्पतिको सूर्य किरणों से अलग रखा जाय तो वे बिलकुल नहीं बढ़ेगी और मर जायगी। वनस्पतियोंकी परीक्षा करने पर यह मालूम होता है कि वनस्पतियों में विशेषतर कर्बोदेत और नोषजनक पदार्थ होते हैं। यह पदार्थ पेड़ोंमें किस तरह पैदा होते हैं इस बातका विवेचन बहुत ही महत्वका समझा जाता है।

इस समय बहुतसे वैज्ञानिकोंकी दृष्टि इन विषयोंके ऊपर कि किस प्रकार सूर्यप्रकाशसे वृक्षोंको जीविका चलती है, एक वैज्ञानिक रूपसे पड़ी है, और उनका ध्यान इस ओर भी आकर्षित हुआ है कि किस प्रकार सूर्यकी यह सामर्थ्य रासायनिक सामर्थ्यमें बदल जाती है, एवं कर्बन द्विओषिद और जलके मिलनेसे शर्करा और कर्बोदेत किस प्रकार पैदा होते हैं। इस क्रियाको विशेष रूपसे प्रकाश संश्लेषण कहते हैं। हरे पौधे अपनी पत्तियोंमें पानीके अतिरिक्त वह पदार्थ उत्पन्न करते हैं, जिस पर सारे पौधोंका जीवन निर्भर है, केवल यह ही नहीं बल्कि सारे पृथ्वीके प्राणियोंकी जीविकाका आधार है। पौधोंमें जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वह उन पदार्थोंसे जिनसे कि वह बने हैं, अधिक सामर्थ्यके होते हैं। इस प्रकार प्राचीन वृक्षोंकी इकट्ठोकी सामर्थ्य कोयले, तैल और पेट्रोलियमके रूपमें रह गई है, जिसकी सहायता से वर्तमान काल की कलायें और दस्तकारियाँ चल रही हैं। प्रकाश संश्लेषणकी प्रक्रिया साधारण रूपमें निम्न प्रकार लिखी जा सकती है।

न (क ओ$_2$) + न (उ$_2$ ओ) + ११०००० ग्राम कलारी = (क उ$_2$ ओ)$_न$ + न (ओ$_2$)

यद्यपि हमको इन क्रियाओंका ज्ञान जोसेफ प्रीस्टलेके समयसे हुआ है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि, हम इन क्रियाओंको पहिलेसे नहीं जानते थे। नहीं, बल्कि हमको इसके विषयमें बहुत कुछ ज्ञान था। यदि इसके इतिहास पर दृष्टि डाली जाये, तो ज्ञात होगा कि सबसे पहिले वान हैलमण्ट ने अरस्तूके सिद्धान्तको, कि वृक्ष अपनी जीविका केवल पृथ्वीसे ही लेते हैं, अप्रमाणित सिद्ध किया। उसने यह प्रयोग किया जो अभी तक बड़ी श्रद्धा पूर्वक माना जाता है, कि एक पौधेका जिसका वजन ५ पौंड था २० पौंड मिट्टीमें जो कि बिलकुल खुश्क थी, इस प्रकार रक्खा कि उसमें वर्षाका पानी न जाये, न कहींसे मिट्टी गिर सके। उसने ज्ञात किया कि पौधेका बोझ १६४ पौंड हो गया है, और पृथ्वी केवल २१ पौंड घटी है, उसने इसका कारण पानीको बताया और क ओ$_2$ की आवश्यकता नहीं समझी। हम इस बातके लिये कि वृक्षोंको कुछ वायु मंडलसे भी मिलता है, स्टिफन हेलसके कृतज्ञ हैं। यह शायद वही था कि जिसने सबसे पहिले प्रकाश की आवश्यकता बताई।

इसके पश्चात् प्रीस्टलेका इतिहास जनक अनुसन्धान आता है, जिसने अरस्तूके सिद्धान्तको बिलकुल ही मिटा दिया। उसने १७७१ में यह दिखाया कि यदि पत्ते किसी घटके भीतर रक्खे जायें और उसमें पहिलेसे कर्बन द्विओषिद हो तो कर्बन द्विओषिदसे ओषजन बन जाती है। जब उसने फिर उसे दोहराया तो उसका प्रयोग असफल हो गया। उसी समय शीले भी स्वीडेनमें अपनी विज्ञानशालामें इस पर प्रयोग कर रहा था, परन्तु वह भी इसमें सफल न हो सका। जान

इञ्जनहाउज़ ने जो अपने प्रयोगोंमें अधिक भाग्यशाली था, बतलाया कि केवल पौधोंका उगना ही वायुके शुद्ध होनेसे सम्बन्ध नहीं रखता है। उसने तुरन्त ही प्रकाशकी आवश्यकताको बतलाया, और साथ साथ प्रीस्टलेकी असफलताका कारण भी बताया, क्योंकि रात्रिके समय या अंधेरेमें पौधे कर्बन द्विओषिद अपने भीतरसे निकालते हैं। यह बात कि पौधेमेंसे ओषजन उसी समय निकलती है, जब कि वह कर्बन द्विओषिदको शोष लेवें, सबसे पहिले सेनीबायर ने बतलाई, परन्तु तो भी इञ्जन-हाउज़ हीको इस सिद्धान्तका बतलाने वाला कहा जा सकता है। इससे भी अधिक उपयोगिता का कार्य डि सासौरेने किया जो कि अधिक विख्यात है। उसने सोखी हुई कर्बन द्विओषिद और बाहर निकली हुई ओषजनका सम्बन्ध ज्ञात किया।

यद्यपि सासौरे अपने अनुसन्धान पर पूरा विश्वास नहीं करता था क्योंकि उसके प्रयोग बहुत मोटे सादे तौरसे किये गये थे, परन्तु तब भी उसके अनुसन्धानोंको सब वैज्ञानिक कहीं अधिक सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं।

जिस समय कि प्रीस्टले, इञ्जन हाउज़, सासौरे और सेनीबायर ने इन सब बातोंको जनाया था, उसी समय डुट्रोकेट ने १८३७ में यह सबसे पहिले बतलाया कि पौधों का हरा हिस्सा ही कर्बन द्विओषिद शोषता है। उसने इसको यहाँ तक बढ़ाया कि यह केवल हरे ही भागका कार्य है जो कर्बन द्विओषिदको शोषता है और इसको पर्ण-हरिन् कहते हैं।

पहिले वैज्ञानिकों ने जिनका ऊपर वर्णन किया गया है, यह सिद्ध कर दिया था कि पौधोंमें कार्बनिक पदार्थका आधार केवल कर्बन द्विओषिद है और यह लीबिगके ही परिश्रमका फल है कि अरस्तूका सिद्धान्त बिलकुल जाता रहा।

जब कि यह बात मान ली गई कि वृक्षोंका कार्बनिक पदार्थ उस कर्बन द्विओषिदसे जो कि पत्तोंमें शोषी जाती है, बनता है, तब यह भी स्पष्ट हो गया कि पौधों की क्रियायें कितनी घनिष्ठ होती हैं। सूर्य प्रकाशसे हरी पत्तियोंके कोष्ठोंमें कर्बन द्विओषिद शोषी जाती है, जिससे कर्बोदेत पैदा होते हैं, और ओषजन निकलती है, जैसा कि सासौरेके प्रयोगोंसे ज्ञात होता है और जिसको बाद में बौसिंगोल्टके प्रयोगों ने ठीक २ सिद्ध कर दिया है कि शोषी हुई कर्बन द्विओषिद और बाहरको निकाली हुई ओषजनका आयतन बराबर होता है, और इस निष्पत्ति को प्रकाश-संश्लेषण गुणक कहते हैं और यह अधिकतर एक होती है। इस क्रियाका समीकरण जो कि ऊपर लिखा है।
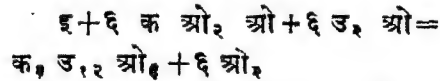
$$\text{इ} + ६\ \text{क ओ}_{२}\ \text{ओ} + ६\ \text{उ}_{२}\ \text{ओ} = \text{क}_{६}\ \text{उ}_{१२}\ \text{ओ}_{६} + ६\ \text{ओ}_{२}$$

प्रकाश संश्लेषणका स्वभाव :—प्रकाश संश्लेषण की प्रकृतिको जाननेका प्रयत्न दो उपायोंसे किया गया है। प्रथम गैसका आदान प्रदान और कार्बनिक पदार्थका बनाव। बहुधा यह प्रश्न उठा करता है कि क्या केवल वायु मण्डल ही वृक्षकी प्रकाश-संश्लेषण क्रियाके लिये पर्याप्त कर्बन द्विओषिदका दायक है? सेनीबायरके समयसे जिसका कि यह मत था कि वृक्ष अपनी जड़ोंके द्वारा कर्बन द्विओषिद खींच लेते हैं, यह प्रश्न विवाद ग्रस्त है। पृथ्वी में कीटाणुओंकी क्रियाके द्वारा कर्बन द्विओषिद बहुत अधिक परिमाणमें उत्पन्न होती है। पृथ्वीमें उत्पन्न हुई इस कर्बन द्विओषिदके फल स्वरूप, पृथ्वीके ऊपर इस गैसका समाहरण साधारणतया जैसा कहा जाता है उससे कहीं अधिक है। पानीमेंकी कर्बनद्विओषिद इसके आंशिक दबाव से जानी जाती है।

ओषजनका निकास :—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कि एक बात जो कि प्रकाश संश्लेषणके सम्बन्धमें जानी गई थी वह यह थी कि प्रकाशमें वृक्ष कर्बन द्विओषिदको विभाजित करके ओषजन मुक्त कर सकते हैं। इस आदान प्रदानका ज्ञान

प्राप्त करनेके लिये बहुतसे भारात्मक प्रयोग किये गये। ओषजनके विकासका दिग्दर्शन मिथीलिन (दारीलिन) तथा नील कार्मीन के ल्युको यौगिकके द्वारा कराया गया। ओषजनके विकासका ज्ञान प्राप्त करनेका सबसे अच्छा उपाय अन्दर घुसे हुये जलीय पौधेके कटे हुए सिरेसे जो बुलबुले निकलते हैं उनकी गणना करना है। सम्भवतः केवल ओषजन ही ऐसी गैस है, जो कि प्रकाश संश्लेषणके समय वृक्षसे निकलती है।

प्रकाश संश्लेषणका भाज्य फल :—वृक्षोंकी श्वास प्रश्वास क्रिया जाननेके लिये, प्रकाश संश्लेषणके ज्ञानमें ओषजन जो वृक्षसे निकलती है, और कर्बन द्विओषिद जो कि वृक्ष खींच लेते हैं उसका अनुपात बहुत ही उल्लेखनीय है। $\frac{\text{क ओ}_2}{\text{ओ}_2}$ अनुपात, जिसको कि प्रकाश संश्लेषण भाज्यफल कहते हैं, बिलकुल इकाई है जैसा कि डि-सासौरे तथा बोसिंगाल्टके अनुसन्धानों से सरलता पूर्वक जाना जाता है। किन्तु यह बात सदैव सत्य नहीं है क्योंकि अनुपात पर और भी तत्वोंका प्रभाव पड़ता है, तथा श्वास-क्रिया स्वयं ही सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करती है। $\frac{\text{ओ}_2}{\text{क ओ}_2}$ अनुपात अंधकार-श्वास प्रश्वास भाज्य फल नामसे जाना गया है।

वह्य भाग जो कि प्रकाश संश्लेषणके क्रम पर प्रभाव डालते हैं :—प्रकाश संश्लेषणके नियममें और बहुत सी उलझी हुई रीतियां है, जिनमें कि प्रकाश रासायनिक तथा उत्प्रेरणकारी प्रक्रियायें भी हैं।

१ कर्बन द्विओषिदका आंशिक दबाव।

२ प्रकाश जो काममें आता है उसकी तीव्रता तथा झूलन संख्या।

३ ताप, विशेष कर क्लोरोप्लास्टका ताप।

४ पर्णहरिन्‌के तत्व।

५ प्राप्त जलका परिमाण।

६ अन्य आन्तरिक दशायें।

कर्बनद्विओषिद तथा प्रकाश विशेष ध्यान देने योग्य हैं। प्रकाश संश्लेषणका क्रम इन तत्वोंकी तीव्रताके साथ एक सीमा तक बढ़ता जाता है अतएव ब्लैकमैनकी सीमा बहुत आवश्यक है। यह बात बहुत आश्चर्य जनक है कि प्रकाश संश्लेषण क्रिया किरण चित्र के लाल भागोंमें, अन्य भागोंसे अधिक बताई गई है, जबकि वारबुर्ग ने यह बताया है, कि छोटे लहर विस्तार वृक्षोंके लिये वास्तवमें हानिकारक है। इसके विपरीत बेली, नीलरतन धर तथा उनके अनुयायियोंके काम ने यह दिखाया है कि छोटे लहर-विस्तारोंकी लहरें जो कि भूमध्य भागके सूर्य प्रकाशमें पाई जाती हैं, प्रकाश संश्लेषण पर प्रभाव डालने के लिये अधिक ध्यान देने योग्य हैं।

प्रकाश संश्लेषणका गतिक्रम, निम्न समाहरणों पर कर्बन द्विओषिद के समाहरणकी बढ़तीके साथ ही बढ़ता है, परन्तु ऊँचे समाहरणों पर यह स्वतंत्र हो जाती है। वायुमें कर्बन द्विओषिद का समाहरण ०·०३ प्रतिशत है जो कि कमसे कम कहा जा सकता है। अभी यह जानना बाकी है कि इस तत्वकी बढ़ती उपजके लिये लाभदायक होगी या नहीं। प्रकाश संश्लेषणके गतिक्रम पर तापका क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर अभी अधिक छानबीन नहीं हुई है।

वृक्ष पर जलका प्रभाव तथा वायुमें जलकी भापका पत्र रन्ध्र (Stomatic openinig) पर जिनके भीतरसे कर्बन द्विओषिद प्रकाश संश्लेषण क्रिया केन्द्रों तक आती जाती है, उसका जो प्रभाव होता है, बहुत पहले जाना जा चुका था। इसके अतिरिक्त, यह बात कि पत्तीका जल तत्व, कर्बोदेत अनुपातको प्रभावित करता है, प्रकाश संश्लेषण में जो यह अपनी विशेषता रखता है, अत्यावश्यक जान पड़ता है।

पत्तियोंका पर्णहरिन् तत्व प्रकाश-संश्लेषण ज्ञानके लिये बहुत ही ध्यान देने योग्य विषय है।

विलसटैटर और स्टोल के विख्यात अनुसन्धानों द्वारा यह तत्व अत्यन्त आवश्यकीय सिद्ध हुआ है। क्लोरोप्लास्टकी दशाका प्रश्न भी मुख्य स्थान रखता है। क्लोरोफिलकी क्रियाकी विधिका विषय विवाद-ग्रस्त है।

अन्य बहुतसे तत्वों, अर्थात् कर्बन द्विओषिद, पिपीलिकाम्ल आदि तथा अफीमिन और कोकेन इत्यादि जहरोंका प्रभाव प्रकाश संश्लेषणकी गति-विधि बतायेगा। ताम्रम्, दस्तम् तथा पारदम् इत्यादि रस वृक्षोंकी बाढ़के लिये हानिकारक है। लोहस गन्धेत तथा लोहिक हरिद प्रकाश संश्लेषण की वृद्धि करते हैं। उदहरिकाम्लके बहुत सामान्य घोलका बहुत उत्तेजक प्रभाव पड़ता है। नोषिकाम्ल गन्धकाम्ल तथा स्फुरिकाम्लका भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है। पांशुज श्यामिद का सामान्य घोल हानिकारक है।

वनस्पतिका मुख्य जीवन पानी, कर्बन द्विओषिद नोषजन और कुछ लवण है, और इन्हीं पदार्थोंसे वनस्पति में कर्बोदेत, पर्णहरिन्, क्षारोद इत्यादि तैयार होते हैं। प्रथमतः कर्बोदेत का विचार उचित है।

कर्बोदेतका संश्लेषण :—पानी और कर्बन द्विओषिदके मिश्रण पर प्रकाश किरणोंकी क्रिया करनेसे कर्बोदेत तैयार होते हैं। रसायन शास्त्रज्ञोंका बहुमत से यह कहना है कि वनस्पति कर्बनको पर्णहरिन्के द्वारा ग्रहण करती हैं जो कि सूर्यकी किरणोंके प्रभाव से कार्य करती हैं। बायर ने सन् १८७० में प्रथमतः यह सिद्ध किया था कि कर्बन द्विओषिद और पानीके ऊपर प्रकाश क्रियासे पहला पदार्थ पिपील-मद्यानाद्र बनता है।

क ओ$_2$ + उ$_2$ओ = उ क उ ओ (पिपील मद्यानाद्र) + ओ$_2$

और यह पिपील-मद्यानाद्र घनीभूत होकर षष्ठोज (क$_6$ उ$_{12}$ ओ$_6$) देता है। इस कल्पनाके मालूम होने पर बहुतसे प्रयोग इसकी सिद्धिमें किये गये परन्तु पत्तोंमें पिपीलमद्यानाद्र होता है या नहीं इस प्रश्न के उत्तर आपसमें मिलते जुलते नहीं है। पिपील-मद्यानाद्र के षष्ठोजमें घनीभूत होनेके विषय में जो प्रयोग किये हैं वे पिपील मद्यानाद्र सिद्धान्त के पक्षमें हैं। परन्तु उनके सम्बन्धमें यह ध्यान रखना होगा कि वनस्पतियों द्वारा संश्लेषण किया हुआ प्रथम कर्बोदेत शर्करा एक द्विशर्करोज है। इस बातके पक्षमें जो युक्तियां हैं वे करीब करीब निर्भ्रान्त हैं।

दूसरे रसायनज्ञोंका विचार है कि पिपीलिकाम्ल का तैयार होना अधिक सम्भव मालूम पड़ता है। यह बात प्रथम अर्लेनमायर ने सूचित की थी परन्तु बहुत दिनों तक इस बातका ख्याल नहीं किया गया था। स्पोरने बतलाया है कि पानी और कर्बनद्विओषिद विकीर्ण-सामर्थ्यसे बहुत जल्दी पिपीलिकाम्ल देता है और इससे शर्कराके समान एक पदार्थ बनता है जिसको कि वनस्पतियां खाद्य के काममें ला सकती हैं।

वनस्पतिमें पिपीलमद्यानाद्र का अस्तित्व और पर्ण-हरिन्का व्यापार :—वनस्पतिमें पिपील मद्यानाद्र होता है यह बात सबसे पहिले रेंके ने बताई (१७७३)। उस समयसे बहुतसे शास्त्रज्ञों ने इसके अस्तित्वकी घोषणाकी और यह बातें बायर की कल्पनाकी सत्यताको सिद्ध करती हैं।

आधुनिक शास्त्रज्ञों ने यह सूचित किया है कि पिपीलमद्यानाद्र पर्णहरिन्का अवनत पदार्थ है। श्रीवर और इवर्ट कहते हैं कि पर्णहरिन्से पिपील मद्यानाद्र संयुक्त रहता है। श्रीवर ने यह देखा कि तीव्र सूर्य प्रकाशमें रखे हुये पर्णहरिन् द्वारा मन्द प्रकाशमें रखे हुये पर्णहरिन्से ज्यादा पिपील मद्या-नाद्र मिलता है। पर्णहरिन्से आवृत कांचकी पट्टी पर अन्धेरेमें रखनेसे यद्यपि उनके साथ नम कर्बन द्विओषिद था, कुछ भी पिपील मद्यानाद्र तैयार नहीं हुआ। यदि ऐसी पट्टी कर्बन द्विओषिद रहित वायुमण्डलमें सूर्य प्रकाशमें रखी जाय तो बहुत थोड़ा सा पिपील मद्यानाद्र तैयार होता है, लेकिन

नम कर्बन द्विओषिदके अस्तित्वसे उसकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है। इस प्रयोगसे श्रीवर ने यह परिणाम निकाला कि सूर्य प्रकाश पानी और कर्बन द्विओषिदके अस्तित्वमें पिपील मद्यनाद्र तैयार होता है। और इसीके घनीभूत होनेसे शर्करा तैयार होती है। यदि यह प्रक्रिया शीघ्र न हो तो बचा हुआ पिपील मद्यानाद्र पर्णहरिनमें मिल जाता है।

बैज़रने ओषजन और पर्णहरिन् के साथ जो क्रिया होती है उस पर सूर्यप्रकाश और अंधेरा, इन दोनोंके प्रभावका अध्ययन किया है। वह कहती है कि यह क्रिया उत्प्रेरणशील नहीं है। ओषजन शोषित होकर मद्यनाद्र तैयार होते हैं और जो शर्करा बनती है वह पानी और कर्बन द्विओषिद से एकदम नहीं बनती, प्रत्युत मद्यानाद्र के घनीभूत होनेसे बनती है। वार्नर कहता है कि पर्णहरिन् पर सूर्यप्रकाश और हवाकी क्रिया से पिपील-मद्यानाद्र तैयार होता है। कर्बनद्विओषिद हो या न हो उसकी कुछ जरूरत नहीं होती। इसलिये वह कहता है कि वनस्पतिके बाहर प्रकाश-संश्लेषण से पिपील मद्यनाद्र के बननेमें कर्बन द्विओषिदका कुछ सम्बन्ध नहीं है और जो पिपीलमद्यानाद्र बनता है वह वस्तुतः पर्णहरिनका ओषदोकृत पदार्थ है।

जार्गेन्सन और किडने पर्णहरिन् 'अ' और 'ब' के जलघोलको कांचके बर्तनमें बहुतसे वायव्यों के साथ सूर्यप्रकाशमें रखा और यह देखा कि पिपील मद्यानाद्र सिर्फ ओषजनकी विद्यमानतामें बनता है। कर्बनद्विओषिद की विद्यमानतामें फाओफिरीन बनता है और इनके बाद उसमें कुछ परिवर्तन नहीं होता है। ये व्यक्ति सूचित करते हैं कि पिपील मद्यानाद्र मुख्यतः फाईटोलसे बनता है जो कि प्रकाश और ओषजनकी क्रियामें पर्णहरिन् से पृथक् होता है। परन्तु इन विचारोंकी सत्यता विल्सटेटर-स्टोलके प्रयोगसे संदिग्ध हो गयी है। इन्होंने बतलाया है कि शुद्ध पर्णहरिन् का कलाद्र घोल काममें लानेसे कुछ भी पिपील मद्यानाद्र नहीं बनता है। अगर अशुद्ध पर्णहरिन् हो तो उसकी अशुद्धियाँ ओषजनकी क्रियासे पिपील मद्यानाद्र उत्पन्न कर सकती हैं। शुद्ध पर्णहरिन् से पिपील मद्यानाद्र न मिलनेका कारण यह बतलाया गया है कि उसमें आवश्यक प्रेरक जीवोंकी कमी होती है। प्रयोगसे मालुम होता है कि पर्णहरिन् के कलाद्र घोल पर कर्बनद्विओषिद क्रिया से अर्धकर्बनेतके समान एक पदार्थ मिलता है जिसकी रचना निम्नप्रकार है।

```
    ( >नो                                  (  >  नो      ओ
    (                                      (             ||
र  {  ─)>   म+उ₂ ओ + +क ओ₂ =          र  {  ◯)> म. ओ. क  —ओ उ   (२)
    (          ( पर्णहरिन् ) (१)           (
    ( >नो                                  (  >  नो
```
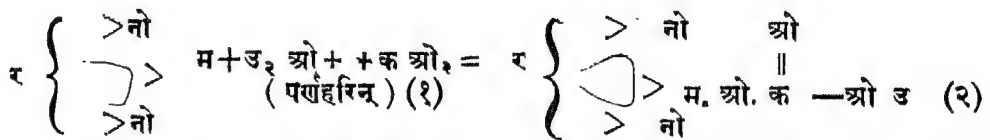
नये बने हुये यौगिक (२) से यह प्रकट होता है कि उस मेंसे दो ओषजनके परमाणु निकल कर पर्णहरिन्का बनना सहज नहीं है। उसके लिये उसके अणुमें आन्तर रचनाकी आवश्यकता है। और विलसटैटर और स्टौलके कथनानुसार इस रचनाके लिये कुछ सामर्थ्य शोषणकी आवश्यकता नहीं है। यह शक्ति सूर्य प्रकाश द्वारा प्राप्त होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आन्तर रचना द्वारा एक पिपील-मद्यानाद्र परोषिद पदार्थ (३) बनता है।

```
    ( >नो            ओ                     (  > नो           ओ
    (                ||                    (
र  {  ─)>  म—ओ—क—ओ उ                 र  { ——)>  म—ओ कउ < |
    (                                      (
    ( >नो उ                                (  >नो उ          ओ
```
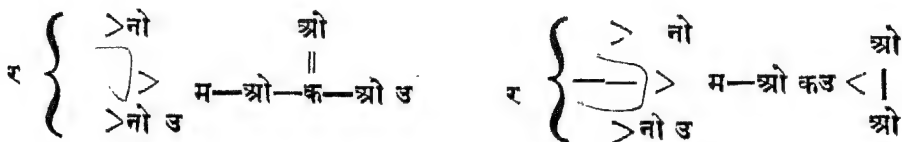
यह पदार्थ बड़ी आसानीसे ओषजन दे सकता है—एक दम दे दे या चाहें तो एक एक करके दो भागोंमें दे। और फिर पर्णहरिन् और पिपील मद्यानार्द्र बनते हैं।

```
   ( >नो—              ओ        ( > नो—          ओ
   |                   |        |                ||
र <——>  म—ओ—क उ=    |  =र   <————>म—ओ—क   +
   |     |             |        |                उ
   ( >न  उ             ओ        ( > नो उ
```
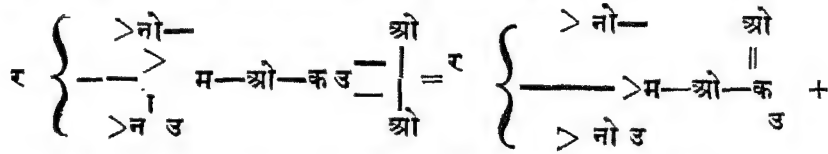
र' नो' नो उ म—ओ—क उ' ओ=र' नो' म+ओ+उ-क-उ-ओ'

कांचके बरतनमें किये हुये प्रयोगोंसे ऊपर लिखा हुआ पर-ओषिद प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु कांचके बर्तनमें किये हुये प्रयोग और प्रकृतिमें होने वाली क्रियाओंके भेद पर विचार करनेसे यह ज्ञात होगा कि पर-ओषिदका न बनना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। कर्बन द्विओषिद पर्णहरिन को (कलार्द्र घोलमें) विभाजित कर फाओफिटिन और मगनीस कर्बनेत देता है। परन्तु क्लोरोप्लास्ट पर कर्बन द्विओषिद की क्रिया हो नहीं सकती। ऐसा विचार प्रगट किया गया है कि जीवित कोष्ठों में प्रेरक जीवोंके कारण पर-ओषिद-पिपील मद्यानार्द्र विभाजित होता है और पिपील मद्यानार्द्र बनता है।

स्पोर ने बतलाया है कि कुछ वनस्पति जन्य अम्ल, विशेषतः द्विभस्मिक अम्ल कार्ट्ज़के बरतन में पराकासनी किरणकी क्रियासे विभाजित होकर सिरकाम्ल और सिरक मद्यानार्द्र देते हैं, जो कि और भी विभाजित हो जाते हैं और पिपीलिकाम्ल और पिपील मद्यानार्द्र देते हैं।

कर्बन द्विओषिद और कर्बोदेतको जोड़ने वाली श्रृङ्खला पिपीलमद्यानार्द्र है। इसके बारेमें सबसे संतोषजनक विचार विलसटेटर और स्टौल ने प्रगट किये हैं। जितने भी प्राथमिक पदार्थ बन सकते हैं उनमें पिपील मद्यानार्द्र ही एक ऐसा है जिसके बननेमें शोषित हुये कर्बन द्विओषिदका आयतन मुक्त ओषजनके आयतनके बराबर होता है।

यह बतलाना आवश्यक है कि यद्यपि डीसासोरे के समयसे (१८०४) यह माना गया है कि वनस्पति जन्य पदार्थोंके प्रकाश संश्लेषणमें पर्ण-हरिन मुख्य सहायक है, तथापि इसके माननेमें कोई आपत्ति न होनी चाहिये कि स्वयं पर्णहरिन् भी वनस्पतिओं में प्रकाश-संश्लेषण के द्वारा बनता है।

प्रकाशमें रखने पर पर्णहरिनका काम क्लोरो-प्लास्टका रक्षण करना है, अथवा जैसा प्रिंगशैमका विचार है कि यह प्रकाश छन्नेका काम देता है। उसका सम्बन्ध संश्लेषणसे पिपील मद्यानार्द्र देनेके बाद घनीकरण करनेमें है। इसके सम्बन्धमें यह ध्यान रखने योग्य है कि सन १८८२ में मालिशने यह बतलाया कि सूर्य प्रकाश होने पर भी यदि लोहेकी मात्रा कम पड़ जाय तो हरी वनस्पतियां रंगहीन होने लगती हैं और यद्यपि पर्णहरिनके अणुमें लोहा नहीं होता है तो भी लोहेकी कमी दूर करने पर फिरसे पर्णहरिनकी प्रगति बढ़ने लगती है। अंधेरेमें रखनेसे सफेदी पाई हुई हरी पत्तियों को प्रकाशमें लाने पर पर्णहरिन् फिरसे प्राप्त होता है। इससे यह कह सकते हैं कि पर्णहरिन स्वयं भी प्रकाश संश्लेषणसे बनने वाला पदार्थ है।

प्रकाशोत्प्रेरण :—कर्बन द्विओषिद और पानीसे पिपील मद्यानार्द्रका संश्लेषण :—यह अच्छी तरह से सिद्ध किया गया है कि, कर्बन द्विओषिदका जलीय घोल दृष्ट प्रकाश किरणोंका शोषण नहीं कर सकता है किन्तु यह अति छोटी लहर लम्बाईकी

किरणोंको शोषित करता है। इसीलिये संश्लेषणकी प्रथम क्रियाके लिये जो सामर्थ्य चाहिये वह मिलने के लिये कर्बन द्विओषिद और पानीको अति छोटी लहर लम्बाईकी किरणोंमें रखना चाहिये। यह किरण सूर्य-प्रकाशमें अति थोड़े परिमाणमें होनेसे संश्लेषणको शुरू नहीं कर पाती। अतः वनस्पतियाँ साधारण प्रकाशमें ऐसा संश्लेषण किस रीतिसे कर सकती हैं इस बातका कारण हमें ढूँढ़ना चाहिये।

बेली और हिलब्रान ने उदजन और हरिन्‌से उदजन हरिद तैयार होनेके निश्चयात्मक प्रयोगोंसे एक सिद्धान्त निकाला है। ऐसा देखा गया था कि इस क्रियाकी गति प्रकाशकी तीव्रताके समानुपाती नहीं है परन्तु तीव्रताकी अपेक्षा बहुत ही अधिक परिमाणमें बढ़ जाती है अर्थात् किसी प्रदत्त सामर्थ्यसे जो उदजन हरिद बनता है उसकी मात्रा स्थिर नहीं रहती है, परन्तु इतनी शीघ्रतासे बढ़ती है कि अन्तमें विस्फुटन होने लगता है। बेली और हिलब्रानका विचार है कि यह सिद्धान्त सब प्रकाश रासायनिक क्रियाओंमें व्यवहृत हो सकता है, और उसकी क्रियाके चालनमें भी प्रयुक्त हो सकता है, जब कि क्रिया करने वाले अणु आवश्यकतासे अधिक पराकासनी किरणोंसे प्रभावित हों। इसके लिये वह अणु एक प्रकाशोत्प्रेरक (अ) के साथ मिलाये जाते हैं। यह उन किरणोंको शोषित करता है जो उस क्रिया करने वाले अणुके उपयुक्त न हों, परन्तु इस प्रकाशोत्प्रेरकको वही परालाल झूलन संख्या होती है जो कि क्रिया होने वाले अणुकी होती है। जब ऐसा मिश्रण (अ) द्वारा शोषितकी हुई किरणोंके सामने रखा जाये तो शोषितकी हुई सामर्थ्य अ के अनुकूल परालाल झूलन संख्यासे विसर्जित होगी और यह झूलन संख्या क्रिया होने वाले अणुकी झूलन संख्याके समान होनेसे क्रिया होने वाले अणु इसको शोषित करेंगे और क्रिया शुरू होगी। मूर और वेब्सटर ने कहा कि कर्बन द्विओषिदका संपृक्त घोल कासनी किरणोंकी क्रिया से पिपील मद्यानार्द्र बिलकुल नहीं देता है, परन्तु किसी यथोचित अकार्बनिक प्रेरक जैसे कि कलार्द्र लोह उदौषिद, बेरील हरिद इत्यादि, के संसर्गसे कुछ पिपील मद्यानार्द्र बनता है। बेली और हिलब्रान ने इस प्रयोगका समर्थन किया है और वे कहते हैं कि कर्बन द्विओषिद का जलीय घोल पराकासनी किरणोंमें रख कर कर्बन द्विओषिदके प्रवाहसे संचालित करनेसे पिपील मद्यानार्द्र नाम मात्र प्रकट होता है। इन व्यक्तियों ने इसके लिये दो कारण बतलाये हैं :—

(१) पराकासनी प्रकाशमें मुक्त ओषजन पानी के साथ मिल कर उदजन परौषिद देगा। यह परौषिद पिपील मद्यानार्द्र का पिपीलिकाम्ल बना देता है।

(२) अगर घोलको संचालित किया जाय तो ओषदीकरण से बचा हुआ पिपील मद्यानार्द्र तुरन्त घनीभूत हो जायगा, परन्तु यदि संचालित न किया जाय तो पिपील मद्यानार्द्र बर्तनकी दीवारों की ओर से फेंका जायगा जहां कि प्रकाश की रासायनिक क्रिया करने वाली किरणोंकी तीव्रता कम होती है।

इन वैज्ञानिकों ने यह देखा कि पिपील मद्यानार्द्र लम्बी-लहरकी पराकासनी किरणोंसे (२६००अ°) घनीभूत होता है। परन्तु उसके संश्लेषणके लिये छोटी लहर (२०००अ°) की किरणोंकी जरूरत होती है। पर-मद्यानार्द्र और सैन्धक दिव्येत लम्बी लहरकी पराकासनी किरण शोषित करते हैं, और इसी कारण इनको यदि घोलमें छोड़ा जाय तो ये पिपील मद्यानार्द्र की घनीकरण से रक्षा करेंगे। मूर और वेबस्टर ने यह कहा है कि प्रयुक्त अकार्बनिक उत्प्रेरक इसी तरहसे बर्ताव करते हैं।

पराकासनी किरणों में एक प्रकाश समता स्थापित होती है :—

कर्बोउदेत ⟶ कर्बन द्विओषिद और पानी

↑ ↓

पिपील मद्यानार्द्र

प्रथम अवस्थाका प्रकाशोत्प्रेरण होनेके लिये ऐसा कोई पदार्थ कार्यमें लाना चाहिये जिसकी कर्बन द्विओषिदके बराबर परालाल भूजन संख्या हो। 'नीलहरा' या मैलेकाइट ग्रीन रंग, नारङ्गी दारील और प-नोषेसो द्वि दारील नीलिन् इस काममें आ सकते हैं। उपर्युक्त क्रियाको दूसरी अवस्था के योग्य ऐसा प्रकाशोत्प्रेरक अभी तक नहीं मिला है, परन्तु इन वैज्ञानिकोंका कहना है कि पर्णहरिन् इस संश्लेषण की दोनों अवस्थाके लिये एक आदर्श प्रकाशोत्प्रेरक है।

नोषेत और कर्बन द्विओषिदसे नोषजन योगिकों का प्रकाश संश्लेषण :—वनस्पतियोंके लिये नोषजन का प्राप्ति-स्थान नोषेत है और संभव है कि अमोनियम लवण द्वारा भी वे नोषजन पाते हैं। परन्तु नोषेत इतने निष्क्रिय पदार्थ होते है कि उनमें रासायनिक परिवर्तन होना सरल नहीं है, लेकिन नोषित उनसे अधिक क्रियावान होते हैं।

सन् १८६० में लारेन ने देखा कि वनस्पतियां नोषेतको नोषितमें परिणत कर सकती हैं और इस बातका शीघ्र ही दूसरे रसायनज्ञों ने समर्थन कर दिया। सन् १८८३ में लिंकपर ने देखा था कि हरे पत्तोंके साथ नोषेतको सूर्य प्रकाशमें रखने पर नोषेत नष्ट होते हैं, परन्तु यह प्रक्रिया अन्धेरेमें नहीं होती है। अगर पत्ते सफेदी पाये हुये हों तो यह प्रक्रिया नहीं हो सकती।

पारद क्वार्ट्ज प्रदीप की किरणोंसे नोषेतका नोषितमें परिवर्तन और साथ साथ ओषजनका निकलना सबसे पहिले थीले ने प्रत्यक्ष किया। बाडिश ने पांशुज नोषित और दारील मद्य मिश्रण जल घोलमें धूप और पराकासनी प्रकाशमें रखने पर देखा कि दारील मद्यसे पिपील मद्यानाद्र बन गया है और नोषित अवकृत होकर उपनोषित बन गया, और अन्त में यह उपनोषित पिपील उदौषामिकाम्लका पांशुज लवण बना।

$$\text{पां नो ओ}_2 + \text{क उ}_3 \text{ ओ उ} = \text{पां नो ओ} + \text{उ क उ ओ} + \text{उ}_2 \text{ ओ}.$$

$$\text{पां नो ओ} + \text{उ क उ ओ} = \text{उ क ओ उ}$$
‖
नो ओ. पां.

अन्धेरेमें रखनेसे, उबालने पर भी कुछ क्रिया नहीं हुई। इससे कह सकते हैं कि यह क्रिया स्पष्टतः प्रकाश रासायनिक हैं।

ऐसे अवकृत होने वाले नोषतके घोलमें, हरे पत्ते नोषितके संचित होनेमें बाधा डालते हैं, और इसी तरहसे वे अधिक क्रिया शील यौगिकोंको शोषित करनेके प्रति अपनी शक्ति प्रदर्शित करते हैं। यह बात प्रथम मूर ने देखी। विकाशके मार्गमें सबसे पहिले पैदा होने वाले एक ही कोष्ठमें जुड़े हुये जीवाणु कर्बन और नोषजनको हजम करनेका दुहरा कार्य करते हैं। इस निश्चयके अनुसार मूर ने एक कोष्ठी अलगाइ (Algae) की परीक्षाकी। उसने देखा कि नोषजनके वातावरणके अतिरिक्त अन्य पदार्थोंकी अनुपस्थितिमें और कर्बन द्विओषिद की विद्यमानता में यह अलगाई नोषजनसे संयुक्त हो सकते हैं, बढ़ सकते हैं और प्रकाश-शक्ति को काममें लाकर प्रत्यमिन तैयार कर सकते हैं। अगर नोषित या नोषजनके ओषिद साथ हों तो यह वृद्धि बहुत ही शीघ्र होती है।

थोड़े ही दिन हुये बेली, हाइलब्रान और हडसन ने नोषेत और कर्बन द्वि ओषिदसे नोषजन यौगिकोंके प्रकाश संश्लेषण की परीक्षा की है। कर्बन द्विओषिदको पराकासनी प्रकाशमें रखे हुये पांशुज नोषेत और नोषितके घोलमेंसे प्रवाह करने पर नीचे लिखी हुई बातें उन्होंने देखीं :—

(१) प्रकाश रासायनिक क्रियासे बनने वाला क्रियाशील पिपील मद्यानाद्र पांशुज नोषित पर क्रिया करता है। यह क्रिया पिपील मद्यानाद्र की शर्करा बननेकी क्रियासे पहिले होती है।

(२) नोषित का जितना परिमाण लगता है उससे अधिक परिमाणमें यदि पिपील मद्यानाद्र तैयार हो तो अवकारक शर्करायें बनती हैं।

ऐसी परिस्थितिमें क्रियावान् पिपील मद्यानाद्र की रचना उ—क—ओ उ होती है ऐसा मान लिया गया है। क्रियावान होनेका कारण द्विशक्तिक कर्बन है। और आगे ऐसा माना गया है कि इस क्रिया का पहिला पदार्थ पिपील उदौषामिकाम्ल (१) होता है। इससे एक ओषजनका परमाणु अलग होता है। यह अणु दूसरे पिपील मद्यानाद्र का पिपीलिकाम्ल बनाता है:—

उ—क ओ उ + ओ : नो ओ पां

उ—क ओ उ   उ—क—ओ उ + ओ
    || ||
ओ : नो ओ पां   नो—ओ. पां (१)

उ—क—ओ उ + ओ = उ—क ओ ओ उ

उ ओ क उ——क उ ओ उ

नो उ (२)——> (मधुन) (३)

प्रयोग की परिस्थिति में पांशुज लवण सब उद् विश्लेषित हो जाता है और अम्ल बनता है:—

उ—क—ओ उ
    ||
नो—ओ उ

इसमें से ओषजन बड़ी जल्दीसे निकल कर नीचे दिया हुआ हुआ यौगिक बनाता है।

उ—क—ओ उ
    ||
  नो उ

जिसको उदश्यामिकाम्ल का उदौषेत समझ सकते हैं। यह पिपील मद्यानाद्र के साथ एक अस्थिर चाक्रिक यौगिक (२) देता है। इसमें रचना परिवर्तन होकर मधुन बन जाता है।

नो $उ_2$ क $उ_2$ क ओ ओ उ

दारील मद्य के घोल उदौषिलामिन और ज्वलील पिपीलेतसे बने हुये पिपील उदौषामिकाम्ल के जलीय घोल और पिपील मद्यनाद्र पर पराकासनी किरण छोड़ने पर क्रिया एक दम शुरू हो जाती है। और दारील अमिन और क—अमिनो अम्लका एक मिश्रण तैयार होता है। सम्भव है कि दारील अमिन जो बनता है वह अमोनिया और पिपील मद्यानाद्र से ही एकदम बनता है। पिपील मद्यानाद्र

यहां दारीलकारकरसका कार्य करता है।

इसके साथ साथ दारोद भी बनते हैं। इसका स्पष्टीकरण देनेके लिये ऐसा मान लेते हैं कि पिपील उदौषामिकाम्ल क्रियावान पिपील मद्यानाद्र के तीन या चार अणुओंके साथ मिल कर नं० (४) और (५) के यौगिक देता है। यह यौगिक पानी और ओषजनका त्याग कर प्रभोल और पिरीदिन यौगिक देते हैं:—

पिपील उदौषामिक अम्लके दो अणु पिपील मद्यानाद्र के एक अणुके साथ मिल कर यौगिक (६) देंगे और इसमें से पानी और ओषजन निकल कर मधु ओषलिन बनेगा :—

इन सब विचारोंको निम्न प्रकारसे संकलित किया जा सकता है :—

ऊपर लिखे हुए पदार्थोंके बननेकी शीघ्रताका कारण यह है कि इन क्रियाओंके बीचमें जो पदार्थ बनते हैं वे बड़ी क्रियाशील अवस्थामें होते हैं।

समालोचना

क्षार निर्माण विज्ञान—ले० श्री स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, प्रकाशक दी पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर। पृ० सं० ७०। मूल्य ॥)

भारतवासी क्षारों से बहुत प्राचीन कालसे परिचित हैं। सज्जी मिट्टी (स्वर्जि) अथवा रेह के रूपमें इसका हम कपड़े धोने के लिये व्यवहार करते आये हैं। इसके बनानेकी प्रथा हमारे देशके मालवा, कच्छ, सिन्ध और पञ्जाब प्रान्तोंमें काफ़ी प्रचलित थी और आज भी प्रचलित है। हज़ारों मन स्वर्जि आज भी ज़िला झंग और कच्छसे आती है। यह सज्जी मिट्टी सौवर्चल, लाणा, लानी और लूणखी नामके समुद्री पौधोंकी राख है। सुश्रुत आदि ग्रन्थोंमें २५-२६ प्रकारके वनस्पतिक क्षारोंका उल्लेख आता है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें क्षारोंके इस ऐतिहासिक विवरण के अतिरिक्त आधुनिक पाश्चात्य पद्धतियों द्वारा क्षार निर्माण विधि भी दी हुई है। क्षारोंके भिन्न भिन्न उपयोग भी दिये हुये हैं। मन्द, मध्य और तीव्र क्षारोंका उल्लेख किया गया है। पुस्तक बड़ी रोचक और सरल भाषामें लिखी गई है। इस सुन्दर पुस्तिकाके लिये हम स्वामी हरि शरणानन्द जीके अतीव कृतज्ञ हैं। हाँ, इसमें व्यवहृत कुछ पारिभाषिक शब्दोंसे हमारा मत भेद अवश्य है। यदि इसके पुनःसंस्करण में विज्ञान परिषद् की शब्दावलीका उपयोग किया जाय तो बड़ा ही अच्छा होगा।

आसव विज्ञान—ले० श्री स्वामी हरि, शरणानन्द जो वैद्य, प्रकाशक दी पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर पृ० सं० १०३ मूल्य १)

गन्नेके रससे आसव और सिरके बनानेकी प्रथा बहुत प्राचीन है। आसव या मद्यसार मादक पदार्थ है। इसके बनानेके लिये जैसे आजकल भभके होते हैं, उसी प्रकार पहले नाड़ी-यन्त्र प्रचलित थे। ये सब मिट्टीके बने होते थे। इस यन्त्रके भी कई भेद थे। आसव, सुरा, मद्य, मदिरा आदि एक ही पदार्थके नाम हैं। चरक और अग्निवेश ने आसवों के ८४ भेदोंका उल्लेख किया है। भिन्न भिन्न फलों से बनने वाले २६ आसव, वृक्षोंकी जड़ोंसे बनने वाले ११, सारोंसे २०, धान्यसे ६ और पत्र पुष्पादि से ९। रचना भेदसे इनके आसव, अरिष्ठ, सीधु, वारुणी, सुरा और मैरेय भेद हो गये हैं।

कुछ काल तक रखे रहनेमें इन मद्योंमें विकार उत्पन्न हो जाता है और अम्लता आ जाती है। इस दृष्टिमें सुक्त, चुक्र और कांजी तीन भेद और हो जाते हैं। इस पुस्तकमें इन सब बातोंका उल्लेख विस्तार पूर्वक किया गया है। प्राचीन और अर्वाचीन दोनों पद्धतियों पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। हमें आशा है कि हिन्दी जनता इसका समुचित स्वागत करेगी।

गंगा का वेदांक—ले० श्री रामगोविन्द त्रिवेदी, श्री गौरीनाथ झा और श्री शिवपूजन सहाय। कृष्णगढ़, सुलतान गञ्ज, भागलपुर पृ० सं० ३००। मूल्य २॥)

बहुत दिनोंसे इस बातकी घोषणाकी गई थी कि भागलपुरकी गंगा-पत्रिकाका एक विशेषांक वेदांक नामसे निकलेगा। आधुनिक सभ्यता तो वैदिक साहित्यको उपेक्षा की दृष्टिसे देखती है, और इस दृष्टिसे वेदांक निकालनेकी भावना कुछ कम कौतूहल-जनक न थी। अस्तु, सम्पादक-त्रयी के अनवरत परिश्रमसे वेदांक देखनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हो ही गया। हमारे ऐसे संकीर्ण व्यक्तियों को जो वैदिक सभ्यता एवं साहित्यको भारतीयता की नींव समझते हैं और यही नहीं, प्रत्युत जो भारतके भविष्यको भी इसीमें रंगा हुआ देखना चाहते हैं, इसे देख कर बड़ा ही आश्वासन होगा।

प्रत्येक ईश्वरीय वस्तु सामान्य संसारके लिये विचित्र पहेली है, और इसी दृष्टिसे ईश्वरीय ज्ञान

वेद भी आरम्भसे लेकर आज तक पहेली बने हुये हैं। इस प्रहेलिकाको विचारवान ऋषियों ने भिन्न भिन्न प्रकार सुलझाया है। कभी कभी तो वैदिक समस्यायें सुलझाने पर और भी अधिक उलझ जाती हैं। अस्तु, इनके विषयमें मतभेद होना स्वाभाविक ही है।

प्रस्तुत वेदांककी यह विशेषता है कि इसमें सम्पादक महोदयों ने सभी प्रकारके विचारोंको स्थान दिया है। भिन्न भिन्न लेख भिन्न भिन्न दृष्टियों से महत्वके हैं। वैदिक साहित्यके पाश्चात्य अनुशीलनके सम्बन्धमें डा० हरिदत्त शर्मा और डा० मंगलदेव शास्त्रीके लेख बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे। वैदिक कोषोंके सम्बन्धमें अन्य लेख भी अच्छे हैं पर पं० भगवत्दत्त जी का 'लुप्त वैदिक निघण्टु' शीर्षक नोट वैदिक साहित्यके अन्वेषण करने वालों को बहुत ही आकर्षक प्रतीत होगा। साधारण लेखोंमें 'दिति और अदिति' 'इन्द्र' और 'दाशराज्ञ युद्ध' लेख अच्छे हैं। वेदोंकी नित्यता अथवा अपौरुषेयता पर भी कुछ लेखोंमें प्रकाश डाला गया है। आर्य्योंके आदि निवासके सम्बन्धमें श्री रुद्रदेव जीका लेख अच्छा है यद्यपि भ्रान्तिपूर्ण है। वेद और आर्य्य समाजके विषयमें भी कई लेख हैं। सम्पादकीय मन्तव्योंमें दी गई सामग्री भी अनेक दृष्टियोंसे उपयोगी है।

बड़े विद्वानोंके छूँछे लेखोंका भी काफी संग्रह है। आचार्य्य ध्रुवका 'वेद, वेदार्थ और वैदिक देवता' नामक लेख इसका अपवाद अवश्य है। पर महामहोपाध्याय श्री गंगानाथ झा को सभ्रम टिप्पणी, और यह युक्ति कि 'जो ग्रन्थ' 'पौरुषेय' हैं, उसका रचयिता पुरुष अवश्य ही ज्ञात रहता है। कुछ अधिक नहीं जँचती है। संस्कृत साहित्यमें तो इस प्रकार न जाने कितने ग्रन्थ अपौरुषेय हो जायँगे। महाभारत का न जाने कितना स्थल अपौरुषेय हो जायगा। 'आनन्दरूप भवानी' के गीत और वैदिक ऋचायोंसे जो तारतम्य है उससे तो परिणाम उलटा यही निकलता है कि वेद 'पौरुषेय' ही होंगे, क्योंकि उक्त गीतके रचयिता का नाम न ज्ञात होने पर भी उसे अन्य गीतोंके समान सभी पौरुषेय ही मानते हैं। श्री मधुसूदन ओझा जी ने, जिनका इस वेदांक में इतना गुण गान किया गया है, वैदिक साहित्यकी कौन सी अमूल्य सेवाकी है, यह अभी तक हमारी समझमें नहीं आया है। उनका लेख भी साधारण है। यही हाल श्री गोपीनाथ जी कविराज ऐसे विद्वानोंके लेखोंका है। बड़े बड़े विद्वानोंमें आज कल कुछ ऐसी प्रवृत्ति हो गई है कि वे हिन्दीकी पत्रिकाओं के लिये लेख लिखनेमें परिश्रम करना अपनी मानि-हानि समझते हैं। सम्पादकोंकी अनुनय विनय पर उनको कृतज्ञ करनेके लिये कुछ लिख देते हैं। अब बेचारा सम्पादक इन्हें छापे तो मुश्किल और न छापे तो मुश्किल।

सबसे बड़े वेदज्ञका उल्लेख करते हुए सम्पादकीय टिप्पणीमें लिखा गया है—कोई ए० बी० कीथको सबसे बड़ा वेदज्ञ मानता है, कोई मैक्डानलको, कोई डा० रेलेको, कोई पं० मधुसूदन ओझाको, कोई पं० गोपीनाथ कविराजको, कोई डा० अविनाशचन्द्र दासको, कोई विधुशेखर भट्टाचार्य्यको, कोई क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय को, कोई एकेन्द्रनाथ घोषको और कोई रुद्रदेव शास्त्रीको। ओझा जीको केवल गिरिधर शर्मा जीके अतिरिक्त शायद कोई इतना अधिक समझता होगा। चट्टोपाध्याय, घोष और रुद्रदेव जीको तो कोई भी सबसे बड़ा वेदज्ञ नहीं मानता है। हम इन लोगों की विद्वत्ता पर कुछ व्यक्तिगत आक्षेप नहीं करना चाहते हैं, पर इस प्रकारका नामोल्लेख करना भी अनुचित है।

चित्रोंके नीचे प्रशंसासूचक जो शब्द अंकित कर दिये गये हैं वे कुछ आपत्ति जनक हैं। मधुसूदन ओझा जी के चित्रके नीचे यह लिखना कि "आप ऐसा वेदज्ञ सदियोंसे भूमण्डलमें नहीं उत्पन्न हुआ" न केवल असंगत और अनुपयुक्त हो है पर वैदिक साहित्यके अन्य विद्वानोंके लिये अपमान-जनक भी है।

वेदांकमें दी गई कवितामें हरिऔध जी की रचनाको छोड़ कर लड़खड़ाती हुई हैं। हमें लोचन प्रसाद जी पांडेयसे अच्छी रचनाओंकी आशा थी। वेदांककी छपाई कहीं बहुत अच्छी, कहीं अच्छी, कहीं भद्दी और कहीं बहुत भद्दी है।

अस्तु, यह वेदांक हमें बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुआ है। सम्भवतः कोई भी सम्पादक इससे अच्छा वेदांक नहीं निकाल सकता है। कदाचित् भविष्यमें भी शीघ्र इस प्रकारके सुन्दर अंक देखने को न मिलेंगे। वेदांक को वस्तुतः विशेषांक कहा जा सकता है, अन्यथा अन्य पत्रिकायें तो अपनी कलेवर वृद्धिको ही विशेषांक की विशेषता समझती हैं। हमें इसका पूर्ण अनुभव है कि इस प्रकारके अंक निकालनेमें क्या क्या कठिनाइयाँ होती हैं, अतः हम सम्पादक महोदयों को इस संग्रहणीय सामग्रीके उपलक्षमें हृदयसे बधाई देते हैं।

—सत्य प्रकाश

प्रतिष्ठाता
डाबर
(डाक्तर एस० के० बर्म्मन)
लिमिटेड
कलकत्ता
डाक्तर एस. के. बर्म्मन
स्थापित
स्टार
ट्रेड SKB मार्क
रजिस्टर्ड
सन १८८४ ई०
५० वर्षोंसे भारतीय पेटेन्ट दवाओंके अतुल्य आविष्कारक।
पुष्टिकारक और बलबर्द्धक !
"पष्टीना" (REGD.)
(धातुपुष्ट की गोली)
इस पौष्टिक पदार्थको सेवन करनेसे साधारण कमजोरी, नामर्दी, धातुक्षीणता, हाथ पैरों का कांपना, हालदिल, याद भूलना, थोड़ी मेहनतमें थक जाना और जवानीमें बूढ़ोंकी सी हालत दूर होती है।
मूल्य—फी शीशी १=) एक रुपया दो आना। डा० म० ।≈) नमूनेकी शीशी ≈)॥ मात्र।
नोट—इस दवाके साथ बीच बीचमें हमारी बनाई "जुलाबिन" (जुलाबको गोली) खाकर पेट साफ रखना उपकारी है। मूल्य—जुलाबिनकी फी शीशी ॥=) दस आना। डा० म० ।≈)
गर्मी में माथा ठण्डा रखनेके लिये।
"केशराज" (REGD.)
(केश तेलोंका राजा)
यह अनुपम सुगन्धित युक्त तैल बालोंको पुष्ट करनेमें अद्वितीय है। इसके नित्य व्यवहारसे बाल काले, चमकीले और लम्बे हो जाते हैं। बालोंकी जड़ मजबूत होती हैं। चित्त प्रफुल्लित रहता है और दिमाग तथा आंखोंमें नवीन शक्तिका आविर्भाव होता है। इसकी विशुद्धता तथा गुणोंकी प्रशंसा देशके नेताओंने मुक्तकंठसे की है।
मूल्य—प्रति शीशी ॥।≈) पन्द्रह आना। डा० म० ॥=) नमूनेकी शीशी ≈) मात्र।
नोटः—हमारी दवाएँ सब जगह दवाखानोंमें बिकती हैं। डाक ख़र्च बहुत बढ़ गया है अतः उसकी बचतके लिए अपने स्थानीय हमारे एजेण्ट से खरीदये। नमूना केवल एजेण्टोंको ही भेजा जाता है।
[विभाग नं० १२१] पोष्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता।
एजेण्ट—इलाहाबाद (चौक) में मैसर्स दूबे ब्रादर्स।

वैज्ञानिक पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. तथा श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव ... ।।=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १।।)
७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद
मध्यमाधिकार ... ... ।।=)
स्पष्टाधिकार ... ... ।।।)
त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १।।)
चन्द्रग्रहणाधिकारसेउदयास्ताधिकारतक १।।)
८—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० श्र० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
९—जीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
१०—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
११—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
१२—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)
१३—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
१४—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
१५—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी, बी. एस ... =)
१६—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)
१७—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
१८—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१९—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)
२०—ज्वर निदान और शुश्रुषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ।)
२१—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
२२—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)
२३—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
२४—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)।
२५—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी. तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १।।)
२६—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २।।)
२७—साधारण रसायन—ले० श्री० सत्यप्रकाश एम० एस-सी० ... ... २।।)
२८—वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द, प्रथम भाग—ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी० ... ।।)
२९—बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखा गणित—ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी० ... १।)
३०—सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन—ले० श्री० युधिष्ठिर भार्गव एम० एस-सी० ... =)
३१—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग ... १।।)
३२—समीकरण मीमांसा दूसरा भाग—ले० स्वर्गीय श्री पं० सुधाकर द्विवेदी ... ।।=)
३३—केदार बद्रीयात्रा ... ।)

पता—मंत्री विज्ञान परिषत्, प्रयाग।

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

पूर्ण संख्या— २०४ Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A. 708.

भाग ३४ VOL. 34.

मीन, संवत् १६८८

मार्च १९३२

संख्या ६ No. 6

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी.,

सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

युधिष्ठिर, भार्गव, एम. एस-सी.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ३४ } मीन, संवत् १९८८ { संख्या ६

प्रकाश संश्लेषण

[लेखक :—श्री वा० वि० भागवत, एम० एस-सी०]

थोड़े ही दिन पहले (१९२३) बेली, हाइलब्रान और स्टर्न ने प्रकृतिमें मिलनेवाले बहुतसे नोषजन यौगिक कर्बनद्विओषिद और अमोनियासे प्रकाश संश्लेषण द्वारा बनाये हैं। यद्यपि कर्बनिकाम्ल और अमोनिया पर प्रकाशकी क्रियासे बनाये हुए पदार्थ और कर्बनिकाम्ल और पांशुज नोषेत प्रकाश में रखकर बने हुये पदार्थोंमें भेद होता है, तो भी संश्लेषणकी रीति दोनोंमें एकसा मालूम पड़ती है। परीक्षाके प्रथम भागमें कर्बनद्विओषिदसे संयुक्त अमोनियाके जल घोल भिन्न भिन्न समय तक कार्टज पारद प्रदीपके प्रकाशमें रखे गये थे। अन्तमें देखा गया कि जो पदार्थ मिले उसमें दारील अमिन ही मुख्यतः अधिक था। इसके अतिरिक्त नोषिक और नोषस वाष्पें बनीं। यह प्रकाश संश्लेषण दो श्रेणीमें होता है, ऐसा माना गया है। प्रथम कार्बनिक अम्ल पर प्रकाश क्रियासे पिपील मद्यानार्द्र बनता है:—

$$उ_2 क ओ_3 = उ क ओ उ + ओ_2$$

और दूसरी बार क्रियावान पिपील मद्यानार्द्र और अमोनियाकी आपसमें क्रिया होकर दारील अमिनका बनना:—

$$नो उ_3 + उ क ओ उ = क उ_3 नो उ_2 + ओ$$

इन दोनों क्रियाओंमें निकले हुए ओषजनसे अमोनियाका नोषिकाम्ल बन जाता है। इसी क्रियामें पिरीदीन भी बना हुआ देखा गया है।

(२) सामान्यतया अमोनिया और पिपील मद्यानार्द्र पर पराकासनी किरणोंकी बहुत देर तक क्रिया करने पर एक क्षारोद मिला है जिसको कोनिन समझा जाता है।

यह क्रिया दिनके उजेले में तथा पराकासनी किरणोंमें की गई थी। परन्तु यह ध्यानमें रखना

आवश्यक है कि प्रत्यमिनका संश्लेषण काफी कर्बद्वेत होने पर, अंधेरेमें और पर्णहरिन् रहित अङ्गों में भी हो सकता है। शायद यह सच है कि नोषजन को ग्रहण करना प्रकाश रासायनिक क्रिया नहीं है।

प्रकाश संश्लेषणसे उत्पन्न किये हुये पदार्थः—

वह पदार्थ जो कि प्रकाश संश्लेषणसे उत्पन्न होते हैं कर्बोद्देत तथा ओषजन होते हैं। प्रकाश संश्लेषणका अन्वेषण ओषजनके विकासका ही फल है। यह बड़ा सरलतासे दिखाया जा सकता है कि वृक्षके आसपासके वायुमंडलमें ओषजनका आधिक्य तथा कर्बनद्विओषिदको कमी होती जाती है। जो गैसें निकलती है उनमें ओषजनके अतिरिक्त, नोषजन तथा कर्बन द्विओषिद भी होती है।

जो कर्बोद्देत वृक्षोंमें पाये जाते हैं, और जो साधारणतया प्रकाश संश्लेषण से उत्पन्न होते हैं। उनमें नशास्ता तथा शर्करा भी रहती है। कुछमें नशास्ता नहीं पाई जाती जिसका कि कारण द्राक्षोज का अधोसमाहरण है। वृक्षोंमें जो शर्करिद होती हैं उनका यह मान है। एक शर्करिद ⇌ द्वि शर्करिद ⇌ बहु शर्करिद। कर्बोद्देतमें, त्रयोज, और बहु शर्करिद त्रयोज अर्थात् मधुओलिन तथा मधुनिक मद्यानाद्र्ई प्रकाश संश्लेषणका मध्यम उपज कही जाती है, यद्यपि वृक्षोंमें उनकी स्थिति सन्देहजनक है। चतुरोज तक यह शर्करायें वृक्षोंमें नहीं रहती हैं यद्यपि उनमेंसे कुछ द्राक्षोसिदके उद-विश्लेषण द्वारा पाई गई हैं। पंचोज वृक्षोंमें बहुत मिलती है और वे बहुधा पंचोजके रूपमें मिलती हैं। तथा कभी कभी स्वतन्त्र पंचोज भी पाई जाती है। वृक्षोंमें दारील पंचोज भी पाई जाती है।

षष्ठोज वृक्षोंकी शर्कराओंमें सबसे ऊँचा स्थान रखती है, क्योंकि वह वृक्षों एवं जानवरोंका क्रियाओं के लिये उत्तरदायी है। वास्तवमें द्राक्षोजको शक्तिका मुख्य द्वार समझना उचित है, जो कि बहुतसे वृक्षों तथा जानवरोंके कोष्ठोंके कार्योंके सञ्चालित करने के योग्य बनाती है। षष्ठोज द—द्राक्षोज, द—मनोज द—दुग्धस्योज तथा द—सारबोज के रूपमें मिलती है, विशेष कर द—द्राक्षोज के रूपमें। वह प्रकाश भ्रामक रूपमें कार्य करती है, और उसकी इस क्रियाकी तथा पौधोंके असमसंगतिक संश्लेषणकी विवेचना करना बहुत कठिन है। एक-शर्करिदोंका नशास्ताके रूपमें बदल जाना अभी तक सिद्ध नहीं किया जा सका है।

जलका परिणाम :—उद्भिजको अपने शर्करामय पदार्थोंके बनानेमें कर्बन द्विओषिदके समान जलको भी उतनी ही अवश्यकता है; लेकिन पत्तियोंके भीतर जलका परिमाण बदलनेसे प्रकाश-संश्लेषणकी गति पर बहुत कम प्रभाव पड़ना चाहिये। केसुलर ने सन् १८८५ में अपनी परीक्षायों द्वारा यह सिद्धान्त निकाला है कि पत्तियोंके भीतर जलका परिमाण घटानेसे प्रकाश संश्लेषणकी गति भी घट जाती है। इसके पश्चात् अन्य वैज्ञानिकों ने भी इसी बात को निश्चित किया है कि प्रकाश संश्लेषणकी गति पत्तियोंके जलसे फुलावके साथ बहुत कुछ सम्बन्ध रखती है। गतिके कम हो जानेका कारण बहुतों ने यह मान लिया है कि पत्तियोंमें जलका परिमाण घटनेके साथ ही साथ पत्तियोंके त्वचारन्ध्र भी बन्द हो जाते हैं। थोड़े ने इसी कारणको इस तरह सिद्ध किया है जिन पौधोंमें त्वचारन्ध्र नहीं होते, उनमें जलका परिमाण प्रकाश संश्लेषणको गति पर बहुत कम प्रभाव डालता है परन्तु बड़े बड़े पौधोंमें जिनमें त्वचारन्ध्र रहते हैं उनमें यह प्रभाव बहुत पड़ता है।

दस्तूर ने सन् १९२४ में यह दिखाया कि पत्तियोंकी उम्रके साथ ही साथ प्रकाश संश्लेषण की गति घटती जाती है। यह गति पहले पहल जल बहने वाले नसोंसे दूर स्थानों पर होती है लेकिन बादको पत्तियोंके भीतरी भागोंमें नसोंके आस पास भी गति कम होती जाती है। कुछ दिनों बाद इन्होंने फिर परीक्षायों द्वारा यह दिखाया कि पत्तियाँ ज्यों ज्यों पुरानी होती जाती हैं उनमें

प्रकाश संश्लेषणके साथ ही साथ जलका परिमाण घटता जाता है।

पौधों पर पड़ने वाली सूर्य्यकी किरणों की लहर लम्बाई:—इस लेखके पहिले हिस्से में प्रकाशकी तेजीका प्रभाव दिखाया गया था। यह प्रकाश सूर्य्य द्वारा ही पौधोंको मिलता है। इस सूर्य्य प्रकाशमें भिन्न भिन्न किरणें होती है और इन किरणों की भिन्न भिन्न लहर लम्बाई भी होती है जो कि ७७० μ. μ. से लेकर ३९० μ. μ. के भीतर होती है। यह किरणें साधारण दृष्टि द्वारा दिखाई पड़ती हैं लेकिन और ऐसी किरणें भी हैं जो कि दिखाई नहीं पड़तीं और जिनकी लहर लम्बाई भी ७७० से ज्यादा और ३९० से कम होती है। इस लिए यह उचित है कि यह निश्चित किया जाय कि सफेद प्रकाशकी सब किरणें दृष्टिगोचर प्रकाश संश्लेषणकी क्रियामें काम आती हैं या कुछ निर्दिष्ट लहर लम्बाईके अतिरिक्त और किरणें बिलकुल बेकार हैं।

अनेक वैज्ञानिकों ने इस विषय पर बहुत दिनों से ध्यान दिया है कि श्वेत प्रकाशकी भिन्न भिन्न किरणें प्रकाश संश्लेषणकी गति पर क्या प्रभाव डालती हैं। ड्यूमा, बोसिंगोल्ट और सेनिबियर ने यह सोचा था कि श्वेत प्रकाशके नीलेसे लेकर बैंगनी वाले हिस्सों में प्रकाश संश्लेषण अधिक होता है। लोमेल ने सन् १८७१ में यह बताया कि पर्णहरिनमें जो किरणें सबसे ज्यादा शोषित हो जाती हैं, यानी (बी) और (सी) लकीरके मध्यवाली वही किरणें प्रकाश संश्लेषणमें सब से ज्यादा काम आती हैं।

यूरस्प्रंग ने सन् १९१२ में परालाल किरणों में भी कुछ नशास्ता बनते पाया है।

ऊपर लिखे हुए वर्णन द्वारा यद्यपि भिन्न भिन्न किरणोंकी लहर लम्बाईका प्रभाव प्रकाश संश्लेषण पर थोड़ा सा दीख पड़ता है; परन्तु यह सब प्रयोग ठीक नहीं मालूम पड़ते क्योंकि उपर्युक्त वैज्ञानिकों ने भिन्न भिन्न किरणों की तीव्रता के सिवाय और किसी हेतु पर भी ध्यान नहीं दिया।

नीप और मीनडर ने सन् १९०९ में इन सब बातों पर ध्यान देते हुए यह निकाला कि नील और लाल किरणोंमें करीब करीब एक सा प्रकाश संश्लेषण होता है परन्तु हरी किरणोंमें प्रकाश संश्लेषण कुछ भी नहीं होता। इसमें भी कुछ दोष पाये जाते हैं, क्योंकि यदि पौधों पर लाल या नीले कांचके भीतरसे होकर प्रकाश फेंका जाय तो पौधों पर गिरती हुई रोशनीकी गठन बिलकुल बदल जानेका सम्भावना है।

इसके बाद यूरस्प्रंगने सन् १९१८ में भिन्न भिन्न किरणों की लहर लम्बाई और नशास्ता गठनके सम्बन्ध पर दृष्टि डाली। उन्होंने देखा कि लाल सिरे पर बिलकुल नशास्ताकी उत्पत्ति नहीं होती लेकिन उसके पश्चात् लहर लम्बाईके कम होनेके साथ ही साथ नशास्ता की उत्पत्ति भी बढ़ती है। (सी) लकीर पर जिसकी लहर लम्बाई ६५६ μ. μ. है, नशास्ता उत्पत्तिकी पहली अधिकतम संख्या पाई जाती है। उसके बाद लहर लम्बाई कम होने के साथ ही साथ नशास्ता की उत्पत्ति भी कम होती जाती है। इन किरणोंके किसी किसी भागमें दूसरी अधिकतम संख्या भी पाई गई है। ये अधिकतम संख्यायें (डी) लकीर पर याने ६२० μ. μ. और ५८९ μ. μ. के बीच और (एफ) और (जी) लकीर पर जिनकी लहर लम्बाई ४७७ μ. μ. और ४३७ μ. μ. होती है।

यह स्पष्ट है कि प्रकाश संश्लेषण पत्तियों पर गिरते हुये किरणोंकी लम्बाईसे बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है। कुछ निर्दिष्ट किरणें भली भाँति लीन हो जाती हैं परन्तु कुछ किरणें पत्तियोंके लिये बिलकुल बेकार हैं। इस कारण पत्तियों पर उन किरणोंकी तीव्रताका जिनकी लहर लम्बाई पत्तियोंमें शोषित हो जाती है, प्रभाव प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया पर अवश्य पड़ेगा। यह प्रभाव केवल निम्न लिखे हुए किरणों द्वारा ही सम्भव है।

(१) (बी) और (सी) लकीरके बीच वाली लाल किरणोंका प्रभाव सबसे ज्यादा पड़ता है।

(२) और नीले और बैंजनी किरणों द्वारा सबसे कम प्रभाव पड़ता है।

इन सब प्रमाणोंके होते हुए भी फेफर ने सन् १६०० में यह कहा कि पत्तियोंके ऊपरी भागमें स्थित कोष्ठ युक्त हरित-पिण्ड प्रमाणित निर्दिष्ट लहर लम्बाई वाली किरणें पाते हैं लेकिन अन्दर स्थित कोष्ठ के हरितपिण्ड पर बिलकुल भिन्न गठनकी किरणें पड़ती हैं। इस कारण ऊपर लिखी हुई परीक्षायें केवल ऊपरी भागमें स्थित हरितपिण्ड द्वारा ही प्राप्त हुई है। कुछ पत्तियाँ अधिक मोटी होती हैं और इनमें यह बात बिलकुल सच है कि भीतरी हरित पिण्डको भिन्न प्रकारकी किरणोंसे अपना काम चलाना पड़ता है।

पौष्टिक धातु मिश्रण या लवण :—

इस विषय पर ब्रिग्स ने सबसे ज्यादा ध्यान दिया है। सन् १६२२ में इन्होंने पौधोंके उपयोगी बहुत सी धातुयें निकालीं जिनका पौधोंमें वर्तमान रहना बहुत आवश्यक है। इन धातुओंके नाम पांशुजम्, मगनीसम्, लोहा और स्फुर है।

इन धातुओंमेंसे किसी एकको निकाल लेनेसे प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया घट जाती है।

ब्रिग्स ने यह सिद्धान्त इस तरहसे समझाया है कि उक्त लिखी हुई किसी धातुको कम कर देने या निकाल देनेसे हरितपिण्डकी क्रियाकारिणी तह घट जाती है।

इसका मतलब यह है कि जिस स्थान पर रासायनिक क्रिया होती है उस हिस्सेका पसार घट जाता है। ताप या प्रकाशकी तेजीको सीमा-बद्ध करनेसे कुछ अधिक प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि जब क्रिया-करणोंकी मात्रा कम हो जाती है तो प्रकाश या तापकी तेजीका प्रभाव रासायनिक क्रियाकी मात्रा पर भी कम हो जाता है।

स्टोकलासा (Stoklasa) और उनके साथियों का कहना है कि पांशुजम् प्रकाश संश्लेषणकी क्रियाके लिए मुख्य हेतुओंमेंसे एक है लेकिन ब्रिग्स ने मगनीसम् के लिये भी यही बात कही थी और ब्रिग्स का कहना इसलिये सच माना जाता है कि पर्णहरिन् में मगनीसम् पाया जाता है और इसको निकाल देनेसे या कम कर देनेसे पर्णहरिन् का गठन ठीक तरहसे नहीं होता।

आसपासके स्थानके निःसरण दबावका प्रभाव :—

(Osmotic Pressure) अपनी परीक्षाओं द्वारा लेगेण्ड्री (Legandre) ने सन् १६२१ में यह बतलाया कि यदि समुद्रके पानी का घनत्व घटा दिया जाय तो उसमें उगते हुए पौधोंको प्रकाश संश्लेषणकी गति बढ़ जाती है। १·०१ घनत्व तक प्रकाश संश्लेषण बढ़ता जाता है और इसी संख्या पर प्रकाश संश्लेषणको अधिकतम गति पाई जाती है लेकिन इसके बाद और घनत्व घटानेसे गति भी घटती जाती है। लेगेण्डा ने इसको मुख्य तौरसे निःसरण दबावका प्रभाव नहीं माना है। उनका कहना है कि पानीका घनत्व घटानेसे उसमें घुले हुये कर्बनेत और अर्ध-कर्बनेतका परिमाण भी साथ ही साथ घट जाता है।

ओषजन (oxygen)—इस विषय पर विलसटेटर और स्टोल का काम उल्लेखनीय है। इन्होंने यह कहा है कि प्रकाश संश्लेषणको क्रिया आरम्भ करनेके लिये पहले पहल ओषजनकी बहुत आव-श्यकता है।

उन्होंने ओषजन घटित वायुमण्डलमें प्रकाश-संश्लेषणकी गति घटती पाई है। यदि दो घण्टे तक पौधे या पत्तियाँ ओषजन घटित वायु मंडलमें रक्खी जांय तो उसके बाद उनको ओषजनमें रखने पर भी उनमें प्रकाश संश्लेषण क्रियाकी सामर्थ्य नहीं रह जाती। इसका कारण ये लोग यह बताते हैं कि यहाँ पर दो क्रियायें एकके बाद एक आरम्भ होती हैं। पहले तो आसपासका ओषजन निकल

आता है लेकिन उसके बाद पत्तियों के कोष्ठके बीचका ओषजन भी निकल जाता है। जब तक यह द्वितीय क्रिया आरम्भ नहीं होती, पत्तियोंमें प्रकाश संश्लेषणकी शक्ति वर्तमान रहती है, लेकिन पत्तियोंके कोष्ठके बीचका ओषजन निकल जानेके बाद उनमेंसे यह शक्ति तिरोहित हो जाती है।

स्पोर और मेकगी (Spor and Mc Gee) ने सन् १९१३ में यह बतलाया कि जो पत्तियां अन्धेरेमें रक्खी जाती हैं और जिससे उनके कर्बोदेत (Carbohydrate) का परिमाण घट जाता है। वे ओषजन घटित वायुमंडल को बहुत देर तक बरदाश्त नहीं कर सकतीं, लेकिन जिनमें कर्बोदेतका परिमाण अधिक होता है, उनमें प्रकाश संश्लेषण क्रियाकी शक्ति बहुत देर तक रहती है।

१—दूसरी छोटी छोटी वस्तुयें—नशा कराने वाली ओषधियाँ (Anaesthetics)—ज्वलक (Ether) और क्लोरोफार्म (Cloroform) से प्रकाश संश्लेषण की क्रियाकी घट जाती है। लेकिन यदि परिमाण अधिक हो जाय तो पौधे मर जाते हैं। पर यदि परिमाण बहुत कम हो तो कुछ देरके लिये प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया रुक जाती है। लेकिन उसके बाद धीरे धीरे फिर उनमें शक्ति आ जाती है।

२—अम्ल (acid)—यदि अम्ल बहुत अल्प परिमाणमें दिया जाय तो प्रकाश संश्लेषणकी गति बढ़ जाती है, लेकिन एडोल्फ मेयर (Adolph Mayer) का यह कहना है कि काष्ठिकाम्ल (Oxalic) देनेसे पौधों या पत्तियोंमें श्वास होने की गति बढ़ जाती है और जिससे कर्बनद्विओषिद का परिणाम भी बढ़ जाता है और इसी कारण इस कर्बन द्विओषिद द्वारा पौधे या पत्तियां अपने प्रकाश संश्लेषणकी गति भी बढ़ा लेती हैं क्योंकि ईवर्ट ने स्फुरकाम्ल में कुछ बढ़ाव नहीं पाया।

बेनकी सन १९१२ में इस सिद्धान्त पर आये कि अम्ल पर्णहरिन् पर उत्तेजना का प्रभाव डालते हैं या दूसरी बात यह हो सकती है कि जलीय पौधे के आसपासके जलकी बनावट को अम्ल बदल देते हैं और जलमें घुले हुये कर्बनद्विओषिद अम्ल द्वारा निकलना शुरू होते हैं। और तीसरी बात यह भी हो सकती है कि पौधोंके भीतर कुछ कार्बनिक अम्ल वर्तमान रहता है और बाहरसे दूसरा कोई अम्ल देनेसे यह कर्बन द्विओषिदके स्वरूपमें निकलना शुरू करता है। इन उपर्युक्त तीन कारणोंसे अम्ल प्रकाश संश्लेषणकी गतिको बढ़ा देते हैं। जगदीश बोस ने सन १९२३ में पौधोंमें प्रकाश संश्लेषणकी गति नोषिकाम्ल देनेसे बढ़ती हुई पाई है।

घावका प्रभावः—कोष्ठिठ्यू सन १८२१ में इस सिद्धान्त पर आये कि घावका प्रभाव प्रकाश संश्लेषणकी गति पर अति अल्प पड़ता है। उनका कहना यह है कि हरित पिंड पर ही प्रकाश संश्लेषण की क्रिया स्थापित होती है। इस कारण घावका प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

बिजलीका प्रभावः—थौविनिनने सन् १८८६ में बहुतसे जलीय पौधों पर बिजलीका प्रभाव देखा। ये अपनी परीक्षा द्वारा इस सिद्धान्त पर आये कि यदि पत्तों या शाखोंके तलसे ऊपरकी ओर बिजली दी जाय तो प्रकाश संश्लेषण की गति बढ़ जाती है। पोलेसाई भी इसी सिद्धान्त पर आये। इसके अलावा इन्होंने यह भी देखा है कि यदि बिजलीकी गति उलटी कर दी जाय यानी बिजली ऊपरसे तलेकी ओर आये तो प्रकाश संश्लेषण की गति घट जाती है।

प्रेरक जीव और दूसरे कललात्मक हेतुः—

विलसटैटर और स्टाल ने प्रकाश संश्लेषणकी पर्णहरिन् के परिमाण पर परीक्षा करते समय यह देखा था कि यदि दो भिन्न प्रकारकी पत्तियाँ ली जायँ जिनके पर्णहरिन का परिमाण एकसा हो, और यदि दूसरे हेतुओंको अधिक परिमाणमें रक्खा जाय तो इन दोनों पत्तियों में प्रकाश संश्लेषणकी गति कम बेशी होती है। इसका कारण उन्होंने भीतरी दूसरे हेतुओं के ऊपर छोड़ दिया था।

ये हेतु कललात्मक या प्रेरक जीव समझे जाते हैं। इन दोनों वैज्ञानिकों ने हरी और पीली पत्तियोंके ऊपर भी काम किया है। इन्होंने यह देखा कि उत्तापकी प्रखरताका असर हरी पत्तियोंके ऊपर अधिक पड़ता है, लेकिन प्रकाशकी तेजीका असर पीली पत्तियों पर अधिक होता है। कारण यह है कि पर्णहरिन वाली पत्तियोंमें कललात्मक या प्रेरक जीव हेतु गतिको सीमाबद्ध कर देते हैं या उसमें ये हेतु बहुत कम परिमाणमें होते हैं जिससे केवल वही प्रकाश संश्लेषणकी गति पर प्रभाव डालता है और पर्णहरिन अधिक परिमाणमें होते हुए भी क्रिया पूरी तरह करनेसे समर्थ नहीं होता है।

पीली पत्तियों या कम पर्णहरिन् वाली पत्तियों में कललात्मक हेतु अधिक परिमाणमें होता है और इसमें पर्णहरिन् गतिको सीमाबद्ध करती है, जिससे थोड़े ही तापमें कुल पर्णहरिन् काममें आ जाती है; किन्तु प्रकाशकी तेजी गति पर काफी प्रभाव डालेगी क्योंकि यह प्रकाशकी रासायनिक अवस्थाको बढ़ा देती है और जिससे थोड़ी सी पर्णहरिन् ज्यादा प्रकाशकी तेजी की सहायतासे गतिको बढ़ा देगी।

ऊपर दी हुई परीक्षासे यह भली भाँति मालूम होता है कि पर्णहरिनके सिवाय और दूसरे हेतु भी प्रकाश संश्लेषणकी गतिसे सम्बन्ध रखते हैं और ये दूसरे हेतु कललात्मक या प्रेरक जीवी हैं।

भीतरी गठनः—धूप और छायामें उगने वाले पौधोंकी भीतरी गठन भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है और इस भेदके कारण उनमें प्रकाश संश्लेषणकी गतिमें भी भेद हो जाता है। जिन पत्तियोंमें पर्णहरिन वाले कोष्ठोंमें दो या तीन तहें होती हैं वे एक तहकी पर्णहरिन वाले कोष्ठोंकी पत्तियोंकी अपेक्षा अधिक तेजीके साथ प्रकाश संश्लेषणकी क्रिया कर लेती हैं। मोटाईके अतिरिक्त और दूसरे गठनात्मक हेतु भी हैं जोकि कर्बनद्विओषिदके भीतर घुसनेके मार्गको मुश्किल या आसान कर देते हैं, या कोष्ठोंके कर्बन द्विओषिद् शोषण क्रियामें अन्तर डाल देते हैं। इन पत्तियोंमें प्रकाश संश्लेषण कम होता है।

आहारीय पदार्थका पौधोंके भीतर संग्रहीत हो जानेका प्रभाव:—

यह आशा की जाती है कि यदि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बराबर होती रहे और यदि क्रियाका फल कोष्ठोंसे न हटकर बराबर संग्रह होता रहे तो एक ऐसी अवस्था आयेगी जबकि प्रकाश संश्लेषण बन्द हो जायगा।

भेद, लक्षण, निदान इत्यादि

[ले० श्री डा० कमला प्रसाद जी, एम-बी०]

१० यकृत-यक्ष्मा

(Tuberculosis of the liver)

निम्नलिखित अवस्थाओंमें यकृत यक्ष्मा द्वारा आक्रान्त होता है ।

(क) बहुसंख्यक-यक्ष्मा । नूतन सर्वाङ्ग यक्ष्मा में तो यकृत आक्रान्त होता ही है किन्तु जीर्ण-यक्ष्मामें भी यक्ष्मा की बहुसंख्यक गांठें पाई जा सकती हैं ।

(ख) एकान्त बृहद् यक्ष्मा गांठ—यह परि-यकृत-प्रदाह (Perihepatitis), यक्ष्माकृत परि-विस्तृत कला-प्रदाह अथवा लसीका ग्रंथि प्रदाहके साथ पाई जाती है । यकृत बड़ा हो जाता है और इसमें कई केन्द्रों पर अधःक्षेपण क्रिया होती रहती है । इसमें कुछ पीड़ा भी होती है ।

(ग) पित्तप्रनालीका यक्ष्मा (Tuberculosis of the Bile ducts), यकृत बड़ा हो जाता है काटने पर उसमें अनेकों यक्ष्माक्षत पाये जाते हैं जिनमें पित्त-मिश्रित पीब भरा रहता है ।

(घ) यक्ष्माजनित जीर्ण यकृत-प्रदाह । (Tuberculous cirrhosis of the liver) बहु-संख्यक यक्ष्मा गांठें निकल आती हैं; कुछ सौत्रिक तंतुओंका विस्तार होता है किन्तु अधिक वसा (fat) की उत्पत्तिके कारण ये ढक जाते हैं ।

आंखों में पीलापन छा जाना (Jaundice) नूतन सर्वाङ्ग यक्ष्मा में बहुधा देखा जाता है किन्तु यकृतकी अन्य अवस्थाओं में यह लक्षण प्रत्यक्ष नहीं होता ।

११ मस्तिष्क एवं सुषुम्नाका यक्ष्मा

(Tuberculosis of the Brain and Spinal cord)

मस्तिष्कमें तीन प्रकारका यक्ष्मा पाया जाता है

(क) नूतन बहुसंख्यक यक्ष्मा (acute miliary Tuberculosis)

(ख) जीर्ण मस्तिष्कावरण एवं मस्तिष्क प्रदाह (Chronic meningo-Eucephelitis)

(ग) एकान्त यक्ष्मा गांठ (Solitary Tubercle)

इनमें से प्रथम प्रकारके यक्ष्माका विस्तारपूर्वक वर्णन पहले हो चुका है । अन्य दोनों प्रकारके यक्ष्मा के और भी भेद हैं । किन्तु इनके लक्षण प्रायः गुल्म के लक्षणोंसे मिलते हैं—उत्तेजना, तदनन्तर दबाव-जनित लक्षण इत्यादि, साथ साथ अन्य अवयव (फुफ्फुस लसीका ग्रंथियां, अस्थियां, इत्यादि । आक्रान्त रहते हैं । गांठें बहुधा बहुसंख्यक होती हैं, मटरके दानेसे लेकर सुपारी तकके आकारकी होती हैं, अथवा कभी कभी इससे भी बड़े आकार की होती हैं, इन गांठोंमें यक्ष्माजनित सभी क्रियायें, अधःक्षेपण, खटिक जमना इत्यादि, पाई जाती हैं ।

सुषुम्नामें भी इन तीन प्रकारोंके यक्ष्मा देखे जाते हैं, तथा अन्तिम प्रकार का यक्ष्मा बहुत कम मिलता है ।

सभी लक्षण प्रायः इन स्थानोंके गुल्मके लक्षणों से होते हैं, जैसे साधारण लक्षण (जिनका कारण है अन्तर-मस्तिष्क दबाव-Intracranial pressure की वृद्धि) निम्न लिखित हैं—

शिर-दर्द—एक बार आरम्भ हो जाने पर कभी टलता नहीं ।

वमन—जिसका भोजनके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं रहता ।

अंधापन—जो बहुधा एक ही आंखमें होता है ।
नाड़ी सुस्त हो जाती है ।
कुछ २ ज्वर बना रहता है ।
कँपकँपी होती है ।

मस्तिष्क सम्बन्धी किसी प्रकारका परिवर्त्तन हो सकता है ।

विशेष लक्षण—ये क्षत की स्थिति पर निर्भर करते हैं। आरम्भमें जिस भागमें क्षत होता है उससे सम्बन्ध रखने वाली मांस पेशियों इत्यादिमें उत्तेजना होती है, किन्तु अधिक दबावके कारण जब क्षत अंश नष्ट हो जाता है तो इससे सम्बन्ध रखने वाले अंग शिथिल पड़ जाते हैं।

१२ मूत्रेन्द्रिय एवं जननेन्द्रियका यक्ष्मा

(Tuberculosis of the Genito urinary system)

इस संस्थानके किसी अंशमें यक्ष्माका प्रादुर्भाव हो सकता है। इस रोगका आक्रमण एकके बाद दूसरे अवयव पर इतनी शीघ्रतासे होता है कि यदि यह आरम्भमें नहीं देखा जाय तो यह कहना बहुत कठिन हो जायगा कि रोगका आरम्भ किस अवयवसे हुआ था। इस संस्थानके कई अवयव एक साथ आक्रान्त हो सकते हैं। इस बातका ध्यान रखना उचित है कि कई अवयवोंमें इसके केन्द्र गुप्तरूपसे वर्त्तमान रह सकते हैं। यक्ष्मा कीटाणु श्वास-संस्थानके किसी अंशमें प्रवेश कर एवं उसमें किसी प्रकारका क्षत नहीं उत्पन्न कर वास्तवमें किसी लसीका ग्रन्थमें स्थिर हो जाता है और वहाँ धीरे धीरे बढ़ने लगता है। यहांसे रक्त मार्ग द्वारा यह कीटाणु उपाण्डोंमें पहुँचता है और गांठें प्रस्तुत करता है। उपाण्डों (Epididymis) में ये गांठें बहुत आसानीसे देखी जाती हैं और वास्तविक केन्द्र गुप्त ही रह जाता है।

आक्रमणकी रीतियाँ।

(क) परम्परागत। गर्भस्थ-भ्रूणमें भी यह रोग पाया जाता है। इसके अतिरिक्त छोटे छोटे बच्चोंमें भी यह रोग वर्त्तमान रहता है। ये दोनों बातें इस सिद्धान्तका समर्थन करती हैं कि रोग परम्परागत कारणों पर निर्भर कर सकता है।

(ख) पूर्वस्थ अन्य स्थानीय केन्द्रोंसे प्रस्तार।

(१) रक्त द्वारा। बहुधा यह देखा जाता है कि यक्ष्मा केन्द्र फुफ्फुसमें वर्त्तमान रहता है तथा इसका प्रादुर्भाव अण्डमें भी हो जाता है, अतः यह कहना पड़ता है कि ऐसी अवस्थामें यक्ष्मा कीटाणुओंके संचरणका मार्ग रक्तके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

(२) परिविस्तृत कला द्वारा। इस कला एवं जननेन्द्रियोंमें इतना सम्पर्क है कि इसमें यक्ष्मा-कीटाणुओं का संचार होना अपेक्षाकृत अत्यधिक सम्भव है। जब यह कला आक्रान्त हो जाता है तब वस्ति एवं वार्य्य-कोष, तथा स्त्रियोंका डिम्ब प्रणाली के आक्रान्त होने का बहुत सम्भावना होता है।

(३) अन्य अंगों द्वारा विस्तार। उदाहरणार्थ गुदा (Rectum) के यक्ष्मामें पुरुषों की वस्ति तथा स्त्रियोंके गर्भाशय एवं योनिके आक्रान्त होने की बहुत सम्भावना रहती है। पुनः मेरुदण्डके यक्ष्मासे वृक्क आक्रान्त हो सकता है।

(ग) बाहरी आक्रमण। यक्ष्मा कीटाणु बाहरसे योनिमार्ग वा मूत्रमार्गमें प्रवेश कर सकता है कि नहीं यह प्रश्न विवादग्रस्त है। सम्भव है रतिके समय कुछ यक्ष्मा कीटाणु इस प्रकार प्रवेश कर जायँ—किन्तु इस रीतिसे आक्रमण यदि होता भी हो तो बहुत कम।

इस संस्थानका यक्ष्मा २० से ४० वर्षकी आयु के व्यक्तियोंमें अधिक देखा जाता है। स्त्रियोंकी अपेक्षा तिगुने अधिक पुरुष आक्रान्त होते हैं। एक बार इस संस्थानके किसी अंश पर आक्रमण होने पर रोग बड़ी शीघ्रतासे बढ़ता जाता है। बहुधा सम्पर्क द्वारा एकसे दूसरे अवयव पर आक्रमण होता है। उदाहरण स्वरूप वृक्क के आक्रान्त होने पर वस्ति भी आक्रान्त हो जाती है। कभी कभी किसी अवयव के तल पर भी आक्रमण बढ़ता जाता है। पुनः लसीका भी इसके विस्तारका मार्ग है।

मूत्रमें यक्ष्मा कीटाणुओंका पाया जाना एवं मूत्रके शेषांशों को छोटे छोटे प्राणियों में प्रवेश

कराने पर उनमें भी यक्ष्मा कीटाणुओंका पाया जाना इस संस्थान के यक्ष्माके प्रमाण हो सकते हैं। यक्ष्माग्रस्त व्यक्तियोंके वीर्य्यमें यक्ष्मा कीटाणुओंके पाये जानेका कोई विश्वसनीय प्रमाण अभी तक नहीं मिला है। शिश्नगूथ कीटाणु (Smegma bacillus) भी रञ्जित होने पर ठीक वैसा ही दीखता है जैसा कि यक्ष्मा कीटाणु। अस्तु, परीक्षा के अभिप्रायसे मूत्र संग्रह करने के समय ज़रा सावधानीसे काम लेना चाहिये। (देखिये फुफ्फुस यक्ष्मा का निदान)

(१) वृक्क यक्ष्मा (Tuberculosis of the Kidney) यह रोग निम्नलिखित तीन रूपोंमें से कोई एक धारण करता है।

(क) नूतन सर्वाङ्ग यक्ष्मा (Acute general tuberculosis)। दोनों वृक्क बहुसंख्यक यक्ष्मा गांठोंसे भरे रहते हैं, किन्तु रोगके कोई विशेष लक्षण नहीं उपस्थित होते। रोगी बहुधा बच्चा होता है और इसकी चिकित्सा प्रायः असम्भव होती है।

(ख) मूत्राशयसे अग्रसर हो कर रोग दोनों वृक्क पर आक्रमण कर सकता है। मूत्रप्रणाली की श्लैष्मिक कला मोटी हो जाती है और इसमें दानेदार यक्ष्मा गांठें भर जाती हैं। ये गांठें वृक्कके गह्वर (Pelvis) और कोणों में मिलती हैं (Calycres)। तदनन्तर वृक्कके कार्य्यकर्त्ता तंतुओं एवं स्तूपों (Pyramids) पर भी आक्रमण होता है। रोगी प्रायः नवयुवक होते हैं।

दोनों वृक्क आकारमें बढ़ जाते हैं, क्योंकि यक्ष्माके दाने (granulations) उनमें बढ़ते जाते हैं तथा मूत्र प्रणालियों (ureters) का मार्गविरोध होता जाता है। इन उपद्रवोंसे जो लक्षण उपस्थित होते हैं उन्हें वस्ति रोग जनित लक्षणोंसे पृथक् नहीं किया जा सकता। कभी कभी वृक्कमें व्रण हो जाता है और रोगी शक्ति-क्षीणता, रक्त-दोष अथवा मूत्रवरोध के कारण मृत्यु मुखमें पतित होता है। इन अवस्थाओंमें चिकित्साका कोई फल नहीं होता।

(ग) वृक्कका प्राथमिक-यक्ष्मा (Primary Tuberculosis of the Kidney) इस दशामें प्रायः एक ही वृक्क आक्रान्त होता है किन्तु वृक्क के किसी अंश—गह्वर, कोण, स्तूप इत्यादि—में आक्रमण सम्भव है। कभी कभी क्षतस्थानमें खटिक जम जानेके कारण रौञ्जन किरण द्वारा इस की छाया भी दिखाई पड़ती है। यदि इसमें केवल अधःक्षेपण क्रिया हो कर ही रह जाय तो यह बहुत सम्भव है कि मूत्र प्रणालीके मार्गसे रोग वस्तिमें भी पदार्पण करे। यक्ष्माक्रान्त मूत्र प्रणाली बहुधा मोटी और कड़ी हो जाती है। इसकी श्लैष्मिक कला मोटी हो जाती है। मूत्र-स्रावमें रुकावट होती जाती है। मूत्र-प्रणाली ऊपरका ओर खिंचती जाती है, और अपने साथ साथ वस्ति को भी ऊपर उठाती जाती है। पीव जब प्रस्तुत होता है तब कभी तो मूत्र-प्रणालीमें ही रुका रह जाता है और कभी वस्तिके चारों ओर फैल जाता है।

लक्षण।

पहले कुछ भी निश्चयात्मक लक्षण नहीं प्रतीत होते। रोगी अल्प-वयस्क युवक होता है। वह कहता है "मुझे मूत्र-स्राव अधिक होता है, कमरके ऊपर कुछ दर्द सा बना रहता है जो रात दिन एक सा जान पड़ता है और कभी कभी इतना बढ़ जाता है कि बेचैनी मालूम होने लगती है। किसी प्रकारके विश्रामसे यह कमती नहीं।" उसके मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल (Acid Reaction) होती है, उसमें कुछ पीव भी रहता है और अणुवीक्षण-यन्त्र द्वारा उसमें यक्ष्मा-कीटाणु भी ढूँढ़ निकाले जा जा सकते हैं—किन्तु कीटाणुओंका पाया जाना कुछ आवश्यक नहीं है। मूत्रमें कभी कभी रक्त आ सकता है, पर इसकी मात्रा कम होती है। बहुत आरम्भमें भी—यद्यपि उस समय पीव न भी निकलता हो—मूत्र द्वारा अल्व्युमिन (अण्डसित) निकल सकता है।

परीक्षा करने पर वृक्क आकारमें कुछ बढ़ा हुआ जान पड़ता है, किन्तु प्रारम्भिक अवस्थाओं में इसे दबाने पर दर्द नहीं होता। शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होता जाता है, रातको पसीना आता है और सन्ध्या समय कुछ ज्वर हो आता है।

निदान।

यदि मूत्रमें यक्ष्मा-कीटाणु नहीं पाये जायँ तो पहिचान संदेहात्मक है क्योंकि इसके लक्षण प्रायः सबके सब वही हैं जो वृक्कमें पत्थर पड़ जाने (Stone in Kidney) के कारण मिलते हैं। रोगी की आयु, उसका पारिवारिक इतिहास एवं अन्य किसी अवयव (विशेष कर जननेन्द्रियों) में यक्ष्मा का पाया जाना इत्यादि इस रोगके द्योतक हैं। मूत्रकी परीक्षा बहुत ही आवश्यक है। इसमें यक्ष्मा कीटाणुओंके पाये जानेकी सम्भावना रहती है। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि चलने फिरनेसे ये लक्षण अधिक कष्ट-प्रद नहीं प्रतीत होते तथा पूर्ण विश्राम करने पर भी इनमें कुछ न्यूनता नहीं होती है। मूत्रके साथ रक्त-स्राव की बहुत कम सम्भावना रहती है और तीव्र वेदना (Colic) वा दबाने पर व्यथा बहुत कम होती है। रौञ्जन किरण द्वारा पत्थर बैठने पर छाया प्राप्त हो सकती है। विद्युतालोक द्वारा वस्तिकी परीक्षा करने पर उसमें भी यक्ष्माके आक्रमणके चिह्न पाये जा सकते हैं। जहाँ इतनी अधिक द्विविधा हो कि निदानके लिए एक वा दूसरी ओर झुकना कठिन होता हो वहाँ एक वार पीठकी ओर से उदर खोल कर वृक्ककी अवस्था देख लेना उचित है। पत्थरकी अवस्थामें वृक्क यहाँ वहाँ चिकना और गहरे रङ्गका दीख पड़ता है। इसके ऊपरी भाग खोलके से ढीले और फैले हुये जान पड़ते हैं। यक्ष्माग्रस्त वृक्क का रक्त चित्रित (चित कबरा) तथा क्षीण रंग का होता है। उसमें बिखरी हुई बड़ी बड़ी यक्ष्मा गांठें पाई जाती हैं। ये कड़ी होती हैं किन्तु दबाने पर द्रवकी भाँति हो जाती हैं और इनको काटने पर इनसे अधःक्षेपकी नाईं पीव निर्गत होता है। मूत्र प्रणालीकी अवस्था बदल जाती है; वह मोटा और कड़ी हो जाती है। टुबर्कुलिन प्रतिक्रिया रोग-निदान में सहायता करती है।

चिकित्सा।

रोगके बहुत आरम्भमें ही चिकित्साका पूरा प्रबन्ध करना उचित है। ओषधियोंमें १५ से २० बूँद क्रियोज़ोट (दिनमें ३ बार) खिलाना लाभ-दायक होता है। अत्यल्प मात्रामें टुबर्कुलिन (सूई द्वारा) प्रवेश कराया जा सकता है। किन्तु क्षत-चिकित्सामें विलम्ब करना उचित नहीं है क्योंकि सम्भव है कि उपद्रव बढ़ता जाय। अन्वेषण करने पर यदि देखा जाय कि वृक्क केवल एक स्थानमें ही क्षत-ग्रस्त हुआ है तथा गह्वर एक दम अक्षत है तो उचित है कि क्षत अंशको काट कर निकाल दिया जाय, काटनेके स्थानको खुरच दिया जाय और उसे कार्बोलिकाम्ल (Carbolic Acid) से दाग कर उसमें गौज़ (ओषधियों-बोरिक एसिड वा आयडोफार्म इत्यादि--में भिगा कर सुखाये हुये कपड़ोंके छोटे छोटे टुकड़े) भर दिया जाय। दूसरा उपाय यह है कि क्षत वृक्कसे स्तूपाकार कील (Conical wedge) सा एक टुकड़ा (जिसमें क्षत अंश सम्मिलित रहेगा) काट कर हटा दिया जाय तथा वृक्क का घाव सी दिया जाय। यदि रोग बहुत बढ़ गया हो और चिकित्सक को इस बातका पूरा विश्वास हो कि दूसरा वृक्क एक दम अक्षत है तो क्षत वृक्कको काट कर एक दम निकाल दिया जाय। ऐसी अवस्थामें वृक्क पीठ की ओरसे बाहर निकाला जाता है तथा मूत्र प्रणाली बहुत नीचे कस कर बांध दी जाती है।

(२) वस्ति-यक्ष्मा। (Tuberculosis of the bladder) यह रोग प्राथमिक वा माध्यमिक रूपसे

हो सकता है किन्तु माध्यमिक रूपसे ही अधिक देखा जाता है—बहुधा प्रोस्टेट वा अण्डसे अग्रसर होकर वस्ति पर आक्रमण करता है।

रोग वस्ति की श्लैष्मिक कलाके अन्तर्वर्ती तंतुओंमें आरम्भ होता है। इन तंतुओंमें अधःक्षेपण क्रिया होती है, पीव तैयार होता है और अन्तमें ऐसे व्रण हो जाते हैं जिनके किनारे भीतर से खोखले होते हैं। ये व्रण आरम्भमें छोटे छोटे और बहुसंख्यक होते हैं किन्तु बादको दूसरेसे मिल जाते हैं।

लक्षण।

रोगीको सदैव मूत्र-त्यागकी इच्छा बनी रहती और रातमें भी उसे कई बार इसी लिए उठना पड़ता है। मूत्र गदला (Turbid) हो जाता है और उसे किसी शीशीमें कुछ घण्टों तक रख छोड़ने पर उसके निम्न भागमें श्लैष्मिक तंतु वा पीव बैठ जाता है। मूत्रकी प्रक्रिया क्षारीय (Alkaline reaction) होती है और उससे दुर्गन्ध निकलती रहती है। परीक्षा करने पर इसमें यक्ष्मा कीटाणु पाये जाते हैं। साधारण स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। अन्तमें विद्युतालोक द्वारा परीक्षा करने पर वस्ति की वास्तविक अवस्थाका पता चलता है।

रोगकी गति अच्छी नहीं होती और रोगी की बहुधा मृत्यु होती है।

चिकित्सा।

रोग यदि आरम्भमें पहिचाना जाय तो इसकी चिकित्सा सरल एवं लाभदायक होती है। साधारण स्वास्थ्यको बनाये रखना उचित है। वस्तिको सप्ताह में दो तीन बार किसी कीटाणु-नाशक (antiseptic lotion) तरलसे धो देना उचित है और तब उसमें एक वा दो ड्राम नैलोपिपील और मधुरिन (नैलोपिपील १० प्रतिशत) डाल देना उचित है।

इस रोग की टुवर्कुलिन-चिकित्सा अत्यन्त लाभदायक है।

जब रोग बहुत बढ़ जाता है तब इसकी चिकित्सा प्रायः असम्भव हो जाती है। बहुधा वस्तिको खोल, व्रणको खुरच कर उसे कार्बोलिकाम्लसे जला देते हैं किन्तु इस चिकित्सासे कुछ विशेष लाभ नहीं होता।

यह भी देखा गया है कि वृक्क वा अण्डकोषके प्राथमिक क्षत (जिससे वस्ति रोग ग्रस्त हुई थी) की चिकित्सा करने पर वस्तिक्षत स्वयं विलीन हो जाता है।

(३) अण्ड यक्ष्मा (Tuberculosis of the testis) यह रोग प्राय ऐसे अल्पवयस्क युवकोंमें देखा जाता है जिनका पारिवारिक इतिहास भी सन्देहात्मक रहता है। यह प्राथमिक वा माध्यमिक रूपसे प्रकट होता है।

अङ्ग-विकृति।

रोग आरम्भका सर्व प्रथम उपाण्डके संयोजक तन्तुओंमें होता है। तदुपरान्त यह अपनी नियमित गति अवलम्बन करता है। यक्ष्माके बहुसंख्यक दाने रक्तनलिकाओंके चारों ओर दिखाई पड़ते हैं; ये आपसमें मिलकर अधःक्षेपणके पिण्डसे बन जाते हैं, जिनके घुलनेसे एक व्रण तैयार हो जाता है। आक्रमण बहुधा उपाण्डसे एक अंश पर होता है किन्तु जब इसके सभी अंशोंमें यक्ष्माके केन्द्र तैयार हो जाते हैं तो अण्ड भी आक्रान्त होनेसे बच नहीं सकता। इसमें भी पूर्व कथित क्रियायें होने लगती हैं। तदनन्तर और भी अग्रसर होकर वस्ति इत्यादि पर आक्रमण करता है। अन्तमें सर्वाङ्ग बहुसंख्यक यक्ष्मा प्रादुर्भूत होती है। आश्चर्य यह है कि इस रोगके लक्षणके साथ साथ मस्तिष्कावरणका यक्ष्मा भी प्रायः देखा जाता है।

लक्षण।

रोग प्रायः एक ही अण्डमें होता है किन्तु कुछ कालोपरान्त दूसरा भी क्षतग्रस्त होता है। रोग

एकाएक होता है अथवा धीरे धीरे। पहले ऐसा ज्ञान पड़ता है, मानो साधारण अण्ड-प्रदाह हुआ हो। किन्तु यद्यपि कुछ सप्ताहके बाद पीड़ा बन्द हो जाती है, सूजन कम नहीं होती, तथा एक ऐसा व्रण बन जाता है जिसमें मोमका सा पीब भरा रहता है। अधिक जीर्ण अवस्थाओंमें उपाण्डों में एक वा दो कड़ी गांठें पाई जाती हैं, जो दबाने पर दुखती नहीं। सारा उपाण्ड सूजा हुआ और स्पर्शमें कठोर ज्ञान पड़ता है। अण्डके पश्चाद्भाग में एक अर्धचन्द्राकार पिण्ड सा ज्ञान पड़ता है। पुनः ज्यों २ पीब तैयार होता जाता है त्यों २ पीड़ा बढ़ने लगती है। अन्तमें व्रण फट जाता है तथा पीब बाहर निकल पड़ता है। यदि वस्ति पर भी आक्रमण हुआ हो तो तदनुरूप लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं।

चिकित्सा।

आरम्भमें उपयुक्त जल वायु वा स्वास्थ्यालय में रहना लाभदायक होगा। इस समय ट्युबर्कुलिन चिकित्सा भी की जा सकती है। इसके अतिरिक्त अण्डके ऊपर एक पट्टी इस प्रकार बांध दी जाती है कि जिससे क्षत स्थानमें अधिक रक्त सञ्चार होता रहे। यदि रोग केवल एक ही उपाण्डमें परिमित हो तो क्षत अंशको खुरच कर निकाल देना चाहिए और घावको कार्बोलिकाम्लसे जला देना चाहिए। किन्तु इन उपायोंके अवलम्बन करनेका अवकाश नहीं मिलता, क्योंकि रोगी जिस समय चिकित्सा के लिए उपस्थित होते हैं, उस समय तक उनका रोग बहुत उग्ररूप धारण कर लेता है।

ऐसी अवस्थामें सारे उपाण्डको काट कर निकाल देना उचित है। इस प्रकार यक्ष्माक्रान्त पिण्ड अलग हो जाता है और यदि अण्डमें भी कोई केन्द्र वर्तमान हो तो वह सूख जाता है और अथवा किसी दूसरे समय पर वह भी खुरच कर निकाला जा सकता है।

यदि अण्ड पूर्णतः नष्ट हो गया हो और इसकी सारी उपयोगिता लुप्त हो गई हो तो उसे काट कर हटा देना ही उचित है किन्तु साथ ही साथ अण्ड धारक रज्जु (Spermatic chord) को जितनी ऊँचाई पर सम्भव हो काट देना चाहिये।

(४) प्रोस्टेट और वीर्याशयका यक्ष्मा। (Tuberculosis of the Prostate and Vesiculae Seminales) प्रोस्टेट कदाचित् ही आक्रान्त होता है। इसमें छोटी छोटी गांठें मिलती हैं। जो स्पर्श में कठोर होती हैं। वस्तिमें ज्वाला बनी रहती है और सलाई प्रवेश कराने पर रोगीको बहुत पीड़ा होती है।

(५) डिम्ब-प्रणाली, डिम्बकोष और गर्भाशय का यक्ष्मा (Tuberculosis of the Fallopian Tubes, Ovaries, and Uterus) नारी-जननेन्द्रियोंमें डिम्ब प्रणाली यक्ष्माकी प्रधान क्रीड़ास्थली है। इसमें यह रोग बहुधा प्राथमिक रूपमें प्रकट होता है और एक विशेष प्रकारका प्रदाह उत्पन्न करता है, जिससे यह प्रणाली फैल जाती है और इसकी दीवारें मोटी हो जाती हैं तथा उनमें अधः-क्षेपण क्रिया होती रहती है। निकट सम्पर्कके कारण एक अवयव दूसरेसे सटने लगते हैं। रोग दोनों ओर की प्रणालियोंमें होता है और छोटी छोटी कन्याओंमें भी सम्भव है।

डिम्बकोषों का यक्ष्मा प्रायः माध्यमिक होता है तथा गर्भाशयमें यक्ष्माका आक्रमण बहुत कम देखा जाता है।

विज्ञान परिषद्का सब कार्य अगले साल बन्द ही कर देना पड़ेगा। इसलिए अन्तमें हम सभ्यों और अन्य सहायकोंसे प्रार्थना करते हैं कि ऐसी स्थिति में हमारी ओर से ध्यान हटा न लें नहीं तो इतने दिनोंकी मेहनत बेकार हो जायगी।

आगामी वर्षके पदाधिकारी

आगामी वर्षके लिये पदाधिकारियों और कार्य्यकारिणी समितिके सदस्योंका निर्वाचन इस प्रकार हुआ :—

प्रधान

डा० नीलरत्नधर, प्रयाग विश्वविद्यालय

उपप्रधान

डा० शिखि भूषण दत्त, प्रयाग विश्वविद्यालय

मंत्री

श्री सालिगराम भार्गव, एम० एस-सी०

श्री व्रजराज एम० ए०, बी० एस-सी०, एल एल० बी०

कोषाध्यक्ष

श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०

स्थानीय सदस्य

पं० अमरनाथ झा०, एम० ए०
पं० कन्हैयालाल भार्गव, रईस, कीटगंज
डा० हरूराम मेहरा
प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी०

अस्थानीय सदस्य

डा० निहाल करण सेठी, आगरा
बा० महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव, बलिया
प्रो० रामदास गौड़, बनारस
श्री० फूलदेव सहाय वर्मा, बनारस
श्री हीरालाल खन्ना, कानपुर

—सालिगराम भार्गव
मंत्री

थ्योडर विलियम रिचार्ड्स

(१८६८—१९२९)

[ले० श्रीआत्माराम एम० एस-सी०]

रिचार्ड्सका जन्म ३१ जनवरी १८६८ ई० को जर्मनीके पेनसिलविया नगरमें हुआ। उसका पिता एक विख्यात चित्रकार था और माता भी एक उच्चकोटिकी विदुषी थी। रिचार्ड्स की बाल्य-अवस्था अधिकतर अपनी माता ही के साथ बीती और उसीसे बहुत कुछ प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। उसको शुरू ही से रासायनिक प्रयोगोंमें बड़ी रुचि थी। इस कारण उसके पिता ने १४ वर्ष की ही आयुमें रिचार्ड्सको हारवर्ड कालेजमें शिक्षा पानेके लिये भेज दिया। सन् १८८५ में उसने विज्ञान की परीक्षा जिसको बी० एस-सी० कहते हैं पास की और कुल कक्षामें सर्वप्रथम रहा।

रिचार्ड्सकी तीक्ष्ण बुद्धिका उसके प्रोफेसर कुक पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने रिचार्ड्सको अपना सहकारी नियुक्त कर लिया। कुकके मनमें सर्वदा यौगिक अनुपात निकालनेकी लालसा लगी रहती थी क्योंकि उसका विचार था कि यदि ओषजनका परमाणु भार १६ मान लिया जाये तो अन्य तत्त्वोंके परमाणु भार पूर्ण संख्या आते हैं। पाठकोंको स्मरण होगा कि यह प्राउटका कथन था परन्तु यदि उद्‌जनका परमाणु भार १ माना जाये तो बहुत ही कम तत्त्वोंके परमाणुभार पूर्ण संख्या आते हैं। इस कारण कुक ओषजन और उद्‌जनका ठीक ठीक यौगिक अनुपात निकालना चाहता था। परन्तु आंखोंमें कुछ रोग हो जानेके कारण उसने रिचार्ड्स को इस कार्य्य पर लगा दिया। १८ वर्ष के नवयुवक के लिये यह एक सहल कार्य नहीं था क्योंकि इसमें ओषजन और उद्‌जन गैससे भरे हुये ग्लोब ठीक ठीक तोलने पड़ते थे। यह दोनों गैसें मिला कर गर्म ताम्र ओषिद पर प्रवाहित की जाती थीं। इस प्रकार जो जल बनता, उसको तोलकर दोनों गैसों का अनुपात निकाला गया। इस प्रयोग के आधार पर रिचार्ड्स ने ओषजनका परमाणुभार १५.८६९±०.००१७ निकाला। यह पूर्णसंख्याके निकट ही है।

इस कार्य्यकी प्रतिष्ठामें विश्वविद्यालय ने रिचार्ड्सको पारकर छात्रवृत्ति देकर योरोप के भ्रमणके लिये भेजा। यहां पर लार्ड रेले और सर हेनरी रास्को जैसे महापुरुषोंसे उसका परिचय हुआ। हारवर्ड लौटने पर रिचार्ड्स रसायन-अध्यापक नियुक्त हुआ। कुककी मृत्युके पश्चात् रिचार्ड्स जर्मनीमें भौतिक रसायन पढ़नेके लिये ओस्टवाल्ड और नर्न्स्टके पास भेजा गया ताकि अमेरिकामें भी भौतिक रसायनकी उचित शिक्षा दी जा सके।

योरोपसे लौटनेके पश्चात् उसने परमाणु भार पर फिर कार्य्य आरम्भ कर दिया। इसका यह कारण नहीं था कि रिचार्ड्स इस कार्यको इतना चाहता था और इसमें इतना निपुण भी था बल्कि प्रकृतिकी बनावट परमाणु भार केआधार पर है क्योंकि वह समय और स्थान पर बिलकुल निर्भर नहीं हैं। इनके भीतर प्रकृतिकी माया भरी हुई है। तत्त्वोंका यही ऐसा स्वभाव है जो किसी दशामें नहीं बदलता।

सबसे पहले रिचार्ड्स ने ताम्रम् पर कार्य प्रारम्भ किया, इसका कारण यह था कि इस पर अधिक कार्य्य हो चुका था और दूसरों की असफलतासे बहुत कुछ बातें विदित हो गई थीं जैसे अवक्षेपका गैससे मिल जाना, वस्तुओंको गैस रहित तैयार करना, और साथ साथ यह भी देखना कि सब वस्तुयें जलरहित दशामें तोली गई हैं।

ताम्र-गन्धेतकी छानबीनसे जो कि भार गन्धेत द्वारा की गई भारम्के परमाणु पर बड़ी शंका उत्पन्न हुई। इसको भी हरिद और अरुणिदकी रीतिसे किया गया और १३७ की जगह १३७.३७ संख्या स्थापित की गई। इस प्रकार रिचार्ड्स ने

आगे पैर बढ़ाया और स्त्रंशम, दस्तम्, मगनीसम् और खटिकम् इत्यादिके परमाणु भार क्रमानुसार ८७'६३, ६५'३७, २४'३२, ४०'०७ रखे।

स्त्रंशम् पर कार्य्य करनेसे दो नये यन्त्रोंका आविष्कार हुआ—नेफेलोमीटर और बोतल यन्त्र जिन पर आजकल परमाणु भार निकालनेकी सत्यता निर्भर है। रिचार्ड्स ने विदित किया कि वस्तुओं को जलरहित दशामें तौलनेकी केवल यही एक रीति है कि उनको शुष्क मण्डलमें गला कर तोला जाये। इस प्रकार स्त्रंशम् अरुणिदको तोलनेसे कुछ हानि होती थी क्योंकि इस प्रकार कुछ उदजन अरुणिद निकल जाती है इसलिये इसको इस गैसके मण्डल में गलाना पड़ा। बादमें इसके बजाय नोषजन प्रयोगमें लाई गई। काट्ज़की छोटीसे नौकामें वस्तु रक्खी जाती थी और इसको एक अद्भुत रीतिसे तौलने वाली बोतलमें गिराया जाता था, इस प्रकार कुछ भाप उसमें रह जाती थी, इस ग़लती को हटानेके लिये एक ऐसी रीति निकाली गई जिससे कि वस्तुओंको वायुमें न निकालना पड़े।

यह तो एक ठीक बात है कि बहुतसी क्या, लगभग सब अनघुल वस्तुयें किंचित मात्र तो अवश्य ही घुल जाती हैं। रजत अरुणिद भी जलमें कुछ घुल जाता है। इस कारण इस किंचित मात्र ग़लतीको दूर करनेके लिये यह जानना आवश्यक है कि कितना घुल जाता है इसलिये इस बातको विदित करनेकी चेष्टाकी गई कि कितना रजत नोषेत कितने अरुणिदके बराबर है। इस प्रकार रजतअरुणिदके घुल जानेसे दोनों रीतियोंमें ग़लती पड़ती है। प्रथम तो इस किंचित घुलन शीलताके लिये कुछ करना चाहिये, दूसरे अवक्षेपन क्रियामें अन्त-बिन्दुका ज्ञात करना भी कोई सीधी बात नहीं है। रिचार्ड्स ने पहिले तो स्टासकी रीतिके अनुसार कार्य्य किया अर्थात् प्रकाश प्रदर्शन की सहायतासे रजत अरुणिदका भार विदित किया। यह एक विचित्र यन्त्र और रीति है जिसका वर्णन यहां पर नहीं किया जा सकता। पाठकोंको यह पढ़ कर पता लग जायेगा कि कितने परिश्रम और धैर्य्यके साथ रिचार्ड्स ने इस कार्य्यको इस दशा पर पहुँचाया। यही कारण है कि उसकी दी हुई संख्यायें अब तक ठीक मानी जाती हैं और मानी जायेंगी। यह उच्चकोटि की उस निपुणता और चतुरताको दर्शाता है जिससे रिचार्ड्स ने अपने लिये वैज्ञानिक संसारमें एक ऊँचा स्थान प्राप्त किया।

यह तो रिचार्ड्स का एक कार्य्य रहा। अब भौतिक रसायन-सम्बन्धी अनुसन्धानों पर दृष्टि डालिये। रिचार्ड्स जब दूसरी बार जर्मनी गया तो उसकी जगत् विख्यात भौतिक रसायनज्ञ प्रो० वाएट हाफ़से भेंट हुई। ओस्टवाल्ड तो उसे पहिलेसे जानता था। इस बार जब वह लौटा तो उसके हृदय पर वाएट हाफ़के घोल सिद्धान्तका अधिक प्रभाव पड़ा। इसके पश्चात् उसने जो कुछ कार्य्य किया उसमें इस तत्त्वसे मुख्य सहायता ली। नक़लम् और कोबल्टम् के परमाणु भार निकालनेमें इसकी झलक साफ़ साफ़ दिखाई देती है इसके पश्चात् खटिकम्के के परमाणु भारको फिरसे दोहराया और व्योमम् और पिनाकम्के परमाणु भार निकाले। इन सब से रिचार्ड्सको आवर्त-संविभाग पर बड़ा सन्देह होने लगा और उसने कहा कि यह केवल एक मोटी सी बात है, इसमें अधिक सत्यता नहीं। सन् १९१२ में परमाणु भारों की स्थिरता पर एक घोर आक्रमण कई ओरसे हुआ। साडी, रसेल और फ़ाइयाँ ने रश्मिशक्तिक परिवर्त्तनोंमें परमाणु संख्या और परमाणु भारके बदल जाने की सम्भावना बतलाई। रिचार्ड्स ने तुरन्त ही साधारण सीसम् और रश्मिशक्तिक परिवर्तनोंसे मिले हुये सीसम्के परमाणु भार निकाले। उसका यह ख्याल था कि शायद दोनों की एक ही संख्या मिले परन्तु इनमें अन्तर प्रतीत हुआ। इस प्रकार रिचार्ड्स ने समस्थानिकोंकी सम्भावनाको सिद्ध किया। इसके पश्चात् इसका दूसरा प्रमाण या यह कहिये कि मुख्य प्रमाण ऐस्टनके कार्य्यसे हुआ।

रिचार्ड्स ने विद्युत् रसायन और ताप रसायन में भी अधिक कार्य्य किया उसका मुख्य कार्य्य प्रे० गिलबर्ट लुइसके साथ हुआ। इन दोनों ने मिल कर मिश्रण बाटरियोंकी सत्यताको प्रतीत किया।

वान डर वाल्स (ब) भी रिचार्ड्सके लिये एक अद्भुत खोजका केन्द्र सिद्ध हुई। कुछ दिनों कार्य्य करनेसे यह पता लगा कि अधिक दबाव बड़ा देने से ब की संख्या बदलती जाती है और इस प्रकार परमाणुओंकी संकोचनीयताकी नीव पड़ी और साथ साथ यह भी बतलाया कि किस प्रकार इस स्वभाव के प्रभाव से तत्वों के रासायनिक और भौतिक स्वभावोंमें परिवर्त्तन पड़ सकता है। उसका कहना था कि रसायन प्रक्रियामें परमाणुओं का आयतन घट बढ़ जाता है। उस समय बड़ा दबाव उत्पन्न हो जाता है क्योंकि उनके भीतरी आकर्षण पर इसका प्रभाव पड़ता है। बादमें प्रयोग करनेसे इस बातके कई प्रमाण मिले। उसने ज्ञात किया कि परमाणविक संकोचनीयता परमाणु भार के साथ साथ आवर्त रूपमें घटती बढ़ती है और इसका परमाणु-आयतन से भी घनिष्ट सम्बन्ध है।

ताप-रसायनमें रिचार्ड्स ने मुख्यतया प्रयोगों पर ही लेख लिखे। सबसे पहिले तापक्रम मापकों पर कुछ सुधार किया और सैन्धकम्, पांशुजम्, और शोणम्से उदौषिदोंके भिन्न अम्लोंके साथ मिलनेसे जो ताप उत्पन्न होता है उसकी ठीक ठीक नाप की। साथ साथ धातुओं के अम्लोंमें घुलनेके घोल-ताप की संख्या भी विदितकी। इस सम्बन्धमें कार्बनिक अम्लों पर भी कुछ कार्य्य किया।

इस प्रकार यह विदित होता है कि रिचार्ड्स ने किस चतुरता और धैर्य्यसे रसायन ज्ञानको बढ़ाया। जहाँ तक कहा जाता है, किसी रसायनज्ञ ने अपनी प्रयोगिक वस्तुओं को शुद्ध करनेमें इतना परिश्रम नहीं किया जितना कि इस महान् पुरुष ने। उसका कहना था कि कभी किसी चीज़का शुद्ध नहीं समझना चाहिये जो और अपने फलोंको कभी बिलकुल ठीक न ख्याल करे वह ही पूरा वैज्ञानिक हो सकता है। सहस्रों वार शुद्ध करने पर भी उसको वस्तुओं की शुद्धताका विश्वास न होता था। उसकी प्रयोगिक चतुरता भी अद्भुत थी। बोतल यन्त्र, नेफेलोमीटर इत्यादि उसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इस प्रकार उसने बहुतसे यन्त्र नये बनाये और बहुतसे अपने हाथोंसे सुधार कर ठीक दशामें प्रदर्शित किये। इन यन्त्रोंका कितना प्रयोग होता है और कितने समयका लाभ हुआ है यह किसी रसायनज्ञके दिमाग़ से बाहर नहीं है।

रिचार्ड्सका घरेलू जीवन भी बड़ा ही अलौकिक था। कहते हैं कि कभी उसको किसी ने रुष्ट होते नहीं देखा। उसके जीवन और कार्य्यको सफलताकी दो मुख्य बातें थीं। "दया और साधारण चतुरता"। यह कहनेमें कोई आपत्ति नहीं कि वह एक बड़े मस्तिष्क वाला भी था। सर्वदा अपने कार्य्यमें मानसिक सत्ताको अपना आधार रखता था और इसकी झलक उसके प्रत्येक कार्य्यमें दिखाई पड़ती है। सच कहिये तो उसकी मूर्ति ही सचाई और दयाकी जीती जागती देवी थी। यह कहना कठिन है कि उसका रसायन अर्थात् विज्ञानसे कितना घनिष्ट सम्बन्ध था इसको भले प्रकार दर्शाने के लिये उसके कुछ शब्दों का अनुवाद दिया जाता जाता है।

"सर्व प्रथम मुझे मानसिक सत्यता पर ज़ोर देना चाहिये। जिसको मानसिक सत्यता और सचाई की बू नहीं है वह विज्ञानमें कुछ नहीं कर सकता। दूसरे, किसीको केवल ज़बानी बातों पर या गणित द्वारा सिद्ध किये हुये सूत्रों पर ही पूरा विश्वास न कर लेना चाहिये जब तक कि उसके लिये प्रयोगिक प्रमाण न हो। प्रत्येक कार्य्यको भले प्रकार देखना चाहिये और उसके सुधारमें कोई कमी न रक्खी जाये। इसके पश्चात् बस धैर्य्य ही सहायक है। केवल लगातार कार्य्य करने और परिश्रमसे हम अपने कार्य्यमें सफल हो सकते हैं।"

रिचार्ड्सके लिये पदक पाना एक घरकी बात हो गई थी। सन् १६१० में रायल सोसाइटी लन्दन ने डेवी-पदक प्रदान किया। सन् १६११ में लन्दनकी रसायन सोसाइटी ने सबसे उच्च पदक (फैरेडे पदक) से सम्मानित किया। सन् १६१२ में गिब्स-पदक प्राप्त किया और सन् १६१४ में सबसे बड़ी वैज्ञानिक प्रतिष्ठा अर्थात् नोबेल पुरस्कार से सुशोभित किया गया।

१६२७ तक उसने रसायन क्षेत्रमें एक बड़े भारी जेनरलके समान कार्य्य किया परन्तु इसके बाद उसका स्वास्थ बहुत बिगड़ गया और इस कारण उसे छुट्टी लेनी पड़ी। २ अप्रेल सन् १६२८ को ६० वर्ष की आयु में इस संसारसे विदा मांगी।

यद्यपि रिचार्ड्स इस समय नहीं है परन्तु उसका कार्य्य संसारके प्रत्येक कोनेमें समाया हुआ है। उसकी मृत्युसे नवयुवकोंके मन को वैज्ञानिक खोजके रसमें ललचाने वाला पुरुष उठ गया, एक खोज का मुख्य संस्थापक संसारसे उठ गया जिसकी जगहको भरनेमें शायद पचासों वर्ष लगेंगे। रिचार्ड्सकी जीवनी पढ़ कर किस मनमें कार्य्य करनेकी उमंग उत्पन्न नहीं होती। वास्तवमें उसका जीवन भी आजकलके निराश नवयुवकोंके लिये एक उदाहरण है।

जाँ बतिस्त स्टास

[ले० आत्माराम एम० एस-सी०]

(१८१३—१८९१)

ऐसे वैज्ञानिक जिन्हें सर्व संसारकी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई हो अधिक नहीं होते। पहिले ही बरज़ेल्यूसके विषयमें कहा जा चुका है। वह तो अपने समयका रसायनिक नेता था। यहां पर स्टासकी जोवनीका कुछ वृत्तान्त दिया जायगा जिसने अपने कार्य्यके बलसे यह दिखा दिया कि ठीक ठीक परमाणु भार निकालना उतना ही आवश्यक है जितना कि नये नये यौगिकों और तत्त्वोंका विदित करना।

स्टासका जन्म २१ अगस्त सन् १८१३ ई० को लोवें (बेलजियम) में हुआ। अभी भले प्रकार युवक भी न होने पाया था कि उसको अपने जीवन निर्वाहकी फ़िक्र पड़ गई। स्टास ने प्रथम चिकित्सा का अध्ययन किया परन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। बल्कि अपने मित्र कोनिङ्कके साथ १८३५ में अपने ही घर पर फ्लोर-इज़िन) पर कार्य्य आरम्भ कर दिया। स्टास ने अपने लिये एक तराजू अपने ही हाथोंसे तैयार की जो थोड़े ही से व्ययमें बन गई। इस प्रकार स्टास ने अपना कार्य्य अपने घर पर ही आरम्भ कर दिया। फ्लोरिडज़िन स्टास ने अंगूरके वृक्षकी छाल से तैय्यारकी थी। इस कार्य्यका उसके हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि बस फिर उसने अपनी सारी आयु रसायन शास्त्रकी खोजमें ही लगानेकी ठान ली। इसके पश्चात् स्टास ने डूमाकी प्रयोगशालामें जानेके लिये प्रो० डूमासे प्रार्थनाकी। डूमा उसके कार्य्यसे पहिले ही इतना प्रसन्न हो चुका था कि उसने तुरन्त ही स्टासको अपनी प्रयोगशालामें बुला लिया।

पेरिस आकर भी स्टास ने फ्लोरिडज़िन पर कार्य्य जारी रक्खा और कई रसायनिक रसोंके प्रभाव विदित किये। अम्लोंके साथ उबालनेसे फ्लोरेटिन और द्राक्ष शर्करा उत्पन्न होते हैं। फिर डूमा और स्टास दोनों ने मिलकर सम्मेलों, मद्यों और उवलकों पर पांशुज और खटिक उदौषिद् के मिश्रणका प्रभाव बतलाया। सिरकाम्ल व पिपीलिकाम्लके क्षार बना कर उनके संगठनको ठोक ठीक सिद्ध किया। साथ ही साथ सिरकोनके मुख्य स्वभावको दर्शाया, उस समय सिरकोन भी एक मद्य माना जाता था।

इस सबके पश्चात् डूमा और स्टास ने कर्बनके परमाणु भार पर कार्य्य आरम्भ किया। डूमा और बहुतसे रसायनज्ञों ने इस बातका अनुभव किया था कि यदि कार्बनिक यौगिकोंमें कर्बन और उदजन की संख्या निकाली जाये तो सर्वदा उसका कुल योग आरम्भकी हुई वस्तुसे अधिक आता है अर्थात् कर्बन का परमाणु भार जो बरज़ेल्यूस ने निकाला था कुछ अधिक है। बार बार प्रयोग करनेके पश्चात् डूमाको इस बातका पूरा विश्वास हो गया था कि कर्बनके परमाणु भारको फिरसे निकालना चाहिये। बरज़ेल्यूसकी संख्या १२·२४६ थी। इस कार्य्यका करना भी कोई साधारण बात नहीं थी। कर्बन द्विओषिद् का संगठन स्थापित करनेके लिये कई रूपोंमें कर्बन ली गई, जैसे लेखनिक हीरा, बनावटी इत्यादि। तुली हुई संख्या चीनीकी नलीमें जलाई गई और कर्बन द्विओषिद् पांशुजम् उदओषिद्से शोषकी गई। प्रत्येक बात को ध्यानमें रखते हुये कर्बन का परमाणु भार ७४·९५६ (ओ=१००) निकाला गया, इससे बहुतसे पहिले फल ठीक किये गये।

इस कार्य्यके पश्चात् १८४० ई० में स्टास अपने देशमें ब्रूसेल्ज विश्वविद्यालय का रसायनाचार्य्य नियुक्त हुआ। इस पद पर तीस वर्ष रह कर बेलजियम सरकारकी टकसालका मुख्य अध्यक्ष नियुक्त हुआ। यहां पर भी वह अधिक न ठहरा और सन् १८७२ में अलग हो गया।

परमाणु भारके अतिरिक्त स्टास ने और भी कई महत्वपूर्ण कार्य्य किये। सन् १८४२ में वायु-मण्डल पर एक लेख फ्रांस अकेडेमी को भेजा जिसमें उसने वायुका पूरा पूरा हाल प्रकाशित किया है। हेम्पटिनके साथ १८४३ में गन्धकाम्ल पर सिरकाम्लका प्रभाव जताया। १८४७ में सिरकम के संगठन पर एक लेख प्रकाशित किया, इस वस्तुके बनाने और शुद्ध करनेकी एक नई रीति बतलाई।

उसका कार्य्य खाद्य पदार्थों पर हुआ है। १८४५ में आलूके रोगों पर एक लेख लिखा और इस रोग को दूर करने के कई उपाय बतलाये। गस्टेव फ़ोगनीसकी ताम्बुलिनसे मृत्यु हो जानेसे स्टासको विषकी परीक्षा पर नियत किया गया। स्टास ने विष दिये जानेका पूरा प्रमाण दिया और वनस्पति क्षारोदों को विदित करने की नई नई रीतियां निकालीं और पुरानी रीतियोंकी तुच्छता दर्शाते हुये नई रीतियोंका महत्व पूर्णतया जताया। १८७७ से १८७९ तक सेण्ट क्लेयर डेविलके साथ पररौप्यम् परिवारकी धातुओंके स्वभाव पर बहुत कुछ कार्य किया। इसके साथ ही साथ पैररौप्यम् और इन्द्रम् के धातुसंकरके वज़न प्रयोग करनेका प्रस्ताव किया जो आजकल माने जाते हैं। इससे यह जान पड़ता है कि स्टास ने धातुसंकर पर भी बहुत कुछ कार्य किया जिससे बेलजियम सरकारको युद्ध सम्बन्धी वस्तुओंके बनानेमें काफ़ी सहायता मिली। इन प्रयोगोंके फल जनता को प्रकाशित नहीं किये गये हैं।

स्टास के परमाणु भार पर अनुसन्धान

परमाणु भारके कार्य्यसे स्टासका केवल यही अभिप्राय नहीं था कि बहुतसे तत्त्वोंके परमाणु भार ठीक ठीक निकाले जायें परन्तु साथ २ यह भी ध्यान था कि क्या इस कार्य्यसे प्रकृति की बनावट का कुछ पता लग सकता है क्योंकि परमाणु प्रकृतिके भवनकी एक ईंट है। उसने एक प्रश्नको हल करने की चेष्टा की कि क्या परमाणु भार एक स्थिरांक है चाहे किसी रीतिसे निकाला जाये? यद्यपि इनकी सत्यता पर बड़े बड़े रसायनज्ञों मैरिगनक इत्यादिको शंका थी, यहां तक कि ड्युटिलरो इत्यादि का कहना था कि परमाणु भार उस तत्त्व की भौतिक दशाओं पर बहुत कुछ निर्भर है, और दूसरे तत्त्वों से मिल जाने पर बदल जाता है। इसके पश्चात् पाठकों को पहिले ही जैसा कहा जा चुका है सर विलियम क्रुक्स ने उसी तत्त्वके परमाणुओंमें कमसे कम भारके विषयमें पृथकताकी सम्भावना दिखाई।

दूसरा प्रश्न था तत्त्वोंके परमाणु भार उद्जन को मानते हुये पूरी पूरी संख्या होते हैं या नहीं? इसी प्रकारके कई प्रश्न स्टासके सामने थे जिनका उसे उत्तर देना था। इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए स्टास ने बड़ी चतुरता और धैर्य्यके साथ कार्य्य किया। इस प्रकारके कार्य्यमें कितनी सहन-शीलता और धैर्य्यकी आवश्यकता है, पाठक भले प्रकार कठिनता से समझेंगे।

स्टासका इस विषयमें सबसे अधिक महत्त्व पूर्ण कार्य्य रजतम्के परमाणु भार पर हुआ। वह केवल किसी यौगिकके विश्लेषणसे ही परमाणु भार नहीं निकालता था बल्कि उसके संश्लेषणसे अपनी पहली संख्याओंकी जांच करता था। जैसा कि उसने रजत-हरिदका रजतम् और हरिन् से संश्लेषण करके दिखाया। जिन काँचके बर्तनोंमें कार्य्य किया जाता या इनमें से कुछ बोहीमियन कांचके बने हुये थे जो जलके प्रभावसे घुलकर क्षार धातुओंके हरिद बना देते थे। इस प्रकार रजत-हरिदके बनानेमें गलती होती थी। इनमें हरिदके बजाय अरुणिदका प्रयोग करके इसने ठीक किया। इसके बार बार बतानेकी आवश्यकता नहीं कि स्टास सर्वदा एक ही बातको कई रीतियोंसे करनेमें अत्यन्त विश्वास रखता था।

उसका विश्वास हो गया था कि तत्त्वोंके परमाणुभार पूर्ण संख्या नहीं होते, उनमें भिन्न भी

होती हैं। यद्यपि उसका विश्वास प्राउटके सिद्धान्त में था परन्तु प्रयोगिकों के फलोंसे यह बात सिद्ध न हो सकी।

यहाँ पर स्टासके कार्य्य पर और कुछ नहीं कहा जायेगा। स्टास सर्वदा दयालु और सहनशील स्वभाव का व्यक्ति रहा। यद्यपि वह बड़े बड़े पदों पर रहा और प्रतिष्ठायें पाईं पर कभी उसको बातों का घमंड नहीं हुआ। उसका जीवन कार्य्यकर्त्ताओंके लिये एक उदाहरण है। वह आजन्म ब्रह्मचारी रहा और यह कहिये कि रसायनसे ही विवाह कर लया था। स्टास कई सोसाइटियों का सदस्य चुना गया। जैसे रायल सोसाइटी, फ्रेंच अकेडेमी इत्यादि। इसके अतिरिक्त उसका सरकार में भी बड़ा मान था। कई वर्ष तक बेलजियम अकेडेमीके सभापतिके आसनको सुशोभित किया। सन् १८८५ में रायल सोसाइटी ने डेवी पदकसे सम्मानित किया। १३ दिसम्बर सन् १८६१ में स्टासकी मृत्यु हुई।

हवा में भाप

अब तुमने देख लिया कि गरमी पाकर पानी क्यों उड़ जाता है। इसकी भाप बन जाती है।

यह भाप कहाँ जाती है? पतीली में पानी उबलते हुए तुमने देखा होगा। तुमने यह देखा होगा कि पतीली के मुंह से क्या यह सब भाप हवा में मिल जाती है? हाँ।

अच्छा, तो हमारी हवामें बहुत सी भाप होगी क्योंकि रोज खाना बनाते समय कितना पानी भाप बनकर इसमें मिल जाता है, इसकी भाप कहाँ जाती है? तुम्हारे मुहल्ले की नालियों का पानी, बगीचे की पत्तियोंका पानी, तुम्हारे नगरके गड्ढे, तालाबों और नदी नालों का पानी भी रोज़ बहुत सा भाप

बन कर उड़ता है। यह सब पानी अगर हवा में है तो क्या तुम हवा में पानी दिखा सकते हो ?

एक गिलास में बरफ भर दो। गिलासको ऊपर से अच्छी तरह से पोंछ दो। अब गिलासको थोड़ी देर रख छोड़ो। अब तुम गिलास के ऊपर बाहरी सतह पर क्या देखते हो। पानी की छोटी छोटी बूँदें।

ये बूँदें कहाँ से आ गईं। बरफ तो अन्दर थी, उसकी बूँदें गिलासके बाहर तो आ नहीं सकती हैं। फिर ये पानी की बूँदे कहाँ से आ गईं ? ये बूँदें हवा में से आई हैं।

हवा में बहुत सी भाप है। तुम जानते हो कि अगर भाप ठण्डी हो जाय तो उसकी पानी की बूँदें बन जाती हैं। हवा गिलास के चारों ओर है। गिलास के अन्दर बरफ है। इसलिये जो हवा गिलास को छूती है, वह ठण्डी हो जाती है। हवा के ठण्डे होने पर उसके अन्दर की भाप भी ठण्डी पड़ जाती है। बस, पानी की बूँदें बन जाती हैं।

बरसात की ऋतु में तो हवा में बहुत सा पानी रहता है। क्या तुमने कभी देखा है कि बरसात में तुम्हारे घर के नमक में बहुत सा पानो आ जाता है। यह पानी कहाँ से आता है ? नमक क्यौं गीला हो जाता हैं ? बात यह है कि हवा में पानी भाप के रूप मिला हुआ है। नमक इस पानी को हवा में से सोख लेता है और इसी लिये खुला हुआ नमक गीला हो जाता है।

तुम्हारे घर की बहुत सी नमकीन चीजैं जैसे पापड़ वगैरह भी बासी होने पर गीली या नरम हो जाती है। बरसात में सभी खाने की चीजैं नरम पड़ जाती हैं। यह क्यौं ? इसीलिये कि हवा में भाप है और यह पानी की भाप तुम्हारी चीजौं को गीला कर देती है।

देखो, हमने काँच की सूखी प्याली में एक चीज रख दी। इसका नाम खटिक हरिद है। इसे अँगरेजी में कैलशम क्लोराइड कहते हैं। थोड़ी देर में तुम देखोगे कि इसमें बहुत सा पानी आ जा

जायगा। यह चीज़ गीली पड़ जायगी। यह पानी कहाँ से आ गया ? हवा की भाप से।

अब तुम समझ गये कि हवामें बहुत सी भाप है।

प्रयोग

१, गिलास में बरफ रख कर दिखाओ कि हवा में भाप है।

२, बाज़ार के नमक को गीला होते हुए दिखाओ। बरसात में कमरे में नमक कई दिन खुला रख छोड़ो।

३, खटिक हरिद (कैलशम् क्लोराइड) पांशुज सिरकेत (पोटाशियम एसीटेट) दाहक सैन्धक (कास्टिक सोडा) लोह हरिद (फैरिक क्लोराइड) मगनीस हरिद (मगनीशियम क्लोराइड) आदि पदार्थों को हवा में गीला होते हुए दिखाओ।

प्रयागकी विज्ञानपरिषत‌का मुखपत्र

Yijnana, the Hindi Organ of the Yernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर व्रजराज,
एम० ए०, बी० एस-सी०, एल० एल० बी०

श्रीयुत सत्यप्रकाश,
एम० एस-सी०, एफ० आई० सी० एस०

श्री युधिष्ठिर भार्गव,
एम० एस-सी०

भाग ३३

कन्या संवत् १९८८

प्रकाशक

विज्ञान परिषत् प्रयाग।

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

कृषि शास्त्र

चिकित्सा

जीवन चरित्र और इतिहास

भौतिक विज्ञान

रसायन

वनस्पति शास्त्र

मिश्रित

मुद्रक—शारदा प्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।